Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत

VOL. 6

K. V. DE
HARIDWAR

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification-2014

23 JUN 2014

Stock Verification-2014

Stock Verification-2014

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

४१,२३७
२६-२-६५
COMPILED

७१०/
२/१

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK
यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

710
21

श्रीमन्महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास प्रणीत

महाभारत

छठा भाग

41237

(वनपर्व समाप्त विराटपर्व अध्याय ३४ तक)

CHECKED 1973

अनुवादकः—

पण्डित गङ्गाप्रसादजी शास्त्री

प्रकाशकः—

महाभारत प्रकाशक मण्डल

चांदनीचौक दिल्ली

प्रथम वार } सर्वाधिकार सुरक्षित { मूल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशकः—
चतुरसेन गुप्त
महाभारत-प्रकाशक-मण्डल,
चाँदनी-चौक, दिल्ली

युधिष्ठिर उवाच—

भवन्ति भेदा ज्ञातीनां कलहाश्च वृकोदर ।
प्रसक्तानि च वैराणि कुलधर्मो न नश्यति ॥
यदा तु कश्चिज्ज्ञातीनां बाह्यः प्रार्थयते कुलम् ।
न मर्षयन्ति तत् सन्तो बाह्यं नाभिप्रधर्षणम् ॥

महा० व० प० अ० २४२ २-३

युधिष्ठिर ने कहा—हे वृकोदर ! बन्धुओं में फूट और कलह भी हो जाता है, वैर चल पड़ते हैं, परन्तु इससे कुल धर्मों का नाश नहीं होता है । यदि कोई बाहर की शक्ति, अपने बन्धुओं पर या कुल पर आक्रमण करे, तो समझदार मनुष्य, बाहर के आक्रमण को नहीं सह सकता है ।

प्राप्ते ज्ञानाम शक्तिः
७४०
६० ४(२)
७१,२३

मुद्रकः—
मुरारीलाल गार्ग्य
गार्ग्य प्रिन्टिङ्ग प्रेस,
दरियागंज देहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवेदन

शस्य-श्यामला भारत-भूमि, अन्न, रत्न, आदि के उत्पन्न करने से उर्वरा नहीं है, किन्तु यह तो प्रातःस्मरणीय श्रीराम, कृष्ण, युधिष्ठिर, प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह आदि पुरुष-प्रवीर, सीता, सावित्री, द्रौपदी, पद्मिनी, महामाया, पन्ना आदि महिला, कपिल, कणाद, गौतम, बुद्ध आदि ऋषि मुनियों की उत्पादिका होने से ही उर्वरा कहाती है। सबसे बड़ा गौरव तो इसका यही है, कि इस में श्रीकृष्णद्वैपायन जैसे म[illegible] और महाभारत जैसा ग्रन्थ-रत्न, उत्पन्न हुआ है।

यह महाभारत, हिन्दू-जाति की सञ्जीवन बूँटी है। इसी ने ही बार २ मूर्छित हुई हिन्दू जाति को बार २ जागृत और सचेत किया है।

प्राचीन विश्वास के अनुसार महाभारत हिन्दू जाति का पञ्चम वेद है। इसी ने निविडान्धकार के समय पर मणि की तरह प्रकाश देकर हिन्दू जाति को पथ-प्रदर्शन किया है। बड़े उद्वेग के साथ लिखना पड़ता है, कि आज ऐसे अनेक हिन्दू, भारत में विद्यमान हैं, जो इसका पठन तो क्या? इसके घर में रखने में संकोच (परहेज़) करते—यह हिन्दू-जाति का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे पास अनेक महानुभावों के पत्र आए हैं कि इस विशाल ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर मिलावट हो गई है, अनेक स्थानों में सृष्टिक्रम विरुद्ध कथन हैं—इसका संशोधन होना चाहिए। परन्तु ऐसा करने से ऐतिहासिकों को जो अड़चन खड़ी हो जावेगी, उसको हम जानते हैं। किसी भी ग्रन्थ में अदल बदल करने से हानि के सिवा लाभ कुछ भी नहीं है। हम तो इस समय ज्यों का त्यों ग्रन्थ आपकी भेंट कर रहे हैं, आप उस पर विचार करने को स्वतन्त्र हैं। यदि पाठकों ने उत्साह प्रकट किया, तो हम भी, इस पर एक समालोचनात्मक ग्रन्थ आपकी सेवा में उपस्थित कर सकेंगे, जिस में महाभारत पर होने वाली सारी शङ्काओं का अवश्य निराकरण हो जावेगा।

गङ्गाप्रसाद शास्त्री

दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10/21

विषयानुक्रमणिका

(वनपर्व अध्याय २३२ से विराटपर्व अ० ३४ तक)

द्रौपदीसत्यभामापर्व

विषय — पृष्ठ

द्रौपदी का सत्यभामा को पति सेवा का प्रकार
और पातिव्रत के महत्व का कथन करना — १—२३

घोषयात्रापर्व

धृतराष्ट्र की चिन्ता तथा
द्वैतवन में दुर्योधन, कर्ण, शकुनी का
पाण्डवों के उपहास के लिए घोष यात्रा का विचार करना,
दुर्योधन का अपनी गायों की पड़ताल के अनन्तर
गन्धर्वों से झगड़ा होना और
गन्धर्वों द्वारा दुर्योधन का पकड़ा जाना — ५१—७०

युद्ध करके पाण्डवों का गन्धर्वों के बन्धन से
दुर्योधन को छुड़ाना — ७१—९४

राजा दुर्योधन और कर्ण का सम्वाद दुर्योधन का
चिन्तातुर होना और कर्ण दुःशासनादि का समझाकर
दुर्योधन की उदासीनता को दूर करना
दुर्योधन का अपनी राजधानी हस्तिनापुर में आना — ५९—१३४

कर्ण का दिग्विजय को जाना
और अनेक देशों की जीत कर लौटना तथा
दुर्योधन का वैष्णव यज्ञ करना — १३५—१६०

दूत द्वारा दुर्योधन के यज्ञ का समाचार सुनकर
राजा युधिष्ठिर का कुछ चिन्तित होना — १६१—१६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगस्वप्नोद्भवपर्व

स्वप्न में राजा युधिष्ठिर का मृगों की प्रार्थना से
द्वैतवन से काम्यक वन में जाना। १६८—१७१

ब्रीहिद्रौणिकाख्यानपर्व

श्रीवेदव्यास और राजा युधिष्ठिर का
धर्म सम्वाद—मुद्गल ब्राह्मण का द्रोण
ब्रीहिदान का महत्व, लोक, लोकान्तरों
का वर्णन, १७२—२०१

द्रौपदीहरणपर्व

पाण्डवों का मृगया, जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का अपहरण,
पाण्डवों के साथ जयद्रथ का युद्ध और उसका बन्धन २०२—२७१

जयद्रथविमोक्षणपर्व

उस अर्जुन का जयद्रथ को पकड़ लाना,
राजा युधिष्ठिर का
जयद्रथ को छोड़ देना। २७२—२८९

रामोपाख्यानपर्व

रावणवंश और रावणोत्पत्ति, रावण का कुबेर से लङ्का
छीनना, लङ्का के सिंहासन पर रावण का अभिषेक,
रामोत्पत्ति, राम का वनगमन, शूर्पणखां के कर्णनासिका
छेदन, शूर्पणखा के भड़काने से रावण का मारीच के
पास जाना और सीता हरण के लिए उसको साथ लेकर
पञ्चवटी पर आना मारीच का मृग का रूप धारण करना
राम का मृग के पीछे जाना और पीछे से
रावण का सीता को अपहरण कर लेना २९०-३३४
रावण जटायु युद्ध, जटायु वध,
रावण का लंका में पहुँचना, राम लक्ष्मण का कुटिया पर
वापिस आना, सीता को न देख कर उसको खोजना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबन्ध वध, सुग्रीव से मिलना, बालि सुग्रीव युद्ध,
बालि मरण, सीता का अशोक वाटिका में रखना,
राक्षसी और रावण का सीता को समझाना, सीता का उत्तर,
वानरों का सीता का पता लगाने जाना
और पता लगा कर लौट आना ३३५ ३८४
वानरों की सेना का लङ्का पर चढ़ाई करना,
पुल बाँधना, लङ्का प्रवेश, विभीषण की शरण आना,
कुम्भकर्ण मेघनाद और रावण का युद्ध तथा वध,
श्रीरामचन्द्रजी का अयोध्या को लौटना और राज्याभिषेक ३८५-४६४

पतिव्रतामाहात्म्यपर्व

सावित्री का सत्यवान् को वरना, सावित्री का विवाह और
आश्रम प्रवेश, सत्यवान् की मृत्यु तथा सावित्री द्वारा
यमराज के प्रसन्न होने पर सत्यवान् का
जीवित होना और उसकी राज्य-प्राप्ति ४६५-५४०

कुण्डलाहरणपर्व

इन्द्र के कुण्डल माँगने को आने पर कुण्डल न देने को
[illegible]र्ण से आग्रह करना, कर्ण का दृढ़ रहना,
कुन्ती का ब्राह्मण की सेवा करना, सूर्य का आह्वान
और उससे गर्भ धारण करना, कर्ण की उत्पत्ति,
इन्द्र का कवच कुण्डल मांगने आना,
कर्ण का कवच कुण्डल दे देना और
उसके बदले में शक्ति ग्रहण करना ५४१-६१५

आरणेयपर्व

एक ब्राह्मण के अरणी काष्ठ को लेकर
भागने वाले मृग की खोज में पाण्डवों का
जाना, वन में चार पाण्डवों के अचेत होने पर
राजा युधिष्ठिर का यक्ष से प्रश्नोत्तर करना ६१६-६८४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराटपर्वारम्भ

पाण्डवप्रवेशपर्व

पाण्डवों के छुपकर रहने का विचार करना
क्रमबद्ध राजा युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल सहदेव
का कपट रूप कर विराट राज के पास जाना तथा
द्रौपदी का विराट राज-पत्नी सुदेष्णा के
अन्तः पुर में प्रविष्ट होना, विराट राज के
सन्मुख भीम का जीमूत मल्लका वध करना ६८७—७८२

कीचकवधपर्व

कीचक का द्रौपदी को देख कर उस पर आसक्त होना,
रानी सुदेष्णा से षड़यन्त्र करके द्रौपदी
को सुरा लेने घर पर बुलाना, द्रौपदी पर कीचक का आक्रमण,
द्रौपदी का राजसभा में भागकर जाना,
कीचक का राजा विराट और युधिष्ठिर, भीम के देखते २
द्रौपदी को गिरा कर लात मारना
द्रौपदी का रात को भीम के पास जाकर कीचक वध के
[illegible]ीम को प्रेरित करना, नृत्यशाला में कीचक वध,
उपकीचकों द्वारा द्रौपदी के जलाने का उद्योग, भीम द्वारा
श्मशान में एक सौ पांच कीचकों का वध, ७८३-८९५

गोहरणपर्व

गुप्तचरों द्वारा पाण्डवों का पता न चलने का कथन करना,
इनसे ही कीचक की मृत्यु के समाचार पाना,
त्रिगर्ताधीश्वर, सुशर्मा का कौरवों से मन्त्रणा करके
विराटराज की गोहरण करने को विराट पर चढ़ाई
करना, सुशर्मा विजय, विराट का बन्धन, पाण्डवों द्वारा
विराट को छुड़ा लेना और सुशर्मा को
पकड़ कर भी क्षमा कर देना। ८९६-९६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत

वनपर्व

[अध्याय २३२ से आरम्भ]

छटा भाग

अथ द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्व

दो सौ बत्तीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

उपासीनेषु विप्रेषु पाण्डवेषु महात्मसु।
द्रौपदी सत्यभामा च विविशाते तदा समम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले----हे राजन्! महात्मा पाण्डव और ब्राह्मणों के बैठे रहने के समय वहां द्रौपदी और सत्यभामा ने साथ २ प्रवेश किया ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहास्यमाने सुप्रीते सुखं तत्र निषीदतुः।
चिरस्य दृष्ट्वा राजेन्द्र तेऽन्योऽन्यस्य प्रियंवदे ॥२॥
कथयामासतुश्चित्राः कथाः कुरुयदूत्थिताः।

हे राजेन्द्र ! इन दोनों प्रियम्वदाओं का एक दूसरी से बहुत दिन में मिलना हुआ था। ये दोनों परस्पर हंसती जाती थी और बड़ी प्रसन्न थीं। इन्होंने कौरव और यादवों के सम्बन्धमें अद्भुत कथा आरम्भ की ॥२॥

अथाब्रवीत् सत्यभामा कृष्णस्य महिषी प्रिया ॥३॥
सात्राजिती याज्ञसेनीं रहसीदं सुमध्यमा।

श्रीकृष्ण की प्रिय रानी, सत्राजित की पुत्री, सुन्दरी सत्यभामाने यज्ञसेन की पुत्री द्रौपदी से एकान्त में यह वचन कहा ॥३॥

केन द्रौपदि वृत्तेन पाण्डवानधितिष्ठसि ॥४॥
लोकपालोपमान् वीरान् यूनः परमसंहतान्।

हे द्रौपदी ! तुम लोकपालों के सदृश, वीर, अत्यन्त दृढ़ अङ्ग-वाले, युवा पाण्डवों से कैसे व्यवहार करती हो ॥४॥

कथञ्च वशगास्तुभ्यं न कुप्यन्ति च ते शुभे ॥५॥
तव वश्या हि सततं पाण्डवाः प्रियदर्शने।
मुखप्रेक्षाश्च ते सर्वे तत्त्वमेतद् ब्रवीहि मे ॥६॥

हे शुभे ! ये पाण्डव तुम्हारे वश में कैसे हो रहे हैं। और कभी कुपित नहीं होते हैं। हे सुन्दरी ! मैं तो इनको सदा तुम्हारे अनुकूल ही देखती हूं। ये सारे तुम्हारे मुख की ओर देखते रहते हैं, इसका तत्व बताओ ॥५-६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतचर्य्या तपो वास्ति स्नानमन्त्रौषधानि वा ।
विद्यावीर्य्यं मूलवीर्य्यं जपहोमागदास्तथा ॥७॥
ममाद्याचक्ष्व पाञ्चालि यशस्यं भगदैवतम् ।
येन कृष्णो भवेन्नित्यं मम कृष्णो वशानुगः ॥८॥
एवमुक्त्वा सत्यभामा विरराम यशस्विनी ।
पतिव्रता महाभागा द्रौपदी प्रत्युवाच ताम् ॥९॥

हे पाञ्चालि ! इसके लिए कोई व्रत, तप, तीर्थ-स्नान, वशी-करण मन्त्र, जड़ी-बूंटी, विद्या (तन्त्र) शृङ्गार, जप, होम, अञ्जन, यश और सौभाग्य-वर्धक देवता आदि हो तो बताओ, जिससे श्रीकृष्ण मेरे वश में रह सकें। यशस्विनी सत्यभामा इतना कह कर चुप हो गई और अब महाभागा द्रौपदी उससे कहने लगी ॥

असत्स्त्रीणां समाचारं सत्ये मामनुपृच्छसि ।
असदाचरिते मार्गे कथं स्यादनुकीर्त्तनम् ॥१०॥

हे सत्यभामा ! तुम तो दुष्ट स्त्रियों के व्यवहार का मुझ से प्रश्न कर रही हो। मैं दुष्ट स्त्रियों के व्यवहार में लाए हुए मार्ग का कैसे कथन कर सकती हूं ॥१०॥

अनुप्रश्नः संशयो वा नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
तथाह्युपेता बुद्ध्या त्वं कृष्णस्य महिषी प्रिया॥११॥
यदैव भर्त्ता जानीयान्मन्त्रमूलपरां स्त्रियम् ।
उद्विजेत तदैवास्याः सर्पाद्वेश्मगतादिव ॥१२॥

हे सुन्दरी ! इस तरह का प्रश्न या संशय तुमको शोभा नहीं देता है। तुम कृष्ण की प्रिय महिषी होकर भी ऐसी बुद्धि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्त हो। जब पति को यह पता लगे, कि तेरी स्त्री तुझे वश में करने को मन्त्र तन्त्र कर रही है, तो घर में घुसे हुए सर्प के के सदृश उस से पति घबरा उठता है ॥१२॥

उद्विग्नस्य कुतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।
न जातु वशगो भर्त्ता स्त्रियाः स्यान्मन्त्रकर्मणा ॥१३॥

घबराये हुए पति की शान्ति नष्ट होजाती है और अशान्त को सुख नहीं रह जाता, इसलिए मन्त्र तन्त्रों से पति वश में नहीं हुआ करते ॥१३॥

अमित्रप्रहितांश्चापि गदान् परमदारुणान् ।
मूलप्रचारैर्हि विषं प्रयच्छन्ति जिघांसवः ॥१४॥

इस तरह पति, शत्रुओं द्वारा परम दारुण रोगों का शिकार हो जाता है। मारने की इच्छा वाले पति के शत्रु, इन मन्त्र प्रचारकों के द्वारा विष दिलवा देते हैं ॥१४॥

जिह्वया यानि पुरुषस्त्वचा वाप्युपसेवते ।
तत्र चूर्णानि दत्तानि हन्युः क्षिप्रमसंशयम् ॥१५॥

पुरुष, जिह्वा, और त्वचा से व्यवहार में लाने योग्य रस या स्पर्श के जिन पदार्थों का सेवन करता है, इन जिह्वा या त्वचा में किसी चूर्ण का प्रयोग करके ये धूर्त, पति को ही मार देते हैं—इस में सन्देह नहीं है ॥१५॥

जलोदरसमायुक्ताः श्वित्रिणः पलितास्तथा ।
अपुमांसः कृताः स्त्रीभिर्जडान्धबधिरास्तथा ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन मूर्ख, स्त्रियों ने पतियों के वश में करने को ऐसे दुष्प्रयोग कर डाले, जिनसे अनेक पति जलोदर तथा श्वेतकुष्ठ से युक्त असमय में वृद्ध और नपुंसक, पागल, अन्धे और बहरे होगये।

पापानुगास्तु पापास्ताः पतीनुपसृजन्त्युत ।
न जातु विप्रियं भर्त्तुः स्त्रिया कार्य्यं कथञ्चन ॥१७॥

पापपरायण ये पापिनी, पतियों को छोड़ तक देती हैं। स्त्रियों को अपने पति का कभी अप्रिय नहीं करना चाहिये ॥१७॥

वर्त्ताम्यहन्तु यां वृत्तिं पाण्डवेषु महात्मसु ।
तां सर्वां शृणु मे सत्यां सत्यभामे यशस्विनि ॥१८॥

हे यशस्विनी ! सत्यभामे ! मैं महात्मा पाण्डवों के साथ जो व्यवहार करती रहती हूं, उसे तुमको सत्य २ बताती हूं, तुम ध्यान से सुनो ॥१८॥

अहङ्कारं विहायाहं कामक्रोधौ च सर्वदा ।
सदारान् पाण्डवान्नित्यं प्रयतोपचराम्यहम् ॥१९॥

मैं अहङ्कार, काम क्रोध को सदा छोड़कर बड़ी सावधानी से भार्याओं सहित पाण्डवों की सेवा करती रहती हूं ॥१९॥

प्रणयं प्रतिसंहृत्य निधायात्मानमात्मनि ।
शुश्रूषुर्निरभिमाना पतीनाञ्चित्तचारिणी ॥२०॥

मैं ईर्ष्या को छोड़ कर तथा अपने चित्त को वश में करके निरभिमान होकर पतियों की इच्छा के अनुसार सदा सेवा करती रहती हूं ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्व्याहृताच्छङ्कमाना दुःस्थिताद् दुरवेक्षितात् ।
दुरासिताद् दुर्व्रजितादिङ्गिताध्यासितादपि ॥३१॥

मैं कटुवचन, बुरी तरह से खड़े होने, देखने, बैठने में बड़ी सावधान रहती हूं। मैं बुरे संकेत के कटाक्ष या पापाचरणों से बिल्कुल शंकित रहती हूं॥२१॥

सूर्य्यवैश्वानरसमान् सोमकल्पान्महारथान् ।
सेवे चक्षुर्हणः पार्थानुग्रवीर्य्यप्रतापिनः ॥२२॥

मैं सूर्य और अग्नि के तुल्य तेजस्वी, चन्द्रमा के सदृश कान्तिमान्, देखते ही शत्रुओं के घातक, उग्र शक्ति और प्रताप वाले, महारथी पाण्डवों की सेवामें सब तरह से तय्यार रहती हूं॥२२॥

देवो मनुष्यो गन्धर्वो युवा चापि स्वलंकृतः ।
द्रव्यवानभिरूपो वा न मेऽन्यः पुरुषो मतः॥२३॥

देव, मनुष्य, गन्धर्व, भूषणों से विभूषित, तरुण, धनवान् तथा कैसा ही सुन्दर पुरुष क्यों न हो, मैं किसी अन्य को पुरुष समझती ही नहीं हूं॥२३॥

नाभुक्तवति नास्नाते नासंविष्टे च भर्त्तरि ।
न संविशामि नाश्नामि सदा कर्मकरेष्वपि ॥२४॥

मैं अपने पति के भोजन, स्नान, शयन से पूर्व न तो भोजन करती हूँ और न सोती हूं। इस तरह सेवकों से पूर्व भी न तो खाती हूं और न सोती हूं॥२४॥

क्षेत्राद्वनाद्वा ग्रामाद्वा भर्त्तारं गृहमागतम् ।
अभ्युत्थायाभिनन्दामि आसनेनोदकेन च ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं खेत, वन, और ग्राम आदि से घूमकर आये हुए भर्ता को अभ्युत्थान, आसन तथा जल दान से सन्तुष्ट करती रहती हू ॥

प्रमृष्टभाण्डा मिष्टान्ना काले भोजनदायिनी ।
संयता गुप्तधान्या च सुसंमृष्टनिवेशना ॥२६॥

सारे बर्तनों को मांज धोकर साफ रखती हूं और समय पर स्वादिष्ट भोजन बना कर खिला देती हूं । मैं नियमशील रह कर धान्य की रक्षा और घर की सफाई रखती हूं ॥२६॥

अतिरस्कृतसम्भाषा दुःस्त्रियो नानुसेवती ।
अनुकूलवती नित्यं भवाम्यनलसा सदा ॥२७॥

मैं कभी पति से तिरस्कार करने वाले वचन नहीं बोलती हूं और न दुष्ट स्त्रियों के सहवास में बैठती हूं । मैं तो सदा पति के अनुकूल रह कर आलस्य का परित्याग किये रहती हूं ॥२७॥

अनर्म चापि हसितं द्वारि स्थानमभीक्ष्णशः ।
अवस्करे चिरं स्थानं निष्कुटेषु च वर्ज्जये ॥२८॥

परिहास के बिना न तो कभी हंसती हूं और न कभी द्वार पर बैठती हूं, न किसी गुप्त स्थान तथा बाग बगीचों में कभी जाती हूं

अतिहासातिरोषौ च क्रोधस्थानञ्च वर्ज्जये ।
निरताहं सदा सत्ये भर्त्तॄणामुपसेवने ॥२९॥
सर्वथा भर्तृरहितं न ममेष्टं कथञ्चन ।

मैं अत्यन्त उपहास और क्रोध नहीं करती हूं तथा क्रोधजन्य लड़ाई झगड़ों में नहीं जाती हूं । मैं तो सदा सचाई में तत्पर रह कर भर्ताओं की सेवा करती रहती हूं । भर्ता से रहित, कोई भी स्थान मुझे प्रिय नहीं लगता है ॥२९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदा प्रवसते भर्त्ता कुटुम्बार्थेन केनचित् ॥३०॥
सुमनोवर्णकापेता भवामि व्रतचारिणी ।

किसी कुटुम्ब के कार्य से भर्ता, जब बाहर चला जाता है, तब मैं पुष्पमाला और उबटन लेप आदि का परित्याग कर देती हूं और व्रत करने लगती हूं ॥३०॥

यच्च भर्त्ता न पिबति यच्च भर्त्ता न सेवते ॥३१॥
यच्च नाश्नाति मे भर्त्ता सर्वं तद्वर्जयाम्यहम् ।

जिसको भर्ता नहीं पीता और जिसको नहीं चाहता है, मैं भी उसे न तो खाती हूं और न पीती हूं। इस तरह की सब बातों का स्वयं परित्याग कर देती हूं ॥३१॥

यथोपदेशं नियता वर्त्तमाना वराङ्गने ॥३२॥
स्वलंकृता सुप्रयता भर्त्तुः प्रियहिते रता ।

हे वराङ्गने ! मैं अपने पति के उपदेश में बड़ी दृढ़ता से स्थित रहती हूं और अलङ्कार धारण करके बड़ी सावधानी से भर्ता के प्रिय में लगी रहती हूं ॥३२॥

ये च धर्मा कुटुम्बेषु श्वश्र्वा मे कथिताः पुरा ॥३३॥
भिक्षा बलिः श्राद्धमिति स्थालीपाकाश्च पर्वसु ।
मान्यानां मानसत्कारा ये चान्ये विदिता मम ॥३४॥
तान् सर्वाननुवर्त्तामि दिवारात्रमतन्द्रिता ।

मेरी सास ने जो कुटुम्ब के कुलक्रमागत, भिक्षा, बलि, श्राद्ध, पर्व पर स्थालीपाक, मान्यों की पूजा सत्कार आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म बताए तथा अन्य धर्म जिस किसी तरह मुझे ज्ञात हो गए, मैं उनका रात-दिन सावधान रह कर पालन करती रहती हूं।

विनयान्नियमांश्चैव सदा सर्वात्मनाश्रिता ॥३५॥
मृदून् सतः सत्यशीलान् सत्यधर्मानुपालिनः।
आशीविषानिव क्रुद्धान् पतीन् परिचराम्यहम् ॥३६॥

हे सत्ये ! मैं विनय युक्त रह कर सदा सब तरह से नियमों का पालन करती हूं तथा कोमलप्रकृति, सज्जन, सत्यशील, सत्यधर्म के पालन करने वाले अपने पतियों की सेवा करती हूं और इनके क्रुद्ध होने पर इनको कुपित सर्प-सा समझती हूं।

पत्याश्रयो हि मे धर्मो मतः स्त्रीणां सनातनः।
स देवः सा गतिर्नान्या तस्य का विप्रियञ्चरेत्॥३७॥

हे महाभागे। स्त्रियों का सनातन धर्म, पति के ही आश्रित है और उनका पति ही देवता और पति ही गति है। किसी भी स्त्री को अपने पति का अहित नहीं करना चाहिए ॥३६॥

अहं पतीन्नातिशये नात्यश्ने नातिभूषये।
नापि परिवदे श्वश्रूं सर्वदा परियन्त्रिता ॥३८॥

मैं न तो कभी पतियोंकी आज्ञाका उलङ्घन करतीहूं न अधिक खाती, न अधिक शृङ्गार करती और न कभी अपनी सास की निन्दा करती हूं, किन्तु सदा नियमों में जकड़ी रहती हूं ॥३८॥

अवधानेन सुभगे नित्योत्थिततयैव च।
भर्त्तारो वशगा मह्यं गुरुशश्रूषयैव च ॥३९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे सुभगे। मेरे अप्रमाद, नित्य की सावधानी और पूज्यों की पूजा करने से ही मेरे पति मेरे वश में हैं ॥३९॥

नित्यमार्य्यामहं कुन्तीं वीरसूं सत्यवादिनीम् ।
स्वयं परिचराम्येतां पानाच्छादनभोजनैः ॥४०॥

वीर सन्तान उत्पन्न करने वाली, सत्यवादिनी आर्या कुन्ती की पान आच्छादन [वस्त्र] और भोजनों से मैं स्वयं सेवा करती हूं ॥४०॥

नैतामतिशये जातु वस्त्रभूषणभोजनैः ।
नापि परिवदे चाहं तां पृथां पृथिवीसमाम् ॥४१॥

मैं, कभी भी वस्त्र, भूषण और भोजन प्रदान करने में देर नहीं करती और न कभी पृथिवी के सदृश पूज्य कुन्ती की कुछ समालोचना करती हूं ॥४१॥

अष्टावग्रे ब्राह्मणानां सहस्राणि स्म नित्यदा ।
भुञ्जते रुक्मपात्रींषु युधिष्ठिरनिवेशने ॥४२॥
अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातका गृहमेधिनः ।
त्रिंशद्दासीक एकैको यान् बिभर्त्ति युधिष्ठिरः॥४३॥

मेरे पति युधिष्ठिर के घर पर नित्य सुवर्ण के पात्रों में आठ सहस्र ब्राह्मण भोजन करते थे। इसी तरह राजा युधिष्ठिर, अट्ठासी हजार गृहस्थी स्नातक और तीस हजार दास-दासी गणों का पृथक् २ पालन पोषण करता था ॥४३॥

दशान्यानि सहस्राणि येषामन्नं सुसंस्कृतम् ।
ह्रियते रुक्मपात्रीभिर्यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥४४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह नृप-श्रेष्ठ, दश हजार नैष्ठिक ब्रह्मचारी और सन्यासियों को सुवर्ण के पात्रों में उत्तम २ अन्न प्रदान करता था ॥४४॥

तान् सर्वानग्रहारेण ब्राह्मणान् वेदवादिनः ।
यथार्हं पूजयामि स्म पानाच्छादनभोजनैः ॥४५॥

मैं भी वैश्वदेव के अन्त में प्रथम देने योग्य अन्न से इन वेदपाठी ब्राह्मणों की खान-पान और भोजन, वस्त्र से यथा-योग्य पूजा करती रहती थी ॥४५॥

शतं दासीसहस्राणि कौन्तेयस्य महात्मनः ।
कम्बुकेयूरधारिण्यो निष्ककण्ठ्यः स्वलङ्कृताः ॥४६॥
महार्हमाल्याभरणाः सुवर्णाश्चन्दनोक्षिताः ।
मणीन् हेम च बिभ्रत्यो नृत्यगीतविशारदाः ॥४७॥
तासां नाम च रूपञ्च भोजनाच्छादनानि च ।
सर्वासामेव वेदाहं कर्म्म चैव कृताकृतम् ॥४८॥

इन महात्मा कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर के राज-भवन में कङ्कण और कुण्डल धारण करने वाली, गल में हार पहने हुए, विभूषित, अमूल्य माला और अलङ्कार धारण किये हुए, सुन्दर वर्ण वाली, चन्दन से भीगी हुई, सुवर्ण में जड़ी हुई मणि धारण किये हुए, नृत्य गीत में कुशल, एक लाख दासी हैं। मैं इन सब के नाम, रूप, भोजन-वस्त्र की व्यवस्था, किये तथा और नहीं किये हुए सारे कामों को जानती हूं ॥४६-४८॥

शतं दासीसहस्राणि कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ।
पात्रीहस्ता दिवारात्रमतिथीन् भोजयन्त्युत ॥४९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिमान् कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर के भवन में एक लाख दासी, पात्रों को हाथ में ले कर दिन-रात अतिथियों को भोजन कराती रहती थीं ॥४९॥

शतमश्वसहस्राणि दश नागायुतानि च ।
युधिष्ठिरस्यानुयात्रमिन्द्रप्रस्थनिवासिनः ॥५०॥

इन्द्रप्रस्थ के निवासी सम्राट् युधिष्ठिर की यात्रा के समय उनके पीछे एक लाख अश्व और एक लाख हाथी चलते थे ॥५०॥

एतदासीत्तदा राज्ञो यन्महीं पर्य्यपालयत् ।
येषां सङ्ख्यां विधिञ्चैव प्रदिशामि शृणोमि च ॥५१

ये सब बातें राजा के भवन में उस समय थी, जब यह पृथिवी का शासन करता था । मैं इनकी संख्या और कार्य पर नियुक्ति करती तथा उनके कामों को सुनती थी ॥५१॥

अन्तःपुराणां सर्वेषां भृत्यानाञ्चैव सर्वशः ।
आगोपालाविपालेभ्यः सर्वं वेद कृताकृतम् ॥५२॥

रनवास के सारे सेवक, गौ तथा भेड़ बकरियोंके पालकों तक के काम की मैं पड़ताल कर लेती थी ॥५२॥

सर्वं राज्ञः समुदयमायञ्च व्ययमेव च ।
एकाहं वेद्मि कल्याणि पाण्डवानां यशस्विनि ॥५३॥

हे कल्याणि ! यशस्विनि ! मैं राजा युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवों की सारी समुन्नति और आय-व्यय [आमद-खर्च] को अकेली देख भाल लेती थी ॥५३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मयि सर्वं समासज्य कुटुम्बं भरतर्षभाः ।
उपासनरताः सर्वे घटयन्ति वरानने ॥५४॥

हे वरानने ! ये भरतवंश श्रेष्ठ, सारे पाण्डव, मुझ पर ही सारे परिवार का भार छोड़ कर भजन पाठ पूजन में संलग्न हो जाते हैं ॥५४॥

तमहं भारमासक्तमनाधृष्यं दुरात्मभिः ।
सुखं सर्वं परित्यज्य रात्र्यहानि घटामि वै ॥५५॥

दुरात्माओं के धारण करने के अयोग्य, आये हुए, इस भार को सारे सुख छोड़ कर मैं रात-दिन ढोती रहती हूं ॥५५॥

अधृष्यं वरुणस्यैव निधिपूर्णमिवोदधिम् ।
एकाहं वेद्मि कोषं वै पतीनां धर्मचारिणाम् ॥५६॥

इन धर्म के आचरण करने वाले, पतियों के, वरुण को भी असह्य, समुद्र की भांति धन से भरे हुए कोष को मैं अकेली जानती हूं ॥५६॥

अनिशायां निशायाश्च सहायाः क्षुत्पिपासयोः ।
आराधयन्त्याः कौरव्यांस्तुल्या रात्रिरहश्च मे ॥५७

रात-दिन भूख-प्यासको सह लेने वाली, मुझ, द्रौपदी के इन पाण्डवों की सेवा में रात और दिन समान रूप से ही व्यतीत होते हैं ॥५७॥

प्रथमं प्रतिबुध्यामि चरमं संविशामि च ।
नित्यकालमहं सत्ये एतत् संवननं मम ॥५८॥

मैं प्रथम जागती हूं और नित्य पीछे सोती हूं । हे सत्ये ! मेरा यही वशीकरण प्रयोग है ॥५८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतज्जानाम्यहं कर्त्तुं भर्तृसंवननं महत् ।
असत्स्त्रीणां समाचारन्नाहं कुर्य्यां न कामये ॥५९॥

हे यशस्विनि ! मैं तो भर्ता का यही सबसे बड़ा वशीकरण जानती हूं । दुष्ट स्त्रियों का व्यवहार न तो मैं करती हूं और न करना चाहती हूं ॥५९॥

वैशम्पायन उवाच—

तच्छ्रुत्वा धर्मसहितं व्याहृतं कृष्णया तदा ।
उवाच सत्या सत्कृत्य पाञ्चालीं धर्मचारिणीम् ॥६०॥

वैशम्पायन बोले--हे राजन् ! द्रौपदी धर्म से परिपूर्ण यह कथन सुनकर धर्मचारिणी द्रौपदी का सत्कार करके सत्यभामा कहने लगी ॥६०॥

अभिपन्नास्मि पाञ्चालि याज्ञसेनि क्षमस्व मे ।
कामकारः सखीनां हि सोपहासं प्रभाषितम् ॥६०॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीसत्यभामा-
संवादपर्वणि द्रौपदीनिजकार्य्यकथने
द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३२॥

हे यज्ञसेन की पुत्री ! पाञ्चालि, मैं तुम्हारी प्रार्थना करती हूं, तुम मुझे क्षमा करो । सखियों का उपहास पूर्वक वचन भी, सखियों की कामना (सुख) का करने वाला होता है ॥६१॥

इति श्री महाभारत वनपर्वान्तर्गत द्रौपदी सत्यभामा
पर्व में द्रौपदी का अपने कार्य के कथन का दो सौ
बत्तीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ तेतीसवां अध्याय

द्रौपद्युवाच—

इमन्तु ते मार्गमपेतमोहं वक्ष्यामि चित्तग्रहणाय भर्त्तुः ।
अस्मिन्यथावत्सखिवर्त्तमानाभर्त्तारमाच्छेत्स्यसिकामिनीभ्यः

द्रौपदी बोली--हे सखि ! मैं तुमको अज्ञानरहित, भर्ता का चित्त ग्रहण का मार्ग बताती हूं । इस मार्ग में ठीक २ चलती हुई, तुम अपने पति को अन्य कामिनियों से सुरक्षित रख सकोगी ॥

नैतादृशं दैवतमस्ति सत्ये सर्वेषु लोकेषु सदेवकेषु ।
यथापतिस्तुष्यतिसर्वकामालभ्याःप्रसादात्कुपितश्चहन्यात् ॥

हे सत्ये ! देवलोक सहित सारे लोकों में पति के सदृश कोई देवता नहीं है । ज्यों ही पति सन्तुष्ट होजाता है, त्यों ही सब कामनाएं मिल जाती हैं और यदि पति रुष्ट होगया, तो भार्या के जीवन का नाश कर देता है ॥२॥

तस्माद्धपत्यं विविधाश्च भोगाः शय्यासनान्युत्तमदर्शनानि
वस्त्राणिमाल्यानितथैवगन्धाःस्वर्गश्चलोकोविपुलाचकीर्त्तिः ॥

पति से ही सन्तान, अनेक भोग; शय्या आसन, अनेक दृश्यों के दर्शन, वस्त्र, माला, गन्ध, स्वर्गलोक, विपुलकीर्ति, प्राप्त होती है ॥३॥

सुखं सुखेनेह न जातु लभ्यं दुःखेन साध्वी लभते सुखानि ।
सा कृष्णमाराधय सौहृदेन प्रेम्णा च नित्यं प्रतिकर्मणा च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे साध्वि ! सुख भोग से आगे को सुख का मार्ग नहीं खुलता, किन्तु दुःख भोग से ही सुख प्राप्त होता है। अब तुम हृदय की शुद्धता प्रेम और सेवा से श्रीकृष्ण की अराधना करो ॥४॥

तथाशनैश्चारुभिरग्र्यमाल्यैर्दाक्षिण्ययोगैर्विविधैश्च गन्धैः ।
अस्याःप्रियोऽस्मीतियथाविदित्वात्वामेवसंश्लिष्यतितद्विधत्स्व

तुम उत्तम २ भोजन, माला, गन्ध आदि उनको प्रेम-पूर्वक अर्पण करती रहो। सब भांति से अपनी चतुराई का परिचय दो, तुम यह दिखलादो, कि मैं इसके लिए अत्यन्त ही प्रिय हूं। जब तुम ऐसा करने लगोगी, तो वह तुम में आसक्त रहेंगे ॥५॥

श्रुत्वा स्वरं द्वारगतस्य भर्त्तुः प्रत्युत्थिता तिष्ठ गृहस्य मध्ये ।
दृष्ट्वा प्रविष्टं त्वरितासनेन पाद्येन चैनं प्रतिपूजयस्व ॥५

पति की द्वार पर ही आवाज़ सुनकर तुम घर के भीतर खड़ी हो जाओ। जब पति घर के भीतर आजावे तो झटपट उसकी आसन पाद्य से पूजा करो ॥६॥

सम्प्रेषितायामथ चैव दास्यामुत्थाय सर्वं स्वयमेव कार्य्यम् ।
जानातु कृष्णस्तव भावमेतं सर्वात्मना मां भजतीति सत्ये ॥

यदि श्रीकृष्ण, किसी कार्य के लिए दासी को भेजें, तो स्वयं उठकर उस कार्य को पूरा करदो। हे सत्ये ! तुम ऐसा व्यवहार करो, जिससे श्रीकृष्ण यह जान ले, कि यह तो सब तरह से मेरी दासी है ॥७॥

त्वत्सन्निधौ यत्कथयेत् पतिस्ते यद्यप्यगुह्यं परिरक्षितव्यम् ।
काचित् सपत्नी तव वासुदेवं प्रत्यादिशेत्तेन भवेद्विरागः ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि पति, तुमसे कोई बात कहे, तो उसके गोपनीय न होने पर भी तुम उसको किसी से न कहो। यदि तुम्हारी कोई सपत्नी इस बात को श्रीकृष्ण को सुना देगी, तो इससे उनके मन में तुम्हारी ओर से विरक्ति हो जावेगी ॥८॥

प्रियांश्च रक्तांश्च हितांश्च भर्त्तुस्तान् भोजयेथा विविधैरुपायैः
द्वेष्यैरुपेक्षैरहितैश्च तस्य भिद्यस्व नित्यं कुहकोद्यतैश्च ॥९॥

जो प्रिय, अभीष्ट, हितकारी पदार्थ हो उनको किसी भी उपाय से पति को खिलाती रहो और जिन पदार्थों में उनका द्वेष, अरुचि हो तथा जो अहितकारी हो, उनको प्रमाद छोड़कर पति से अलग करती रहो ॥९॥

मदं प्रमादं पुरुषेषु हित्वा संयच्छ भावं प्रतिगृह्य मौनम् ।
प्रद्युम्नसाम्बावपि ते कुमारौ नोपासितव्यौ रहिते कदाचित्॥

अन्य पुरुष के साथ मद और प्रमादकारी व्यवहारों को छोड़ कर चुपचाप अपने हृदय को पति को सौंप दो। अपने ही पुत्र, प्रद्युम्न और साम्ब के भी साथ एकान्त में कभी बातचीत न करो ॥१०॥

महाकुलीनाभिरपापिकाभिः स्त्रीभिः सतीभिस्तव सख्यमस्तु
चण्डाश्च शौण्डाश्च महाशनाश्च चौराश्च दुष्टाश्चपलाश्च वर्ज्याः

महाकुलीन, पापहीन, सती स्त्रियों से ही तुम्हारी मित्रता होनी चाहिए। जो क्रोधी, धूर्त, अधिक भोजी दुष्ट और चञ्चल स्त्रियां हैं, उनका प्रयत्न से परित्याग करो ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतद्यशस्यं भगदैवतञ्च स्वर्ग्यं तथा शत्रुनिबर्हणञ्च ।
महार्हमाल्याभरणाङ्गरागा भर्त्तारमाराधय पुण्यगन्धा ॥१२

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीसत्यभामा-
संवादपर्वणि द्रौपदीकर्त्तव्यकथने त्रयस्त्रिंशदधि-
कद्विशततमोऽध्यायः ॥२३३॥

तुम बड़ी २ उत्तम माला, भूषण, अङ्गराग और गन्ध लेकर भर्ता की अराधना करो। बस ! यही शत्रुनाशक स्वर्गदायी, यशकारी सौभाग्य का देवता हैं ॥१२॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत दौपदी-सत्यभामा-सम्वाद पर्व में द्रौपदी कथन का दो सौ तेंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ चौंतीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

मार्कण्डेयादिभिर्विप्रैः पाण्डवैश्च महात्मभिः ।
कथाभिरनुकूलाभिः सह स्थित्वा जनार्दनः ॥१॥
ततस्तैः संविदं कृत्वा यथावन्मधुसूदनः ।
आरुरुक्षूरथं सत्यामाह्वयामास केशवः ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! मार्कण्डेय आदि महर्षि और महात्मा पाण्डवों के साथ बैठ कर तथा समयोपयोगी बात-चीत करके मधु-दैत्य-नाशक, श्रीकृष्ण, रथ में चढ़ने की इच्छा से सत्यभामा को बुलाने लगे ॥१-२॥

सत्यभामा ततस्तत्र स्वजित्वा द्रुपदात्मजाम् ।
उवाच वचनं हृद्यं यथाभावं समाहितम् ॥३॥

अब सत्यभामा, द्रौपदी से आलिङ्गन करके हृदय से प्रेमयुक्त बड़े सधे हुए वचन कहने लगी ॥३॥

कृष्णे माभूत् तवोत्कण्ठा मा व्यथा मा प्रजागरः ।
भर्तृभिर्देवसङ्काशैर्जितां प्राप्स्यसि मेदिनीम् ॥४॥

हे कृष्णे ! तुमको हमारे मिलने की उत्कण्ठा बिछुड़ने की व्यथा न हो और न हमारी याद में तुम जाग कर रात व्यतीत करो। तुम कुछ दिन में देवतुल्य, अपने पतियों द्वारा जीती हुई, पृथिवी को प्राप्त करोगी ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न ह्येवं शीलसम्पन्ना नैवं पूजितलक्षणाः ।
प्राप्नुवन्ति चिरं क्लेशं यथा त्वमसितेक्षणे ॥५॥

हे सुन्दर काले नेत्रों वाली द्रौपदी ! तुम जैसी शीलसम्पन्न, शुभ लक्षणों से युक्त, स्त्री, चिरकाल तक क्लेश नहीं उठा सकती है। मैंने तो इन लक्षणों से युक्त केवल तुमको ही इतने दिन तक क्लेश में निमग्न देखा है ॥५॥

अवश्यञ्च त्वया भूमिरियं निहतकण्टका ।
भर्तृभिः सह भोक्तव्या निर्द्वन्द्वेति श्रुतं मया ॥६॥

हे द्रौपदी ! मैंने तो यह सुन रखा है, कि तुम शत्रुरहित, क्लेश-शून्य, इस पृथिवी का अपने पतियों के साथ सुख से भोग करोगी ॥६॥

धार्त्तराष्ट्रवधं कृत्वा वैराणि प्रतियात्य च ।
युधिष्ठिरस्थां पृथिवीं द्रक्ष्यसे द्रुपदात्मजे ॥७॥

हे द्रुपदात्मजे ! धृतराष्ट्रके पुत्र, दुर्योधनादिको मार कर और अपना वैर निकाल कर तुम राजा युधिष्ठिर के अधीन पृथिवी को देखोगी ॥७॥

यास्ताः प्रव्रजमानां त्वां प्राहसन् दर्पमोहिताः ।
ताः क्षिप्रं हतसङ्कल्पाः द्रक्ष्यसि त्वं कुरुस्त्रियः ॥८॥

वन में निर्वासित हुई तुमको देखकर मदोन्मत्त जिन कुरु स्त्रियों ने तुम्हारा उपहास किया, अब इन का संकल्प नष्ट हो जावेगा--यह तुम स्वयं देख लोगी ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तव दुःखोपपन्नाया यैराचरितमप्रियम् ।
विद्धि संप्रस्थितान् सर्वांस्तान् कृष्णे यमसादनम् ॥९॥

हे कृष्णे ! दुःखों में व्याप्त तुम्हारा जिन मनुष्यों ने अहित किया है, तुम उन सब को यमराज के घर पहुंचा ही समझो ॥९॥

पुत्रस्ते प्रतिविन्ध्यश्च सुतसोमस्तथाविधः ।
श्रुतकर्मार्जुनिश्चैव शतानीकश्च नाकुलिः ॥१०॥
सहदेवाच्च यो जातः श्रुतसेनस्तवात्मजः ।
सर्वे कुशलिनो वीराः कृतास्त्राश्च सुतास्तव ॥११॥
अभिमन्युरिव प्रीता द्वारवत्यां रता भृशम् ।
त्वमिवैषां सुभद्रा च प्रीत्या सर्वात्मना स्थिता ॥१२॥

तेरा पुत्र, प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, अर्जुनपुत्र, श्रुतकर्मा, नकुल पुत्र शतानीक और सहदेव पुत्र श्रुतसेन, ये सारे पुत्र वीर, और अस्त्रविद्या में कुशल हैं। ये सब अभिमन्यु की तरह द्वारवती में प्रसन्नता से रह रहे हैं। तुम्हारी ही तरह सुभद्रा भी, इनके साथ बड़े प्रेम से व्यवहार करती है ॥१०—१२॥

प्रीयते तव निर्द्वन्द्वा तेभ्यश्च विगतज्वरा ।
दुःखिता तेन दुःखेन सुखेन सुखिता तथा ॥१३॥

वह सब क्लेशों को भूलकर तुमसे बड़ी प्रीति रखती है। उस का इन पुत्रों से क्लेश का नाश होता रहता है। यह तुम्हारे वनवास समय के दुःख से बड़ी दुःखी है और अपने सुख को सुख नहीं मानती है ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजेत् सर्वात्मना चैव प्रद्युम्नजननी तथा।
भानुप्रभृतिभिश्चैतान् विशिनष्टि च केशवः ॥१४॥

प्रद्युम्न की माता रुक्मिणी भी इनसे सब तरह प्रेम करती है। श्रीकृष्ण भी भानुप्रभृति अपने पुत्रों से भी इनको विशेष समझते हैं ॥१४॥

भोजनाच्छादने चैषां नित्यं मे श्वशुरः स्थितः।
रामप्रभृतयः सर्वे भजन्त्यन्धकवृष्णयः ॥१५॥
तुल्यो हि प्रणयस्तेषां प्रद्युम्नस्य च भाविनि।

इनके भोजन वस्त्र का प्रबन्ध मेरे श्वशुर वसुदेव करते हैं। बलराम आदि सारे वृष्णि अन्धक वीर, इनकी सहायता करते रहते हैं। हे भामिनि! उन सब भाई और प्रद्युम्न में बड़ा ही परस्पर प्रेम है ॥१५॥

एवमादि प्रियं सत्यं हृद्यमुक्त्वा मनोऽनुगम् ॥१६॥
गमनाय मनश्चक्रे वासुदेवरथं प्रति।

इस प्रकार प्रिय, सत्य, हृदय और मन को प्रिय लगने वाले वचन कहकर सत्यभामा ने श्रीकृष्ण के रथ की ओर गमन किया ॥१६॥

तां कृष्णां कृष्णमहिषी चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥१७॥
आरुरोह रथं शौरेः सत्यभामाथ भाविनी।

श्रीकृष्ण की प्रियपत्नी, सत्यभामा ने द्रौपदी की प्रदक्षिणा की और फिर इस सुन्दरी सत्यभामा ने रथ पर आरोहण किया ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मयित्वा तु यदुश्रेष्ठो द्रौपदीं परिसान्त्व्य च ।
उपावर्त्य ततः शीघ्रैर्हयैः प्रायात् पुरं स्वकम् ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीसत्यभामा
संवादपर्वणि सत्यभामाकृष्णगमने
चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३४॥
समाप्तश्च द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्व ॥

यदुवंश श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण कुछ मुस्कुरा कर और द्रौपदी को आश्वासन देकर तथा पाण्डवों से मिलकर शीघ्रगामी अश्वों के रथ से अपनी द्वारकापुरी को चल दिए ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत द्रौपदीसत्यभामापर्व में सत्यभामा और श्रीकृष्ण की यात्रा का दो सौ चौतीसवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर द्रौपदी सत्यभामा के सम्वाद का पर्व भी पूरा हो गया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ घोषयात्रापर्व

दो सौ पैंतीसवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

एवं वने वर्त्तमाना नराग्र्याः शीतोष्णवातातपकर्षिताङ्गाः।
सरस्तदासाद्य वनञ्च पुण्यं ततः परं किमकुर्वन्त पार्थाः ॥१

जनमेजय बोले---हे ब्रह्मन्! शीत, उष्ण, वायु, धूपके क्लेशों से कृश शरीर वाले नरश्रेष्ठ, पाण्डवों ने वनवास के समय में इस द्वैतवन और सरोवर पर क्या २ किया ॥१॥

वैशम्पायन उवाच—

सरस्तदासाद्य तु पाण्डुपुत्रा जनं समुत्सृज्य विधाय वेशम्।
वनानि रम्याण्यथ पर्वतांश्च नदीप्रदेशांश्च तदा विचेरुः ॥२

वैशम्पायन बोले---हे राजन्! द्वैतवन के सरोवर पर पहुंच कर पाण्डवों ने जनसमूह को छोड़ दिया। इन्होंने वहां अपना निवास-गृह बनाया और सुन्दर वन, पर्वत तथा नदी प्रदेशों में घूमना आरम्भ किया ॥२॥

तथा वने तान् वसतः प्रवीरान् स्वाध्यायवन्तश्च तपोधनाश्च
अभ्याययुर्वेदविदः पुराणास्तान् पूजयामासुरथो नराग्र्याः ॥

इस प्रकार वन में निवास करते हुए नरश्रेष्ठ पाण्डवों के पास स्वाध्यायशील, तपोधन, वेदपाठी वृद्ध २ ब्राह्मण, आते थे और ये नरश्रेष्ठ पांडव भी उनका यथोचित सत्कार करते थे ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः कदाचित् कुशलः कथासु विप्रोऽभ्यगच्छद्भुवि कौरवेयान्
स तैः समेत्याथ यदृच्छयैव वैचित्रवीर्य्यं नृपमभ्यगच्छत् ४

इसके अनन्तर कथा कहने में कुशल कोई ब्राह्मण, कौरवों के पास गया और यह वहां पहुंच कर सहज में ही विचित्रवीर्य के पुत्र, राजा धृतराष्ट्र के पास गया ॥४॥

अथोपविष्टः प्रतिसत्कृतश्च वृद्धेन राज्ञा कुरुसत्तमेन ।
प्रचोदितः स कथयाम्बभूव धर्मानिलेन्द्रप्रभवान् यमौ च ॥

जब यह ब्राह्मणश्रेष्ठ बैठ गया, तो कुरु-वंश-श्रेष्ठ, वृद्ध राजा धृतराष्ट्र ने इसका बड़ा सत्कार किया। जब धृतराष्ट्र ने पूछा-तो इसने युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव के समाचार सुनाए ॥५॥

कृशांश्च वातातपकर्षिताङ्गान् दुःखस्य चोग्रस्य मुखे प्रपन्नान्
ताश्चाप्यनाथामिव वीरनाथां कृष्णां परिक्लेशगुणेन युक्ताम् ॥।

ब्राह्मण ने वायु, धूप से कृश शरीर वाले, उग्र दुःख के मुख में पड़े हुए, पाण्डव तथा अनाथ की भांति क्लेश पाती हुई, वीर-वधू द्रौपदी की करुण कथा सुनाई ॥६॥

ततः कथास्तस्य निशम्य राजा वैचित्रवीर्य्यः कृपयाभितप्तः
वने तथा पार्थिवपुत्रपौत्रान् श्रुत्वा तथा दुःखनदीं प्रपन्नान् ॥

राजा धृतराष्ट्र, भी द्रौपदी की दुःख भरी कहानी और वन में राजा के पुत्र पौत्र, पाण्डवों को दुःख की नदी में पड़े हुए, सुन-कर करुणार्द्र हो गया ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोवाच दैन्याभिहतान्तरात्मा निःश्वासवातोपहतस्तदानीम्
वाचङ्कथञ्चित् स्थिरतामुपेत्य तत्सर्वमात्मप्रभवं विचिन्त्य ॥

इस सारे दुःख का कारण अपने को समझकर राजा धृतराष्ट्र बड़ा कातर हुआ। यह बार २ लम्बे निश्वास छोड़ने लगा और जैसे तैसे धैर्य बांधकर बोला ॥८॥

कथन्नु सत्यः शुचिरार्य्यवृत्तो ज्येष्ठः सुतानां मम धर्म्मराजः
अजातशत्रुः पृथिवीतले स्म शेते पुरा राङ्कवकूटशायी ॥९॥

हाय ? सत्यवादी, शुचि, सदाचारी, मेरे पुत्रों में श्रेष्ठ, अजातशत्रु, धर्मराज, आज भूमि में सोता है, जो कभी रंकु मृग के बालों के बने हुए नर्म २ विस्तरों पर सोता था ॥९॥

प्रबोध्यते मागधसूतपूर्गैर्नित्यं स्तुवद्भिः स्वयमिन्द्रकल्पः।
पतत्रिसंघैः स जघन्यरात्रे प्रबोध्यते नूनमिडातलस्थः ॥१०॥

इन्द्र के समान तेजस्वी, जिस को मागध, सूतगण, स्तुति गा २ कर जगाते थे। भूमि में सोते हुए उसी युधिष्ठिर को जघन्य (कम्बख्त) रात में पक्षिसमूह अपने कटुशब्दों से, उद्बुद्ध करते हैं ॥१०॥

कथन्नु वातातपकर्षिताङ्गो वृकोदरः कोपपरिप्लुताङ्गः।
शेते पृथिव्यामतथोचिताङ्गः कृष्णासमक्षं वसुधातलस्थः ॥

वायु, धूप से दुर्बल शरीर धारी, शीघ्र कुपित होजाने वाला, भूमि में सोने के अयोग्य, भीम भी, द्रौपदी के सम्मुख ही भूमि में पड़ा हुआ सोता रहता है ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथार्जुनः सुकुमारो मनस्वी वशे स्थितो धर्मसुतस्य राज्ञः ।
विदूयमानैरिव सर्वगात्रैर्ध्रुवं न शेते वसतीरमर्षात् ॥१२॥

इसी तरह सुकुमार, मनस्वी, धर्मराज के वशवर्ती, अर्जुन भी, अपने सारे पीड़ित अङ्गों से क्लेशित होकर, क्रोध से भरा हुआ अपने स्थान पर सोता भी नहीं है ॥१२॥

यमौ च कृष्णाञ्च युधिष्ठिरञ्च भीमञ्च दृष्ट्वा सुखविप्रयुक्तम्
विनिश्वसन् सर्प इवोग्रतेजा ध्रुवं न शेते वसतीरमर्षात् १३

नकुल, सहदेव, द्रौपदी, युधिष्ठिर और भीम को सुख हीन देखकर अत्यन्त तेजस्वी अर्जुन, सर्प के तुल्य श्वास लेता हुआ, क्रोध से अपने शयन स्थान में करवटें बदलता रहता है ॥१३॥

तथा यमौ चाप्यसुखौ सुखार्हौ समृद्धरूपावमरौ दिवीव ।
प्रजागरस्थौ ध्रुवमप्रशान्तौ धर्मेण सत्येन च वार्य्यमाणौ ॥

सुख के योग्य, सुख से रहित, देवों के सदृश रूपधारी, नकुल सहदेव, बड़े ही क्षुभित होकर जागते रहते हैं। इनको तो सत्य और धर्म ने जैसे तैसे रोक रखा है ॥१४॥

समीरणेनाथ समो बलेन समीरणस्यैव सुतो बलीयान् ।
स धर्मपाशेन सितोऽग्रजेन ध्रुवं विनिश्वस्य सहत्यमर्षम् १५

वायु के तुल्य बलशाली, वायु के बलवान पुत्र, भीम को धर्म-राज ने जैसे तैसे धर्म की डोरी में कस रखा है। यह नित्य साँस मार २ कर बड़ी कठिनाई से अपने क्रोध के रोकने की चेष्टा करता है ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स चापि भूमौ परिवर्त्तमानो वधं सुतानां मम काङ्क्षमाणः।
सत्येन धर्मेण च वार्य्यमाणः कालं प्रतीक्षत्यधिको रणेऽन्यैः

यह भीम भूमि में करवटें बदलता हुआ मेरे पुत्रों के वध के ही मनोरथ करता रहता है। अन्यों से रण की अधिक आकाँक्षा रखने वाला, सत्य और धर्म से रोका हुआ भीम, केवल युद्धके काल की प्रतीक्षा में हैं ॥१६॥

अजातशत्रौ तु जिते निकृत्या दुःशासनो यत्परुषाण्यवोचत्
तानि प्रविष्टानि वृकोदराङ्गं दहन्ति कक्षाग्निरिवेन्धनानि १७

छल से युधिष्ठिर को जीत कर दुःशासन ने जो कठोर वचन कहे थे, वे भीम के हृदय में पार हो गए हैं, जैसे प्रदीप्त अग्नि इन्धन को जलाती है वैसे ही वे भीम के अङ्ग को जला रहे हैं ॥१७॥

न पापकन्ध्यास्यति धर्मपुत्रो धनञ्जयश्चाप्यनुवर्त्स्यते तम्।
अरण्यवासेन विवर्द्धते तु भीमस्य कोपाग्निरिवानिलेन ॥

धर्मपुत्र युधिष्ठिर, कभी भी पाप का आचरण नहीं करता है और अर्जुन भी उसका अनुकरण करता रहता है। इस वनवास रूपी वायु से भीम की कोप की अग्नि, बढ़ती जा रही है ॥१८॥

स तेन कोपेन विदह्यमानः करं करेणाभिनिपीड्य वीरः।
विनिश्वसत्युष्णमतीव घोरं दहन्निवेमान्मम पुत्रपौत्रान् ॥

यह वीर अपने हाथों को मींड कर इस कोप से जलता रहता है। यह बड़े भय-जनक, लम्बे सांस मारता है, मानो मेरे पुत्र पौत्रों को भस्म ही कर रहा हो ॥१९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाण्डीवधन्वा च वृकोदरश्च संरम्भिणावन्तककालकल्पौ।
न शेषयेतां युधि शत्रुसेनां शरान् किरन्तावशनिप्रकाशान् ॥

गाण्डीवधारी अर्जुन और भीम, जब क्रोध करेंगे--तब वे काल के तुल्य भयानक हो जावेंगे। इनके वज्र के तुल्य बाणों के छोड़ने पर युद्ध में शत्रुसेना शेष नहीं रह सकती है।

दुर्योधनः शकुनिः सूतपुत्रो दुःशासनश्चापि सुबन्दचेता।
मधु प्रपश्यन्ति न तु प्रपातं यद्द्यूतमालम्ब्य हरन्ति राज्यम्

दुर्योधन, शकुनि सूतपुत्र कर्ण, मूर्ख दुःशासन ने द्यूत रूपी शाखा का अवलम्बन कर रखा है और उससे टपकते हुए राज्य रूपी मधु की ओर ही दृष्टि लगाई है। इनको इस टहनी के टूटने से गिरने का कुछ भी ख्याल नहीं है ॥२१॥

शुभाशुभं कर्म नरो हि कृत्वा प्रतीक्षते तस्य फलं स्म कर्त्ता
स तेन मुह्यत्यवशः फलेन मोक्षः कथं स्यात् पुरुषस्य तस्मात्

कर्ता मनुष्य शुभ या अशुभ कर्म करके उसके फल की प्रतीक्षा करता है। यह परवश फल के भोगने से मोहित हो जाता है और यही सोचता है, कि इस अशुभ कर्म के भोग से कैसे छुटकारा हो ॥२२॥

क्षेत्रे सुकृष्टे ह्युपिते च बीजे देवे च वर्षत्यृतुकालयुक्तम्
न स्यात् फलं तस्य कुतः प्रसिद्धिरन्यत्र दैवादिति चिन्तयामि

क्षेत्र को अच्छी तरह जोत कर बीज के बो देने पर और ऋतुकाल में वर्ष जाने पर भी फल प्राप्त नहीं होता है। इसका दैव के अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं सोचा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतं मताक्षेण यथा न साधु साधुप्रवृत्तेन च पाण्डवेन ।
मया च दुष्पुत्रवशानुगेन यथा कुरूणामयमन्तकालः॥२४॥

शकुनि ने अच्छा नहीं किया था, परन्तु उचित व्यवहार करके पाण्डवों ने उस समय भी अच्छा ही किया। मैंने तो दुर्जन पुत्र के वश में होकर यह सारी परिस्थिति खड़ी करदी है, जिससे कौरवों का अन्तकाल ही उपस्थित हो गया है॥

ध्रुवं प्रवास्यत्यसमीरितोऽपि ध्रुवं प्रजास्यत्युत गर्भिणी या
ध्रुवं दिनादौ रजनीप्रणाशस्तथा क्षपादौ च दिनप्रणाशः॥

वायु प्रेरणा न करने पर भी चलता ही रहेगा---जो गर्भिणी होगी, वह सन्तान उत्पन्न अवश्य करेगी। जब दिन होगा तब रात का नाश होगा और रात के आरम्भ में दिन का नाश अवशम्भावी है। इसी तरह कर्मों का फल अवश्य होगा॥२५॥

क्रियेत कस्मादपरे च कुर्य्युर्वित्तं न दद्युः पुरुषाः कथञ्चित् ।
प्राप्यार्थकालश्चभवेदनर्थःकथंनुतत्स्यादितितत्कुतःस्यात् २६

यदि कर्म का फल परवशता से न होता, तो हम लोग धन के लिए ऐसा क्यों करते या अन्य मनुष्य, क्यों धन के लिए इतना धर्माधर्म करते तथा अनेक पुरुष धन पाकर भी उसको धर्म में दान नहीं कर सकते हैं। अर्थ (धन) प्राप्ति का समय पाकर यह अनर्थ (चिन्ता) होता ही है, कि यह धन, मुझे किस तरह से प्राप्त हो सकेगा॥२६॥

कथन्नु भिद्येत न च स्रवेत न च प्रसिच्येदिति रक्षितव्यम् ।
अरक्ष्यमाणंशतधाप्रकीर्य्येत् ध्रुवंननाशोऽस्तिकृतस्यलोके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य यही सोचता है, कि यह धन मुझ से पृथक न होवे, यह टूटे हुए घट से पानी की तरह धीरे २ टपक कर बाहर न गिर सके और न पात्र से जल धारा की तरह ही मुझ से अलग होवे । यदि धन की रक्षा न की जावे, तो यह नष्ट हो जावेगा। मनुष्य कर्मानुसार इसी तरह सोचता है, परन्तु किये कर्म का नाश कभी नहीं होता है अर्थात् धन मिलना होगा, मिलेगा या धन के कारण उपद्रव होना है, तो उपद्रव होगा ॥२७॥

गतो ह्यरण्यादपि शक्रलोकं धनञ्जयः पश्यत वीर्य्यमस्य ।
अस्त्राणि दिव्यानि चतुर्विधानि ज्ञात्वा पुनर्लोकमिमं प्रपन्नः॥

अर्जुन, वन से भी इन्द्रलोक में चला गया । इसका पराक्रम देखने योग्य है। यह चारों प्रकार के दिव्य अस्त्रों को सीख कर फिर इसी लोक में चला आया है ॥२८॥

स्वर्गं हि गत्वा सशरीर एव को मानुषः पुनरागन्तुमिच्छेत्
अन्यत्र कालोपहराननेकान् समीक्षमाणस्तु कुरून् मुमूर्षून् ॥

स्वर्ग में सन्देह जाकर कौन मनुष्य, लौटना चाहता है। काल से नष्ट, मृत दशा को प्राप्त हुए कौरवों की ओर देखकर ही अर्जुन ऐसा करने को उद्यत हुआ है ॥२९॥

धनुर्ग्राहश्चार्जुनः सव्यसाची धनुश्च तद्गाण्डिवं भीमवेगम् ।
अस्त्राणि दिव्यानि च तानि तस्य त्रयस्य तेजः प्रसहेत कोऽत्र ॥

सव्यसाची अर्जुन तो धनुष ग्रहण करने वाला है और बड़े भयानक वेग वाला यह गाण्डीव धनुष है। इस अर्जुन के पास दिव्य अस्त्र हैं। इन तीनों तेजों को कौन सह सकता है ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशम्य तद्वचनं पार्थिवस्य दुर्योधनं रहिते सौबलोऽथ ।
अबोधयत् कर्णमुपेत्य सर्वं स चाप्यहृष्टोऽभवदल्पचेताः ॥
इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि धृतराष्ट्र-
खेदवाक्ये पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३५॥

दुर्योधन के न होने के समय में राजा धृतराष्ट्र के ये वचन सुनकर शकुनि ने कर्ण के पास जाकर ये वचन सुनाए । यह क्षुद्र हृदय, कर्ण यह सुनकर बड़ा दुःखी सा हुआ ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में
धृतराष्ट्र के खेद करने का दो सौ
पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ॥

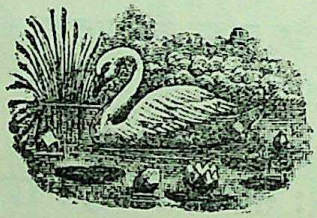

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ छत्तीसवां अध्याय

धृतराष्ट्रस्य तद्वाक्यं निशम्य शकुनिस्तदा ।
दुर्य्योधनमिदं काले कर्णेन सहितोऽब्रवीत्॥१॥

वैशम्पायन बोले--हे राजन् ! शकुनि, राजा धृतराष्ट्र के वचन सुनकर कर्ण को साथ लेकर दुर्योधन के पास पहुंचा और उससे बोला ॥१॥

प्रव्राज्य पाण्डवान् वीरान् स्वेन वीर्येण भारत ।
भुङ्क्ष्वेमां पृथिवीमेको दिवं शम्बरहा यथा ॥२॥

हे भारत ! तुम अपने विक्रम से वीर पाण्डवों को वन में भेज चुके हो। अब स्वर्ग को इन्द्र के तुल्य इस पृथिवी का शासन करो ॥२॥

प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रतीच्योदीच्यवासिनः ।
कृताः करप्रदाः सर्वे राजानस्ते नराधिप ॥३॥

हे नराधिप ! तुमने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर के निवासी सारे राजा कर देने वाले कर लिए हैं ॥१॥

या हि सा दीप्यमानेव पाण्डवानभजत् पुरा ।
साद्य लक्ष्मीस्त्वया राजन्नवाप्ता भ्रातृभिः सह ॥४॥

हे राजन् ! जिस देदीप्यमान राज्यलक्ष्मी ने पूर्व काल में पाण्डवों का आश्रय ले रखा था, वह लक्ष्मी, अपने भाइयों के साथ तुमने प्राप्त करली है ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रप्रस्थगते यां तां दीप्यमानां युधिष्ठिरे ।
अपश्याम श्रियं राजन् दृश्यते सा तवाद्य वै ॥५॥

हे राजन् ! इन्द्रप्रस्थ जाने पर जिस राज्य-लक्ष्मी को राजा युधिष्ठिर के घर पर चमकती देखते थे, यह आज तुम्हारे घर पर चमक रही है ॥५॥

शत्रवस्तव राजेन्द्र न चिरं शोककर्षिताः ।
सा तु बुद्धिबलेनेयं राज्ञस्तस्माद्युधिष्ठिरात् ॥६॥
त्वया क्षिप्ता महाबाहो दीप्यमानेव दृश्यते ।
तथैव तव राजेन्द्र राजानः परवीरहन् ॥७॥
शासनेऽधिष्ठताः सर्वे किं कुर्म इतिवादिनः ।

हे राजेन्द्र ! तुम्हारे शत्रु, चिरकाल के शोक से निर्बल हो रहे हैं । हे शत्रुओं के योद्धाओं के नाशक ! महाबाहो ! तुमने उस राज्यलक्ष्मी को अपने बुद्धि बल से राजा युधिष्ठिर से छीन ली है, जो बड़ी देदीप्यमान दिखाई देती है । इसी तरह तुमने सारे राजा, अपने शासन में ले लिए हैं और वे सब यही कहते रहते हैं, कि कुछ आज्ञा कीजिए ॥६--७॥

तवेयं पृथिवी राजन् निखिला सागराम्बरा ॥८॥
सपर्वतवना देवी सग्रामनगराकरा ।
नानावनोद्देशवती पर्वतैरुपशोभिता ॥९॥

हे राजन् ! समुद्र रूपी वस्त्र धारण करने वाली, पर्वत और वनों से युक्त, ग्राम नगरों सहित, अनेक पर्वतों से सुशोभित, यह सारी पृथिवी अब तुम्हारी ही हो गई है ॥८--९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वन्द्यमानो द्विजैराजन् पूज्यमानश्च राजभिः ।
पौरुषाद्दिवि देवेषु भ्राजसे रश्मिमानिव ॥१०॥

हे राजन् ! तुम अपने पुरुषार्थ से द्विजों के वन्दनीय और राजाओं के पूज्य हो गए हो। तुम आकाश में दीप्तिमान् ज्योतियों में सूर्य की तरह इस भूमि पर देदीप्यमान हो रहे हो ॥१०॥

रुद्रैरिव यमो राजा मरुद्भिरिव वासवः ।
कुरुभिस्त्वं वृतो राजन् भासि नक्षत्रराडिव ॥११॥

हे राजन् ! रुद्रगणों से यमराज, देवों से इन्द्र और तारों से चन्द्रमा की भांति तुम भी कौरवों से युक्त होकर सुशोभित हो रहे हो ॥११॥

यैः स्म ते नाद्रियेताज्ञा न च ते शासने स्थिताः ।
पश्यामस्तान् श्रियाहीनान् पाण्डवान् वनवासिनः॥१२

जिन्होंने तुम्हारी आज्ञा का आदर नहीं किया और न तुम्हारा शासन माना, आज हम उन पाण्डवों को राज्यलक्ष्मी से हीन हुए वनवासी देख रहे हैं ॥१२॥

श्रूयन्ते च महाराज सरो द्वैतवनं प्रति ।
वसन्तः पाण्डवाः साद्धं ब्राह्मणैर्वनवासिभिः ॥१३॥

हे महाराज ! सुना जाता है, कि द्वैतवन के सरोवर पर वनवासी ब्राह्मणों के साथ पाण्डव, रह रहे हैं ॥१३॥

स प्रयाहि महाराज श्रिया परमया युतः ।
तापयन् पाण्डुपुत्रांस्त्वं रश्मिमानिव तेजसा ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे महाराज ! तुम महती राजलक्ष्मी से युक्त होकर तेज से देदीप्यमान सूर्य की भांति पाण्डुपुत्रों को तपाने के लिए वन में चलो ॥१४॥

स्थितो राज्ये च्युतान् राज्याच्छ्रिया हीनाञ्छ्रियावृतः।
असमृद्धान् समृद्धार्थः पश्य पाण्डुसुतान्नृप ॥१५॥

हे नृप ! राज्य सिंहासन पर स्थित हुए, राज्यलक्ष्मी से सुशोभित, समृद्धशाली आप, राज्यविहीन, श्रीरहित, दरिद्री, पाण्डवों को वन में चलकर देखें ॥१५॥

महाभिजनसम्पन्नं भद्रे महति संस्थितम् ।
पाण्डवास्त्वाभिवीक्षन्तु ययातिमिव नाहुषम् ॥१६॥

अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त,उत्तम २ सेवकों से समन्वित,नहुषपुत्र ययाति के सदृश आपको पाण्डव, अपनी आंखों से देखें ॥१६॥

यां श्रियं सुहृदश्चैव दुर्हृदश्च विशाम्पते ।
पश्यन्ति पुरुषे दीप्तां सा समर्था भवत्युत ॥१७॥

हे विशाम्पते ! जिस पुरुष की देदीप्यमान लक्ष्मी को देख कर मित्र हर्षित होते हैं और शत्रु शोक करने लगते हैं, वही लक्ष्मी समर्थ मानी जाती है ॥१७॥

समस्थो विषमस्थान् हि दुर्हृदो योऽभिवीक्षते ।
जगतीस्थानिवाद्रिस्थः किमतः परमं सुखम् ॥१८॥

पर्वत पर स्थित पुरुष जैसे भूतलचारी मनुष्योंको देखता है-- वैसे ही समुन्नत पुरुष, विपत्तिग्रस्त शत्रुओं को यदि देख सके, तो इससे अधिक क्या सुख हो सकता है ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न पुत्रधनलाभेन न राज्येनापि विन्दति ।
प्रीतिं नृपतिशार्दूल याममित्राघदर्शनात् ॥१९॥

हे नृपति--श्रेष्ठ ! पुत्र धन और राज्य के लाभ से भी इतना आनन्द नहीं मिलता है, जितना शत्रुओं की दुर्दशा देखकर आनन्द होता है ॥१९॥

किन्नु तस्य सुखं न स्यादाश्रमे यो धनञ्जयम् ।
अभिवीक्षेत सिद्धार्थी वल्कलाजिनवाससम् ॥२०॥

क्या आपको इससे भी सुख नहीं होगा ? जो स्वयं सिद्ध अर्थ वाले (कामयाब) होकर अर्जुन को वल्कल और मृग-चर्म धारण किये हुए आश्रम की झौंपड़ी में देखोगे ॥२०॥

सुवाससो हि ते भार्य्या वल्कलाजिनसंवृताम् ।
पश्यन्तु दुःखितां कृष्णां सा च निर्विद्यतां पुनः॥२१॥

आपकी भार्या सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए है । वे वल्कल तथा मृग-चर्म-धारिणी दुःखी द्रौपदी को वन में देखें, जिससे द्रौपदी को बड़ा ही निर्वेद (दुःख) होगा ॥२१॥

विनिन्दतां तथात्मानं जीवितञ्च धनच्युतम् ।
न तथा हि सभामध्ये तस्या भवितुमर्हति ।
वैमनस्यं यथा दृष्ट्वा तव भार्य्याः स्वलङ्कृताः ।२२

यह अपने आत्मा और धनहीन जीवन की स्वयं निन्दा करेगी । द्रौपदी को सभा के मध्य में इतना क्लेश नहीं हुआ था, जितना दुःख वह, तेरी अलंकृत भार्या को देखकर मानेगी ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा तु राजानं कर्णः शकुनिना सह ।
तूष्णीं बभूवतुरुभौ वाक्यान्ते जनमेजय ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि कर्ण-शकुनिवाक्ये षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६॥

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय ! शकुनि के साथ कर्णने राजा दुर्योधन से इतना कह कर अपना वाक्य समाप्त किया और शकुनि भी चुप हो गया ॥२३॥

इति श्री महाभारत वनपर्वान्तर्गत घोष-यात्रा पर्व में कर्ण और शकुनि के वाक्य का दो सौ छत्तीसवां अध्याय पूरा हुआ ।

दो सौ सैंतीसवां अध्याय

वैशम्पावन उवाच—

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्य्योधनस्ततः ।
हृष्टो भूत्वा पुनर्दीन इदं वचनमब्रवीत् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! कर्ण के वचन सुन कर राजा दुर्योधन पहिले तो बड़ा प्रसन्न हुआ और फिर दीन हो कर यह वचन बोला ॥१॥

ब्रवीषि यदिदं कर्ण सर्वं मनसि मे स्थितम् ।
न त्वभ्यनुज्ञां लप्स्यामि गमने यत्र पाण्डवाः ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे कर्ण ! जो तुमने कहा हैं--यह मेरे भी मन में है, परन्तु पाण्डवों के पास जाने की इजाज़त राजा से नहीं मिलेगी ॥२॥

परिदेवति तान् वीरान् धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
मन्यतेऽभ्यधिकांश्चापि तपोयोगेन पाण्डवान् ॥२॥

राजा धृतराष्ट्र, अब भी उन्हीं वीर पाण्डवों को रोता रहता है। यह तपोयोग के कारण पाण्डवों को ही हम से अधिक मानता है ॥३॥

अथ वाप्यनुबुध्येत नृपोऽस्माकञ्चिकीर्षितम् ।
एवमप्यायतिं रक्षन्नाभ्यनुज्ञातुमर्हति ॥४॥

राजा धृतराष्ट्र हमारी सारी चेष्टाओं को जानता है। यह भविष्य काल पर दृष्टि रख कर हम को कभी वन में जाने की आज्ञा नहीं देगा ॥४॥

न हि द्वैतवने किञ्चिद्विद्यतेऽन्यत्प्रयोजनम् ।
उत्सादनमृते तेषां वनस्थानां महाद्युते ॥५॥

हे महाद्युते ! द्वैत-वन में अपने चलने का अन्य कारण बनाया नहीं जा सकता है। वन में रहने वाले पाण्डवों को दुःखी करने के सिवा वहां अन्य कार्य हो ही क्या सकता है--- यह राजा खूब समझता है ॥५॥

जानासि हि यथा क्षत्ता द्यूतकाल उपस्थिते ।
अब्रवीद्यच्च मां त्वाञ्च सौबलं वचनं तदा ॥६॥

तुम अच्छी तरह जानते हो, जो द्यूत के समय विदुर ने मुझे, तुम्हें और शकुनि से वचन कहेथे ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तानि सर्वाणि वाक्यानि यच्चान्यत् परिदेवितम् ।
विचिन्त्य नाधिगच्छामि गमनायेतराय वा ॥७॥

मैं, उन सारे वाक्य तथा अन्य कथनों को विचार कर जाने या नहीं जाने का कुछ भी निश्चय नहीं कर सकता हूं ॥७॥

ममापि हि महान् हर्षो यदहं भीमफाल्गुनौ ।
क्लिष्टावरण्ये पश्येयं कृष्णया सहिताविति ॥८॥

इसका मुझे भी बड़ा हर्ष होगा---जो मैं भीम और अर्जुन को द्रौपदी के सहित विपत्ति में फंसा देख सकूंगा ॥८॥

न तथा ह्याप्नुयां प्रीतिमवाप्य वसुधामिमाम् ।
दृष्ट्वा यथा पाण्डुसुतान् वल्कलाजिनवाससः ॥९॥

मुझे इस सारी भूमि को पाकर इतना आनन्द नहीं है, जैसा वल्कल और मृग-चर्म धारण किये हुए पाण्डवों को देख कर होगा ॥९॥

किन्नु स्यादधिकं तस्माद्यदहं द्रुपदात्मजाम् ।
द्रौपदीं कर्ण पश्येयं काषायवसनां वने ॥१०॥

हे कर्ण ! इस से अधिक क्या सुख हो सकता है, जो वन में द्रुपदपुत्री कृष्णा को काषायवस्त्रों में देखूं ॥१०॥

यदि मां धर्म्मराजश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ।
युक्तं परमया लक्ष्म्या पश्येतां जीवितं भवेत् ॥११॥
उपायं न तु पश्यामि येन गच्छेम तद्वनम् ।
यथा चाभ्यनुजानीयाद्गच्छन्तं मां महीपतिः ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि मुझे पाण्डुपुत्र धर्मराज और भीमसेन, इस महती राज्य लक्ष्मी से समन्वित देख लें, तो मेरा जीवन सफल ही समझना चाहिए, परन्तु मैं इसका कोई उपाय ही नहीं देखता हूं, जिससे वन में जा सकूं या वन में जाने के अभिलाषी मुझे राजा अनुज्ञा (इजाजत) दे सके ॥११-१२॥

स सौबलेन सहितस्तथा दुःशासनेन च ।
उपायं पश्य निपुणं येन गच्छेम तद्वनम् ॥१३॥

अब तुम शकुनि और दुःशासन से सम्मति कर के चतुराई से कोई उपाय निकालो, जिस से वन को चल सकें ॥१३॥

अहमप्यद्य निश्चित्य गमनायेतराय च ।
कल्यमेव गमिष्यामि समीपं पार्थिवस्य ह ॥१४॥

मैं भी आज वन में जाने या न जाने की निश्चित कर के प्रातःकाल ही राजा के पास जाऊंगा ॥१४॥

मयि तत्रोपविष्टे तु भीष्मे च कुरुसत्तमे ।
उपायो यो भवेद्दृष्टस्त्वं ब्रूयाः सहसौबलः ॥१५॥

जब राजा के पास मैं या कुरुवंशश्रेष्ठ, भीष्म बैठे हों, तब शकुनि के साथ निश्चित किये हुए उपाय का तुम कथन करना ॥

वचो भीष्मस्य राज्ञश्च निशम्य गमनं प्रति ।
व्यवसायं करिष्येऽहमनुनीय पितामहम् ॥१६॥

हमारे वन जाने के विषय में भीष्म और राजा धृतराष्ट्र का वचन सुनूंगा और फिर मैं पितामह भीष्म की अनुनय (खुशामद) करके वन में जाने का उद्योग करूंगा ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे जग्मुरावसथान् प्रति ।
व्युषितायां रजन्यान्तु कर्णो राजानमभ्ययात् ॥१७॥

हाँ ? ठीक है-इतना कहकर ये सब अपने २ निवास स्थान को चले गए। जब रात समाप्त होने को आई तो कर्ण, राजा दुर्योधन के पास पहुँचा ॥१७॥

ततो दुर्य्योधनं कर्णः प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
उपायः परिदृष्टोऽयं तन्निबोध जनेश्वर ॥१८॥

अब कर्ण ने हंसते हुए राजा दुर्योधन से कहा—हे जनेश्वर हमने जो उपाय सोचा है, अब तुम उसको सुनो ॥१८॥

घोषा द्वैतवने सर्वे त्वत्प्रतीक्षा नराधिप ।
घोषयात्रापदेशेन गमिष्यामो न संशयः ॥१९॥

हे नराधिप ! जो द्वैतवन में छोटे २ घोष (गोपालों के ग्राम) हैं, उन सबका तुमको निरीक्षण करना चाहिए। हम इस घोष-यात्रा के मिष से द्वैतवन की यात्रा कर सकेंगे-इसमें संशय नहीं है

उचितं हि सदा गन्तुं घोषयात्रां विशाम्पते !
एवञ्च त्वां पिता राजन् समनुत्रातुमर्हति ॥२०॥

हे विशाम्पते ! राजा को सदा इन छोटे २ गावों की यात्रा (दौरा) अवश्य करनी चाहिए। हे राजन् ! इस तरह तुम्हारे पिता, तुमको वहां जाने की अनुमति दे देंगे ॥२०॥

तथा कथयमानौ तौ घोषयात्राविनिश्चयम् ।
गान्धारराजः शकुनिः प्रत्युवाच हसन्निव ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब ये दोनों घोष-यात्रा के विषय में निश्चित कर रहे थे, तो उसी समय गान्धारराज शकुनि ने हंस कर कहा ॥२१॥

उपायोऽयं मया दृष्टो गमनाय निरामयः।
अनुज्ञास्यति नो राजा चोदयिष्यति चाप्युत ॥२२॥

मैंने भी विघ्न-बाधाओं से रहित एक उपाय सोचा है। इस को सुनकर राजा आज्ञा ही नहीं देगा,प्रत्युत जाने के लिए बार २ प्रेरणा करेगा ॥२२॥

घोषा द्वैतवने सर्वे त्वत्प्रतीक्षा नराधिप !
घोषयात्रापदेशेन गमिष्यामो न संशयः ॥२३॥

हे राजन् ! द्वैतवन के सारे घोष (गांव) तुमको देखने चाहिए। इस घोष यात्रा के बहाने हम अवश्य द्वैतवन में जा सकेंगे-इसमें सन्देह नहीं है ॥२३॥

ततः प्रहसिताः सर्वे तेऽन्योन्यस्य तलान् ददुः।
तदेव च विनिश्चित्य ददृशुः कुरुसत्तमम् ॥२४॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि घोष-यात्रामन्त्रणे सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३७॥

यह सुनकर ये सारे हंस पड़े और एक दूसरे के हाथ पर हाथ मारने लगे। ये इस उपाय को निश्चित करके राजा धृतराष्ट्र के पास पहुंचे ॥२४प

इति श्री महाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में घोषयात्रा की मन्त्रणा का दो सो सैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोसौ अड़तीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

धृतराष्ट्रं ततः सर्वे ददृशुर्जनमेजय।
पृष्ट्वा सुखमथो राज्ञः पृष्टा राज्ञा च भारत ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय! इन सब ने राजा धृतराष्ट्र के पास जाकर उनके दर्शन किए और राजा से कुशल पूछी। राजा ने भी इन सब से कुशल प्रश्न किया ॥१॥

ततस्तैर्विहितः पूर्वं समङ्गो नाम वल्लवः।
समीपस्थास्तदा गावो धृतराष्ट्रौ न्यवेदयत् ॥२॥

अब इन्हों ने सब से प्रथम समङ्ग नामक ग्वाले को और उसके साथ में ही गायों को राजा के सम्मुख उपस्थित [पेश] किया ॥२॥

अनन्तरञ्च राधेयः शकुनिश्च विशाम्पते।
आहतुः पार्थिवश्रेष्ठं धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ॥३॥

हे विशाम्पते! इसके अनन्तर कर्ण और शकुनि ने राजाओं में श्रेष्ठ, प्रजा-रक्षक राजा धृतराष्ट्र से कहा—॥३॥

रमणीयेषु देशेषु घोषाः संप्रति कौरव।
स्मारणे समयः प्राप्तो वत्सानामपि चाङ्कनम् ॥४॥

हे कौरव! बड़े सुन्दर २ प्रदेशों में बहुत से गायों से पूर्ण गांव बस रहे हैं। अब उन गायों के सम्हालने का समय आ गया और वत्सों के भी चिन्ह [निशान] लगाने हैं ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगया चोचिता राजन्नस्मिन् काले सुतस्य ते।
दुर्य्योधनस्य गमनं समनुज्ञातुमर्हसि ॥५॥

हे राजन्! आपके पुत्र, दुर्योधन को इस समय मृगया खेलना भी उचित ही है। अब आपको दुर्योधन के जाने के लिए आज्ञा दे देनी चाहिए ॥५॥

धृतराष्ट्र उवाच—

मृगया शोभना तात गवां हि समवेक्षणम्।
विश्रम्भस्तु न गन्तव्यो बल्लवानामिति स्मरे ॥६॥

धृतराष्ट्र ने कहा---हे तात! मृगया [शिकार] खेलना और गायों की पड़ताल करना बड़ी अच्छी बात है, परन्तु तुमको ग्वालों का विश्वास नहीं करना चाहिए, ऐसा मेरा ख्याल है ॥६॥

ते तु तत्र नरव्याघ्राः समीप इति नः श्रुतम्।
अतो नाभ्यनुजानामि गमनं तत्र वः स्वयम् ॥७॥

मैंने सुना है, कि महावीर पाण्डव भी कहीं इस वन के समीप ही हैं। मैं तो इसीलिए तुम्हारे वन में जाने का अनुमोदन नहीं कर सकता हूं ॥७॥

छलेन निर्जितास्ते तु कर्षिताश्च महावने।
तपोनित्याश्च राधेय समर्थाश्च महारथाः ॥८॥

हे कर्ण! पाण्डवों को तुमने छल से जीता है और वे वन में बड़े क्लेशित हो रहे हैं। ये महारथी, पाण्डव, नित्य तप करने वाले और बड़े ही शक्तिशाली हैं ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मराजो न संक्रुध्येद्भीमसेनस्त्वमर्षणः ।
यज्ञसेनस्य दुहिता तेज एव तु केवलम् ॥९॥

यद्यपि धर्मराज, कुपित नहीं होंगे--परन्तु भीमसेन क्रोधी मनुष्य है। यज्ञसेन की पुत्री द्रौपदी तो तेज की मूर्ति ही बनी हुई है ॥९॥

यूयञ्चाप्यपराध्येयुर्दर्पमोहसमन्विताः ।
ततो विनिर्दहेयुस्ते तपसा हि समन्विताः ॥१०॥

तुम लोग, अभिमान और मोह में चूर हो रहे हो, इससे अवश्य कुछ अपराध (ग़लती) कर बैठोगे। वे पाण्डव, तप से समन्वित हैं, तुमको अवश्य भस्म कर डालेंगे ॥१०॥

अथ वा सायुधा वीरा मन्युनाभिपरिप्लुताः ।
सहिता बद्धनिस्त्रिंशा दहेयुः शस्त्रतेजसा ॥११॥

वे वीर पाण्डव, क्रोध में भर कर और अनेक शस्त्र तथा तलवार बांध कर इकट्ठे हुए, शस्त्र के तेज से भी तुमको नष्ट कर सकते हैं ॥११॥

अथ यूयं बहुत्वात्तानाक्षिपन्तः कथञ्चन ।
अनार्य्यं परमं तत् स्यादशक्यं तच्च वै मतम् ॥१२॥

यदि तुमने बहुत होने के कारण उन पर किसी प्रकार आक्रमण भी कर दिया, तो यह बड़ा बुरा कार्य होगा और ऐसा हो भी नहीं सकता है ॥१२॥

उषितो हि महाबाहुरिन्द्रलोके धनञ्जयः
दिव्यान्यस्त्राण्यवाप्याथ ततः प्रत्यागतो वनम् ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाबाहु अर्जुन, इन्द्रलोक में रह चुका है। वहां से वह दिव्य अस्त्र पाकर अब वन में लौट आया है ॥१३॥

अकृतास्त्रेण पृथिवी जिता बीभत्सुना पुरा।
किं पुनः स कृतास्त्रोऽद्य न हन्याद्वो महारथः ॥१४॥

पूर्वकाल में इन अस्त्रों के विना प्राप्त किये ही अर्जुन ने पृथिवी को विजय कर लिया था। अब तो वह महारथी, दिव्य अस्त्रों से युक्त हो गया है, फिर तुमको क्यों नहीं नष्ट कर डालेगा ॥१४॥

अथ वा मद्वचः श्रुत्वा तत्र यत्ता भविष्यथ।
उद्विग्नवासो विश्रम्भाद् दुःखं तत्र भविष्यति ॥१५॥

यद्यपि तुम मेरे वचन सुन कर प्रयत्नशील रहोगे, तो भी पाण्डव वनवास से बड़े उद्विग्न हो रहे हैं, उनका तुम्हें विश्वास नहीं करना चाहिए ॥१५॥

अथवा सैनिकाः केचिदपकुर्य्युर्युधिष्ठिरम्।
तदबुद्धिकृतं कर्म्म दोषमुत्पादयेच्च वः ॥१६॥

सम्भव है, तुम्हारे सैनिकोंमें से कोई न कोई युधिष्ठिर को छेड़ बैठे। यह मूर्खता का कृत्य बुराई पैदा किये विना नहीं रहेगा॥१६॥

तस्माद् गच्छन्तु पुरुषाः स्मारणायाप्तकारिणः
न स्वयं तत्र गमनं रोचये तव भारत ॥१७॥

हे भारत! इन सब बातों को विचार कर मैं यही समझता हूं, कि कुछ विश्वासी मनुष्य, गोओं की पड़ताल को चले जावें। मैं तो वन में तुम्हारा जाना उचित नहीं समझता हूं ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुनिरुवाच:—

धर्मज्ञः पाण्डवो ज्येष्ठः प्रतिज्ञातश्च संसदि ।
तेन द्वादश वर्षाणि वस्तव्यानीति भारत ॥१८॥

शकुनि कहने लगा—हे भारत ! राजा युधिष्ठिर धर्म का जानने वाला है । उसने सभा में प्रतिज्ञा कर ली है, इससे वह तो बारह वर्ष तक अवश्य वन में निवास करेगा ॥१८॥

अनुवृत्ताश्च तत् सर्वे पाण्डवा धर्मचारिणः ।
युधिष्ठिरस्तु कौन्तेयो न नः कोपं करिष्यति ॥१९॥

सारे भीम आदि पाण्डव भी युधिष्ठिर की आज्ञा में ही चलते हैं और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर हम पर कुछ कोप नहीं करेंगे॥१९

मृगयाञ्चैव नो गन्तुमिच्छा संवर्त्तते भृशम् ।
स्मारणान्तु चिकीर्षामो न तु पाण्डवदर्शनम् ॥२०॥

मृगया (शिकार) खेलने को भी हमारा मन बहुत चाहता है, इससे ही हम वहां जाना चाहते हैं । हम तो गौओं की पड़ताल करना चाहते हैं । हमको पाण्डवों से मिलने की क्या आवश्यकता है ॥२०॥

न चानार्य्यसमाचारः कश्चित्तत्र भविष्यति ।
न च तत्र गमिष्यामो यत्र तेषां प्रतिश्रयः ॥२१॥

हम वहां कोई अनुचित कार्य नहीं करेंगे और न वहां जावेंगे—जहां पाण्डवों का निवास स्थान होगा ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच:—

एव मुक्तः शकुनिना धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
दुर्योधनं सहामात्यमनुजज्ञे न कामतः ॥२२॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब शकुनि ने राजा धृतराष्ट्र से इतना कहा—तो राजा ने मन्त्री सहित दुर्योधन को वन में जाने की आज्ञा दे दी, परन्तु धृतराष्ट्र की आन्तरिक इच्छा आज्ञा देने की नहीं हुई ॥२२॥

अनुज्ञातस्तु गान्धारिः कर्णेन सहितस्तदा ।
निर्ययौ भरतश्रेष्ठो बलेन महता वृतः ॥२३॥

जब राजा से आज्ञा मिल गई, तो गान्धार-पुत्र शकुनि और भरत-वंश-श्रेष्ठ, दुर्योधन कर्ण को साथ लेकर बड़ी भारी सेना सहित वन को चल दिया ॥२३॥

दुःशासनेन च तथा सौबलेन च धीमता ।
संवृतो भ्रातृभिश्चान्यैः स्त्रीभिश्चापि सहस्रशः ॥२४॥

राजा दुर्योधन अपने भाई दुःशासन और बुद्धिमान शकुनि तथा अन्य भाई और सहस्त्रों स्त्रियों के साथ वन को चल दिया ॥२४॥

तं निर्यान्तं महाबाहुं द्रष्टुं द्वैतवनं सरः ।
पौराश्चानुययुः सर्वे सहदारा वनञ्च तत् ॥२५॥

इस महाबाहु दुर्योधन के गमन के समय द्वैत-वन के सरोवर के देखने की अभिलाषा से अपनी २ स्त्रियों को लेकर अनेक पुरवासी भी इनके साथ वन को चल दिए ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टौ रथसहस्राणि त्रीणि नागायुतानि च ।
पत्तयो बहुसाहस्रा हयाश्च नवतिः शताः ॥२६॥

इनके साथ आठ हजार रथ, तीस हजार हाथी, कई हज़ार पैदल और हजार अश्व थे ॥२६॥

शकटापणवेशाश्च वणिजो वन्दिनस्तथा ।
नराश्च मृगयाशीलाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२७॥

सामान के ले चलने वाली अनेक गाड़ियां और अनेक वस्तुएं लेकर वणिक् लोग चल रहे थे। वेश्याओं के पास रहने वाले विटनटादि भी साथ थे। अनेक बन्दीजन और मृगयाशील (शिकारी) सहस्रों की संख्या में साथ चल रहे थे ॥२७॥

ततः प्रयाणे नृपतेः सुमहानभवत् स्वनः ।
प्रावृषीव महावायोरुद्धतस्य विशाम्पते ॥२८॥

हे राजन्! जब राजा दुर्योधन ने यात्रा की, तो बड़ा भारी शब्द हुआ। यह शब्द वर्षाऋतु में उद्धृत वायु [आंधी] के चलने के समान प्रतीत होता था ॥२८॥

गव्यूतिमात्रे न्यवसद्राजा दुर्य्योधनस्तदा ।
प्रयातो वाहनैः सर्वैस्ततो द्वैतवनं सरः ॥२९॥

इति श्रीमहाभारतआरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्य्योधनद्वैतवन गमने अष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३८॥

राजा दुर्योधन ने दो कोश चलकर पड़ाव डाला। इसके अनन्तर सारे वाहन और साथियों के साथ द्वैतवन के सरोवर को चल दिया ॥२९॥

इति श्री महाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में दुर्योधन के द्वैतवन गमन का दो सौ अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ उनतालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अथ दुर्य्योधनो राजा तत्र तत्र वने वसन् ।
जगाम घोषानभितस्तत्र चक्रे निवेशनम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले हे राजन् ! राजा दुर्योधन, जहां तहां निवास करता हुआ, उन घोषों (गावों) के पास पहुंचा और वहां उसने निवेश (पड़ाव) डाल दिया ॥१॥

रमणीये समाज्ञाते सोदके समहीरुहे ।
देशे सर्वगुणोपेते चक्रुरावसथान्नराः ॥२॥

जल और वृक्षों से रमणीक, सब उत्तमताओं से युक्त, स्थान को देखकर लोग अपना २ डेरा लगाने लगे ॥२॥

तथैव तत्समीपस्थान् पृथगावसथान् बहून् ।
कर्णस्य शकुनेश्चैव भ्रातॄणाञ्चैव सर्वशः ॥३॥

इसी तरह दुर्योधन के पास में ही अलग २ कर्ण, शकुनि और दुर्योधन के भाइयों के चारों ओर अनेक निवास स्थान लगा दिये गए ॥३॥

ददर्श स तदा गावः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अङ्कैर्लक्षैश्च ताः सर्वाः लक्षयामास पार्थिवः ॥४॥

इन्होंने वहां सैकड़ों और हजारों की संख्या में गायें देखी। राजा दुर्योधन ने सबके राज्यचिन्ह देख २ कर अच्छी तरह पड़ताल की ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्कयामास वत्सांश्च जज्ञे चोपस्थितांस्त्वपि ।
बालवत्साश्च या गावः कालयामास ता अपि ॥५॥

इसने सारे बछड़ों के सरकारी चिन्ह लगवा दिए और पास आये हुए सारे बछड़ों को देखा। जितनी गाएँ और छोटे २ बछड़े थे, राजा ने सब की गिनती कराई ॥५॥

अथ संस्मारणं कृत्वा लक्षयित्वा त्रिहायनान् ।
वृतो गोपालकैः प्रीतो व्यहरत् कुरुनन्दनः ॥६॥

राजा दुर्योधन, गायों की पड़ताल करके और तीन वर्ष के बछड़ों को देखकर गोपालों के साथ से बड़ी प्रसन्नता से क्रीड़ा करने लगा ॥६॥

स च पौरजनः सर्वः सैनिकाश्च सहस्रशः ।
यथोपजोषञ्चिक्रीडुर्वने तस्मिन् यथामराः ॥७

अब सारे पुरवासी और सहस्रों की संख्या में सैनिक, इस बन में देवों के सदृश अपनी २ रुचि के अनुसार क्रीड़ा करने लगे ॥७॥

ततो गोपाः प्रगातारः कुशला नृत्यवादने ।
धार्त्तराष्ट्रमुपातिष्ठन् कन्याश्चैव स्वलङ्कृताः ॥८॥

कुछ गवैये ग्वाले, नाचने बजाने में भी बड़े कुशल थे। ये राजा दुर्योधन के पास गाने बजाने लगे। इनके साथ अलङ्कारों से लदी हुई, अनेक सुन्दरी कन्या भी गाने में सहयोग दे रही थी ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स स्त्रीगणवृतो राजा प्रहृष्टः प्रददौ वसु ।
तेभ्यो यथार्हमन्नानि पानानि विविधानि च ॥९॥

स्त्रियों से घिरे हुए, राजा दुर्योधन ने प्रसन्न होकर इनको बहुत सा धन, अन्न पान यथायोग्य उपहार (इनाम) में दिया ॥९॥

ततस्ते सहिताः सर्वे तरक्षून् महिषान् मृगान् ।
गवयर्क्षवराहांश्च समन्तात् पर्य्यकालयन् ॥१०॥

अब इन सबों ने एक साथ, चीते, भैंसे, मृग, गवय, रीछ, वराह आदि वनैले जन्तुओं को घेरना आरम्भ किया ॥१०॥

स ताञ्छरैर्विनिर्भिद्य गजांश्च सुबहून् वने ।
रमणीयेषु देशेषु ग्राहयामास वै मृगान् ॥११॥

इन्होंने अपने बाणों से इन जन्तु तथा अन्य अनेक हाथियों को वन में बींध डाला। इन्होंने सुन्दर २ प्रदेशों में बहुत मृगों को पकड़ लिया ॥११॥

गोरसानुपयुञ्जान उपभोगांश्च भारत ।
पश्यन् स रमणीयानि वनान्युपवनानि च ॥१२॥
मत्तभ्रमरजुष्टानि बर्हिणाभिरुतानि च ।
अगच्छदानुपूर्व्येण पुण्यं द्वैतवनं सरः ॥१३॥

हे भारत ! ये लोग, माखन आदि गो रसों का उपयोग और उपभोग करते हुए तथा मस्त भ्रमरों से युक्त, मयूरों से शब्दायमान, सुन्दर २ वन उपवनों (बाग वगीचों) को देखते हुए क्रम से द्वैतवन के उसी पवित्र सरोवर पर पहुंचे ॥१२-१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत्तभ्रमरसंजुष्टं नीलकण्ठरवाकुलम् ।
सप्तच्छदसमाकीर्णं पुन्नागबकुलैर्युतम् ॥१४॥

यह सरोवर, मस्त भ्रमरों से समन्वित, मयूरों के शब्दों से सुशोभित, सप्तच्छद, पुन्नाग, बकुल आदि वृक्षों से आकीर्ण था ॥१४

ऋद्ध्या परमया युक्तो महेन्द्र इव वज्रभृत् ।
यदृच्छया च तत्रस्थो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१५॥

इसी स्थान पर परम समृद्धि-शाली, वज्रधारी इन्द्र के सदृश धर्मपुत्र, राजा युधिष्ठिर, अपनी इच्छा से निवास कर रहे थे ॥१५

ईजे राजर्षियज्ञेन साद्यस्केन विशाम्पते ।
दिव्येन विधिना चैव वन्येन कुरुसत्तमः ॥१६॥

हे विशाम्पते ! कुरु-श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने आज ही एक दिन में पूरे होने वाले, राजर्षियों के योग्य यज्ञ को वन के अन्न द्वारा विधि-पूर्वक समाप्त किया था ॥१६॥

कृत्वा निवेशमभितः सरसस्तस्य कौरव ।
द्रौपद्या सहितो धीमान् धर्मपत्न्या नराधिपः ॥१७॥

हे कौरव ! राजा ने इसी सरोवर के पास अपना निवास स्थान बना रखा था। इसी निवास स्थानमें बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर, अपनी धर्मपत्नी द्रौपदी के साथ निवास करते थे ॥१७॥

ततो दुर्य्योधनः प्रेष्यानादिदेश सहस्रशः ।
आक्रीड़ावसथाः क्षिप्रं क्रियन्तामिति भारत ॥१८॥

हे भारत ! अब दुर्योधन ने सहस्रों नौकरों को आज्ञा दी, कि तुम शीघ्र ही उद्यानों सहित उत्तम २ निवास स्थान बना डालो ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते तथेत्येव कौरव्यमुक्त्वा वचनकारिणः ।
चिकीर्षन्तस्तदाक्रीड़ान् जग्मुर्द्वैतवनं सरः ॥१९॥

ये नौकर दुर्योधन के वचन को स्वीकार करके उद्यान सहित निवास स्थान बनाने को द्वैतवन के सरोवर पर पहुंचे ॥१९॥

प्रविशन्तं वनं द्वारि गन्धर्वाः समवारयन् ।
सेनाग्रंच धार्त्तराष्ट्रस्य प्राप्तं द्वैतवनं सरः ॥२०॥

ज्यों ही ये द्वैतवन के द्वार पर पहुंचे, त्यों ही इनको गन्धर्वों ने रोका। इस समय तक धृतराष्ट्र के पुत्र राजा दुर्योधन की सेना का अग्रभाग द्वैतवन के सरोवर तक पहुंच चुका था ॥२०॥

तत्र गन्धर्वराजो वै पूर्वमेव विशाम्पते ।
कुबेरभवनाद्राजन्नाजगाम गणावृतः ॥२१॥

हे विशाम्पते ! यहां पहिले से ही अपनी सेना को साथ लेकर कुबेर की नगरी से गन्धर्व राज आया हुआ था ॥२१॥

गणैरप्सरसाञ्चैव त्रिदशानां तथात्मजैः ।
विहारशीलः क्रीडार्थं तेन तत् संवृतं सरः ॥२२॥

इसके साथ अप्सरा तथा देवों के भी गण थे। इस विहार शील (सैलानी) ने क्रीड़ा करने को अपने पुत्रों के साथ इस सरोवर को पहिले से ही घेर रखा था ॥२२॥

तेन तत् संवृतं दृष्ट्वा ते राजपरिचारकाः ।
प्रतिजग्मुस्ततो राजन् यत्र दुर्य्योधनो नृपः ॥२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! इन राजसेवकों ने जब सरोवर को घिरा देखा, तो ये लौटकर राजा दुर्योधन के पास पहुंचे ॥२३॥

स तु तेषां वचः श्रुत्वा सैनिकान् युद्धदुर्मदान् ।
प्रेषयामास कौरव्य उत्सारयत तानिति ॥२४॥

राजा दुर्योधन ने अपने सैनिकों के वचन सुनकर युद्ध में अद्भुत पराक्रम दिखाने वाले, योद्धाओं को भेजा, कि तुम जाओ और उनको वहां से हटा दो ॥२४॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राज्ञः सेनाग्रयायिनः ।
सरो द्वैतवनं गत्वा गन्धर्वानिदमब्रुवन् ॥२५॥

ये सेना के आगे चलने वाले योद्धा, राजा दुर्योधन की आज्ञा सुनकर द्वैतवन के सरोवर पर गये और उन गन्धर्वों से कहने लगे ॥२५॥

राजा दुर्य्योधनो नाम धृतराष्ट्रसुतो बली ।
विजिहीर्षुरिहायाति तदर्थमुपसर्पत ॥२६॥

हे गन्धर्वो ! धृतराष्ट्र का बलवान् पुत्र, राजा दुर्योधन, क्रीड़ा करने को इस सरोवर पर आ रहा है, तुम यहां से दूर हो-जाओ ॥२६॥

एव मुक्तास्तु गन्धर्वाः प्रहसन्तो विशाम्पते ।
प्रत्यब्रुवंस्तान् पुरुषानिदं हि परुषं वचः ॥२७॥

हे राजेन्द्र ! जब सैनिकों ने इतना कहा—तो गन्धर्व हँसने लगे और ये उन राज-पुरुषों से इस तरह कटु वचन कहने लगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न चेतयति वो राजा मन्दबुद्धिः सुयोधनः ।
योऽस्मानाज्ञापयत्येवं वैश्यानिव दिवौकसः ॥२८॥

अरे मूर्खो ! तुम्हारे राजा को कुछ भी ज्ञान नहीं है। यह दुर्योधन बड़ा मन्दबुद्धि है, जो हम देवों को भी वैश्यों की भांति आज्ञा देता है ॥२८॥

यूयं मुमूर्षवश्चापि मन्दप्रज्ञा न संशयः ।
ये तस्य वचनादेवमस्मान् ब्रूत विचेतसः ॥२९॥

इसके अतिरिक्त तुम भी मन्दबुद्धि हो, जो उनके कथन से बिना सोचे विचारे हम से यह कह रहे हो। तुम मृत्यु के मुख में ही पड़ना चाहते हो ॥२९॥

गच्छध्वं त्वरिताः सर्वे यत्र राजा स कौरवः ।
न चेदद्यैव गच्छध्वं धर्मराजनिवेशनम् ॥३०॥

अब तुम जल्दी से वहीं भाग जाओ, जहां कुरुवंशी दुर्योधन है, नहीं तो तुम आज ही यमराज के घर पहुंच जाओगे ॥३०॥

एवमुक्तास्तु गन्धर्वैं राज्ञः सेनाग्रयायिनः ।
सम्प्राद्रवन् यतो राजा धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि
गन्धर्वदुर्योधनसेनासंवादे एकोनचत्वारिं-
शदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा दुर्योधन के सेना के आगे चलने वाले वीर, गन्धर्वों के इतना कहने पर वहीं दौड़ कर पहुंचे, जहां धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन था ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में गन्धर्व दुर्योधन सेना के सम्वाद का दो सौ उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

दो सौ चालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततस्ते सहिताः सर्वे दुर्य्योधनमुपागमन्।
अब्रुवंश्च महाराज यदूचुः कौरवान् प्रति ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे महाराज! अब ये सारे सैनिक, राजा दुर्योधन के पास पहुंचे और जो गन्धर्वों ने कौरवों के प्रति कहा था, वह कह दिया ॥१॥

गन्धर्वैर्वारिते सैन्ये धार्त्तराष्ट्रः प्रतापवान्।
अमर्षपूर्णः सैन्यानि प्रत्यभाषत भारत ॥२॥

हे भारत! जब गन्धर्वों ने राजा दुर्योधन की सेना को रोक दिया, तो प्रतापी दुर्योधन ने भी क्रोध में भर कर अपनी सेना को आज्ञा दी ॥२॥

शासतैनानधर्मज्ञान्ममविप्रियकारिणः।
यदि प्रक्रीडते सर्वैर्देवैः सह शतक्रतुः ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे सैनिको ! तुम जाओ और इन मेरे अहित करने वाले अधर्मी जनों को दण्ड दो, इनमें चाहे देवों के साथ इन्द्र ही क्रीड़ा क्यों न कर रहा हो ॥३॥

दुर्य्योधनवचः श्रुत्वा धार्त्तराष्ट्रा महाबलाः ।
सर्व एवाभिसन्नद्धा योधाश्चापि सहस्रशः ॥४॥
ततः प्रमथ्य सर्वांस्तांस्तद्वनं विविशुर्बलात् ।
सिंहनादेन महता पूरयन्तो दिशो दश ॥५॥

दुर्योधन की आज्ञा सुनकर महाबली धृतराष्ट्र पुत्र तथा अन्य सहस्रों योद्धा झटपट तय्यार हो गए । ये उन सब पर आक्रमण करते हुए, उस वन में बलपूर्वक घुस गये । इन्होंने अपने महान् सिंहनाद से दशों दिशाओं को भर दिया था ॥५॥

ततोऽपरैरवार्य्यन्त गन्धर्वैः कुरुसैनिकाः ।
ते वार्य्यमाणाः गन्धर्वैः साम्नैव वसुधाधिप ॥६॥

अब कुछ गन्धर्वों ने कुरुसैनिकों को रोका। हे राजन ! अभी तक गन्धर्व, इनको समझा बुझा कर ही रोक रहे थे ॥६॥

ताननादृत्य गन्धर्वास्तांस्तद्वनं विविशुर्महत् ।
यदा वाचा न तिष्ठन्ति धार्त्तराष्ट्राः सराजकाः ॥७॥
ततस्ते खेचराः सर्वे चित्रसेने न्यवेदयन् ।
गन्धर्वराजस्तान् सर्वानब्रवीत् कौरवान् प्रति ॥८॥
अनार्य्यान् शासतेत्येतांश्चित्रसेनो ह्यमर्षणः ।

ये कुरुसैनिक, गन्धर्वों का तिरस्कार करके बलपूर्वक इस विशाल वन में घुस गए । जब राजा सहित सारे धृतराष्ट्र के पुत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचन से नहीं रोके जा सके, तो वे सारे आकाशचारी गन्धर्व देव, गन्धर्वराज चित्रसेन के पास पहुंचे। असहिष्णु, गन्धर्व-राज चित्रसेन ने भी उन सब गन्धर्वों को कौरवों के प्रति यह आज्ञा दी, कि तुम भी इन अनार्यों को ठीक कर दो ॥७-८॥

अनुज्ञाताश्च गन्धर्वाश्चित्रसेनेन भारत ॥९॥
प्रगृहीतायुधाः सर्वे धार्त्तराष्ट्रानभिद्रवन् ।

हे भारत! गन्धर्वराज चित्रसेन की आज्ञा पाकर सारे गन्धर्व, शस्त्र लेकर धृतराष्ट्र के पुत्रों पर टूट पड़े ॥९॥

तान् दृष्ट्वापततः शीघ्रान् गन्धर्वानुद्यतायुधान्॥१०
प्राद्रवंस्ते दिशः सर्वे धार्त्तराष्ट्रस्य पश्यतः ।

शस्त्र उठाकर बड़ी शीघ्रता से गन्धर्वों को आक्रमण करते देखकर राजा दुर्योधनके देखते २ सारे सैनिक भाग निकले ॥१०॥

तान् दृष्ट्वा द्रवतः सर्वान् धार्त्तराष्ट्रान् पराङ्मुखान्११
राधेयस्तु तदा वीरो नासीत्तत्र पराङ्मुखः ।

इन सारे धृतराष्ट्र पुत्रों को युद्ध से मुख फेर कर भागते देखकर भी महावीर कर्ण, उसी तरह युद्ध में डटा रहा। इसने अपना मुख नहीं फेरा ॥११॥

आपतन्तीन्तु संप्रेक्ष्य गन्धर्वाणां महाचमूम् ॥१२॥
महता शरवर्षेण राधेयः प्रत्यवारयत् ।

गन्धर्वों की बड़ी भारी सेना को झपटती हुई देखकर राधा-पुत्र कर्ण ने अपनी बड़ी भारी बाणों की वर्षा से उसको रोक दिया ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुरप्रैर्विशिखैर्भल्लैर्वत्सदन्तैस्तथायसैः ॥१३॥
गन्धर्वाञ्छतशोऽभिघ्नल्लघुत्वात् सूतनन्दनः ।

सूतनन्दन कर्ण ने छुरे के तुल्य, तीक्ष्ण बाण तथा लोहे के बने हुए भाले और वत्सदन्त शस्त्रों से बड़ी फुर्ती के साथ सैकड़ों गन्धर्वों को काट गिराया ॥१३॥

पातयन्नुत्तमाङ्गानि गन्धर्वाणां महारथः ॥१४॥
क्षणेन व्यधमत् सर्वां चित्रसेनस्य वाहिनीम् ।

इस महारथी ने गन्धर्वों के शिरों का ढ़ेर लगा दिया। इसने क्षण भर में चित्रसेन की सारी सेना व्याकुल कर दी ॥१४॥

ते वध्यमाना गन्धर्वाः सूतपुत्रेण धीमता ॥१५॥
भूय एवाभ्यवर्त्तन्त शतशोऽथ सहस्रशः ।
गन्धर्वभूता पृथिवी क्षणेन समपद्यत ॥१६॥
आपतद्भिर्महावेगैश्चित्रसेनस्य सैनिकैः ।

इस रणकुशल कर्ण द्वारा गन्धर्वों के मार गिराने पर सैकड़ों सहस्रों की संख्या में अन्य गन्धर्व उलट पड़े। बड़े वेगशील, आक्रमणकारी, चित्रसेन के सैनिक गन्धर्वों से पृथिवी गन्धर्वमय ही दिखाई देने लगी ॥१५-१६॥

अथ दुर्य्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः ॥१७॥
दुःशासनो विकर्णश्च ये चान्ये धृतराष्ट्रजाः ।
न्यहनंस्तत्तदा सैन्यं रथैर्गरुडनिःस्वनैः ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूयश्च योधयामासुः कृत्वा कर्णमथाग्रतः ।
महता रथसंघेन हयवारेण चाप्युत ॥१९॥
वैकर्त्तनं परीप्सन्तो गन्धर्वान् समवारयन् ।
ततः संन्यपतन् सर्वे गन्धर्वाः कौरवैः सह ॥२०॥
तदा सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
ततस्ते मृदवोऽभूवन् गन्धर्वाः शरपीड़िताः ॥२१॥

अब राजा दुर्योधन, सुबलपुत्र शकुनि, दुःशासन, विकर्ण तथा अन्य धृतराष्ट्र के पुत्र भी गरुड़ के तुल्य शब्द करने वाले रथों में बैठ २ कर गन्धर्व सेना का विध्वंस करने लगे। इन्होंने कर्ण को आगे करके फिर वेग से युद्ध करना आरम्भ किया। इस समय बहुत से रथ और अश्वों से कर्ण की रक्षा करते हुए, कौरव, गन्धर्वों के साथ युद्ध कर रहे थे। कुरु सैनिक, गन्धर्वों का नाश करने को उनको घेरने लगे। इस समय सारे गन्धर्व और कौरवों में एक दम टक्कर हो गई। बड़ा भारी घोर युद्ध हुआ, जिसको देखकर रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं। थोड़ी देर में बाणों से पीड़ित होकर गन्धर्व व्याकुल हो गए ॥१७-२१॥

उच्चक्रुशुश्च कौरव्या गन्धर्वान् प्रेक्ष्य पीडितान्।
गन्धर्वास्त्रासितान् दृष्ट्वा चित्रसेनो ह्यमर्षणः ॥२२॥
उत्पपातासनात् क्रुद्धो वधे तेषां समाहितः ।
ततो मायास्त्रमास्थाय युयुधे चित्रमार्गवित् ॥२३॥
तयामुह्यन्त कौरव्याश्चित्रसेनस्य मायया ।

कुरुसैनिक, गन्धर्वों को पीड़ित देखकर गर्जना करने लगे। इस समय गन्धर्वों को व्याकुल देखकर असहनशील, गन्धर्वराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रसेन, इनका नाश करने के लिए क्रुद्ध होकर अपने आसन से कूद पड़ा। युद्ध के अनेक मार्गों का जानने वाला चित्रसेन, मायामय अस्त्र लेकर युद्ध करने लगा। अब चित्रसेन, की माया से कुरुसैनिक मोहित हो गए ॥२२-२३॥

एकैको हि तदा योधो धार्त्तराष्ट्रस्य भारत ॥२४॥
पर्य्यवर्त्तत गन्धर्वैर्दशभिर्दशभिः सह ।
ततः संपीड्यमानास्ते बलेन महता तदा २५॥
प्राद्रवन्त रणे भीता येन राजन् जिजीषवः ।

हे भारत! राजा दुर्योधन के एक २ वीर को दश २ गन्धर्वों ने घेर लिया। इस प्रकार बड़ी भारी सेना से पीड़ित होकर कुरु-सैनिक, भयभीत होकर प्राण बचाने के लिए रण से भागने लगे ॥२४-२५॥

भज्यमानेष्वनीकेषु धार्त्तराष्ट्रेषु सर्वशः ॥२६॥
कर्णो वैकर्त्तनो राजंस्तस्थौ गिरिरिवाचलः।
दुर्य्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥२७॥
गन्धर्वान् योधयामासुः समरे भृशविक्षताः।

हे राजन! राजा दुर्योधन की सेना के भाग निकलने पर सूर्य पुत्र कर्ण, अचलपर्वत की तरह युद्ध भूमिमें ही खड़ा रहा। इस समय दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि, युद्ध में क्षत विक्षत (जख्मी) होकर भी गन्धर्वों से लोहा ले रहे थे ॥२६-२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्व एव तु गन्धर्वाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२८॥
जिघांसमानाः सहिताः कर्णमभ्यद्रवद्रणे ।
असिभिः पट्टिशैः शूलैर्गदाभिश्च महाबलाः ॥२९॥
सूतपुत्रं जिघांसन्तः समन्तात् पर्य्यवाकिरन् ।

अब सैकड़ों हज़ारों की संख्या में इकट्ठे होकर गन्धर्वों ने एक साथ युद्ध में कर्ण के वध करने को उस पर आक्रमण कर दिया। सूतपुत्र कर्ण के मारने की इच्छावाले, महाबली गन्धर्वों ने तलवार, पट्टिश, शूल और गदाओं से प्रहार करना आरम्भ किया और कर्ण को चारों ओर घेर लिया ॥२८-२९॥

अन्येऽस्य युगमच्छिन्दन् ध्वजमन्ये न्यपातयन् ॥३०
ईषामन्ये हयानन्ये सूतमन्ये न्यपातयन् ।
अन्ये छत्रं वरूथञ्च बन्धुरञ्च तथापरे ॥३१॥
गन्धर्वा बहुसाहस्रास्तिलशो व्यधमन्रथम् ।

किसी ने इसके रथ का जुआ तोड़ डाला, किसी ने इसकी ध्वजा काट गिराई, किसी ने जूड़े के मध्य काष्ठ के खण्ड २ कर दिए, किसी ने अश्व और किसी ने सारथि को मार गिराया। किसी ने इसके रथ के आवरण और किसी ने रथ के बंध काट दिए। इस प्रकार कई सहस्र, गन्धर्वों ने रथ के तिल २ की बराबर टुकड़े कर डाले ॥

ततो रथादवप्लुत्य सूतपुत्रोऽसिचर्मभृत् ।
विकर्णरथमास्थाय मोक्षायाश्वानचोदयन् ॥३२॥
इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि
कर्णरणभङ्गे चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः २४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब सूतपुत्र, कर्ण भी ढ़ाल तलवार लेकर रथ से कूद पड़ा और विकर्ण के रथ पर बैठ कर इसके और अपने बचाने के लिए अश्वों को हांकने लगा ॥३२॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में कर्ण के रण भङ्ग का दो सौ चालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

दो सौ इकतालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

गन्धर्वैस्तु महाराज भग्ने कर्णे महारथे ।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धार्त्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे महाराज ! गन्धर्वों द्वारा महारथी कर्ण के भगा देने पर राजा दुर्योधन के देखते २ सारी सेना भाग निकली ॥१॥

तान् दृष्ट्वा द्रवतः सर्वान् धार्त्तराष्ट्रान् पराङ्मुखान् ।
दुर्य्योधनो महाराज नासीत्तत्र पराङ्मुखः ॥२॥

हे राजन् ! धृतराष्ट्र के अन्य पुत्र, अपने भाइयों को युद्ध से मुख फेरते देख कर भी राजा दुर्योधन, युद्ध से विचलित नहीं हुआ ॥२॥

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य गन्धर्वाणां महाचमूम् ।
महता शरवर्षेण सोऽभ्यवर्षदरिन्दमः ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह शत्रु-विजयी, गन्धर्वों की बड़ी भारी सेना को आक्रमण करती हुई देख कर बड़ी भारी बाण-वर्षा करने लगा ॥३॥

अचिन्त्य शरवर्षन्तु गन्धर्वास्तस्य तं रथम् ।
दुर्य्योधनं जिघांसन्तः समन्तात् पर्य्यवारयन् ॥४॥

गन्धर्व भी दुर्योधन द्वारा की हुई इस बाण-वर्षा को देखकर दुर्योधन के मारने के लिए उसके रथ को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गए ॥४॥

युगमीषां वरूथञ्च तथैव ध्वजसारथी ।
अश्वांस्त्रिवेणु तल्पञ्च तिलशो व्यधमच्छरैः ॥५॥

इन्होंने दुर्योधन के रथ, युग (जूड़े) इसका मध्यकाष्ठ, रथ आवरण, ध्वजा, सारथी, अश्व, त्रिवेणु और तल्प, [बैठने के स्थान] के तिल के बराबर टुकड़े कर डाले ॥५॥

दुर्य्योधनं चित्रसेनो विरथं पतितं भुवि ।
अभिद्रुत्य महाबाहुर्जीवग्राहमथाग्रहीत् ॥६॥

जब दुर्योधन, रथरहित होकर भूमि पर गिर पड़ा, तो महाबाहु चित्रसेन ने दौड़ कर उसको जीता ही पकड़ लिया ॥६॥

तस्मिन् गृहीते राजेन्द्र स्थितं दुःशासनं रथे ।
पर्य्यगृह्णन्त गन्धर्वाः परिवार्य्य समन्ततः ॥७॥

हे राजेन्द्र ! दुर्योधन के पकड़ लेने पर रथ में बैठा हुआ दुःशासन दृष्टिगोचर हुआ । गन्धर्वों ने उसको भी घेर कर पकड़ लिया ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविंशतिचित्रसेनावादायान्ये विदुद्रुवुः ।
विन्दानुविन्दावपरे राजदारांश्च सर्वशः ॥८॥

कुछ गन्धर्व धृतराष्ट्र-पुत्र, विविंशति और चित्रसेन को ले भागे और कुछ विन्द और अनुविंद को तथा कुछ महिलाओं को पकड़ ले गये ॥८॥

योधाश्च धार्त्तराष्ट्रस्य गन्धर्वैः समभिद्रुताः ।
पूर्वप्रभग्नाः सहिताः पाण्डवानभ्ययुस्तदा ॥९॥

गन्धर्वों से खदेड़े हुए, जो दुर्योधन के सैनिक, पहिले भाग निकले थे, वे इकट्ठे ही पाण्डवों के पास पहुंचे ॥९॥

शकटापणवेशाश्च यानयुग्मश्च सर्वशः ।
शरणं पाण्डवान् जग्मुर्ह्रियमाणे महीपतौ ॥१०॥

राजा दुर्योधन के पकड़े जाने पर गाड़ी, खाने पीने का सामान, बिट् आदि मनुष्य और दो यानों को लेकर कुरु-सैनिक-पाण्डवों की शरण में गए ॥१०॥

सैनिका ऊचुः --

प्रियदर्शी महाबाहुर्धार्त्तराष्ट्रो महाबलः ।
गन्धर्वैर्ह्रियते राजा पार्थास्तमनुधावत ॥११॥

सैनिक बोले—हे पार्थो ! महाबली, विशाल भुजा-धारी, दर्शनीय, राजा दुर्योधन को गन्धर्व पकड़ कर ले जाते हैं, आप उनके पीछे दौड़ो और उनको छुड़ाओ ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुर्ज्जयस्तथा ।
बध्वा हियन्ते गन्धर्वैराजदाराश्च सर्वशः ॥१२॥

दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुर्जय आदि धृतराष्ट्र पुत्रों को बाँध कर गन्धर्व लेजा रहे हैं। इन्हों ने राज महिला भी पकड़ ली हैं ॥१२॥

वैशम्पायन उवाच—

इति दुर्य्योधनामात्याः क्रोशन्तो राजगृद्धिनः ।
आर्त्ता दीनास्ततः सर्वे युधिष्ठिरमुपागमन् ॥१३॥

वैशम्पायन बोले---हे राजन्! राजा दुर्योधन के छुड़ाने की इच्छा वाले, दुर्योधन के सारे मन्त्री, रोते-चिल्लाते हुए, दुःखी और दीन होकर राजा युधिष्ठिर के पास पहुंचे ॥१३॥

तांस्तथा व्यथितान् दीनान् भिक्षमाणान् युधिष्ठिरम् ।
वृद्धान् दुर्य्योधनामात्यान् भीमसेनोऽभ्यभाषत ॥१४॥

उन दुःखी, दीन, राजा युधिष्ठिर से भिक्षा मांगते हुए, वृद्ध, दुर्योधन के मन्त्रियों को देख कर भीमसेन कहने लगा ॥१४॥

महता हि प्रयत्नेन सन्नह्य गजवाजिभिः ।
अस्माभिर्यदनुष्ठेयं गन्धर्वैस्तदनुष्ठितम् ॥१५॥

अनेक हाथी घोड़े जोड़ कर बड़े प्रयत्न से जो कार्य हम कर पाते, वह कार्य गन्धर्वों ने आज कर दिया हैं ॥१५॥

अन्यथा वर्त्तमानानामर्थो जातोऽयमन्यथा ।
दुर्मन्त्रितमिदं तावद्राज्ञो दुर्द्यूतदेविनः ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमने तो और ही कुछ करना चाहा था और यहां कुछ और ही हो गया। यह जुआ खेलने वाले राजा दुर्योधन के बुरे विचारों का दण्ड है ॥१६॥

द्वेष्टारमन्ये क्लीबस्य पातयन्तीति नः श्रुतम् ।
इदं कृतन्नः प्रत्यक्षं गन्धर्वैरतिमानुषम् ॥१७॥

दुर्बल विचार वाले मनुष्य के भी द्वेष करने वालों को कभी-कभी कोई अन्य ही गिरा देता है--यह सुना जाता है। इस बात को गन्धर्वों ने मनुष्यों की शक्ति से बाहर कर्म करके प्रत्यक्ष दिखा दिया है ॥१७॥

दिष्ट्या लोके पुमानस्ति कश्चिदस्मत्प्रिये स्थितः ।
येनास्माकं हृतो भार आसीनानां सुखावहः ॥१८॥

यह बड़े हर्ष की बात है, कि कोई मनुष्य, लोक में हमारे हित का करने वाला भी विद्यमान है, जिसने बैठे हुए ही हमारा बोझा हल्का कर दिया है और जिससे हमें बड़ा ही सुख हो रहा है ॥१८॥

शीतवातातपसहांस्तपसा चैव कर्षितान् ।
समस्थो विषमस्थान् हि द्रष्टुमिच्छति दुर्मतिः ॥१९

यह समृद्धशाली दुर्जन दुर्योधन, शीत, वायु, धूप के सहने वाले, तप से कृश, विपत्तिग्रस्त हम पाण्डवों को देखने के लिए ही वन में आया था ॥१९॥

अधर्मचारिणस्तस्य कौरव्यस्य दुरात्मनः ।
ये शीलमनुवर्त्तन्ते ते पश्यन्ति पराभवम् ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अधर्मी दुरात्मा, दुर्योधन के साथ जो धर्म का व्यवहार करते हैं, वे पराजय पाते हैं ॥२०॥

अधर्मो हि कृतस्तेन येनैतदुपशिक्षितम् ।
अनृशंसास्तु कौन्तेयास्तत्प्रत्यक्षं ब्रवीमि वः ॥२१॥

जिसने ऐसे समय पर सहायता करने की शिक्षा दी हो, उसने अधर्म ही किया है। कुन्तीपुत्र, पाण्डव, नीच नहीं है, जो तुम्हारी सहायता करके अधर्म करें--यह मैं प्रत्यक्ष कह देना चाहता हूं ॥२१॥

एवं ब्रुवाणं कौन्तेयं भीमसेनमपस्वरम् ।
न कालः पुरुषस्यायमिति राजाभ्यभाषत ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्य्योधनादिहरणे एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः २४१

इस प्रकार क्रोध पूर्ण स्वर में कुन्ती-पुत्र, भीम के कहने पर राजा युधिष्ठिर ने कहा--हे भीम, यह कटु वचन बोलने का समय नहीं है ।,२२॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में दुर्योधन आदि के पकड़ने का दो सौ इकतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ बयालीसवां अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

अस्मानभिगतांस्तात भयार्त्ताञ्छरणैषिणः ।
कौरवान् विषमप्राप्तान् कथं ब्रूयास्त्वमीदृशम् ॥१॥

युधिष्ठिर बोले--हे भीमसेन ! भयभीत होकर हमारी शरण में आये हुए, विपत्ति ग्रस्त कौरवों से तुम ऐसा कठोर कैसे बोल रहे हो ॥१॥

भवन्ति भेदा ज्ञातीनां कलहाश्च वृकोदर ।
प्रसक्तानि च वैराणि कुलधर्मो न नश्यति ॥१॥

हे वृकोदर ! बन्धुओं में फूट और कलह भी हो जाता है, वैर चल पड़ते हैं परन्तु इस से कुल धर्मों का नाश नहीं होता है।

यदा तु कश्चिज्ज्ञातीनां बाह्यः प्रार्थयते कुलम् ।
न मर्षयन्ति तत् सन्तो बाह्यं नाभिप्रधर्षणम् ॥३॥

यदि कोई बाहर की शक्ति, अपने बन्धुओं पर या कुल पर आक्रमण करे तो वीर होने पर भी समझदार मनुष्य, बाहर के आक्रमण को नहीं सह सकता है ॥३॥

जानात्येष हि दुर्बुद्धिरस्मानिह चिरोषितान् ।
स एवं परिभूयास्मानकार्षीदिदमप्रियम् ॥४॥

यह दुर्बुद्धि गन्धर्व-राज, यह जानता है, कि बहुत दिन से पाण्डव, यहां रह रहे हैं। उसने हमारे बन्धुओं को पकड़ कर हमारा अपमान किया है ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्य्योधनस्य ग्रहणात् गन्धर्वेण बलात् प्रभो ।
स्त्रीणां बाह्याभिमर्षाच्च हतं भवति नः कुलम् ॥५॥

हे शक्तिशाली ! गन्धर्वों द्वारा बल-पूर्वक, दुर्योधन के पकड लेने तथा स्त्रियों पर आक्रमण करने से तो कुल की प्रतिष्ठा ही नष्ट हो जावेगी ॥५॥

शरणश्च प्रपन्नानां त्राणार्थश्च कुलस्य च ।
उत्तिष्ठध्वं नरव्याघ्राः सज्जीभवत मा चिरम् ॥६॥

हे नरश्रेष्ठो ! इन शरणागतों की रक्षा और कुल की प्रतिष्ठा बचाने के लिये तुम शीघ्र तय्यार हो जाओ, देर न करो ॥६॥

अर्जुनश्च यमौ चैव त्वञ्च वीरापराजितः ।
मोक्षयध्वं नरव्याघ्राः ह्रियमाणं सुयोधनम् ॥७॥

हे वीर ! अर्जुन, नकुल, सहदेव और तुम (भीम) कभी पराजित होने वाले नहीं हो । हे पुरुषोत्तमो ! तुम शीघ्र जाकर पकड़ कर ले जाते हुए दुर्योधन को छुड़ा लाओ ॥७॥

एते रथा नरव्याघ्राः सर्वशस्त्रसमन्विताः ।
धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां विमलाः काञ्चनध्वजाः ॥८॥
सस्वनानधिरोहध्वं नित्यसज्जानिमान् रथान् ।
इन्द्रसेनादिभिः सूतैः कृतशस्त्रैरधिष्ठितान् ॥९॥

हे नरव्याघ्रो ! ये सब शस्त्रों से सजे हुए, धृतराष्ट्र के पुत्रों के सुवर्ण की ध्वजा वाले, चमकते हुए रथ खड़े हैं । घोर शब्द करने वाले, नित्य सजे हुए, इन रथों पर झटपट चढ़ जाओ । ये रथ, इन्द्रसेन आदि चतुर सारथि और उत्तम२ शस्त्रों से सुसज्जित हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतानास्थाय वै ताता गन्धर्वान् योद्धु माहवे।
सुयोधनस्य मोक्षाय प्रयतध्वमतन्द्रिताः ॥१०॥

हे तात! तुम इन रथों में चढ़ कर युद्ध में गन्धर्वों से लड़ने तथा दुर्योधन के छुड़ाने का बड़ी सावधानी से प्रयत्न करो ॥१०॥

य एव कश्चिद्राजन्यः शरणार्थमिहागतम्।
परं शक्त्याभिरक्षेत किं पुनस्त्वं वृकोदर ॥११॥

हे भीमसेन! जो कोई शरणार्थी आवे, तो वह अपनी शक्ति के अनुसार उसकी रक्षा करेगा---जिस में तो तुम क्षत्रियश्रेष्ठ भीमसेन हो ॥११॥

क इहार्य्यो भवेत् त्राणमभिधावेति चोदितः।
प्राञ्जलिं शरणापन्नं दृष्ट्वा शत्रुमपि ध्रुवम् ॥१२॥

कौन ऐसा आर्य है, जो "दौड़ो" "रक्षा करो" यह सुनते ही हाथ जोड़े हुए शरणागत शत्रु को भी देख कर उसकी रक्षा नहीं करता है ॥१२॥

वरदानश्च राज्यश्च पुत्रजन्म च पाण्डवाः।
शत्रोश्च मोक्षणं क्लेशात्त्रीणि चैकश्च तत्समम् ॥१३॥

आर्य पुरुष को वरदान, राज्य और पुत्रजन्म इन तीनों के प्राप्त होने का आनन्द और शरणागत शत्रु के छुड़ाने का आनन्द, बराबर ही है ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किञ्चाप्यधिकमेतस्माद्यदापन्नः सुयोधनः।
त्वद्बाहुबलमाश्रित्य जीवितं परिमार्गते ॥१४॥

इससे अधिक क्या उत्तम हो सकता है? जो विपन्मग्न दुर्योधन, तेरे भुजबल का आश्रय पाकर अपना जीवन चाहता है ॥१४॥

स्वयमेव प्रधावेयं यदि न स्याद्वृकोदर।
वितत्तो मे क्रतुर्वीर न हि मेऽत्र विचारणा ॥१५॥

हे वृकोदर वीर! यदि मेरा यह यज्ञ का कार्य नहीं बिखरा होता, तो मैं स्वयं दौड़ कर जाता--इसमें सन्देह न समझो ॥१५॥

साम्नैव तु यथा भीम मोचयेथाः सुयोधनम्।
तथा सर्वैरुपायैस्त्वं यतेथाः कुरुनन्दनः ॥१६॥
न साम्ना प्रतिपद्येत यदि गन्धर्वराडसौ।
पराक्रमेण मृदुना मोचयेथाः सुयोधनम् ॥१७॥
अथासौ मृदुयुद्धेन न मुञ्चेद्भीम कौरवान्।
सर्वोपायैर्विमोच्यास्ते निगृह्य परिपन्थिनः ॥१८॥

हे कुरुनन्दन! भीम! जहां तक हो सके-सारे उपाय करके तुम शान्ति से ही दुर्योधन को गन्धर्वों के बन्धन से छुड़ा देना। यदि गन्धर्व राज चित्रसेन, समझने से न माने, तो साधारण पराक्रम करके दुर्योधन को छुड़ाना। हे भीम! यदि साधारण युद्ध से भी गन्धर्वराज, दुर्योधन को न छोड़ें, तो तुम विरोधी को पकड़ कर सब कुछ उपायों द्वारा दुर्योधन को छुड़ा देना ॥१६-१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतावद्धि मया शक्यं सन्देष्टुं वै वृकोदर ।
वैताने कर्मणि तते वर्त्तमाने च भारत ॥१९॥

हे भरत-वंश-श्रेष्ठ ! भीम ! मैं तो तुमको इतना ही कह सकता हूं । मेरा तो यह यज्ञ कर्म का कार्य आरम्भ हो रहा है ।

वैशम्पायन उवाच—

अजातशत्रोर्वचनं तच्छ्रुत्वा तु धनञ्जयः ।
प्रतिजज्ञे गुरोर्वाक्यात् कौरवाणां विमोचनम् ॥२०॥

वैशम्पायन बोले---हे राजन् । अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर, के वचन सुन कर अर्जुन ने अपने पूज्य की आज्ञानुसार दुर्योधन के छुड़ाने की प्रतिज्ञा की ॥२०॥

अर्जुन उवाच—

यदि साम्नान मोक्ष्यन्ति गन्धर्वा धृतराष्ट्रजान् ।
अद्य गन्धर्वराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥२१।

अर्जुन ने कहा---यदि गन्धर्व, धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन को समझाने से नहीं छोड़ेंगे---तो आज ही भूमि, गन्धर्वराज के रक्त का पान कर लेगी ॥२१॥

अर्जुनस्य तु तां श्रुत्वा प्रतिज्ञां सत्यवादिनः ।
कौरवाणां तदा राजन् पुनः प्रत्यागतं मनः ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्य्योधन-मोक्षणानुज्ञायां द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः २४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! अब इस प्रकार सत्यवादी, दृढ़प्रतिज्ञ, अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुन कर कौरवों के प्राणों में प्राण आए ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में दुर्योधन के छुड़ाने की प्रतिज्ञा का दोसौ बयालीसवां अध्याय समाप्त हुआ

दोसौ तेतालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

युधिष्ठिरवचः श्रुत्वा भीमसेनपुरोगमाः ।
प्रहृष्टवदनाः सर्वे समुत्तस्थुर्नरर्षभाः ॥१॥

वैशम्पायन बोले---हे राजन् ! युधिष्ठिर के वचन सुन कर भीमसेन आदि नरश्रेष्ठ सारे पाण्डव, प्रसन्न होकर खड़े हो गए ॥१॥

अभेद्यानि ततः सर्वे समनह्यन्त भारत ।
जाम्बूनदविचित्राणि कवचानि महारथाः ॥२॥
आयुधानि च दिव्यानि विविधानि समादधुः ।

हे भारत ! इन सारे महारथियों ने अब सुवर्ण के बने हुए, नहीं बिंधने वाले, अद्भुत २ कवच पहन लिए और अनेक दिव्य शस्त्र धारण कर लिये ॥२॥

ते दंशिता रथैः सर्वे ध्वजिनः सशरासनाः ॥३॥
पाण्डवाः प्रत्यदृश्यन्त ज्वलिता इव पावकाः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सारे पाण्डव, रथों में चढ़कर तय्यार हो गए। इन्होंने ध्वजा लगायी और धनुष धारण कर लिये। इस समय ये पाण्डव, प्रज्वलित अग्नि के समान प्रतीत होते थे ॥३॥

तान्रथान् साधुसम्पन्नान् संयुक्तान् जवनैर्हयैः ॥४॥
आस्थाय रणशार्दूलाः शीघ्रमेव ययुस्ततः ।

शस्त्र आदि रण सामग्री से सुसज्जित, वेगशाली अश्वों से युक्त, रथों में बैठ कर ये रण-केशरी, बड़ी शीघ्रता से चल दिए ॥

ततः कौरवसैन्यानां प्रादुरासीन्महास्वनः ॥५॥
प्रयातान् सहितान् दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रान्महारथान् ।

अपने साथ महारथी पाण्डु-पुत्रों को चलते हुए देख कर कौरवों की सेना, बड़ा कोलाहल मचाने लगी ॥५॥

जितकाशिनश्च खचरास्त्वरिताश्च महारथाः ॥६॥
क्षणेनैव वने तस्मिन् समाजग्मुरभीतवत् ।

विजय की आशा वाले, आकाशचारी, शीघ्रगामी, महारथी गन्धर्व, निर्भयता से क्षण भर में ही उस वन में पहुंच गए ॥६॥

न्यवर्त्तन्त ततः सर्वे गन्धर्वा जितकाशिनः ॥७॥
दृष्ट्वा रथगतान् वीरान् पाण्डवांश्चतुरो रणे ।

जीतने की आशा वाले, सारे गन्धर्व, रणचतुर रथ में बैठे हुए चारों पाण्डवों को देखकर वापिस लौट गये ॥७॥

तांस्तु विभ्राजितान् दृष्ट्वा लोकपालानिवोद्यतान् ॥८॥
व्यूढानीका व्यतिष्ठन्त गन्धमादनवासिनः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकपालों के समान देदीप्यमान, सम्मुख उपस्थित, पाण्डवों को देखकर दृढ़-सेना-वाले, गन्धमादन-निवासी गन्धर्व, ठिठके से खड़े रह गए ॥८॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धर्मपुत्रस्य धीमतः ॥९॥
क्रमेण मृदुना युद्धमुपक्रान्तञ्च भारत ।

हे भारत ! बुद्धिमान, धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर की आज्ञानुसार पाण्डवों ने प्रथम हल्का सा युद्ध आरम्भ किया ॥९॥

नतु गन्धर्वराजस्य सैनिका मन्दचेतसः ॥१०॥
शक्यन्ते मृदुना श्रेयः प्रतिपादयितुं यदा ।
ततस्तान् युधि दुर्द्धर्षान् सव्यसाची परन्तपः ॥११॥
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमुवाच खचरान्रणे ।
विसर्ज्जयत राजानं भ्रातरं मे सुयोधनम् ॥१२॥

अज्ञानी, गन्धर्वराज के सैनिकों ने इस साधारण युद्ध से पाण्डवों को कल्याण प्राप्ति नहीं होने दी। तब युद्ध में दुर्धर्ष, आकाशचारी, देवों से, युद्ध में शत्रु-विजयी अर्जुन, शान्तिपूर्वक यह वचन कहने लगा। हे गन्धर्व ! तुम मेरे भाई राजा दुर्योधन को छोड़ दो ॥१०-१२॥

त एवमुक्ता गन्धर्वाः पाण्डवेन यशस्विना ।
उत्स्मयन्तस्तदा पार्थमिदं वचनमब्रुवन् ॥१३॥

यशस्वी, पाण्डुपुत्र अर्जुन ने जब गन्धर्वों से इतना कहा-- तो वे मुस्कुराकर अर्जुन से यह वचन बोले—॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकस्यैव वयं तात कुर्य्याम वचनं भुवि ।
यस्य शासनमाज्ञाय चरामो विगतज्वराः ॥१४॥

हे तात ! हम तो भूमि पर एक स्वामी के ही वचन मानते हैं, जिसकी आज्ञा मानकर क्लेशरहित होकर हम भूमि पर घूमते हैं ॥१४॥

तेनैकेन यथादिष्टं तथा वर्त्तामि भारत ।
न शास्ता विद्यतेऽस्माकमन्यस्तस्मात् सुरेश्वरात् ॥१५॥

हे भारत ! वह अकेला, जो आज्ञा देता है, हम वैसा ही करते हैं। हमारा तो इन्द्र को छोड़कर अन्य कोई शासक नहीं है ॥१५॥

एवमुक्तः स गन्धर्वैः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
गन्धर्वान् पुनरेवेदं वचनं प्रत्यभाषत ॥१६॥

जब गन्धर्वों ने इतना कहा--तो कुन्तीपुत्र अर्जुन, फिर गन्धर्वों से यह वचन कहने लगा ॥१६॥

न तद्गन्धर्वराजस्य युक्तं कर्म जुगुप्सितम् ।
परदाराभिमर्शश्च मानुषैश्च समागमः ॥१७॥

अन्य की स्त्रियों पर आक्रमण और मनुष्यों से झगड़ा करना, गन्धर्वराज को यह निन्दित कर्म करना उचित नहीं है ॥

उत्सृजध्वं महावीर्या धृतराष्ट्रसुतानिमान् ।
दारांश्चैषां विमुञ्चध्वं धर्मराजस्य शासनात् ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे महाशक्तिशाली ! गन्धर्वों ! तुम इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को छोड़ दो और इनकी स्त्रियों को भी जाने दो। धर्मराज युधिष्ठिर यही चाहते हैं ॥१८॥

यदि साम्ना न मुञ्चध्वं गन्धर्वा धृतराष्ट्रजान्।
मोक्षयिष्यामि विक्रम्य स्वयमेव सुयोधनन् ॥१९॥

हे गन्धर्वो ! तुम यदि धृतराष्ट्र के पुत्रों को समझाने से नहीं छोड़ोगे—तो मैं पराक्रम करके स्वयं दुर्योधन को छुड़ा लूंगा ॥१९॥

एवमुक्त्वा ततः सार्थः सव्यसाची धनञ्जयः।
ससर्ज्ज निशितान् बाणान् खचरान् खचरान् प्रति ॥

इतना कह कर पृथापुत्र, सव्यसाची, अर्जुन ने आकाशगामी तीक्ष्ण बाण, आकाशचारी गन्धर्वों पर चलाए ॥२०॥

तथैव शरवर्षेण गन्धर्वास्ते बलोत्कटाः।
पाण्डवानभ्यवर्त्तन्त पाण्डवाश्च दिवौकसः ॥२१॥

इसी तरह महाबली गन्धर्वों ने भी पाण्डवों पर बाणों की वर्षा करना आरम्भ की और पाण्डवों ने भी देवों पर बाणों की झड़ी लगादी ॥२१॥

ततः सुतुमुलं युद्धं गन्धर्वाणां तरस्विनाम्।
बभूव भीमवेगानां पाण्डवानाञ्च भारत॥२२॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि पाण्डव गन्धर्वयुद्धे त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥१४३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

महाभारत चित्र संख्या ४८

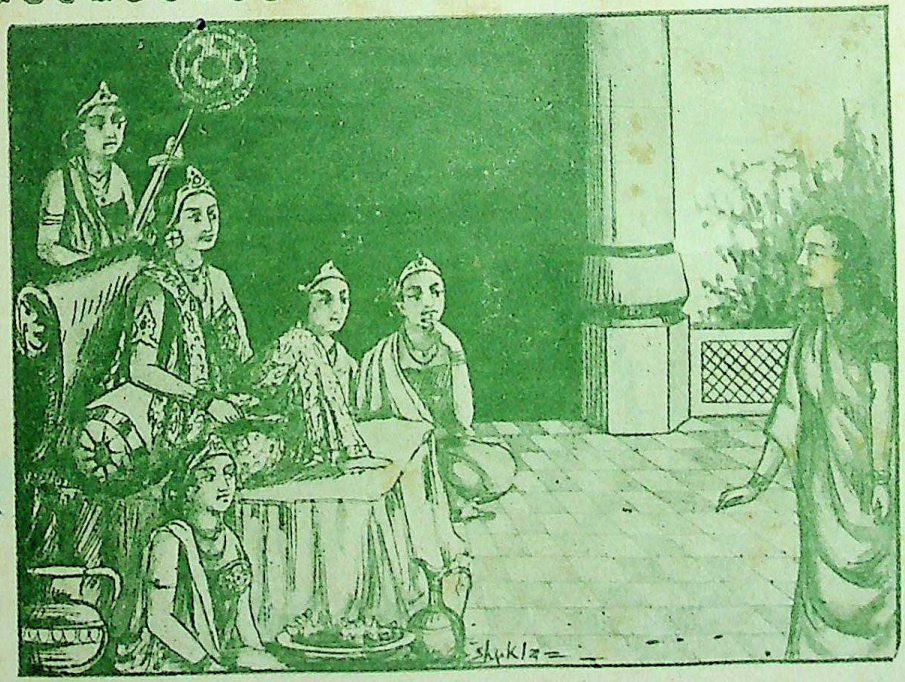

महारानी द्रौपदी का राजा विराट के महलों में प्रवेश करके सैरिन्ध्री नाम बताना म० वि० पृ० ७४६

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भारत ! इस तरह वेगशील गन्धर्व और भयङ्कर वेग वाले, पाण्डवों का बड़ा घमसान युद्ध हुआ ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में पाण्डव और गन्धर्वों के युद्ध का दो सौ तेतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ

दो सौ चवालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो दिव्यास्त्रसम्पन्ना गन्धर्वा हेममालिनः ।
विसृजन्तः शरान् दीप्तान् समन्तात्पर्य्यवारयन् ॥१

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर दिव्य अस्त्रों से युक्त, सुवर्ण की माला पहने हुए गन्धर्वों ने तीक्ष्ण बाण छोड़ कर पाण्डवों को चारों ओर से घेर लिया ॥१॥

चत्वारः पाण्डवा वीरा गन्धर्वाश्च सहस्रशः ।
रणे संन्यपतन्राजंस्तदद्भुतमिवाभवन् ॥२॥

हे राजन् ! चार वीर पाण्डव और सहस्रों की संख्या में गन्धर्व, रण में आ धमके । इन दोनों का बड़ा अद्भुत युद्ध आरम्भ हुआ ॥२॥

यथा कर्णस्य च रथो धार्त्तराष्ट्रस्य चोभयोः ।
गन्धर्वैः शतशश्छिन्नो तथा तेषां प्रचक्रिरे ॥३॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस तरह कर्ण और राजा दुर्योधन दोनों के रथों को गन्धर्वों ने चूर २ कर दिया था, यही इन पाण्डवों के रथों की दशा थी ॥३॥

तान् समापततो राजन् गन्धर्वाञ्छतशो रणे ।
प्रत्यगृह्णन्नरव्याघ्राः शरवर्षैरनेकशः ॥४॥

हे राजन् ! सैकड़ों की संख्या में गन्धर्वों को रण भूमि में आते देखकर इन नर-श्रेष्ठ पाण्डवों ने भी अनेक भांति से बाण बरसाना आरम्भ किया ॥४॥

ते कीर्य्यमाणाः खगमाः शरवर्षैः समन्ततः ।
न शेकुः पाण्डुपुत्राणां समीपे परिवर्त्तितुम् ॥५॥

इस प्रकार की बाण वर्षा से इधर उधर बिखरे हुए, आकाश-चारी गन्धर्व, पाण्डु पुत्रों के पास तक नहीं पहुंच पाते थे ॥५॥

अतिक्रुद्धानतिक्रुद्धो गन्धर्वानर्जुनस्तदा ।
लक्षयित्वाथ दिव्यानि महास्त्राण्युपचक्रमे ॥६॥

अब अत्यन्त क्रुद्ध हुआ अर्जुन, अत्यन्त कुपित गन्धर्वों को लक्ष्य करके दिव्य अस्त्रों को छोड़ने लगा ॥६॥

सहस्राणां सहस्राणि प्राहिणोद्यमसादनम् ।
आग्नेयेनार्जुनः सङ्ख्ये गन्धर्वाणां बलोत्कटः ॥७॥

इस युद्ध में महाबली अर्जुन ने आग्नेय अस्त्र से लाखों की संख्या में गन्धर्वों को यमराज के घर पहुंचा दिया ॥७॥

तथा भीमो महेष्वासः संयुगे बलिनाम्वरः ।
गन्धर्वान् शतशो राजन् जघान निशितैः शरैः ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! इसी तरह महाधनुर्धर, बलवानों में श्रेष्ठ, भीम ने भी तीक्ष्ण बाणों से सैकड़ों गन्धर्वों को मार गिराया ॥८॥

माद्रीपुत्रावपि तथा युध्यमानौ लघोत्कटौ ।
परिगृह्याग्रतो राजन् जघ्नतुः शतशः परान् ॥९॥

हे राजन् ! बलशाली माद्रीपुत्र, नकुल सहदेव ने भी आगे से घेर कर सैकड़ों गन्धर्वों का वध कर डाला ॥९॥

ते वध्यमाना गन्धर्वा दिव्यैरस्त्रैर्महारथैः ।
उत्पेतुः खमुपादाय धृतराष्ट्रसुतांस्ततः ॥१०॥

इन महारथी पाण्डवों द्वारा दिव्य अस्त्रों से मारे हुए गन्धर्व, आकाश में उड़कर धृतराष्ट्र के पुत्रों के पास पहुंचे ॥१०॥

स तानुत्पतितान् दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
महता शरजालेन समन्तात् पर्य्यवारयत् ॥११॥

इनको उड़ते हुए देखकर कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने बड़ी भारी बाण, बर्षा से उनको चारों ओर से घेर लिया ॥११॥

ते बद्धाः शरजालेन शकुन्ता इव पञ्जरे ।
ववर्षुरर्जुनं क्रोधाद्गदाशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ॥१२॥

इस समय पिञ्जरे में पक्षियों की भांति गन्धर्व, बाणों के पिञ्जरे में फंस गए, जिससे कुपित होकर इन्होंने अर्जुन पर गदा. शक्ति, ऋष्टि आदि अनेक शस्त्र बरसाये ॥१२॥

गदाशक्त्यृष्टिवृष्टीस्ता निहत्य परमास्त्रवित् ।
गात्राणि चाहनद्भल्लैर्गन्धर्वाणां धनञ्जयः ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े उत्तम २ अस्त्रों के प्रयोग के जानने वाले, अर्जुन ने इनकी गदा, शक्ति और ऋष्टि शस्त्रों की वर्षा को नष्ट कर दिया और तीक्ष्ण भालों से अनेक गन्धर्वों के शरीर बींध डाले ॥१३॥

शिरोभिः प्रपतद्भिश्च चरणैर्बाहुभिस्तथा ।
अश्मवृष्टिरिवाभाति परेषामभवद्भयम् ॥१४॥

गन्धर्वों के कटकर गिरते हुए शिर, चरण और भुजाओं से पत्थरों की वर्षा सी हो रही थी, जिससे विरोधी-पक्ष को बड़ा भय खड़ा हो गया ॥१४॥

ते वध्यमाना गन्धर्वाः पाण्डवेन महात्मना ।
भूमिष्ठमन्तरीक्षस्थाः शरवर्षैरवाकिरन् ॥१५॥

महाबीर अर्जुन से मारे पीटे हुए, बहुत से गन्धर्व, आकाश में उड़ गए और वहां से तीव्र बाणों की वर्षा करने लगे ॥१५॥

तेषान्तु शरवर्षाणि सव्यसाची परन्तपः ।
अस्त्रैः संवार्य्य तेजस्वी गन्धर्वान् प्रत्यविध्यत ॥१६

शत्रुविजयी तेजस्वी अर्जुन ने भी उनकी बाण वर्षा को अपने दिव्य अस्त्रों से रोक दिया और गन्धर्वों के शरीरों को बींध डाला ॥१६॥

स्थूलकर्णेन्द्रजालश्च सौरश्चापि तथार्जुनः ।
आग्नेयश्चापि सौम्यश्च ससर्ज्ज कुरुनन्दनः ॥१७॥

कुरुनन्दन अर्जुन ने इस युद्ध में स्थूलकर्ण, इन्द्रजाल, आग्नेय और सौम्य अस्त्रों का प्रयोग किया ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते दह्यमाना गन्धर्वाः कुन्तीपुत्रस्य सायकैः ।
दैतेया इव शक्रेण विषादमगमन् परम् ॥१८॥

इन्द्र जैसे दैत्यों को बींध डालता है, इसी तरह कुन्ती पुत्र अर्जुन के बाणों से गन्धर्व बींधे गए। इस समय ये बड़े ही विषाद को प्राप्त हुए ॥१८॥

ऊर्ध्वमाक्रममाणाश्च शरजालेन वारिताः ।
विसर्पमाणा भल्लैश्च वार्य्यन्ते सत्यसाचिना ॥१९॥

ये ऊपर आकर आक्रमण करना चाहते थे, कि अर्जुन ने बाणवर्षा से रोक दिया। ये भाले लेकर दौड़े, तो भी अर्जुन ने रोक लिया ॥१९॥

गन्धर्वास्त्रासितान् दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रेण भारत ।
चित्रसेनो गदां गृह्य सव्यसाचिनमाद्रवत् ॥२०॥

हे भारत ! जब कुन्ती पुत्र अर्जुन द्वारा गन्धर्वों को पीड़ित देखा, तो चित्रसेन गन्धर्वराज, गदा लेकर स्वयं अर्जुन पर झपटा ॥२०॥

तस्याभिपततस्तूर्णं गदाहस्तस्य संयुगे ।
गदां सर्वायसीं पार्थः शरैश्चिच्छेद सप्तधा ॥२१॥

गदा हाथ में लेकर शीघ्रता से झपटते हुए चित्रसेन की पक्के लोहे की गदा को इस युद्ध में अर्जुन ने अपने बाणों से सात भागों में काट गिराया ॥२१॥

स गदां बहुधा दृष्ट्वा कृत्तां बाणैस्तरस्विना ।
संवृत्य विद्ययात्मानं योधयामास पाण्डवम् ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब इसने देखा, कि इस तेजस्वी अर्जुन ने तो मेरी गदा के भी टुकड़े कर दिये, तो यह माया से अपने को छुपा कर अर्जुन से युद्ध करने लगा ॥२२॥

अस्त्राणि तस्य दिव्यानि सम्प्रयुक्तानि सर्वशः ।
दिव्यैरस्त्रैस्तदा वीरः पर्य्यवारयदर्जुनः ॥२३॥

वीर अर्जुन ने भी इसके प्रयुक्त किए हुए सारे दिव्य अस्त्रों को अपने दिव्य अस्त्रों द्वारा सब ओर से घेर लिया ॥२३॥

स वार्य्यमाणस्तैरस्त्रैरर्जुनेन महात्मना ।
गन्धर्वराजो बलवान् माययान्तर्हितस्तदा ॥२४॥

महाबली अर्जुन द्वारा दिव्य अस्त्रों से रोका हुआ, बलवान् गन्धर्वराज, माया से अलक्षित हो गया ॥२४॥

अन्तर्हितन्तमालक्ष्य प्रहरन्तमथार्जुनः ।
ताडयामास खचरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥२५॥

अर्जुन ने जब अलक्षित होकर प्रहार करते हुए गन्धर्वराज को देखा, तो दिव्य अस्त्रों से अभिमन्त्रित करके आकाशचारी बाण चलाना आरम्भ किया ॥२५॥

अन्तर्धानवधश्चास्य चक्रे क्रुद्धोर्जुनस्तदा ।
शब्दवेधं समाश्रित्य बहुरूपो धनञ्जयः ॥२६॥

अनेक प्रकार से युद्ध करने वाले क्रुद्ध अर्जुन ने भी इस अलक्षित गन्धर्वराज पर शब्दबेधी बाण छोड़कर प्रहार किया ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स वध्यमानस्तैरस्त्रैरर्जुनेन महात्मना ।
ततोऽस्य दर्शयामास तदात्मानं प्रियः सखा ॥२७॥
चित्रसेनस्तथोवाच सखायं युधि विद्धि माम् ।

महात्मा अर्जुन द्वारा उन दिव्य अस्त्रों से बिंधे हुए अर्जुन के प्रियमित्र चित्रसेन ने, फिर अपने रूप को प्रकट किया और अर्जुन से कहा—क्या तुम मुझको नहीं पहचानते हो, मैं तुम्हारा मित्र चित्रसेन हूं ॥२७॥

चित्रसेनं समालक्ष्य सखायं युधि दुर्बलम् ॥२८॥
संजहारास्त्रमथ तत् प्रसृष्टं पाण्डवर्षभः ।

पाण्डव-श्रेष्ठ अर्जुन ने अपने मित्र, युद्ध में निर्बल, चित्रसेन को देखकर अपने छोड़े हुए अस्त्रका संहार कर लिया ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवाः सर्वे संहृतास्त्रं धनञ्जयम् २९॥
संजहुः प्रद्रुतानश्वान् शरवेगान् धनूंषि च ।

जब अन्य सारे पाण्डवों ने देखा, कि अर्जुन ने अपना अस्त्र रोक लिया, तो उन्होंने भी तीव्रगामी अश्व, बाण और धनुषों को रोक लिया ॥२९॥

चित्रसेनश्च भीमश्च सव्यसाची यमावपि ।
पृष्ट्वा कौशल्यमन्योऽन्यं रथेष्वेवावतस्थिरे ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि गन्धर्व-पराभवे चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब चित्रसेन, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव भी परस्पर मिले और एक दूसरे से कुशल पूछ कर रथों में बैठ गये ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में गन्धर्व-राज की पराभव का दो सौ चवालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

****

दो सौ पैंतालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततोऽर्जुनश्चित्रसेनं प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
मध्ये गन्धर्वसैन्यानां महेष्वासो महाद्युतिः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! महा-धनुर्धर, अत्यन्त कान्तिमान्, अर्जुन ने गन्धर्व सेनाके मध्य में चित्रसेन से हंसते हुए कहा ॥१॥

किन्ते व्यवसितं वीर कौरवाणां विनिग्रहे ।
किमर्थञ्च सदारोऽयं निगृहीतः सुयोधनः ॥२॥

हे वीर ! चित्रसेन ! तुमने कौरवों के पकड़ने का क्यों प्रयत्न किया है और इस दुर्योधन को स्त्रियों सहित क्यों पकड़ाहै।

चित्रसेन उवाच—

विदितोऽयमभिप्रायस्तत्रस्थेन दुरात्मनः ।
दुर्य्योधनस्य पापस्य कर्णस्य च धनञ्जयः ॥३॥

चित्रसेन ने कहा—हे धनञ्जय ! हमने अपने स्थान पर ही इस दुरात्मा दुर्योधन और पापी कर्ण का अभिप्राय जान लिया था ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनस्थान् भवतो ज्ञात्वा क्लिश्यमानामनाथवत् ।
समस्थो विषमस्थांस्तान् द्रक्ष्यामीत्यनवस्थितान् ॥४॥

यह दुर्योधन, अनाथ की तरह क्लेश पाते हुए, वनवासी आप लोगों को जान कर यह चाहता था, कि मैं समृद्धि-शाली, विपत्ति-ग्रस्त पाण्डवों को देखूं ॥४॥

इमेऽवहसितुं प्राप्ता द्रौपदीञ्च यशस्विनीम् ।
ज्ञात्वा चिकीर्षितं चैषां प्रामुवाच सुरेश्वरः ॥५॥

ये तुम्हारा और यशस्विनी द्रौपदी का उपहास करने के लिए यहां आए थे। इनकी इस अभिलाषा को जान कर मुझ से सुरेश्वर इन्द्र ने कहा ॥५॥

गच्छ दुर्य्योधनं बद्ध्वा सहामात्यमिहानय ।
धनञ्जयश्च ते रक्ष्यः सह भ्रातृभिराहवे ॥६॥
स च प्रियसखा तुभ्यं शिष्यश्च तव पाण्डवः ।
वचनाद्देवराजस्य ततोऽस्मीहागतो द्रुतम् ॥७॥

हे चित्रसेन ! तुम जाओ और सचिवों सहित दुर्योधन को बांध लाओ, तुमको युद्ध में अपने भाईयों सहित आए हुए अर्जुन की रक्षा करनी चाहिए। अर्जुन तुम्हारा प्रिय मित्र और शिष्य है। मैं भी इन्द्र के वचनों को सुन कर यहां शीघ्रता से चला आया हूं ॥६-७॥

अयं दुरात्मा बद्धश्च गमिष्यामि सुरालयम् ।
नेष्याम्येनं दुरात्मानं पाकशासनशासनात् ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने इस दुरात्मा दुर्योधन को बांध लिया है। अब मैं स्वर्ग को जाना चाहता हूं और इस दुरात्मा को भी इन्द्र की आज्ञा से वहीं ले जाऊंगा ॥८॥

अर्जुन उवाच—

उत्सृज्यतां चित्रसेन भ्रातास्माकं सुयोधनः।
धर्मराजस्य सन्देशान्मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥९॥

अर्जुन ने कहा--हे चित्रसेन! यदि तुम हमारा प्रिय कार्य करना चाहते हो, तो इस दुर्योधन को छोड़ दो, क्योंकि यह हमारा ही भाई है। राजा युधिष्ठिर का यही सन्देश है ॥९॥

चित्रसेन उवाच—

पापोऽयं नित्य सन्तुष्टो न विमोक्षणमर्हति।
प्रलब्धा धर्मराजस्य कृष्णायाश्च धनञ्जय ॥१०॥
नेदञ्चिकीर्षितं तस्य कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
जानाति धर्मराजो हि श्रुत्वा कुरु यथेच्छसि ॥११॥

चित्रसेन बोला-हे धनञ्जय! यह पापी नित्य अभिमान में चूर रहता है और धर्मराज तथा द्रौपदी का छलने वाला है। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, इनकी इस करतूत को नहीं जानते हैं, इससे ऐसा कह रहे हैं। अब इस सारी घटना को सुनकर जो धर्मराज कहेंगे हैं वही किया जावेगा ॥१०-११॥

वैशम्पायन उवाच—

ते सर्व एव राजानमभिजग्मुर्युधिष्ठिरम्।
अभिगम्य च तत्सर्वं शशंसुस्तस्य चेष्टितम् ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन बोले-हे राजन्! इन सबने मिलकर राजा युधिष्ठिर के पास जाकर दुर्योधन का सारा अभिप्राय सूचित किया ॥१२॥

अजातशत्रुस्तच्छ्रुत्वा गन्धर्वस्य वचस्तदा।
मोक्षयामास तान् सर्वान् गन्धर्वान् प्रशशंस च॥१३

धर्मराज युधिष्ठिर ने यह सब कुछ गन्धर्वों द्वारा सुनकर भी सारे कौरवों को छुड़ा दिया और गन्धर्वों की बड़ी प्रशंसा की १३

दिष्ट्या भवद्भिर्बलिभिः शक्तैः सर्वैर्न हिंसितः।
दुर्वृत्तो धार्त्तराष्ट्रोऽयं सामात्यज्ञातिबान्धवः ॥१४॥

युधिष्ठिर ने कहा-यह बड़ी अच्छी बात हुई, जो शक्तिमान् होकर भी तुम लोगों ने सचिव और बन्धुओं सहित दुर्व्यवहार करने वाले दुर्योधन को प्राणों से वियुक्त नहीं किया ॥१४॥

उपकारो महांस्तात कृतोऽयं मम खेचरैः।
कुलं न परिभूतं मे मोक्षणेऽस्य दुरात्मनः ॥१५॥

हे तात! तुम आकाशचारी देवों ने मेरा यह बड़ा ही उपकार किया है, जो इस दुरात्मा दुर्योधन को विना मारे ही छोड़ दिया। इससे हमारे वंश की प्रतिष्ठा नष्ट नहीं हुई ॥१५॥

आज्ञापयध्वमिष्टानि प्रीयामो दर्शनेन वः।
प्राप्य सर्वानभिप्रायांस्ततो व्रजत मा चिरम् ॥१६॥

अब तुम अपने किसी इष्ट पदार्थों के प्राप्त करने की आज्ञा करो। हम लोग तुम्हारे दर्शनों से बड़े प्रसन्न हुए हैं। तुम अपने अभीष्ट का लाभ करके यहां से जा सकते हो। कहो-देर न करो।१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुज्ञातास्तु गन्धर्वाः पाण्डुपुत्रेण धीमता ।
सहाप्सरोभिः संहृष्टाश्चित्रसेनमुखा ययुः ॥१७॥

जब बुद्धिमान् पाण्डुपुत्र धर्मराज ने उनको जाने की अनुज्ञा (इजाज़त) दे दी, तो वे चित्रसेन आदि गन्धर्व, अप्सराओं के साथ २ बड़ी प्रसन्नता से चल दिए ॥१७॥

देवराडपि गन्धर्वान्मृतांस्तान् समजीवयत् ।
दिव्येनामृतवर्षेण ये हताः कौरवैर्युधि ॥१८॥

इन्द्र ने भी उन मरे हुए गन्धर्वों को दिव्य अमृत की वर्षा से पुनर्जीवित कर लिया, जिनको युद्ध में इन कुरु-वंशियों ने मार डाला था ॥२८॥

ज्ञातींस्तानवमुच्याथ राजदारांश्च सर्वशः ।
कृत्वा च दुष्करं कर्म प्रीतियुक्ताश्च पाण्डवाः॥१९॥

उन अपने बन्धुओं और राज-महिलाओं को छुड़ाने का दुष्कर कर्म करके पाण्डव, बड़े प्रसन्न हुए ॥१९॥

सस्त्रीकुमारैः कुरुभिः पूज्यमाना महारथाः ।
बभ्राजिरे महात्मानः क्रतुमध्ये यथाग्नयः ॥२०॥

स्त्री और बालकों के साथ कौरवों ने महारथी पाण्डवों का बड़ा सत्कार किया । ये महात्मा पाण्डव, यज्ञ में अग्नियों की तरह देदीप्यमान हो उठे ॥२०॥

ततो दुर्योधनं मुक्तं भ्रातृभिः सहितं तदा ।
युधिष्ठिरस्तु प्रणयादिदं वचनमब्रवीत् ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाइयों के साथ छुटकारा पाये हुए दुर्योधन से, राजा युधिष्ठिर, प्रेम पूर्वक यह वचन बोले ॥२१॥

मा स्म तात पुनः कार्षीरीदृशं साहसं क्वचित् ।
न हि साहसकर्त्तारः सुखमेधन्ति भारत ॥२२॥

हे तात ! तुम भविष्य में कभी ऐसा साहस न करना । हे भारत ! अनुचित साहस करने वाला मनुष्य, सुख नहीं पा सकता है ॥२२॥

स्वस्तिमान् सहितः सर्वैर्भ्रातृभिः कुरुनन्दन ।
गृहान् व्रज यथाकामं वैमनस्यञ्च मा कृथाः ॥२३॥

हे कुरुनन्दन ! तुम अपने सारे भाइयों के साथ, आनन्दपूर्वक अपने घर पधारो । औरकिसी गन्धर्व से मन में वैमनस्य मत मानना ॥२३॥

वैशम्पायन उवाच—

पाण्डवेनाभ्यनुज्ञातो राजा दुर्य्योधनस्तदा ।
अभिवाद्य धर्मपुत्रं गतेन्द्रिय इवातुरः ॥२४॥
व्रिदीर्यमाणो व्रीडावान् जगाम नगरं प्रति ।

वैशम्पायन बोले- हे राजन् ! धर्मराज से अनुज्ञा पाकर राजा दुर्योधन इन्द्रिय-ज्ञान में शून्य सा होकर व्याकुलता से युधिष्ठिर को नमस्कार करके अपने नगर की ओर चल दिया । यह इस समय बड़ा लज्जित हो रहा था और इसका हृदय फटा जा रहा था ॥२४॥

तस्मिन् गते कौरवेये कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥२५॥
भ्रातृभिः सहितो वीरः पूज्यमानो द्विजातिभिः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपोधनैश्च तैः सर्वैर्वृतः शक्र इवामरैः ।
तथा द्वैतवने तस्मिन् विजहार मुदायुतः ।।२६।।

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्य्योधनमोक्षणे पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।। ४५ ।।

कुरुवंशी राजा दुर्योधन के चले जाने पर भाइयों के साथ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर की ब्राह्मणों ने बड़ी प्रशंसा की। इस समय सारे तपस्वियों से घिरा हुआ युधिष्ठिर, देवों से आवृत, इन्द्र के समान प्रतीत होता था। इस प्रकार द्वैतवन में बड़े आनन्द से धर्मराज अपना समय व्यतीत करने लगे ।।२५-२६।।

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में दुर्योधन के छुड़ाने का दो सौ पैंतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

****

दो सौ छियालीसवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

शत्रुभिर्जितबद्धस्य पाण्डवैश्च महात्मभिः ।
मोक्षितस्य युधा पश्चान्मानिनः सुदुरात्मनः ।।१।।
कत्थनस्यावलिप्तस्य गर्वितस्य च नित्यशः ।
सदा च पौरुषौदार्य्यैः पाण्डवानवमन्यतः ।।२।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्य्योधनस्य पापस्य नित्याहङ्कारवादिनः ।
प्रवेशो हास्तिनपुरे दुष्करः प्रतिभाति मे ॥३॥

जनमेजय बोला--हे ब्रह्मर्षे ! शत्रुओं ने जिसको जीतकर बांध लिया और महात्मा पाण्डवों ने पीछे युद्ध करके जिसको छुड़ाया, ऐसे अभिमानी, दुरात्मा, अपने आप की प्रशंसा करने वाले, अहङ्कारी, गर्वीले, पुरुषार्थ और उदारता में पाण्डवों को जीतने के अभिलाषी, नित्य अहङ्कार पूर्ण डींगें मारने वाले, पापी दुर्योधन का हस्तिनापुर में प्रवेश करना भी कठिन हो गया होगा, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है ॥१-३॥

तस्य लज्जान्वितस्यैव शोकव्याकुलचेतसः ।
प्रवेशं विस्तरेण त्वं वैशम्पायन कीर्तय ॥४॥

हे वैशम्पायन ! तुम लज्जायुक्त, शोक से व्याकुल चित्त वाले दुर्योधन के हस्तिनापुर के प्रवेश को मुझसे विस्तार से कहो॥४॥

वैशम्पायन उवाच:—

धर्मराजनिसृष्टस्तु धार्त्तराष्ट्रः सुयोधनः ।
लज्जयाधोमुखः सीदन्नुपासर्पत् सुदुःखितः ॥५॥

वैशम्पायन बोले--हे राजन् ! धर्मराज से विदा होकर धृष्टराष्ट्र सुत, राजा दुर्योधन, लज्जा से नीचा मुख करके दुःख के साथ अचेत सा चला जा रहा था ॥५॥

स्वपुरं प्रपयौ राजा चतुरङ्गबलानुगः ।
शोकोपहतया बुद्ध्या चिन्तयानः पराभवम् ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके साथ चतुरङ्गिणी सेना थी। यह शोक से नष्ट बुद्धि-वाला होकर बार बार पराजयको याद करके अपने पुर को चला जा रहा था ॥ ६ ॥

विमुच्य पथि यानानि देशे सुयवसोदके ।
सन्निविष्टः शुभे रम्ये भूमिभागे यथेप्सितम् ॥७॥
हस्त्यश्वरथपादातं बथास्थानं न्यवेशयत् ।

राजा दुर्योधन ने मार्ग में घास और जल से परिपूर्ण प्रदेश में अपने वाहनों (सवारियों) को छोड़कर अपनी रुचि के अनुसार सुन्दर रमणीक भूमि भाग पर डेरा डाला और हाथी, घोड़े तथा पैदलों को यथायोग्य स्थान पर ठहरवा दिया ॥७॥

अथोपविष्टं राजानं पर्य्यङ्के ज्वलनप्रभे ॥८॥
उपप्लुतं यथा सोमं राहुणा रात्रिसंक्षये ।
उपागम्याब्रवीत् कर्णो दुर्य्योधनमिदं तदा ॥९॥

अग्नि के समान चमकते हुए आसन पर बैठे हुए, राजा दुर्योधन के पास कर्ण पहुंचा। इस समय दुर्योधन ऐसा निस्तेज हो रहा था, जैसा रात के व्यतीत होने पर राहुसे ग्रसित चन्द्रमा निस्तेज होता है। कर्ण ने जाकर दुर्योधन से कहा-॥८-९॥

दिष्ट्या जीवसि गान्धारे दिष्ट्या नः सङ्गमः पुनः ॥
दिष्ट्या त्वया जिताश्चैव गन्धर्वाः कामरूपिणः ।१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे गान्धारीपुत्र ! तुम जीवित बच गये और हमारा तुम्हारा फिर मिलना हो गया-यह बड़ी ही प्रसन्नता की बात हुई। तुमने कामना के अनुसार रूप धारण करने वाले गन्धर्वों पर भी आज विजय प्राप्त कर ली है ॥१०॥

दिष्ट्या समग्रान् पश्यामि भ्रातॄंस्ते कुरुनन्दन ।
विजीगीषून्रणे युक्तान् निर्जितारीन्महारथान् ॥११॥

हे कुरुनन्दन! रण में सम्मुख आने वाले शत्रुओं के विजयी, अरिमर्दन, महारथी तुम्हारे सारे भाइयों को सकुशल देख रहा हूं--यह बड़े ही आनन्द की बात है ॥११॥

अहं त्वभिद्रुतः सर्वैर्गन्धर्वैः पश्यतस्तव ।
नाशक्नुवं स्थापयितुं दीर्यमाणाञ्च वाहिनीम् ॥१२॥
शरक्षताङ्गश्च भृशं व्यपयातोऽभिपीडितः ।

तुमने अपनी आंखों से देखा है, कि सारे गन्धर्व एकदम मुझ पर टूट पड़े। मैं भागती हुई सेना को उस समय रोक ही नहीं सका। मेरा सारा शरीर बाणों से विंध चुका था, इससे ही पीड़ित होकर मैं रण से चला गया ॥१२॥

इदन्त्वत्यद्भुतं मन्ये यद्युष्मानिह भारत ॥१३॥
अरिष्टानक्षतांश्चापि सदारबलवाहनान् ।
विमुक्तान् सम्प्रपश्यामि युद्धात्तस्मादमानुषात् ॥१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भारत ! मैं तो यह बड़ी अचम्भे की घटना मानता हूं, जो तुम, अपनी स्त्री, सेना और ब्राह्मणों के साथ मनुष्यों से अगम्य, उस युद्ध से सकुशल, व्रणहीन ही निकल आए ॥१३-१४॥

नैतस्य कर्त्ता लोकेऽस्मिन् पुमान् विद्यति भारत ।
यतकृतन्ते महाराज सह भ्रातृभिराहवे ॥१५॥

हे भारत ! मुझे तो इस जगत् में कोई पुरुष इस कार्य का करने वाला दिखाई नहीं देता है, जो तुमने इस युद्ध में अपने भाइयों को साथ लेकर कर दिखाया ॥१५॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तस्तु कर्णेन राजा दुर्य्योधनस्तदा ।
उवाच चाङ्गराजानं वाष्पगद्गदया गिरा ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि कर्ण-दुर्य्योधनसंवादे षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः२४६

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब कर्ण ने राजा दुर्योधन से इतना कहा--तो अश्रुओं से गद्गदवाणी द्वारा दुर्योधन ने कर्ण से कहा ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रा पर्व में कर्ण दुर्योधन सम्वाद का दो सौ छियालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ सैंतालीसवां अध्याय

दुर्य्योधन उवाच—

अजानतस्ते राधेय नाभ्यसूयाम्यहं वचः ।
जानासि त्वं जिताञ्छत्रून् गन्धर्वांस्तेजसा मया ॥१॥

दुर्योधन ने कहा---हे कर्ण ! तुमको इस बात का पता नहीं है--इससे मैं तुम्हारी बात को अनुचित नहीं कहता हूं । तुम शायद यह जान रहे हो, कि गन्धर्वों को मैंने अपने तेज से जीता है ॥१॥

आयोधितास्तु गन्धर्वाः सुचिरं सोदरैर्मम ।
मया सह महाबाहो कृतश्चोभयतः क्षयः ॥२॥

हे महाबाहो ! मेरे भाइयों ने गन्धर्वों से बहुत देर तक युद्ध किया और अपने दोनों ओर मार २ कर शत्रुओं का ढेर लगा दिया ॥२॥

मायाधिकास्त्वयुध्यन्त यदा शूरा वियद्गताः ।
तदा नो न समं युद्धमभवत् खेचरैः सह ॥३॥

जब वे शूरवीर गन्धर्व, माया का आश्रय लेकर आकाश में युद्ध करने लगे--तब उन आकाशचारी गन्धर्वों से हम युद्ध नहीं कर सके ॥३॥

पराजयञ्च प्राप्ताः स्म रणे बन्धनमेव च ।
सभृत्यामात्यपुत्राश्च सदारबलवाहनाः ॥४॥
उच्चैराकाशमार्गेण हिययाणाः सुदुःखिताः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय, हम दास, मन्त्री, पुत्र, स्त्री, सेना और वाहनों के साथ बांध लिए गए और सब भांति से पराजित हो गए। वे गन्धर्व हमको ऊपर आकाश मार्गसे ले गए, जिससे बड़े क्लेशित हुए ॥४॥

अथ नः सैनिकाः केचिदमात्याश्च महारथाः ॥५॥
उपगम्याब्रुवन् दीनाः पाण्डवान् शरणप्रदान् ।

अब हमारे सैनिक और कुछ महारथी मन्त्री, शरणागत वत्सल पाण्डवों के पास जाकर दीनता के साथ कहने लगे ॥५॥

एष दुर्य्योधनो राजा धार्त्तराष्ट्रः सहानुजः ॥६॥
सामात्यदारो ह्रियते गन्धर्वैर्दिवमाश्रितैः ।
तं मोचयत भद्रं वः सहदारं नराधिपम् ॥७॥
परामर्शो माभविष्यत् कुरुदारेषु सर्वशः ।

हे पाण्डवो ! धृतराष्ट्र-पुत्र, राजा दुर्योधन, अपने भाई, मन्त्री और स्त्रियों के साथ आकाशचारी गन्धर्वों द्वारा पकड़ कर ले जाया जा रहा है। तुम राजा दुर्योधन को अपनी स्त्रियों के साथ छुड़ादो। कोई कुरुवंश की महिलाओं को छेड़-छाड़ न बैठे ॥६-७॥

एवमुक्ते तु धर्मात्मा ज्येष्ठः पाण्डुसुतस्तदा ॥८॥
प्रसाद्य पाण्डवान् सर्वानाज्ञापयत मोचने ।

जब धर्मात्मा, श्रेष्ठ, पाण्डुपुत्र, युधिष्ठिर से इतना कहा-तो इसने सारे पाण्डवों को प्रसन्न करके हमारे छुड़ाने को तैयार कर दिया ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथागम्य तमुद्देशं पाण्डवाः पुरुषर्षभा ॥९॥
सान्त्वपूर्वमयाचन्त शक्ताः सन्तो महारथाः ।

ये पुरुषश्रेष्ठ, पाण्डव, उस स्थान पर आए और इन शक्तिशाली महारथियों ने बड़ी शान्ति से हमारे छोड़ने की प्रार्थना की ॥९॥

यदा चास्मान्न मुमुचुर्गन्धर्वाः सान्त्विता अपि ॥१०॥
ततोऽर्जुनश्च भीमश्च यमजौ च बलोत्कटौ ।
मुमुचुः शरवर्षाणि गन्धर्वान् प्रत्यनेकशः ॥११॥

जब प्रार्थना करने पर भी गन्धर्वों ने हमें नहीं छोड़ा-तो अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव ने भी गन्धर्वों पर बाण बरसाना आरम्भ किया ॥१०-११॥

अथ सर्वे रणं मुक्त्वा प्रयाताः खेचरा दिवम् ।
अस्मानेवाभिकर्षन्तो दीनान्मुदितमानसाः ॥१२॥

अब सारे आकाशचारी गन्धर्व, रण छोड़ कर स्वर्ग लोक को भागने लगे। ये हम दीनों को बड़े प्रसन्न मन से खैंचे लिए जा रहे थे ॥१२॥

ततः समन्तात् पश्यामः शरजालेन वेष्टितम् ।
अमानुषाणि चास्त्राणि प्रमुञ्चन्तं धनञ्जयम् ॥१३॥

इसके बाद, हमने मनुष्यों को दुष्प्राप्य, अस्त्रों को छोड़ते हुए, अर्जुन को और बाण-समूह से चारों ओर से व्याप्त दिशाओं को देखा ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समावृता दिशो दृष्ट्वा पाण्डवेन शितैः शरैः ।
धनञ्जयसखात्मानं दर्शयामास वै तदा ॥१४॥

अर्जुन द्वारा तीक्ष्ण बाणों से व्याप्त दिशाओं को देखकर अर्जुन के सखा चित्रसेन ने अपने को प्रकट किया ॥१४॥

चित्रसेनः पाण्डवेन समाश्लिष्य परस्परम् ।
कुशलं परिपप्रच्छ तैः पृष्टश्चाप्यनामयम् ॥१५॥

चित्रसेन और अर्जुन ने परस्पर आलिङ्गन किया। उन्होंने उन से कुशल और उन्होंने उनकी प्रसन्नता पूछी ॥१५॥

ते समेत्य तथान्योऽन्यं सन्नाहान् विप्रमुच्य च ।
एकीभूतास्ततो वीरा गन्धर्वाः सह पाण्डवैः ।
अपूजयेतामन्योऽन्यं चित्रसेनधनञ्जयौ ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि कर्ण-दुर्योधनसंवादे सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥

वे एक दूसरे से मिलकर और कवचों को खोलकर सारे गन्धर्व वीर, पाण्डवों के साथ इकट्ठे हो गए। अर्जुन और चित्रसेन ने एक दूसरे का परस्पर बड़ा सत्कार किया ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में कर्ण दुर्योधन सम्वाद का दो सौ सैंतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ अड़तालीसवां अध्याय

दुर्योधन उवाच—

चित्रसेनं समागम्य प्रहसन्नर्जुनस्तदा ।
इदं वचनमक्लीवमब्रवीत् परवीरहा ॥१॥

दुर्योधन बोला-हे कर्ण ! चित्रसेन से मिलकर शत्रुओं के वीरों के नाशक अर्जुन ने हंसते हुए यह वीरता पूर्ण वचन कहा ॥१॥

भ्रातॄनर्हसि मे वीर मोक्तुं गन्धर्वसत्तम ।
अनर्हधर्षणा हीमे जीवमानेषु पाण्डुषु ॥२॥

हे गन्धर्व-राज वीरश्रेष्ठ,! तुम हमारे भाइयों को छोड़ दो। हम पाण्डवों के जीते रहने पर भी तुमने यह आक्रमण करके बड़ा अनुचित कार्य किया है ॥२॥

एवमुक्तस्तु गन्धर्वः पाण्डवेन महात्मना ।
उवाच यत् कर्ण वयं मन्त्रयन्तो विनिर्गताः ।३।
द्रष्टारः स्म सुखाद्धीनान् सदारान् पाण्डवानिति ।

हे कर्ण ! जब महात्मा धनञ्जय ने यह कहा--तो गन्धर्व ने उसको वह सारा हमारा गुप्त रहस्य सुना दिया, जो हम सोचते जा रहे थे कि हम लोग सुख-हीन, स्त्रियों के सहित कष्ट-पाते, हुए, पाण्डवों को देखेंगे ॥३॥

तस्मिन्नुच्चार्य्यमाणे तु गन्धर्वेण वचस्तथा ॥४॥
भूमेर्विवरमन्वैच्छं प्रवेष्टुं व्रीडयान्वितः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब गन्धर्व ने यह वचन कहा--तो मैं इतना लज्जित हुआ, कि भूमि में छिद्र हो जावे, तो मैं उसमें घुस जाऊं ॥४॥

युधिष्ठिरमथागम्य गन्धर्वाः सह पाण्डवैः ॥५॥
अस्महुर्मन्त्रितं तस्मै बद्धांश्चास्मान्न्यवेदयन् ।

पाण्डवों के साथ गन्धर्व, राजा युधिष्ठिर के पास पहुंचे और हमारे दुष्ट विचार को उनको सुनाया तथा बंधे हुए हमें भी उनके सामने उपस्थित किया ॥५॥

स्त्रीसमक्षमहं दीनो बद्धः शत्रुवशङ्गतः ॥६॥
युधिष्ठिरस्योपहृतः किन्नु दुःखमतः परम् ।

मैं दीन, अपनी स्त्री के ही सामने ही बांधा जाकर शत्रु के वश में आगया और युधिष्ठिर के सम्मुख लाया गया--इससे अधिक क्या दुःख हो सकता है ॥६॥

येमे निराकृता नित्यं रिपुर्येषामहं सदा ॥६॥
तैर्मोक्षितोऽहं दुर्बुद्धिर्दत्तं तैरेव जीवितम् ।

मैंने जिनका सदा निरादर किया और जिनका मैं सदा शत्रु बना रहा, उन्हों ने मुझे छुड़ाया और मुझे जीवन प्रदान किया ॥

प्राप्तः स्यां यद्यहं वीर वधं तस्मिन्महारणे ॥८॥
श्रेयस्तद्भविता मह्यं नैवं भूतस्य जीवितम् ।

हे वीर ! यदि इस महायुद्ध में मेरा वध भी हो जाता, तो यह मेरे लिए बड़ा अच्छा होता, परन्तु इस तरह प्राणी का जीवन होना अच्छा नहीं है ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभूद्यशः पृथिव्यां मे ख्यातं गन्धर्वतो वधात् ॥९॥
प्राप्ताश्च पुण्यलोकाः स्युर्महेन्द्रसदनेऽक्षयाः ।

मेरा पृथिवी पर यश होता और यह प्रसिद्ध होता, कि मैं गंधर्वों से युद्ध में मारा गया तथा इन्द्र-भवन में मुझे अक्षय पुण्य लोकों की प्राप्ति होती ॥९॥

यत्त्वद्य मे व्यवसितं तच्छृणुध्वं नरर्षभाः ॥१०॥
इह प्रायमुपाशिष्ये यूयं व्रजत वै गृहान् ।
भ्रातरश्चैव मे सर्वे यान्त्वद्य स्वपुरं प्रति ॥११॥

हे नरश्रेष्ठ ! अब जो मैं करना चाहता हूं, वह सुनो, कि तुम तो घर को जाओ और मैं यहीं बैठा हुआ उपवास करूंगा। मेरे सारे भाई भी हस्तिनापुर चले जावें ॥१०-११॥

कर्णप्रभृतयश्चैव सुहृदो बान्धवाश्च ये ।
दुःशासनं पुरस्कृत्य प्रयान्त्वद्य पुरं प्रति ॥१२॥

तुम कर्ण आदि मेरे मित्र और भाई-बन्धु, दुःशासन को साथ लेकर हस्तिनापुर चले जाओ ॥१२॥

न ह्यहं सम्प्रयास्यामि पुरं शत्रुनिराकृतः ।
शत्रुमानापहो भूत्वा सुहृदां मानकृत्तथा ॥१३॥
स सुहृच्छोकदो जातः शत्रूणां हर्षवर्द्धनः ।
वारणह्वयमासाद्य किं वक्ष्यामि जनाधिपम् ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं शत्रुओं से तिरस्कृत होकर हस्तिनापुर नहीं जाऊंगा। शत्रुओं का मान-मर्दन-करने वाला और मित्रों का मान बढ़ाने वाला था, वही मैं आज मित्रों के शोक और शत्रुओं के हर्ष का बढ़ाने वाला हो रहा हूं। अब मैं हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र से क्या कहूंगा ॥१३-१४॥

भीष्मद्रोणौ कृपद्रोणी विदुरः सञ्जयस्तथा ।
बाह्लिकः सौमदत्तिश्च ये चान्ये वृद्धसम्मताः ॥१५॥
ब्राह्मणाः श्रेणिमुख्याश्च तथोदासीनवृत्तयः ।
किं मां वक्ष्यन्ति किञ्चापि प्रतिवक्ष्यामि तानहम् १६

भीष्म, द्रोण, कृप अश्वत्थामा. विदुर, बाल्हिक, सौमदत्ति आदि वृद्धों से सम्मानित वीर, प्रजागण तथा उदासीन वृत्ति-वाले उत्तम २ ब्राह्मण, मुझे क्या कहेंगे और मैं भी उन से क्या कहूंगा ॥१५-१६॥

रिपूणां शिरसि स्थित्वा तथा विक्रम्य चोरसि ।
आत्मदोषात् परिभ्रष्टः कथं वक्ष्यामि तानहम् ॥१७

रिपुओं के शिर पर स्थित होकर और उनकी छाती के ऊपर पराक्रम करके आज मैं अपने अपराध [गलती] से आप ही नीचे गिर गया, अब मैं इनसे कैसे बोल सकूंगा ॥१७॥

दुर्विनीताः श्रियं प्राप्य विद्यामैश्वर्य्यमेव च ।
तिष्ठन्ति न चिरं भद्रे यथाहं मदगर्वितः ॥१८॥

नम्रता से हीन, मनुष्य, लक्ष्मी, विद्या, ऐश्वर्य को पाकर भी चिरकाल तक इस कल्याण का उपभोग नहीं कर पाते हैं। वही दशा मुझ मदोन्मत्त की आज हो गई हैं ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहो नार्हमिदं कर्म्म कष्टं दुश्चरितं कृतम् ।
स्वयं दुर्बुद्धिना मोहाद्येन प्राप्तोऽस्मि संशयम् ॥१९

यह काम मैंने अच्छा नहीं किया, किन्तु बड़ा ही कष्टदायी और अनुचित किया है। मुझ दुर्बुद्धि ने यह सब कुछ अपने आप किया और अपने जीवन तक को सन्देह में डाल लिया॥

तस्मात् प्रायमुपाशिष्ये न हि शक्ष्यामि जीवितुम् ।
चेतयानो हि को जीवेत् कुच्छ्राच्छत्रुभिरुद्धृतः॥२०॥

अब मैं अनशन उपवास करूंगा, जीवन धारण नहीं कर सकता हूं। जो कुछ भी ज्ञान रखता है, वह शत्रु द्वारा इस प्रकार उद्धार पाने पर कैसे जीवित रह सकता है ॥२०॥

शत्रुभिश्चावहसितो मानी पौरुषवर्ज्जितः ।
पाण्डवैर्विक्रमाढ्यैश्च सावमानमवेक्षितः ॥२१॥

मुझ अभिमानी और पुरुषार्थहीन की विक्रमशाली शत्रुभूत पाण्डवों ने बड़ी हंसी की होगी और मुझे अपमान की दृष्टि से अवश्य देखा होगा ॥२१॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं चिन्तापरिगतो दुःशासनमथाब्रवीत् ।
दुःशासन निबोधेदं वचनं मम भारत ॥२२॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! इस प्रकार चिन्ता करता हुआ, दुर्योधन, दुःशासन से बोला—हे भरतवंशोत्पन्न दुःशासन ! तुम मेरे वचन को ध्यान से सुन लो ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीच्छ त्वं मया दत्तमभिषेकं नृपो भव ।
प्रशाधि पृथिवीं स्फीतां कर्णसौबलपालिताम् ॥२३॥

हे भारत ! तुम मेरे दिए राज्याभिषेक को ग्रहण करके राजा बन जाओ और कर्ण तथा शकुनि की सहायता से इस विशाल पृथिवी का उपभोग करो ॥२३॥

भ्रातॄन् पालय विश्रब्धं मरुतो वृत्रहा यथा ।
बान्धवांश्चोपजीवन्तु देवा इव शतक्रतुम् ॥२४॥

तुम देवों की इन्द्र के समान अपने भाइयों की पालना करते रहना और तुम्हारे भाई भी इन्द्र की देवों के समान तुम्हारी सेवा करते रहेंगे ॥२४॥

ब्राह्मणेषु सदा वृत्तिं कुर्वीथाश्चाप्रमादतः ।
बन्धूनां सुहृदाञ्चैव भवेथास्त्वं गतिः सदा ॥२५॥

तुम ब्राह्मणों के साथ सावधानी से व्यवहार करना और बंधु तथा मित्रों का सदा आश्रय बने रहना ॥२५॥

ज्ञातींश्चाप्यनुपश्येथा विष्णुर्देवगणान् यथा ।
गुरवः पालनीयास्ते गच्छ पालय मेदिनीम् ॥२६॥

तुम अपने जाति के बन्धुओं की भी इसी तरह रक्षा करना, जैसे विष्णु देवों की करता है। तुम सदा पूज्यों का आदर करना। अब तुम जाओ और पृथिवी की पालना करो ॥२६॥

नन्दयन् सुहृदः सर्वान् शात्रवांश्चावभर्त्सयन् ।
कण्ठे चैनं परिष्वज्य गम्यतामित्युवाच ह ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम सारे मित्रों को आनन्दित और शत्रुओं को तिरस्कार करने की शक्ति प्राप्त करना। राजा दुर्योधन ने दुःशासन के गले से मिल कर कहा--कि अब तुम जाओ ॥२७॥

तस्त तद्वचनं श्रुत्वा दीनो दुःशासनोऽब्रवीत् ।
अश्रुकण्ठः सुदुखार्त्तः प्राञ्जलिः प्रणिपत्य च ॥२८॥
सगद्गदमिदं वाक्यं भ्रातरं ज्येष्ठमात्मनः ।
प्रसीदेत्यपतद्भूमौ दूयमानेन चेतसा ॥२९॥

इसके वचन सुन कर अश्रु-पूर्ण-कण्ठवाला, दुःखी, कातर दुःशासन, हाथ जोड़ कर गद्गदवाणी से अपने ज्येष्ठ भाई से प्रणाम-पूर्वक दुःखी चित्त से भूमि में पड़ कर बोला--आप तनिक शान्ति धारण करें ॥२८-२९॥

दुःखितः पादयोस्तस्य नेत्रजं जलमुत्सृजन् ।
उक्तवांश्च नरव्याघ्रो नैतदेवं भविष्यति ॥३०॥

यह दुःखी होकर उसके चरणों में गिर पड़ा और अश्रुधारा छोड़ने लगा। इस नरश्रेष्ठ दुःशासन ने कहा--हे राजन्! यह कभी नहीं हो सकता है ॥३०॥

विदीर्ण्येत् सकला भूमिर्द्यौश्चापि शकलीभवेत् ।
रविरात्मप्रभां जह्यात् सोमः शीतांशुतां त्यजेत् ॥३१
वायुः शैघ्र्यमथो जह्याद्धिमवांश्च परिव्रजेत् ।
शुष्येत्तोयं समुद्रेषु वह्निरप्युष्णतां त्यजेत् ॥३२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न चाहं त्वदृते राजन् प्रशासेयं वसुन्धराम् ।
पुनः पुनः प्रसीदेति वाक्यञ्चेदमुवाच ह ॥३३॥
त्वमेव नः कुले राजा भविष्यसि शतं समाः ।
एवमुक्त्वा स राजानं मुखरं प्ररुरोद ह ॥३४॥
पादौ संस्पृश्य मानार्हो भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भारत ।

हे राजन्! पृथिवी फट सकती है, आकाश के टुकड़े हो सकते हैं, सूर्य अपनी कान्ति और चन्द्रमा अपनी शीतलता छोड़ सकता है, समुद्रों से जल सूख जावे, अग्नि अपनी उष्णता छोड़ दे, परन्तु मैं तुम्हारे बिना इस पृथिवी का शासन नहीं कर सकता हूं। आप प्रसन्न होकर शान्ति धारण करें। हमारे वंश में तो आप ही सौ वर्ष तक राजा रहें। यह दुःशासन, बार २ इस प्रकार वाक्य कह कर उच्च-स्वर से रोने लगा ॥३१-३४॥

तथा तौ दुःखितौ दृष्ट्वा दुःशासनसुयोधनौ ॥३५॥
अधिगम्य व्यथाविष्टः कर्णस्तौ प्रत्यभाषत ।

हे भारत! यह मान पाने के योग्य दुःशासन, अपने ज्येष्ठ भाई के चरण पकड़ कर बैठ गया। इस प्रकार दुर्योधन और दुःशासन को दुःखी देख कर कर्ण, व्याकुल होकर उनके पास पहुंचा और कहने लगा ॥३५॥

विषीदथ किं कौरव्यौ बालिश्यात् प्राकृताविव ॥३६॥
न शोकः शोचमानस्य विनिवर्त्तेत कर्हिचित् ।

हे कुरुवंश श्रेष्ठो! तुम अज्ञान से क्यों साधारण पुरुषों की तरह विषाद कर रहे हो। शोक करने वाले का शोक कभी नष्ट नहीं होता है ॥३६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदा च शोचतः शोको व्यसनं नापकर्षति ॥३७॥
सामर्थ्यं किं ततः शोके शोचमानौ प्रपश्यथः ।

जब शोक करने वाले का शोक दःख को कम ही नहीं करता है, तो तुम शोक करते हुए शोक में शक्ति ही क्या देखते हो ॥३७॥

धृतिं गृह्णीतं मा शत्रून् शोचन्तौ नन्दयिष्यथः ३८
कर्त्तव्यं हि कृतं राजन् पाण्डवैस्तव मोक्षणम् ।
नित्यमेव प्रियं कार्य्यं राज्ञो विषयवासिभिः ॥३९॥
पाल्यमानास्त्वया ते हि निवसन्ति गतज्वराः ।

अब तुम धैर्य धारण करो और शोक करके शत्रुओं को आनन्दित न बनाओ। हे राजन् ! पाण्डवों न तुमको छुड़ा कर अपना कर्तव्य पूरा किया है। राजा के देश में रहने वालों को राजा का प्रिय कार्य करना ही चाहिए। तुम उनका पालन करते हो, जिससे वे निर्द्वन्द्व वन में निवास कर रहे हैं ॥३८-३९॥

नार्हस्येवङ्गते मन्युं कर्त्तुं प्राकृतवद्यथा ॥४०॥
विषण्णास्तव सोदर्य्यास्त्वयिप्रायं समास्थिते ।
उत्तिष्ठ व्रज भद्रन्ते समाश्वासय सोदरान् ॥४१॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि कर्ण-दुर्य्योधनसंवादे अष्टचत्वारिंशदधिकद्विशतोऽध्यायः ॥२४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तुम्हें इस दशा में साधारण मनुष्य की तरह शोक नहीं करना चाहिए। तुम्हारे दुःखी होकर स्थित होने पर तुम्हारे भाई बड़े कातर हो रहे हैं। अब तुम उठो--तुम्हारा कल्याण हो और अपने को भाइयों आश्वासन प्रदान करो ॥४०-४१॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोष-यात्रापर्व में
कर्ण दुर्योधन के सम्वाद का दो सौ
अड़तालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

दो सौ उनंचासवां अध्याय

कर्ण उवाच:—

राजन्नद्यावगच्छामि तवेह लघुसत्वताम् ।
किमत्र चित्रं यद्वीर मोक्षितः पाण्डवैरसि ॥१॥
सद्यो वशं समापन्नः शत्रूणां शत्रुकर्षण ।

कर्ण ने कहा—हे राजन्! मुझे तो तुम्हारी निर्बलता का आज पता लगा। यदि पाण्डवों ने तुमको छुड़ा भी दिया, तो क्या अचम्भे की बात हुई। हे शत्रु-कर्षण! तुम अब की बार किसी तरह शत्रु के वश में पड़ गए तो क्या हुआ ॥१॥

सेनाजीवैश्च कौरव्य तथा विषयवासिभिः ॥२॥
अज्ञातैर्यदि वा ज्ञातैः कर्त्तव्यं नृपतेः प्रियम् ।
प्रायः प्रधानः पुरुषाः क्षोभयन्त्यरिवाहिनीम् ॥३॥
निगृह्यन्ते च युद्धेषु मोक्षन्ते चैव सैनिकैः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे कौरव्य ! सेना के सिपाही या देशवासी जनों को राजा के ज्ञान या अज्ञान में उसका प्रिय करना ही चाहिये । प्रायः बलवान् पुरुष, शत्रु की सेना को परास्त किया ही करते हैं। सेनापति या राजा पकड़े ही जाते हैं और उनको सैनिक छुड़ाया ही करते हैं॥

सेनाजीवाश्च ये राज्ञां विषये सन्ति मानवाः ॥४॥
तैः सङ्गम्य नृपार्थाय यतितव्यं यथातथम् ।

राजा की सेना के सिपाही और देशवासी जितने भी मनुष्य हैं, सब को मिल कर राजा के हित की सिद्धि के लिए सब तरह से उपाय करना ही चाहिए ॥४॥

यद्येवं पाण्डवै राजन् भवद्विषयवासिभिः ॥५॥
यदृच्छया मोक्षितोऽसि तत्र का परिवेदना ।

हे राजन् ! यदि आपके देशमें निवास करने वाले पाण्डवोंने अचानक तुमको छुड़ा दिया, तो इसमें पश्चात्ताप करने की ही क्या बात हैं ॥५॥

न चैतत् साधु यद्राजन् पाण्डवास्त्वां नृपोत्तम ॥६॥
स्वसेनया सम्प्रयान्तं नानुयान्ति स्म पृष्ठतः ।

हे नृपोत्तम ! पाण्डवों का बस एक यही काम अनुचित है, जो अपनी सेना लेकर चलन के समय वे नर श्रेष्ठ पाण्डव तुम्हारे पीछे नहीं चलते हैं ॥६॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूराश्च बलवन्तश्च संयुगेष्वपलायिनः ॥७॥
भवतस्ते सहाया वै प्रेषतां पूर्वमागताः ।

ये पाण्डव शूरवीर, बलवान् और युद्ध में भागने वाले नहीं हैं। ये तुम्हारे सहायक हैं और पूर्व समय से ही तुम्हारे दास हो चुके हैं ॥७॥

पाण्डवेयानि रत्नानि त्वमद्याप्युपभुञ्जसे ॥८॥
सत्वस्थान् पाण्डवान् पश्य न ते प्रायमुपाविशन् ।
उत्तिष्ठ राजन् भद्रन्ते न चिरं कर्त्तुमर्हसि ॥९॥

तुम पाण्डवों के रत्नों को आज तक भोग रहे हो। उन धैर्यशील पाण्डवों की ओर देखो, उन्होंने तो आमरण कभी अनशन नहीं किया। हे राजन्! खड़े हो जाओ। तुमको यह अनशन अधिक काल तक नहीं करना चाहिए ॥८-९॥

अवश्यमेव नृपते राज्ञो विषयवासिभिः ।
प्रियाण्याचरितव्यानि तत्र का परिदेवना ॥१०॥

हे नृपते! राजा के देश में रहने वाले मनुष्यों को राजा का प्रिय करना ही चाहिये। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम इतने क्यों चीख़ चिल्ला रहे हो ॥१०॥

मद्वाक्यमेतद्राजेन्द्र यद्येवं न करिष्यसि ।
स्थास्यामीह भवत्पादौ शुश्रूषन्नरिमर्दन ॥२१॥

हे राजेन्द्र! यदि तुम मेरे वचनों को नहीं मानोगे तो हे अरिमर्दन! मैं भी तुम्हारे चरणों की सेवा करता हुआ, यहीं ठहर जाऊंगा ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोत्सहे जीवितुमहं त्वद्विहीनो नरर्षभ ।
प्रायोपविष्टस्तु नृप राज्ञां हास्यो भविष्यसि ॥१२॥

हे नरर्षभ ! मैं तो तुमसे बिछुड़ कर जीना ही नहीं चाहता हूं । हे नृप ! इस आमरण अनशन से तो राजाओं में तुम्हारी बड़ी हंसी होगी ॥१२॥

वैशम्पायन उवाच:--

एवमुक्तस्तु कर्णेन राजा दुर्य्योधनस्तदा ।
नैवोत्थातुं मनश्चक्रे स्वर्गाय कृतनिश्चयः ॥१३॥

इति श्रीमहाभारतआरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि कर्णदुर्योधन संवादे एकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२४९॥

वैशम्पायन बोले--कर्ण के इतना कहने पर भी राजा दुर्योधन का मन अनशन को छोड़कर उठने को तैयार नहीं हुआ। इसने तो मरना ही निश्चित कर लिया ॥१३॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में कर्ण दुर्योधन सम्वाद का दो सौ उनचासवां अध्याय समाप्त हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ पचासवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच:---

प्रायोपविष्टं राजानं दुर्य्योधनममर्षणम् ।
उवाच सान्त्वयन्राजच्छकुनिः सौबलस्तदा ॥१॥

वैशम्पायन ने कहा--हे राजन् ! अनशन व्रत करके बैठे हुए, असहिष्णु राजा दुर्योधन को समझाता हुआ सुबलपुत्र शकुनि बोला ॥१॥

शकुनिरुवाच:---

सम्यगुक्तं हि कर्णेन तच्छ्रुतं कौरव त्वया ।
मया हृतां श्रियं स्फीतां तां मोहादपहाय किम् ॥२॥
त्वमबुद्ध्याद्य नृपते प्राणानुत्स्रष्टुमर्हसि ।
अथ वाप्यवगच्छामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया ॥३॥

हे कौरव ! कर्ण ने बड़ा ही ठीक कहा है, क्या तुमने इसको अच्छी तरह सुन लिया। हे राजन् ! जिस विशाल राज्यलक्ष्मी को मैंने छीनकर तुम्हें दी हैं, उसको मोह से छोड़कर आज तुम अज्ञान से प्राण छोड़ना चाह रहे हो। मुझे तो मालूम हुआ कि तुमने कभी समझदार वृद्धों की संगति ही नहीं की है ॥२-३॥

यः समुत्पतितं हर्षं दैन्यं वा न नियच्छति ।
स नश्यति श्रियं प्राप्य पात्रमाममिवाम्भसि॥४॥

जो मनुष्य आये हुए हर्ष या शोक को नहीं रोक सकता है, वह जल में कच्चे घड़े की तरह लक्ष्मी पाकर भी नष्ट हो जाता है ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिभीरुमतिक्लीवं दीर्घसूत्रं प्रमादिनम् ।
व्यसनाद्विषयाक्रान्तं न भजन्ति नृपं प्रजाः ॥५॥

अत्यन्त डरपोक, सामर्थ्यहीन, दीर्घसूत्री, असावधान, मृगयादि व्यसन और स्त्रियों के भोग विलास में फंसे हुए राजा को प्रजा नहीं चाहती हैं ॥५॥

सत्कृतस्य हि ते शोको विपरीते कथं भवेत् ।
मा कृतं शोभनं पार्थैः शोकमालम्ब्य नाशय ॥६॥

पाण्डवों ने तुम्हारा सत्कार किया है, उसमें तो तुमको इतना शोक हो रहा है, यदि वे अपमान कर देते तो न जाने तुम क्या करते । पाण्डवों ने यह सब कुछ अच्छा ही किया ! अब तुम शोक का अवलम्बन करके अपना नाश न करो ॥६॥

यत्र हर्षस्त्वया कार्य्यः सत्कर्त्तव्याश्च पाण्डवाः ।
तत्र शोचसि राजेन्द्र विपरीतमिदं तव ॥७॥

हे राजन् ! जिस विषय में तुमको हर्ष करना चाहिए था, उसमें तुम शोक कर रहे हो—यह तुम्हारा बड़ा उलटा ढंग है । अब तुम इस सेवा के पुरस्कार में पाण्डवों का सत्कार कर सकते हो ॥७॥

प्रसीद मा त्यजात्मानं तुष्टश्च सुकृतं स्मर ।
प्रयच्छ राज्यं पार्थानां यशो धर्म्ममवाप्नुहि ॥८॥

अब तुम प्रसन्न हो जाओ और अपने शरीर का नाश न करो । इस पुरस्कार में पाण्डवों का राज्य लौटा दो, जिससे तुमको यश और धर्म की प्राप्ति होगी ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रियामेतां समाज्ञाय कृतज्ञस्त्वं भविष्यसि ।
सौभ्रात्रं पाण्डवैः कृत्वा समवस्थाप्य चैव तान् ।
पित्र्यं राज्यं प्रयच्छैषां ततः सुखमवाप्स्यसि ॥९॥

हे राजन ! इस कर्म को करके तुम संसार में कृतज्ञ कहाओगे। तुम पाण्डवों के साथ बन्धुपन निभा कर और उनको राजसिंहासन पर स्थापित करके सुखी हो जाओगे। उनके पिता का राज्य है, उनको ही सौंप दो ॥९॥

वैशम्पायन उवाच--

शकुनेस्तु वचः श्रुत्वा दुःशासनमवेक्ष्य च ।
पादयोः पतितं वीरं विकृतं भ्रातृसौहृदात् ।
बाहुभ्यां साधुजाताभ्यां दुःशासनमरिन्दमम् ॥१०॥
उत्थाप्य सम्परिष्वज्य प्रीत्याजिघ्रत मूर्द्धनि ।
कर्णसौबलयोश्चापि संश्रुत्य वचनान्यसौ ॥११॥
निर्वेदं परमं गत्वा राजा दुर्य्योधनस्तदा ।
व्रीडयाभिपरीतात्मा नैराश्यमगमत् परम् ॥१२॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन ! शकुनि के वचन सुनकर राजा दुर्योधन ने दुःशासन की ओर देखा, जो वीर, चरणों में पड़ा था और भ्रातृ-प्रेम से व्याकुल हो रहा था। राजा ने अपनी भुजा फैला कर इस अरि-विजयी दुःशासन से आलिङ्गन किया और इसको उठाकर प्रीति-पूर्वक इसका शिर सूंघा। राजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्योधन, कर्ण और शकुनि के वचनों पर ध्यान देकर अत्यन्त खिन्न और निराश हुआ। यह इस समय बड़ा ही लज्जित हो रहा था ॥१०-१२॥

तच्छ्रुत्वा सुहृदश्चैव समन्युरिदमब्रवीत् ।
न धर्मधनसौख्येन नैश्वर्य्येण न चाज्ञया ॥१३॥
नैव भोगैश्च मे कार्य्यं मा विहन्यत गच्छत ।
निश्चितेयं मम मतिः स्थिता प्रायोपवेशने ॥१४॥

इन वचनों को सुनकर यह अपने मित्रों से दीनता पूर्ण रोष के साथ बोला--मुझे धर्म, धन, सुख, ऐश्वर्य, शासन भोग से काम नहीं है। तुम मेरी आत्मा का नाश न करो--चले जाओ। मेरा यह निश्चित मत है। मेरी बुद्धि तो मुझे आमरण अनशन की ही प्रेरणा कर रही है ॥१३-१४॥

गच्छध्वं नगरं सर्वे पूज्याश्च गुरवो मम ।
त एवमुक्ताः प्रत्यूचुराजानमरिमर्दनम् ॥१५॥

तुम सब लोग नगर में जाओ और मेरे पूज्यों का सत्कार करते रहना। जब दुर्योधन ने इतना कहा--तो वे सब, अरि-विजयी दुर्योधन से कहने लगे ॥१५॥

या गतिस्तव राजेन्द्र सास्माकमपि भारत ।
कथं वा सम्प्रवेक्ष्यामस्त्वद्विहीनाः पुरं वयम् ॥१६॥

हे राजेन्द्र ! अब तुम जो करना चाहते हो, वही हम भी करेंगे। हे भारत ! तुमको छोड़कर हम सब कैसे हस्तिनापुर जा सकते हैं ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

स सुहृद्भिरमात्यैश्च भ्रातृभिः स्वजनेन च ।
बहुप्रकारमप्युक्तो निश्चयान्न विचाल्यते ॥१७॥

वैशम्पायन ने कहा--हे राजन ! सारे सुहृद्, सचिव, भाई, कुटुम्बी जनों ने बहुत ही समझाया, परन्तु राजा दुर्योधन अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ ॥१७॥

दर्भास्तरणमास्तीर्य्य निश्चयाद्धृतराष्ट्रजः ।
संस्पृश्यापः शुचिर्भूत्वा भूतले समुपस्थितः ॥१८॥

यह अपने निश्चय से कुशा बिछा कर और आचमन करके पवित्रता-पूर्वक पृथिवी में बैठ गया ॥१८॥

कुशचीराम्बरधरः परं नियममास्थितः ।
वाग्यतो राजशार्दूलः स स्वर्गगतिकाम्यया ॥१९॥
मनसोपचितिं कृत्वा निरस्य च बहिष्क्रियाः ।

यह राजा, कुश और शुक्ल वस्त्र धारण करके बड़े ही नियम में स्थित हो गया। इसने मौन धारण कर लिया और स्वर्ग जाने के ध्यान से अपने पास ही चिता बनवा ली और स्नान आदि की बाहरी सारी क्रियाओं का परि-त्याग कर दिया ॥

अथ तं निश्चयं तस्य बुद्ध्वा दैतेयदानवाः ॥२०॥
पातालवासिनो रौद्राः पूर्वं देवैर्विनिर्ज्जिताः ।
ते स्वपक्षक्षयन्तन्तु ज्ञात्वा दुर्य्योधनस्य वै ॥२१॥
आह्वानाय तदा चक्रुः कर्म्म वैतानसम्भवम् ।

इसके इस निश्चय को जान कर पातालवासी भीषण, देवों से पराजित, दैत्य और दानव, दुर्योधन के पक्ष के गिरने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना पक्ष गिरना मान कर दुर्योधन के बुलाने के लिए अग्नियों के विस्तार से युक्त, यज्ञ करने लगे ॥२०-२१॥

बृहस्पत्युशनोक्तैश्च मन्त्रैर्मन्त्रविशारदाः ॥२२॥
अथर्ववेदप्रोक्तैश्च याश्चोपनिषदि क्रियाः ।
मन्त्रजप्यसमायुक्तास्तास्तदा समवर्त्तयन् ॥२३॥

मन्त्रों के जानने वाले, दैत्य और दानव, बृहस्पति और शुक्राचार्य की विधि के अनुसार, अथर्ववेदोक्ततथा उपनिषद् की क्रियाओं से यज्ञ में प्रवृत्त हुए। ये मन्त्रों के जपों में तत्पर हो रहे थे ॥२२-२३॥

जुह्वत्यग्नौ हविः क्षीरं मन्त्रवत् सुसमाहिताः ।
ब्राह्मणा वेदवेदाङ्गपारगाः सुदृढव्रताः ॥२४॥
कर्म्मसिद्धौ तदा तत्र जृम्भमाणा महाद्भुता ।
कृत्या समुत्थिता राजन् किङ्करोमीति चाब्रवीत् ॥२५

अब वेद, वेदाङ्ग में पारङ्गत, दृढ़ व्रतधारी ब्राह्मण, सावधानी से मन्त्र बोल २ कर हवि तथा खीर की आहुति छोड़ने लगे। हे राजन्! कर्म की सिद्धि होने पर जंभाई लेती हुई, महान् अद्भुत, कृत्या संज्ञक एक मूर्ति खड़ी हुई और बोली--कहो--क्या करूं ॥२४-२५॥

आहुर्दैत्याश्च तां तत्र सुप्रीतेनान्तरात्मना ।
प्रायोपविष्टं राजानं धार्त्तराष्ट्रमिहानय ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैत्यों ने प्रसन्न अन्तरात्मा से कहा--हे कृत्यो ! अनशन व्रत करके बैठे हुए राजा दुर्योधन को यहां ले आओ ॥२६॥

तथेति च प्रतिश्रुत्य सा कृत्या प्रययौ तदा ।
निमेषादगमच्चापि यत्र राजा सुयोधनः ॥२७॥

यह कृत्या स्वीकार करके शीघ्रता से चल दी और क्षण भर में वहीं पहुंच गई, जहां राजा दुर्योधन था ॥२७॥

समादाय च राजानं प्रविवेश रसातलम् ।
दानवानां मुहूर्त्ताच्च तमानीतं न्यवेदयत् ॥२८॥

यह राजा को लेकर रसातल में पहुंची और थोड़ी देर में ही दानवों से जाकर कह दिया, कि मैं दुर्योधन को ले आई हूं ॥२८॥

तमानीतं नृपं दृष्ट्वा रात्रौ सङ्गत्य दानवाः ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे किञ्चिदुत्फुल्ललोचनाः ।
साभिमानमिदं वाक्यं दुर्य्योधनमथाब्रुवन् ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्य्योधनप्रायोपवेशे पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५०॥

राजा दुर्योधन को आया हुआ जानकर दानव, उस से रातमें मिले । ये सारे प्रसन्न मन हो रहे थे और इनकी आंखें खिल रही थी । इन्होंने अभिमान-पूर्वक दुर्योधन से यह वाक्य कहा॥२९॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोष-यात्रा-पर्व में दुर्योधन के अनशन व्रत का दो सौ पचासवां अध्याय पूरा हुआ ।

* * * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ इक्यावनवां अध्याय

दानवा ऊचुः—

भो सुयोधन राजेन्द्र भरतानां कुलोद्वह ।
शूरैः परिवृतो नित्यं तथैव च महात्मभिः ॥१॥
अकार्षीः साहसमिदं कस्मात् प्रायोपवेशनम् ।
आत्मत्यागी ह्यधो याति वाच्यतां चायशस्करीम्॥२॥

दानव बोले- हे राजश्रेष्ठ ! भरत वंश के धारण करने वाले सुयोधन ! तुम महाबली शूरवीरों से युक्त हो, तुमने यह अनशन-व्रत का क्या अनुचित साहस कर डाला है। जो आत्महत्या करने वाला है, वह अधोगति को पाता है और उसके यश का नाश करने वाली निन्दा होने लगती है ॥१-२॥

न हि कार्य्यविरुद्धेषु बहुपापेषु कर्म्मसु ।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥३॥

तुम जैसे बुद्धिमान पुरुष, पाप पूर्ण, मूल से नाश करने वाले, विरुद्ध कार्यों में नहीं लिपटते हैं ॥३॥

नियच्छैतां मतिं राजन् धर्मार्थसुखनाशिनीम् ।
यशःप्रतापवीर्य्यघ्नीं शत्रूणां हर्षवर्द्धनीम् ॥४॥

हे राजन् ! धर्म, अर्थ और सुख के नाश करने वाली, यश और पराक्रम की घातक, शत्रुओं के हर्ष को बढ़ाने वाली, इस बुद्धि का परित्याग करो ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रूयतां हि प्रभो तत्वं दिव्यताश्चात्मनो नृप ।
निर्माणश्च शरीरस्य ततो धैर्य्यमवाप्नुहि ॥५॥

हे प्रभो ! तुम हमारे तत्व के कथन को सुनो आत्मा की दिव्यता तथा शरीर के निर्माण पर ध्यान दो और धैर्य धारण करो ॥५॥

पुरा त्वं तपसास्माभिर्लब्धो राजन्महेश्वरात् ।
पूर्वकायश्च सर्वस्ते निर्मितो वज्रसञ्चयैः ॥६॥

हे राजन् ! हमने महेश्वर से वरदान प्राप्त करके बड़ी कठिनता से तुमको राजा पाया है । तुम्हारे शरीर के पूर्व का भाग हमने वज्र से बनाया है ॥६॥

अस्त्रैरभेद्यः शस्त्रैश्चाप्यधः कायश्च तेऽनघ ।
कृतः पुष्पमयो देव्या रूपतः स्त्रीमनोहरः ॥७॥

हे अनघ ! तेरे शरीर के नीचे का भाग भी अस्त्र शस्त्रों से अभेद्य है । देवी ने स्त्रियों को मनोहर प्रतीत होने वाला, तेरा रूप पुष्पों के सदृश सुन्दर बनाया है ॥७॥

एवमीश्वरसंयुक्तस्तव देहो नृपोत्तम ।
देव्या च राजशार्दूल दिव्यस्त्वं हि न मानुषः ॥८॥

हे नृपोत्तम ! तेरा देह ईश्वर (शिव) और देवी (पार्वती) के अंश से संयुक्त है । हे राज-शार्दूल ! तुम मनुष्य नहीं हो, दिव्य प्राणी हो ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रियाश्च महावीर्य्या भगदत्तपुरोगमाः ।
दिव्यास्त्रविदुषः शूरा क्षपयिष्यन्ति ते रिपून् ॥९॥

महा-शक्ति-शाली, भगदत्त आदि क्षत्रिय-श्रेष्ठ, दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता और शूरवीर हैं, वे तेरे सारे शत्रुओं का विध्वंस कर डालेंगे ॥९॥

तदलन्ते विषादेन भयं तव न विद्यते ।
सहायार्थञ्च ते वीराः सम्भूता भुवि दानवाः ॥१०॥

तुम विषाद् न करो, तुमको कोई भय नहीं है। हे राजन्! तुम्हारी सहायता के लिए तो पृथिवी पर अनेक वीर दानव विद्यमान हैं ॥१०॥

भीष्मद्रोणकृपादींश्च प्रवेक्ष्यन्त्यपरेऽसुराः ।
यैराविष्टा घृणां त्यक्त्वा योत्स्यन्ते तव वैरिभिः॥११

भीष्म, द्रोण, कृप आदि में सारे राक्षस घुस जावेंगे। जिनके घुसने के कारण वे लज्जा छोड़कर तेरे वैरियों से युद्ध कर सकेंगे ॥११॥

नैव पुत्रान्न च भ्रातॄन्न पितॄन्न च बान्धवान् ।
नैव शिष्यान्न च ज्ञातीन्न बालान् स्थविरान्न च ॥१२
युधि सम्प्रहरिष्यन्तो मोक्ष्यन्ति कुरुसत्तम ।
निःस्नेहा दानवाविष्टाः समाक्रान्तेऽन्तरात्मनि ॥१३

हे कुरुसत्तम! ये दैत्य, भीम आदि के शरीर में घुस कर पुत्र, भाई, पिता, बान्धव, शिष्य, जाति-बन्धु, बालक, वृद्ध किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नहीं छोड़ेंगे, सब को युद्ध में मार डालेंगे। ये दानवों से समाक्रान्त होने से बिलकुल निःस्नेह हो जावेंगे ॥१२-१३॥

प्रहरिष्यन्ति विवशाः स्नेहमुत्सृज्य दूरतः।
हृष्टाः पुरुषशार्दूलाः कलुषीकृतमानसाः ॥१४॥

भीष्म आदि कौरव, दानवों के परवश होकर और बिल्कुल स्नेह छोड़कर प्रहार करेंगे। इनके मन कलुषित हो जावेंगे, इससे इस प्रकार मारकाट करने पर भी ये प्रसन्न ही बने रहेंगे ॥१४॥

अविज्ञानविमूढाश्च दैवाच्च विधिनिर्म्मितात्।
व्याभाषमाणाश्चान्योऽन्यं न मे जीवन् विमोक्ष्यसे॥

ये वीर, कर्तव्य के ज्ञान से हीन होकर विधाता और पूर्व कर्म की प्रेरणा से एक दूसरे से युद्ध में कहेंगे, कि मैं तुझे आज जीता नहीं छोड़ूंगा ॥१५॥

सर्वे शस्त्रास्त्रमोक्षेण पौरुषे समवस्थिताः।
श्लाघमानाः कुरुश्रेष्ठ करिष्यन्ति जनक्षयम् ॥१६॥

हे कुरुश्रेष्ठ! ये सारे शस्त्र अस्त्रों के चलाने में प्रशंसा प्राप्त करते हुए, अपना २ पौरुष दिखावेंगे और मनुष्य जाति का महान् संहार कर डालेंगे ॥१६॥

तेऽपि पञ्च महात्मानः प्रतियोस्यन्ति पाण्डवाः।
वधञ्चैषां करिष्यन्ति दैवयुक्ता महाबलाः ॥१७॥

ये पांचों महात्मा पाण्डव भी, इनके साथ युद्ध करेंगे। ये देव-शक्ति से युक्त होकर कुछ राक्षसों का वध भी कर डालेंगे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैत्यरक्षोगणाश्चैव सम्भूताः क्षत्रयोनिषु ।
योत्स्यन्ति युधि विक्रम्य शत्रुभिस्तव पार्थिव ॥१८॥
गदाभिर्मुसलैः शूलैः शस्त्रैरुच्चावचैस्तथा ।

हे राजन् ! ये दैत्य और राक्षसों के गण, क्षत्रिय-जाति में उत्पन्न होंगे । वहां युद्ध में पराक्रम दिखाते हुए तेरे शत्रुओं से गदा, मुसल-शूल आदि उत्तम २ शस्त्रों से युद्ध करेंगे ॥१८॥

यच्च तेऽन्तर्गतं वीर भयमर्जुनसम्भवम् ॥१९॥
तत्रापि विहितोऽस्माभिर्वधोपायोऽर्जुनस्य वै ।

हे वीर ! जो तुझे अर्जुन से भय उपस्थित हो रहा है । हमने उसके वध का उपाय भी निकाल लिया है ॥१९॥

हतस्य नरकस्यात्मा कर्णमूर्त्तिमुपाश्रितः ॥२०॥
तद्वैरं संस्मरन् वीर योत्स्यते केशवार्जुनौ ।
स ते विक्रमशौण्डीरो रणे पार्थं विजेष्यति ॥२१॥

हे वीर ! मारे हुए नरकासुर की आत्मा, कर्ण में घुस चुकी है । यह नरकासुर, उस वैर का स्मरण करके केशव और अर्जुन से युद्ध करेगा । यह पराक्रम में कुशल वीर, रण में अर्जुन को जीत लेगा ॥२०-२१॥

कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः सर्वांश्चारीन्महारथः ।
ज्ञात्वैतच्छद्मना वज्री रक्षार्थं सव्यसाचिनः ॥२२॥
कुण्डले कवचश्चैव कर्णस्याहरिष्यति ।
तस्मादस्माभिरप्यत्र दैत्याः शतसहस्रशः ॥२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियुक्ता राक्षसाश्चैव ये ते संशप्तका इति ।
प्रख्यातास्तेऽर्जुनं वीरं निहनिष्यति मा शुचः ॥२४॥

शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ महारथी कर्ण, सारे शत्रुओं को जीत लेगा--यह जान कर इन्द्र, अर्जुन की रक्षा के लिए छल से कर्ण के कवच कुण्डल मांग ले जावेगा । हमने भी सैकड़ों हज़ारों की संख्या में दैत्य, इस काम में नियुक्त कर रखे हैं, जो संशप्तक कहाते हैं । ये वीर, अर्जुन को मारकर ही छोड़ेंगे--तुम संदेह न करो ॥२२-२४॥

असपत्ना त्वया हीयं भोक्तव्या वसुधा नृप ।
मा विषादं गमस्तस्मान्नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥२५॥

हे नृप ! तुम शत्रु-हीन, इस भूमि का भोग करोगे, इससे कुछ विषाद् न करो । तुमको विषाद करना शोभा भी नहीं देता है ॥२४॥

विनष्टे त्वयि चास्माकं पक्षो हीयेत कौरव ।
गच्छ वीर न ते बुद्धिरन्या कार्य्या कथञ्चन ।
त्वमस्माकं गतिर्नित्यं देवतानाञ्च पाण्डवाः ॥२६॥

हे कौरव ! तुम्हारे नष्ट हो जाने से हमारा पक्ष भी कमजोर पड़ जावेगा । हे वीर ! अब तुमको अपनी बुद्धि इधर-उधर विचलित नहीं करनी चाहिए । हमारी तो तू ही गति है और देवताओं की पाण्डव गति हैं ॥३६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा परिष्वज्य दैत्यास्तं राजकुञ्जरम् ।
समाश्वास्य च दुर्द्धर्षं पुत्रवद्दानवर्षभाः ।
स्थिरां कृत्वा बुद्धिमस्य प्रियाण्युक्त्वा च भारत॥२७
गम्यतामित्यनुज्ञाय जयमाप्नुहि चेत्यथ ।

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इतना कहकर दैत्यों ने राज-श्रेष्ठ, दुर्योधन का आलिङ्गन किया । इन दानवोत्तमों ने दुर्धर्ष, राजा दुर्योधन को पुत्र की भांति समझाया । हे भारत ! इसकी बुद्धि को स्थिर करके और प्रिय वचन कहकर कहा—अब तुम जाओ और विजय प्राप्त करो ॥२७॥

तैर्विसृष्टं महाबाहुं कृत्या सैवानयत् पुनः ॥२८॥
तमेव देशं यत्रासौ तदा प्रायमुपाविशत् ।

उन दानवों से विदा हुए राजा दुर्योधन को वही कृत्या (यज्ञोत्पन्न देवी) वहीं ले गयी, जहां राजा दुर्योधन पूर्व में उपवास करके बैठा था ॥२८॥

प्रतिनिक्षिप्य तं वीरं कृत्या समभिपूज्य च ॥२९॥
अनुज्ञाता च राज्ञा सा तथैवान्तरधीयत ।

कृत्या ने उस वीर राजा को अपने स्थान पर पहुंचा कर और उसका आदर प्रदर्शित करके उससे विदा ली । उसके विदा करने पर वह वहीं अलक्षित हो गई ॥२९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतायामथ तस्यान्तु राजा दुर्य्योधनस्तदा ॥३०॥
स्वप्नभूतमिदं सर्वमचिन्तयत भारत ।
विजेष्यामि रणे पाण्डूनिति तस्याभवन्मतिः ॥३१॥

हे भारत ! इस कृत्या के चले जाने पर राजा दुर्योधन ने यह सब कुछ स्वप्न समझा और इसको निश्चय हो गया, कि मैं युद्ध में पाण्डवों को जीत लूंगा ॥३०-३१॥

कर्णं संशप्तकांश्चैव पार्थस्यामित्रघातिनः ।
अमन्यत वधे युक्तान् समर्थांश्च सुयोधनः ॥३२॥

राजा दुर्योधन ने शत्रु-घाती अर्जुन के मारने के लिए सब तरह से योग्य और समर्थ, कर्ण तथा संशप्तकों को समझ लिया ॥

एवमाशा दृढा तस्य धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
विनिर्जये पाण्डवानामभवद्भरतर्षभ ॥३३॥

हे भरतर्षभ ! इस प्रकार इस दुर्मति दुर्योधन की पाण्डवों के जीतने की दुराशा बड़ी दृढ़ हो गई ॥३३॥

कर्णोऽप्याविष्टचित्तात्मा नरकस्यान्तरात्मना ।
अर्जुनस्य वधे क्रूरां करोति स्म तदा मतिम् ॥३४॥

कर्ण ने भी नरकासुर द्वारा मन बुद्धि पर सक्रमण कर लेने पर अर्जुन के मारने की क्रूर-बुद्धि बनाली ॥३४॥

संशप्तकाश्च ते वीरा राक्षसाविष्टचेतसः ।
रजस्तमोभ्यामाक्रान्ताः फाल्गुनस्य वधैषिणः ॥३५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशप्तक वीरों के भी मन और चित्त पर राक्षसों ने अधिकार कर लिया था। ये रज और तम के आवेग से अर्जुन के मारने की इच्छा करने लगे ॥३५॥

भीष्मद्रोणकृपाद्याश्च दानवाक्रान्तचेतसः।
न तथा पाण्डपुत्राणां स्नेहवन्तो विशाम्पते ॥३६॥

हे विशाम्पते! दानवों के चित्तपर असर कर लेने के कारण से ही भीष्म, द्रोण और कृप आदि वीर, पाण्डवों से स्नेह नहीं कर रहे थे ॥३६॥

न चाचचक्षे कस्मैचिदेतद्राजा सुयोधनः।
दुर्योधनं निशान्ते च कर्णो वैकर्त्तनोऽब्रवीत् ॥३७॥
स्मयन्निवाञ्जलिं कृत्वा पार्थिवं हेतुमद्वचः।

राजा सुयोधन ने यह घटना किसी को नहीं सुनाई। रात की समाप्ति होने पर सूर्य-पुत्र कर्ण ने आकर राजा दुर्योधन से हंसते २ हाथ जोड़कर हेतु-पूर्वक वचन कहा ॥३७॥

न मृतो जयते शत्रून् जीवन् भद्राणि पश्यति ॥३८॥
मृतस्य भद्राणि कुतः कौरवेय कुतो जयः।
न कालोऽद्य विषादस्य भयस्य मरणस्य वा ॥३९॥

हे कौरवेय! मृत मनुष्य, शत्रुओं को नहीं जीत सकता है; जीवित ही कल्याण पा सकता है। जो मर चुका उसको सुख और कल्याण कैसे मिल सकता है और वह विजय भी कैसे पा सकता है। हे राजन्! यह काल, भय, विषाद या मरने का नहीं है ॥३८-३९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिष्वज्याब्रवीच्चैनं भुजाभ्यां स महाभुजम् ।
उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे कस्माच्छोचसि शत्रुहन् ॥४०॥
शत्रून् प्रताप्य वीर्य्येण स कथं मृत्युमिच्छसि ।

हे राजन् ! कर्ण ने अपनी भुजाओं से विशाल भुजाधारी दुर्योधन का आलिङ्गन किया और कहा—हे शत्रु-नाशक ! उठो । क्या बात है ? जो अभी तक सो रहे हो और चिन्ता सी कर रहे हो । तुमने अपने पराक्रम से शत्रुओं को सन्तापित कर दिया है; फिर तुम भी मृत्यु की क्यों इच्छा कर रहे हो ॥

अथ वा ते भयं जातं दृष्ट्वार्जुनपराक्रमम् ॥४१॥
सत्यन्ते प्रतिजानामि वधिष्यामि रणेऽर्जुनम् ।
गते त्रयोदशे वर्षे सत्येनायुधमालभे ॥४२॥
आनयिष्याम्यहं पार्थान् वशं तव जनाधिप ।

तुम्हें शायद अर्जुन का पराक्रम देखकर भय हुआ है । मैं आज सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि मैं रण में तेरह वर्ष बीतने पर अर्जुन को मार कर छोड़ूंगा । यह प्रतिज्ञा मैं शस्त्रों की शपथ खाकर करता हूं । हे जनाधिप ! मैं पाण्डवों को तेरे वश में किसी भी तरह कर दूंगा ॥४१-४२॥

एवमुक्तस्तु कर्णेन दैत्यानां वचनात्तथा ॥४३॥
प्रणिपातेन चाप्येषामुदतिष्ठत् सुयोधनः ।
दैत्यानां तद्वचः श्रुत्वा हृदि कृत्वा स्थिरां मतिम् ४४

दैत्यों की आन्तरिक प्रेरणा से कर्ण के इतना कहने पर तथा इनके प्रणाम आदि से दुर्योधन उठा । इसने दैत्यों के उन वचनों से अपने हृदय में बुद्धि को स्थिर कर लिया था ॥४३-४४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो मनुजशार्दूलो योजयामास वाहिनीम् ।
रथनागाश्वकलिलां पदातिजनसङ्कुलाम् ॥४५॥
गङ्गौघप्रतिमा राजन् प्रयाता सा महाचमूः ।
श्वेतच्छत्रैः पताकाभिश्चामरैश्च सुपाण्डरैः ॥४६॥
रथैर्नागैः पदातैश्च शुशुभेऽतीव सङ्कुला ।
व्यपेताभ्रघने काले द्यौरिवाव्यक्तशारदी ॥४७॥

इसके अनन्तर इस मनुजश्रेष्ठ ने रथ, हाथी और अश्वों से दुष्प्रवेश, पैदल सिपाही से भरी हुई, अपनी सेना को चलने को तय्यार कर दिया। हे राजन्! यह महासेना, गंगा के प्रवाह की तरह चल पड़ी। श्वेतच्छत्र, पताका, अत्यन्त श्वेत, चामर, रथ, हाथी, पैदलों से संकीर्ण हुई सेना, मेघरहित, कुछ २ शरद् ऋतु की शोभा से युक्त, आकाश की भांति बहुत ही सुशोभित हो रही थी ॥४५-४७॥

जयाशीर्भिर्द्विजेन्द्रैः स स्तूयमानोऽधिराजवत् ।
गृह्णन्नञ्जलिमालाश्च धार्त्तराष्ट्रो जनाधिपः ॥४८॥
सुयोधनो ययावग्रे श्रिया परमया ज्वलन् ।
कर्णेन सार्द्धं राजेन्द्र सौबलेन च देविना ॥४९॥

ब्राह्मण लोग, जय आदि आशीर्वाद के घोषों से सम्राट् के सदृश दुर्योधन की स्तुति कर रहे थे। यह राजा दुर्योधन भी अनेक मनुष्यों के प्रणामों को ग्रहण करता हुआ, अत्यन्त राज्य-लक्ष्मी से देदीप्यमान, जुआ के खिलाड़ी शकुनि और कर्ण के साथ आगे २ चल दिया ॥४८-४९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःशासनादयश्चास्य भ्रातरः सर्व एव ते ।
भूरिश्रवाः सोमदत्तो महाराजश्च बाह्लिकः ॥५०॥
रथैर्नानाविधाकारैर्हयैर्गजवरैस्तथा ।
प्रयान्तं नृपसिंहन्तमनुजग्मुः कुरूद्वहाः ।
कालेनाल्पेन राजेन्द्र स्वपुरं विविशुस्तदा ॥५१॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्य्योधन-पुरप्रवेशे एकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५१॥

हे राजेन्द्र ! दुःशासन आदि सारे भ्राता, भूरिश्रवा, सोमदत्त, महाराज बाल्हिक तथा अन्य अनेक कुरुवंशी योद्धा, अनेक भांति के रथ, घोड़े और गजों के सहित चलते हुए राजा के पीछे २ चल दिये और थोड़े ही काल में अपने पुर में प्रविष्ट हो गए ॥५०-५१॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में दुर्योधन के पुर प्रवेश का दो सौ इक्यावनवां अध्याय पूरा हुआ ।

****

दो सौ बावनवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

वसमानेषु पार्थेषु वने तस्मिन्महात्मसु ।
धार्त्तराष्ट्रा महेष्वासा किमकुर्वत सत्तमाः ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्णो वैकर्त्तनश्चैव शकुनिश्च महाबलः ।
भीष्मद्रोणकृपाश्चैव तन्मे शंसितुमर्हसि ॥२॥

जनमेजय पूछने लगा—हे ब्रह्मन् ! इन महात्मा पाण्डवों के द्वैतवन में निवास करने के समय महाधनुर्धर धृतराष्ट्र के पुत्र, सूर्यपुत्र कर्ण, महाबली शकुनि, भीष्म, द्रोण और कृप क्या २ चेष्टा कर रहे थे, यह सब कुछ मुझे अच्छी तरह सुनाओ ॥१-२॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं गतेषु पार्थेषु विसृष्टे च सुयोधने ।
आगते हास्तिनपुरं मोक्षिते पाण्डुनन्दनैः ॥३॥
भीष्मोऽब्रवीन्महाराज धार्त्तराष्ट्रमिदं वचः ।

वैशम्पायन बोले--हे महाराज ! इस प्रकार पाण्डवों के लौट जाने और दुर्योधन को विदा दे देने तथा दुर्योधन के पाण्डवों द्वारा छुटकारा पाकर हस्तिनापुर आ जाने पर धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन से भीष्म यह वचन बोला ॥ ३ ॥

उक्तं ततो यथा पूर्वं गच्छतस्ते तपोवनम् ॥४॥
गमनं मे न रुचितं तव तत्र कृतश्च ते ।
ततः प्राप्तं त्वया वीर ग्रहणं शत्रुभिर्बलात् ॥५॥
मोक्षितश्चासि धर्मज्ञैः पाण्डवैर्न च लज्जसे ।

हे तात ! तुम्हारे तपोवन जाने के समय ही हमने कह दिया था, कि तुम्हारा तपोवन जाना हमको ठीक नहीं मालूम होता है, परन्तु तुम नहीं माने और आखिर तुम तपोवन में चले गए ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे वीर ! वहां तुमको शत्रुओं ने बलपूर्वक पकड़ लिया। धर्मात्मा पाण्डवों ने छुड़ा दिया, परन्तु तुमको अब भी लज्जा नहीं आती है ॥ ४-५ ॥

प्रत्यक्षं तव गान्धारे ससैन्यस्य विशाम्पते ॥६॥
सूतपुत्रोऽपयाद्भीतोगन्धर्वाणां तदा रणात् ।
क्रोशतस्तव राजेन्द्र ससैन्यस्य नृपात्मज ॥७॥

हे गान्धारीपुत्र ! नृपते ! तुमने प्रत्यक्ष देख लिया, कि सेना सहित तुम्हारे सामने ही कर्ण, गन्धर्वों से डर कर भाग गया और तुम सेना सहित खड़े २ देखते रहे ॥ ६-७ ॥

दृष्टस्ते विक्रमश्चैव पाण्डवानां महात्मनाम् ।
कर्णस्य च महाबाहो सूतपुत्रस्य दुर्मतेः ॥८॥

हे महाबाहो ! महात्मा पाण्डवों ने तुम्हारा और दुर्मति, सूतपुत्र कर्ण का इस युद्ध में सारा पराक्रम देख लिया है ॥८॥

न चापि पादभाक् कर्णः पाण्डवानां नृपोत्तम ।
धनुर्वेदे चशौर्य्ये च धर्मे वा धर्म्मवत्सल ॥९॥
तस्मादहं क्षमं मन्ये पाण्डवैस्तैर्महात्मभिः ।
सन्धिं सन्धिविदां श्रेष्ठ कुलस्यास्य विवृद्धये ॥१०॥

हे नृपोत्तम ! धर्मवत्सल ! धनुर्वेद, शूरता तथा धर्म में कर्ण, पाण्डवों के चरणों की भी बराबरी नहीं कर सकता है। हे सन्धि के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ ! राजन् ! यही कारण है, कि हम लोग, उन महात्मा पाण्डवों के साथ सन्धि करना ही उचित मानते हैं। इसी में इस कुल की वृद्धि है ॥ ९-१० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमुक्तस्तु भीष्मेण धार्त्तराष्ट्रो जनेश्वरः ।
प्रहस्य सहसा राजन् विप्रतस्थे ससौबलः ॥११॥

हे राजन ! भीष्म के इतना कहने पर धृतराष्ट्र पुत्र, राजा दुर्योधन, सहसा मुस्कुरा दिया और शकुनि के साथ वहां से चला गया ॥ ११ ॥

तन्तु प्रस्थितमाज्ञाय कर्णदुःशासनादयः ।
अनुजग्मुर्महेष्वासा धार्त्तराष्ट्रं महाबलम् ॥१२॥

जब कर्ण और दुःशासन ने देखा, कि राजा दुर्योधन चला गया, तो वे महाधनुर्धर भी महाबली दुर्योधन के पीछे २ चले गए ॥ १२ ॥

तांस्तु सम्प्रस्थितान् दृष्ट्वा भीष्मः कुरुपितामहः ।
लज्जया व्रीडितो राजन् जगाम स्वं निवेशनम् ॥१३

हे राजन् ! कुरु-पितामह, भीष्म, इन सबको वहां से गये हुए देखकर, स्वयं भी लज्जा से शिर नीचा करके अपने स्थान को चला गया ॥ १३ ॥

गते भीष्मे महाराज धात्तराष्ट्रो जनेश्वरः ।
पुनरागम्य तं देशममन्त्रयत मन्त्रिभिः ॥१४॥

हे महाराज ! जब भीष्म वहाँ से चले गए, तो राजा दुर्योधन फिर उसी स्थान पर आया और अपने मन्त्रियों से सम्मति करने लगा ॥ १४ ॥

किमस्माकं भवेच्छ्रेयः किं कार्य्यमवशिष्यते ।
कथञ्च सुकृतं तत् स्यान्मन्त्रयामोऽद्य यद्धितम् ॥१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा बोला--हे सचिवो ! हमारा क्या कल्याणकारी कर्तव्य है और क्या कार्य अवशेष है। वह कौनसा सुकर्म है, जिस हितकारी कार्य का आज विचार करें ॥१५॥

कर्ण उवाच—

दुर्य्योधन निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि कौरव।
भीष्मोऽस्मान्निन्दति सदा पाण्डवांश्च प्रशंसति ॥१६

कर्ण ने कहा-हे कौरव ! जो मैं कहता हूं, तुम उसको अच्छी तरह समझ लो। यह भीष्म, सदा हमारी निन्दा और पाण्डवों की प्रशंसा करता रहता है ॥ १६ ॥

त्वद्द्वेषाच्च महाबाहो ममापि द्वेष्टुमर्हति।
विगर्हते च मां नित्यं त्वत्समीपे नरेश्वर ॥१७॥

यह तुम्हारे द्वेष से ही मुझसे भी द्वेष मानता है। हे नरेश्वर ! इसी से यह तुम्हारे सामने मेरी भी निन्दा कर बैठता है ॥१७॥

सोऽयं भीष्मवचस्तद्वै न मृष्यामीह भारत।
त्वत्समक्षं यदुक्तश्च भीष्मेणामित्रकर्षण ॥१८॥

हे शत्रुनाशक ! भारत ! मैं अब भीष्म के वचनों को नहीं सह सकता हूं, जो उन्होंने तुम्हारे ही सामने कहे हैं ॥ १८ ॥

पाण्डवानां यशो राजंस्तव निन्दाश्च भारत।
अनुजानीहि मां राजन् सभृत्यबलवाहनम् ॥१९॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! राजन् ! इसने पाण्डवों की कीर्ति का गान और तुम्हारी निन्दा की है। हे राजेन्द्र ! अब तुम सेवक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना और वाहनों के सहित, मुझे तो यहाँ से जाने की आज्ञा दो ॥ १९ ॥

जेष्यामि पृथिवीं राजन् सशैलवनकाननाम् ।
जिता च पाण्डवैर्भूमिश्चतुर्भिर्बलशालिभिः ॥२०॥
तामहन्ते विजेष्यामि एक एव न संशयः ।
सम्पश्यतु सुदुर्बुद्धिर्भीष्मः कुरुकुलाधमः ॥२१॥

हे राजन्! अब मैं पर्वत, वन, महावनों से समन्वित, भूमि को जीतूंगा, जिसको चार बलशाली पाण्डवों ने जीता है। आज उसको मैं अकेला ही तेरे लिए जीत दूंगा। दुर्बुद्धि कुरुवंशाधम भीष्म, देखता ही रह जावेगा ॥ २०-२१ ॥

अनिन्द्यं निन्दते यो हि अप्रशंस्यं प्रशंसति ।
स पश्यतु बलं मेऽद्य आत्मानन्तु विगर्हतु ॥२२॥

यह भीष्म, जो निन्दा के अयोग्य हैं, उनकी निन्दा करता है और जो प्रशंसा के अयोग्य है, उनकी प्रशंसा करता है। अब वह मेरा बल देखेगा, तब अपने आपको धिक्कार देगा ॥ २२ ॥

अनुजानीहि मां राजन् ध्रुवो हि विजयस्तव ।
प्रतिजानामि ते सत्यं राजन्नायुधमालभे ॥२३॥

हे राजन्! अब तुम मुझे जाने की आज्ञा दो। तुम्हारी विजय तो अवश्य होगी। हे राजन्! में शस्त्र छूकर शपथ-पूर्वक सत्य प्रतिज्ञा करता हूं ॥ २३ ॥

तच्छ्रुत्वा तु वचो राजन् कर्णस्य भरतर्षभ ।
प्रीत्या परमया युक्तः कर्णमाह नराधिपः ॥२४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भरतर्षभ ! राजा दुर्योधन, कर्ण के वचन सुन कर बड़ी प्रीति से युक्त होकर कर्ण से कहने लगा।। २४ ।।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे त्वं महाबलः ।
हितेषु वर्त्तसे नित्यं सफलं जन्म चाद्य मे ।।२५।।

आज मैं बड़ा धन्य हू और मेरा जन्म सफल हो गया है, जो आप जैसे महाबली मेरे हित में प्रवृत्त हो रहे हैं ।। २५।।

यदा च मन्यसे वीर सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
तदा निर्गच्छ भद्रन्ते ह्यनुशाधि च मामिति ।।२६।।

हे वीर ! जब तुम यह देख लो, कि सारे शत्रुओं का नाश हो गया, तब लौट आना और आकर मुझे राज्य-शासन की शिक्षा देना ।। २६ ।।

एवमुक्तस्तदा कर्णो धार्त्तराष्ट्रेण धीमता ।
सर्वमाज्ञापयामास प्रायात्रिकमरिन्दम ।।२७।।

हे अरिन्दम ! जब बुद्धिमान राजा दुर्योधन ने इतना कहा-तो कर्ण ने सारे शकट आदिकों को चलने की आज्ञा दी ।।२७।।

निर्ययौ च महेष्वासो नक्षत्रे शुभदैवते ।
शुभे तिथौ मुहूर्ते च पूज्यमानो द्विजातिभिः ।।२८।।
मङ्गलैश्च शुभैः स्नातो वाग्भिश्चापि प्रपूजितः ।
नादयन्रथघोषेण त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।२९।।

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वाणि घोषयात्रापर्वणि कर्णदिग्विजये द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।५२।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह महाधनुषधारी कर्ण, शुभ देवता वाले नक्षत्र, शुभ तिथि, शुभ मुहूर्त में ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण करके अपने रथ के घोष से चराचर त्रिलोकी को कम्पायमान करता हुआ चल दिया ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में कर्ण केदिग्विजय के प्रस्थान के लिए जाने का दो सौ बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ

****

दो सौ तरेपनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततः कर्णो महेष्वासो बलेन महता वृतः ।
द्रुपदस्य परं रम्यं रुरोध भरतर्षभ ॥१॥

वैशम्पायन कहने लगे—हे भरतर्षभ ! सब से प्रथम महाधनुर्धर कर्ण ने बड़ी भारी सेना के साथ, द्रुपद के रमणीक पुर को जा घेरा ॥१॥

युद्धेन महता चैनं चक्रे वीरं वशानुगम् ।
सुवर्णं रजतञ्चापि रत्नानि विविधानि च ॥२॥
करञ्च दापयामास द्रुपदं नृपसत्तम ।

हे नृपसत्तम ! कर्ण ने बड़े भारी युद्ध के अनन्तर इस वीर को वश में किया और सुवर्ण, चांदी, अनेक भांति के रत्न भेंट में लिये तथा राजा दुर्योधन के लिए इसे कर दिलाने को विवश किया ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं विनिर्जित्य राजेन्द्र राजानस्तस्य येऽनुगाः ॥३॥
तान् सर्वान् वशगांश्चक्रे करञ्चैनानदापयत् ।

हे राजेन्द्र ! इसको और इसके अनुचर राजाओं को जीत कर कर्ण ने सबको अपने वश में किया और इन सब से राजा दुर्योधन को कर दिलवाया ॥३॥

अथोत्तरां दिशं गत्वा वशे चक्रे नराधिपान् ॥४॥
भगदत्तञ्च निर्जित्य राधेयो गिरिमारुहत् ।
हिमवन्तं महाशैलं युद्धमानश्च शत्रुभिः ॥५॥

अब कर्ण उत्तर दिशा को चल दिया और यहां के राजा भी इसने वश में कर लिए। इधर राजा भगदत्त को जीतकर कर्ण, शत्रुओं के साथ युद्ध करता हुआ, महाशैल हिमालय पर चढ़ गया ॥४-५॥

प्रययौ च दिशः सर्वान्नृपतीन् वशमानयत् ।
स हैमवतिकान् जित्वा करं सर्वानदापयत् ॥६॥

इसी प्रकार यह सारी उत्तर दिशा को गया। वहां इसने सारे राजाओं को अपने वश में कर लिया और हिमालय निवासी सारे राजाओं को जीतकर उनसे कर दिलवाया ॥६॥

अवतीर्य्य ततः शैलात् पूर्वां दिशमभिद्रुतः ।
अङ्गान् वङ्गान् कलिङ्गांश्च पाण्डिकान् मिथिलानथ॥७॥
मागधान् कर्कखण्डांश्च निवेश्य विषयेत्मनः ।
आवशीरांश्च योध्यांश्च अहिक्षत्रञ्च योऽजयत् ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्ण हिमालय पर्वत से उतर कर पूर्व दिशा को गया। इस दिशा के वङ्ग, कलिङ्ग, मण्डिक, मिथिल, मागध, कर्कखण्ड आदि देशों को अपने वश में करके कर्ण ने आवशीर, योध्य और अहिक्षत्र देशों को जा जीता ॥७-८॥

पूर्वां दिशं विनिर्जित्य वत्सभूमिं तथागमत् ।
वत्सभूमिं विनिर्जित्य केवलीं मृत्तिकावतीम् ॥९॥
मोहनं पत्तनञ्चैव त्रिपुरां कोशलां तथा ।
एतान् सर्वान् विनिर्जित्य करमादाय सर्वशः ॥१०॥

यह पूर्व दिशा को जीतकर वत्स भूमि में पहुंचा। इसने वत्स भूमि को जीतकर केवली, मृत्तिकावती, मोहनपुर, त्रिपुर, कोशला आदि नगरों को जीत लिया। इन सबको जीतकर और उनसे कर लेकर कर्ण दक्षिण दिशा को चला ॥९-१०॥

दक्षिणां दिशमास्थाय कर्णो जित्वा महारथान् ।
रुक्मिणं दाक्षिणात्येषु योधयामास सूतजः ॥११॥

कर्ण ने दक्षिण दिशा में जाकर अनेक महारथी जीत लिए और दक्षिण देश के राजाओं में इसका रुक्मी से बड़ा भारी युद्ध हुआ ॥११॥

स युद्धन्तुमुलं कृत्वा रुक्मी प्रोवाच सूतजम् ।
प्रीतोऽस्मि तव राजेन्द्र विक्रमेण बलेन च ॥१२॥
न ते विघ्नं करिष्यामि प्रतिज्ञां समपालयम् ।
प्रीत्या चाहं प्रयच्छामि हिरण्यं यावदिच्छसि ।१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा रुक्मी, इससे घमसान युद्ध करके कर्ण से बोला। हे राजेन्द्र ! मैं तुम्हारे बल-विक्रम के कारण तुम से बड़ा प्रसन्न हुआ हूं। मैं तुम्हारे काम में विघ्न नहीं करता हूं, मैंने तो अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया है। अब मैं प्रीति-पूर्वक, तुमको, तुम चाहो जितना सुवर्ण दे सकता हूं ॥१२-१३॥

समेत्य रुक्मिणा कर्णः पाण्ड्यं शैलश्च सोऽगमत् ।
स केरलं रणे चैव नीलश्चापि महीपतिम् ॥१४॥
वेणुदारिसुतश्चैव ये चान्ये नृपसत्तमाः ।
दक्षिणस्यान्दिशि नृपान् करान् सर्वानदापयत् १५

कर्ण, रुक्मी से सन्धि करके पाण्ड्य देश के पर्वतों की ओर चल दिया। इसने केरल देश और नील महीपति को जीत लिया। इसी तरह वेणुदारि राजा के पुत्र आदि अनेक राजा जीते। इस दक्षिण दिशा के सारे राजाओं से इसने राजा दुर्योधन को कर दिलवाया ॥१४-१५॥

शैशुपालं ततो गत्वा विजिग्ये सूतनन्दनः ।
पार्श्वस्थांश्चापि नृपतीन् वशे चक्रे महाबलः ॥१६॥

अब महाबली सूत-नन्दन, कर्ण, शिशुपाल पर चढ़ गया और इसने उसको भी जीत लिया एवं इसके इधर-उधर रहने वाले राजाओं से भी कर दिलाया ॥१६॥

आवन्त्यांश्च वशे कृत्वा साम्ना च भरतर्षभ ।
वृष्णिभिः सह सङ्गम्य पश्चिमामपि निर्जयत् ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वारुणीं दिशमागम्य यावनान् वर्वरांस्तथा ।
नृपान् पश्चिमभूमिस्थान् दापयामास वै करान्॥१८॥

हे भरतर्षभ! कर्ण ने अवन्ती देशोंको शान्ति से ही ले लिया और वृष्णियों से सन्धि करके पश्चिम-दिशा को भी जा जीता ॥ इसने पश्चिम दिशा में पहुंच कर यवन, वर्वर आदि पश्चिम की भूमि के निवासी अनेक राजाओं से कर दिलाया ॥१७-१८॥

विजित्य पृथिवीं सर्वां स पूर्वापरदक्षिणाम् ।
सम्लेच्छाटविकान् वीरः सपर्वतनिवासिनः ॥१९॥
भद्रान् रोहितकांश्चैव आग्नेयान्मालवानपि ।
गणान् सर्वान् विनिर्जित्य नीतिकृत् प्रहसन्निव ॥२०
शशकान् यवनाश्चैव विजिग्ये सूतनन्दनः ।

पूर्व, पश्चिम और दक्षिण की सारी भूमि जीत कर पर्वत-निवासी राजाओं के साथ म्लेच्छ, आटविक, भद्र, रोहितक, आग्नेय, मालव, शशक, यवन आदि सारे गणों को नीतिमान कर्ण ने हंसते २ जीत लिया ॥१९-२०॥

नग्नजित्प्रमुखांश्चैव गणान् जित्वा महारथान् ॥२१॥
एवं स पृथिवीं सर्वां वशे कृत्वा महारथः ।
विजित्य पुरुषव्याघ्रो नागसाह्वयमागमत् ॥२२॥

नग्नजित आदि महारथी गणों को जीत कर इस महारथी कर्ण ने सारी पृथिवी को वश में कर लिया । इस प्रकार सबको जीत कर यह पुरुष-श्रेष्ठ, हस्तिनापुर में लौट आया ॥ २१-२२ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमागतं महेष्वासं धार्त्तराष्ट्रो जनाधिपः ।
प्रत्युद्गम्य महाराज सभ्रातृपितृबान्धवः ॥२३॥
अर्चयामास विधिना कर्णमाहवशोभिनम् ।
आश्रावयच्च तत्कर्म प्रीयमाणो जनेश्वरः ॥२४॥

हे महाराज, इसको आया हुआ देखकर धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन, अपने भाई और बन्धु बान्धवों के साथ इसके स्वागत को आया। युद्धमें सुशोभित होने वाले कर्णका राजा दुर्योधनने विधि-पूर्वक सत्कार किया और प्रसन्नतासे राजा ने इसके इस कर्म की प्रशंसा करते हुए कर्ण को मधुर शब्द सुनाए ॥२३-२४॥

यन्न भीष्मान्न च द्रोणान्न कृपान्न च बाह्लिकात् ।
प्राप्तवानस्मि भद्रन्ते त्वत्तः प्राप्तं मया हि तत् ॥२५
बहुना तु किमुक्तेन शृणु कर्ण वचो मम ।
सनाथोऽस्मि महाबाहो त्वया नाथेन सत्तम ॥२६॥

हे कर्ण, जो काम भीष्म, द्रोण, कृप बाह्लिक से मुझे प्राप्त नहीं हुआ, वह सब तुमने कर दिखाया। हे महाबाहो, अब अधिक कहने से क्या है? हे कर्ण, तुम मेरे इन वचनों को सत्य मानो, क्योंकि मैं तुम सहायक से ही आज सनाथ हो रहा हूं ॥२६॥

नहि ते पाण्डवाः सर्वे कलामर्हन्ति षोडशीम् ।
अन्ये वा पुरुषव्याघ्र राजानोऽभ्युदितोदिताः ॥२७॥

हे पुरुष-व्याघ्र! सारे पाण्डव तथा अन्य अभ्युदय-शाली राजा भी तुम्हारी सोलहवीं कला को नहीं पा सकते हैं ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स भवान् धृतराष्ट्रं तं गान्धारीञ्च यशस्विनीम् ।
पश्य कर्ण महेष्वास अदितिं वज्रभृद्यथा ॥२८॥

हे महाधनुर्धर ! कर्ण ! अदिति को इन्द्र के समान, अब तुम, राजा धृतराष्ट्र और यशस्विनी गान्धारी के दर्शन करो ॥२८॥

ततो हलहलाशब्दः प्रादुरासीद्विशाम्पते ।
हाहाकाराश्च बहवो नगरे नागसाह्वये ॥२९॥

हे विशाम्पते ! इसी क्षण में अचानक हस्तिनापुर में कोलाहल मच गया और सब ओरसे हाहाकार सुनाई देने लगा ॥२९॥

केचिदेनं प्रशंसन्ति निन्दन्ति स्म तथापरे ।
तूष्णीमासंस्तथा चान्ये नृपास्तत्र जनाधिप ॥३०॥

हे राजन् ! इस समय कोई तो कर्ण की प्रशंसा कर रहे थे, कोई निन्दा करते थे और कुछ राजा चुप थे ॥ ३० ॥

एवं विजित्य राजेन्द्र कर्णः शस्त्रभृताम्वरः ।
सपर्वतवनाकाशां ससमुद्रां सनिष्कुटाम् ॥३१॥
देशैरुच्चावचैः पूर्णां पत्तनैर्नगरैरपि ।
द्वीपैश्चानूपसम्पूर्णैः पृथिवीं पृथिवीपते ॥३२॥

हे राजेन्द्र, इस प्रकार शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, कर्ण ने पर्वत, वन-प्रदेश, समुद्र, उपवन, उत्तम २ देश, नगर और गांवों से परिपूर्ण, द्वीप, अनूप प्रदेशों से व्याप्त, सारी पृथिवी को जीत लिया ॥ ३१-३२॥

कालेन नातिदीर्घेण वशे कृत्वा तु पार्थिवान् ।
अक्षयं धनमादाय सूतजो नृपमभ्ययात् ॥३३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सूतपुत्र कर्ण, थोड़े ही काल में सारे राजाओं को वश में करके और विपुल धन राशि लेकर राजा दुर्योधन के पास आगया ॥ ३३॥

प्रविश्य च गृहे राजन्नभ्यन्तरमरिन्दमः ।
गान्धारीसहितं वीरो धृतराष्ट्रं ददर्श सः ॥३४॥

हे राजन्, यह अरिविजयी वीर कर्ण ने महलों के भीतर पहुंच कर वहां गान्धारी सहित धृतराष्ट्र के दर्शन किए ॥ ३४ ॥

पुत्रवच्च नरव्याघ्रः पादौ जग्राह धर्मवित् ।
धृतराष्ट्रेण चाश्लिष्य प्रेम्णा चापि विसर्जितः ॥३५॥

इस नरश्रेष्ठ, धर्मात्मा कर्ण ने पुत्र की भांति राजा धृतराष्ट्र के चरण छूए। राजा ने भी प्रेम से आलिङ्गन करके विदा किया ॥ ३५ ॥

तदाप्रभृति राजा च शकुनिश्चापि सौबलः ।
जानते निर्जितान् पार्थान् कर्णेन युधि भारत॥३६॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि कर्णदिग्विजये त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५३॥

हे भारत, अब से राजा दुर्योधन, और सुबलपुत्र शकुनि को यह दृढ़ विश्वास होगया, कि कर्ण, पाण्डवों को युद्ध में अवश्य जीत लेगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोष यात्रा-पर्व
में कर्ण के दिग्विजय का दो सौ तिरेपनवां
अध्याय पूरा हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ चौवनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

जित्वा तु पृथिवीं राजन् सूतपुत्रो जनाधिप ।
अब्रवीत् परवीरघ्नो दुर्य्योधनमिदं वचः ॥१॥

वैशम्पायन बोले-हे राजन्, शत्रुओं के वीरों का घातक, सूत-पुत्र, कर्ण, सारी पृथिवी को जीतकर दुर्योधन से बोला ॥ १ ॥

कर्ण उवाच—

दुर्य्योधन निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि कौरव ।
श्रुत्वा वाचं तथा सर्वं कर्त्तुमर्हस्यरिन्दम ॥२॥

हे कुरु-वंश-श्रेष्ठ, अरि-मर्दन, दुर्योधन ! जो मैं तुम से कहता हूं तुम ध्यान से सुनो और मेरी बात सुनने के अनन्तर उसको प्रयत्न के साथ पूरा करो ॥ २ ॥

तवाद्य पृथिवी वीर निःसपत्ना नृपोत्तम ।
तां पालय यथा शक्रो हतशत्रुर्महामनाः ॥३॥

नृपोत्तम ! वीर ! आज तुमको शत्रु-रहित, पृथिवी प्राप्त हुई है । इसकी तुम इन्द्र की तरह पालना करो । तुम महा-मनस्वी हो और तुम्हारे सारे शत्रु नष्ट हो चुके हैं ॥३॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तस्तु कर्णेन कर्णं राजाब्रवीत् पुनः ।
न किञ्चिद् दुर्लभं तस्य यस्य त्वं पुरुषर्षभ ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायश्चानुरक्तश्च मदर्थश्च समुद्यतः ।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तं वै शृणु यथातथम् ॥५॥

वैशम्पायन बोले—जब कर्ण ने इतना कहा-तो राजा दुर्योधन कर्ण से बोला। हे पुरुषर्षभ! उस मनुष्य को कुछ भी दुर्लभ नहीं है, जिसके तुम सहायक, प्रेमी, और प्रयोजन सिद्ध करने को सदा उद्यत रहते हो। अब तुम मेरे अभिप्राय को ठीक २ ध्यान से सुनो ॥४-५॥

राजसूयं पाण्डवस्य दृष्ट्वा क्रतुवरं महत् ।
मम स्पृहा समुत्पन्ना तां सम्पादय सूतज ॥६॥

हे कर्ण! राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ को देख कर मुझे भी उसके करने की इच्छा उत्पन्न हो गई है। तुम उसको सम्पूर्ण कराओ ॥६॥

एवमुक्तस्ततः कर्णो राजानमिदमब्रवीत् ।
तवाद्य पृथिवीपाला वश्याः सर्वे नृपोत्तम ॥७॥
आहूयन्तां द्विजवराः सम्भाराश्च यथाविधि ।
सम्भ्रियन्तां कुरुश्रेष्ठ यज्ञोपकरणानि च ॥८॥

राजा के इतना कहने पर कर्ण ने कहा--हे नृपोत्तम! कुरु श्रेष्ठ! आज सारे महीपाल तुम्हारे वश में हैं। अब तुम ब्राह्मणों को बुलाओ और यज्ञ का सामान तथा विधि-पूर्वक यज्ञ की सामग्री इकट्ठी करो ॥७-८॥

ऋत्विजश्च समाहूता यथोक्ता वेदपारगाः ।
क्रियां कुर्वन्तु ते राजन् यथाशास्त्रमरिन्दम ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अरिन्दम ! राजन्! आमन्त्रित किये हुए वेदपाठी ऋत्विक् तेरी सारी यज्ञ-विधि को शास्त्रानुसार पूरी करावें ॥९॥

बह्वन्नेपानसंयुक्तः सुसमृद्धगुणान्वितः ।
प्रवर्त्ततां महायज्ञस्तवापि भरतर्षभ ॥१०॥

हे भरतर्षभ ! बहुत से भोजन, पान से संयुक्त, समृद्धिशाली गुणों से युक्त, आपका भी महायज्ञ राजसूय होना ही चाहिए ॥१०॥

एवमुक्तस्तु कर्णेन धार्त्तराष्ट्रो विशाम्पते ।
पुरोहितं समानाय्य वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥११॥

हे प्रजानाथ ! कर्ण के इतना कहने पर राजा दुर्योधन ने पुरोहित को बुला कर यह वचन कहा ॥११॥

राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं समाप्तवरदक्षिणम् ।
आहर त्वं मम कृते यथान्यायं यथाक्रमम् ॥१२॥

हे आचार्यवर ! तुम उत्तम २ दक्षिणा से युक्त, यज्ञ-श्रेष्ठ, राजसूय को शास्त्रानुसार क्रम-पूर्वक मेरे लिए कराइये ॥१२॥

स एवमुक्तो नृपतिमुवाच द्विजसत्तमः ।
न स शक्यः क्रतुश्रेष्ठो जीवमाने युधिष्ठिरे ॥१३॥
आहर्त्तुं कौरवश्रेष्ठ कुले तव नृपोत्तमः ।
दीर्घायुर्जीवति च ते धृतराष्ट्रः पिता नृप ॥१४॥
अतश्चापि विरुद्धस्ते क्रतुरेष नृपोत्तम ।

जब राजा दुर्योधन ने इतना कहा--तो द्विज-श्रेष्ठ पुरोहित बोला--हे राजन् ! तुम राजा युधिष्ठिर के जीवित रहते हुए इस यज्ञ को नहीं कर सकोगे। हे कौरव-श्रेष्ठ ! दूसरा कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है, कि तुम्हारे वंश में दीर्घायु आपके पिता, राजा धृतराष्ट्र अभी जीवित हैं। हे नृपोत्तम, इसलिए तुम्हें राजसूय यज्ञ-करना शास्त्र विरुद्ध है ॥१३-१४॥

अस्ति त्वन्यन्महत् सत्रं राजसूयसमं प्रभो ॥१५॥
तेन त्वं यज राजेन्द्र शृणु चेदं वचो मम।

ह महाराज! राजसूय के ही सदृश एक अन्य महायज्ञ है। हे राजेन्द्र, तुम उस यज्ञ द्वारा यजन कर सकते हो। तुम मेरे वचन को ध्यान से सुनते जाओ ॥१५॥

य इमे पृथिवीपालाः करदास्तव पार्थिव ॥१६॥
ते करान् संप्रयच्छन्तु सुवर्णञ्च कृताकृतम्।
तेन ते क्रियतामद्य लाङ्गलं नृपसत्तम ॥१७॥
यज्ञवाटस्य ते भूमिः कृष्यतां तेन भारत।
तत्र यज्ञो नृपश्रेष्ठ प्रभूतान्नः सुसंस्कृतः ॥१८॥
प्रवर्त्ततां यथान्यायं सर्वतो ह्यनिवारितः।
एष ते वैष्णवो नाम यज्ञः सत्पुरुषोचितः ॥१९॥

हे राजन्! जो राजा तुम्हारे कर दाता हो चुके हैं, वे तुमकोकर दान में सुवर्ण प्रदान करें, जो सुवर्ण अलङ्कार और बिना अलङ्कार के रूपमें हों। हे नृप-सत्तम! उस सुवर्ण का तुम हल बनवाओ। हे भारत! उस हल से तुम यज्ञ-भूमि को जोतो। हे नृप-श्रेष्ठ! उस यज्ञ में अच्छी तरह संस्कार से बना हुआ बहुत-सा अन्न-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान होना चाहिए। किसी विघ्न-बाधा से नहीं रुकने वाले इस यज्ञ को तुम कर सकते हो। यह वैष्णव नामक यज्ञ है, जिसको श्रेष्ठ पुरुष, कर सकते हैं ॥१६-१९॥

एतेन नेष्टवान् कश्चिदृते विष्णुं पुरातनम्।
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं स्पर्द्धत्येष महाक्रतुः ॥२०॥

इस यज्ञ को अभी तक सनातन पुरुष विष्णु के सिवा कोई नहीं कर सकता है। यह महा-यज्ञ भी यज्ञों में श्रेष्ठ, राजसूय यज्ञ की बराबरी करता है ॥२०॥

अस्माकं रोचते चैव श्रेयश्च तत्र भारत।
निर्विघ्नश्च भवत्येष सफला स्यात् स्पृहा तव ॥२१॥

हे भारत, हमको तुम्हारा कल्याण अभीष्ट है, इससे इतना कहा है। यह तुम्हारा यज्ञ निर्विघ्न पूरा हो सकता है, जिससे तुम्हारी कामना पूर्ण हो जावेगी ॥२१॥

एवमुक्तस्तु तैर्विप्रैर्धार्त्तराष्ट्रो महीपतिः।
कर्णश्च सौबलश्चैव भ्रातृंश्चैवेदमब्रवीत् ॥२२॥

जब उन सारे ब्राह्मणों ने ऐसा ही कहा--तो राजा दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और अपने भाइयों से कहने लगा ॥ २२ ॥

रोचते मे वचः कृत्स्नं ब्राह्मणानां न संशयः।
रोचते यदि युष्माकं तस्मात् प्रब्रूत मा चिरम्॥२३॥

हे महाभागो! मुझे तो इन ब्राह्मणों का वचन उचित ही प्रतीत होता है। यदि यह तुम को भी ठीक ज्ञात हो, तो शीघ्र बोलो, देर मत करो ॥ २३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमुक्तास्तु ते सर्वे तथेत्यूचुर्नराधिपम् ।
सन्दिदेश ततो राजा व्यापारस्थान् यथाक्रमम् ॥२४
हलस्य करणे चापि व्यादिष्टाः सर्वशिल्पिनः ।
यथोक्तञ्च नृपश्रेष्ठ कृतं सर्वं यथाक्रमम् ॥२५॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्योधनज्ञारम्भे चतुःपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५४॥

राजा के इतना कहने पर सबने राजा के कथन का अनुमोदन किया। अब राजा दुर्योधन ने क्रम से सारे व्यापारियों को वस्तु लाने की और शिल्पियों को हल बनाने की आज्ञा दी। हे नृप-श्रेष्ठ, उन लोगों ने राजा के कथन के अनुसार सब कुछ कर दिया ॥ २४-२५ ॥

इति श्री महाभारत वन-पर्वान्तर्गत घोष-यात्रा-पर्व में दुर्योधन के यज्ञ के आरम्भ का दो सौ चौवनवां अध्याय समाप्त हुआ।

दो सौ पचपनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततस्तु शिल्पिनः सर्वे अमात्यप्रवराश्च ये ।
विदुरश्च महाप्राज्ञो धार्त्तराष्ट्रे न्यवेदयत् ॥१॥
सज्जं क्रतुवरं राजन् कालप्राप्तञ्च भारत ।
सौवर्णञ्च कृतं सर्वं लाङ्गलञ्च महाधनम् ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन बोले–हे राजन, अब सारे शिल्पी, मन्त्री और महाबुद्धिमान विदुर ने राजा दुर्योधन से कहा- हे भरत-वंश-श्रेष्ठ, राजन ! तुम्हारे यज्ञ का सामान तय्यार हो चुका है और उसका मुहूर्त भी समीप आगया है। शिल्पियों ने बड़े भारी धन के व्यय से सुवर्ण का हल भी तय्यार कर दिया है ॥ १-२ ॥

एतच्छ्रुत्वा नृपश्रेष्ठो धार्त्तराष्ट्रो विशाम्पते ।
आज्ञापयामास नृपः क्रतुराजप्रवर्त्तनम् ॥३॥

हे पृथिवीपाल, राजाओं में श्रेष्ठ राजा दुर्योधन ने यह सुनकर यज्ञ-श्रेष्ठ के करने की आज्ञा दे दी ॥ ३ ॥

ततः प्रववृते यज्ञः प्रभूतान्नः सुसंस्कृतः ।
दीक्षितश्चापि गान्धारिर्यथाशास्त्रं यथाक्रमम् ॥४॥

अब बहुत से संस्कृत हुए अन्न से परिपूर्ण यज्ञ प्रवृत्त हुआ और गान्धारी पुत्र, दुर्योधन शास्त्र की विधि के अनुसार यज्ञ की दीक्षा में बैठा ॥४॥

प्रहृष्टो धृतराष्ट्रश्च विदुरश्च महायशाः ।
भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो गान्धारी च यशस्विनी ॥५॥

इस समय महायशस्वी, धृतराष्ट्र विदुर, द्रोण, कृप, कर्ण, और यशस्विनी गान्धारी बड़ी प्रसन्न हो रही थी ॥५॥

निमन्त्रणार्थं दूतांश्च प्रेषयामास शीघ्रगान् ।
पार्थिवानाञ्च राजेन्द्र ब्राह्मणानां तथैव च ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजेन्द्र। ब्राह्मण और राजाओं के आमन्त्रण के लिए इन्होंने बड़े २ शीघ्रगामी दूत भेजे ॥६॥

ते प्रयाता यथोद्दिष्टा दूतास्त्वरितवाहनाः ।
तत्र कश्चित् प्रयातन्तु दूतं दुःशासनोऽब्रवीत् ॥७॥

ये दूत, शीघ्रगामी वाहन ले २ कर अपने २ सूचित किये हुए स्थानों पर पहुंचे। इन जाते हुए दूतों में से किसी दूत से दुःशासन ने कहा ॥७॥

गच्छ द्वैतवनं शीघ्रं पाण्डवान् पापपूरुषान् ।
निमन्त्रय यथान्यायं विप्रांस्तस्मिन् वने तथा ॥८॥

हे दूत, तुम शीघ्र जाओ और पापी पुरुष पाण्डवों को द्वैत-बन में निमन्त्रण दे आओ तथा नीति के अनुसार वहां रहने वाले ब्राह्मणों को भी न्योता दे आना ॥८॥

स गत्वा पाण्डवान् सर्वानुवाचाभिप्रणम्य च ।
दुर्योधनो महाराज यजते नृपसत्तमः ॥९॥
स्ववीर्य्यार्ज्जितमर्थौघमवाप्य कुरुसत्तमः ।
तत्र गच्छन्ति राजानो ब्राह्मणाश्च ततस्ततः ॥१०॥

इस दूत ने द्वैतवन में पहुंच कर सारे पाण्डवों को प्रणाम पूर्वक कहा। हे महाराज। नृपश्रेष्ठ, राजा दुर्योधन, अपने विक्रम से बहुत सा धन कमा कर यज्ञ कर रहा है। उस यज्ञ में इधर उधर के राजा और ब्राह्मण चले जा रहे हैं ॥ ९-१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहन्तु प्रेषितो राजन् कौरवेण महात्मना ।
आमन्त्रयति वो राजा धार्त्तराष्ट्रो जनेश्वरः ॥११॥
मनोऽभिलषितं राज्ञस्तं क्रतुं द्रष्टुमर्हथ ।

हे राजन्, हमको कुरुवंशश्रेष्ठ राजा दुर्योधन ने भेजा है यह धृतराष्ट्र पुत्र, राजा सुयोधन, तुमको बुला रहा है। इस राजा की यही इच्छा है, कि आप इस यज्ञ में अवश्य पधारें, आपको यह यज्ञ देखना ही चाहिए ॥११॥

ततो युधिष्ठिरो राजा तच्छ्रुत्वा दूतभाषितम् ॥१२॥
अब्रवीन्नृपशार्दूलो दिष्ट्या राजा सुयोधनः ।
यजते क्रतुमुख्येन पूर्वेषां कीर्त्तिवर्द्धनः ॥१३॥

राजा युधिष्ठिर, दूत के ये वचन सुनकर बोला--कि नृपश्रेष्ठ; राजा दुर्योधन सकुशल तो है। यह आज बड़े श्रेष्ठ यज्ञ से यजन कर रहा है, जिससे पूर्वजों की कीर्ति बढ़ेगी ॥१२-१३॥

वयमप्युपयास्यामो न त्विदानीं कथञ्चन ।
समयः प्रतिपालो नो यावद्वर्षं त्रयोदशम् ॥१४॥

हम तो इस यज्ञ में अवश्य आते, परन्तु इस समय तो किसी भी तरह नहीं आ सकते हैं। हमको तो हमारे तेरहवर्ष की अवधि व्यतीत करनी है ॥१४॥

श्रुत्वैतद्धर्मराजस्य भीमो वचनमब्रवीत् ।
तदा तु नृपतिर्गन्ता धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥१५॥
अस्त्रशस्त्रप्रदीप्तेऽग्नौ यदा तं पातयिष्यति ।
वर्षात् त्रयोदशादूर्ध्वं रणसत्रे नराधिपः ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मराज के वचन सुनकर भीमने कहा—हे दूत, राजा युधिष्ठिर तो यज्ञ में तब आ सकता है, जब रण रूपी यज्ञ के अस्त्र शस्त्र रूपी अग्नि में तेरह वर्ष के अनन्तर उस दुर्योधन (पशुभूत) को डाल लेगा ॥१५-१६॥

यदा क्रोधहविर्मोक्ता धार्त्तराष्ट्रेषु पाण्डवः ।
आगन्ताहं तदास्मीति वाच्यस्ते स सुयोधनः ॥१७॥

जब पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र के पुत्रों के भस्म करने को अग्नि में अपने क्रोध का घृत डाल लेगा, तभी वह इस यज्ञ में आवेगा—यह दुर्योधन से कह देना ॥१७॥

शेषास्तु पाण्डवा राजन्नैवोचुः किञ्चिदप्रियम् ।
दूताश्चापि यथावृत्तं धार्त्तराष्ट्रे न्यवेदयत् ॥१८॥

हे राजन्, दूत से शेष पाण्डवों ने कुछ भी अप्रिय वचन नहीं कहा। दूतों ने भी जो कुछ पाण्डवों के साथ हुआ था, वह सब कुछ राजा दुर्योधन को जा सुनाया ॥१८॥

अथाजग्मुर्नरश्रेष्ठा नानाजनपदेश्वराः ।
ब्राह्मणाश्च महाभागा धार्त्तराष्ट्रपुरं प्रति ॥१९॥

इसके अनन्तर नाना देशों के अधीश्वर, नरश्रेष्ठ, राजा और महाभाग ब्राह्मण, हस्तिनापुर की ओर आने लगे ॥१९॥

ते त्वर्चिता यथाशास्त्रं यथाविधि यथाक्रमम् ।
मुदा परमया युक्ताः प्रीताश्चापि नरेश्वराः ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा दुर्योधन ने शास्त्र की विधि के अनुसार क्रम-पूर्वक उन सब राजाओं का बड़े आनन्द से युक्त होकर सत्कार किया। वे राजा भी इनके सत्कार से बड़े ही प्रसन्न हुए ॥२०॥

धृतराष्ट्रोऽपि राजेन्द्रः संवृतः सर्वकौरवैः।
हर्षेण महता युक्तो विदुरं प्रत्यभाषत ॥२१॥

एक समय सारे कौरवों से घिरा हुआ राजाओं में श्रेष्ठ, राजा धृतराष्ट्र, महान् हर्ष से युक्त होकर विदुर से कहने लगा ॥

यथा सुखी जनः सर्वः क्षत्तः स्यादन्नसंयुतः।
तुष्येच्च यज्ञसदने तथा क्षिप्रं विधीयताम् ॥२२॥

हे विदुर, जिस तरह सारे आये हुए मनुष्य, भोजन-पान से सन्तुष्ट हो जावें, यज्ञ मण्डप में तुम यह सब प्रबन्ध करदो ॥

विदुरस्तु तदाज्ञाय सर्ववर्णानरिन्दम।
यथा प्रमाणतो विद्वान् पूजयामास धर्मवित् ॥२३॥

हे अरि-मर्दन, धर्म के ज्ञाता विद्वान विदुर भी, प्रत्येक मनुष्य के वर्ण का ज्ञान करके उनका शास्त्रानुकूल सत्कार करने लगे ॥२३॥

भक्ष्यपेयान्नपानेन माल्यैश्चापि सुगन्धिभिः।
वासाभिर्विविधैश्चैव योजयामास हृष्टवत् ॥२४॥
कृत्वा ह्यावसथान् वीरो यथाशास्त्रं यथाक्रमम्।

बिदुर ने बड़ी प्रसन्नता से खाने पीने के अन्न दुग्धादि पदार्थ, सुगन्धयुक्त मालाएँ तथा अनेक भांति के वस्त्रों से सब को सन्तुष्ट कर दिया। इस वीर विदुर ने इनके निवास के लिए शास्त्रानुसार क्रम से निवास स्थान भी बनवा दिए ॥२४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सान्त्वयित्वा च राजेन्द्रो दत्त्वा च विविधं वसु ॥२५

विसर्जयामास नृपान् ब्राह्मणांश्च सहस्रशः ।

राजा दुर्योधन ने सब को आश्वासन और बहुत सा धन प्रदान करके तथा समझा बुझा कर सारे राजा और सहस्रों ब्राह्मणों को विदा किया ॥२५॥

विसृज्य च नृपान् सर्वान् भ्रातृभिः परिवारितः ।

विवेश हास्तिनपुरं सहितः कर्णसौबलैः ॥२६॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्य्योधनयज्ञसमाप्तौ पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७॥

राजा दुर्योधन, सारे राजाओं को विदा करके भाइयों से घिरा हुआ, कर्ण और शकुनि को साथ लेकर हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुआ ॥२६॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में दुर्योधन की यज्ञ समाप्ति का दो सौ पचपनवां अध्याय समाप्त हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत चित्र संख्या ४९

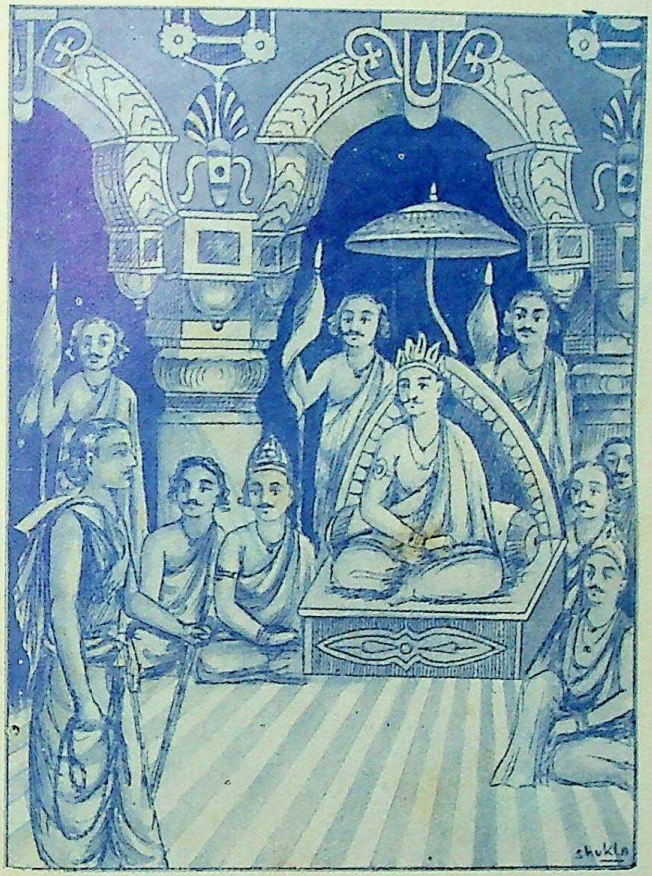

महाराजा विराट की राजसभा में सहदेव का ग्वाले का रूप धारण करके प्रवेश करना।

महा० विराट पर्व अ० १०।१ पृष्ठ ७५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ छप्पनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच --

प्रविशन्तं महाराज सूतास्तुष्टुवुरच्युतम् ।
जनाश्चापि महेष्वासं तुष्टुवूराजसत्तमम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले- हे महाराज ! अपने नगर हस्तिनापुर में प्रवेश करते हुए महा धनुर्धर वीरवर, राजा दुर्योधन की सूत-जन, स्तुति करने लगे ॥१॥

लाजैश्चन्दनचूर्णैश्चविकीर्य्य च जनास्ततः ।
ऊचुर्दिष्ट्या नृपाविघ्नः समाप्तोऽयं क्रतुस्तव ॥२॥

धान की खील और चन्दन का चूरा बखेर कर लोगों ने हर्ष से कहा- हे नृप, तुम्हारा यह यज्ञ, निर्विघ्नता से समाप्त हो गया है।

अपरे त्वब्रुवंस्तत्र वातिकास्तं महीपतिम् ।
युधिष्ठिरस्य यज्ञेन न समो ह्येष ते क्रतुः ॥३॥
नैवं तस्य क्रतोरेष कलामर्हति षोडशीम् ।
एवं तत्राब्रुवन् केचिद्वातिकास्तं जनेश्वरम् ॥४॥

कुछ बायु के रोग में फंसे हुए राजा से बोले—हे राजन्! राजा युधिष्ठिर के यज्ञ के समान तो यह यज्ञ हुआ नहीं है । यह यज्ञ उस यज्ञ की सोलहवीं कला को भी नहीं पा सकता है। इस प्रकार कुछ पागलों ने उस राजा को अपनी बात सुना ही दी ॥३-४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुहृदस्त्वब्रुवंस्तत्र अतिसर्वानयं क्रतुः ।
ययातिर्नहुषश्चापि मान्धाता भरतस्तथा ॥५॥
क्रतुमेनं समाहृत्य पूताः सर्वे दिवं गताः ।

राजा दुर्योधन के सुहृदों ने कहा—यह यज्ञ, सारे यज्ञों को उलांघ गया है। ययाति, नहुष, मान्धाता और भरत, इस यज्ञ को प्राप्त करके सब स्वर्गलोक में पवित्र हो गए ॥५॥

एता वाचः शुभाः शृण्वन् सुहृदां भरतर्षभ ॥६॥
प्रविवेश पुरं हृष्टः स्ववेश्म च नराधिपः ।

हे भरतर्षभ ! राजा दुर्योधन, इस प्रकार की बातें सुनता हुआ, बड़ी प्रसन्नता से अपनी राजधानी में घुसा और राज-भवन में चला गया ॥६॥

अभिवाद्य ततः पादौ मातापित्रोर्विशाम्पते ॥७॥
भीष्मद्रोणकृपादीनां विदुरस्य च धीमतः ।
अभिवादितः कनीयोभिर्भ्रातृभिर्भ्रातृनन्दनः ॥८॥
निषसादासने मुख्ये भ्रातृभिः परिवारितः ।

हे विशाम्पते ! इसने यहां अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम करके भीष्म, द्रोण, कृप और बुद्धिमान विदुर के चरणों की वन्दना की। अपने भाइयों को आनन्दित करने वाले दुर्योधन का, छोटे भाइयों ने अभिवादन किया। अपने भाइयों से घिरा हुआ, राजा दुर्योधन, एक उत्तम आसन (कुरसी) पर जाकर बैठ गया ॥७-८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमुत्थाय महाराज सूतपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥९॥
दिष्ट्या ते भरतश्रेष्ठ समाप्तोऽयं महाक्रतुः ।
हतेषु युधि पार्थेषु राजसूये तथा त्वया ॥१०॥
आदत्तेऽहं नरश्रेष्ठ त्वां सभाजयिता पुनः ।

हे महाराज ! राजा दुर्योधन को उठा कर सूत-पुत्र कर्ण बोला-हे भरतश्रेष्ठ ! बड़ी प्रसन्नता की बात है, कि तुम्हारा यह महा-यज्ञ समाप्त हो गया । अब आगे चल कर युद्ध में पाण्डवों के मार लेने पर तुझ से राजसूय यज्ञ और करवा देना है । हे नर-श्रेष्ठ ! उस यज्ञ में तुम्हारी विशेष पूजा होगी ॥९-१०॥

तमब्रवीन्महाराजो धार्त्तराष्ट्रो महायशाः ॥११॥
सत्यमेतत् त्वयोक्तं हि पाण्डवेषु दुरात्मसु ।
निहतेषु नरश्रेष्ठ प्राप्ते चापि महाक्रतौ ॥१२॥
राजसूये पुनर्वीर त्वमेवं वर्द्धयिष्यसि ।

राजा दुर्योधन कर्ण से बोला--हे नर-श्रेष्ठ, वीर ! दुरात्मा पाण्डवों के मार लेने और फिर राजसूय यज्ञ कर लेने पर तुम मुझे उसी प्रकार बढ़ा दोगे, जैसे पाण्डव बढ़े थे ॥११-१२॥

एवमुक्त्वा महाराज कर्णमाश्लिष्य भारतः ॥१३॥
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं चिन्तयामास कौरवः ।

हे महाराज ! भरतवंश श्रेष्ठ राजा दुर्योधन, इतना कह कर कर्ण के लिपट गया और राजसूय यज्ञ करने को तिलमिला उठा ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोऽब्रवीत् कौरवांश्चापि पार्श्वस्थान्नृपसत्तमः ॥१४॥
कदा नु तं क्रतुवरं राजसूयं महाधनम् ।
निहत्य पाण्डवान् सर्वानाहरिष्यामि कौरवाः ॥१५॥

यह राजा दुर्योधन, अपने पास में ही बैठे हुए अन्य कौरवों से कहने लगा—हे कौरवों ! बड़े धन के व्यय से होने वाले राजसूय महा-यज्ञ को सारे पाण्डवों को युद्ध में मार कर मैं कब तक प्राप्त कर लूंगा ॥१४-१५॥

तमब्रवीत्तदा कर्णः शृणु मे राजकुञ्जर ।
पादौ न धावये तावद्यावन्न निहतोऽर्जुनः ॥१६॥
कीलालजं न खादेयं चरिष्ये चासुरव्रतम् ।
नास्तीति नैव वक्ष्यामि याचितो येन केनचित् ॥१७

दुर्योधन से कर्ण ने कहा--हे राजकुञ्जर ! तुम मेरी प्रतिज्ञा सुनो । मैं जबतक अर्जुन को नहीं मार लूंगा, तबतक अन्य से पैर नहीं धुलवाऊंगा, न रुधिर मिश्रित मांस खाऊंगा और न सुरा पान करूंगा । मेरा यही व्रत है । जो कोई मुझ से कुछ मांगेगा, मैं उसको निषेध भी नहीं करूंगा ॥१६-१७॥

अथोत्क्रुष्टं महेष्वासैर्धार्त्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
प्रतिज्ञाते फाल्गुनस्य वधे कर्णेन संयुगे ॥१८॥
विजितांश्चाप्यमन्यन्त पाण्डवान्धृतराष्ट्रजाः ।

हे राजन् ! युद्ध में अर्जुन के मारने की कर्ण द्वारा प्रतिज्ञा सुन कर बड़े २ धनुषों के धारण करने वाले, महारथी, धृतराष्ट्र पुत्रों ने हर्ष से बड़ा ऊंचा कोलाहल किया और इन धृतराष्ट्र-पुत्रों ने पाण्डवों को विजित ही समझा ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्य्योधनोऽपि राजेन्द्रो विसृज्य नरपुङ्गवान् ॥१९॥
प्रविवेश गृहं श्रीमान् यथा चैत्ररथं प्रभुः।
तेऽपि सर्वे महेष्वासा जग्मुर्वेश्मानि भारत ॥२०॥

हे भारत ! श्रीमान् राजा दुर्योधन भी, इन नरश्रेष्ठों को छोड़ कर चैथरथ में कुबेर की तरह अपने राज-भवन में प्रविष्ट हुआ और ये महा-धनुर्धर वीर भी, अपने २ भवनों को चले गए ॥१९-२०॥

पाण्डवाश्च महेष्वासा दूतवाक्यप्रचोदिताः।
चिन्तयन्तस्तमेवार्थं नालभन्त सुखं क्वचित् ॥२१॥

महा-धनुर्धर पाण्डव भी, दूत के वाक्यों को सुन कर उसी यज्ञ की घटना में चक्कर लगाते रहे। इस समय इनको कुछ भी शान्ति प्राप्त नहीं होती थी ॥२१॥

भूयश्च चारै राजेन्द्र प्रवृत्तिरुपपादिता।
प्रतिज्ञा सूतपुत्रस्य विजयस्य वधं प्रति ॥२२॥

हे राजेन्द्र ! अब फिर पाण्डवों के गुप्त दूतों ने इनको समाचार सुनाया, कि युद्ध में अर्जुन के वध करने की कर्ण ने प्रतिज्ञा की है ॥२२॥

एतच्छ्रुत्वा धर्मसुतः समुद्विग्नो नराधिप।
अभेद्यकवचं मत्वा कर्णमद्भुतविक्रमम् ॥२३॥
अनुस्मरंश्च संक्लेशान्नशान्तिमुपयाति सः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे नराधिप ! यह सुन कर धर्मराज बड़ा कातर हुआ। यह अद्भुत विक्रमशाली कर्ण को अभेद्य कवचवाला जानता था। यह अपने क्लेशों को याद करके कुछ भी चैन नहीं पाता था ॥

तस्य चिन्तापरीतस्य बुद्धिर्जज्ञे महात्मनः ॥२४॥
बहुव्यालमृगाकीर्णं त्यक्तं द्वैतवनं वनम् ।

इस चिन्तातुर युधिष्ठिर के एक विचार उत्पन्न हुआ, कि अनेक सर्प आदि वनैले जन्तुओं से व्याप्त. इस वन में नहीं रहना चाहिए—यह विचार कर इसने इस वन को छोड़ दिया ॥२४॥

धार्त्तराष्ट्रोऽपि नृपतिः प्रशशास वसुन्धराम् ॥२५॥
भ्रातृभिः सहितो वीरैर्भीष्मद्रोणकृपैस्तथा ।
सङ्गम्य सूतपुत्रेण कर्णेनाहवशोभिना ॥२६॥

राजा दुर्योधन भी, अपने भाई, भीष्म, द्रोण, कृप और युद्ध में अत्यन्त सुशोभित होने वाले कर्ण की सहायता पाकर पृथिवी का शासन करने लगा ॥२५-२६॥

दुर्य्योधनः प्रिये नित्यं वर्त्तमानो महीभृताम् ।
पूजयामास विप्रेन्द्रान् क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥२७॥

राजा दुर्योधन सारे अन्य राजाओं के हित की बातें ही करता रहता था। इसने अन्य बड़ी २ दक्षिणा वाले यज्ञों से ब्राह्मणों को भी सन्तुष्ट कर लिया था ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रातॄणाञ्च प्रियं राजन् स चकार परन्तपः ।
निश्चित्य मनसा वीरो दत्तभुक्तफलं धनम् ॥२८॥
इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि युधिष्ठिर-
चिन्तायां षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५६॥
समाप्तञ्च घोषयात्रापर्व ॥

इस परन्तप वीर दुर्योधन ने धन का दान और उपभोग ही फल, मन से निश्चित करके अपने भाइयों के प्रिय भोग-विलासों का भी समुचित प्रबन्ध कर दिया था ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में युधिष्ठिर चिन्ता का दो सौ छप्पनवां अध्याय पूरा हुआ और यहीं पर घोष-यात्रा पर्व भी समाप्त हो गया ।

* * * * *

अथ मृगस्वप्नोद्भवपर्व

दो सौ सत्तावनवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

दुर्य्योधनं मोक्षयित्वा पाण्डुपुत्रा महाबलाः ।
किमकार्षुर्वने तस्मिंस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१॥

जनमेजय पूछने लगे--हे ब्रह्मन् ! दुर्योधन को छुड़ाकर महाबली पाण्डवों ने वन में क्या किया । अब आप मुझ से यह कहिए ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच--

ततः शयानं कौन्तेयं रात्रौ द्वैतवने मृगाः ।
स्वप्नान्ते दर्शयामासुर्बाष्पकण्ठा युधिष्ठिरम् ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! किसी रात्रि में द्वैतवन में सोते हुए कुन्तीपुत्र, राजा युधिष्ठिर को प्रातःकाल स्वप्न में रोते हुए मृग दिखाई दिए ॥ २ ॥

तानब्रवीत् स राजेन्द्रो वेपमानान् कृताञ्जलीन् ।
ब्रूत यद्वक्तुकामाः स्थः के भवन्तः किमिष्यते ॥३॥

यह राजेन्द्र, उन कांपते हुए और हाथ जोड़े हुए मृगों से बोला-तुम लोग क्या कहना चाहते हो, कौन हो और क्या इच्छा रखते हो ? ॥ ३ ॥

एवमुक्ताः पाण्डवेन कौन्तेयेन यशस्विना ।
प्रत्यब्रुवन्मृगास्तत्र हतशेषा युधिष्ठिरम् ॥४॥

इस प्रकार यशस्वी कुन्तीपुत्र, पाण्डव, राजा युधिष्ठिर के कहने पर मारने से बचे हुए मृग, राजा युधिष्ठिर से बोले ॥४॥

वयं मृगा द्वैतवने हतशिष्टास्तु भारत ।
नोत्सीदेम महाराज क्रियतां वासपर्य्ययः ॥५॥

हे भारत ! हम मारने से बचे हुए द्वैतवन निवासी मृग हैं । हे महाराज ! हमको अब अधिक पीड़ा न दीजिए । आप इस द्वैतवन छोड़कर कहीं अन्यत्र निवास कर लीजिए ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्तो भ्रातरः शूराः सर्व एवास्त्रकोविदाः ।
कुलान्यल्पावशिष्टानि कृतवन्तो वनौकसाम् ॥६॥

आप सब भाई, शूरवीर और अस्त्र विद्या में कुशल हो। तुमने वन के जन्तुओं के कुल, बहुत ही थोड़े छोड़े हैं ॥ ६ ॥

बीजभूता वयं केचिदवशिष्टा महामते ।
विवर्द्धेमहि राजेन्द्र प्रासादात्ते युधिष्ठिर ॥७॥

हे महामते ! अब हम बीज रूप में कुछ ही शेष रह गए हैं। हे राजेन्द्र ! युधिष्ठिर ! अब आपके अनुग्रह से हम बढ़ना चाहते हैं ॥ ७ ॥

तान् वेपमानान् वित्रस्तान् बीजमात्रावशेषितान् ।
मृगान् दृष्ट्वा सुदुःखार्त्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥८॥
तांस्तथेत्यब्रवीद्राजा सर्वभूतहिते रतः ।
यथाभवन्तो ब्रुवते करिष्यामि च तत्तथा ॥९॥

उन कांपते हुए, व्याकुल, बीजमात्र बचे हुए, मृगों को देख कर दुःखी होकर धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा-अच्छी बात है। यह राजा समस्त प्राणियों का कल्याण चाहता था। राजा ने कहा--जैसे तुम कहोगे-मैं वैसा ही करूंगा ॥ ८-९ ॥

इत्येवं प्रतिबुद्धः स रात्रयन्ते राजसत्तमः ।
अब्रवीत् सहितान् भ्रातॄन् दयापन्नो मृगान् प्रति ॥१०॥

इस प्रकार रात की समाप्ति के समय सचेत किया हुआ राजश्रेष्ठ युधिष्ठिर, मृगों पर दयालु होकर अपने सारे भाइयों से कहने लगा ॥ १० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्तो रात्रौ मृगैरस्मिन् स्वप्नान्ते हतशेषितैः ।
तन्तुभूताः स्म भद्रन्ते दया नः क्रियतामिति ॥११॥

हे भ्राताओ ! आज रात को स्वप्न में मारने से बचे हुए मृगों ने आकर कहा है—कि हम बहुत थोड़े बच रहे हैं । अब आप हमारे ऊपर दया करो ॥ ११ ॥

ते सत्यमाहुः कर्त्तव्या दयास्माभिर्वनौकसाम् ।
साष्टमासं हि नो वर्षं यदेनानुपयुञ्जमहे ॥१२॥

ये सत्य कह रहे हैं । हमको इन वनवासी जीवों के ऊपर दया करनी ही चाहिए । हमें इनका उपयोग करते हुए एक वर्ष और छः मास के लग भग हो चुके हैं ॥ १२ ॥

पुनर्बहुमृगं रम्यं काम्यकं काननोत्तमम् ।
मरुभूमेः शिरःस्थानं तृणबिन्दु सरः प्रति ॥१३॥
तत्रेमां वसतिं शिष्टां विहरन्तो रमेमहि ।

अनेक मृगों से परिपूर्ण, मनोहर काम्यक वन है, जो मरु भूमि का शिर है और जिसमें तृणबिन्दु नामक सरोवर है । हम लोग इसमें अपना निवास बनाकर विहार करते हुए आनन्द करेंगे ॥ १३ ॥

ततस्ते पाण्डवाः शीघ्रं प्रययुर्धर्मकोविदाः ॥१४॥
ब्राह्मणैः सहिता राजन् ये च तत्र सहोषिताः ।
इन्द्रसेनादिभिश्चैव प्रेष्यैरनुगतास्तदा ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! इसके अनन्तर सारे धर्म के जानने वाले पाण्डव, ब्राह्मणों के साथ २ चल दिए, जो ब्राह्मण इन के साथ वन में रह रहे थे। इन्द्रसेन आदि सेवक भी इनके पीछे पीछे चल दिए ॥ १४-१५ ॥

ते यात्वानुसृतैर्मार्गैः स्वन्नैः शुचिजलान्वितैः ।
ददृशुः काम्यकं पुण्यमाश्रमं तपसायुतम् ॥१६॥

ये सब, सीधे मार्ग से चले, जिसमें अन्न और स्वच्छ जल का मिलना सुलभ था। इन्होंने जाकर तप के योग्य पवित्र काम्यक वन देखा ॥ १६ ॥

विविशुस्ते स्म कौरव्या वृता विप्रर्षभैस्तदा ।
तद्वनं भरतश्रेष्ठाः स्वर्गं सुकृतिनो यथा ॥१७॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि घोषयात्रापर्वणि युधिष्ठिर मृगस्वप्नदर्शने सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः २५७
समाप्तश्च मृगस्वप्नोद्भवपर्व

ये भरत और कुरुवंश श्रेष्ठ, पाण्डव, ब्रह्मर्षियों के साथ उसी तरह इस वन में घुसे—जैसे पुण्यात्मा, स्वर्गलोक में घुसते हैं॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत घोषयात्रापर्व में युधिष्ठिर के मृगस्वप्न दर्शन का दो सौ सत्तावनवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर मृग स्वप्नोद्भवपर्व भी पूरा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ व्रीहिद्रौणिकाख्यानपर्व

दो सौ अट्ठावनवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच:--

वने निवसतां तेषां पाण्डवानां महात्मनाम् ।
वर्षाण्येकादशातीयुः कृच्छ्रेण भरतर्षभ ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भरतर्षभ, इन महात्मा पाण्डवों के वन में निवास करते हुए ग्यारह वर्ष जैसे तैसे व्यतीत हुए ॥१॥

फलमूलाशनास्ते हि सुखार्हा सुखमुत्तमम् ।
प्राप्तकालमनुध्यान्तः सेहिरे वरपूरुषाः ॥२॥

ये पुरुषश्रेष्ठ, सुख भोग के योग्य थे,परन्तु कन्द मूल फल का भोजन करते थे। ये भविष्य में प्राप्त होने वाले उत्तम सुख पर दृष्टि लगा कर यह सब कुछ क्लेश सह रहे थे ॥ २ ॥

युधिष्ठिरस्तु राजर्षिरात्मकर्मापराधजम् ।
चिन्तयन् स महाबाहुर्भ्रातॄणां दुःखमुत्तमम् ॥३॥
न सुष्वाप सुखं राजा हृदि शल्यैरिवार्पितैः ।

महाबाहु, राजर्षि युधिष्ठिर, अपने अपराध से ही उत्पन्न हुए, अपने भाइयों के महादुःख को सोचता हुआ, सुख से सोता भी नहीं था। इसके हृदय में बाण सा गड़ रहा था॥ ३ ॥

दौरात्ममनुपश्यंस्तत् काले द्यूतोद्भवस्य हि ॥४॥
संस्मरन् परुषा वाचः सूतपुत्रस्य पाण्डवः ।
निःश्वासपरमो दीनो बिभ्रत् कोपविषं महत् ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुआ के कारणभूत शकुनि आदि की दुष्टता को देखते हुए और सूतपुत्र, कर्ण की कठोर वाणी को याद करके राजा युधिष्ठिर, बड़ा कातर होकर निःश्वास मारता था। इन सब बातों से इसके हृदय में कोप का विष भर गया ॥ ४-५ ॥

अर्जुनो यमजौ चोभौ द्रौपदी च यशस्विनी ।
स च भीमो महातेजाः सर्वेषामुत्तमो बली ॥६॥
युधिष्ठिरमुदीक्षन्तः सेहुर्दुःखमनुत्तमम् ।
अवशिष्टमल्पकालं मन्वानाः पुरुषर्षभाः ॥७॥
वपुरन्यदिवाकार्षुरुत्साहामर्षचेष्टितैः ।

अर्जुन, दोनों नकुल, सहदेव, यशास्विनी द्रौपदी, सब में उत्तम बली, महातेजस्वी, भीम, राजा युधिष्ठिर की प्रतीक्षा में इन सब कठिन दुःखों को सह रहे थे। ये पुरुषश्रेष्ठ, जान रहे थे, कि अब तो बहुत थोड़ा समय शेष रहा है। इस समय इन के शरीर, उत्साह और क्रोध की चेष्टा से कुछ अन्य ही प्रकार के हो रहे थे ॥ ६-७ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य व्यासः सत्यवतीसुतः ॥८॥
आजगाम महायोगी पाण्डवानवलोककः ।

कुछ काल के अनन्तर सत्यवती सुत, महायोगी, वेदव्यास, पाण्डवों को देखने की इच्छा से वहां आए ॥ ८ ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥९॥
प्रत्युद्गम्य महात्मानं प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर, इनको आया हुआ देख कर इन महात्मा के सम्मुख खड़ा होगया और इनका विधि के अनुसार सत्कार करके स्वागत किया ॥ ९ ॥

तमासीनमुपासीनः शुश्रूषुर्नियतेन्द्रियः ॥१०॥
तोषयन् प्रणिपातेन व्यासं पाण्डवनन्दनः ।

जितेन्द्रिय, पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ने भगवान् व्यास को बड़ी सेवा और प्रणाम आदि से सन्तुष्ट किया। यह, बैठे हुए व्यास जी के सम्मुख बैठ गया ॥ १० ॥

तानवेक्ष्य कृशान् पौत्रान् वने वन्येन जीवतः ॥११॥
महर्षिरनुकम्पार्थमब्रवीद्बाष्पगद्गदम् ।

महर्षि व्यास, अपने पौत्रों को कृश और वन के अन्न से निर्वाह करते देख कर करुणा-पूर्ण होकर अश्रु-पूर्ण गद्गद वाणी से कहने लगा ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर महाबाहो शृणु धर्मभृताम्वर ॥१२॥
नातप्ततपसो लोके प्राप्नुवन्ति महत् सुखम् ।
सुखदुःखे हि पुरुषः पर्य्यायेणोपसेवते ॥१३॥
न ह्यनन्तं सुखं कश्चित् प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।

हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, महाबाहो, युधिष्ठिर ! तुम मेरी बात ध्यान से सुनो। कोई भी मनुष्य, क्लेश सहे बिना महान् सुख को नहीं पा सकता है। मनुष्य, सुख दुःख को क्रम से पाता रहता है। हे पुरुषर्षभ ! कोई ऐसा मनुष्य नहीं है, जो अनन्त काल तक सुख भोगता रहा हो ॥१२-१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रज्ञावांस्त्वेव पुरुषः सयुक्तः परया धिया ॥१४॥
उदयास्तमनज्ञो हि न हृष्यति न शोचति ।

जो बुद्धिमान् पुरुष हैं, वे अपनी २ उत्तम बुद्धि से युक्त होकर सूर्य के उदय और अस्त को देख कर न तो सुख में प्रसन्न होते हैं और न दुःख में विषाद करते हैं ॥१४॥

सुखमापतितं सेवेद् दुःखमापतितं सहेत् ॥१५॥
कालप्राप्तमुपासीत शस्यानामिव कर्षकः ।

किसान जिस तरह समय पर प्राप्त हुए अन्न को ग्रहण करता है, इसी तरह मनुष्य भी अपने कर्मों के कारण प्राप्त हुए सुख दुःखों को सहता रहे ॥१५॥

तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ॥१६॥
नासाध्यं तपसः किञ्चिदिति बुध्यस्व भारत ।

हे भारत ! तप से कोई उत्कृष्ट नहीं है। तप से ही महान् सुख मिलता है। इस तप से संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है-- यह तुम अच्छी तरह समझलो ॥१६॥

सत्यमार्जवमक्रोधः संविभागो दमः शमः ॥१७॥
अनसूया विहिंसा च शौचमिन्द्रियसंयमः ।
पावनानि महाराज नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥१८॥

हे महाराज ! सत्य, सरलता, अक्रोध, दान, मन का विजय, शान्ति, अनिंदकता, अहिंसा, शौच, इन्द्रियों का संयम ये, बातें पुण्यात्मा मनुष्यों को पवित्र कर देने वाली है ॥१७-१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधर्मरुचयो मूढास्तिर्य्यग्गतिपरायणाः ।
कृच्छ्रयोनिमनुप्राप्ता न सुखं विन्दते जनाः ॥१९॥

जो मूर्ख, अधर्म से प्रेम करते हैं, वे पशु पक्षियों की गति को पाकर दुःखदायी योनियों में जन्म लेते हैं और इनको कुछ भी सुख नहीं मिलता है ॥१९॥

इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते ।
तस्माच्छरीरं युञ्जीत तपसा नियमेन च ॥२०॥

मनुष्य, जो कुछ कर्म यहां करता है, उसका फल परलोक में पाता है, इसीलिए शरीर को तप और नियमों में लगा देना चाहिए ॥२०॥

यथाशक्ति प्रयच्छेत संपूज्याभिप्रणम्य च ।
काले प्राप्ते च हृष्टात्मा राजन् विगतमत्सरः ॥२१॥

हे राजन्, अपनी शक्ति के अनुसार समय पर प्राप्त हुए उत्तम पात्र की पूजा तथा उसको प्रणाम करके कुछ दान देते रहना चाहिए और ईर्ष्या द्वेष को छोड़ कर अपने आत्मा को प्रसन्न रखना उचित है ॥२१॥

सत्यवादी लभेतायुरनायासमथार्जवम् ।
अक्रोधनोऽनसूयश्च निर्वृत्तिं लभते पराम् ॥२२॥

जो सत्यवादी हैं, वही आयु, सुख और सरलता को पाता है। क्रोध नहीं करने वाला, अनिन्दक, बड़ी उत्कृष्ट शान्ति को प्राप्त करता है ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान्तः शमपरः शश्वत् परिक्लेशं न विन्दति ।
न च तप्यति दान्तात्मा दृष्ट्वा परगतां श्रियम् ॥२३॥

जो उदार, मन और इन्द्रियों को वश में रखता है, वह कभी क्लेश नहीं पाता है और यह उदार आत्मा दूसरे की लक्ष्मी को देख कर क्लेश नहीं मानता है ॥२३॥

संविभक्ता च दाता च भोगवान् सुखवान्नरः ।
भवत्यहिंसकश्चैव परमारोग्यमश्नुते ॥२४॥

अपने २ अंश का विभाग करता, दानी, भोगी और अहिंसक (मत्सरहीन) मनुष्य ही सुखी होता है और यही उत्तम आरोग्यता को पाता है ॥२४॥

मान्यमानयिता जन्म कुले महति विन्दति ।
व्यसनैर्न तु संयोगं प्राप्नोति विजितेन्द्रियः ॥२५॥

जो इन्द्रियों का विजेता है, वह मान्यों का भी मान हो जाता है। इसका महान् कुल में जन्म होता है और यह कभी विपत्ति में नहीं फंस सकता है ॥२५॥

शुभानुशयबुद्धिर्हि संयुक्तः कालधर्मणा ।
प्रादुर्भवति तद्योगात् कल्याणमतिरेव सः ॥२६॥

जिस मनुष्य की वासना और बुद्धि शुद्ध हो गई है, वह कालधर्म (मृत्यु) को पाकर भी उस शुद्धता के भोग से कल्याण बुद्धिवाला होकर ही उत्पन्न होता है ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर उवाचः—

भगवन्दानधर्माणां तपसो वा महामुने ।
किं स्विद्बहुगुणं प्रेत्य किं वा दुष्करमुच्यते ॥२७॥

युधिष्ठिर कहने लगे--हे महामुने ! हे भगवन् ! दान और तप से परलोक में मनुष्य किन बहुत से गुणों को पाता है और तप से क्या दुष्कर है ॥२७॥

व्यास उवाचः—

दानान्न दुष्करं तात पृथिव्यामस्ति किञ्चन ।
अर्थे च महती तृष्णा स च दुःखेन लभ्यते ॥२८॥

व्यास जी बोले--हे तात ! दान से पृथिवी में कुछ भी दुष्कर नहीं है । धन के विषय में अधिक तृष्णा, दुःख के साथ प्राप्त होती है ॥ २८ ॥

परित्यज्य प्रियान् प्राणान् धनार्थं हि महामते ।
प्रविशन्ति नरा धीराः समुद्रमटवीन्तथा ॥२९॥

हे महात्मन् ! धीर मनुष्य, धन के लिए ही अपने प्रिय, प्राणों का मोह छोड़ कर समुद्र तथा वन में घुस जाते हैं ॥२९॥

कृषिगोरक्षमित्येके प्रतिपद्यन्ति मानवाः ।
पुरुषाः प्रेष्यतामेकेनिर्गच्छन्ति धनार्थिनः ॥३०॥

कुछ मनुष्य, धन के चक्कर में पड़े हुए रात दिन, कृषि और गोपालन आदि व्यवसाय करते हैं और कोई नौकरी के लिए देश विदेश में निकल जाते हैं ॥ ३० ॥

तस्माद्दुःखार्जितस्यैव परित्यागः सुदुष्करः ।
न दुष्करतरं दानात्तस्माद्दानं मतं मम ॥३१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दुःख से उपार्जित किये हुए धन का धर्म में दान करना बड़ा दुष्कर होता है। परन्तु इस दान से कोई वस्तु संसार में दुर्लभ नहीं रह जाती है, इसलिए मैं सब से श्रेष्ठ, दान को ही मानता हूं ॥ ३१ ॥

विशेषस्त्वत्र विज्ञेयो न्यायेनोपार्जितं धनम् ।
पात्रे काले च देशे च साधुभ्यः प्रतिपादयेत् ॥३२॥

जो मनुष्य, न्याय से उपार्जित धन को देश काल की उत्तमता सोचकर सज्जन और श्रेष्ठ पुरुषों को प्रदान करता है, यह बड़ी ही विशेषता समझनी चाहिए ॥ ३२ ॥

अन्यायात् समुपात्तेन दानधर्मो धनेन यः ।
क्रियते न स कर्त्तारं त्रायते महतो भयात् ॥३३॥

अन्याय से कमाये हुए धन से जो मनुष्य, दान आदि करता है, यह दान कर्ता को महाभय से नहीं बचा सकता है ॥ ३३ ॥

पात्रे दानं स्वल्पमपि काले दत्तं युधिष्ठिर ।
मनसा हि विशुद्धेन प्रेत्यानन्तफलं स्मृतम् ।३४॥

हे युधिष्ठिर ! शुभ समय पर पात्र को दिया हुआ थोड़ा दान भी, मन की शुद्धि के कारण, परलोक में अनन्त फल देने वाला होता है ॥ ३४ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम् ।
व्रीहिद्रोणपरित्यागात् यत् फलं प्राप मुद्गलः ॥३५॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि व्रीहिद्रौणिकाख्यानपर्वणि दानकथने अष्टपञ्चादशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विषय में एक पुराना इतिहास है, कि द्रोण (सोलहसेर) परिमाण चावल दान करके मुग्दल ने बड़ा ही फल प्राप्त किया ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत व्रीहिद्रौणिकउपाख्यान-पर्व में दान कथन का दो सौ अट्ठावनवां अध्याय समाप्त हुआ।

****

दो सौ उनसठवां अध्याय

युधिष्ठिर उवाचः—

व्रीहिद्रोणः परित्यक्तः कथं तेन महात्मना ।
कस्मै दत्तश्च भगवन् विधिना केन चात्थ मे ॥१॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन्! महात्मा मुग्दल ने किस तरह इन द्रोण भर चावलों का दान किया। यह दान किस विधि से किसको दिया गया! आप यह सब कुछ मुझको सुनाइये ॥१॥

प्रत्यक्षधर्मा भगवान् यस्य तुष्टो हि कर्मभिः ।
सफलं तस्य जन्माहं मन्ये सद्धर्मचारिणः ॥२॥

आप महानुभाव, धर्म को प्रत्यक्ष कर चुके हो। आप जिस पर उसके कर्मों से सन्तुष्ट हो जाते हो, मैं उस उत्तम धर्म के आचरण करने वालों का जन्म सफल मानता हूं ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यास उवाच—

शिलोञ्छवृत्तिर्धर्मात्मा मुद्गलः संयतेन्द्रियः ।
आसीद्राजन् कुरुक्षेत्रे सत्यवागनसूयकः ॥३॥
अतिथिव्रती क्रियावांश्च कापोतीं वृतिमास्थितः ।
सत्रमिष्टीकृतं नाम समुपास्ते महातपाः ॥४॥

व्यासजी बोले—हे राजन् ! कुरुक्षेत्र में शिलोञ्छवृत्ति (कण बीन कर निर्वाह) करने वाला धर्मात्मा, विजितेन्द्रिय, सत्यवादी, अनिन्दक, अतिथि सेवा के व्रत में परायण, क्रियाशील, कबूतर की तरह बहुत थोड़ा संग्रह कर्ता, एक महात्मा मुद्गल नाम ब्राह्मण था। यह महातपस्वी, इष्टि कृत नामक (पशु वधहीन) यज्ञ से यजन करता था ॥ ३--४ ॥

सपुत्रदारो हि मुनिः पक्षाहारो बभूव ह ।
कपोतवृत्त्या पक्षेण व्रीहिद्रोणमुपार्जयत् ॥५॥

यह मुनि, अपने पुत्र और स्त्री सहित एक २ पक्ष में आहार करता था। इसने कपोत की तरह चुग २ कर एक द्रोण (सोलह सेर) चावल इकट्ठे कर लिए ॥ ५ ॥

दर्शश्च पौर्णमासश्च कुर्वन् विगतमत्सरः ।
देवतातिथिशेषेण कुरुते देहयापनम् ॥६॥

यह मत्सर हीन, मुनि, दर्श पौर्णमास (अमावस्या पूर्णिमामें) यज्ञ करता था और देवता तथा अतिथि से शेष रहे अन्न से निर्वाह करता था ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्येन्द्रः सहितो देवैः साक्षात् त्रिभुवनेश्वरः ।
प्रत्यगृह्णन्महाराज भागं पर्वणि पर्वणि ॥७॥

हे महाराज ! इसके यज्ञ में देवों के साथ त्रिभुवनपति इन्द्र, ने स्वयं प्रत्यक्ष होकर पर्व २ पर अपने भाग को ग्रहण किया ॥७

स पर्वकालं कृत्वा तु मुनिवृत्त्या समन्वितः ।
अतिथिभ्यो ददावन्नं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥८॥

इसने मुनि वृत्ति से समन्वित होकर पर्व काल का यज्ञ समाप्त किया और बड़े प्रसन्न मन से अतिथियों को अन्न दान किया ॥ ८ ॥

व्रीहिद्रोणस्य तद्धस्य ददतोऽन्नं महात्मनः ।
शिष्टं मात्सर्य्यहीनस्य वर्द्धत्यतिथिदर्शनात् ॥९॥

इन सोलह सेर चावलों में से दान देते हुए, इस मात्सर्य-हीन, महात्मा का शेष अन्न, अतिथि के आने पर बढ़ जाता था ।

तच्छतान्यपि भुञ्जन्ति ब्राह्मणानां मनीषिणाम्।
मुनेस्त्यागविशुद्ध्या तु तदन्नं वृद्धिमर्च्छति ॥१०॥

यह सौ २ मनीषी ब्राह्मणों को भोजन करा देता था, परन्तु इस मुनि की दान की शुद्धि से वह अन्न बढ़ता ही जाता था ॥

तन्तु शुश्राव धर्मिष्ठं मुद्गलं संशितव्रतम् ।
दुर्वासा नृप दिग्वासास्तमथाभ्याजगाम ह ॥११॥

हे राजन्, दिगम्बर, दुर्वासा मुनि, इस प्रकार व्रतशील धर्मात्मा मुद्गल मुनि को सुनकर उसके पास आया ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिभ्रच्चानियतं वेशमुन्मत्त इव पाण्डव ।
विकचः परुषा वाचो व्याहरन् विविधा मुनिः ॥१२॥

हे पाण्डव, इसने पागल की भांति बड़ा अद्भुत वेश बना रखा था। यह मुनि हंसता हुआ, अनेक प्रकार की कठोर वाणी कह रहा था ॥१२॥

अभिगम्याथ तं विप्रमुवाच मुनिसत्तमः ।
अन्नार्थिनमनुप्राप्तं विद्धि मां द्विजसत्तम ॥१३॥

इस ब्रह्मर्षि के पास पहुंच कर इस मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने कहा। हे द्विजसत्तम, मैं अन्न की इच्छा से तुम्हारे पास आया हूं, यह समझ लो ॥१३॥

स्वागतन्तेऽस्त्विति मुनिं मुद्गलः प्रत्यभाषत ।
पाद्यमाचमनीयञ्च प्रतिपाद्यान्नमुत्तमम् ॥१४॥
प्रादात् स तापसायान्नं क्षुधितायातिथिव्रती ।
उन्मत्ताय परां श्रद्धामास्थाय स धृतव्रतः ॥१५॥

इस दुर्वासा मुनि से मुद्गल मुनि, कहने लगा--हे महाभाग, आपका स्वागत हो। इस अतिथि-सत्कार के व्रतवाले मुनि ने पाद्य और आचमन अर्पण करके उत्तम अन्न उस भूखे तपस्वी के लिए अर्पण किया। इस व्रतशील ने इस उन्मत्त मुनि में बड़ी श्रद्धा दिखाई ॥१४-१५॥

ततस्तदन्नं रसवत् स एव क्षुधयान्वितः ।
बुभुजे कृत्स्नमुन्मत्तः प्रादात्तस्मै च मुद्गलः ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस परोसे हुए रसीले अन्न को वह भूखा उन्मत्त मुनि खा गया, तब मुद्गल ने उसको और अन्न अर्पण किया ॥१६॥

भुक्त्वा चान्नं ततः सर्वमुच्छिष्टेनात्मनस्ततः ।
अथाङ्गं लिलिपेऽन्नानि यथागतमगाच्च सः ॥१७॥

इसने बहुत से उत्तम अन्न को खाकर उच्छिष्ट अन्न से अपने शरीर को लीप लिया और अपनी इच्छा के अनुसार जिधर से आया था, उधर ही चला गया ॥१७॥

एवं द्वितीये संप्राप्ते यथाकाले मनीषिणः ।
आगम्य बुभुजे सर्वमन्नमुञ्छोपजीविनः ॥१८॥

इसी प्रकार इस मुनि के दूसरे पर्वकाल के ऊपर भी वही उन्मत्त दुर्वासा आया और उञ्छवृत्ति से जीवन-यापन करने वाले, मुद्गल का सारा अन्न खाकर चलता बना ॥१८॥

निराहारस्तु स मुनिरुञ्छं मार्गयते पुनः ।
न चैनं विक्रियां नेतुमशकन्मुद्गलं क्षुधा ॥१९॥

यह मुद्गल मुनि, अब की बार भी भूखा ही रह गया। यह फिर उञ्छ द्वारा अन्न प्राप्त करने लगा। इस मुनि का भूख से कुछ भी रंग नहीं बदला ॥१९॥

न क्रोधो न च मात्सर्यं नावमानो न सम्भ्रमः ।
सपुत्रदारमुञ्छन्तमाविवेश द्विजोत्तमम् ॥२०॥

इस द्विज-श्रेष्ठ को क्रोध, डाह, तिरस्कार का भाव, घबराहट कुछ भी नहीं थी। यह अपने पुत्र और स्त्री के साथ कणों को बीनता रहा ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा तमुञ्छधर्माणं दुर्वासा मुनिसत्तमम् ।
उपतस्थे यथाकालं षट्कृत्वः कृतनिश्चयः ॥२१॥
न चास्य मनसः किञ्चिद्विकारं ददृशे मुनिः ।
शुद्धसत्त्वस्य शुद्धं स ददृशे निर्मलं मनः ॥२२॥

हे राजन् ! इस प्रकार उञ्छ—वृत्ति से निर्वाह करने वाले मुनि श्रेष्ठ को दुर्वासा निश्चय करके समयर पर छः बार आया। इस दुर्वासा ने कभी भी इस मुनि के मन पर विकृति नहीं देखी। शुद्ध मन वाले मुनि का मन बड़ा ही निर्मल दिखाई देता था ॥२२॥

तमुवाच ततः प्रीतः स मुनिर्मुद्गलं ततः ।
त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन् दाता मात्सर्य्यवर्ज्जितः॥

इसके अनन्तर वह दुर्वासा मुनि, प्रसन्न होकर मुद्गल मुनि से बोला। हे मुने ! तेरे समान इस लोक में ईर्ष्या-द्वेष से रहित अन्य दाता नहीं है ॥२३॥

क्षुद्धर्मसंज्ञां प्रणुदत्यादत्ते धैर्य्यमेव च ।
रसानुसारिणी जिह्वा कर्षत्येव रसान् प्रति ॥२४॥

हे महात्मन् ! क्षुधा, धर्म, चेतनता और धैर्य का अपहरण कर लेती है। रसों के पीछे चलने वाली रसना, मनुष्यों को रसों की ओर खैंचती है। तुमने क्षुधा और जिह्वा दोनों जीत ली हैं ॥२४॥

आहारप्रभवाः प्राणा मनोदुर्निग्रहश्चलम् ।
मनसश्चेन्द्रियाणाञ्चाप्यैकाग्र्यं च निश्चितं तपः ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण तो आहार के आश्रय से ही रहते हैं। मन बड़ा चञ्चल होने से निग्रह में नहीं आता है, परन्तु मन और इन्द्रियों को एकाग्र करने वाला तप ही है॥२५॥

श्रमेणोपार्ज्जितं त्यक्तुं दुःखं शुद्धेन चेतसा ।
सत्सर्वं भवता साधो यथावदुपपादितम् ॥२६॥

हे साधो ! श्रम से उपार्जित किये हुए धन का दान करना बड़ा ही कठिन है, परन्तु तुमने शुद्ध-चित्त से सारा दान, विधि-पूर्वक कर दिया है ॥२६॥

प्रीताः स्मोऽनुगृहीताश्च समेत्य भवता सह ।
इन्द्रियाभिजयो धैर्य्यं संविभागो दमः शमः ॥२७॥
दया सत्यञ्च धर्मश्च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
जितास्ते कर्मभिर्लोकाः प्राप्तोऽसि परमाङ्गतिम् ॥२८

आज हम तुमसे मिल कर बड़े प्रसन्न हुए। तुमने दर्शन देकर बड़ी कृपा की है। इन्द्रियों का जय, धैर्य, दान, दम, शम, दया, सत्य, धर्म, यह सब कुछ तुम में विद्यमान है। तुमने अपने कर्म से सारे लोक जीत लिए और तुम परमगति का लाभ कर चुके हो ॥२७-२८॥

अहो दानं विघुष्टन्ते सुमहत् स्वर्गवासिभिः ।
स शरीरो भवान् गन्ता स्वर्गं सुचरितव्रत । २९ ।

हे व्रत-शील ! तुम्हारे दान की प्रशंसा स्वर्गवासी देवता भी कर रहे हैं। अब तुम इस शरीर से स्वर्ग में पहुंच जाओगे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्येवं वदतस्तस्य तदा दुर्वाससो मुनेः ।
देवदूतो विमानेन मुद्गलं प्रत्युपस्थितः ॥३०॥
हंससारसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना ।
कामगेन विचित्रेण दिव्यगन्धवता तथा ॥३१॥
उवाच चैनं विप्रर्षिं विमानं कर्मभिर्जितम् ।
समुपारोह संसिद्धिं प्राप्तोऽसि परमां मुने ॥३२॥

इस प्रकार दुर्वासा मुनि तो कह ही रहा था, कि देवदूत, हंस और सारसों से युक्त, किंकणी समूह से सुशोभित, कामचारी, विचित्र, दिव्य गन्धवाले विमान से मुद्गल मुनि के पास आ पहुंचा और कहने लगा—हे मुने ! तुमने यह विमान अपने कर्मों से प्राप्त किया है । तुम इस पर चढ़ जाओ, क्योंकि तुम परम सिद्धि पा चुके हो ॥३०-३२॥

तमेवंवादिनमृषिर्देवदूतमुवाच ह ।
इच्छामि भवता प्रोक्तान् गुणान् स्वर्गनिवासिनाम् ॥
के गुणास्तत्र वसतां किं तपः कश्च निश्चयः ।
स्वर्गे तत्र सुखं किञ्च दोषो वा देवदूतक ॥३४॥

इस प्रकार कहते हुए देवदूत से मुनि, बोला । हे देवदूत ! मैं स्वर्ग-निवासियों के सुख या गुणों को तुमसे सुनना चाहता हूं । स्वर्ग में रहने वाले के क्या गुण ? क्या तप ? क्या व्रत ? क्या सुख और क्या दोष हैं ? ॥३३-३४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतां सप्तपदं मित्रमाहुः सन्तः कुलोचिताः ।
मित्रताश्च पुरस्कृत्य पृच्छामि त्वामहं विभो ॥३५॥

कुलीन-सज्जन, उत्तम पुरुषों की सातपद चलने पर ही मित्रता मानते हैं । हे विभो ! मैं इसी मित्रता को ध्यान में रख कर तुमसे पूछता हूं ॥३५॥

यदत्र तथ्यं पथ्यञ्च तद्ब्रवीह्यविचारयन् ।
श्रुत्वा तथा करिष्यामि व्यवसायं गिरा तव ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि व्रीहिद्रौणिका-
ख्यानपर्वणि स्वर्गगुणप्रश्ने एकोनषष्ट्या-
धिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५९॥

इस विषय में जो सत्य और हितकारी है, उसको विना विचारे झटपट सुना दो । मैं तुम्हारी वाणी सुनकर वैसा ही उद्योग करूंगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत व्रीहिद्रौणिकआख्यानपर्व में स्वर्ग के गुण पूछने का दो सौ उनसठवां अध्याय पूरा हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ साठवां अध्याय

देवदूत उवाच—

महर्षे आर्य्यबुद्धिस्त्वं यः स्वर्गसुखमुत्तमम् ।
संप्राप्तं बहु मन्तव्यं विमृष्यस्यबुधो यथा ॥१॥

देवदूत बोला--हे महर्षे ! तुम,बड़ी ही आर्य श्रेष्ठ) बुद्धि के रखने वाले प्रतीत होते हो, जो प्राप्त हुए उत्तम स्वर्ग को भी अज्ञानी की तरह सोच रहे हो। इस सुख के प्राप्त होने पर तो मनुष्य बड़ा ही उतावला हो जाता है और इस सुख को बड़ा श्रेष्ठ, मानने लगता है ॥१॥

उपरिष्ठाच्च स्वर्लोको योऽयं स्वरिति संज्ञितः ।
ऊर्द्ध्वगः सत्पथः शश्वद्देवयानचरो मुने ॥२॥

इसलोक के ऊपर सुखदायी लोक हैं, जिसको लोग, स्वर्ग कहते हैं। हे मुने ! ऊर्ध्वगमन कराने वाला होने से यह बड़ा ही सन्मार्ग है। इसमें देवयान मार्ग से जाने वाले ही पहुंच पाते हैं।

नातप्ततपसः पुंसो नामहायज्ञयाजिनः ।
नानृता नास्तिकाश्चैव तत्र गच्छन्ति मुद्गल ॥३॥

हे मुद्गल ! जिन्होंने तप नहीं किया या महायज्ञों से यजन नहीं किया , जो मिथ्या व्यवहार करने वाले तथा नास्तिक हैं, वे यहां नहीं आ सकते हैं ॥३॥

धर्मात्मानो जितात्मानः शान्ता दान्ता विमत्सराः ।
दानधर्मरताः पुंसः शूराश्चाहवलक्षणाः ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र गच्छन्ति धर्माग्र्यं कृत्वा शमदमात्मकम् ।
लोकान् पुण्यकृतान् ब्रह्मन् सद्भिराचरितन्नृभिः ॥५॥

हे ब्रह्मन् ! धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, शान्त, उदार, मत्सरहीन, दानधर्म में परायण, युद्ध-शील, वीर पुरुष ही शमदम करके इस धर्मश्रेष्ठ सुयोग को पा सकते हैं तथा भद्रपुरुषों से सेवित, पुण्य लोकों को प्राप्त करते हैं ॥४-५॥

देवाः साध्यास्तथा विश्वे तथैव च महर्षयः ।
यामा धामाश्च मौद्गल्य गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥६॥
एषां देवनिकायानां पृथक् पृथगनेकशः ।
भास्वन्तः कामसम्पन्ना लोकास्तेजोमयाः शुभाः ॥७
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि योजनानि हिरण्मयः ।
मेरुः पर्वतराट् यत्र देवोद्यानानि मुद्गल ॥८॥

हे मौद्गल्य ! साध्य, विश्वेदेवा, सारे महर्षि, याम धाम गण, गन्धर्व, अप्सरा आदि देव समूहों के अलग २ चमकते हुए, कामना के अनुसार फल देने वाले अनेक शुभ, तेजोमय लोक हैं। हे मुद्गल ! तेतीस हज़ार योजन लम्बा, चौड़ा सुवर्ण का मेरु पर्वत, है, जहां देवों के अनेक उद्यान हैं ॥६-८॥

नन्दनादीनि पुण्यानि विहाराः पुण्यकर्मणाम् ।
न क्षुत्पिपासे न ग्लानिर्न शीतोष्णे भयं तथा ॥९॥
बीभत्समशुभं वापि तत्र किञ्चिन्न विद्यते ।
मनोज्ञाः सर्वतो गन्धाः सुखस्पर्शाश्च सर्वशः ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दाः श्रुतिमनोग्राह्याः सर्वतस्तत्र वै मुने ।
न शोको न जरा तत्र नायासपरिदेवने ॥११॥

वहां नन्दन आदि पवित्र उद्यान हैं, जहां पुण्यात्मा जन, विहार करते हैं। हे मुने ! यहाँ भूख, प्यास, ग्लानि, शीत, उष्ण, भय, घृणा आदि उत्पन्न करने वाली कोई अशुभ वस्तु नहीं है। सब ओर से मनोहर गन्ध, सुखकारी स्पर्श, कर्ण और मन के ग्रहण करने वाले शब्द सुनाई देते हैं। वहां न तो शोक है, न जरा है और न कोई कष्ट तथा न कोई रोना पीटना है ॥६-११॥

ईदृशः स मुने लोकः स्वकर्मफलहेतुकः ।
सुकृतैस्तत्र पुरुषाः सम्भवन्त्वात्मकर्मभिः ॥१२॥

हे मुने ! अपने कर्मों से प्राप्त होने वाला स्वर्गलोक का यही स्वरूप है। जो पुण्यात्मा मनुष्य हैं, वे ही अपने सुकर्म से स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं ॥१२॥

तैजसानि शरीराणि भवन्त्यत्रोपपद्यताम् ।
कर्मजान्येव मौद्गल्य न मातृपितृजान्युत ॥१३॥

हे मौद्गल्य ! तुम यह जान लो, कि वहाँ तैजस शरीर होते हैं, जो शरीर कर्म से बन जाते हैं, माता पिता द्वारा गर्भ से उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ १३ ॥

न संस्वेदो न दौर्गन्ध्यं पुरीषं मूत्रमेव च ।
तेषां न च रजो वस्त्रं बाधते तत्र वै मुने ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे मुने, स्वर्ग में स्वेद (पसीना) दुर्गन्ध, मल, मूत्र कुछ भी नहीं होता है। उस स्थान में मिट्टी धूल आदि जम कर वस्त्र को मलिन भी नहीं करती है ॥ १४ ॥

न म्लायन्ति स्रजस्तेषां दिव्यगन्धा मनोरमाः ।
संयुज्यन्ते विमानैश्च ब्रह्मन् वंविधैश्च ते ॥१५॥

हे ब्रह्मन्, वहाँ के देवों की दिव्य गन्ध वाली सुन्दर मालाएँ कभी मलिन नहीं होती हैं और इसी तरह के दिव्य विमानों से वहाँ लोग (देव) संयुक्त होते हैं ॥ १५ ॥

ईर्ष्याशोकक्लमापेता मोहमात्सर्य्यवर्जिताः ।
सुखं स्वर्गजितस्तत्र वर्त्तयन्ते महामुने ॥१६॥

हे महामुने, यह स्वर्ग में आने वाले, ईर्ष्या, शोक, कष्ट से रहित, मोह, मात्सर्य (डाह) से हीन होकर बड़े सुख और आनन्द से रहते हैं ॥१६ ॥

तेषां तथाविधानान्तु लोकानां मुनिपुङ्गव ।
उपर्य्युपरि लोकस्य लोका दिव्यगुणान्विताः ॥१७॥
पुरस्ताद् ब्राह्मणास्तत्र लोकास्तेजोमयाः शुभाः ।
यत्र यान्त्यृषयो ब्रह्मन् पूताः स्वैः कर्मभिः शुभैः॥१८

हे मुनिश्रेष्ठ, इस तरह के लोकों के ऊपर २ दिव्य गुण वाले लोक हैं। हे ब्रह्मन्, वहाँ ब्राह्मणों को सब कार्यों में आगे रखा जाता है। ये लोक, तेजोमय और शुभ हैं। इन लोकों में अपने २ शुभ कर्मों से पवित्र हुए, ऋषि लोग ही आकर सुख प्राप्त करते हैं ॥ १८ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋभवो नाम तत्रान्ये देवानामपि देवताः ।
तेषां लोकाः परतरे यान् यजन्तीह देवताः ॥१९॥

यहां ऋभुनामक देवों के भी देवता विद्यमान हैं। इन लोकों से भी आगे लोक हैं, जिनको देवता, यज्ञ द्वारा पाते हैं। ॥१९॥

स्वयम्प्रभास्ते भास्वन्तो लोकाः कामदुघाः परे ।
न तेषां स्त्रीकृतस्तापो न लोकैश्वर्य्यमत्सरः ॥२०॥

ये लोक, अपनी चमक से आप ही चमकते हैं और कामना के अनुसार फल देने वाले हैं। इन के लोगों को न तो स्त्रियों के कुकर्मों से कोई भय होता है और न लोगों के ऐश्वर्य से कोई जलन ही होती है ॥२०॥

न वर्त्तयन्त्याहुतिभिस्ते नाप्यमृतभोजनाः ।
तथा दिव्यशरीरास्ते न च विग्रहमूर्त्तयः ॥२१॥

ये आहुतियों से वृत्ति नही करते और न अमृत का भोजन करते हैं। ये तो दिव्यमूर्त्ति होते हैं, इस पाञ्चभौतिक शरीर के धारण करने वाले नहीं हैं ॥२१॥

न सुखे सुखकामास्ते देवदेवाः सनातनाः ।
न कल्पपरिवर्त्तेषु परिवर्त्तन्ति ते तथा ॥२२॥

ये सनातन, देवोंकेदेव, सुखों में अभिलाषा नहीं रखते और न कल्प के परिवर्तन होने पर भी ये अपने स्वरूप को कभी बदलते हैं ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरा मृत्युः कुतस्तेषां हर्षः प्रीतिः सुखं न च ।
न दुःखं न सुखञ्चापि रागद्वेषौ कुतो मुने ॥२३॥

इनको जरा मृत्यु का भय नहीं है और न हर्ष, प्रीति तथा भय आदि कुछ भी होता है। हे मुने, जब दुःख सुख का भान नहीं है, तो फिर राग द्वेष कैसे हो सकता है ॥२३

देवानामपि मौद्गल्य कांक्षिता सा गतिः परा ।
दुष्प्रापा परमा सिद्धिरगम्या कामगोचरैः ॥२४॥

हे मुद्गल, इस उत्कृष्ट गति को देवता चाहते ही रहते हैं। कामनाओं के पीछे दौड़ने वाले मनुष्यों को यह उत्कृष्ट सिद्धि बड़ी दुर्लभ और अगम्य है ॥२४॥

त्रयस्त्रिंशदिमे देवा येषां लोका मनीषिभिः ।
गम्यन्ते नियमैः श्रेष्ठैर्दानैर्वा विधिपूर्वकैः ॥२५॥

ये तेतीस देवता हैं, जिनके लोकों को मनीषी, बड़े उत्तम २ नियम और विधि-पूर्वक दान से प्राप्त कर पाते हैं ॥२५॥

सेयं दानकृता व्युष्टिरनुप्राप्ता सुखं त्वया ।
तां भुङ्क्ष्व सुकृतैर्लब्धां तपसा द्योतितप्रभः ॥२६॥

हे मुने, तुमने भी अपने दान से यह स्वर्ग की सम्पत्ति प्राप्त की है। जिसमें बड़ा ही सुख है। अब तुम तप से देदीप्यमान होकर अपने सुकृतों से प्राप्त हुई इस स्वर्ग की सम्पत्ति को चिरकाल तक भोगो ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतत् स्वर्गसुखं विप्र लोका नानाविधास्तथा ।
गुणाः स्वर्गस्य प्रोक्तास्ते दोषानपि निबोध मे॥ २७॥

हे विप्र, यह स्वर्ग का सुख है और इस तरह के अनेक सुख कहे हैं, अब तुम स्वर्ग के दोषों को सुनो ॥२७॥

कृतस्य कर्मणस्तत्र भुज्यते यत् फलं दिवि ।
न चान्यत् क्रियते कर्म मूलच्छेदेन भुज्यते ॥२८॥

स्वर्ग लोक में किये हुए कर्म का फल भोगा जाता है, परन्तु वहां कोई नया कर्म नहीं किया जा सकता। वहां तो पुण्य का भोग द्वारा मूलोच्छेद ही हो जाता है ॥२८॥

सोऽत्र दोषो मम मतस्तस्यान्ते पतनञ्च यत् ।
सुखव्याप्तमनस्कानां पतनं यच्च मुद्गल ॥२९॥

मुझे तो यह दोष ही मालूम होता है, कि अन्त में वहां से गिरना ही पड़ता है। हे मुद्गल, सुख में लिप्त मन वाले पुरुषों का पतन होना ही, स्वर्ग का बड़ा दोष हैं ॥२९॥

असन्तोषः परीतापो दृष्ट्वा दीप्ततराः श्रियः ।
यद्भवत्यवरे स्थाने स्थितानां तत् सुदुष्करम् ॥३०॥

यहां की अत्यन्त दीप्त समृद्धि के वियोग को देख कर जो असन्तोष और परिताप होता है, वह अन्य स्थान में स्थित पुरुषों को नहीं हो सकता है ॥३०॥

संज्ञा मोहश्च पततां रजसा च प्रधर्षणम् ।
प्रम्लानेषु च माल्येषु ततः पिपतिषोर्भयम् ॥३१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां से गिरने वाले पुरुषों की संज्ञा नष्ट सी हो जाती है, और मोह उद्बुद्ध हो जाता है, रजोगुण, चित्त पर आक्रमण करता है एवं इनकी दिव्य मालाएं मलिन हो जाती हैं यह बड़ा ही भय है ॥३१॥

आब्रह्मभवनादेते दोषा मौद्गल्य दारुणाः ।
नाकलोके सुकृतिनां गुणास्त्वयुतशो नृणाम् ॥३२॥
अयं त्वन्यो गुणः श्रेष्ठश्च्युतानां स्वर्गतो मुने ।
शुभानुशययोगेन मनुष्येषूपजायते ॥३३॥
तत्रापि स महाभागः सुखभागभिजायते ।
न चेत्सम्बुध्यते तत्र गच्छत्यधमतां ततः ॥३४॥

हे मौद्गल्य, यह दारुण, दोष, ब्रह्मलोक तक में विद्यमान है। स्वर्गलोक में मनुष्यों को हजारों गुण प्राप्त हैं, परन्तु उन सब गुणों में यह गुण बड़ा ही श्रेष्ठ है, कि स्वर्ग से गिरने वाले की शुभ वासना के कारण, वह मनुष्य-योनि में जन्म लेता है और यहां भी यह महानुभाव समृद्धि-शाली होकर उत्पन्न होता है। यदि इस मनुष्य जन्म में फिर यह सचेत न होगा, तो फिर अधमगति को प्राप्त करेगा ॥३२-३४॥

इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते ।
कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् फलभूमिरसौ मता ॥३५॥

मनुष्य, जो मृत्यु लोक में कर्म करता है, उसी का अन्य लोकों में फल भोगता है। यह तो कर्म भूमि है और स्वर्ग आदि लोक फलभूमि माने गए हैं ॥३५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मा पृच्छसि मुद्गल।
तवानुकम्पया साधो साधु गच्छाम मा चिरम् ॥३६।

हे मुद्गल ! जो तुमने पूछा था, वह सब कुछ मैंने कह दिया। हे साधो ! तेरी कृपा से हम भी अच्छी तरह चल सकेंगे-अब तुम देर न करो ॥३६॥

व्यास उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु मौद्गल्यो वाक्यं विममृशे धिया।
विमृश्य च मुनिश्रेष्ठो देवदूतमुवाच ह ॥३७॥

व्यास जी बोले-यह सुनकर मौद्गल्य ने इस वाक्य पर बुद्धि द्वारा विचार किया और विचार करने के अनन्तर यह मुनिराज, देवदूत से कहने लगा ॥३७॥

देवदूत नमस्तेऽस्तु गच्छ तात यथासुखम्।
महादोषेण मे कार्य्यं न स्वर्गेण सुखेन वा ॥३८॥

हे देवदूत, आपको नमस्कार है। हे तात, आप अपनी इच्छा के अनुसार पधारिए। मैं तो स्वर्ग के दोषों से ही काम रखता हूं। मुझे स्वर्ग या सुख से कुछ प्रयोजन नहीं है ,।६८'।

पतनान्ते महद्दुःखं परितापः सुदारुणः।
स्वर्गभाजश्चरन्तीह तस्मात् स्वर्गं न कामये ॥२९॥

अन्त में स्वर्ग से गिरना पड़ता है, यह बड़ा ही दुःख और दारुण सन्ताप है। जो स्वर्ग में जाने वाले हैं, वे एक दिन इसी लोक में घूमते फिरते हैं। मैं तो इसी लिए स्वर्ग की कामना नहीं करता हूं ॥३९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्र गत्वा न शोचन्ति न व्यथन्ति चलन्ति च ।
तदहं स्थानमत्यन्तं मार्गयिष्यामि केवलम् ॥४०॥

जिस स्थान में जाने से कभी सोच नहीं करना पड़ता है न कभी व्यथा शेष रह जाती है और न गिरना पड़ता है, मैं तो केवल ऐसे स्थान को ही बड़े आग्रह से खोज रहा हूं ॥४०॥

मुद्गल उवाच—

महान्तस्तु अमी दोषास्त्वया स्वर्गस्य कीर्त्तिताः ।
निर्दोष एव यस्त्वन्यो लोकं तं प्रवदस्व मे ॥४१॥

मुद्गल ने फिर कहा—हे देवदूत ! तुमने तो स्वर्ग के ये बहुत बड़े दोष गिना दिए। अब तुमजो कोई दोष शून्य लोक हो, मुझे तो उसको बताओ ॥४१॥

देवदूत उवाच—

ब्रह्मणः सदनादूर्ध्वं तद्विष्णोः परमं पदम् ।
शुद्धं सनातनं ज्योतिः परंब्रह्मेति यं विदुः ॥४२॥

देवदूत ने कहा—ब्रह्मलोक के ऊपर भगवान् विष्णु का परम पद है। वहां शुद्ध, सनातन, ज्योति है, जिसको परब्रह्म कहते हैं ॥४२॥

न तत्र विप्र गच्छन्ति पुरुषा विषयात्मकाः ।
दम्भलोभमहाक्रोधमोहद्रोहैरभिद्रुताः ॥४३॥

हे विप्र ! इस स्थान में बिषयी, दम्भी, लोभी, क्रोधी, मोही और द्रोही पुरुष नहीं जा सकता है ॥४३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वाः संयतेन्द्रियाः ।
ध्यानयोगपराश्चैव तत्र गच्छन्ति मानवाः ॥४४॥

इस स्थान में तो निर्मोही निरहङ्कारी, निश्चिन्त, जितेन्द्रिय, ध्यानी और योगी मनुष्य ही जा सकता है ॥४४॥

इत्युक्तः स मुनिर्वाक्यं देवदूतं विसृज्य तम् ।
शिलोञ्छवृत्तिर्धर्मात्मा शममातिष्ठदुत्तमम् ॥४५॥

यह धर्मात्मा मुनि, देवदूत से इतना वचन कह कर उसको छोड़ कर चल दिया और अपनी शिलोञ्छ-वृत्ति करता हुआ मन और इन्द्रिय के विजय में तत्पर हो गया ॥४५॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्भूत्वा समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
ज्ञानयोगेन शुद्धेन ध्याननित्यो बभूव ह ॥४६॥

इसको निन्दा और स्तुति समान ही प्रतीत होती थी। यह मिट्टी, पत्थर और सोने को एक सा ही समझता था तथा शुद्ध ज्ञानयोग्य से नित्य ध्यान में परायण रहता था ॥४६॥

ध्यानयोगाद्बलं लब्ध्वा प्राप्य बुद्धिमनुत्तमाम् ।
जगाम शाश्वतीं सिद्धिं परां निर्वाणलक्षणाम् ॥४७॥

यह मुनि, ध्यान-योग से भक्तिका बल पाकर शुद्ध ज्ञान को प्राप्त हो गया। इसने अन्त में निर्वाणरूप क्षीण नहीं होने वाली सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त की ॥४७॥

तस्मात्त्वमपि कौन्तेय न शोकं कर्त्तुमर्हसि ।
राज्यात् स्फीतात् परिभ्रष्टस्तपसा तदवाप्स्यसि ॥४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे कौन्तेय ! अब तुमको भी किसी प्रकार का शोक नहीं करना चाहिए। यद्यपि तुम अपने विशाल राज्य से भ्रष्ट हो गए है, परन्तु थोड़े ही काल में उसको प्राप्त कर लोगे । ४८॥

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुखस्यानन्तरं सुखम् ।
पर्य्यायेणोपसर्पन्ते नरं नेमिमरा इव ॥४९॥

सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख क्रम से मनुष्य को प्राप्त होता है--जैसे चक्र के नेमि में आरे कभी ऊपर और कभी नीचे को जाते रहते हैं ॥४९॥

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्स्यस्यमितविक्रम ।
वर्षात्त्रयोदशाद्दूर्ध्वं व्येतु ते मानसो ज्वरः॥५०॥

हे अत्यन्त-पराक्रम-शाली, तुम अपने पिता पितामहों के राज्य को तेरह वर्ष के अनन्तर प्राप्त कर सकोगे । अब तुमको अपने मन की चिन्ता को दूर कर देनी चाहिए ॥५०॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा स भगवान् व्यासः पाण्डवनन्दनम् ।
जगाम तपसे धीमान् पुनरेवाश्रमं प्रति ॥५१॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि व्रीहिद्रौणिकाख्यानपर्वणि मुद्गलज्ञानप्राप्तौ षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६०॥
समाप्तश्च व्रीहिद्रौणिकाख्यानपर्व ॥

वैशम्पायन बोले--हे राजन् ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर से कह कर महाज्ञानी, भगवान् वेदव्यास, फिर तप करने को वनमें चले गए ॥५१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत व्रीहिद्रौणिकाख्यान पर्व में मुद्गल को ज्ञान-प्राप्ति का दो सौ साठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ और यहीं पर व्रीहिद्रौणिकाख्यानपर्व भी समाप्त हो गया।

अथ द्रौपदीहरणपर्व

दो सौ इकसठवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

वसत्स्वेवं वने तेषु पाण्डवेषु महात्मसु।
रममाणेषु चित्राभिः कथाभिर्मुनिभिः सह ॥१॥
सूर्य्यदत्ताक्षयान्नेन कृष्णाया भोजनावधि।
ब्राह्मणांस्तर्प्यमाणेषु ये चान्नार्थमुपागताः ॥२॥
आरण्यानां मृगाणाञ्च मांसैर्नानाविधैरपि।
धार्त्तराष्ट्रा दुरात्मानः सर्वे दुर्य्योधनादयः ॥३॥
कथं तेष्वनुवर्त्तन्त पापाचारा महामुने।
दुःशासनस्य कर्णस्य शकुनेश्च मते स्थिताः।
एतदाचक्ष्व भगवन् वैशम्पायन पृच्छतः ॥४॥

जनमेजय ने पूछा—हे महामुने! महात्मा पाण्डवों के बन में निवास करने और मुनियों के साथ चित्र विचित्र कथा करके मन बहलाने, सूर्य की दी हुई अक्षय अन्न से द्रौपदी के भोजन पर्यन्त परिपूर्ण रहने वाली, भोजन बनाने की स्थाली द्वारा, अन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अभिलाषा से आये हुए अनेक ब्राह्मणों के नित्य तृप्त करने, तथा अनेक वनैले जन्तुओं के अनेक भांति के मांस से मांस भोजी अतिथियों के सन्तुष्ट करने पर दुरात्मा धृतराष्ट्र पुत्र, पापी दुर्योधनादिने उनके साथ क्या व्यवहार किया। जो कौरव, कर्ण, शकुनि, और दुःशासन के मत के अनुसार चलते थे। हे भगवन्! वैशम्पायन! आप मुझे यह सब कुछ खोलकर सुनाइये ॥१--४॥

वैशम्पायन उवाच—

श्रुत्वा तेषां तथा वृत्तिं नगरे वसतामिव ।
दुर्य्योधनो महाराज तेषु पापमरोचयत्
तथा तैर्निकृतिप्रज्ञैः कर्णदुःशासनादिभिः ॥५॥

वैशम्पायन ने कहा—हे महाराज! नगर में रहने वालों के समान सुख से रहते हुए पाण्डवों को सुनकर दुर्योधन के चित्त में बुराई का भाव उत्पन्न हुआ। इस विचार में छल करने में कुशल कर्ण, दुःशासन, आदि भी सम्मिलित थे ॥५॥

नानोपायैरघं तेषु चिन्तयत्सु दुरात्मसु ।
अभ्यागच्छत् स धर्मात्मा तपस्वी सुमहायशाः ॥६॥

ये तो अनेक प्रकार के बुरेभाव, अनेक उपायों से सोच ही रहे थे, कि महायशस्वी धर्मात्मा, तपस्वी दुर्वासा मुनि, वहां आ पहुंचे। इनके साथ दश सहस्त्र शिष्यों की टोली थी ॥६॥

शिष्यायुतसमोपेतो दुर्वासा नाम कामतः ।
तमागतमभिप्रेत्य मुनिं परमकोपनम् ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्य्योधनो विनीतात्मा प्रश्रयेण दमेन च ।
सहितो भ्रातृभिः श्रीमानातिथ्येन न्यमन्त्रयत् ॥८॥

इस अत्यन्त कोप करने वाले मुनि को आया हुआ देखकर विनय और दम से समन्वित होकर दुर्योधन अपने भाइयों के साथ उसके पास पहुंचा और अतिथि-सत्कार के भाव से निमन्त्रित किया ॥७-८॥

विधिवत् पूजयामास स्वयं किङ्करवत् स्थितः ।
अहानि कतिचित्तत्र तस्थौ स मुनिसत्तमः ॥९॥

राजा दुर्योधन ने दुर्वासा की स्वयं पूजा की और सामने ही सेवक की तरह खड़ा हो गया। यह मुनिसत्तम, कुछ दिन तक हस्तिनापुर में ठहरा रहा ॥९॥

तञ्च पर्य्यचरद्राजा दिवारात्रमतन्द्रितः ।
दुर्य्योधनो महाराज शापात्तस्य विशङ्कितः ॥१०॥

हे महाराज! इसके शाप से शङ्कित होकर दुर्योधन दिन रात बड़ी सावधानी से इनकी सेवा शुश्रूषा करने लगा ॥१०॥

क्षुधितोऽस्मि ददस्वान्नं शीघ्रं मम नराधिप ।
इत्युक्त्वा गच्छति स्नातुं प्रत्यागच्छति वै चिरात् ११

हे नराधिप ! हमें भूख लग आई,तुम शीघ्र भोजन दिलवाओ-यह कहकर स्नान के लिए मुनि, चला जाता और फिर बड़े विलम्ब से आता था ॥११॥

न भोक्ष्याम्यद्य मे नास्ति क्षुधेत्युक्त्वैत्यदर्शनम् ।
अकस्मादेत्य च ब्रूते भोजयास्मांस्त्वरान्वितः ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी दिन दुर्वासा "आज मुझे भूख नहीं है" यह कह कर अलक्षित हो जाता और फिर थोड़ी देर में ही अचानक आकर कह देता कि शीघ्र भोजन कराओ, हम बड़े क्षुधातुर हैं ॥१२॥

कदाचिच्च निशीथे स उत्थाय निकृतौ स्थितः ।
पूर्ववत् कारयित्वान्नं न भुङ्क्ते गर्हयन् स्म सः ॥१३

यह मुनि दुर्वासा, छेड़छाड़ की इच्छा से आधी रात पर उठता और पूर्व (दिन) की तरह भोजन बनवा कर और फिर "यह भोजन अच्छा नहीं बना" यह कह कर नहीं खाता ॥१३॥

वर्त्तमाने तथा तस्मिन् यदा दुर्य्योधनो नृपः ।
विकृतिं नैति न क्रोधं तदा तुष्टोऽभवन्मुनिः ।
आह चैनं दुराधर्षो वरदोऽस्मीति भारत ॥१४॥

इसने जब इतनी छेड़ छाड़ की और दुर्योधन कुछ भी विकृत तथा इसके चित्त में कुछ भी क्रोध का उदय नहीं हुआ, तो यह मुनि सन्तुष्ट हो गया। अब यह दुराधर्ष मुनि, बोला- हे भारत ! मैं तुमको वरदान देना चाहता हूं ॥१४॥

दुर्वासा उवाच—

वरं वरय भद्रन्ते यत्ते मनसि वर्त्तते ।
मयि प्रीते तु यद्धर्म्यं नालभ्यं विद्यते तव ॥१५॥

दुर्वासा ने कहा--हे दुर्योधन ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम अब जो इच्छा हो, वही वर मांगो। मेरे प्रसन्न हो जाने पर धर्मानुकूल कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच:---

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य महर्षेर्भावितात्मनः ।
अमन्यत पुनर्जातमात्मानं स सुयोधनः ॥१६॥

वैशम्पायन बोले--हे राजन्! इस आत्मज्ञानी महर्षि के ये वचन सुन कर सुयोधन ने अपना पुनर्जन्म समझा ॥१६॥

प्रागेव मन्त्रितश्चासीत् कर्णदुशासनादिभिः ।
याचनीयं मुनेस्तुष्टादिति निश्चित्य दुर्मतिः ॥१७॥
अतिहर्षान्वितो राजा वरमेनमयाचत ।
शिष्यैः सह मम ब्रह्मन् यथा जातोऽतिथिर्भवान्॥१८
अस्मत्कुले महाराजो ज्येष्ठः श्रेष्ठो युधिष्ठिरः ।
वने वसति धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः ॥१९॥
गुणवान् शीलसम्पन्नस्तस्य त्वमतिथिर्भव ।

राजा दुर्योधन ने कर्ण दःशासनादि के साथ पूर्व से ही विचार कर रखा था, कि यदि मुनि सन्तुष्ट हो गया, तो उससे यह वर मांगेगे। यह दुरात्मा दुर्योधन, यह निश्चित करके अत्यन्त हर्ष के साथ इस प्रकार वर माँगने लगा। हे ब्रह्मन्! अपने इन शिष्यों के साथ जैसे आप मेरे अतिथि बने, वैसे ही राजा युधिष्ठिर के भी अतिथि बनिए। महाराज युधिष्ठिर, हमारेकुल में ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ है और अपने भाइयों के साथ वन में रहते हैं। यह बड़ा गुणवान और शीलवान् है ॥१७-१९॥

यदा च राजपुत्री सा सुकुमारी यशस्विनी ॥२०॥
भोजयित्वा द्विजान् सर्वान् पतींश्च वरवर्णिनी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्रान्ता च स्वयं भुक्त्वा सुखासीना भवेद्यदा ॥२१
तदा त्वं तत्र गच्छेथा यद्यनुग्राह्यता मयि ।

जब यशस्विनी, राजपुत्री, सुकुमारी, सुन्दरी, द्रौपदी, सारे द्विज और पतियों को भोजन कराके स्वयं भी भोजन कर ले तथा सुख से बैठी हुई विश्राम कर रही हो, तभी तुम वहां पधारना। यदि आपका अनुग्रह है, तो आप मुझ पर कृपा करके ऐसा करें ॥२०-२१॥

तथा करिष्ये त्वत्प्रीत्येत्येवमुक्त्वा सुयोधनम् ॥२२
दुर्वासा अपि विप्रेन्द्रो यथागतमगात्ततः ।
कृतार्थमिव चात्मानं तदा मेने सुयोधनः ॥२३॥

महर्षि दुर्वासा ने कहा--हे राजन्! तेरी प्रीति के कारण "मैं ऐसा ही करूंगा" इतना कह कर यह मुनिराज, अपनी इच्छा के अनुसार चल दिया। राजा दुर्योधन ने अपने को इस समय कृतकृत्य समझा ॥२२-२३॥

करेण च करं गृह्य कर्णस्य मुदितो भृशम् ।
कर्णोपि भ्रातृसहितमित्युवाच नृपं मुदा ॥२४॥

राजा दुर्योधन भी कर्ण का हाथ अपने हाथ में पकड़ कर बड़ा प्रसन्न हुआ, कर्ण भी आनन्द में निमग्न होकर भ्राताओं के सहित राजा दुर्योधन से कहने लगा ॥२४॥

कर्ण उवाच—

दिष्ट्या कामः सुसंवृत्तो दिष्ट्या कौरव वर्द्धसे ।
दिष्ट्या ते शत्रवो मग्ना दुस्तरे व्यसनार्णवे ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे कौरव! यह बड़ी प्रसन्नताकी बात हुई कि अपना कार्य पूरा हो गया। बड़ी प्रसन्नता है कि, अब तुम वृद्धि को प्राप्त हो रहे हो। तुम्हारे शत्रु दुस्तर विपत्ति के समुद्र में जा गिरे - यह बड़े हर्ष की बात है ॥२५॥

दुर्वासः क्रोधजे वह्नौ पतिताः पाण्डुनन्दनाः ।
स्वैरेव ते महापापैर्गता वै दुस्तरं तमः ॥२६॥

अब दुर्वासा के क्रोध की अग्नि में पाण्डव गिर चुके हैं। वे दुरात्मा अपने महापापों से आप ही विपत्ति के अन्धकार में गिर गए ॥२६॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्थं ते निकृतिप्रज्ञा राजन् दुर्य्योधनादयः ।
हसन्तः प्रीतमनसो जग्मुः स्वं स्वं निकेतनम्॥२७॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि दुर्वास आतिथ्ये एकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२६१

वैशम्पायन बोले---हे राजन्! इस प्रकार नीचता-पूर्ण, व्यवहार में कुशल दुर्योधन आदि कौरव, प्रसन्नता-पूर्वक हंसते हुए अपने २ भवनों को चले गये ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत बनपर्वान्तर्गत द्रौपदीहरणपर्व में दुर्वासा के अतिथि होने का दो सौ इकसठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ बासठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततः कदाचिद् दुर्वासाः सुखासीनांस्तु पाण्डवान् ।
भुक्त्वा चावस्थितां कृष्णां ज्ञात्वा तस्मिन् वने मुनिः॥
अभ्यागच्छत् परिवृतः शिष्यैरयुतसम्मितैः ।

वैशम्पायन बोले---हे राजन् ! कभी दुर्वासा मुनि, सुख से बैठे हुए पाण्डव, और भोजन करके स्थित हुई द्रौपदी को जानकर उस बन में पहुंचा । यह दश हज़ार शिष्यों से संयुक्त था ॥१॥

दृष्ट्वायान्तं तमतिथिं स च राजा युधिष्ठिरः ॥२॥
जगामाभिमुखः श्रीमान् सह भ्रातृभिरच्युतः ।

श्रीमान् राजा युधिष्ठिर भी इस अतिथि को आता हुआ देखकर अपने भाइयों के साथ सामने आया । यह राजा अपने निश्चय पर दृढ़ रहने वाला था ॥२॥

तस्मै बध्वाञ्जलिं सम्यगुपवेश्य वरासने ॥३॥
विधिवत् पूजयित्वा तमातिथ्येन न्यमन्त्रयत् ।
आह्निकं भगवन् कृत्वा शीघ्रमेहीति चाब्रवीत् ॥४॥
जगाम च मुनिः सोऽपि स्नातुं शिष्यैः सहानघः ।

राजा युधिष्ठिर ने दुर्वासा के सम्मुख हाथ जोड़ लिए और उनकोउत्तम आसन पर बैठाया । धर्मराज ने विधिपूर्वक मुनि की पूजा करके अतिथि सत्कार ग्रहण करने को निमन्त्रण दिया और कहा---हे भगवन् ! आप नित्यक्रिया समाप्त करके शीघ्र आ जाइये । यह सर्वगुणसम्पन्न, दुर्वासा मुनि भी स्नान करने को शिष्यों के साथ चल दिया ॥३-४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोज्जयेत् सहशिष्यं मां कथमित्येव चिन्तयन् ॥५॥
न्यमज्जत् सलिले चापि मुनिसंघः समाहितः ।

अब राजा युधिष्ठिर, शिष्यों के साथ मुझको कैसे भोजन करावेगा, इस प्रकार सोचते हुए, मुनिसंघ ने गोता लगाया, । ५

एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रौपदी योषिताम्वरा ॥६॥
चिन्तामवाप परमामन्नहेतोः पतिव्रता ।

हे राजन् ! इस समय स्त्रीरत्न, पतिव्रता द्रौपदी, अन्न के लिए बड़ी चिन्तित हुई ॥६॥

सा चिन्तयन्ती च यदा नान्नहेतुमविन्दत ॥७॥
मनसा चिन्तयामास कृष्णं कंसनिसूदनम् ।

इसने बहुत कुछ सोचा, परन्तु अन्न का प्रबन्ध न कर सकी। अब इसने कंसनाशक कृष्ण का मन से स्मरण किया ॥७॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय ॥८॥
वासदेव जगन्नाथ प्रणतार्त्तिविनाशन ।
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्त्तः प्रभोऽव्यय ॥९॥
प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर ।
आकूतीनाञ्च चित्तीनां प्रवर्त्तक नतास्मि ते ॥१०॥
वरेण्य वरदानन्त अगतीनां गतिर्भव ।
पुराणपुरुष प्राण मनोवृत्त्याद्यगोचर ॥११॥
सर्वाध्यक्ष पराध्यक्ष त्वामहं शरणं गता ।
पाहि मां कृपया देव शरणागतवत्सल ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे महाबाहो ! कृष्ण! हे देवकीनन्दन ! कृष्ण, अविनाशिन् ! वासुदेव ! जगन्नाथ ! शरणागत—रक्षक ! विश्वात्मन् ! विश्व-जनक ! विश्वसंहारक ! प्रभो ! अच्युत ! प्रणतपाल ! गोपाल ! प्रजापाल ! परात्पर ! चित्त की भिन्न २ वृत्तियों के प्रवर्तक ! मैं आपको नमस्कार करती हूं। हे वरेण्य ! वरद, अनन्त, भगवन्, अगतियों के तुम ही गति हो। हे पुराण-पुरुष, प्राण, मनोवृत्ति से भी अगोचर, सर्वाध्यक्ष, पराध्यक्ष, मैं तुम्हारी शरण में हूं। हे शरणागत-वत्सल, देव, कृपा करके मेरी रक्षा करो ॥८-१२॥

नीलोत्पलदलश्याम पद्मगर्भारुणेक्षण ।
पीताम्बरपरीधान लसत्कौस्तुभभूषण ॥१३॥
त्वमादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम् ।
परात्परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा सर्वतोमुखः ॥१४॥
त्वामेवाहुः परं बीजं निधानं सर्वसम्पदाम् ।
त्वया नाथेन देवेश सर्वापद्भ्यो भयं न हि ॥१५॥
दुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा ।
तथैव सङ्कटादस्मान्मामुद्धर्त्तुमिहार्हसि ॥१६॥

हे नीलकमल के समान श्याम-वर्णवाले ! कमल के अन्तर्गत पत्र के तुल्य लाल नेत्रधारी, पीताम्बरधारक, कौस्तुभ मणि के भूषण से सुन्दर, कृष्ण, प्राणियों के तुम आदि और अन्त हो। तुम ही सब के सर्वोत्तम आश्रय हो। तुम उत्कृष्ट से उत्कृष्ट ज्योति, विश्व की आत्मा और सर्वत्र भरपूर हो। तुम सबके कारण और सब सम्पत्तियों के कोष हो। हे देवेश !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे सहायक रहने पर सारी आपत्तियों से भय नहीं रह जाता है। तुमने पहले दुःशासन से सभा में मेरी रक्षा की थी, उसी तरह इस महान् सङ्कट से भी मेरा उद्धार करना आपको उचित है ॥१३-१६॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं स्तुतस्तदा देवः कृष्णया भक्तवत्सलः ।
द्रौपद्याः सङ्कटं ज्ञात्वा देवदेवो जगत्पतिः ॥१७॥
पार्श्वस्थां शयने त्यक्त्वा रुक्मिणीं केशवः प्रभुः ।
तत्राजगाम त्वरितो ह्यचिन्त्यगतिरीश्वरः ॥१८॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान् कृष्ण की द्रौपदी ने प्रार्थना की। द्रोपदी के सङ्कट को देखकर देवों के देव, जगत्पति, शक्तिशाली केशव, पास में सोती हुई रुक्मिणी को छोड़कर वहां बड़ी शीघ्रता से आए। श्रीकृष्ण, स्वयं ईश्वर और अचिन्त्य गति वाले हैं ॥१७-१८॥

ततस्तं द्रौपदी दृष्ट्वा प्रणम्य परया मुदा ।
अब्रवीद्वासुदेवाय मुनेरागमनादिकम्॥ १९॥

द्रौपदी ने ज्योंही आये हुए भगवान् कृष्ण को देखा, त्योंही बड़े आनन्द से झुककर प्रणाम किया और जल्दी से श्री कृष्ण को दुर्वासा के आने की सूचना दी ॥१९॥

ततस्ताब्रवीत् कृष्णः क्षुधितोऽस्मि भृशातुरः ।
शीघ्रं भोजय मां कृष्णे पश्चात् सर्वं करिष्यसि॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री कृष्ण ने द्रौपदी से कहा---मैं बड़ा भूखा और व्याकुल हूं। हे कृष्णे! मुझे शीघ्र भोजन कराओ, पीछे और काम करना ॥२०॥

निशम्य तद्वचः कृष्णा लज्जिता वाक्यमब्रवीत् ।
स्थाल्यां भास्करदत्तायामन्नं मद्भोजनावधि ॥२१॥
भुक्तवत्यस्म्यऽहं देव तस्मादन्नं न विद्यते ।

श्री कृष्ण के वचन सुनकर कृष्णा लज्जित होकर कहने लगी। हे भगवन्! सूर्य की दी हुई स्थाली (बटलोई) में मेरे भोजनतक ऋद्धि रहती है। हे देव! मैं तो भोजन कर चुकी इससे अब तो भोजन नहीं है ॥२१-२२॥

ततः प्रोवाच भगवान् कृष्णां कमललोचनः ॥२२॥
कृष्णे न नर्मकालोऽयं क्षुच्छ्रमेणातुरे मयि ।
शीघ्रं गच्छ मम स्थालीमानयित्वा प्रदर्शय ॥२३॥

इसके बाद, भगवान् कमललोचन श्री कृष्ण ने कृष्णा से कहा-हे कृष्णे! यह उपहास का समय नहीं है। मैं भूख से अत्यन्त ही आतुर हो रहा हूं। तुम शीघ्र जाओ और स्थाली को लाकर दिखलाओ ॥२२-२३॥

इति निर्बन्धतः स्थालीमानाय्य स यदूद्वहः ।
स्थाल्याः कण्ठेऽथ संलग्नं शाकान्नं वीक्ष्य केशवः॥

श्रीकृष्ण के बार २ आग्रह करने पर वह स्थाली को लेकर आई, तो श्री कृष्ण ने स्थाली के गले में लगा हुआ, अन्न-कण देखा ॥२४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयुज्याब्रवीदेनामनेन हरिरीश्वरः ।
विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्टश्चास्त्वितिय ज्ञभुक् ॥२५॥

इस अन्न के कण का भक्षण करके द्रौपदी से कहा—इस अन्न से भगवान्, हरि, विश्वात्मा, यज्ञभोक्ता, देव, तृप्त और सन्तुष्ट हो जावें ॥२५॥

आकारय मुनीन् शीघ्रं भोजनायेति चाब्रवीत् ।
भीमसेनं महाबाहुः कृष्णः क्लेशविनाशनः ॥२६॥

महाबाहु, क्लेशनाशक, श्रीकृष्ण, भीमसेन से बोले--अब तुम भोजन कराने को मुनियों को बुलाओ ॥२६॥

ततो जगाम त्वरितो भीमसेनो महायशाः ।
आकारितुन्तु तान् सर्वान् भोजनार्थं नृपोत्तम ॥२७॥
स्नातुं गतान् देवनद्यां दुर्वासःप्रभृतीन् मुनीन् ।

हे नृप ! महायशस्वी, भीमसेन, बड़ी शीघ्रता से उन सब को भोजन के लिए बुलाने को गया, जो दुर्वासा आदि मुनि, गङ्गा पर स्नान को गये हुए थे ॥२७॥

ते चावतीर्णाः सलिले कृतवन्तोऽघमर्षणम् ॥२८॥
दृष्ट्वोद्गरान् सान्नरसान् तृप्त्या परमया युताः ।
उत्तीर्य्य सलिलात्तस्माद्दृष्टवन्तः परस्परम् ॥२९॥
दुर्वाससममिप्रेक्ष्य सर्वे ते मुनयोऽब्रुवन् ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये मुनि भी, जल में स्नान को उतरे और संध्या के अघमर्षण मन्त्र का जप करने लगे। अब इनके अन्न-रस के साथ उद्गार (डकारें) आने लगीं और ये अत्यन्त तृप्त से दिखाई पड़े। इन मुनियों ने जल से निकल कर एक दूसरे की ओर देखा और दुर्वासा की ओर देख कर कहा ॥२८-२९॥

राज्ञा हि कारयित्वान्नं वयं स्नातुं समागताः ॥३०
आकण्ठतृप्ता विप्रर्षि किंस्विद्भुञ्जामहे वयम् ।
वृथा पाकः कृतोऽस्माभिस्तत्र किं करवामहे ॥३१॥

हे मुने ! राजा से भोजन बनवा कर हम स्नान करने चले आए हैं। हे ब्रह्मर्षे ! हम तो कण्ठ तक भरे हुए हैं, अब क्या भोजन कर सकते हैं ? हमने व्यर्थ ही उनके भोजन तय्यार कराया। अब क्या करना चाहिए ॥३०-३१॥

दुर्वासा उवाच:—

वृथापाकेन राजर्षेरपराधः कृतो महान् ।
मास्मानधाक्षुर्दृष्ट्वैव पाण्डवाः क्रूरचक्षुषा ॥३२

दुर्वासा ने कहा--हमने वृथा ही पाक बनवाया। यह तो राजर्षि का एक बड़ा अपराध किया है। इस अपराध के कारण, क्रूरदृष्टि से कहीं पाण्डव, हमको भस्म न कर डालें ॥३२॥

स्मृत्वानुभावं राजर्षेरम्बरीषस्य धीमतः ।
बिभेमि सुतरां विप्रा हरिपादाश्रयाज्जनात् ॥३३॥

हे विप्रो ! मैं बुद्धिमान्, राजर्षि अम्बरीषका चरित्र सुनकर भगवद्भक्त पुरुष से बड़ा ही डरता हूं ॥३३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाण्डवाश्च महात्मानः सर्वे धर्म्मपरायणाः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च व्रतिनस्तपसि स्थिताः ॥३४॥
सदाचाररता नित्यं वासुदेवपरायणाः ।
क्रुद्धास्ते निर्दहेयुर्वै तूलराशिमिवानलः ।
तत एतानदृष्ट्वैव शिष्याः शीघ्रं पलायत ॥३५॥

सारे पाण्डव, महात्मा और धर्मात्मा हैं। ये सब, शूर, वीर, विद्वान्, व्रतशील और तपस्वी हैं, ये यदि कुपित हो गये तो रुई को अग्नि की तरह हमको भस्म कर डालेंगे। हे शिष्यो ! इसलिये तुम इनको विना दिखाई दिए ही भाग चलो ॥३४-३५॥

वैशम्पायन उवाच:--

इत्युक्तास्ते द्विजाः सर्वे मुनिना गुरुणा तदा ।
पाण्डवेभ्यो भृशं भीता दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥३६॥

वैशम्पायन बोले---अपने गुरु दुर्वासा मुनि के इतना कहने पर सारे शिष्य ब्राह्मण, पाण्डवों से अत्यन्त भयभीत होकर दशों दिशाओं को भाग गए ॥३६॥

भीमसेनो देवनद्यामपश्यन्मुनिसत्तमान् ।
तीर्थेष्वितस्ततस्तस्या विचचार गवेषयन् ॥३७॥

भीमसेन ने गङ्गा पर उन मुनिराजों को देखा तथा गङ्गा जी के इधर उधर के तीर्थ स्थानों पर खोज की ॥३७॥

तत्रस्थेभ्यस्तापसेभ्यः श्रुत्वा तांश्चैव विद्रुतान् ।
युधिष्ठिरमथाभ्येत्य तं वृत्तान्तं न्यवेदयत् ॥३८॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन तीर्थों में रहनेवाले तापसों से उनके भाग जाने का समाचार सुनकर भीमसेन ने यह सारा वृतान्त राजा युधिष्ठिर को आकर सुनाया ॥३८॥

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे प्रत्यागमनकाङ्क्षिणः ।
प्रतीक्षन्तः कियत्कालं जितात्मानोऽवतस्थिरे ॥३९॥

कुछ देर तक सारे पाण्डवों को उनके लौटा आने का सन्देह रहा, इससे उन्होंने धैर्य-पूर्वक कुछ काल तक इनकी बड़ी प्रतीक्षा की ॥३९॥

निशीथेऽभ्येत्य चाकस्मादस्मान् स छलयिष्यति ।
कथञ्च निस्तरेमास्मात् कृच्छ्राद्दैवोपसादितात्॥४०॥

यह दुर्वासा आधी रात में अचानक आकर शायद हमसे छल करेगा। अब इस दैव की लाई हुई विपत्ति से कैसे छुटकारा पा सकते हैं ॥४०॥

इति चिन्तापरान् दृष्ट्वा निश्वसन्तो मुहुर्मुहुः ।
उवाच वचनं श्रीमान् कृष्णः प्रत्यक्षताङ्गतः ॥४१॥

इस प्रकार चिन्ता करते और बार बार निःश्वास लेते हुए पाण्डवों को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष होकर बोले ॥४१॥

श्रीकृष्ण उवाच--

भवतामापदं ज्ञात्वा ऋषेः परमकोपनात् ।
द्रौपद्या चिन्तितः पार्था अहं सत्वरमागतः ॥४२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे पार्थे ! अत्यन्त कोप करने वाले दुर्वासा मुनि से आप लोगों पर विपत्ति आने की आशङ्का करके द्रौपदी ने मुझे याद किया, इसीसे मैं दौड़ा हुआ आया हूं ॥४२॥

न भयं विद्यते तस्माद्दुर्वाससोऽल्पकम् ।
तेजसा भवतां भीतः पूर्वमेव पलायितः ॥४३॥

अब तुमको दुर्वासा-ऋषि से थोड़ा भी भय नहीं रहा है। वह तो तुम लोगों के तेज से भयभीत होकर पहिले ही भाग निकला है ॥४३॥

धर्मनित्यास्तु ये केचिन्न ते सीदन्ति कर्हिचित् ।
आपृच्छे वो गमिष्यामि नियतं भद्रमस्तु वः ॥४४॥

जो मनुष्य नित्य धर्म में परायण रहते हैं, वे पीड़ित नहीं होते हैं। अब मैं तुमसे विदा लेकर जाना चाहता हूं, तुम्हारा निश्चित रूप से कल्याण हो ॥४४॥

वैशम्पायन उवाच —

श्रुत्वैरितं केशवस्य बभूवुः स्वस्थमानसाः ।
द्रौपद्या सहिताः पार्थास्तमूचुर्विगतज्वराः ॥४५॥

वैशम्पायन बोले—श्रीकृष्ण के वचन सुन कर द्रौपदी के सहित पाण्डव, बड़े सन्तुष्ट और क्लेश से रहित हुए श्रीकृष्ण से कहने लगे ॥४५॥

त्वया नाथेन गोविन्द दुस्तरामापदं विभो ।
तीर्णाः प्लवमिवासाद्य मज्जमाना महार्णवे ॥४६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे गोविन्द ! आपके सहायक होने से ही हम इस दुस्तर विपत्ति से पार हो सके हैं--जैसे बड़े भारी समुद्र में डूबता हुआ पुरुष, नौका से उत्तीर्ण हो जाता है ॥४६॥

स्वस्ति साधय भद्रन्ते इत्याज्ञातो ययौ पुरीम् ।
पाण्डवाश्च महभाग द्रौपदीसहिताः प्रभो ॥४७॥
ऊषुः प्रहृष्टमनसो विहरन्तो वनाद्वनम् ।

अच्छी बात है—आप पधारो। इस प्रकार आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण, अपनी द्वारकापुरी को चल दिए। हे महाभाग ! प्रभो ! द्रौपदी के साथ पाण्डव, एक वन से दूसरे वन में विहार करते हुए, प्रसन्न मन से काम्यकवन में निवास करने लगे ॥४७॥

इति तेऽभिहितं राजन् यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥४८॥
एवं विधान्यलीकानि धार्त्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः ।
पाण्डवेषु वनस्थेषु प्रयुक्तानि वृथाभवन् ॥४९॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि
कृष्णगमने द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६२॥

हे राजन् ! इस समय जो तुमने पूछा था, वह कह दिया गया। इस प्रकार दुरात्मा, धृतराष्ट्र पुत्रों ने पाण्डवों के वनवास-काल में अनेक मिथ्या, छलपूर्ण व्यवहार किए, परन्तु वे सब वृथा ही होते चले गए ॥४८-४९॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत द्रौपदीहरणपर्व में श्रीकृष्ण के गमन का दो सौ बावनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ तेरसठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तस्मिन् बहुमृगेऽरण्ये अटमाना महारथाः ।
काम्यके भरतश्रेष्ठा विजहुस्ते यथामराः ॥१॥

वैशम्पायन बोले--हे राजन् ! बहुत से वनैले जन्तुओं से भरे हुए काम्यक वन में घूमते हुए, भरत-वंश-श्रेष्ठ पाण्डव, देवों की तरह निवास कर रहे थे ॥१॥

प्रेक्षमाणा बहुविधान् वनोद्देशान् समन्ततः ।
यथर्त्तुकालरम्याश्च वनराजीः सुपुष्पिताः ॥२॥
पाण्डवा मृगयाशीलाश्चरन्तस्तन्महद्वनम् ।
विजहुरिन्द्रप्रतिमाः कञ्चित् कालमरिन्दम ॥३॥

हे अरि-मर्दन ! ये इधर-उधर अनेक सुन्दर वन प्रदेश और ऋतुकाल के अनुसार पुष्पों से परिपूर्ण वन की पङ्क्ति देखते हुए तथा इस महावन में घूमते हुए, मृगयाशील, पाण्डव, कुछ समय तक इन्द्र के समान आनन्द से निवास करते रहे ॥२-३॥

ततस्ते यौगपद्येन ययुः सर्वे चतुर्दिशम् ।
मृगयां पुरुषव्याघ्रा ब्राह्मणार्थे परन्तपाः ॥४॥

एक दिन ये सारे पुरुषश्रेष्ठ, शत्रु-विजयी पाण्डव, ब्राह्मणों के निमित्त मृगया (शिकार) करने को एकदम वन में चारों ओर निकल गए ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदीमाश्रमे न्यस्य तृणबिन्दोरनुज्ञया ।
महर्षेर्दीप्ततपसो धौम्यस्य च पुरोधसः ॥५॥

ये तृण-बिन्दु और प्रदीप्त तप करने वाले, पुरोहित महर्षि धौम्य की आज्ञा से द्रौपदी को आश्रम में अकेली ही छोड़ गए॥ ५॥

ततस्तु राजा सिन्धूनां वार्द्धक्षत्रिर्महायशाः ।
विवाहकामः शाल्वेयान् प्रयातः सोऽभवत्तदा ॥६॥

इस समय सिन्धुदेश का राजा वृद्धक्षत्र, का पुत्र महायशस्वी जयद्रथ, विवाह की कामना से (बरात लेकर) शाल्वेय क्षत्रियों के यहां जा रहा था ॥६॥

महता परिबर्हेण राजयोग्येन संवृतः ।
राजभिर्बहुभिः सार्द्धमुपायात् काम्यकञ्च सः ॥७॥

इसने राजाओं के योग्य बहुत से वस्त्र-आभूषण धारण कर रखे थे तथा अनेक राजा, इसके साथ थे । यह इसी बीच में काम्यक वन में पहुंचा ॥७॥

तत्रापश्यत् प्रियां भार्य्यां पाण्डवानां यशस्विनीम् ।
तिष्ठन्तीमाश्रमद्वारि द्रौपदीं निर्जने वने ॥८॥

इसने यहां निर्जन वन में पाण्डवों की प्रियपत्नी, आश्रम के द्वार पर खड़ी हुई, यशस्विनी द्रौपदी को देखा ॥८॥

विभ्राजमानां वपुषा बिभ्रतीं रूपमुत्तमम् ।
भ्राजयन्तीं वनोद्देशं नीलाभ्रमिव विद्युतम् ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुन्दरी अपने शरीरसे चमक रही थी और बड़े उत्तम रूप को धारण किये हुए थी। इसने वन के भागों को नीले बादलों को विजली के तुल्य चमका रखा था ॥९॥

अप्सरा देवकन्या वा माया वा देवनिर्मिता ।
इति कृत्वाञ्जलिं सर्वे ददृशुस्तामनिन्दिताम् ॥१०॥

यह अप्सरा है या देव कन्या है, या देवों की रची हुई कोई माया है। इस प्रकार सोचते हुए सारे राजा, हाथ जोड़कर इस सुन्दरी के पास पहुंचे ॥१०॥

ततः स राजा सिन्धूनां वार्द्धक्षत्रिर्जयद्रथः ।
विस्मितस्त्वनवद्याङ्गीं दृष्ट्वा तां दुष्टमानसः ॥११॥

इसके बाद सिन्धु देश का राजा वृद्धक्षत्र का पुत्र जयद्रथ, इस सर्वाङ्ग-सुन्दरी द्रौपदी को देखकर चकित हो गया और इसका मन दूषित हो गया ॥११॥

स कोटिकास्यं राजानमब्रवीत् काममोहितः
कस्य त्वेषानवद्याङ्गी यदि वापि न मानुषी ॥१२॥

यह काम से मोहित होकर राजा कोटिकास्य से बोला, कि यह श्रेष्ठ अङ्गोंवाली किसकी स्त्री है। यह तो मनुष्य नहीं कोई देवकन्या प्रतीत होती है ॥१२॥

विवाहार्थो न मे कश्चिदिमां प्राप्यातिसुन्दरीम् ।
एतामेवाहमादाय गमिष्यामि स्वमालयम् ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो इस अत्यन्त सुन्दरी को प्राप्त कर सकूं, तो फिर मुझे विवाह करने की ही क्या आवश्यकता है, इसलिए मैं इसको लेकर अपने घर को जाता हूं ॥१३॥

गच्छ जानीहि सौम्येनां कस्य वात्र कुतोऽपि वा ।
किमर्थमागता सुभ्रूरिदं कण्टकितं वनम् ॥१४॥

हे सौम्य ! तुम जरा जाओ और यह पता लगा लाओ, कि यह सुन्दर भृकुटी वाली किसकी स्त्री कहां से और क्यों इस कांटों से भरे हुए वन में आई है ॥१४॥

अपि नाम वरारोहा मामेषा लोकसुन्दरी ।
भजेदद्यायतापाङ्गी सुदती तनुमध्यमा ॥१५॥
अप्यहं कृतकामः स्यामिमां प्राप्य वरस्त्रियम् ।
गच्छ जानीहि को न्वस्या नाथ इत्येव कोटिक ॥१६॥

वरारोहा, विशाल नेत्रप्रान्त धारण करने वाली, पतली कमर और सुन्दर दांतों वाली, यह लोकसुन्दरी, जो मुझे स्वीकार कर ले, तो इस सर्वोत्तम कामिनी को पाकर मैं कृतार्थ हो जाऊं । हे कोटिक ! अब तुम जाकर प्रथम यह पता लगाओ, कि इसका पति कौन है ॥१५-१६॥

स कोटिकास्यस्तच्छ्रुत्वा रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली ।
उपेत्य पप्रच्छ तदा क्रोष्टा व्याघ्रवधूमिव ॥१७॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि कोटिकास्यप्रश्ने त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुनकर कुण्डलधारी कोटिकास्य रथ से उतरा और सिंहनी से गीदड़ की तरह द्रौपदी के पास जाकर पूछने लगा॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत द्रौपदीहरणपर्व में कोटिकास्य के द्रौपदी के प्रश्न करने का दो सौ तरेसठवां अध्याय समाप्त हुआ।

****

दो सौ चौसठवां अध्याय

कोटिकास्य उवाच—

कात्वंकदम्बस्यविनाम्य शाखामेकाश्रमेतिष्ठसिशोभमाना।
देदीप्यमानाग्निशिखेव नक्तंव्याधूयमाना पवनेन सुभ्रूः॥१॥

कोटिकास्य कहने लगा—हे सुन्दर भौंहों वाली! कदम्ब वृक्ष की शाखा को झुकाकर पकड़े हुए अकेली आश्रम में खड़ी हुई तुम कौन हो? रात में पवन से प्रज्वलित की हुई देदीप्यमान अग्नि की ज्वाला के समान तुम तो सुशोभित हो रही हो॥१॥

अतीव रूपेण समन्विता त्वं न चाप्यरण्येषु बिभेषि किन्नु
देवीनु यक्षीयदि दानवी वा वराप्सरा दैत्यवराङ्गनावा॥२॥
वपुष्मती वोरगराजकन्या वनेचरी वा क्षणदाचरस्त्री।
यद्वेव राज्ञो वरुणस्य पत्नी यमस्य सोमस्य धनेश्वरस्य॥३॥
धातुर्विधातुः सवितुर्विभोर्वा शक्रस्य वा त्वं सदनात् प्रपन्ना
नह्येव नः पृच्छसि ये वयं स्मनचापि जानीम तवेह नाथम्॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम तो अत्यन्त रूप से समन्वित हो। क्या तुमको इस वन में डर नहीं लगता है? तुम देवी, यक्षपत्नी, दानवी, सर्वश्रेष्ठ अप्सरा हो या दैत्याङ्गना हो। शरीर धारण कर के कोई उरग कन्या आई हो या वनदेवकन्या हो या किसी राक्षसकी स्त्री हो। क्या तुम राजा वरुण, यम, सोम, कुबेर में से किसी देवता की पत्नी तो नहीं हो? मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है, कि तुम ब्रह्मा, कश्यप, सविता, विष्णु, शक्र आदि किसी देव के घर से यहाँ चली आई हो। तुम न तो यही पूछती हो, कि हम कौन आये हैं और न हम यही जान सके हैं: कि तुम्हारा पति कौन है ॥२-४॥

वयं हि मानं तव वर्द्धयन्तः पृच्छाम भद्रे प्रभवं प्रभुञ्च।
आचक्ष्व बन्धूंश्च पतिं कुलञ्च तत्त्वेन यच्चेह करोषि कार्य्यम्

हे भद्रे! हम तुम्हारा मान बढ़ाने को ही यह पूछ रहे हैं, कि तुम किसकी पुत्री और किसकी वधू हो। अब तुम अपने बन्धु-बान्धव, पति और कुल का पता ठीक २ बताओ और जो कुछ कार्य यहां करती हो, वह भी कहो ॥५॥

अहन्तु राज्ञः सुरथस्य पुत्रो यं कोटिकास्येति विदुर्मनुष्याः।
असौ तु यस्तिष्ठति काञ्चनाङ्गे रथे हुतोऽग्निश्चयने यथैव
त्रिगर्त्तराजः कमलायताक्षः क्षेमङ्करो नाम स एष वीरः।
अस्मात् परस्त्वेष मद्बाधनुष्मान् पुत्रः कुलिन्दाधिपतेवरिष्टः

मैं तो राजा सुरथ का पुत्र हूं और मेरा नाम कोटिकास्य है-यह सब मनुष्य जानते हैं और जो वेदी में प्रदीप्त हुई अग्नि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदृश देदीप्यमान सुवर्ण के रथ में बैठा है- जिसकी कमल के समान बड़ी २ आंखे हैं, यह त्रिगर्त देश का राजा वीर सुशर्मा है। इसके आगे जो बड़ा भारी धनुष धारण किये हुए है-यह कुलिन्दाधिपति का सुयोग्य पुत्र है। यह भी आँखे फाड़कर तेरी ओर ही देख रहा है। जो बड़ा प्रसन्न, सुन्दर और पर्वत-वासी है ॥६-७॥

निरीक्षते त्वां विपुलायताक्षः सुपुष्पितः पर्वतवासनित्यः।
असौ तु यः पुष्करिणीसमीपे श्यामो युवा तिष्ठति दर्शनीयः
इक्ष्वाकुराज्ञः सुबलस्य पुत्रः स एष हन्ता द्विषतां सुगात्रि।

हे सर्वाङ्गसुन्दरी! यह जो पुष्करिणी (तलाई) के समीप श्यामवर्ण का सुन्दर युवा राजकुमार खड़ा है, यह इक्ष्वाकुराज सुबल का पुत्र है, जो शत्रुओं का विजेता है॥८॥

यस्यानुयात्रा ध्वजिनः प्रयान्ति सौवीरका द्वादश राजपुत्राः
शोणाश्वयुक्तेषु रथेषु सर्वे मखेषु दीप्ता इव हव्यवाहाः।
अङ्गारकः कुञ्जरो गुप्तकश्च शत्रुञ्जयः सृञ्जयसुप्रवृद्धौ ॥१०॥
भयङ्करोऽथ भ्रमरो रविश्च शूरः प्रतापः कुहनश्च नाम।
यं षट्सहस्रा रथिनोऽनुयान्ति नागा हयाश्चैव पदातिनश्च ॥
जयद्रथो नाम यदि श्रुतस्ते सौवीरराजः सुभगे स एषः।
तस्यापरे भ्रातरोऽदीनसत्वा बलाहकानीकविदारणाद्याः ॥
सौवीरवीराः प्रवरा युवानो राजानमेते बलिनोऽनुयान्ति।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके पीछे ध्वजा लेकर बारह, सौवीर (गुजराती) राजकुमार चलते हैं, जो लाल घोड़ों वाले रथों में यज्ञों में प्रदीप्त अग्नि के समान चमक रहे हैं। इनके अङ्गारक, कुञ्जर, गुप्तक, शत्रुञ्जय, सृञ्जय, सुप्रबुद्ध, भयङ्कर, भ्रमर, रवि, शूर, प्रताप, कुहन ये नाम हैं। हे सुभगे! जिसके पीछे छः हज़ार रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सिपाही चल रहे हैं, यह सौवीर देश का राजा जयद्रथ है, जिसको तू ने भी सुना होगा। जो अन्य महाबली वीर दिखाई दे रहे हैं, ये बलाहक, अनीक, विदारण आदि इस जयद्रथ के भाई हैं। ये सौवीर देश के श्रेष्ठ वीर और नवयुवक हैं, जो महाबली इसी राजा जयद्रथ के अनुयायी हैं ॥९-१२॥

एतैः सहायैरुपयाति राजा मरुद्गणैरिन्द्र इवाभिगुप्तः। अजानतां ख्यापय नः सुकेशिकस्यासिभार्य्या दुहिताच कस्य इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि कोटिकास्यप्रश्ने चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६४॥

राजा जयद्रथ, देवों से सुरक्षित इन्द्र की तरह इन वीरों के साथ ही सदा यात्रा करता है। हे सुन्दर केशों वाली! हम तुमको नहीं जानते हैं, इससे तुम बताओ, कि तुम किसकी भार्या और पुत्री हो ॥१३॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत द्रौपदीहरणपर्व में कोटिकास्य के प्रश्न का दो सौ चौसठवां अध्याय पूरा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ पैंसठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अथाब्रवीद्द्रौपदी राजपुत्री पृष्टा शिबीनां वरेण ह्रीणतेन ।
अवेक्ष्य मन्दं प्रविमुच्य शाखां संगृह्णती कौशिकमुत्तरीयम्

वैशम्पायन बोले--हे राजन् ! शिबिवंशश्रेष्ठ, कोटिकास्य के प्रश्न करने पर राजपुत्री द्रौपदी संकोच के साथ देख कर और कदम्ब की शाखा को छोड़कर तथा अपने कौशिक (रेशमी) वस्त्रों का पल्ला पकड़ कर बोली ॥१॥

बुद्ध्याभिजानामि नरेन्द्रपुत्र न मादृशी त्वामभिभाष्टुमर्हति
न त्वेव वक्तास्ति तवेह वाक्यमन्यो नरो वाप्यथ वापि नारी

मैं अपनी बुद्धिसे अनुमान करचुकी हूं, कि तुम कोई राजपुत्र हो, परन्तु मुझ जैसी स्त्री का तुमसे बातचीत करना उचित नहीं है । इस स्थान पर इस समय तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देने वाला कोई अन्य पुरुष या स्त्री नहीं है ॥२॥

एका ह्यहं सम्प्रति तेन वाचं ददानि वै भद्र निबोध चेदम् ।
अहं ह्यरण्ये कथमेकमेका त्वामालपेयं निरता स्वधर्मे ॥३॥
जानामि च त्वां सुरथस्य पुत्रं यं कोटिकास्येतिविदुर्मनुष्याः
तस्मादहं शैब्य तथैव तुभ्यमाख्यामि बन्धून् प्रथितं कुलञ्च

हे भद्रे ! मैं यहां अकेली हूं, इससे मैं ही तुमको कुछ बता देती हूं । तुम इसको समझ लेना । मैं धर्म का आचरण करने वाली स्त्री, अकेली होकर भी तुम अकेले से क्यों बात कर रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूं। मैं तुमको जानती हूं, कि तुम सुरथ के पुत्र कोटिकास्य हो। जिसे सब मनुष्य जानते हैं। हे शैव्य! इसी से मैं तुमको अपने बन्धु और प्रसिद्ध कुल का वृत्तान्त सुनाती हूं ॥३-४॥

अपत्यमस्मि द्रुपदस्य राज्ञः कृष्णेति मां शैव्य विदुर्मनुष्याः
साहं वृणे पञ्च जनान् पतित्वे ये खाण्डवप्रस्थगताः श्रुतास्ते

हे शैव्य! मैं राजा द्रुपद की पुत्री हूं और मेरा नाम कृष्णा है, यह सब जानते हैं। मैंने पांच पाण्डवों को पति रूप से वरण किया है, जो खाण्डवप्रस्थ के निवासी हैं-उनको तुमने भी सुना होगा ॥५॥

युधिष्ठिरो भीमसेनार्जुनौ च माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ ।
ते मां निवेश्येह दिशश्चतस्रो विभज्य पार्था मृगयां प्रयाताः

राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव इन पुरुष-श्रेष्ठों के नाम हैं। मुझे यहां छोड़कर वे पाण्डव, चारों दिशाओं को बांटकर मृगया करने चले गए हैं ॥६॥

प्राचीं राजा दक्षिणां भीमसेनो जयः प्रतीचीमर्जुनमुदीचीम्
मन्ये तु तेषां रथसत्तमानां कालोऽभितः प्राप्त इहोपयातुम्

पूर्व दिशा में राजा युधिष्ठिर, दक्षिण में भीमसेन, पश्चिम में अर्जुन और उत्तर में नकुल सहदेव गए हैं। मैं तो समझ रही हूं, कि उन उत्तम रथ वाले पाण्डवों का यह लौटने का ही समय है ॥७॥

सम्मानिता यास्यथ तैर्यथेष्टं विमुच्य वाहानवरोहयध्वम् ।
प्रियातिथिर्धर्मसुतो महात्मा प्रीतो भविष्यत्यभिवीक्षयुष्मान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तुम अपने २ वाहनों को खोलकर उतर जाओ और उनसे अतिथि सत्कार प्राप्त करके चले जाना। महात्मा धर्मराज को अतिथि बड़े प्रिय प्रतीत होते हैं। वह तुम लोगों को देखकर बड़ा प्रसन्न होगा ॥८॥

एतावदुक्त्वा द्रुपदात्मजा सा शैब्यात्मजं चन्द्रमुखी प्रतीता विवेश तां पर्णशालां प्रशस्तां सञ्चिन्त्य तेषामतिथित्वधर्मम्

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि द्रौपदीवाक्ये पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६५॥

शिबिवंशोत्पन्न कोटिकास्य से इतना कह कर चन्द्रमा के समान मुखवाली प्रसन्न द्रौपदी, अपनी सुन्दर पर्णकुटी में घुस गई। इसने अतिथि धर्म के ध्यान से ही इतनी बात-चीत की थी ॥९॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत द्रौपदीहरणपर्व में द्रौपदी वाक्य का दो सौ पैसठवां अध्याय समाप्त हुआ

* * * *

दो सौ छियासठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच:—

तथासीनेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ।
यदुक्तं कृष्णया साद्धं तत् सर्वं प्रत्यवेदयत् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! जहां पर वे सारे राजा बैठे हुए थे, वहां पर यह कोटिकास्य पहुंचा और पहुंचकर जो द्रौपदी ने कहा था, वह सब कुछ सुना दिया ॥१॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोटिकास्यवचः श्रुत्वा शैब्यं सौवीरकोब्रवात् ।
यदा वाचं व्याहरन्त्यामस्यां मे रमते मनः ॥२॥
सीमन्तिनीनां मुख्यायां विनिवृत्तः कथं भवान् ।
एतां दृष्ट्वा स्त्रियो मेऽन्या यथा शाखामृगस्त्रियः ३
प्रतिभान्ति महाबाहो सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
दर्शनादेवं हि मनस्तया मेऽपहृतं भृशम् ।
तां समाचक्ष्व कल्याणीं यदि स्यात् शैब्य मानुषी ॥४

कोटिकास्य के वचन सुनकर राजा जयद्रथ उस शैब्य से बोला । यह सुन्दरी जब तुम से बातचीत कर रही थी, तब मेरा मन उसकी ओर बलपूर्वक खिंचा जा रहा था। तुम सुन्दर स्त्रियों में श्रेष्ठ, इस स्त्री को छोड़कर कैसे लौट आए। इस को देखकर अन्य स्त्रिय मुझे बानरी सी प्रतीत होती हैं। हे महाबाहो ! यह मैं तुमसे सत्य कह रहा हूं। इसके तो देखने से ही मेरा मन बहुत ही खिंचता चला गया। हे शिविवंशोत्पन्न ! राजकुमार ! यदि वह मानुषी है, तो उस कल्याणी के विषय में मुझे सारा वृत्तान्त सुनाओ ॥२-४॥

कोटिकास्य उवाचः—

एषा वै द्रौपदी कृष्णा राजपुत्री यशस्विनी ।
पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां महिषी सम्मता भृशम् ॥५॥

कोटिकास्य ने कहा--हे राजन ! यह द्रुपदराज की पुत्री यशस्विनी कृष्णा है। यह पांचों पाण्डवों की अत्यन्त प्रिय महिषी है ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वेषाञ्चैव पार्थानां प्रिया बहुमता सती ।
तया समेत्य सौवीर सौवीराभिमुखो व्रज ॥६॥

यह सारे पाण्डवों की प्रिय और बहु सम्मानित सती स्त्री है। हे सौवीर, तुम इसको साथ लेकर अपने सौवीर (सिन्धु देश) देश को चले जाओ ॥६॥

वैशम्पायन उवाच:--

एवमुक्तः प्रत्युवाच पश्यामि द्रौपदीमिति ।
पतिः सौवीरसिन्धूनां दुष्टभावो जयद्रथः ॥७॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इस प्रकार कहने पर सौवीर (गुजरात) और सिन्धुदेश के स्वामी राजा जयद्रथ ने दुष्टभाव से कहा—मैं इस द्रौपदी को देखना चाहता हूं ॥७॥

स प्रविश्याश्रमं पुण्यं सिंहगोष्ठं वृको यथा ।
आत्मना सप्तमः कृष्णामिदं वचनमब्रवीत् ॥८॥

यह सिंह के भिट्टे में वृक (एक प्रकार के गीदड़) की भांति पाण्डवों के आश्रम में पहुंचा। इसके साथ छः अन्य राजकुमार थे। यह द्रौपदी से इस प्रकार कहने लगा ॥८॥

कुशलन्ते वराराहे भर्त्तारस्तेऽप्यनामयाः ।
येषां कुशलकामासि तेऽपि कच्चिदनामयाः ॥९॥

हे सुन्दरि ! तेरे भर्ता तो कुशल से हैं तथा जिनकी तुम कुशल चाहती हो, वे सब कुशलता से तो हैं ॥९॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपद्युवाच—

अपि ते कुशलं राज्ये राष्ट्रे कोषे बले तथा ।
कच्चिदेकः शिबीनाढ्यान् सौवीरान् सह सिन्धुभिः ।
अनुतिष्ठसि धर्मेण ये चान्ये विदितास्त्वया ॥१०॥

द्रौपदी बोली— हे राजन् ! तुम्हारे राज्य, राष्ट्र, कोष, सेना में कुशल तो है । तुम अकेले ही, समृद्धिशाली शिवि वंशी, क्षत्रिय सिन्धु देश के साथ सौवीर देश तथा अन्य शासन में आये हुए देशों का पालन तो धर्म के साथ करते रहते हो ॥१०॥

कौरव्यः कुशली राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः
अहञ्च भ्रातरश्चास्य यांश्चान्यान् परिपृच्छसि ॥११॥

हे महाभाग ! कुरुवंशी, कुन्तीपुत्र, राजा युधिष्ठिर और इसके चारों भाई एवं मैं कुशल से हूं और जिन २ मेरे भाई आदि के विषय तुम पूछ रहे हो-वे सब प्रसन्न हैं । ॥११॥

पाद्यं प्रतिगृहाणेदमासनञ्च नृपात्मज ।
मृगान् पञ्चशतञ्चैव प्रातराशं ददानि ते ॥१२॥

हे राजकुमार ! यह पाद्य और शासन है, इसको ग्रहण करो और प्रातःकाल के भोजन (कलेवे) के लिए पांच सौ मृग ले लीजिए, मैं प्रदान करती हूं ॥१२॥

ऐणेयान् पृषतान् न्यङ्कून् हरिणान् शरभान् शशान् ।
ऋक्षान् रुरून् शम्बरांश्च गवयांश्च मृगान् बहून् ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वराहान्महिषांश्चैव याश्चान्या मृगजातयः ।
प्रदास्यति स्वयं तुभ्यं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१४॥

ऐणेय, पृषत, न्यङ्क, हरिण, शरभ, शशक ऋक्ष, रुरु, शम्बर, गवय, मृग, वराह, महिष आदि वनैले जन्तुओं को कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर आकर स्वयं देगा ॥१३-१४॥

जयद्रथ उवाच—

कुशलं प्रातराशस्य सर्वं मे दित्सितं त्वया ।
एहि मे रथमारोह सुखमाप्नुहि केवलम् ॥१५॥

जयद्रथ ने कहा—हे सुन्दरि ! हमारी सब तरह से कुशल है। प्रातःकाल का भोजन सब कुछ तुमने अर्पण कर दिया। अब तुम आओ और इस रथ में चढ़ जाओ, जिससे सब भाँति के सुख को प्राप्त कर सकोगी ॥१५॥

गतश्रीकान् हृतराज्यान् कृपणान् गतचेतसः ।
अरण्यवासिनः पार्थान्नानुरोद्धुं त्वमर्हसि ॥१६॥

पाण्डवों की राज्यलक्ष्मी नष्ट हो चुकी। उनका राज्य छीना गया। वे दीन अचेत हो रहे हैं। तुमको वनवासी पाण्डवों के साथ रहने का आग्रह नहीं करना चाहिए ॥१६॥

न वै प्राज्ञा गतश्रीकं भर्त्तारमुपयुञ्जते ।
युञ्जानमनुयुञ्जीत न श्रियः संक्षये वसेत् ॥१७॥

बुद्धिमती स्त्री, श्रीविहीन भर्ता का सहयोग नहीं देती है। जो लक्ष्मी से युक्त हो, उसके साथ सहयोग करे, लक्ष्मी के नष्ट हो जाने पर पति के पास नहीं रहना चाहिए ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रिया विहीना राष्ट्राच्च विनष्टाः शाश्वतीः समाः ।
अलन्ते पाण्डुपुत्राणां भक्त्या क्लेशमुपासितुम् ॥१८॥

जो लक्ष्मी से विहीन हो जाते हैं, वे अनन्त वर्ष के लिये राष्ट्र से नष्ट हो जाते हैं। तुमको पाण्डवों की भक्ति करके क्लेश नहीं उठाना चाहिए ॥१८॥

भार्य्या मे भव सुश्रोणि त्यजैनान् सुखमाप्नुहि ।
अखिलान् सिन्धुसौवीरानाप्नुहि त्वं मया सह ॥१९॥

हे सुन्दर नितम्बों वाली ! तू मेरी भार्या बन जा और इन पाण्डवों को छोड़ दे। तू इसी तरह सुख पा सकेगी। इस प्रकार मेरे साथ सारे सिन्धु देश और सौवीर देशों का आधिपत्य तुझे प्राप्त हो जावेगा ॥१९॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्ता सिन्धुराजेन वाक्यं हृदयकम्पनम् ।
कृष्णा तस्मादपाक्रामद्देशात् सभ्रकुटीमुखी ॥२०॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! ज्योंही सिन्धुराज जयद्रथ ने, हृदय के कंपाने वाले ये वचन कहे, त्योंही द्रौपदी घृणा के साथ अपनी भ्रकुटी सिकोड़ कर उस स्थान से चली गई ॥२०॥

अवमत्यास्य तद्वाक्यमाक्षिप्य च सुमध्यमा ।
मैवमित्यब्रवीत् कृष्णा लज्जस्वेति स सैन्धवम् ॥२१॥

इस सुन्दर भ्रकुटिवाली द्रौपदीने उसके वाक्य का बड़ा अपमान किया और आक्षेप करके कृष्णा जयद्रथ से बोली—तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे ऐसा न कहना तुमको ऐसा कहने में लज्जा (शर्म) आनी चाहिए ॥२१॥

सा काङ्क्षमाणा भर्तॄणामुपयातमनिन्दिता ।
विलोभयामास परं वाक्यैर्वाक्यानि युञ्जती ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि द्रौपदी वाक्ये षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६६॥

यह किसी प्रकार की भी निन्दा के अयोग्य द्रौपदी, अपने भर्ताओं के आगमन की इच्छा कर रही थी। यह उनके वाक्यों का उत्तर पर उत्तर देती हुई, उनको लुभाकर देर लगाने लगी ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत द्रौपदीहरणपर्व में द्रौपदी वाक्य का दो सौ छियासठवां अध्याय समाप्त हुआ।

* * * *

दो सौ सड़सठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

सरोषरागोपहतेन वल्गुना सरागनेत्रेण नतोन्नतभ्रुवा ।
मुखेन निस्फूर्य्य सुवीरराष्ट्रपं ततोऽब्रवीत्तं द्रुपदात्मजा पुनः

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! क्रोध से आई हुई लालिमा से कुछ मलिन और सुन्दर, लाल नेत्रों वाली, ऊंची नीची भौहों से युक्त, मुख की फूंक से भस्म सा करके द्रौपदी सौवीर (गुर्जरदेश) के अधिपति जयद्रथ से बोली ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशस्विनस्तीक्ष्णविषान्महारथानतिब्रुवन्मूढ़ न लज्जसे कथम्
महेन्द्रकल्पान्निरतान् स्वकर्मसुस्थितान्समूहेष्वपियक्षरक्षसाम्॥

अरे मूढ़ ! तू यशस्वी, तीक्ष्णविष (शक्ति) धारी, महारथी पाण्डवों का तिरस्कार करके भाषण करता हुआ कैसे लज्जित नहीं होता है। ये तो इन्द्र के तुल्य पराक्रमी तथा अपने कर्म में सावधान हैं एवं यक्ष और राक्षसों के साथ भी युद्ध में डट जाते हैं ॥२॥

न केचिदीड्यं प्रवदन्ति पापं वनेचरं वा गृहमेधिनं वा ।
तपस्विनं सम्परिपूर्णविद्यं भषन्ति हैवं श्वनराः सुवीर ॥

हे सुवीर ! धर्म के अनुसार आचरण करने से पूज्य, पूर्ण विद्या वाले तपस्वी, वनवासी, वानप्रस्थी या गृहस्थी को कोई भी मनुष्य, पापी कहने का साहस नहीं कर सकता है। हाँ ? तुझ जैसे कुत्ते के सदृश मनुष्य तो भूंसते ही रहते हैं ॥३॥

अहन्तु मन्ये तव नास्ति कश्चिदेतादृशे क्षत्रियसन्निवेशे ।
यस्त्वद्यपातालमुखे पतन्तं पाणौ गृहीत्वा प्रतिसंहरेत ॥४॥

मेरे खयाल में तो तेरे साथ के इस क्षत्रिय—समाज में कोई ऐसा वीर दृष्टि नहीं आता है, जो आज पाताल (अधःपतन) के मुखमें पड़ते हुए तुझे हाथ पकड़ कर बचा सकेगा ॥४॥

नागं प्रभिन्नं गिरिकूटकल्पमुपत्यकां हैमवतीं चरन्तम् ।
दण्डीव यूथादपसेधसे त्वं यो जेतुमाशंससि धर्मराजम्॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मद टपकाने वाले पर्वत के तुल्य आकारधारी, हिमालय के पर्वत प्रदेश में घूमने वाले हाथी को केवल लट्ठ हाथ में धारण करने वाला पुरुष अपने यूथसे जैसे दूर कर सकता है, उसी तरह तू भी धर्मराज के जीतने की इच्छा कर रहा है ॥५॥

बाल्यात् प्रसुप्तस्य महाबलस्य सिंहस्य पक्ष्माणि मुखाल्लुनासि
यदा समाहत्य पलायमानः क्रुद्धं यदा द्रक्ष्यसि भीमसेनम् ॥

तू आज सोते हुए, महाबली सिंह के मुख के बालो को उसके ठोकर मार कर अपनी मूर्खता से काटने की चेष्टा कर रहा है। जब वह मूर्ख, उस क्रुद्ध सिंह का मुख देखता है, तो भागने लगता है, वही दशा तेरी आज सिंह तुल्य पराक्रमी भीमसेन को देखकर होगी ॥६॥

महाबलं घोरतरं प्रवृद्धं जातं हरिं पर्वतकन्दरेषु ।
प्रसुप्तमुग्रं प्रपदेन हंसि यः क्रुद्धमायोत्स्यसि जिष्णुमुग्रम् ॥

महाबली, भयङ्कर, विशालकायधारी, पर्वत की कन्दरा के निवासी, सोते हुए मृगेन्द्र को तू पैर की ठोकरसे मारना चाहता है, जो कुपित महाबली अर्जुन से लड़ने की इच्छा कर रहा है ॥७॥

कृष्णोरगौ तीक्ष्णमुखौ द्विजिह्वौ मत्तः पदा क्रामसि पुच्छदेशे
यः पाण्डवाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्यां जघन्यजाभ्यां प्रयुयुत्ससे त्वम्

पुरुषों में श्रेष्ठ, सब से छोटे नकुल सहदेव से जो तू युद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है, इसका यही अर्थ है, कि तू पागल होकर तीक्ष्ण विषधारी, दो जिह्वाओं को लपलपाते हुए काले सर्पों की पूंछ को अपने पैर से कुचलना चाहता है ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा च वेणुः कदली नलो वा फलत्यभावाय न भूतये पुनः
तथैव मान्तैः परिरक्ष्यमाणामादास्यसे कर्कटकीव गर्भम्॥९

बांस, केला, नल, ये अपने नाश के लिए ही फलते हैं। इनका फल लाने से कल्याण नहीं होता है। इसी तरह उन वीरों से सुरक्षित मेरे अपहरणकी इच्छा करने वाला तू गर्भधारण करने वाली कर्कटी के सदृश नष्ट होता दिखाई दे रहा है॥९॥

जयद्रथ उवाच—

जानामि कृष्णे विदितंमयैतद्य था विधास्ते नरदेवपुत्राः।
न त्वेवमेतेन विभीषणेन शक्या वयं त्रासयितुं त्वयाद्य॥१०

जयद्रथ ने कहा---हे कृष्णे! मैं सब कुछ जानता हूँ। मुझे सब कुछ पता है, जैसे वे राजपुत्र पाण्डव हैं, परन्तु हम लोग तेरी इन विभीषिकाओं से डराने में नहीं आ सकते हैं॥१०॥

वयं पुनः सप्तदशेषु कृष्णे कुलेषु सर्वेऽनवमेषु जाताः।
षड्भ्योगुणोभ्योऽभ्यधिकाविहीनान्मन्यामहे द्रौपदिपाण्डुपुत्रान्

हे कृष्णे! हम लोग सारे आठ कर्म (दुर्ग सेतुरचना, गजबन्धन आदि) नव शक्ति (प्रभु, मंत्र, उत्साह का शक्ति, सिद्धि, उदय के साथ संयोग आदि) गुणों वाले उच्च कुलों में उत्पन्न हुए हैं। हे द्रौपदी! हम शौर्य तेज आदि क्षत्रिय के छः कर्म रूप गुणों में अधिक हैं और पाण्डवों को तुच्छ गिनते हैं॥११॥

सा क्षिप्रमातिष्ठ गजं रथं वा न वाक्यमात्रेण वयं हि शक्या
आशंस वा त्वं कृपणं वदन्ती सौवीरराजस्य पुनःप्रसादम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तुम हाथी या रथ पर शीघ्र चढ़ जाओ। हम लोग बातों के चक्करों में आने वाले नहीं हैं। यदि स्वयं रथ में नहीं चढ़ोगी, तो फिर दीनता के साथ चिल्लाती हुई, मुझ सौवीरपति के अनुग्रह की आकाङ्क्षा करोगी ॥१२॥

द्रौपद्युवाच—

महाबला किन्त्विह दुर्बलेव सौवीरराजस्य मताहमस्मि ।
नाहं प्रमाथादिह सम्प्रतीता सौवीरराजं कृपणं वदेयम्॥१३

द्रौपदी ने विचार किया—मैं महाबल वाली हूं, परन्तु इस सौवीरराज जयद्रथ को दुर्बल प्रतीत हो रही हूं। अब मैं इसके पकड़ लेने पर भी प्रसन्न ही रहूंगी और सौवीरराज से छोड़ने को कभी दीन वचन नहीं बोलूंगी ॥१३॥

यस्या हि कृष्णौ पदवीश्चरेतां समास्थितावेकरथे समेतौ ।
इन्द्रोऽपि तां नापहरेत् कथञ्चिन्मनुष्यमात्रः कृपणः कुतोऽन्यः

जिसके मार्ग को एक रथ में बैठकर दोनों कृष्ण और अर्जुन देखते हैं, इस पद को प्राप्त हुई मुझको इन्द्र भी नहीं हर सकता है, फिर कृपण (गरीब) मनुष्य की तो क्या चलाई है ॥१४॥

यथा किरीटी परवीरघाती निघ्नन्रथस्थो द्विषतां मनांसि ।
मदन्तरे त्वद्ध्वजिनीं प्रवेष्टा कक्षं दहन्नग्निरिवोष्णगेषु १५

शत्रुओं के वीरों का नाश करने वाला, रथ में स्थित, शत्रुओं के मन को भय करने वाला वीर अर्जुन जब मेरे निमित्त से तेरी सेना को घेरेगा तो ग्रीष्मकाल में कक्ष [घासके ढ़ेर वागर] को अग्नि की तरह तुम्हारी सेना को भस्म कर डालेगा ॥१५॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनार्दनः सान्धकवृष्णिवीरो महेष्वासाः कैकेयाश्चापि सर्वे
एते हि सर्वे मम राजपुत्राः प्रहृष्टरूपाः पदवीश्चरेयुः॥१६॥

अन्धक और वृष्णि वंश के वीरों से युक्त, श्रीकृष्ण, महा-धनुर्धर सारे कैकय-वंशी क्षत्रिय, तथा इनके सारे राजकुमार, प्रसन्नता-पूर्वक मेरे खोजने को चल पड़ेंगे ॥१६॥

मौर्वीविसृष्टा स्तनयित्नुघोषा गाण्डीवमुक्तास्त्वतिवेगवन्तः
हस्तं समाहत्य धनञ्जयस्य भीमाः शब्दं घोरतरं नदन्ति ॥

गाण्डीव धनुष की डोरी से निकले हुए, मेघके सदृश घोष करने वाले, अत्यन्त वेगवाला बाण, अर्जुन के हाथ से टकरा कर जब निकलेंगे, तो बड़ा भारी शब्द करेंगे ॥१७॥

गाण्डीवमुक्तांश्च महाशरौघान् पतङ्गसंघानिव शीघ्रवेगान्।
यदा द्रक्ष्यस्यर्जुनं वीर्य्यशालिनं तदा स्वबुद्धिं प्रति निन्दितासि

गाण्डीव से छोड़े हुए, शीघ्र उड़ने वाले पक्षियों के समूह के सदृश बड़े २ बाणों के समूह को छोड़ते हुए, पराक्रम-शाली जब वीर अर्जुन को देखेगा, तब तू अपनी बुद्धि की निन्दा करेगा॥१८

सशङ्खघोषः सतलत्रघोषो गाण्डीवधन्वा मुहुरुद्वहंश्च।
यदा शरानर्पयिता तवोरसि तदा मनस्ते किमिवाभविष्यत् ॥

गाण्डीव धनुष का धारी अर्जुन, शङ्ख और तलत्र (हाथ का चर्म का कवच) के शब्दों के साथ, बाणों को बार २ उठाकर जब तेरी छाती में प्रहार करेगा, तो उस समय तेरे मन की क्या दशा (हालत) होगी-यह कौन जान सकता है ॥१९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत चित्र संख्या ५०

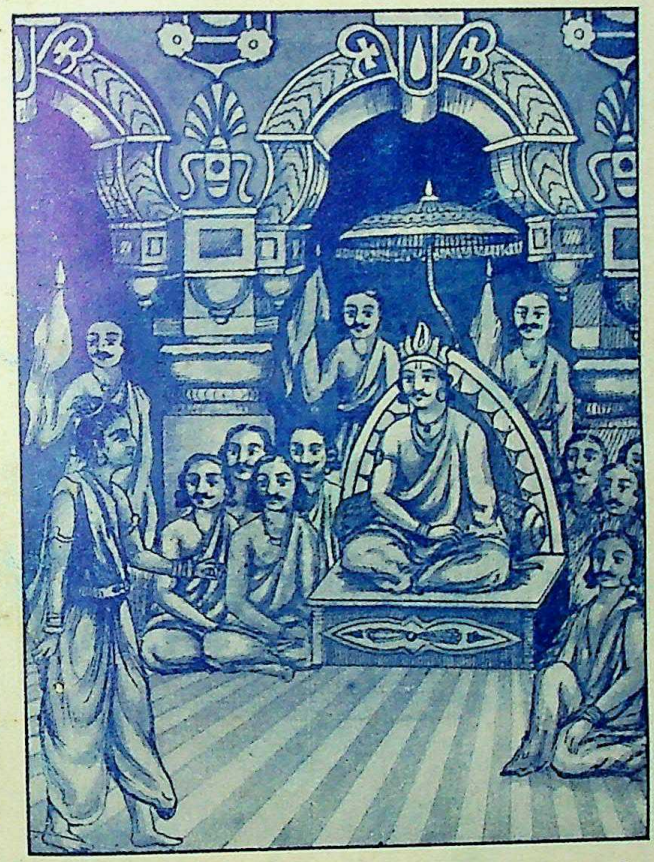

वीर अर्जुन का क्लीब (हिजड़े) का रूप धारण करके
महाराज विराट की सभा में प्रवेश करना
महा० विराटपर्व अ० ११।१

पृष्ठ ७६२

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गदाहस्तं भीममभिद्रवन्तं माद्रीपुत्रौ सम्पतन्तौ दिशश्च ।
अमर्षजं क्रोधविषं वमन्तौ दृष्ट्वा चिरं तापमुपैष्यसेऽधम ॥

अरे नीच ! गदा हाथ में लेकर दौड़ते हुए भीम और सामने से आते हुए तथा आवेश से उत्पन्न क्रोध रूपी विष को उगलते हुए नकुल और सहदेव को देखकर तू बड़ाही सन्ताप प्राप्त करेगा

यथा चाहं नातिचरे कथञ्चित् पतीन्महार्हान्मनसापि जातु
तेनाद्य सत्येन वशीकृतं त्वां द्रष्टास्मि पार्थैः परिकृष्यमाणम्

जो मैंने अपने पतियों का कभी मन से भी अपचार या अतिक्रमण नहीं किया हो, तो आजमें उसी सत्य के बल से पाण्डवों के बन्धन से खैंचे हुए तुझे देखना चाहती हूँ ॥२१॥

न सम्भ्रमं गंतुमहं हि शक्ये त्वया नृशंसेन विकृष्यमाणा
समागताहं हि कुरुप्रवीरैः पुनर्वनं काम्यकमागतास्मि २२

मैं तुझ कायर नीच से खैंची हुई भी भयभीत नहीं की जा सकती हूं, क्योंकि मैं कुरुवंश के वीरों से समन्वित हूं और उन्हीं के द्वारा इस काम्यक वन में लाई गई हूं ॥२२॥

वैशम्पायन उवाच---

सा ताननुप्रेक्ष्य विशालनेत्रा जिघृक्षमाणा न च भर्त्सयन्ती
प्रोवाच मा मा स्पृशतेति भीता धौम्यं प्रचुक्रोश पुरोहितं सा

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! विशाल नेत्र धारण करने वाली, द्रौपदी ने उनकी ओर देखा भी नहीं। उन्होंने इसको पकड़ लिया, परन्तु इस समय यह कोई भर्त्सना (फटकार) नहीं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे सकी। अब यह कुछ डर कर "मुझे न छुओं न छुओ" कहती हुई पुरोहित धौम्य को पुकारने लगी ॥२३॥

जग्राह तामुत्तरवस्त्रदेशे जयद्रथस्तं समवाक्षिपत् सा।
तया समाक्षिप्ततनुः स पापः पपात शाखीव निकृत्तमूलः॥

जयद्रथ ने इसे ऊपर के वस्त्र पहनने के स्थान कमरसे पकड़ कर उठा लिया, तो द्रौपदी ने झटका दिया। इसके आक्षेप से उसके शरीर ने ऐसा झटका खाया, कि वह जड़ से काटे हुए वृक्ष के सदृश भूमि पर गिर पड़ा। ॥२४॥

प्रगृह्यमाणा तु महाजवेन मुहुर्विनिश्वस्य च राजपुत्री।
सा कृष्यमाणा रथमारुरोह धौम्यस्य पादावभिवाद्य कृष्णा

इन्होंने बड़े बल के वेग से द्रौपदी को पकड़ ही लिया। अब राजपुत्री कृष्णा के शोकपूर्ण श्वास, निकलने लगे। यह खैंची हुई कृष्णा, धौम्य के चरणों को दूर से प्रणाम करती हुई, रथमें गिर गई ॥२५॥

धौम्य उवाच—

नेयं शक्या त्वया नेतुमविजित्य महारथान्।
धर्मं क्षत्रस्य पौराणमवेक्षस्व जयद्रथ ॥२६॥

धौम्य बोला--हे जयद्रथ! तुम महारथी पाण्डवों को विना जीते द्रौपदी को नहीं ले जा सकते हो। अरे दुष्ट, तुम्हें क्षत्रिय के पुराने धर्म का तो ध्यान रखना था॥२६॥

क्षुद्रं कृत्वा फलं पापं त्वं प्राप्स्यसि न संशयः।
आसाद्य पाण्डवान् वीरान् धर्मराजपुरोगमान् ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू इस क्षुद्र और पाप कर्म को करके धर्मराज आदि वीरों से इस दुष्कर्म का फल अवश्य भोगेगा -इसमें सन्देह नहीं है ॥२७॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्त्वा ह्रियमाणां तां राजपुत्रीं यशस्विनीम् ।
अन्वगच्छत्तदा धौम्यः पदातिगणमध्यगः ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि द्रौपदीहरणे सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! इतना कहकर अपहरण की हुई राजपुत्री, यशस्विनी द्रौपदी के पीछे, अनेक पैदल भागने वाले मनुष्यों के साथ धौम्य भी चल रहा था ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत द्रौपदीहरणपर्व में द्रौपदीहरण पर्व का दो सौ सड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

* * * *

दो सौ अड़सठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो दिशःसम्प्रविहृत्य पार्था मृगान् वराहान् महिषांश्च हत्वा
धनुर्धराः श्रेष्ठतमाः पृथिव्यां पृथक् चरन्तः सहिता बभूवुः॥

वैशम्पायन बोले— हे राजेन्द्र ! पृथक् २ दिशाओं में घूमकर और मृग, वराह, वनैले भैंसों को मारकर पृथिवी पर अत्यन्त श्रेष्ठ, धनुषधारी, सारे पाण्डव, इकट्ठे हो गये ॥१॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो मृगव्यालगणानुकीर्णं महावनं तद्विहगोपघुष्टम् ।
भ्रातॄंश्चतानभ्यवदद्युधिष्ठिरःश्रुत्वागिरोव्याहरतांमृगाणाम्

मृग, सर्प आदि के गणों से व्याप्त, पक्षियों के शब्दों से शब्दायमान, उस काम्यक वन में शब्द करते वनैले जीवों की वाणी सुनकर अपने भाइयों से राजा युधिष्ठिर कहने लगा ॥२॥

आदित्यदीप्तां दिशमभ्युपेत्य मृगा द्विजाःक्रूरमिमे वदन्ति
आयासमुग्रं प्रतिवेदयन्तो महावनं शत्रुभिर्बाध्यमानम् ॥

हे महाभागो! सूर्यसे दीप्त, पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके ये वन के जीव, जन्तु बुरी तरह चिल्ला रहे हैं। ये तो अपने बड़े क्लेश को सूचित कर रहे हैं। इनसे तो ऐसा ज्ञात होता है, कि शत्रुओं ने काम्यकवन पर धावा बोल दिया है ॥३॥

क्षिप्रं निवर्त्तध्वमलं मृगैर्नो मनो हि मे दूयति दह्यते च ।
बुद्धिं समाच्छाद्य च मे समन्युरुद्धूयते प्राणपतिः शरीरे ॥

तुम लोग शीघ्र लौटो-अब अन्य मृगों की आवश्यकता नहीं है। मेरा मन बड़ा दुःखी और जल रहा है। मेरी बुद्धि को आच्छादन करके क्रोध और शोक के साथ मेरा आत्मा शरीर में उछल सा रहा है ॥४॥

सरः सुपर्णेन हृतोरगं यथा राष्ट्रं यथाराजकमात्तलक्ष्मि ।
एवंविधं मे प्रतिभाति काम्यकं शौण्डैर्यथा पीतरसश्च कुम्भः ॥

गरुड़ द्वारा नाग के पकड़ लेने पर सरोवर, लक्ष्मी के अपहरण करने पर राजसमूह या राष्ट्र एवं हाथियों द्वारा पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीकर खाली किये हुए किसी दासी के घट के तुल्य, आज मुझे काम्यक वन दिखाई दे रहा है ॥५॥

ते सैन्धवैरत्यनिलोग्रवेगैर्महाजवैर्वाजिभिरुह्यमानाः ।
युक्तैर्बृहद्भिः सुरथैर्नृवीरास्तदाश्रमायाभिमुखा बभूवुः ॥६॥

ये महावीर पाण्डव, वायु के तुल्य वेगशील, सिन्धु देश के महावेगशील अश्वों से ले जाये हुए, बड़े २ उत्तम रथों से युक्त होकर अपने आश्रम की ओर चल पड़े ॥६॥

तेषान्तु गोमायुरनल्पघोषो निवर्त्ततां वाममुपेत्य पार्श्वम् ।
प्रव्याहरत्तत् प्रविमृश्य राजा प्रोवाच भीमञ्च धनञ्जयञ्च ॥

इन पाण्डवों के वाम पार्श्व से होकर चिल्लाता हुआ गीदड़ निकल गया । इस अपशकुन को सोच कर राजा युधिष्ठिर ने भीम और अर्जुन से कहा-॥७॥

यथा वदत्येष विहीनयोनिः शालावृको वा समुपेत्य पार्श्वम् ।
सुव्यक्तमस्मानवमन्य पापैः कृतोऽभिमर्दः कुरुभिः प्रसह्य ॥

यह क्षुद्रयोनि, गीदड़, हमारे वाम पार्श्व में आकर जो चिल्ला रहा है, इससे तो यही स्पष्ट सूचित होता है, कि हमारी अवहेलना करके पापी कौरवों ने बल-पूर्वक आश्रम पर छापा मारा है ॥८॥

इत्येव ते तद्वनमाविशन्तो महत्यरण्ये मृगयाञ्चरित्वा ।
बालामपश्यन्त तदा रुदन्तीं धात्रेयिकां प्रेष्यवधं प्रियायाः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विशाल वन में मृगया[शिकार]करके इस तरह बातचीत करते हुए पाण्डव काम्यक वन में प्रविष्ट हुए। वहां उन्होंने रोती हुई दास भार्या अपनी प्रिया द्रौपदी की धाय को घबरायी हुई देखा ॥९॥

तामिन्द्रसेनस्त्वरितोऽभिसृत्य रथादवप्लुत्य ततोऽभ्यधावत्।
प्रोवाच चैनां वचनं नरेन्द्र धात्रेयिकामार्त्ततरस्तदानीम् ॥ १० ॥

हे नरेन्द्र! इन्द्रसेन बड़ी शीघ्रता से उतरा और रथ से कूद-कर बड़े वेग से उसके पास पहुंचा। अत्यन्त व्याकुल हुआ इन्द्र-सेन, इस धाय से यह वचन कहने लगा ॥१०॥

किं रोदिषि त्वं पतिता धरण्यां किन्ते मुखं शुष्यति दीनवर्णम्
कच्चिन्नपापैः सुनृशंसकृद्भिः प्रमाथिता द्रौपदी राजपुत्री ॥११

हे बाले! तू धरती में लोट पोट होती हुई क्यों रो रही है। तेरा कातर मुख क्यों सूख गया है। क्या नीच कर्म करने वाले पापी कौरवों ने राजपुत्री द्रौपदी पर आक्रमण कर दिया ॥११॥

अचिन्त्यरूपा सुविशालनेत्रा शरीरतुल्या कुरुपुङ्गवानाम्।
यद्येव देवी पृथिवीं प्रविष्टा दिवं प्रपन्नाप्यथवा समुद्रम् ॥१२॥
तस्या गमिष्यन्ति पदं हि पार्था यथा हि सन्तप्यति धर्मपुत्रः

अत्यन्त रूपवती, बड़ी २ आंखों वाली, कुरु-वंश-श्रेष्ठ पाण्डवों के शरीर के तुल्य द्रौपदी देवी, यदि पृथिवी में भी प्रविष्ट हो गई तथा स्वर्गलोक या समुद्र में चली गई होगी, तो भी उसके पीछे पाण्डव वहीं जावेंगे, क्योंकि धर्मराज की चिन्ता से यही प्रतीत हो रहा है ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को हीदृशानामरिमर्दनानां क्लेशक्षमाणामपराजितानाम् ॥१३
प्राणैः समामिष्टतमां जिहीर्षेदनुत्तमं रत्नमिव प्रमूढः ।

वह कौन ऐसा मूर्ख निकल आया, जो अरि-विजयी क्लेश सहने वाले और कभी पराजित नहीं होने वाले ऐसे वीर पांडवों की प्राणों के समान प्रिय, सर्व श्रेठ रत्न के सदृश द्रौपदी का अपहरण करना चाहता है ॥१३॥

न बुध्यते नाथवतीमिहाद्य बहिश्चरं हृदयं पाण्डवानाम् ॥ १४॥
कोस्याद्यकायं प्रतिभिद्य घोरामहींप्रवेक्ष्यन्ति शिताःशराग्र्याः

वह मूर्ख यह भी नहीं जानता है, कि इसके स्वामी बड़े हैं। यह द्रौपदी तो पाण्डवों का बाहर घूमने वाला हृदय है आज किसकी देह को घोर तीक्ष्ण बाण, बींध कर पृथ्वी में घुस जाना चाहते हैं ॥१४

मा त्वं शुचस्तां प्रति भीरु विद्धि यथाद्य कृष्णा पुनरेष्यतीति॥
निहत्य सर्वान् द्विषतः समग्रान् पार्थाःसमेष्यन्त्यथ याज्ञसेन्या

हे भीरु! तुम द्रौपदी की चिन्ता न करो, वह तो अभी लौट आती है। पाण्डव सारे शत्रुओं को मार कर द्रौपदी के साथ अभी लौट आते हैं ॥१५॥

अथाब्रवीच्चारुमुखं विमृश्य धात्रेयिका सारथिमिन्द्रसेनम् ॥
जयद्रथेनापहृता प्रमथ्य पञ्चेन्द्रकल्पान् परिभूय कृष्णा ।

सुन्दर मुख वाले इन्द्रसेन सारथि को पहचान कर धाय कहने लगी—कि इन्द्र के सदृश पराक्रमी पांचों पण्डवों का अपमान करके जयद्रथ ने द्रौपदी का अपहरण किया है ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिष्ठन्ति वर्त्मानि नवान्यमूनि वृक्षाश्च न म्लान्ति तथैव भग्नाः
आवर्त्तयध्वं ह्यनुयात शीघ्रं न दूरयातैव हि राजपुत्री ।

यह नया बना मार्ग अभी ज्यों का त्यों है ! वे टूटे वृक्ष अभी मुरझाये नहीं हैं, तुम शीघ्र जाओ और उनको लौटा लाओ । अभी राजपुत्री दूर नहीं गई है ॥१७॥

सन्नह्यध्वं सर्व एवेन्द्रकल्पा महान्ति चारूणि च दंशनानि॥
गृह्णीत चापानि महाधनानि शरांश्च शीघ्रं पदवीश्चरध्वम् ।

इन्द्र के समान वीर पांचों पाण्डव, महान् उत्तम २ कवच धारण कर लो, अत्यन्त धन व्यय से बने हुए धनुष एवं बाण उठा लो और शीघ्र द्रौपदी के मार्ग को चले जाओ ॥१८॥

पुरा हि निर्भर्त्सनदण्डमोहिता प्रमोहचित्ता वदनेन शुष्यता॥
ददाति कस्मैचिदनर्हते तनुं वराज्यपूर्णामिव भस्मनि स्रुचम्

धमकाने या दण्ड से मोहित, सूखते हुए मुख से विकल, किसी अयोग्य को अपने शरीर अर्पण करने से पूर्व ही पहुंच जाओ । कहीं द्रौपदी, उत्तम घृत से पूर्ण सुचाको भस्म में डालने के सदृश अपने को अनुचित स्थान में न डाल दे ॥१९॥

पुरा तुषाग्नाविव हूयते हविः पुरा श्मशाने स्रगिवापविध्यते
पुरा च सोमोऽध्वरगोऽवलिह्यते शुना यथा विप्रजने प्रमोहिते
महत्यरण्ये मृगयाश्चरित्वा पुरा शृगालो नलिनीं विगाहते ॥
मा वः प्रियायाः सुनसं सुलोचनं चन्द्रप्रभाभं वदनं प्रसन्नम् ।
स्पृश्याच्छुभं कश्चिदकृत्यकारी श्वा वै पुरोडाशमिवाध्वरस्थम्
एतानि वर्त्मान्यनुयात शीघ्रं मा वः कालः क्षिप्रमिहात्यगाद्वै

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुष की अग्नि में हवि के हवन करने श्मशान में पुष्प माला पहनाने, ब्राह्मणों के मोहित होने पर यज्ञ में तय्यार की हुई, सोम को कुत्ते के चाटने, महावन में मृगया में आसक्त सिंह के होने पर शृगाल के कमलिनी को आलोडन करने से पूर्व ही तुम पहुंच जाओ, कहीं तुम्हारी प्रिया की सुन्दर नासिका,लोचन और चांदनी के समान स्वच्छ चमकीले मुख को यज्ञ में बने हुए पुरोडाश को कुत्ते की तरह कोई छू न ले। तुम इस मार्ग से शीघ्र जाओ। तुम्हारा समय यहां व्यतीत नहीं होना चाहिए।

युधिष्ठिर उवाच—

भद्रे प्रतिक्राम नियच्छ वाचं मास्मत्सकाशे परुषाण्यवोचः
राजानो वा यदि वा राजपुत्रा बलेन मत्ता वञ्चना प्राप्नुवन्ति

युधिष्ठिर बोले--हे भद्रे ! तुम यहाँ से हट जाओ और अपनी जिह्वा [जुबान] को बन्द करो। हमारे पास इतना कटु भाषण न करो। कोई राजा हो या राजपुत्र हो, जो अपने बल में उन्मत्त हो रहा होगा, वह हमसे वञ्चना (वध)ही प्राप्त करेगा ॥२३॥

वैशम्पायन उवाच--

एतावदुक्त्वा प्रययुर्हि शीघ्रं तान्येव वर्त्मान्यनुवर्त्तमानाः
मुहुर्मुहुर्व्यालवदुच्छ्वसन्तो ज्यां विक्षिपन्तश्च महाधनुर्भ्यः ॥२४

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इतना कहकर उसी मार्ग से वे सारे पाण्डव चल दिये। ये बार२ सर्पके समान श्वास ले रहे थे और अपने २ महा धनुषों की डोरी को बजा रहे थे ॥२४॥

ततोऽपश्यंस्तस्य सैन्यस्य रेणुमुद्धूतं वै वाजिखुरप्रणुन्नम्।
पदातीनां मध्यगतश्च धौम्यं विक्रोशन्तं भीममभिद्रवेति ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब इन्होंने अश्वोंके खुरों से उठी हुई इसकी सेना की रेणु देखी और पैदल सिपाहियों के मध्य में बुरी तरह "दौड़ो-दौड़ो" शब्द उच्चारण करते हुए धौम्य पुरोहित को देखा ॥२५॥

ते सान्त्व्य धौम्यं परिदीनसत्वाः सुखं भवानेत्विति राजपुत्राः
श्येना यथैवामिषसम्प्रयुक्ता जवेन तत्सैन्यमथाभ्यधावन् २६

ये चिन्तित मन वाले पाण्डव, धौम्य को सान्त्वना देकर कहने लगे--तुम सुखपूर्वक चले चलो। ये राजपुत्र पाण्डव, इतना कह कर श्येन [बाज] पक्षी की तरह जयद्रथ की सेना पर झपटे ॥२६॥

तेषां महेन्द्रोपमविक्रमाणां संरब्धानां धर्षणाद्याज्ञसेन्याः।
क्रोधः प्रजज्जाल जयद्रथश्च दृष्ट्वा प्रियां तस्य रथे स्थिताश्च ॥

महेन्द्र के समान पराक्रमी द्रौपदी के आक्रमण से कुपित पाण्डवों का क्रोध, जयद्रथ और उसके रथ में स्थित अपनी प्रिया द्रौपदी को देखकर उबल उठा ॥२७॥

प्रचक्रुशुश्चाप्यथ सिन्धुराजं वृकोदरश्चैव धनञ्जयश्च।
यमौ च राजा च महाधनुर्द्धरास्ततो दिशः संमुमुहुः परेषाम् ॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि पार्थागमने अष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥

अब भीम, महाधनुर्धर अर्जुन, नकुल, सहदेव और राजा युधिष्ठिर, जयद्रथ को ललकारने लगे। इनको देखकर शत्रुओं के छक्के छूट गए और वे दिशाओं को भूल गये ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत द्रौपदीहरणपर्व में पांडवों के आगमन दो सौ अड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ उनहत्तरवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो घोरतरः शब्दो वने समभवत्तदा ।
भीमसेनार्जुनौ दृष्ट्वा क्षत्रियाणाममर्षिणाम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! भीमसेन और अर्जुन को देखकर कुपित हुए क्षत्रियों का वन में महाघोर शब्द बढ़ने लगा ॥१॥

तेषां ध्वजाग्राण्यभिवीक्ष्य राजा स्वयं दुरात्मा कुरुपुङ्गवानाम्
जयद्रथो याज्ञसेनीमुवाच रथे स्थितां भानुमतीं हतौजाः॥२॥

उन कुरुवंशश्रेष्ठ, पाण्डवों की ध्वजाओं को देखकर दुरात्मा तेजहीन, राजा जयद्रथ रथ में स्थित, कान्तिमती द्रौपदी से कहने लगा ॥२॥

आयान्तीमे पञ्च रथा महान्तो मन्ये च कृष्णे पतयस्तवैते
सा जानती ख्यापय नः सुकेशि परं परं पाण्डवानां रथस्थम्

हे कृष्णे ! ये विशाल पांच रथ दौड़े आ रहे हैं, मुझे तो तुम्हारे पति प्रतीत होते हैं। हे सुन्दर केशोंवाली ! तुम इन्हें जानती हो, इसलिये रथ में बैठे हुए छोटे बड़े पाण्डवों का क्रम से परिचय कराओ ॥३॥

द्रौपद्युवाच—

किन्ते ज्ञातैर्मूढ़ महाधनुर्द्धरैरनायुष्यं कर्म्म कृत्वातिघोरम्
एते वीराः पतयो मे समेता न वः शेषः कश्चिदिहास्ति युद्धे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदी बोली---अरे मूढ़ ! तू अपने नाश का महाघोर कर्म करके अब इन महाधनुषधारियों को जानकर क्या करेगा। ये पांचों वीर, मेरे ही पति हैं। अब इस युद्ध में तेरी सेना में कोई भी शेष नहीं बच सकेगा ॥४॥

आख्यातव्यं त्वेव सर्वं मुमूर्षो मया तुभ्यं पृष्टया धर्म एषः।
न मे व्यथा विद्यते त्वद्भयं वा संपश्यन्त्याःसानुजंधर्मराजम्

हे मरणोन्मुख जयद्रथ ! अब तूने मुझसे पूछा है-तो मुझे तुझे बताना ही चाहिए। अब मुझे तुझसे भय या क्लेश कुछ भी नहीं है, क्योंकि मैं, अपने छोटे भाइयों के साथ आये हुए धर्मराज को देख रही हूं ॥५॥

यस्य ध्वजाग्रे नदतो मृदङ्गौ नन्दोपनन्दौ मधुरौ युक्तरूपौ
एतं स्वधर्मार्थविनिश्चयज्ञं सदा जनाः कृत्यवन्तोऽनुयान्ति

इसकी ध्वजा के आगे २ नन्द उपनन्द नामक बड़े सुन्दर मृदङ्ग बजते रहते हैं तथा धर्म और राजनीति के विषयों के निश्चयको जानने वाले राजा युधिष्ठिर के पीछे कर्मशील मनुष्य चलते रहते हैं ॥६॥

य एष जाम्बूनदशुद्धगौरः प्रचण्डघोणस्तनुरायताक्षः।
एनं कुरुश्रेष्ठतमं वदन्ति युधिष्ठिरं धर्मसुतं पतिं मे ॥७॥

यह शुद्ध सुवर्ण के समान गौर शरीर धारी, ऊंची नासिका और विशाल नेत्रधारी, कुरु-वंश-श्रेष्ठ धर्मपुत्र, मेरा पति राजा युधिष्ठिर है ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्येष शत्रोःशरणागतस्य दद्यात् प्राणान् धर्मचारी नृवीरः
परेह्यैनं मूढ़ जवेन भूतये त्वमात्मनः प्राञ्जलिर्न्यस्तशस्त्रः॥

यह धर्मशील, महावीर, शरणमें आये हुए, शत्रुओं को भी प्राणदान दे देता है। अरे मूर्ख ! तू भी अपने कल्याण के लिये हाथ जोड़कर और शस्त्र फैंककर इसकी शरण में चला जा ॥८॥

अथाप्येनं पश्यसि यं रथस्थं महाभुजं शालमिव प्रवृद्धम् ।
सन्दष्टौष्ठं भ्रुकुटीसंहतभ्रुवं वृकोदरो नाम पतिर्ममैषः ॥

हे सैंधव ! द्वितीय रथ में बैठे हुए, शाल वृक्ष के समान विशाल, ओष्ठ चबाते हुए, बांकी भ्रकुटी वाले जिस महारथी को देख रहा है--यह मेरा भीमसेन नामक पति है ॥९॥

आजानेया बलिनः साधुदान्ता महाबलाः शूरमुदावहन्ति ।
एतस्यकर्माण्यतिमानुषाणिभीमेतिशब्दोऽस्यगतःपृथिव्याम्॥

इस महाबली को, महाबली विशालकाय उदार, आजानेय संज्ञक अश्व, लिए आ रहे हैं। इसके काम, मनुष्यों की शक्ति से बाहर है, इससे लोग इसको भीम कहते हैं ॥१०॥

नास्यापराद्धाः शेषमवाप्नुवन्ति नायं वैरं विस्मरते कदाचित्
वैरस्यान्तं संविधायोपयाति पश्चाच्छान्तिं न च गच्छत्यतीव॥

इसका अपराध करने वाला संसार में बच नहीं सकता है। यह अपने वैर को कभी भूलता नहीं है। यह वैर का बदला लेकर पीछे शान्त होता है, इससे पूर्व कभी चुप नहीं होता॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनुर्द्धराग्र्यो धृतिमान् यशस्वी जितेन्द्रियो वृद्धसेवी नृवीरः
भ्राता च शिष्यश्च युधिष्ठिरस्य धनञ्जयो नाम पतिर्ममैषः

धनुष-धारियों में श्रेष्ठ, धैर्यशील, यशस्वी, जितेन्द्रिय, बड़ों का आज्ञाकारी, नर-श्रेष्ठ, राजा युधिष्ठिर का भाई और शिष्य है। इसका नाम अर्जुन है और यह मेरा तीसरा पति है ॥१२॥

यो वै न कामान्न भयान्न लोभात् त्यजेद्धर्मं न नृशंस्यञ्चकुर्य्यात्
स एष वैश्वानरतुल्यतेजाः कुन्तीसुतः शत्रुसहः प्रमाथी ॥

यह अग्नि के सदृश तेजस्वी, शत्रु के सम्मुख अड़ कर युद्ध में सेनाओं को मथ डालने वाला, कुन्तीपुत्र अर्जुन है, जो किसी स्वार्थ, भय, लोभसे धर्म को नहीं छोड़ता है और न कुत्सित कर्म को करता है ॥१३॥

यः सर्वधर्मार्थविनिश्चयज्ञो भयार्त्तानां भयहर्त्ता मनीषी।
यस्योत्तमं रूपमाहुः पृथिव्यां यं पाण्डवाः परिरक्षन्ति सर्वे

यह सब धर्मों की व्यवस्था का ज्ञाता, भय से व्याकुल जनों का भयहर्ता, बड़ा मनस्वी है। इसके रूप की सब सराहना करते हैं। इसकी पाण्डव सब तरह से रक्षा करते रहते हैं ॥१३॥

प्राणैर्गरीयांसमनुव्रतं वै स एष वीरो नकुल पतिर्मे।
यःखड्गयोधी लघुचित्रहस्तोमहांश्च धीमान्सहदेवोद्वितीयः

यह महाशक्तिशाली, अपने भाइयों के अनुकूल, चतुर्थ वीर को देख रहे हो, यह मेरा चौथा पति नकुल है। इसी के साथ जो दूसरा है वह खड्ग युद्ध में बड़ी शीघ्रता दिखाने वाला महा बुद्धिमान सहदेव है ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्याद्य कर्म द्रक्ष्यसे मूढसत्त्व शतक्रतोर्वा दैत्यसेनासुसङ्घे च
शूरःकृतास्त्रो मतिमान्मनस्वी प्रियङ्करो धर्मसुतस्य राज्ञः ॥

रे मूर्ख ! दैत्यों की सेना में इन्द्र के सदृश आज तुम इसका इस युद्ध में पराक्रम देखोगे। यह बड़ा शूर, अस्त्रों में कुशल, मतिमान, मनस्वी और राजा युधिष्ठिर के हित में तत्पर है ॥१६॥

य एष चन्द्रार्कसमानतेजा जघन्यजः पाण्डवानां प्रियश्च।
बुद्ध्यासमो यस्यन रोनविद्यते वक्ताथा सत्सुविनिश्चयज्ञः।

यह चन्द्र और सूर्य के सदृश प्रकाश वाला, पाण्डवों का प्रिय सबसे छोटा भाई है। इसकी बुद्धि के सदृश कोई पुरुष बुद्धि नहीं रखता है। यह विद्वानों की सभा में बोलने वाला, और धर्म के तत्वों का ज्ञाता है ॥१७॥

स एष शूरो नित्यममर्षणश्च धीमान् प्राज्ञः सहदेवः पतिर्मे।
त्यजेत्प्राणान् प्रविशेद्धव्यवाहंन त्वेवैष व्याहरेद्धर्मबाह्यम्॥
सदा मनस्वी क्षत्रधर्मे रतश्च कुन्त्याःप्राणैरिष्टतमो नृवीर

यह शूरवीर बड़ा असहिष्णु, बुद्धिमान, विद्वान मेरा पति सहदेव है। यह अपने प्राणों को छोड़ सकता है या अग्नि में प्रविष्टहो सकता,परन्तु धर्म रहित वचन कभी नहीं कह सकता है यह मनस्वी, वीर क्षत्रिय धर्म में अड़ा रहता है और कुन्ती को प्राणों से प्यारा है ॥१८॥

विशीर्यन्तीं नावमिवार्णवान्ते रत्नाभिपूर्णां मकरस्य पृष्ठे ॥
सेनान्तवेमां हतसर्वयोधां विक्षोभितां द्रक्ष्यसि पाण्डुपुत्रैः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्र के मध्य में रत्नों से परिपूर्ण, मकरकी पृष्ठ से टकरा कर चकनाचूर हुई नौका की तरह, तेरी इस सेना को पाण्डु-पुत्रों से नष्ट की हुई देखेगा। इसके सारे योद्धा मार दिये जायेंगे।

इत्येते वै कथिताः पाण्डुपुत्रा यास्त्वं मोहादवमन्य प्रवृत्तः।
यद्येतेभ्यो मुच्यसेऽरिष्टदेहः पुनर्जन्म प्राप्स्यसे जीव एव ॥

यह मैंने पाण्डवों के विषय में सुना दिया है। जिनकी अवहेलना करके तू मेरे अपहरण में प्रवृत्त हुआ है। जो तू इनसे अपनी देह को सुरक्षित बचा गया, तो तूने जीते जी पुनर्जन्म पा लिया ॥२०॥

वैशम्पायन उवाच --

ततः पार्थाः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पास्त्यक्त्वा त्रस्तान् प्राञ्जलींस्तान् पदातीन्। रथानीकं शरवर्षान्धकारं चक्रुः क्रुद्धाः सर्वतः संनिगृह्य ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणिपार्थयुद्धे एकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥ २६९ ॥

वैशम्पायन बोले--हे राजन्! इसके अनन्तर पांच इन्द्रों के सदृश, पांचों कुपित पाण्डवों ने भयातुर, हाथ जोड़कर झुके हुए, पैदल सिपाहियों को छोड़कर उन राजकुमारों की सेना को जा घेरा और बाण वर्षा से सब ओर अन्धकार कर दिया ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत द्रौपदीहरणपर्व में द्रौपदी का दो सौ उनहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ सत्तरहवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

सन्तिष्ठत प्रहरत तूर्णं विपरिधावत ।
इति स्म सैन्धवो राजा चोदयामास तान्नृपान् ॥१॥

वैशम्पायन कहने लगे—हे पृथिवीपते ! अब राजा जयद्रथ ने अपने साथी राजाओं को उत्साहित किया, कि बड़ी दृढ़ता से ठहरो, प्रहार करो और आक्रमण कर दो ॥१॥

ततो घोरतमः शब्दो रणे समभवत्तदा ।
भीमार्जुनयमान् दृष्ट्वा सैन्यानां सयुधिष्ठिरान् ॥२॥

इस समय युधिष्ठिर के साथ भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव को देखकर सेनाओं का रण में बड़ा कोलाहल मचा ॥२॥

शिबिसौवीरसिन्धूनां विषादश्चाप्यजायत ।
तान् दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रान् व्याघ्रानिव बलोत्कटान् ॥

सिंह के सदृश महाबली इन पुरुषसिंह पाण्डवों को देख कर शिबि, सौवीर और सिन्धु देश के राजकुमारों को बड़ा विषाद होने लगा ॥३॥

हैमचित्रसमुत्सेधां सर्वशैक्यायसीं गदाम् ।
प्रगृह्याभ्यद्रवद्भीमः सैन्धवं कालचोदितम् ॥४॥

सुवर्ण की चित्रकारी से समुज्जल, छींके पर रखी रहने वाली लोहे की गदा को उठा कर भीम, काल के वशीभूत जयद्रथ पर दौड़ा ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदन्तरमथावृत्य कोटिकास्योऽभ्यहारयत् ।
महता रथवंशेन परिवार्य्य वृकोदरम् ॥५॥

कोटिकास्य ने इस समय आकर अपने रथसमूह से भीम और जयद्रथ के मध्य में व्यवधान (रुकावट) खड़ा कर दिया। इसने भीम को वहीं घेर लिया ॥५॥

शक्तितोमरनाराचैर्वीरबाहुप्रचोदितैः ।
कीर्य्यमाणोऽपि बहुभिर्न स्म भीमोऽभ्यकम्पत ॥३॥

वीर पुरुषों की भुजाओं से छोड़े हुए बहुत से शक्ति, तोमर और बाणों से घिरा हुआ, भीम कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥६॥

गजन्तु स गजारोहं पदातींश्च चतुर्दश ।
जघान गदया भीमः सैन्धवध्वजिनीमुखे ॥८॥

भीमसेन ने अपनी गदा से जयद्रथ की सेना के आगे चलने वाले, गजारोही सवार सहित, हिरावल के हाथी और चौदह पैदल सिपाहियों को मार डाला ॥७॥

पार्थः पञ्चशताञ्छूरान् पार्वतीयान् महारथान् ।
परीप्समानः सौवीरं जघान ध्वजिनीमुखे ॥८॥

अर्जुन ने भी पर्वत प्रान्त के पांच सौ शूरवीर, सेना के आगे चलने वाले महारथियों को मार गिराया। यह शीघ्रता से जयद्रथ को पकड़ना चाहता था ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा स्वयं सुवीराणां प्रवराणां प्रहारिणाम् ।
निमेषमात्रेण शतं जघान समरे तदा ॥९॥

स्वयं राजा युधिष्ठिर ने भी सौवीर देश के प्रहार करने वाले सौ महावीरों को युद्ध में क्षण भर में मार गिराया ॥९॥

ददृशे नकुलस्तत्र रथात् प्रस्कन्द्य खड्गधृक् ।
शिरांसि पादरक्षाणां बीजवत् प्रवपन्मुहुः ॥१०॥

खड्ग धारण किये हुए नकुल, रथ के नीचे कूद पड़ा और पादरक्षाकों के शिरों को बीज की तरह भूमि में बोने लगा ॥१०॥

सहदेवस्तु सन्धाय रथेन गजयोधिनः ।
पातयामास नाराचैर्द्रुमेभ्य इव बर्हिणः ॥११॥

सहदेव भी अपने रथ से आगे बढ़कर हाथियों पर चढ़कर युद्ध करने वाले वीरों को बाणों से ऐसे गिराने लगा जैसे वृक्षों से मयूर गिराये जा रहे हों ॥११॥

ततस्त्रिगर्त्तः सधनुरवतीर्य्य महारथात् ।
गदया चतुरो वाहान् राज्ञस्तस्य तदावधीत् ॥१२॥

अब धनुषसहित, त्रिगर्त, बड़े भारी रथ से उतरा और गदा से राजा युधिष्ठिर के चार घोड़ों को मार डाला ॥१२॥

तमभ्यासगतं राजा पदातिं कुन्तिनन्दनः ।
अर्द्धचन्द्रेण बाणेन विव्याधोरसि धर्मराट् ॥१३॥

कुन्ती-नन्दन राजा युधिष्ठिर ने पैदल आते हुए, त्रिगर्तेश्वर को देखकर अर्द्धचन्द्राकार बाण से उसकी छाती में प्रहार किया ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स भिन्नहृदयो वीरो वक्त्राच्छोणितमुद्वमन् ।
पपाताभिमुखः पार्थे छिन्नमूल इव द्रुमः ॥१४॥

इस बाण से इस वीर का हृदय बिंध गया और उसके मुह से रक्त की धारा बह निकली। यह धर्मराज के सामने ही कटे हुए वृक्ष के सदृश गिर पड़ा ॥१४॥

इन्द्रसेनद्वितीयस्तु रथात् प्रस्कन्द्य धर्मराट् ।
हताश्वः सहदेवस्य प्रतिपेदे महारथम् ॥१५॥

इन्द्रसेन सारथी के साथ धर्मराज, रथ से उतरा। इसके रथ के अश्व, मारे जा चुके थे, इसलिए यह सहदेव के रथ पर जा बैठा ॥१५॥

नकुलन्त्वभिसन्धाय क्षेमङ्करमहामुखौ ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैः शरवर्षैरवर्षताम् ॥१६॥

क्षेमङ्कर और महामुख ये नकुल से भिड़ गए और ये दोनों, दोनों ओर से तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे ॥१६॥

तोमरैरभिवर्षन्तौ जीमूताविव वार्षिकौ ।
एकैकेन विपाठेन जघ्ने माद्रवतीसुतः ॥१७॥

ये मेघों की भांति तोमर आदि शस्त्र बरसा रहे थे। नकुल ने इनके एक २ बाण मारा ॥१७॥

त्रिगर्त्तराजः सुरथस्तस्याथ रथधूर्गतः ।
रथमाक्षेपयामास गजेन गजयानवित् ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिगर्तराज, सुरथ, नकुल के रथ के धुरे के पास पहुंचा। यह स्वयं हाथियों के विमान में बैठा था। इसने अपने हाथी के द्वारा नकुल का रथ फैंकवा दिया ॥१८॥

नकुलस्त्वपभीस्तस्माद्रथाच्चर्मासिपाणिमान् ।
उद्भ्रान्तं स्थानमास्थाय तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥१९

नकुल अब भी निडर ही रहा और ढाल तलवार हाथ में लेकर रथ से उतर पड़ा तथा ऊंचे स्थान में पर्वत की तरह अचल होकर खड़ा हो गया ॥१९॥

सुरथस्तं गजवरं वधाय नकुलस्य तु ।
प्रेषयामास सक्रोधमभ्युच्छ्रितकरं ततः ॥२०॥

त्रिगर्तराज ने उसी हाथी को नकुल के वध करने के लिए प्रेरित किया। यह भी अपनी सूंड उठाकर नकुल की ओर चला ॥२०॥

नकुलस्तस्य नागस्य समीपे परिवर्त्तिनः ।
सविषाणं भुजं मूले खड्गेन निरकृन्तत ॥२१॥

नकुल ने हाथी को पास में आते ही, खड्ग से दांत के सहित, सूंड को जड़ से काट डाला ॥२१॥

स विनद्य महानादं गजः किङ्किणिभूषणः ।
पतन्नवाक्शिरा भूमौ हस्त्यारोहानपातयत् ॥२२॥

किंकिणि [चांदी के घुंघरू] जाल के भूषण धारण करने वाला, यह हाथी, चिंघाड़ कर औंधे मुंह पृथ्वी पर गिर पड़ा और इसने अपने सवारों को फैंक दिया ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तत् कर्म महत् कृत्वा शूरो माद्रवतीसुतः ।
भीमसेनरथं प्राप्य शर्म लेभे महारथः ॥२३॥

शूरवीर, महारथी, नकुल, यह महान् कर्म करके भीमसेन के रथ पर पहुंचा और वहां अपने को सुरक्षित समझा ॥२३॥

भीमस्त्वापततो राज्ञः कोटिकास्यस्य सङ्गरे ।
सूतस्य नुदतो वाहान् क्षुरेणापाहरच्छिरः ॥२४॥

इस युद्ध में वेग से आते हुए कोटिकास्यके अश्वों को चलाते हुए,सारथि को देखकर भीम ने उसका सिर क्षुरे के सदृश तीक्ष्ण शस्त्र से काट डाला ॥२४॥

न बुबोध हतं सूतं स राजा बाहुशालिना ।
तस्याश्वा व्याद्रवन् संख्ये हतसूतास्ततस्ततः ॥२५॥

बाहुबलि भीम द्वारा सारथि के मारे जाने का राजा को पता तक नहीं लगा । सारथि के मारे जाने पर उसके अश्व, युद्ध में इधर उधर दौड़ने लगे ॥२५॥

विमुखं हतसूतं तं भीमः प्रहरताम्वरः ।
जघान तलयुक्तेन प्रासेनाभ्येत्य पाण्डवः ॥२६॥

सारथि के मारे जाने से विमुख होकर इधर उधर घूमते हुए, कोटिकास्य के पास पहुंच कर भीम ने प्रासशस्त्र को हाथमें लेकर मारा ॥२६॥

द्वादशानान्तु सर्वेषां सौवीराणां धनञ्जयः ।
चकर्त्त निशितैर्भल्लैर्धनूंषि च शिरांसि च ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन बारह सौवीर राजकुमारों के धनुषों को अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण भालों से काट गिराया ॥२७॥

शिबीनिक्ष्वाकुमुख्यांश्च त्रिगर्त्तान् सैन्धवानपि ।
जघानातिरथः संख्ये बाणगोचरमागतान् ॥२८॥

महारथी अर्जुन ने बाण के सामने आए हुए शिबि, इक्ष्वाकु, त्रिगर्त, सैन्धव आदि क्षत्रियों को युद्ध में मार २ कर बिछा दिया ॥२८॥

सादिताः प्रत्यदृश्यन्त बहुशः सव्यसाचिना ।
सपताकाश्च मातङ्गाः सध्वजाश्च महारथाः ॥२९॥

अर्जुन द्वारा मारे हुए पताका-सहित हाथी और ध्वजाओं सहित महारथी ही इस भूमि में जिधर देखो, उधर दिखाई देते थे ॥२९॥

प्रच्छाद्य पृथिवीं तस्थुः सर्वमायोधनं प्रति ।
शरीराण्यशिरस्कानि विदेहानि शिरांसि च ॥३०॥

इस युद्ध में शिर हीन शरीर और शरीर हीन शिरों ने सारी भूमि को पाट दिया ॥३०॥

श्वगृध्रकङ्ककाकोलभासगोमायुवायसाः ।
अतृप्यंस्तत्र वीराणां हतानां मांसशोणितैः ॥३१॥

कुत्ते, गीध, कङ्क, काकोल, वायस [कौओं के भेद] भास, गीदड़, इन मारे हुए वीरोंके मांस और रक्त से तृप्त हो गए ॥३१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हतेषु तेषु वीरेषु सिन्धुराजो जयद्रथः ।
विमुच्य कृष्णां सन्त्रस्तः पलायनमनाभवत् ॥३२॥

इन वीरों के मारे जाने पर सिन्धुराज, जयद्रथ घबरा गया और यह द्रौपदी को छोड़कर भागने की चेष्टा करने लगा ॥३२॥

स तस्मिन् सङ्कुले सैन्ये द्रौपदीमवतार्य्य ताम् ।
प्राणप्रेप्सुरुपाधावत् वनं येन नराधमः ॥३३॥

नराधम, जयद्रथ, सेना की भीड़ भाड़ में द्रौपदी को रथ से उतार कर प्राण बचाने की इच्छा से वन में भागने लगा ॥३३॥

द्रौपदीं धर्म्मराजस्तु दृष्ट्वा धौम्यपुरस्कृताम् ।
माद्रीपुत्रेण वीरेण रथमारोपयत्तदा ॥३४॥

धर्मराज ने धौम्य के साथ द्रौपदी देखी। वीर माद्रीपुत्र सहदेव ने उसको अपने रथ में चढ़ा लिया ॥३४॥

ततस्तद्विद्रुतं सैन्यमपयाते जयद्रथे ।
आदिश्यादिश्य नाराचैराजघान वृकोदरः ॥३५॥

जयद्रथ के भाग निकलने पर सेना भी भाग चली। अब भीम बाणों को तान २ कर सेना को मारने लगा ॥३५॥

सव्यसाची तु तं दृष्ट्वा पलायन्तं जयद्रथम् ।
वारयामास निघ्नन्तं भीमं सैन्धवसैनिकान् ॥३६॥

अर्जुन ने जयद्रथ को भागा हुआ देखकर जयद्रथ के निकों को मारते हुए भीम को रोक दिया ॥३६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन उवाच—

यस्यापचारात् प्राप्तोऽयमस्मान् क्लेशो दुरासदः ।
तमस्मिन् समरोद्देशे न पश्यामि जयद्रथम् ॥३७॥

अर्जुन बोले--हे भीम ! जिसके कुकर्म से हमने यह सारा कठिन क्लेश उठाया है, मैं उस अधम जयद्रथ को इस युद्ध भूमि में नहीं देख रहा हूं ॥३७॥

तमेवान्विष भद्रन्ते किन्ते योधैर्निपातितैः ।
अनामिषमिदं कर्म कथं वा मन्यते भवान् ॥३८॥

हे भीम ! तुम उसको ही खोज निकालो, इन योद्धाओं के मारने में क्या रखा है ? यह काम तो विना मांस के पक्षी मारने के सदृश निरर्थक है । आगे आपकी जैसी इच्छा हो करो ॥३८॥

वैशम्पायन उवाच----

इत्युक्तो भीमसेनस्तु गुड़ाकेशेन धीमता ।
युधिष्ठिरमभिप्रेक्ष्य वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥३९॥
हतप्रवीरा रिपवो भूयिष्ठं विद्रुता दिशः ।
गृहीत्वा द्रौपदीं राजन्निवर्त्तस्व भवानित ॥४०॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! बुद्धिमान् अर्जुन के इतना कहने पर वाचाल भीमसेन, राजा युधिष्ठिर से यह वचन कहने लगा । हे राजन् ! हम लोगों ने प्रायः शत्रु मार लिए हैं और बहुत से इधर उधर भाग गए । अब आप द्रौपदी को लेकर यहां से आश्रम को लौट जाइये ॥३९-४०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमाभ्यां सह राजेन्द्र धौम्येन च महात्मना ।
प्राप्यावमपदं राजन् द्रौपदीं परिसान्त्वय ॥४१॥

हे राजेन्द्र ! महात्मा धौम्य और नकुल सहदेव को साथ लेकर आश्रम में चले जाओ और वहां द्रौपदी को आश्वासन दो ॥४१॥

न हि मे मोक्ष्यते जीवन्मूढः सैन्धवको नृपः ।
पातालतलसंस्थोऽपि यदि शक्रोऽस्य सारथिः ॥४२॥

मैं इस मूर्ख जयद्रथ को जीता नहीं छोड़ूंगा, चाहे यह पाताल में चला जावे और चाहे इन्द्र, इसका सहायक हो जावे ॥४२॥

युधिष्ठिर उवाच—

न हतव्यो महाबाहो दुरात्मापि स सैन्धवः ।
दुःशलामभिसंस्मृत्य गान्धारीञ्च यशस्विनीम् । ४३॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे महाबाहो ! यद्यपि जयद्रथ दुरात्मा है, परन्तु इसको मारना नहीं । तुम इसके मारने से दुःखी होने वाली वृद्धा यशस्विनी गान्धारी और उसकी पुत्री दुःशला का ध्यान करो । यह दुःशला अपने पति के मारे जाने से कितनी दुःखी होगी ॥४३॥

वैशम्पायन उवाच—

तच्छ्रुत्वा द्रौपदी भीममुवाच व्याकुलेन्द्रिया ।
कुपिता ह्रीमती प्राज्ञा पती भीमार्जुनावुभौ ॥४४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! यह सुनकर क्रोध में भरी हुई, व्याकुल, बुद्धिमती, द्रौपदी ने, अपने पति भीम और अर्जुन से लज्जा के साथ कहा ॥४४

कर्त्तव्यश्चेत् प्रियं महच्च वध्यः स पुरुषाधमः ।
सैन्धवासपदः पापो दुर्मतिः कुलपांसनः ॥४५॥

यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो, तो इस नीच पुरुष, जयद्रथ का अन्त कर देना । यह जयद्रथ बड़ा पापी,दुरात्मा और कुलघातक है ॥४५॥

भार्य्याभिहर्त्ता वैरी यो यश्च राज्यहरो रिपुः ।
याचमानोऽपि संग्रामे न मोक्तव्यः कथञ्चन ॥४६॥

जो शत्रु, भार्या और राज्य के अपहरण का प्रयत्न करे,उसके शरण में आने पर भी उसको जीता नहीं छोड़ना चाहिए ॥४६॥

इत्युक्तौ तौ नरव्याघ्रौ ययतुर्यत्र सैन्धवः ।
राजा निववृते कृष्णामादाय सपुरोहितः ॥४७॥

द्रौपदी के इतना कहने पर वे दोनों नरव्याघ्र, भीमार्जुन वहां पहुंचे, जहां जयद्रथ था। राजा युधिष्ठिर भी द्रौपदी को लेकर पुरोहित धौम्य के साथ २ आश्रम को आए ॥४७॥

स प्रविश्याश्रमपदं व्यपविद्धवृषीमठम् ।
मार्कण्डेयादिभिर्विप्रैरनुकीर्णं ददर्श ह ॥४८॥

द्रौपदीमनुशोचद्भिर्ब्राह्मणैस्तैः समाहितैः ।
समियाय महाप्राज्ञः सभार्य्यो भ्रातृमध्यगः ॥४९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसने आकर देखा, कि आश्रम में ऋषियों के आसन इधर उधर बिखरे पड़े हैं और छात्रावास टूट फूट गये हैं। सारे मार्कण्डेय आदि ब्राह्मणोंसे आश्रम भरा पड़ा था। ये सारे ब्राह्मण एक ध्यान होकर द्रौपदी की चिन्ता कर रहे थे, कि अपनी भार्या द्रौपदी के साथ दोनों भाइयों के मध्य में सुशोभित होता हुआ, राजा युधिष्ठिर वहां आ पहुंचा ॥४८--४९॥

ते स्म तं मुदिता दृष्ट्वा पुनः प्रत्यागतं नृपम् ।
जित्वा तान् सिन्धु सौवीरान् द्रौपदीं चाहृतां पुनः॥५०

ये सारे ब्राह्मण, सिन्धु और सौवीर देश के वीरों को जीत कर और द्रौपदी को लौटा कर लौटे हुए राजा युधिष्ठिर को देख कर बड़े ही प्रसन्न हुए ॥५०॥

स तैः परिवृतो राजा तत्रैवोपविवेश ह ।
प्रविवेशाश्रमं कृष्णा यमाभ्यां सह भाविनी ॥५१॥

उन लोगों ने राजा को घेर लिया, धर्मराज भी उनके पास ही बैठ गया और द्रौपदी, नकुल और सहदेव के साथ आश्रम के भीतर चली गई ॥५१॥

भीमसेनार्जुनौ चापि श्रुत्वा क्रोशगतं रिपुम् ।
स्वयमश्वांस्तुदन्तौ तौ जवेनैवाभ्यधावताम् ॥५२॥

भीम और अर्जुन ने सुना, कि जयद्रथ कोश भर निकल गया, तो ये दोनों स्वयं अश्वों को भगा कर उसके पास पहुँचने का प्रयत्न करने लगे ॥५२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदमत्यद्भुतं चात्र चकार पुरुषोऽर्जुनः ।
क्रोशमात्रगतानश्वान् सैन्धवस्य जघान यत् ॥५३॥
स हि दिव्यास्त्रसम्पन्नः कृच्छ्रकालेऽप्यसम्भ्रमः ।
अकरोद्दुष्करं कर्म शरैरस्त्रानुमन्त्रितैः ॥५४॥

नर-श्रेष्ठ अर्जुन ने यह बड़ा ही अद्भुत कर्म कर दिखाया, कि कोश भर निकल कर भागे हुए, जयद्रथ के अश्वों को मार गिराया। अर्जुन, दिव्य अस्त्रों से सम्पन्न है, इससे कठिन समय पर भी नहीं घबड़ाता है। इसने अनुमन्त्रित अस्त्रों से यह दुष्कर कर्म कर दिखाया ॥५३--५४॥

ततोऽभ्यधावतां वीरावुभौ भीमधनञ्जयौ ।
हताश्वं सैन्धवं भीतमेकं व्याकुलचेतसम् ॥५५॥

अब वीरवर भीम और अर्जुन दौड़े। इस समय अश्वों के मारे जाने से जयद्रथ बड़ा व्याकुल और भयातुर हो रहा था ॥५५

सैन्धवस्तु हतान् दृष्ट्वा तथाश्वान् स्वान् सुदुःखितः
अतिविक्रमकर्माणि कुर्वाणश्च धनञ्जयम् ॥५६॥
पलायनकृतोत्साहः प्राद्रवद्येन वै वनम् ।

जयद्रथ अपने अश्वों को मरे हुए और अर्जुन को मनुष्योचित्त विक्रम से भी अधिक कार्य करते हुए देखकर बड़ा क्लेशित हुआ और भागने में चित्त लगाकर वन में उसी ढंग से भागा चला गया ॥५६॥

सैन्धवं त्वभिसम्पेक्ष्य पराक्रान्तं पलायने ॥५७॥
अनुयाय महाबाहुः फाल्गनो वाक्यमब्रवीत् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाबाहु अर्जुन ने जब जयद्रथ को भागने में पराक्रम दिखाते देखा, तो उसके पास पहुंच कर यह वचन कहा ॥५७॥

अनेन वीर्य्येण कथं स्त्रियं प्रार्थयसे बलात् ॥५८॥
राजपुत्र निर्त्तस्व न ते युक्तं पलायनम् ।
कथं ह्यनुचरान् हित्वा शत्रुमध्ये पलायसे ॥५९॥

हे राजपुत्र ! क्या तुम इसी पराक्रम के भरोसे अन्य की स्त्री के बल-पूर्वक अपहरण की इच्छा करते थे। अब लौट आवो, तुमको भागना उचित नहीं हैं। अपने सेना के साथियों को छोड़ कर कैसे भागे चले जा रहे हो ॥५८--५९॥

इत्युच्यमानः पार्थेन सैन्धवो न न्यवर्त्तत ।
तिष्ठ तिष्ठेति तं भीमः सहसाभ्यद्रवद्बली ।
माबधीरिति पार्थस्तं दयावान् प्रत्यभाषत ॥६०॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि जयद्रथग्रहणे सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७० ॥

समाप्तश्च द्रौपदीहरणपर्व ।

अर्जुन ने इतना कहा, तो भी जयद्रथ नहीं लौटा। अब महाबली, भीम, "ठहर ठहर" कहता हुआ, उसके पीछे दौड़ा। दयावान् अर्जुन ने कहा—हे भीम ! तुम इसको मार नहीं डालना ॥६०॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत द्रौपदीहरणपर्व में जयद्रथ के पकड़ लेने का दो सौ सत्तरहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ और यहीं पर द्रौपदीहरणपर्व भी समाप्त हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयद्रथविमोक्षणपर्व

दो सौ इकहत्तरवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

जयद्रथस्तु सम्प्रेक्ष्य भ्रातरावुद्यतायुधौ ।
प्रधावत्तूर्णमव्यग्रो जीवितेप्सुः सुदुःखितः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! जब जयद्रथ ने देखा, कि दोनों भाई भीमार्जुन, शस्त्र उठाये हुए चले आ रहे हैं, तो यह जीवन की इच्छा से बड़ा व्याकुल और दुःखी हुआ ॥१॥

तं भीमसेनो धावन्तमवतीर्य्य रथाद्बली ।
अभिद्रुत्य निजग्राह केशपक्षे ह्यमर्षणः ॥२॥

असहनशील, महाबली भीमसेन ने रथ से उतरकर जयद्रथ के बाल पकड़ लिए ॥२॥

समुद्यम्य च तं भीमो निष्पिपेष महीतले ।
शिरो गृहीत्वा राजानं ताडयामास चैव ह ॥३॥

भीम ने उसको उठाकर भूमि में दे मारा और रगड़ने लगा। इसने राजा जयद्रथ का शिर (चोटी) पकड़ कर थप्पड़ लगाने आरम्भ किए ॥३॥

पुनः सञ्जीवमानस्य तस्योत्पतितुमिच्छतः ।
पदा मूर्द्ध्नि महाबाहुः प्राहरद्विलपिष्यतः ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब जयद्रथ जीवन की इच्छा से फ़िर उठकर निकलना चाहता था। इसके बल खाते हुए के महाबाहु भीम ने अपने पैर से मस्तक में चोट लगाई ॥४॥

तस्य जानू ददौ भीमो जंघे चैनमरत्निना ।
स मोहमगमद्राजा प्रहारवरपीडितः ॥५॥

भीम ने अपने गोड़े उसके ऊपर गाड़ दिए और जंघा में कुहनी गड़ा दी। इस प्रबल प्रहार से पीड़ित होकर राजा जयद्रथ, मूर्छित सा हो गया ॥५॥

सरोषं भीमसेनन्तु वारयामास फाल्गुनः ।
दुःशलायाः कृते राजा यत्तदाहेति कौरवः ॥६॥

कुपित हए भीमसेन को अर्जुन ने रोक दिया, क्योंकि राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला का स्मरण दिलाकर,इसके नहीं मारने की आज्ञा दे दी थी ॥६॥

भीम उवाच—

नायं पापसमाचारो मत्तो जीवितुमर्हति ।
कृष्णायास्तदनर्हायाः परिक्लेष्टा नराधमः ॥७॥

भीमसेन बोला—यह पापी आज मुझसे जीवित नहीं बचेगा। यह नराधम, क्लेश के अयोग्य, द्रौपदी को क्लेश देने वाला है।७।

किन्नु शक्यं मया कर्त्तु यद्राजा सततं घृणी ।
त्वञ्च बालिशया बुद्धया सदैवास्मान् प्रबाधसे ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं क्या करूं? यह राजा युधिष्ठिर तो सदा ऐसी ही दया किया करता है और तू भी अपनी बाल बुद्धि से हमको ही दबाता है।

एवमुक्त्वा सटास्तस्य पञ्च चक्रे वृकोदरः ।
अर्द्धचन्द्रेण बाणेन किञ्चिदब्रुवतस्तदा ॥९॥

इतना कहकर भीम ने उसके मस्तक के बालों के पांच भाग करके अर्ध चन्द्र बाण से मूंड डाले। जयद्रथ चुपचाप पड़ा रहा और कुछ नहीं बोला ॥९॥

विकत्थयित्वा राजानं ततः प्राह वृकोदरः ।
जीवितुं चेच्छसे मूढ़ हेतुं मे गदतः शृणु ॥१०॥
दासोऽस्मीति त्वया वाच्यं संसत्सु च सभासु च ।
एवं ते जीवितं दद्यामेष युद्धजितो विधिः ॥११॥

भीमसेन इस तरह राजा युधिष्ठिर की आलोचना करके जयद्रथ से बोला—अरे मूढ़ ! यदि तू जीवित रहना चाहता है, तो मैं जो कहता हूं, उसे सुन। तुझे सभा और सम्मेलनों में सब के सामने यह कहना होगा, कि मैं तुम्हारा दास हूं। मैं इस शर्त से तो तुझे जीता छोड़ सकता हूं। युद्ध में जीत लेने पर यही प्रकार होता है ॥१०--११॥

एवमस्त्विति तं राजा कृष्यमाणो जयद्रथः ।
प्रोवाच पुरुषव्याघ्रं भीममाहवशोभिनम् ॥१२॥

युद्ध में चमकने वाले पुरुष श्रेष्ठ,भीम से इधर उधर खींचे हुए राजा जयद्रथ ने कहा—अच्छी बात है- मैं दास हूं। ऐसा सभा में कह दूंगा। तुम मुझे छोड़ दो॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः एनं विचेष्टन्तं बद्ध्वा पार्थो वृकोदरः ।
रथमारोपयामास विसंज्ञं पांशुगुण्ठितम् ॥१३॥

कुन्तीपुत्र भीम ने तड़फड़ाते हुए तथा धूल में सने हुए, अचेत से जयद्रथ को बांध कर रथ में डाल लिया ॥१३॥

ततस्तं रथमास्थाय भीमः पार्थानुगस्तदा ।
अभ्येत्याश्रममध्यस्थमभ्यगच्छत् युधिष्ठिरम् ॥१४॥

अब भीमसेन रथ में चढ़कर अर्जुन के पीछे २ आश्रम में आया और राजा युधिष्ठिर के पास पहुंचा ॥१४॥

दर्शयामास भीमस्तु तदवस्थं जयद्रथम् ।
तं राजा प्राहसद्दृष्ट्वा मुच्यतामिति चाब्रवीत् ॥१५॥

भीम ने बंधे हुये जयद्रथ को दिखाया, जिसको देखकर धर्मराज हंस पड़े और बोले-इसे छोड़ दो ॥१५॥

राजानञ्चाब्रवीद्भीमो द्रौपद्याः कथ्यतामिति ।
दासभावं गतो ह्येष पाण्डूनां पापचेतनः ॥१६॥

भीम ने राजा से कहा--आप द्रौपदी से कह दें—यह पापी अब पाण्डवों के दास भाव को प्राप्त हो गया है ॥१६॥

तामुवाच ततो ज्येष्ठो भ्राता सप्रणयं वचः ।
मुञ्चैनमधमाचारं प्रमाणा यदि ते वयम् ॥१७॥

बड़ा भाई राजा युधिष्ठिर भीमसेन से प्रेम-पूर्वक कहने लगा—यदि तुम हमें प्रमाण [पूज्य] समझते हो, तो इस अधम व्यवहार करने वाले को भी छोड़ दो ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदी चाब्रवीद्भीममभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरम् ।
दासोऽयं मुच्यतां राज्ञस्त्वया पञ्चसटः कृतः ॥१८॥

द्रौपदी धर्मराज की ओर देखकर भीम से बोली—यह राजा का दास बन चुका और तू ने इसको पांच स्थान से मूंड भी लिया है, अब इसे छोड़ दो ॥१८॥

स मुक्तोऽभ्येत्य राजानमभिवाद्य युधिष्ठिरम् ।
ववन्दे विह्वलो राजंस्तांश्च दृष्ट्वा मुनींस्तदा ॥१९॥

हे राजन ! भीमसेन ने ज्योंही जयद्रथ को छोड़ा, त्योंही वह आकर धर्मराज की वन्दना करने लगा। इस घबड़ाये हुए जयद्रथ ने मुनियों को देखकर उनको भी प्रणाम किया ॥१९॥

तमुवाच घृणी राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यथा जयद्रथं दृष्ट्वा गृहीतं सव्यसाचिना ॥२०॥
अदासो गच्छ मुक्तासि मैवं कार्षीः पुनः क्वचित् ।
स्त्रीकामं वा धिगस्तु त्वां क्षुद्रः क्षुद्रसहायवान् ॥२१
एवंविधं हि कः कुर्य्यात्त्वदन्यः पुरुषाधमः ।

धर्मपुत्र दयालु राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन द्वारा पकड़े हुए जयद्रथको देखकर कहा—हे जयद्रथ! तुम दास नहीं हो,जाओ, छोड़ दिए गए हो। तुम फिर ऐसा कुत्सित कर्म न करना। तुमने स्त्री की कामना से यह कुकर्म किया, इससे तुमको धिक्कार है। तुम और तुम्हारे सहायक बड़े ही नीच प्रतीत होते हैं। इस तरह की घटना तुम जैसे नीच पुरुष को छोड़कर कौन कर सकता था २१॥

गतसत्वमिव ज्ञात्वा कर्त्तारमशुभस्य तम् ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं प्रेक्ष्य भरतश्रेष्ठ कृपाश्चक्रे नराधिपः ।
धर्मे ते वर्द्धता बुद्धिर्मा चाधर्मे मनः कृथाः ॥२३॥
साश्वः सरथपादातः स्वस्ति गच्छ जयद्रथ ।

हे भरत-श्रेष्ठ ! अशुभ कर्म के करने वाले,राजा जयद्रथ को सत्वहीन जानकर उसकी ओर देखकर राजा ने दया की और कहा---हे जयद्रथ ! तेरी धर्म में बुदिध प्रवृत्त हो। आगे कभी अधर्म में मन को नहीं लगाना। तुम अपने अश्व, रथ, पैदलों के साथ जाओ, तुम्हारा कल्याण हो ॥२२--२३॥

एवमुक्तस्तु सव्रीडं तूष्णीं किञ्चिदवाङ्मुखः ॥२४॥
जगाम राजन् दुःखार्त्तो गङ्गाद्वाराय भारत ।
स देवं शरणं गत्वा विरूपाक्षमुमापतिम् ॥२५॥
तपश्चचार विपुलं तस्य प्रीतो वृषध्वजः ।
बलिं स्वयं प्रत्यगृह्णात् प्रीयमाणस्त्रिलोचनः ।
वरञ्चास्मै ददौ देवः स जग्राह च तच्छृणु ॥२६॥

हे भारत ! यह सुनकर जयद्रथ लज्जित सा हो गया और उसने मुख नीचा कर लिया। हे राजन् ! यह दुःखी हुआ गङ्गा द्वार [हिमालय] की ओर चला गया। वहां यह उमापति तीन नेत्र वाले,भगवान् शंकर की शरण में पहुंचा। यहां इसने बड़ा घोर तप किया, जिससे शङ्कर प्रसन्न हो गए। त्रिलोचन शंकर ने प्रसन्न होकर स्वयं बलि ग्रहण की। महादेव ने इनको वर दिया, इसने जो वर मांगा, वह सुनो ॥२४-२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयद्रथ उवाच---

समस्तान् सरथान् पञ्च जयेयं युधि पाण्डवान् ।
इति राजाब्रवीद्देवं नेति देवस्तमब्रवीत् ॥२७॥

जयद्रथ बोला---मैं पांचों पाण्डवों को युद्ध में उनके सहायक महारथियों के साथ जीत लूं । जब जयद्रथ ने महादेवजी से इतना कहा---तो वे बोले---नहीं यह नहीं हो सकता ॥२७॥

महेश्वर उवाच---

अजय्यांश्चाप्यवध्यांश्च वारयिष्यसि तान् युधि ।
ऋतेऽर्जुनं महाबाहुं नरं नाम सुरेश्वरम् ॥२८॥

महादेवजी ने कहा--ये पाण्डव, जीते नहीं जा सकते हैं और अवध्य हैं, तो भी तू इनको युद्ध में रोक देगा, परन्तु महाबाहु अर्जुन को तू नहीं रोक सकेगा, जो नरदेह में इन्द्र है ॥

बदर्य्यां तप्ततपसं नारायणसहायकम् ।
अजितं सर्वलोकानां देवैरपि दुरासदम् ॥२९॥

इसने बदरिकाश्रम में श्रीकृष्ण के साथ नर नारायण रूप में तप किया है । यह सब लोकों में अजेय और देवों से भी दुर्गम है ॥२९॥

मया दत्तं पाशुपतं दिव्यमप्रतिमं शरम् ।
अवाप लोकपालेभ्यो वज्रादीन् स महाशरान्॥३०॥

मेरा दिया हुआ भी अर्जुन के पास दिव्य अद्वितीय पाशुपतास्त्र है । इसने इन्द्रादि लोकपालों से भी वज्र आदि महा अस्त्रों को पाया है ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवदेवो ह्यनन्तात्मा विष्णुः सुरगुरुः प्रभुः ।
प्रधानपुरुषोऽव्यक्तो विश्वात्मा विश्वमूर्त्तिमान् ॥३१॥
युगान्तकाले संप्राप्ते कालाग्निर्दहते जगत् ।
सपर्वतार्णवद्वीपं सशैलवनकाननम् ॥३२॥
निर्दहन्नागलोकांश्च पातालतलचारिणः ।

देवों के देव, अनन्त आत्मा, देवों के पूज्य, प्रभु, प्रधान पुरुष, अव्यक्त, विश्वकी आत्मा, विश्व मूर्ति के धारक, भगवान् विष्णु, युगान्त काल को प्राप्त होकर कालाग्नि रूप से सारे जगत् को भस्म कर देते हैं। पर्वत, समुद्र, द्वीप, छोटे २ पर्वत, वन, महावन, पाताल के नीचे बसे हुए नागलोक आदि सारे लोक भस्म हो जाते हैं ॥३१-३२॥

अथान्तरीक्षे सुमहन्नानावर्णाः पयोधराः॥३३॥
घोरस्वरा विनदिनस्तडिन्मालावलम्बिनः ।
समुत्तिष्ठन् दिशः सर्वा विवर्षन्तः समन्ततः ॥३४॥
ततोऽग्निं नाशयामासुः सम्वर्त्ताग्निनियामकाः ।
अक्षमात्रैश्च धाराभिस्तिष्ठन्त्यापूर्य्य सर्वशः ॥३५॥

आकाश में अनेक वर्ण के बड़े २ मेघ उठते हैं, जो महाघोर शब्द से गर्जना करते हैं और विद्युत (बिजली) की माला से देदीप्यमान होते हैं। वे सारी दिशाओं में छा जाते हैं और सब ओर वर्षा की झड़ी लगा देते हैं। सम्वर्त अग्नि के रोकने वाले ये मेघ, इस प्रज्वलित अग्नि को बुझा देते हैं। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँसों के समान धारा से वर्षा करके सारे जगत् को घेर कर स्थित हो जाते हैं ॥३३-३५॥

एकार्णवे तदा तस्मिन्नुपशान्ते चराचरे ।
नष्टचन्द्रार्कपवने ग्रहनक्षत्रवर्जिते ॥३६॥
चतुर्युगसहस्रान्ते सलिलेनाप्लुता मही ।
ततो नारायणाख्यस्तु सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥३७॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः स्वप्तुकामस्त्वतीन्द्रियः ।

जब सारा संसार जलमय हो जाता है, तो उसमें चराचर जगत् लीन हो जाता है। चन्द्र, सूर्य, पवन, ग्रह, नक्षत्र, सब नष्ट हो जाते हैं। चतुर्युगी (ब्रह्मा के दिन) के अनन्तर महाप्रलय में जल-मय पृथिवी होती है। अब सहस्रों नेत्र और सहस्रों पाद सहस्रों शिर के धारी, भगवान् नारायण पुरुष भी इस समय योगमाया में लीन होना चाहते हैं। ये नारायण, किसी भी पुरुष के इन्द्रिय गोचर नहीं हो सकते हैं ॥३६-३७॥

फणासहस्रविकटं शेषं पर्य्यङ्कभोगिनम् ॥३८॥
सहस्रमिव तिग्मांशुसंघातममितद्युतिम् ।
कुन्देन्दुहारगोक्षीरमृणालकुमुदप्रभम् ॥३९॥
तत्रासौ भगवान् देवः स्वपन् जलनिधौ तदा ।
नैशेन तमसा व्याप्तां स्वां रात्रिं कुरुते विभुः ॥४०॥

सहस्रों विटक फणधारी, अपने अङ्क में फण को सिकोड़कर धारण करने वाले, सहस्रों सूर्य के समूहके समान अत्यन्ततेजस्वी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुन्द (चमेली) इन्दुहार, गोदुग्ध, मृणाल, कुमुद के समान श्वेतवर्ण, शेषनाग पर समुद्र में भगवान् विष्णु सोते हैं। यह शक्तिशाली इस प्रलय की रात को रात के अन्धकार से व्याप्त करता है ॥४०॥

सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमपश्यत् ।
इमञ्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।४१॥

भगवान् अपने सत्व के उद्रेक के कारण प्रबुद्ध होकर इस जगत् को शून्यभूत देखते हैं। नारायण के प्रति इस समय यह श्लोक कहा जाता है ॥४१॥

आपो नारास्तु तनव इत्यपां नाम शुश्रुम ।
अयनं तेन चैवास्ते तेन नारायणः स्मृतः ॥४२॥

आप, नारा, तनु ये आप (जल) के नाम सुने जाते हैं। ये नार (जल) ही जिसका अयन [स्थान] हो, वही नारायण कहाते हैं ॥४२॥

प्रध्यानसमकालन्तु प्रजाहेतोः सनातनः ।
ध्यानमात्रे तु भगवन्नाभ्यां पद्मः समुत्थितः ॥४३॥

प्रजा की उत्पत्ति के लिए ध्यान करते ही सनातन ब्रह्मा उत्पन्न होता है, ब्रह्मा की उत्पत्ति का ध्यान करते ही भगवान् विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ ॥४३॥

ततश्चतुर्मुखो ब्रह्मा नाभिपद्माद्विनिःसृतः ।
तत्रोपविष्टः सहसा पद्मे लोकपितामहः ॥४४॥

इस नाभिकमल से चतुर्मुख ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ। इस कमल पर सब लोकों का पितामह ब्रह्मा बैठा था ॥४४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शून्यं दृष्ट्वा जगत् कृत्स्नं मानसानात्मनः समान् ।
ततो मरीचिप्रमुखान्महर्षीनसृजन्नव ॥४५॥

ब्रह्माजी ने सारे जगत् को शून्य रूप में देखकर अपने ही सदृश, महर्षि मरीचि आदि नव मानसपुत्र पैदा किए ॥४५॥

ते दृष्ट्वा सर्वभूतानि त्रसानि स्थावराणि च ।
यक्षराक्षसभूतानि पिशाचोरगमानुषान् ॥४६॥

इन नो महर्षियों ने सारे जङ्गम और स्थावर प्राणी, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, उरग और मनुष्यों की रचना को देखा ॥४६

सृजते ब्रह्ममूर्त्तिस्तु रक्षते पौरुषी तनुः ।
रौद्रीभावेन शमयेत्तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः ॥४७॥

प्रजापति ईश्वर की तीन अवस्था हैं । यह ब्रह्मा की मूर्ति से रचना, विष्णु की मूर्ति से रक्षा और रुद्र की मूर्ति से संहार करता है ॥४७॥

न श्रुतन्ते सिन्धुपते विष्णोरद्भुतकर्मणः ।
कथ्यमानानि मुनिभिर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥४८॥

हे सिन्धुराज ! जयद्रथ तेरे कान ही नहीं हैं, जो तूने अब तक अद्भुत कर्म करने वाले भगवान् विष्णु के मुनि और वेद के पारङ्गत ब्राह्मणों से कहे हुए कर्मों को नहीं सुना हैं॥ ४८॥

जलेन समनुव्याप्ते सर्वतः पृथिवीतले ।
तदा चैकार्णवे तस्मिन्नेकाकाशे प्रभुश्चरन् ॥४९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले समन्ततः ।
प्रतिष्ठानाय पृथिवीं मार्गमाणस्तदाभवत् ॥५०॥

जब सब ओर से पृथ्वीतल, जल से व्याप्त हो जाता है, तब वर्षा ऋतु में रात्रि के समय खद्योत [जुगनू] की तरह पृथ्वी स्थापना के लिये भगवान् विष्णु, एक मात्र समुद्रमय आकाश में इधर उधर पृथ्वी को खोजने लगते हैं ॥४९--५०॥

जले निमग्ना गां दृष्ट्वा चोद्धर्त्तुं मनसेच्छति ।
किन्नु रूपमहं कृत्वा सलिलादुद्धरे महीम् ॥५१॥

भगवान् जल में डूबी हुई पृथ्वी के उद्धार करने की मन में इच्छा करते हैं और सोचते हैं,कि किस रूप को धारण करके मैं पृथ्वी का उद्धार करूं ॥५१॥

एवं सञ्चिन्त्य मनसा दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ।
जलक्रीडाभिरुचितं वाराहं रूपमस्मरत् ॥५२॥

इन्होंने यह मन में विचार करके दिव्य नेत्रों से देखा,तो जल क्रीड़ा में रुचि रखने वाले, वराह का रूप स्मरण में आया ॥५२॥

कृत्वा वराहवपुषं वाङ्मयं वेदसम्मितम् ।
दशयोजनविस्तीर्णमायतं शतयोजनम् ॥५३॥

इन्होंने चतुर्वेदमय वेदप्रतिपादित यज्ञरूपी वराह का शरीर धारण किया। यह वराह, दश योजन विस्तीर्ण और सौ योजन लम्बा था ॥५३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापर्वतवर्ष्माभं तीक्ष्णदंष्ट्रं प्रदीप्तिमत् ।
महामेघौघनिर्घोषं नीलजीमूतसन्निभम् ॥५४॥

इसका बड़ा भारी पर्वत के समान शरीर और तीक्ष्ण दंष्ट्रा चमक रही थी। यह महामेघों के सदृश गर्जना कर रहा था और नीले मेघों के सदृश आकारधारी था ॥५४॥

भूत्वा यज्ञवराहो वै अपः संप्राविशत् प्रभुः ।
दंष्ट्रेणैकेन चोद्धृत्य स्वे स्थाने न्यविशन्महीम् ॥५५॥

भगवान् विष्णु ने यज्ञ रूपी वराह का रूप धारण करके जल में प्रवेश किया और एक दंष्ट्रा पर पृथ्वी को उठाकर अपने स्थान पर भूमि को स्थापित कर दिया ॥५५॥

पुनरेव महाबाहुरपूर्वां तनुमाश्रितः ।
नरस्य कृत्वार्द्धतनुं सिंहस्यार्द्धतनुं प्रभुः ॥५६॥

फिर महाबाहु भगवान विष्णु ने अद्भुत शरीर धारण किया, कि जिसमें आधा शरीर तो मनुष्य का था और आधा शरीर सिंह का था ॥५६॥

दैत्येन्द्रस्य सभां गत्वा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ।
दैत्यानामादिपुरुषः सुरारिर्दितिनन्दनः ॥५७॥

यह इस शरीर को धारण करके दैत्यों की सभा में पहुंचा और अपने हाथ से उनका हाथ मिलाया। यह सुरों का शत्रु दिति-नन्दन, दैत्यों का आदि पुरुष था॥५७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्ट्वा चापूर्वरूपं क्रोधात् संरक्तलोचनः।
शूलोद्यतकरः स्रग्वी हिरण्यकशिपुस्तदा ॥५८॥

इस अद्भुत शरीर को देखकर क्रोध में इस दैत्य की लाल आंख हो गई। इस माला पहने हुए हिरण्यकशिपु ने अब अपने हाथ में शूल उठा लिया ॥५८॥

मेघस्तनितनिर्घोषो नीलाभ्रचयसन्निभः।
देवारिदितिजो वीरो नृसिंहं समुपाद्रवत् ॥५९॥

मेघ की गर्जना के सदृश शब्द करता हुआ, नीले मेघ के तुल्य आकारधारी, देवों का शत्रु दितिसुत, वीर, हिरण्यकशिपु, नृसिंह पर झपटा ॥५९॥

समुपेत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण बलीयसा।
नारसिंहेन वपुषा दारितः करजैर्भृशम् ॥६०॥

इस बलवान नृसिंह ने अपने नर और सिंह के शरीर से उसको दाब लिया और तीक्ष्ण नखों से उसका पेट फाड़ डाला ॥६०॥

एवं निहत्य भगवान् दैत्येन्द्रं रिपुघातिनम्।
भूयोऽन्यः पुण्डरीकाक्षः प्रभुर्लोकहिताय च ॥६१॥

शत्रुघाती, दैत्येन्द्र को इस तरह मार कर, फिर लोक के हित के लिए भगवान, कमलनयन ने कश्यप का पुत्र होकर अदिति के गर्भ से जन्म लिया। एक सहस्र वर्ष के बीत जाने पर अदिति ने इस गर्भ से पुत्र उत्पन्न किया ॥६१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्यपात्मजः श्रीमानदित्या गर्भधारितः ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रसूता गर्भमुत्तमम् ॥६२॥
दुर्दिनाम्भोदसदृशो दीप्ताक्षो वामनाकृतिः ।
दण्डी कमण्डलुधरः श्रीवत्सोरसिभूषितः ॥६३॥
जटी यज्ञोपवीती च भगवान् बालरूपधृक् ।
यज्ञवाटं गतः श्रीमान् दानवेन्द्रस्य वै तदा ॥६४॥
बृहस्पतिसहायोऽसौ प्रविष्टो बलिनो मखे ।
तं दृष्ट्वा वामनतनुं प्रहृष्टो बलिरब्रवीत् ॥६५॥

यह मेघ से आच्छन्न दिन के बादलों के तुल्य आकार धारी, दीप्त नेत्रों वाला, वामन अवतार था। इसने दण्ड, कमण्डलु धारण कर रखा था और श्रीवत्स के चिन्ह से इसकी छाती सुशोभित थी। भगवान् ने जटा धारण कर रक्खी थी और यज्ञोपवीत पहन रक्खा था। यह श्रीमान् बालक का रूप धारण किये हुए, दैत्यराज के यज्ञ में पहुंचा। यह बृहस्पतिको साथ लेकर बलि दैत्य के यज्ञ में गया था। इस वामन शरीर को देखकर राजा बलि प्रसन्न होकर बोला ॥६२-६५॥

प्रीतोऽस्मि दर्शने विप्र ब्रूहि त्वं किं ददानि ते।
एवमुक्तस्तु बलिना वामनः प्रत्युवाच ह ॥६६॥
स्वस्तीत्युक्त्वा बलिं देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ।
मेदिनीं दानवपते देहि मे विक्रमत्रयम् ॥६७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे विप्र ! मैं आपके दर्शनों से बड़ा ही प्रसन्न हो गया हूं, कहो- तुमको क्या प्रदान करूं ? बलि के इतना कहने पर वामन बोले--दैत्यराज ! आपका कल्याण हो इतना कहकर वामन कुछ मुस्कुरा दिए। हे दानवपते ! मैं तो आपसे तीन पद पृथिवी लेने आया हूं ॥६६-६७॥

बलिर्ददौ प्रसन्नात्मा विप्रायामिततेजसे ।
ततो दिव्याद्भुततमं रूपं विक्रमतो हरेः ॥६८॥
विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्यो जहाराशु स मेदिनीम् ।
ददौ शक्राय च महीं विष्णुर्देवः सनातनः ॥६९॥

बलि ने प्रसन्न होकर अत्यन्त तेजस्वी ब्राह्मण को तीन चरण पृथिवी देना स्वीकार कर लिया। पृथिवी को तीन चरणोंसे नापने के समय भगवान् ने दिव्य रूप धारण किया। इस शान्त वामन ने तीन ही चरणों में सारी मेदिनी का अपहरण कर लिया। अब सनातन देव भगवान् विष्णु ने इस भूमि को इन्द्रके लिए प्रदान कर दिया ॥६८-६९॥

एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावः प्रकीर्त्तितः ।
येन देवाः प्रादुरासन् वैष्णवश्चोच्यते जगत् ॥७०

यह तुमको मैंने वामन अवतार की कथा सुना दी है। जिससे दोनों का अभ्युदय हुआ और यह जगत् वैष्णव कहाया ॥७०॥

असतां निग्रहार्थाय धर्मसंरक्षणाय च ।
अवतीर्णो मनुष्याणामजायत यदुक्षये ॥७१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हीं भगवान् विष्णु ने अब दुष्टों के नाश और धर्म की रक्षा के लिये मनुष्यों में यदुकुल में अवतार लिया है। ही भगवान् विष्णु, अब कृष्ण कहा रहे हैं ॥७१॥

स एष भगवान् विष्णुः कृष्णेति परिकीर्त्तते ।
अनाद्यन्तमजं देवं प्रभुं लोकनमस्कृतम् ॥७२॥
यं देवं विदुषो गान्ति तस्य कर्माणि सैन्धव ।

हे सिन्धुराज, अनादि, अनन्त, अज, देव, प्रभु, लोको के नमस्कृत भगवान् विष्णु और उसके कर्मो का भी सारे विद्वान् गान करते रहते हैं ॥७२॥

यमाहुरजितं कृष्णं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥७३॥
श्रीवत्सधारिणं देवं पीतकौशेयवाससम् ।
प्रधानं शस्त्रविदुषां तेन कृष्णेन रक्ष्यते ॥७४॥

शङ्ख, चक्र, गदाधारी, श्रीवत्स के चिन्ह से विभूषित, पीले रेशमी वस्त्र पहने हुए, शस्त्र के ज्ञाताओं में प्रधान, जिस श्रीकृष्ण को सब लोग अजेय कहते हैं, अर्जुन उसी कृष्ण से सुरक्षित है ॥ ७३-७४ ॥

सहायः पुण्डरीकाक्षः श्रीमानतुल-विक्रमः ।
समानस्यन्दने पार्थमास्थाय परवीरहा ॥७५॥

अत्यन्त-पराक्रमी, कमलनेत्र, श्रीमान् कृष्ण अर्जुन के सहायक हैं, जो शत्रुओं के वीरों के नाशक और अर्जुन के साथ एक ही रथ में बैठते हैं ॥ ७५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न शक्यते तेन जेतुं त्रिदशैरपि दुःसहः ।
कः पुनर्मानुषो भावो रणे पार्थं विजेष्यते ॥७६॥

तुम उस अर्जुन को नहीं जीत सकोगे। वह देवों से भी नहीं जीता जा सकता है, फिर कौन मनुष्य ऐसा उत्पन्न हुआ है, जो रण में अर्जुन को जीत सके ॥७६॥

तमेकं वर्जयित्वा तु सर्वं यौधिष्ठिरं बलम् ।
चतुरः पाण्डवान्राजन् दिनैकं जेष्यसे रिपून् ॥७७॥

हे राजन्! तू उसी अर्जुन के सिवाय राजा युधिष्ठिर की सारी सेना और शत्रुभूत चारों भाइयों को एक ही दिन में जीत लेगा ॥७७॥

वैशम्पायन उवाच---

इत्येवमुक्त्वा नृपतिं सर्वपापहरो हरः ।
उमापतिः पशुपतिर्यज्ञहा त्रिपुरार्दनः ॥७८॥
वामनैर्विकटैः कुब्जैरुग्रश्रवणदर्शनैः ।
वृतः पारिषदैर्घोरैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ॥७९॥
त्र्यम्बको राजशार्दूल भगनेत्रनिपातनः ।
उमासहायो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥८०॥

वैशम्पायन बोले—हे राजशार्दूल! सब पापों के हरण करने वाले भगवान् शंकर, जयद्रथ से इतना कहकर दक्ष-यज्ञ के विध्वंसक, त्रिपुरनाशक, पशुपति, उमापति, वामन, विकट, कुबड़े, ऊंचे नीचे कान और दांतों वाले, अनेकों शस्त्र धारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किए हुए, अपने पारिषदों से घिरे हुए, भग देवता के नेत्र उखाड़ने वाले, भगवान् शङ्कर, पार्वती के साथ वहीं अलक्षित हो गए ॥७८-८०॥

जयद्रथोऽपि मन्दात्मा स्वमेव भवनं ययौ ।
पाण्डवाश्च वने तस्मिन् न्यवसन् काम्यके तथा ॥८१

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि जयद्रथविमोक्षणपर्वणि जयद्रथवरप्राप्तौ एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७१

समाप्तश्च जयद्रथविमोक्षणपर्व

मूर्ख जयद्रथ भी अपने घर आया और पाण्डव, उसी काम्यक वन में निवास करते रहे ॥८१॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत जयद्रथविमोक्षणपर्व में जयद्रथ के वरदान प्राप्ति का, दो सौ इकहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर जयद्रथविमोक्षणपर्व भी समाप्त हो गया ।

रामोपाख्यानपर्व

दो सौ बहत्तरवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

एवं हृतायां कृष्णायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम् ।
अत ऊर्ध्वं नरव्याघ्राः किमकुर्वत पाण्डवाः ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनमेजय ने पूछा—हे महाभाग ! इस प्रकार द्रौपदी के हरण और महाक्लेश को प्राप्त होने के अनन्तर नरश्रेष्ठ पाण्डवों ने क्या किया ॥१॥

वैशम्पायन उवाच---

एवं कृष्णां मोचयित्वा विनिर्जित्य जयद्रथम् ।
आसाञ्चक्रे मुनिगणैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥२॥

वैशम्पायन बोले---हे राजन् ! इस प्रकार जयद्रथ को जीत कर और द्रौपदी को छुड़ाकर राजा युधिष्ठिर, मुनियों के पास बैठ गए ॥२॥

तेषां मध्ये महर्षीणां शृण्वतामनुशोचताम् ।
मार्कण्डेयमिदं वाक्यमब्रवीत् पाण्डुनन्दनः ॥३॥

बातचीत को सुनते हुए, और चिन्ता सी करते हुए महर्षियों के मध्य में मार्कण्डेय मुनि से पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर कहने लगे ॥३॥

युधिष्ठिर उवाच—

भगवन् देवर्षीणां त्वं ख्यातो भूतभविष्यवित् ।
संशयं परिपृच्छामि छिन्धि मे हृदि संस्थितम् ॥४॥

हे भगवन् ! तुम देवर्षियों के मध्य में विख्यात हो और भूत भविष्यत् को जानने वाले हो। मुझे एक संशय हो रहा है। मैं उसके विषय में पूछता हूं, तुम मेरे संशय का नाश करो ॥४॥

द्रुपदस्य सुता ह्येषा वेदिमध्यात् समुत्थिता ।
अयोनिजा महाभागा स्नुषा पाण्डोर्महात्मनः ॥५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह द्रुपदकन्या वेदी के मध्य से उत्पन्न हुई है। यह महात्मा पाण्डु की पुत्रवधू महाभागा द्रौपदी, गर्भ से उत्पन्न नहीं हुई है॥५॥

मन्ये कालश्च भगवान् दैवश्च विधिनिर्मितम् ।
भवितव्यश्च भूतानां यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥६॥

मैं तो काल औरविधाताकी निर्माण हुई प्राणियोंकी होनहार को ही भगवान् समझता हूं, क्योंकि इनका कोई मनुष्य अतिक्रमण नहीं कर सकता है ॥६॥

इमां हि पत्नीमस्माकं धर्मज्ञां धर्मचारिणीम् ।
संस्पृशेदीदृशो भावः शुचिं स्तैन्यमिवानृतम् ॥७॥

धर्म के जानने वाली और धर्म का आचरण करने वाली, इस हमारी शुचि पत्नी को यह अपहरण रूप अनुचित क्लेश का दुःख उठाना पड़ा जैसे चोर को अनृत [निन्दा] प्राप्त होता है, वैसे ही इसे यह क्लेश प्राप्त हुआ ॥७॥

न हि पापं कृतं किञ्चित् कर्म वा निन्दितं क्वचित् ।
द्रौपद्या ब्राह्मणेष्वेव धर्मः सुचरितो महान् ॥८॥

द्रौपदी ने न तो कभी पाप किया और न कहीं कोई निन्दित कर्म किया है। द्रौपदी ने तो ब्राह्मणों के साथ भी सदा धर्म का ही व्यवहार किया है ॥८॥

तां जहार बलाद्राजा मूढ़बुद्धिर्जयद्रथः ।
तस्याः संहरणात् पापः शिरसः केशपातनम् ॥९॥
पराजयञ्च संग्रामे ससहायः समाप्तवान् ।
प्रत्याहृता तथास्माभिर्हत्वा तत् सैन्धवं बलम् ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस द्रौपदी को भी मूढ़ बुद्धि, राजा जयद्रथ ने बल-पूर्वक हरण कर लिया, जिसके अपहरण से ही पापी जयद्रथ के केश काटे गए। यह दुष्ट अपने साथियों के साथ युद्ध में पराजय को प्राप्त हुआ। हमने सिन्धुराज की सेना का नाश करके द्रौपदी को फिर लौटा लिया ॥९-१०॥

तदारहरणं प्राप्तमस्माभिरवितर्कितम् ।
दुःखश्चायं वने वासो मृगयायाश्च जीविका ॥११॥

देखो ? हमें भी अपनी स्त्री के अपहरण का कैसा अविचारणीय क्लेश भोगना पड़ा है। वन में वास और मृगया से निर्वाह करना भी कितना दुःखदायी है ॥११॥

हिंसा च मृगजातीनां वनौकीभिर्वनौकसाम् ।
ज्ञातिभिर्विप्रवासश्च मिथ्याव्यवसितैरियम् ॥१२॥

हम वनवासी होकर भी वनवासी मृगों की हिंसा कर रहे हैं। हमको बन्धु बान्धवों से वियोग प्राप्त हो रहा है और इस तरह का मुनिवेश धारण करके भी मृगया आदि मिथ्या व्यवहार करने पड़ते हैं ॥१२॥

अस्ति नूनं मया कश्चिदल्पभाग्यतरो नरः ।
भवता दृष्टपूर्वो वा श्रुतपूर्वोऽपि वा भवेत् ॥१३॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि युधिष्ठिरप्रश्ने द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७२॥

क्या कोई मुझ जैसा अल्प भाग्य वाला (कम्बख्त) मनुष्य आपने देखा या सुना है ॥१३॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में युधिष्ठिर प्रश्न का दो सौ बहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ तिहत्तरवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच---

प्राप्तमप्रतिमं दुःखं रामेण भरतर्षभ ।
रक्षसा जानकी तस्य हृता भार्या बलीयसा ॥१॥
आश्रमाद्राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।
मायामास्थाय तरसा हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥२॥

मार्कण्डेय ने कहा–हे भरतर्षभ! तुम्हारा सा क्लेश रामचन्द्रजी ने भी पूर्व काल में पाया है। उनकी भार्या जानकी को भी बलवान् दुरात्मा राक्षसराज रावण, आश्रम से हर लेगया था। इस राक्षस ने छल करके अपने वेग से बीच में विघ्न करने वाले जटायु को मार डाला ॥१-२॥

प्रत्याजहार तां रामः सुग्रीवबलमाश्रितः ।
बद्ध्वा सेतुं समुद्रस्य दग्ध्वा लङ्कां शितैः शरैः॥३॥

सुग्रीव की सहायता प्राप्त करके रामचन्द्र जी ने समुद्र का पुल बांध कर तीक्ष्ण बाणों से लङ्का को जा जलाया और श्रीजानकी को फिर प्राप्त कर लिया ॥३॥

युधिष्ठिर उवाच---

कस्मिन्नामः कुले जातः किं वीर्य्यः किम्पराक्रमः ।
रावणः कस्य पुत्रो वा किं वैरं कस्य तेन ह ॥४॥

राजा युधिष्ठिर ने कहा—राम किस कुल में उत्पन्न हुए और उनकी शक्ति तथा पराक्रम कैसा था । रावण किसका पुत्र था और उसका क्यों इनके साथ वैर हो गया ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतन्मे भगवन् सर्वं सम्यगाख्यातुमर्हसि ।
श्रोतुमिच्छामि चरितं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥५॥

हे भगवन्! यह सब तुम मुझसे अच्छी तरह वर्णन कीजिए। मैं उत्तम कर्मकारी राम के चरित्र सुनना चाहता हूं ॥५॥

मार्कण्डेय उवाच—

शृणु राजन् यथावृत्तमितिहासं पुरातनम् ।
सभार्य्येण यथा प्राप्तं दुःखं रामेण भारत ॥६॥

मार्कण्डेय बोले—हे राजन्! तुम एक प्राचीन ऐतिहासिक वृत्तान्त सुनो, कि अपनी भार्या के साथ राम ने किस तरह दुःख उठाया था ॥६॥

अजो नामाभवद्राजा महानिक्ष्वाकुवंशजः ।
तस्य पुत्रो दशरथः शश्वत् स्वाध्यायवान् शुचिः ॥७॥

एक अज नामक इक्ष्वाकुवंशी महान् राजा हो चुका है। उसका पुत्र दशरथ था, जो बड़ा शुचि और सदा स्वाध्याय शील था ॥७॥

अभवंस्तस्य चत्वारः पुत्रा धर्मार्थकोविदाः ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्च महाबलः ॥८॥

धर्म अर्थ के जानने वाले, उसके चार पुत्र थे। इनके राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, ये नाम थे ॥८॥

रामस्य माता कौशल्या कैकेयी भरतस्य तु ।
सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायाः परन्तपौ ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम की माता कौशल्या और भरत की कैकयी थी। शत्रुनाशक लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता का नाम सुमित्रा था ॥९॥

विदेहराजो जनकः सीता तस्यात्मजा विभो।
याञ्चकार स्वयं त्वष्टा रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥१०॥

हे विभो! विदेहराज जनक था। जिसकी पुत्रीका नाम सीता था, जिसको स्वयं प्रजापति ने स्वयं अपने सङ्कल्प से बनाया था।

एतद्रामस्य ते जन्म सीतायाश्च प्रकीर्त्तितम्।
रावणस्यापि ते जन्म व्याख्यास्यामि जनेश्वर ॥११॥

हे जनेश्वर! यह मैंने राम और सीता का जन्म सुना दिया, अब रावण का जन्म भी सुनाता हूं ॥११॥

पितामहो रावणस्य साक्षाद्देवः प्रजापतिः।
स्वयम्भूः सर्वलोकानां प्रभुः स्रष्टा महातपाः ॥१२॥

प्रजापति ब्रह्मदेव रावण के पितामह हैं। जो महातपस्वी, स्वयम्भू ब्रह्मा, सब लोकों के रचयिता और प्रभु हैं ॥१२॥

पुलस्त्यो नाम तस्यासीन्मानसो दयितः सुतः।
तस्य वैश्रवणो नाम गवि पुत्रोऽभवत् प्रभुः ॥१३॥

इसी ब्रह्मा का पुलस्त्य नामक एक मनसे उत्पन्न प्रिय पुत्र था, इसकी गौसङ्ज्ञक भार्या में वैश्रवण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१३॥

पितरं स समुत्सृज्य पितामहमुपस्थितः।
तस्य कोपात् पिता राजन् ससर्जात्मानमात्मना ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अपने पिता को छोड़ कर पितामह के पास चला गया। हे राजन्! इसी के कोप से इसके पिता पुलस्त्य ने योग बल से अपने आपको दो भागों में बांट लिया ॥१३॥

स जज्ञे विश्रवा नाम तस्यात्मार्द्धेन वै द्विजः ।
प्रतीकाराय सक्रोधस्ततो वैश्रवणस्य वै ॥१५॥

इसके शरीर के एक भाग से विश्रवा नामक पुत्र हुआ, जो वैश्रवण(कुबेर)के विरोध के लिये क्रोधसहित उत्पन्न हुआ था ॥१५

पितामहस्तु प्रीतात्मा ददौ वैश्रवणस्य ह ।
अमरत्वं धनेशत्वं लोकपालत्वमेव च ॥१६॥

ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर वैश्रवण को देव, धनेश और लोकपाल की पदवी प्रदान की ॥ १६ ॥

ईशानेन तथा सख्यं पुत्रश्च नलकूबरम् ।
राजधानीनिवेशश्च लङ्कां रक्षोगणान्विताम् ॥१७॥

इसकी महादेव से मित्रता, नलकूबर पुत्र, और राक्षसों के गणों से युक्त लङ्का राजधानी बना दी गई ॥ १७ ॥

विमानं पुष्पकं नाम कामगश्च ददौ प्रभुः ।
यक्षाणामाधिपत्यञ्च राजराजत्वमेव च ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि वैश्रवणोत्पत्तौ त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७३॥

पितामह ब्रह्मा ने इसको कामना के अनुसार गमन करने वाला, पुष्पक विमान और यक्षों का आधिपत्य प्रदान किया और इसकी राज-राज पदवी उद्घोषित की गई ॥ १८ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में वैश्रवण उत्पत्ति का दो सौ तेहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ ॥

******

दो सौ चाहत्तरवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच—

पुलस्त्यस्य तु यः क्रोधादर्द्धदेहोऽभवन्मुनिः ।
विश्रवा नाम सक्रोधः स वैश्रवणमैक्षत ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे राजन् ! पुलस्त्य के देह के अर्ध भाग से क्रोधपूर्वक जो मुनि विश्रवा पैदा हुआ, उसने क्रोध के साथ कुबेर की ओर देखा ॥ १ ॥

बुबुधे तन्तु सक्रोधं पितरं राक्षसेश्वरः
कुबेरस्तत्प्रसादार्थं यतते स्म सदा नृप ॥२॥

हे नृप, राक्षसों की पुरी के अधीश्वर कुबेर, अपने पिता के रूप विश्रवा को कुपित जान कर उसके प्रसन्न करने को सदा यत्न करता रहता था ॥२॥

स राजराजो लङ्कायां न्यवसन्नरवाहनः ।
राक्षसीः प्रददौ तिस्रः पितुर्वै परिचारिकाः ॥३॥

यह राजा कुबेर, मनुष्यों का वाहन बना कर लङ्का में रहा करता था। इसने पिता की सेवा करने को तीन राक्षसी भेजी ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताः सदा तं महात्मानं सन्तोषयितुमुद्यताः ।
ऋषिं भरतशार्दूल नृत्यगीतविशारदाः ॥४॥

हे भरत-शार्दूल! नांचने गाने में कुशल, ये दासी, सदा इस महात्मा ऋषि के सन्तुष्ट करने का उद्योग करती रहती थी ॥४॥

पुष्पोत्कटा च राकाच मालिनी च विशाम्पते ।
अन्योऽन्यस्पर्द्धया राजन् श्रेयस्कामाः सुमध्यमाः ॥५

विशाम्पते! पुष्पोत्कटा, राका और मालिनी ये इन तीनों राक्षसियों के [illegible] थे। हे राजन्! ये तीनों सुन्दरी, अपना २ कल्याण च[illegible] हुई, एक दूसरी की स्पर्धा (होड़) करके कल्याण की कामना कर रही थी ॥५॥

स तासां भगवांस्तुष्टो महात्मा प्रददौ वरान् ।
लोकपालोपमान् पुत्रानेकैकस्या यथेप्सितान् ॥६॥

इन पर तेजस्वी, मुनि विश्रवा सन्तुष्ट हो गए। इस महात्मा ने इनको वर प्रदान किया कि तुम अपनी २ इच्छा के अनुसार लोकपालों के सदृश पुत्र उत्पन्न करोगी ॥६॥

पुष्पोत्कटायां जज्ञाते द्वौ पुत्रौराक्षसेश्वरौ ।
कुम्भकर्णदशग्रीवौ बलेनाप्रतिमौ भुविः ॥७॥

पुष्पोत्कटा में दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो पृथिवी पर बल में अद्वितीय थे। इन राक्षसेश्वरों का रावण और कुम्भकर्ण नाम था ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालिनी जनयामास पुत्रमेकं विभीषणम् ।
राकायां मिथुनं जज्ञे खरः शूर्पणखा तथा ॥८॥

मालिनी ने भी एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम विभीषण रक्खा गया और राका में दो बच्चे साथ २ पैदा हुए। जिन में एक का नाम खर और दूसरी कन्या का नाम शूर्पणखा था ॥८॥

विभीषणस्तु रूपेण सर्वेभ्योऽभ्यधिकोऽभवत् ।
स बभूव महाभागो धर्मगोप्ता क्रियारतिः॥९॥

यह विभीषण, रूप में सबसे अधिक था। यह महाभाग धर्म का रक्षक और क्रिया-शील था ॥९॥

दशग्रीवस्तु सर्वेषां श्रेष्ठो राक्षसपुङ्गवः ।
महोत्साहो महावीर्य्यो महासत्त्वपराक्रमः ॥१०॥

इनमें रावण, सब राक्षसों में श्रेष्ठ था। यह बड़ा उत्साही, महाशक्तिशाली, और महामनस्वी तथा पराक्रमी था ॥१०॥

कुम्भकर्णो बलेनासीत् सर्वेभ्योऽभ्यधिको युधि ।
मायावी रणशौण्डश्च रौद्रश्च रजनीचरः ॥११॥

कुम्भकर्ण, इन सब में बल में अधिक था। यह बड़ा मायावी रण में कुशल और भीषण राक्षस था ॥११॥

खरो धनुषि विक्रान्तो ब्रह्मद्विट् पिशिताशनः ।
सिद्धविघ्नकरी चापि रौद्री शूर्पणखा तदा ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खर राक्षस भी धनुष चलाने में बड़ा विक्रमशाली, ब्रह्मद्वेषी और मांसभोजी था। सिद्धों के विघ्न करने वाली शूर्पणखा भी बड़ी भयानक सी थी ॥१२॥

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।
ऊषुः पित्रा सह रता गन्धमादनपर्वते ॥१३॥

ये सब वेद के जानने वाले, उत्तम चरित्र और व्रत वाले शूरवीर थे। ये अपने पिता के साथ गन्धमादन पर्वत पर बड़े प्रेम से रहते थे ॥१३॥

ततो वैश्रवणं तत्र ददृशुर्नरवाहनम् ।
पित्रा सार्द्धं समासीनमृद्ध्या परमया युतम् ॥१४॥

इन्होंने नरों के वाहन वाले, कुबेर को महान् समृद्धि से युक्त, पिता के पास कभी बैठा देखा॥१४॥

जातामर्षास्ततस्ते तु तपसे धृतनिश्चयाः ।
ब्रह्माणं तोषयामासुर्घोरेण तपसा तदा ॥१५॥

कुबेर को देखकर इनके मन में जलन पैदा हुई, जिससे इन्होंने तप करने का निश्चय कर लिया। इन्होंने महाघोर तप के द्वारा ब्रह्मा को सन्तुष्ट कर लिया ॥१५॥

अतिष्ठदेकपादेन सहस्रं परिवत्सरान् ।
वायुभक्षो दशग्रीवः पञ्चाग्निः सुसमाहितः ॥१६॥

सहस्र वर्ष तक रावण एक पाद से खड़ा रहा। इस समय यह वायु का ही आहार करता था। कभी बड़ी सावधानी से पंचाग्नि के मध्य में बैठ कर तप करता ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधःशायी कुम्भकर्णो यताहारी यतव्रतः ।
विभीषणः शीर्णपर्णमेकमभ्यवहारयन् ॥१७॥

कुम्भकर्ण भी व्रतशील होकर बहुत न्यून आहार करता था और भूमि में सोता था। विभीषण केवल, एक शुष्क पत्ते का आहार करता था ॥१७॥

उपवासरतिर्धीमान् सदा जप्यपरायणः ।
तमेव कालमातिष्ठत्तीव्रं तप उदारधीः ॥१८॥

यह उदार बुद्धिवाला, ज्ञानी, विभीषण, सदा उपवास और जप में ही संलग्न रहता था। इसने इस समय बड़ा ही तीव्र तप कर डाला ॥१८॥

खरः शूर्पणखा चैव तेषां वै तप्यतां तपः ।
परिचर्याश्च रक्षाश्च चक्रतुर्हृष्टमानसौ ॥१९।

खर और शूर्पणखा, इन तीनों के तप करने के समय इनकी सेवा और रक्षा बड़े प्रसन्न मन से कर रहे थे ॥१९॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्छित्वा दशाननः ।
जुहोत्यग्नौ दुराधर्षस्तेनातुष्यज्जगत्प्रभुः ॥२०।

एक सहस्र वर्ष के पूर्ण हो जाने पर दुरधर्ष दशानन ने अपना सिर काट डाला और अग्नि में हवन कर दिया, जिससे जगत् का स्वामी ब्रह्मा सन्तुष्ट हो गया ॥२०॥

ततो ब्रह्मा स्वयं गत्वा तपसस्तान् न्यवारयत् ।
प्रलोभ्य वरदानेन सर्वानेव पृथक् पृथक् ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब ब्रह्मा ने स्वयं इनके पास जाकर इनको तप करने से रोक दिया। इसने इन सबको पृथक् २ वरदान से मोहित कर लिया ॥२१॥

श्री ब्रह्मोवाच---

प्रीतोऽस्मि वो निवर्त्तध्वं वरान् वृणुत पुत्रकाः।
यद्यदिष्टमृते त्वेकममरत्वं तथास्तु तत् ॥२२॥

ब्रह्मा बोले--हे पुत्रो ! मैं तुम पर प्रसन्न हूं, तुम वर मांगो और तप के झगड़े से निवृत्त हो जाओ। तुमको जो २ चाहिए-वह मांग लो, परन्तु अमर नहीं हो सकोगे ॥२२॥

यद्यदग्नौ हुतं सर्वं शिरस्ते महदीप्सया।
तथैव तानि ते देहे भविष्यन्ति यथेप्सया ॥२३॥

तू ने बड़ी कामना से अग्नि में अपने शिरों का जितनी बार हवन किया है। उतने ही शिर तेरी इच्छानुसार तेरी देह में उत्पन्न होंगे ॥ २३ ॥

वैरूप्यञ्च न ते देहे कामरूपधरस्तथा।
भविष्यसि रणेऽरीणां विजेता न च संशयः ॥२४॥

इससे तेरा शरीर भद्दा नहीं लगेगा, तू अपनी इच्छा के अनुसार भी रूप धारण कर सकेगा-इस प्रकार रण में शत्रुओं का विजेता होगा। इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥

रावण उवाच---

गन्धर्वदेवासुरतो यक्षराक्षसतस्तथा।
सर्पकिन्नरभूतेभ्यो न मे भूयान् पराभवः ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण ने कहा---गन्धर्व, देव, असुर, यक्ष, राक्षस, सर्प किन्नर, भूतों से मेरा कभी पराजय न हो ॥ २५ ॥

श्री ब्रह्मोवाच--

य एते कीर्तिताः सर्वे न तेभ्योऽस्ति भयन्तव ।

ऋते मनुष्याद्भद्रन्ते तथा तद्विहितं मया ॥२६॥

ब्रह्मा से कहा---हे रावण ! यह जो तुमने नाम गिनाए हैं, इनसे तुमको कुछ भी भय नहीं होगा । हां ? इसमें मनुष्य, बच गये । उनसे भय हो सकता है । यह सब कुछ मैंने निश्चित कर दिया ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच--

एवमुक्तो दशग्रीवस्तुष्टः समभवत्तदा ।

अवमेने हि दुर्बुद्धिर्मनुष्यान् पुरुषादकः ॥२७॥

मार्कण्डेय बोले---हे राजन् ! ब्रह्मा के इतना कहने पर ही रावण सन्तुष्ट हो गया। इस दुर्बुद्धि, पुरुषभक्षक, रावण ने मनुष्यों का कुछ खयाल ही नहीं किया ॥२७॥

कुम्भकर्णमथोवाच तथैव प्रपितामहः ।

स वव्रे महतीं निद्रां तमसा ग्रस्तचेतनः ॥२८॥

कुम्भकर्ण से प्रपितामह ब्रह्मा ने वर मांगने कोकहा,तो इसने तमोगुण में ग्रस्त होकर बड़ी लम्बी निद्रा मांग ली ॥ २८ ॥

तथा भविष्यतीत्युक्त्वा विभीषणमुवाच ह ।

वरं वृणीष्व पुत्र त्वं प्रीतोऽस्मीति पुनः पुनः ॥२९॥

कुम्भकर्ण को वर देकर ब्रह्माजी विभीषण से बोले---हे पुत्र, मैं तुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हूं, तू वर मांग ॥ २९ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभीषण उवाच----

परमापद्गतस्यापि नाधर्मे मे मतिर्भवेत् ।
अशिक्षितश्च भगवन् ब्रह्मास्त्रं प्रतिभातु मे ॥३०॥

विभीषण बोला----हे भगवन्, मैं परम आपत्ति में होने पर भी धर्म का त्याग न कर सकूं। विना ब्रह्मास्त्र के सीखे ही मुझे इसका ज्ञान हो जावे ॥ ३० ॥

ब्रह्मोवाच--

यस्माद्राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रकर्षण ।
नाधर्मे धीयते बुद्धिरमरत्वं ददानि ते ॥३१॥

ब्रह्मा बोले---हे शत्रुनाशक! तुम यद्यपि राक्षस योनि में उत्पन्न हुए हो, तो भी वर देता हूं, कि तुम्हारी बुद्धि, अधर्म में प्रवृत्त नहीं होगी और तुम सदा अमर रहोगे ॥ ३१ ॥

मार्कण्डेय उवाच--

राक्षसस्तु वरं लब्ध्वा दशग्रीवो विशाम्पते ।
लङ्कायाश्च्यावयामास युधि जित्वा धनेश्वरम्॥३२

मार्कण्डेय बोले----हे विशाम्पते ! राक्षस राज रावण ने वर पाकर युद्ध में कुबेर को जीत लिया और लङ्का से निकाल दिया ॥ ३२ ॥

हित्वा स भगवान् लङ्कामाविशद्गन्धमादनम् ।
गन्धर्वयक्षानुगतो रक्षःकिंपुरुषैः सह ॥३३॥

यह कुबेर भी लङ्का छोड़कर गन्धमादन पर्वत पर चला आया और यहां गन्धर्व, यक्ष, रक्ष और किन्नरों के साथ रहने लगा ॥ ३३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमानं पुष्पकं तस्य जहाराक्रम्य रावणः ।
शशाप तं वैश्रवणो न त्वामेतद्वहिष्यति ॥३४॥
यस्तु त्वां समरे हन्ता तमेवैतद्वहिष्यति ।
अवमन्य गुरुं माञ्च क्षिप्रं त्वं न भविष्यसि ॥३५॥

रावण ने आक्रमण करके इसका पुष्पक विमान भी छीन लिया। इस समय कुबेर ने इनको शाप दिया, कि पुष्पक, तुमको सवारी नहीं देगा और जो तुमको जीतेगा, यह उसको सवारी दे देगा। तुमने मुझ पूज्य का अनादर किया है, इससे तू बहुत शीघ्र ही नष्ट हो जावेगा ॥ ३४-३५॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा सतां मार्गमनुस्मरन् ।
अन्वगच्छन्महाराज श्रिया परमया युतः ।३६॥

हे महाराज ! विभीषण, धर्मात्मा था, यह सज्जनों के मार्ग को जानकर उसके पीछे चलने लगा। इससे यह महान् लक्ष्मी से युक्त हो गया ॥ ३६ ॥

तस्मै स भगवांस्तुष्टो भ्राता भ्रात्रे धनेश्वरः ।
सेनापत्यं ददौ धीमान् यक्षराक्षससेनयोः ॥३७॥

इस पर भगवान् बड़े भ्राता कुबेर सन्तुष्ट हो गए, तो इस अपने भाई विभीषण को इसने यक्ष राक्षसों की सेना का अधिपति बना दिया ॥ ३७ ॥

राक्षसा पुरुषादाश्च पिशाचाश्च महाबलाः ।
सर्वे समेत्य राजानमभ्यषिञ्चन्दशाननम् ॥३८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाबली, पुरुषभक्षक, पिशाच और राक्षसों ने इकट्ठे होकर रावण को लङ्का के सिंहासन पर बैठा दिया ॥३८॥

दशग्रीवश्च दैत्वानां देवानाञ्च बलोत्कटः ।
आक्रम्य रत्नान्यहरत् कामरूपी विहङ्गमः ॥३९॥

यह बलोत्कट रावण, दैत्य और देवों पर आक्रमण करके उनके रत्न छीनने लगा। यह अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर लेता था और आकाश में उड़ जाता था ॥३९॥

रावयामास लोकान् यत् तस्माद्रावण उच्यते ।
दशग्रीवः कामबलो देवानां भयमादधत् ॥४०॥

इति श्रीमहाभरत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रावणादिवरप्राप्तौ चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥

इसने सारे लोकों को रुला दिया, जिससे इसका नाम रावण पड़ा। कामना के अनुसार बल वाले इस रावण ने देवों को बड़ा ही भय खड़ा कर दिया ॥४०॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में रावणादि के वर प्राप्त होने का दो सौ चौहत्तरवां अध्याय समाप्त हो गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ पिचहत्तरवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच---

ततो ब्रह्मर्षयः सर्वे सिद्धा देवर्षयस्तथा ।
हव्यवाहं पुरस्कृत्य ब्रह्माणं शरणं गताः ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे भारत ! अब सारे ब्रह्मर्षि,देवर्षि,सिद्ध अग्नि देव को साथ लेकर ब्रह्मा की शरण में पहुंचे ॥१॥

अग्निरुवाच—

योऽसौ विश्रवसः पुत्रो दशग्रीवो महाबलः ।
अवध्यो वरदानेन कृतो भगवता पुरा ॥ २॥
स बाधते प्रजाः सर्वा विप्रकारैर्महाबलः ।
ततो नस्त्रातु भगवान्नान्यस्त्राता हि विद्यते ॥३॥

अग्नि ने कहा—हे भगवन् ! आपने विश्रवा के पुत्र महाबली रावण को पूर्व काल में सबसे अवध्य होने का वर दे दिया है । यह महाबली सब तरह की बुराइयों से सारी प्रजा को बड़ी पीड़ित कर रहा है । अब आप हमारी रक्षा करें, आपके सिवा हमारा कोई रक्षक नहीं है ॥२-३॥

ब्रह्मोवाच--

न स देवासुरैः शक्यो युद्धे जेतुं विभावसो ।
विहितं तत्र यत् कार्य्यमभितस्तस्य निग्रहः ॥४॥
तदर्थमव-तीर्णोऽसौ मन्नियोगाच्चतुर्भुजः ।
विष्णुः प्रहरतां श्रेष्ठः स तत् कर्म करिष्यति ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा बोले—हे अग्ने ! यह रावण देव और असुरों से नहीं जीता जा सकेगा। मैंने उसको अच्छी तरह दण्ड देने का कार्य कर दिया है। इस काम के लिए मेरी प्रेरणा से चतुर्भुज भगवान् विष्णु ने अवतार ले लिया है। जो प्रहार करने में बड़ा वीर है। वह तुम्हारे इस काम को कर देगा ॥४-५॥

मार्कण्डेय उवाच—

पितामहस्ततस्तेषां सन्निधौ शक्रमब्रवीत् ।
सर्वैर्देवगणैः सार्द्धं सम्भव त्वं महीतले ॥६॥
विष्णोः सहायानृक्षीषु वानरीषु च सर्वशः ।
जनयध्वं सुतान् वीरान् कामरूपबलान्वितान् ॥७॥

मार्कण्डेय ने कहा--- पितामह ब्रह्मा ने सब के सन्मुख ही इन्द्र से कहा-तुम भी पृथिवी पर देवों के साथ जन्म ग्रहण करो। रीछ वानरों की स्त्रियाँ में विष्णु के सहायक, काम के अनुसार रूप और बल के धारी, वीर पुत्रों को उत्पन्न करो॥६-७॥

ततो भागानुभागेन देवगन्धर्वदानवाः ।
अवतर्त्तुं महीं सर्वे मन्त्रयामासुरञ्जसा ॥८॥

अब देव, गन्धर्व, दानव, पृथिवी पर अवतार लेने को अपनी शक्ति के अनुसार बड़ी शीघ्रता से विचार करने लगे ॥८॥

तेषां समक्षं गन्धर्वी दुन्दुभीं नाम नामतः ।
शशास वरदो देवो गच्छ कार्य्यार्थसिद्धये ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सबके सामने दुन्दुभी नाम गन्धर्वी को वरदायी ब्रह्मा ने आज्ञा दी, कि तुम भी देवों के कार्य के लिए जाओ ॥९॥

पितामहवचः श्रुत्वा गन्धर्वी दुन्दुभी ततः ।
मन्थरा मानुषे लोके कुब्जा समभवत्तदा ॥१०॥

पितामह के वचन सुनकर दुन्दुभी गन्धर्वी, मनुष्य लोक में कुबड़ी मन्थरा बन गई ॥१०॥

शक्रप्रभृतयश्चैव सर्वे ते सुरसत्तमाः ।
वानरर्क्षवरस्त्रीषु जनयामासुरात्मजान् ॥११॥

इन्द्र आदि सारे देवों ने वानर और रीछों की भार्याओं में अपने अंश से पुत्र उत्पन्न किए ॥११॥

तेऽन्ववर्त्तन् पितॄन् सर्वे यशसा च बलेन च ।
भेत्तारो गिरिशृङ्गाणां शालतालशिलायुधाः ॥१२॥

ये पुत्र, अपने २ पिता के बल और यश के अनुसार ही यशस्वी और बलवान् हुए। ये पर्वतों की शृङ्गों (चोटियों) को तोड़ डालते थे और शाल, ताल आदि वृक्ष तथा शिलाओं के शस्त्र धारण करते थे ॥१२॥

वज्रसंहननाः सर्वे सर्वे चौघबलास्तथा
कामवीर्य्यबलाश्चैव सर्वे युद्धविशारदाः ॥१३॥

इन सब के वज्र की तरह दृढ़ शरीर थे और सारे बल के प्रवाह के धारण करने वाले थे। ये सारे युद्ध में निपुण तथा कामना के अनुसार पराक्रम और बल को ग्रहण कर लेते थे ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागायुतसमप्राणा वायुवेगसमा जवे ।
यत्रेच्छकनिवासाश्च केचिदत्र वनौकसः ॥१४॥

इनमें दस हज़ार हाथियों तक का बल था। येवायु के समान वेगशील थे। कुछ वानर तो जहां चाहते-वहीं अपना निवास कर सकते थे ॥१४॥

एवं विधाय तत् सर्वं भगवान् लोकभावनः ।
मन्थरां बोधयामास यद्यत् कार्य्यं यथा यथा ॥१५॥

इस प्रकार लोक रक्षक भगवान् ब्रह्मा ने सारा काम निश्चित करके जिस तरह कार्य करना था, वह सब मन्थरा को समझा दिया ॥१५॥

सा तद्वचः समाज्ञाय तथा चक्रे मनोजवा ।
इतश्चेतश्च गच्छन्ती वैरसन्धुक्षणे रता ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि वानराद्युत्पत्तौ पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७५॥

मन के समान वेगशील, दुन्दुभी गन्धर्वी ने ब्रह्मा जी का वचन अच्छी तरह समझ लिया और वैसा ही किया। यह जिधर जाती थी, उधर ही वैर के प्रदीप्त करने की चेष्टा करती रहती थी ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में वानरों की उत्पति का दो सौ पिचहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ छिहत्तरवां अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

उक्तं भगवता जन्म रामादीनां पृथक् पृथक् ।
प्रस्थानकारणं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥१॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने राम लक्ष्मण आदि का जन्म पृथक् २ सुना दिया। अब इनके वनवास का कारण सुनना चाहता हूं—आप कहिए ॥१॥

कथं दाशरथी वीरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
संप्रस्थितौ वने ब्रह्मन् मैथिली च यशस्विनी ॥२॥

हे ब्रह्मन् ! दशरथके पुत्र, वीर, दोनों भाई, राम, लक्ष्मण और यशस्विनी सीता किस तरह वन में गए ॥२॥

मार्कण्डेय उवाच—

जातपुत्रो दशरथः प्रीतिमानभवन्नृप ।
क्रियारतिर्धर्मरतः सततं वृद्धसेवितः ॥३॥

मार्कण्डेय ने कहा—हे नृपते ! पुत्र के उत्पन्न होने से दशरथ बड़ा प्रसन्न हुआ। यह धार्मिक क्रियाओं में संलग्न, धर्मरत और वृद्धों की सङ्गति में रहता था ॥३॥

क्रमेण चास्य ते पुत्रा व्यवर्द्धन्त महौजसः ।
वेदेषु सरहस्येषु धनुर्वेदेषु पारगाः ॥४॥

इसके ये चारों पुत्र, क्रम से बढ़ने लगे। ये उपनिषद् सहित वेद और धनुर्वेद में पारङ्गत हो चुके थे ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरितब्रह्मचर्य्यास्ते कृतदाराश्च पार्थिव ।
यदा तदा दशरथः प्रीतिमानभवत् सुखी ॥५॥

हे राजन् ! इन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत को समाप्त करके विवाह कर लिया । अब इनको देखकर राजा दशरथ बड़ा प्रसन्न और सुखी होता था ॥५॥

ज्येष्ठो रामोऽभवत्तेषां रमयामास हि प्रजाः ।
मनोहरतया धीमान् पितुर्हृदयनन्दनः ॥६॥

इनमें सबसे बड़ा राम था । इससे प्रजा बड़ी सन्तुष्ट थी । इस बुद्धिमान ने अपनी मनोहरता से पिता के हृदय को बड़ा आनन्दित कर रखा था ॥६॥

ततः स राजा मतिमान् मत्वात्मानं वयोऽधिकम् ।
मन्त्रयामास सचिवैर्धर्मज्ञैश्च पुरोहितैः ॥७॥

बुद्धिमान् राजा ने अपनी आयु अधिक देखकर अपने मन्त्री और धर्मज्ञ पुरोहितों के साथ सलाह की ॥७॥

अभिषेकाय रामस्य यौवराज्येन भारत ।
प्राप्तकालश्च ते सर्वे मेनिरे मन्त्रिसत्तमाः ॥८॥

हे भारत ! राजा ने कहा, कि मैं राम को युवराज बनाकर अभिषेक करना चाहता हूं । समय के अनुसार प्राप्त हुए, इस राज्याभिषेक को मुख्य २ सारे मन्त्रियों ने स्वीकार कर लिया ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोहिताक्षं महाबाहुं मत्तमातङ्गगामिनम् ।
दीर्घबाहुं महोरस्कं नीलकुञ्चितमूर्द्धजम् ॥९॥
दीप्यमानं श्रिया वीरं शक्रादनवरं रणे ।
पारगं सर्वधर्माणां बृहस्पतिसमं मतौ ॥१०॥
सर्वानुरक्तप्रकृतिं सर्वविद्याविशारदम् ।
जितेन्द्रियममित्राणामपि दृष्टिमनोहरम् ॥११॥
नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम् ।
धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम् ॥१२॥
पुत्रं राजा दशरथः कौशल्यानन्दवर्द्धनम् ।
सन्दृश्य परमां प्रीतिमगच्छत् कुरुनन्दन ॥१३॥

हे कुरुनन्दन ! लाल आंखों वाले, महाबाहु, काले बांके बालों वाले, मस्त हाथी के सदृश गतिधारी, दीर्घ भुजावाले, बड़ी विशाल छाती के धारक, कान्ति से देदीप्यमान, वीर, रण में इन्द्र के समान पराक्रमी, सब धर्मों में पारङ्गत, बुद्धि में बृहस्पति के सदृश, सारी प्रजा के प्रेमी, सब विद्याओं के विद्वान्, जितेन्द्रिय, शत्रुओं को भी मनोहर लगने वाले, दुष्टों के दण्ड दाता, धर्मात्माओं के रक्षक, धैर्यशील, आक्रमण के अयोग्य, सब के विजेता, पराजित नहीं होने वाले, कौशल्या के आनन्द के वर्धक, पुत्र को देखकर राजा दशरथ बहुत आनन्दित होता था ॥९-१३॥

चिन्तयंश्च महातेजा गुणान् रामस्य वीर्य्यवान् ।
अभ्यभाषत भद्रन्ते प्रीयमाणः पुरोहितम् ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह महातेजस्वी वीर्यवान् राजा दशरथ, राम के गुणों को विचार कर बड़ी प्रसन्नता से पुरोहित वसिष्ठ से कहने लगा ॥१४॥

अद्य पुष्पो निशि ब्रह्मन् पुण्यं योगमुपैष्यति ।
सम्भाराः संभ्रियन्तां वै रामश्चोपनिमन्त्र्यताम् ॥१५॥

हे ब्रह्मन ! आज पुण्य-जनक पुष्प नक्षत्र का योग रात में आवेगा। तुम राम के राज्याभिषेक की सामग्री इकट्ठी करो और राम को बुलाओ ॥१५॥

श्व एष पुष्पो भविता यत्र रामः सुतो मया ।
यौवराज्येभिषेक्तव्यः पौरेषु सहमन्त्रिभिः ॥१६॥

कल तक पुष्प नक्षत्र का योग रहेगा, जिसमें मन्त्रियों के साथ पुरवासियों के सम्मुख राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करूंगा ॥१६॥

इति तद्राजवचनं प्रतिश्रुत्याथ मन्थरा ।
कैकेयीमभिगम्येदं काले वचनमब्रवीत् ॥१७॥

राजा के ये वचन सुनकर मन्थरा, कैकेयी के पास पहुंची और समयानुसार यह वचन बोली ॥१७॥

अद्य कैकेयि दौर्भाग्यं राज्ञा ते ख्यापितं महत् ।
आशीविषस्त्वां संक्रुद्धश्चण्डो दशतु दुर्भगे ॥१८॥

हे कैकेयी ! आज राजा ने तेरे दुर्भाग्य का द्वार खोल दिया है। हे दुर्भगे ! (कम्बख्त) अब तो तुझे क्रुद्ध हुआ, विषैला सर्प डस ले, तो बड़ी अच्छी बात होवे ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभगा खलु कौशल्या यस्याः पुत्रोऽभिषेक्ष्यते ।
कुतो हि तव सौभाग्यं यस्याः पुत्रो न राज्यभाक्॥१९

आज कौशल्या बड़ी भाग्य वाली है, जिसका पुत्र युवराज पद पर नियुक्त किया जा रहा है । जो तेरा पुत्र राज्य पर नहीं बैठा, तो तेरा सौभाग्य कहां से रह सकेगा ॥१९॥

सा तद्वचनमाज्ञाय सर्वाभरणभूषिता ।
वेदिविलग्नमध्येव बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥२०॥
विविक्ते पतिमासाद्य हसन्तीव शुचिस्मिता ।
प्रणयं व्यञ्जयन्तीव मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥२१॥

सब आभूषणों से विभूषित, वेदी के मध्य भाग के समान पतली कटिवाली, उत्तम रूपवती कैकेयी उसके वचन को सुनकर एकान्त में आये हुए पति के पास पहुंची। सुन्दर मुस्कुराने वाली कैकेयी, हंसती और प्रेम प्रदर्शित करती हुई, राजा से मधुर वाक्य बोली ॥२०-२१॥

सत्यप्रतिज्ञ यन्मे त्वं काममेकं निसृष्टवान् ।
उपाकुरुष्व तद्राजंस्तस्मान्मुच्यस्व सङ्कटात् ॥२२॥

हे सत्यप्रतिज्ञ ! तुमने मुझे एक वर दे रखा है । हे राजन् ! आज उस वर को प्रदान करो और मुझे सङ्कट से बचाओ ॥२२॥

राजोवाच—

वरं ददामि ते हन्त तद्गृहाण यदिच्छसि ।
अवध्यो वध्यतां कोऽद्य वध्यः कोऽद्य विमुच्यताम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनं ददानि कस्याद्य ह्रियतां कस्य वा पुनः ।
ब्राह्मणस्वादिहान्यत्र यत् किञ्चिद्वित्तमस्ति मे ॥२४॥

राजा बोला--हे भार्ये ! मैं बड़ी प्रसन्नता से वर देता हूं--तुम ग्रहण करो,आज किस अवध्य को मरवाना चाहती हो और किस वध्यको छुड़ाना चाहती हो, किसको धन दिलवाने की इच्छा है या किसका धन छिनवाना है । ब्राह्मण के धन के सिवा जो कुछ अन्य द्रव्य है, मैं उसे छीन सकता हूं ॥२४॥

पृथिव्यां राजराजोऽस्मि चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।
तस्तेऽभिलषितः कामो ब्रूहि कल्याणि मा चिरम् ॥

मैं पृथ्वी का राजराजेश्वर हूं और चारों वर्णों का रक्षक हूं । हे कल्याणि ! जिस कामना की तू अभिलाषा करती है, उसे बता, देर न कर ॥२५॥

सा तद्वचनमाज्ञाय परिगृह्य नराधिपम् ।
आत्मनो बलमाज्ञाय तत एनमुवाच ह ॥२६॥

कैकेयी राजा के वचन सुनकर और राजा को पकड़ कर अपने बल पर भरोसा रखती हुई, इससे बोली ॥२६॥

आभिषेचनिकं यत्ते रामार्थसुपकल्पितम् ।
भरतस्तदवाप्नोतु वनं गच्छतु राघवः ॥२७॥

हे राजन् ! तुमने जो राम के अभिषेक की सामग्री इकट्ठी की है, उस से भरत का अभिषेक होवे और राम वन में गमन करे ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवपञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ।
जटाचीराजिनधरो रामो वसतु तापसः ॥२८॥

राम, चौदह वर्ष तक जटा और मुनि वस्त्र धारण करके तपस्वी के वेष में दण्डकारण्य में निवास करे ॥२८॥

स तद्राजा वचः श्रुत्वा विप्रियं दारुणोदयम् ।
दुःखार्त्तो भरतश्रेष्ठ न किञ्चिद्व्याजहार ह ॥२९॥

हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार अप्रिय, दारुण वचन सुनकर राजा बड़ा दुःखी हुआ और कुछ नहीं बोला ॥२९॥

ततस्तथोक्तं पितरं रामो विज्ञाय वीर्य्यवान् ।
वनं प्रतस्थे धर्मात्मा राजा सत्यो भवत्विति ॥३०॥

वीर्यवान, धर्मात्मा राम, राजा की प्रतिज्ञा सुनकर वन को चल दिया । इसने यही चाहा, कि राजा सत्यवादी बना रहे ॥३०॥

तमन्वगच्छल्लक्ष्मीवान् धनुष्मांल्लक्ष्मणस्तदा ।
सीता च भार्य्या भद्रन्ते वैदेही जनकात्मजा ॥३१॥

कान्तिमान्, धनुषधारी, लक्ष्मण और रामचन्द्रजी की भार्या, जनक की पुत्री, वैदेही, सीता, राम के पीछे २ चली ॥३१

ततो वनगते रामे राजा दशरथस्तदा ।
समयुज्यत देहस्य कालपर्य्यायधर्मणा ॥३२॥

राम के वन चले जाने पर राजा दशरथ,काल के पर्याय वाली मृत्यु के कारण देह से वियुक्त हो गया ॥३२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामन्तु गतमाज्ञाय राजानन्तु तथागतम् ।
आनाय्य भरतं देवी कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥३३॥

राम के वन चले जाने और राजा के मर जाने पर कैकेयी ने भरत को बुला कर यह वाक्य कहा--॥३३॥

गतो दशरथः स्वर्गं वनस्थौ रामलक्ष्मणौ ।
गृहाण राज्यं विपुलं क्षेमं निहतकण्टकम् ॥३४॥

दशरथ, स्वर्ग में चला गया और राम लक्ष्मण वन को गए। अब तुम शत्रु हीन, कल्याणयुक्त, विपुल राज्य को ग्रहण करो ॥३४

तामुवाच स धर्मात्मा नृशंसं बत ते कृतम् ।
पतिं हत्वा कुलञ्चेदमुत्साद्य धनलुब्धया ॥३५॥

धर्मात्मा भरत ने कैकयी से कहा--धन के लालच करने वाली, तू ने पति को मार कर कुल का नाश कर दिया है॥३५॥

अयशः पातयित्वा मे मूर्द्ध्नि त्वं कुलपांसने ।
सकामा भव मे मातरित्युक्त्वा प्ररुरोद ह ॥३६॥

हे कुल-नाशक ! तू ने मेरे शिर पर अयश डाल दिया है। हे माता ! तेरी अभिलाषा पूरी हो, इतना कह कर भरत रोने लगा ॥३६॥

स चारित्रं विशोध्याथ सर्वप्रकृतिसन्निधौ ।
अन्वयाद्भ्रातरं रामं विनिवर्त्तनलालसः ॥३७॥

यह अपने चरित्र को सारी प्रजा के सम्मुख शुद्ध करके, राम के लौटाने की इच्छा से अपने भाई राम के पीछे ही वन को चल दिया ॥३७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशल्याञ्च सुमित्राञ्च कैकेयीञ्च सुदुःखितः ।
अग्रे प्रस्थाप्य यानैः स शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥३८॥

यह दुःखी भरत, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी को आगे करके, अनेक वाहनों को लेकर शत्रुघ्न के साथ वन को चला ॥३८॥

वशिष्ठवामदेवाभ्यां विप्रैश्चान्यैः सहस्रशः ।
पौरजानपदैः साद्धं रामानयनकाङ्क्षया ॥३९॥

भरत ने वशिष्ठ, वामदेव तथा अन्य ब्राह्मण एवं सहस्रों पुर और देश के वासी जनों के साथ श्रीराम के लाने की इच्छा से वन की यात्रा की ॥३९॥

ददर्श चित्रकूटस्थं स रामं सहलक्ष्मणम् ।
तापसानामलङ्कारं धारयन्तं धनुर्द्धरम् ॥४०॥

इसने लक्ष्मण के साथ तपस्वियों के वेष को धारण किये हुए, धनुर्धर, श्रीराम को देखा ॥४०॥

विसर्जितः स रामेण पितुर्वचनकारिणा ।
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं पुरस्कृत्यास्य पादुके ॥४१॥

पिता की आज्ञा मानने वाले राम ने इस भरत को वापिस लौटा दिया। भरत भी रामचन्द्रजी की पादुकाओं को प्रधान करके, नन्दिग्राम में रह कर राज्य शासन करने लगा ॥४१॥

रामस्तु पुनराशङ्क्य पौरजानपदागमम् ।
प्रविवेश महारण्यं शरभङ्गाश्रमं प्रति ॥४२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब राम को ध्यान आया, कि पुर और देश के मनुष्य, यहां आकर क्लेश देंगे, तो यह महावन में शर भङ्ग के आश्रम पर पहुंचा ॥४२॥

सत्कृत्य शरभङ्गं स दण्डकारण्यमाश्रितः ।
नदीं गोदावरीं रम्यामाश्रित्य न्यवसत्तदा ॥४३॥

इन्होंने शरभङ्ग मुनि का सत्कार करके, दण्डकारण्य में डेरा किया। ये गोदावरी नदी का अवलम्बन लेकर वहां रहने लगे ॥४३॥

वसतस्तस्य रामस्य ततः शूर्पणखाकृतम् ।
खरेणासीन्महद्वैरं जनस्थाननिवासिना ॥४४॥

इस वन में वास करते हुए, रामचन्द्रजी का जनस्थान निवासी खर राक्षस से शूर्पणखा का कराया हुआ, महान् वैर बढ़ गया ॥४४॥

रक्षार्थं तापसानान्तु राघवो धर्मवत्सलः ।
चतुर्दश सहस्राणि जघान भुवि राक्षसान् ॥४५॥

तपस्वियों की रक्षा के लिए, धर्म प्रेमी राम ने चौदह हज़ार राक्षस इसी भूमि पर मार गिराए ॥४५॥

दूषणञ्च खरञ्चैव निहत्य सुमहाबलौ ।
चक्रे क्षेमं पुनर्धीमान् धर्मारण्यं स राघवः ॥४६॥

इन बुद्धिमान् रामचन्द्रजी ने खर और दूषण राक्षस को मार कर वन के रहने वाले ऋषि मुनियों को फिर सुखी कर दिया ॥४६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत चित्र संख्या ५१

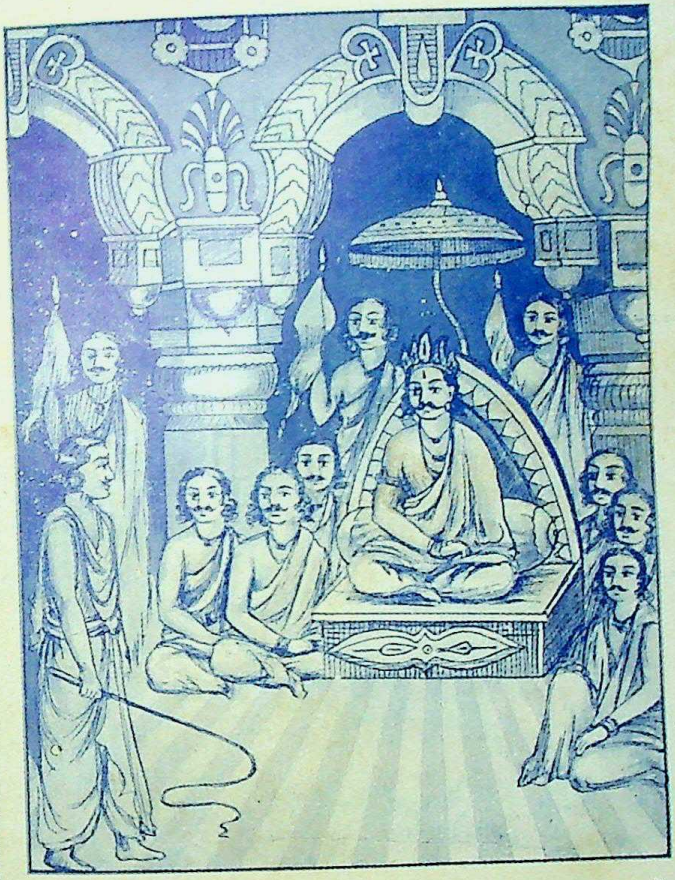

राजा विराट की सभा में नकुल का प्रवेश करना और अपने को घोड़ों का विषेपज्ञ बताना।

महा० विराटपर्व अ० १२।१

पृष्ठ ७६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हतेषु तेषु रक्षःसु ततः शूर्पणखा पुनः ।
ययौ निकृत्तनासौष्ठी लङ्कां भ्रातुर्निवेशनम् ॥४७॥

इन राक्षसों के मार लेने पर फिर नाक ओष्ठ कटी हुई शूर्पणखा, अपने भाई रावण की राजधानी लङ्का में पहुंची ॥४७॥

ततो रावणमभ्येत्य राक्षसी दुःखमूर्च्छिता ।
पपात पादयोर्भ्रातुः संशुष्करुधिराननाः ॥४८॥

रावण के पास पहुंच कर, यह राक्षसी शूर्पणखा, दुःख से व्याकुल हुई, अपने भाई रावण के चरणों में गिर पड़ी। इस समय इसके मुख के घाव का रक्त सूख रहा था ॥४८॥

तान्तथा विकृतां दृष्ट्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
उत्पपातासनात् क्रुद्धो दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥४९॥

इसको इस प्रकार भद्दे किये हुए मुख से युक्त देखकर रावण, क्रोध से जल उठा। यह क्रुद्ध होकर दांत पीसता हुआ आसन से खड़ा हो गया ॥४९॥

स्वानमात्यान् विसृज्याथ विविक्ते तामुवाच सः ।
केनास्येवं कृता भद्रे मामचिन्त्यावमन्य च ॥५०॥

यह अपने मन्त्रियों को छोड़कर एकान्त में चला गया और वहां शूर्पणखा से पूछने लगा—हे भद्रे ! मुझे कुछ न गिन कर और मेरा अपमान करके किसने तुम्हें इस तरह की नकटी बना दी है ॥५०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कः शूलं तीक्ष्णमासाद्य सर्वगात्रैर्निषेवते ।
कः शिरस्यग्निमाधाय विश्वस्तः स्वपते सुखम् ॥

यह कौन आदमी है, जो तीक्ष्ण शूल को लेकर अपने सारे शरीर में चुभो रहा है या कौन अद्भुत मूर्ख मनुष्य है, जो अग्नि को शिर पर रखकर विश्वास-पूर्वक सुख से सोता है ? ॥५१॥

आशीविषं घोरतरं पादेन स्पृशतीह कः ।
सिंहं केशरिणं कश्च दंष्ट्रायां स्पृश्य तिष्ठति ॥५२॥

यह कौन अत्यन्त घोर, विषधर सर्प को पैर से कुचलता है और केशरों [ग्रीवा के बाल] से बर्बर सिंह की दाढ़ पकड़कर कौन निद्वन्द खड़ा है ॥५२॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य स्रोतोभ्यस्तेजसोऽर्चिषः ।
निश्चेरुर्दह्यतो रात्रौ वृक्षस्येव स्वरन्ध्रतः ॥५३॥

इस प्रकार कहते हुए रावण के स्रोतों (नेत्र आदि छिद्र) से तेज की विकट लपटें रात में जलते हुए वृक्ष के रन्ध्रों से निकलती हुई आग की तरह निकलने लगी ॥५३॥

तस्य तत्सर्वमाचख्यौ भगिनी रामविक्रमम् ।
खरदूषणसंयुक्तं राक्षसानां पराभवम् ॥५४॥

रावण की बहन-शूर्पणखा ने खरदूषण के वध और राक्षसों की पराभव से संयुक्त राम के विक्रम की सारी कथा सुना दी ॥५४

ततो ज्ञातिवधं ज्ञात्वा रावणः कालचोदितः ।
रामस्य वधमाकाङ्क्षन् मारीचं मनसागमत् ॥५५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब अपने बन्धुओं का वध सुनकर काल से प्रेरित, रावण ने राम के मारने की आकाङ्क्षा से मारीच राक्षस का मन से स्मरण किया ॥५५॥

स निश्चित्य ततः कृत्यं स्वसारमुपसान्त्व्य च ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे राजा विधाय नगरे विधिम् ॥५६॥

रावण, अपने कर्तव्य का निश्चय करके तथा अपनी बहन शूर्पणखा को आश्वासन देकर एवं अपनी राजधानी लङ्का का प्रबन्ध करके आकाश में उड़ा गया ॥५६॥

त्रिकूटं समतिक्रम्य कालपर्वतमेव च ।
ददर्श मकरावासं गम्भीरोदं महोदधिम् ॥५७॥

इसने चित्रकूट पर्वत और काल पर्वत का उलङ्घन करके मकरादि जल जन्तुओं से व्याप्त, जल से परिपूर्ण, गम्भीर समुद्र को देखा ॥५७॥

तमतीत्याथ गोकर्णमभ्यगच्छद्दशाननः ।
दयितं स्थानमव्यग्रं शूलपाणेर्महात्मनः ॥५८॥

समुद्र को उलांघ कर रावण, महात्मा शूलपाणि, शङ्कर के प्रिय, उत्तम, गोकर्ण स्थान पर पहुंचा ॥५८॥

तत्राभ्यगच्छन्मारीचं पूर्वामात्यं दशाननः ।
पुरा रामभयादेव तापस्यं समुपाश्रितम् ॥५९॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रावणगमने षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां यह दशानन, अपने पूर्व मन्त्री, मारीच से मिला, जो पूर्व काल में राम के भय से ही तपस्वी रूप बनाये बैठा था ॥५६॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में रावण गमन का दो सौ छिहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

******

दो सौ सतहत्तरवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच-,

मारीचस्त्वथ संभ्रान्तो दृष्ट्वा रावणमागतम् ।
पूजयामास सत्कारैः फलमूलादिभिस्ततः ॥१॥

मार्कण्डेय बोले---हे राजन् ! अचानक रावण को आया हुआ देखकर मारीच भौचक्का रह गया। अब इसने कन्द, मूल, फलों, से सत्कार करके रावण की पूजा की ॥१॥

विश्रान्तश्चैनमासीनं मत्वासीनः स राक्षसः ।
उवाच प्रसृतं वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥२॥

मारीच राक्षस विश्राम पाकर बैठे हुए रावणके सन्मुख आप भी बैठ गया। अब बातचीत करने में कुशल, मारीच, बोलने वालों में विद्वान् रावण से विस्तृत वाक्य कहने लगा ॥२॥

न ते प्रकृतिमान् वर्णः कच्चित् क्षेमं पुरे तव ।
कच्चित् प्रकृतयः सर्वा भजन्ते त्वां यथा पुरा ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राक्षसराज ! तुम्हारा वर्ण बदला हुआ है, क्या बात है ? तुम्हारे नगर में कुशल तो है । तुम्हारी प्रजा पूर्व की तरह तुम्हारी भक्ति तो रखती है ॥३॥

किमिहागमने चापि कार्य्यन्ते राक्षसेश्वर ।
कृतमित्येव तद्विद्धि यद्यपि स्यात् सुदुष्करम् ॥४॥

हे राक्षसेश्वर ! आप का आज यहां आने का क्या कार्य है । यद्यपि वह कार्य दुष्कर भी होगा- तो भी मैं उसको पूरा करूंगा ॥४॥

शशंस रावणस्तस्मै तत् सर्वं रा चेष्टितम् ।
समासेनैव कार्य्याणि क्रोधामर्षसमन्वितः ॥५॥

क्रोध के वेग में भरे हुए रावण ने मारीच से राम की वे सारी अनुचित चेष्टाएँ (नाजायज हरकतें)संक्षेप में सुना दीं ॥५

मारीचस्त्वब्रवीच्छ्रुत्वा समासेनैव रावणम् ।
अलन्ते राममासाद्य वीर्य्यज्ञो ह्यस्मि तस्य वै ॥६॥

मारीच ने यह सुन कर संक्षेप में ही उत्तर दिया कि तुम राम से झगड़ा मत करो, मैं उसके पराक्रम को अच्छी तरह देख चुका हूं ॥६॥

बाणवेगं हि कस्तस्य शक्तः सोढुं महात्मनः ।
प्रव्रज्यायां हि मे हेतुः स एव पुरुषर्षभः ॥७॥

उस महावीर के बाण के वेग को रण में कौन सह सकता है । मेरे संन्यासी बनने का भी वही वीर कारण है ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाशमुखमेतत्ते केनाख्यातं दुरात्मना ।
तमुवाचाथ सक्रोधो रावणः परिभर्त्सयन् ॥८॥

किस दुरात्मा ने तुम को यह मृत्यु का मुख बता दिया है। यह सुन कर रावण क्रोध में भर गया और मारीच को फटकारता हुआ कहने लगा ॥८॥

अकुर्वतोऽस्मद्वचनं स्यान्मृत्युरपि ते ध्रुवम् ।
मारीचश्चिन्तयामास विशिष्टान्मरणं वरम् ॥९॥

हे मारीच ! यदि तुम हमारी आज्ञा का पालन नहीं करोगे, तो निश्चय अपनी मृत्यु समझ लो। मारीच ने इस समय मरने की अपेक्षा वीर राम के हाथ से ही मरना अच्छा समझा ॥९॥

अवश्यं मरणे प्राप्ते करिष्याम्यस्य यन्मतम् ।
ततस्तं प्रत्युवाचाथ मारीचो राक्षसेश्वरम् ॥१०॥

इसने सोचा, अब तो मृत्यु सिर पर आ झुकी, इसका कथन करना ही चाहिये। यह विचार कर मारीच राक्षसराज रावण से बोला ॥१०॥

किन्ते साह्यं मया कार्य्यं करिष्याम्यवशोऽपि तत् ।
तमब्रवीद्दशग्रीवो गच्छ सीतां प्रलोभय ॥११॥

कहिए-मैं तुम्हारी इस विषय में क्या सहायता कर सकता हूं। मैं तो आप के पर वश हूं, सब कुछ करूंगा। अब मारीच से रावण बोला, तुम जाओ और सीता को ललचाओ ॥११॥

रत्नशृङ्गो मृगो भूत्वा रत्नचित्रतनूरूहः ।
ध्रुवं सीता समालक्ष्य त्वां रामश्चोदयिष्यति ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम रत्नों के समान चमकदार अपने सींग बनाओ और रत्नों के सदृश ही रोमों को चमका के मृग बनो। तुम को देख कर सीता निश्चय राम को तुम्हारे वध के लिए प्रेरित करेगी ॥३२॥

अपक्रान्ते च काकुत्स्थे सीता वश्या भविष्यति।
तामादायापनेष्यामि ततः स न भविष्यति ॥१३॥
भार्यावियोगाद् बुद्धिरेतत् साह्यं कुरुष्व मे।

जब राम तुम्हारे पीछे चले जावेंगे, तो सीता वश में की जा सकेगी। मैं सीता को लेकर चलता बनूंगा। यह दुर्बुद्धि राम भार्या के वियोग से स्वयं ही नष्ट हो जावेगा, बस! तुम को मेरी यही सहायता करनी है ॥१३॥

इत्येवमुक्तो मारीचः कृत्वोदकमथात्मनः ॥१४॥
रावणं पुरतो यान्तमन्वगच्छत् सुदुःखितः।

रावण के इतना कहने पर मारीच ने अपनी उदक क्रिया (मृत्यु) निश्चित समझ ली। यह भी दुःखी होकर रावण के पीछे पीछे चल दिया ॥१४॥

ततस्तस्याश्रमं गत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥१५॥
चक्रतुस्तद्यथा सर्वमुभौ यत् पूर्वमन्त्रितम्।

इसके अनन्तर ये अद्भुत कर्मकारी राम के आश्रम में पहुंचे इन्होंने जो पूर्व में सम्मति कर ली थी, वही सब कुछ कर लिया ॥१५॥

रावणस्तु यतिर्भूत्वा मुण्डः कुण्डी त्रिदण्डधृक् ॥
मृगश्च भूत्वा मारीचस्तं देशमुपजग्मतुः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण ने संन्यासी का रूप बनाया। इसने सिर मुंडा कर त्रिदण्ड और कुण्डी (कूंडी) धारण की। मारीच मृग बना। ये दोनों राम के निवास स्थान पर आए ॥१६॥

दर्शयामास मारीचो वैदेहीं मृगरूपधृक् ॥१७॥
चोदयामास तस्यार्थे सा रामं विधिचोदिता ।

मारीच ने अपना मृग रूप जानकी को दिखाया। विधाता की प्रेरणा से जानकी ने भी रामचन्द्रजी के लिए उस मृग के लाने की प्रेरणा की ॥१७॥

रामस्तस्याः प्रियं कुर्वन् धनुरादाय सत्वरः ॥१८॥
रक्षार्थे लक्ष्मणं न्यस्य प्रययौ मृगलिप्सया ।

राम भी सीता की इच्छा पूरी करने की चेष्टा करते रहते थे। वे भी शीघ्र धनुष लेकर और सीता की रक्षा में लक्ष्मण को नियुक्त करके मृग की इच्छा से चल दिए ॥१८॥

स धन्वी बद्धतूणीरः खड्गगोधाङ्गुलित्रवान् ॥१९॥
अन्वधावन्मृगं रामो पुरस्तारामृगं यथा ।

राम ने तूणीर बांध लिया। धनुष धारण कर लिया और खड्ग तथा गोधाचर्म का अङ्गुलित्राण पहन लिया। यह राम, इस तरह मृग के पीछे दौड़ा जैसे तारा रूप मृग के पीछे प्रजापति दौड़ा था ॥१९॥

सोऽन्तर्हितः पुनस्तस्य दर्शनं राक्षसो व्रजन् ॥२०॥
चकर्ष महदध्वानं रामस्तं बुबुधे ततः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशाचरं विदित्वा तं राघवः प्रतिभानवान् ॥२१॥
अमोघं शरमादाय जघान मृगरूपिणम् ।

यह राक्षस, कभी दिखाई दे जाता और कभी अलक्षित हो जाता था। यह राम को बहुत दूर खींच ले गया। राम ने इसको अब पहचाना। प्रतिभाशाली राम ने इसको राक्षस जान कर निष्फल नहीं जाने वाला शर चलाया और मृग रूपी मारीच राक्षस को मार दिया ॥२०-२१॥

स रामबाणाभिहतः कृत्वा रामस्वरं तदा ॥२२॥
सा सीते लक्ष्मणेत्येवं चुक्रोशार्त्तस्वरेण ह ।

राम के बाण से मारा हुआ मारीच, राम के सदृश स्वर करके "हा सीते ! हा लक्ष्मण !" इस प्रकार आर्त्त-स्वर से पुकारने लगा ॥२२॥

शुश्राव तस्ये वैदेही ततस्तां करुणाङ्गिरम् ॥२३॥
सा प्राद्रवद्यतः शब्दस्तामुवाचाथ लक्ष्मणः ।
अलन्ते शङ्कया भीरु को रामं प्रहरिष्यति ॥२४॥

इसके इस करुणा पूर्ण स्वर को सीता ने सुना। सीता-जिधर से शब्द आ रहा था, उधर दौड़ने लगी। इससे लक्ष्मणने कहा हे भीरु! तुम शङ्का न करो। राम पर कौन प्रहार कर सकता है। हे शुचिस्मिते ! तुम थोड़ी ही देर में अपने भर्त्ता राम को देख सकोगी ॥२३--२४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहूर्त्तात् द्रक्ष्यसे रामं भर्त्तारं तं शुचिस्मिते ।
इत्युक्ता सा प्ररुदती पर्य्यशङ्कत लक्ष्मणम् ॥२५॥

जब लक्ष्मण ने इतना कहा---तो इसने लक्ष्मण पर भी सन्देह किया । स्त्री जाति के स्वभाव ने सीता पर भी अपना अधिकार कर रखा था । यह अपने शुद्ध चरित्र की रक्षा को ही भूषण मानती थी ॥२५॥

हता वै स्त्रीस्वभावेन शुक्लचारित्रभूषणा ।
सा तं परुषमारब्धा वक्तुं साध्वी पतिव्रता ॥२६॥
नैष कामो भवेन्मूढ यं त्वं प्रार्थयसे हृदा ।

यह साध्वी, पतिव्रता लक्ष्मण से कठोर बोल उठी । अरे मूढ़! तू जिस कामना को अपने हृदय में विचार कर रहा है, वह तेरी कामना पूर्ण नहीं हो सकेगी ॥२६॥

अप्यहं शस्त्रमादाय हन्यामात्मानमात्मना ॥२७॥
प्रपतेयं गिरिशृङ्गाद्वा विशेयं वा हुताशनम् ।
रामं भर्त्तारमुत्सृज्य न त्वहं त्वां कथञ्चन ॥२८॥
निहीनमुपतिष्ठेयं शार्दूली क्रोष्टुकं यथा ।

मैं शस्त्र लेकर अपने आपको नष्ट कर लूंगी, पर्वत की चोटी से गिर जाऊंगी, आग में घुस पड़ूंगी, परन्तु सिंहनी जैसे गीदड़ को वैसे ही राम को छोड़ कर मैं तुझ क्षुद्र को पति नहीं बनाऊंगी ॥२७--२८॥

एतादृशं वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः प्रियराघवः ॥२९॥
पिधाय कर्णौ सद्वृत्तः प्रस्थितो येन राघवः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम से प्रेम करने वाला सदाचारी लक्ष्मण, इस वचन को सुनकर कानों पर हाथ धरने लगा और जिस ओर राम गए थे, वह भी उसी मार्ग से चल पड़ा ॥२९॥

स रामस्य पदं गृह्य प्रससार धनुर्द्धरः ॥३०॥
अवीक्षमाणो बिम्बोष्ठीं प्रययौ लक्ष्मणस्तथा ।

राम के पद चिन्हों को देखता हुआ, धनुषधारी, लक्ष्मण, बिम्ब के समान ओष्ठों वाली सीता की दृष्टि से ओझल हो गया ॥३०॥

एतस्मिन्नन्तरे रक्षो रावणः प्रत्यदृश्यत ॥३१॥
अभव्यो भव्यरूपेण भस्मच्छन्न इवानलः ।
यतिवेशप्रतिच्छन्नो जिहीर्षुस्तामनिन्दिताम् ॥३२॥

इसी अन्त में राक्षसराज, रावण दिखाई पड़ा। इस दुष्ट ने भव्य रूप बना रक्खा था। यह भस्म में ढकी हुई आग के सदृश था। इसने इस निन्दा के अयोग्य सुन्दरी सीता के हरण की इच्छा से यह सन्यासी वेष बना रक्खा था ॥३१-३२॥

सा तमालक्ष्य संप्राप्तं धर्मज्ञा जनकात्मजा ।
निमन्त्रयामास तदा फलमूलाशनादिभिः ॥३३॥

धर्म के जानने वाली, जानकी ने आये हुए सन्यासी को देखकर फल मूल आदि भोजनों से इसका स्वागत किया ॥३३॥

अवमन्य ततः सर्वं स्वरूपं प्रतिपद्य च ।
सान्त्वयामास वैदेहीमिति राक्षसपुङ्गवः ॥३४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसने सारे फल मूलों को फेंक दिया और अपना असली रूप प्रगट कर दिया। राक्षसश्रेष्ठ, रावण अब सीता को इस तरह समझाने लगा ॥३४॥

सीते राक्षसराजोऽहं रावणो नाम विश्रुतः।
मम लङ्का पुरी नाम्ना रम्या पारे महोदधेः ॥३५॥

हे सीते! मैं राक्षसराज हूं और मेरा नाम रावण प्रसिद्ध है। समुद्र के पार मेरी लङ्का नाम की राजधानी है ॥३५॥

तत्र त्वं वरनारीषु शोभिष्यसि मया सह।
भार्य्या मे भव सुश्रोणि तापसं त्यज राघवम् ॥३६॥

हे सुन्दर नितम्बोंवाली! तुम वहां सुन्दर स्त्रियों में सुशोभित हो जाओगी। हे सीते! मेरी भार्या बन जाओ और इस राम को छोड़ दो ॥३६॥

एवमादीनि वाक्यानि श्रुत्वा तस्याथ जानकी।
पिधाय कर्णौ सुश्रोणी मैवमित्यब्रवीद्वचः ॥३७॥

सुन्दरी जानकी इसके ये वचन सुनकर कानों पर हाथ लगाने लगी और बोली--तुम ऐसा वचन न कहो ॥३७॥

प्रपतेद्द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकली भवेत्।
शैत्यमग्निरियान्नाहं त्यजेयं रघुनन्दनम् ॥३८॥

नक्षत्रों के साथ द्युलोक गिर जावें, पृथिवी के टुकड़े २ हो जावें, अग्नि ठण्डी पड़ जावे, परन्तु मैं रघुनन्दनराम को नहीं छोड़ सकती हूं ॥३८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथं हि मिन्नकरटं हस्तिनं वनगोचरम् ।
उपस्थाय महाभागं करेणुः शूकरं स्पृशेत् ॥३९॥

मद टपकने वाले, वनचारी, महाश्रेष्ठ हाथी को प्राप्त करके हथिनी, शूकर को कैसे छू सकती है ॥३९॥

कथं हि पीत्वा माध्वीकं पीत्वा च मधुमाधवीम् ।
लोभं सौवीरके कुर्य्यान्नारी काचिदिति स्मरे ॥४०॥

मधुलता से बनी या शहद के साथ बनायी हुई, मद्य को पीकर कौन ऐसी स्त्री होगी, जो काञ्जी के पीने में लोभ प्रदर्शित करे। मैं तो यही समझती हूं ॥४०॥

इति सा तं समाभाष्य प्रविवेशाश्रमं ततः ।
क्रोधात् प्रस्फुरमाणोष्ठी विधुन्वाना करौ मुहुः ॥३१

यह इतनी बात रावण से करके आश्रम में घुस गई, इसके क्रोध से ओष्ठ फड़क रहे थे और यह हाथों को मल रही थी॥४०

तामभिद्रुत्य सुश्रोणीं रावणः प्रत्यषेधयत् ।
भर्त्सयित्वा तु रूक्षेण स्वरेण गतचेतनाम् ॥४२॥
मूर्द्धजेषु निजग्राह ऊर्द्ध्वमाचक्रमे ततः ।

रावण ने दौड़कर सुन्दरी सीता को रोक लिया। इसने बड़े रूक्ष स्वर से अचेत सी हुई सीता को फटकार कर उसके बाल पकड़ लिए और ऊपर आकाश में उड़ गया ॥४२॥

तां ददर्श ततो गृध्रो जटायुर्गिरिगोचरः ।
रुदतीं रामरामेति ह्रियमाणां तपस्विनीम् ॥४३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि सीताहरणे सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७७

वनवासी गृद्ध (जटायु) ने सीता को अपहरण कर के ले-जाते रावण को देखा। यह हरी हुई, दीन सीता, राम२ पुकारती जा रही थी ॥४३॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में सीता हरण का दो सौ सतहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।

******

दो सौ अट्ठहत्तरवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच—

सखा दशरथस्यासीज्जटायुररुणात्मजः।
गृध्रराजो महावीरः सम्पातिर्यस्य सोदरः ॥१॥

मार्कण्डेय बोले— हे राजन्! अरुण का पुत्र जटायु दशरथ का मित्र था। यह गृद्धराज महावीर था और सम्पाति, इसका सहोदर भाई था ॥१॥

स ददर्श तदा सीतां रावणाङ्कगतां स्नुषाम्।
सक्रोधोऽभ्यद्रवत् पक्षी रावणं राक्षसेश्वरम् ॥२॥

इसने रावण की गोदी में पकड़ी हुई दशरथ की पुत्र बधू सीता को देखा। यह पक्षिराट देखते ही राक्षसेश्वर रावण पर बड़े क्रोध से झपटा ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथैनमब्रवीद् गृध्रो मुञ्च मुञ्चस्व मैथिलीम् ।
ध्रियमाणे मयि कथं हरिष्यसि निशाचर ॥३॥

रावण से गृद्धराज जटायु ने कहा— हे निशाचर ! सीता को छोड़ दे । मेरे जीवित रहने तक तू सीता का कैसे अपहरण कर सकता है ॥३॥

न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे वधूम् ।
उक्त्वैवं राक्षसेन्द्रं तं चकर्त्त नखरैर्भृशम् ॥४॥

यदि तुम इस दशरथ की वधू को नहीं छोड़ोगे, तो मैं तुमको जीता नहीं जाने दूंगा । राक्षसेन्द्र रावण से इतना कहकर उसने अपने तीक्ष्णों नखों से उसको नोंच डाला ॥४॥

पक्षतुण्डप्रहारैश्च शतशो जर्जरीकृतम् ।
चक्षार रुधिरं भूरि गिरिप्रस्रवणैरिव ॥५॥

जटायु ने अपने पक्ष और चोंच के प्रहार से सैंकड़ों स्थान से रावण को जर्जर कर दिया । पर्वत के झरनों की तरह रावण के शरीर से बहुत सा रक्त बहने लगा ॥५॥

स वध्यमानो गृध्रेण रामप्रियहितैषिणा ।
खड्गमादाय चिच्छेद भुजौ तस्य पतत्रिणः ॥६॥

राम के प्रिय करने की इच्छा वाले, गृद्ध से घायल किये हुए, रावण ने खड्ग उठाकर इस पक्षी की दो भुजा (पक्ष) काट डाली ॥६॥

निहत्य गृध्रराजं स भिन्नाभ्रशिखरोपमम् ।
ऊर्द्ध्वमाचक्रमे सीतां गृहीत्वाङ्केन राक्षसः ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिन्न-भिन्न हुए मेघ की तरह गृद्ध-राज को मार कर राक्षस-राज, सीता को गोदी में लेकर फिर आकाश को उड़ गया ॥७॥

यत्र यत्र तु वैदेही पश्यत्याश्रमण्डलम् ।
सरो वा सरितो वापि तत्र मुञ्चति भूषणम् ॥८॥

सीता भी, जहां २ कोई आश्रम, सरोवर या नदी देखती थी, वहीं पर अपना भूषण डाल जाती थी ॥८॥

सा ददर्श गिरिप्रस्थे पञ्च वानरपुङ्गवान् ।
तत्र वासो महद्दिव्यमुत्ससर्ज मनस्विनी ॥९॥

इसने पर्वत की चोटी पर बैठे हुए पांच वानर देखे। इस जगह इस मनस्विनी सीता ने अपना दिव्य वस्त्र डाल दिया।

तत्तेषां वानरेन्द्राणां पपात पवनोद्धतम् ।
मध्ये सुपीतं पञ्चानां विद्युन्मेघान्तरे यथा ॥१०॥

यह पीला वस्त्र, उन पांच वानरों के मध्य में पवन ने उड़ा कर मेघों के मध्य में बिजली की तरह ला डाला ॥१०॥

अचिरेणातिचक्राम खेचरः खेचरन्निव ।
ददर्शाथ पुरीं रम्यां बहुद्वारां मनोरमाम् ॥११॥
प्राकारवप्रसम्बाधां निर्मितां विश्वकर्मणा ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां सभीतो राक्षसेश्वरः ॥१२॥

आकाशचारी रावण भी, शीघ्र ही आकाश में उड़ता हुआ, लङ्कापुरी में पहुंच गया। जो पुरी बड़ी मनोहर और अनेक द्वारों वाली थी। इसके चारों ओर बड़ी भारी भित्ति [शहर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पनाह] और वप्रु (वेणुमय दुर्ग) बना हुआ था। जिसको विश्वकर्मा ने बनाया था। इस पुरी में कुछ भयातुर और शंकित हुआ रावण प्रविष्ट हो गया ॥११-१२॥

एवं हृतायां वैदेह्यां रामो हत्वा महामृगम् ।
निवृत्तो ददृशे धीमान् भ्रातरं लक्ष्मणन्तथा।।१३॥

जब सीता का अपहरण हो चुका, तो राम भी महामृग को मार कर लौट आया। इस बुद्धिमान् ने मार्ग में अपने छोटे भाई लक्ष्मण को देखा ॥१३॥

कथमुत्सृज्य वैदेहीं वने राक्षससेविते ।
इति तं भ्रातरं दृष्ट्वा प्राप्तोऽसीति व्यगर्हयत् ॥१४॥

रामचन्द्र जी लक्ष्मण को देखकर बोले--हे लक्ष्मण! तुम राक्षसों से सेवित वन में सीता को अकेली छोड़ कर कैसे चले आए। यह कह कर उन्होंने लक्ष्मण को बहुत कुछ कहा सुना ॥१४॥

मृगरूपधरेणाथ रक्षसा सोपकर्षणम्
भ्रातुरागमनञ्चैव चिन्तयन् पर्य्यतप्यत । १५

मृगरूप-धारी राक्षस का यहां खैंच कर लाना और अपने भाई का भी सीता को अकेली छोड़कर चले आना देख कर रामचन्द्रजी बड़े सन्तप्त हुए ॥१५॥

गर्हयन्नेव रामस्तु त्वरितस्तं समासदत् ।
अपि जीवति वैदेही नेति पश्यामि लक्ष्मण ॥१६॥

रामचन्द्रजी लक्ष्मण की मूर्खता की निन्दा करते हुए, अपने आश्रम की ओर चले और बोले---हे लक्ष्मण ! जल्दी चलो। न जाने सीता जीती भी है या नहीं ॥ १६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य तत् सर्वमाचख्यौ सीताया लक्ष्मणो वचः।
यदुक्तवत्यसदृशं वैदेही पश्चिमं वचः ॥१७॥

लक्ष्मण ने भी रामचन्द्रजी को सीता के वे पिछले वचन सुना दिए, जो उसने अनुचित वचन कह डाले थे ॥१७॥

दह्यमानेन तु हृदा रामोऽभ्यपतदाश्रमम्।
स ददर्श तदा गृध्रं निहतं पर्वतोपमम् ॥१८॥

रामचन्द्रजी सन्तप्त हृदय के सहित, आश्रम में आए। इन्होंने मरे हुए पर्वत के समान आकारधारी गीध को देखा ॥१८॥

राक्षसं शङ्कमानस्तं विकृष्य बलवद्धनुः।
अभ्यधावत काकुत्स्थस्ततस्तं सहलक्ष्मणः ॥१९॥

इसी को राक्षस समझ कर रामचन्द्रजी, अपने बलशाली धनुष को लेकर लक्ष्मण के साथ जटायु की ओर दौड़े ॥१९॥

स तावुवाच तेजस्वी सहितौ रामलक्ष्मणौ।
गृध्रराजोऽस्मि भद्रं वो सखा दशरथस्य वै ॥२०॥

इन दोनों राम और लक्ष्मण से तेजस्वी जटायु ने कहा—कि मैं तो गृधराज, तुम्हारे पिता दशरथ का सखा हूं ॥२०॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संगृह्य धनुषी शुभे।
कोऽयं पितरमस्माकं नाम्नाहेत्यूचतुश्च तौ ॥२१॥

इसके ये वचन सुनकर इन दोनों ने अपने धनुष रोक लिए और सोचने लगे कि यह कौन है, जो हमारे पिता का नाम लेकर बोल रहा है ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो ददृशतुस्तौ तं छिन्नपक्षद्वयं खगम् ।
तयोः शशंस गृध्रस्तु सीतार्थे रावणाद्वधम् ॥२२॥

इन दोनों भाइयों ने दोनों पक्ष कटे हुए गीधराज पक्षी को देखा। गीध ने इनको सीता के छुड़ाने में रावण द्वारा अपने मारे जाने की घटना सुनाई ॥२२॥

अपृच्छद्राघवो गृध्र रावणं कान्दिशं गतः ।
तस्यः गृध्रः शिरःकम्पैराचचक्षे ममार च ॥२३॥

अब श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा--कि रावण किस दिशा को गया, तो गीध ने शिरके संकेत से सूचित किया और आप इतने में ही मर गया ॥२३॥

दक्षिणामिति काकुत्स्थो विदित्वास्य तदिङ्गितम् ।
सत्कारं लम्भयामास सखायं पूजयन् पितुः ॥२४॥

राम ने इसके सङ्केत से यह समझ लिया, कि रावण दक्षिण दिशा को गया है। इन्होंने अपने पिता के मित्र, गीध जटायु का बड़े आदर और सत्कार के साथ संस्कार किया ॥२४॥

ततो दृष्ट्वाश्रमपदं व्यपविद्धवृषीमठम् ।
विध्वस्तकलशं शून्यं गोमायुशतसङ्कुलम् ॥२५॥

अब इन्होंने आश्रम को देखा, तो आसन और मठ (स्थान) नष्ट भ्रष्ट हो रहा है। इसके कलशों का विध्वंस किया जा चुका था और यह इतने में ही सैकड़ों गीदड़ों से भर गया था ॥२५॥

दुःखशोकसमाविष्टौ वैदेहीहरणार्दितौ ।
जग्मतुर्दण्डकारण्यं दक्षिणेन परन्तपौ ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सीता के अपहरण से बड़े सन्तप्त, दुःखी और शोकातुर हुए। अब ये दोनों शत्रुविजयी, दण्डकारण्य में दक्षिण की ओर चल दिए ॥२६॥

वने महति तस्मिंस्तु रामः सौमित्रिणा सह।
ददर्श मृगयूथानि द्रवमाणानि सर्वशः ॥२७॥

इस विशाल वन में लक्ष्मण के साथ राम ने इधर उधर दौड़ते हुए अनेक मृग यूथों को देखा ॥२७॥

शब्दश्च घोरं सत्वानां दावाग्नेरिव वर्द्धतः।
अपश्यतां मुहूर्त्ताच्च कबन्धं घोरदर्शनम् ॥२८॥

अब वन के भयानक जन्तुओं का महाघोर शब्द बढ़ने लगा। थोड़ी ही देर में इन्होंने एक भयङ्कर कबन्ध (शिर हीन शरीर) राक्षस को देखा ॥२८॥

मेघपर्वतसङ्काशं शालस्कन्धं महाभुजम्।
उरोगतविशालाक्षं महोदरमहामुखम् ॥२९॥

इसका शरीर मेघ और पर्वत के समान ऊंचा और भुजायें शाल वृक्ष के स्कन्ध के सदृश थीं। इसके छाती में आंख और पेट में मुख था ॥२९॥

यदृच्छयाथ तद्रक्षः करे जग्राह लक्ष्मणम्।
विषादमगमत् सद्यः सौमित्रिरथ भारत ॥३०॥

हे भारत! अचानक इस दुष्ट राक्षस ने लक्ष्मण को पकड़ लिया। इसके पकड़ने से सुमित्रापुत्र लक्ष्मण को बड़ा ही क्लेश हुआ ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स राममभिसंप्रेक्ष्य कृष्यते येन तन्मुखम् ।
विषण्णश्चाब्रवीद्रामं पश्यावस्थामिमां मम ॥३१॥

यह राक्षस, राम की ओर देखता हुआ, लक्ष्मण को उधर की ओर खींच रहा था, जिधर इसका पेट में मुख था। लक्ष्मण भी व्याकुल होकर राम से बोला---तुम मेरी इस बुरी दशा को देखो ॥३१॥

हरणञ्चैव वैदेह्या मम चायमुपप्लवः ।
राज्यभ्रंशश्च भवतस्तातस्य मरणन्तथा ॥३२॥

सीता का अपहरण हुआ, मुझे इस दुष्ट राक्षस ने दबा लिया, तुम्हारा राज्य भ्रष्ट हो गया और पिताजी का स्वर्गवास हो चुका ॥३२॥

नाहं त्वां सह वैदेह्या समेतं कोशलागतम् ।
द्रक्ष्यामि पृथिवीराज्ये पितृपैतामहे स्थितम् ॥३३॥

अब मैं सीता के साथ अयोध्यापुरी में पहुंचे हुए और अपने पिता पितामह के इस पृथ्वी भर के राज्य पर बैठे हुए, तुमको नहीं देख सकूंगा ॥३३॥

द्रक्ष्यन्त्यार्य्यस्य धन्या ये कुशलाजशमीजलैः ।
अभिषिक्तस्य वदनं सोमं शान्तघनं यथा ॥३४॥

जो लोग धन्य होंगे, वे ही कुश, धान की खील, शमी (जांटी के पत्ते) और जल से राज्यसिंहासन के अभिषेक होने पर मेघों से मुक्त चन्द्रमा के सदृश तुम्हारे मुख को देख सकेंगे ॥३४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं बहुविधं धीमान् विललाप स लक्ष्मणः ।
तमुवाचाथ काकुत्स्थः सम्भ्रमेष्वप्यसंभ्रमः॥३५॥

इस प्रकार बुद्धिमान् लक्ष्मण ने बड़ा विलाप किया। घबड़ाने के समय में भी नहीं घबड़ाने वाले राम ने लक्ष्मण से कहा॥

मा विषीद नरव्याघ्र नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।
छिन्ध्यस्य दक्षिणं बाहुं छिन्नः सव्यो मया भुजः ३६

हे नरश्रेष्ठ! तुम व्याकुल मत होओ। मेरे जीवित होने पर यह राक्षस कुछ भी नहीं है। लो, मैं इसकी बांई भुजा काट डालता हूं। अब तुम भी इसकी दांई भुजा काट दो॥३६॥

इत्येवं वदतः तस्य भुजो रामेण पातितः ।
खड्गेन भृशतीक्ष्णेन निकृत्तस्तिलकाण्डवत् ॥३७॥

इतना कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने उसकी बांई भुजा तिल के काण्ड की तरह अत्यन्त तीक्ष्ण, तलवार से काट गिराई ॥३७॥

ततोऽस्य दक्षिणं बाहुं खड्गेनाजघ्निवान् बली।
सौमित्रिरपि संप्रेक्ष्य भ्रातरं राघवं स्थितम् ॥३८॥

महाबली लक्ष्मण ने अपने भाई, रामचन्द्रजीको सहायता पर खड़े हुए देखकर खड्ग से इसकी दांई भुजा भी काट गिराई ॥

पुनर्जघान पार्श्वे वै तद्रक्षो लक्ष्मणो भृशम् ।
गतासुरपतद्भूमौ कबन्धः सुमहांस्ततः ॥३९॥

लक्ष्मण ने फिर इसकी पार्श्व [बगल] में प्रहार किया, जिससे यह महान् कबन्ध, मरकर भूमि पर गिर गया ॥३९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य देहाद्विनिःसृत्य पुरुषो दिव्यदर्शनः ।
ददृशे दिवमास्थाय दिवि सूर्य्य इव ज्वलन् ॥४०॥

इसकी देह से दिव्य स्वरूप धारी एक पुरुष निकला। यह आकाश में सूर्य के सदृश चमकता हुआ दिखाई दिया ॥४०॥

पप्रच्छ रामस्तं वाग्मी कस्त्वं प्रब्रूहि पृच्छतः ।
कामया किमिदञ्चित्रमाश्चर्य्यं प्रतिभाति मे ॥४१॥

बोलने वालों में श्रेष्ठ, रामचन्द्रजी ने उससे पूछा—तुम कौन हो ? हम पूछने वालों को बताओ। तुमने यह सब कुछ किस इच्छा से किया, मुझे तो यह बड़ी ही आश्चर्यकारी घटना प्रतीत हो रही है ॥४१॥

तस्याचचक्षे गन्धर्वो विश्वावसुरहं नृप ।
प्राप्तो ब्राह्मणशापेन योनिं राक्षससेविताम् ॥४२॥

इस दिव्य पुरुष ने कहा—मैं विश्वावसु गन्धर्व हूं। ब्राह्मण के शाप से इस राक्षसयोनि में आ पड़ा था ॥४२॥

रावणेन हृता सीता राज्ञा लङ्काधिवासिना ।
सुग्रीवमभिगच्छस्व स ते सख्यं करिष्यति ॥४३॥

लङ्काधीश्वर रावण ने सीता का अपहरण किया है। तुम राजा सुग्रीव के पास जाओ, वह तुमसे मित्रता कर लेगा ॥४३॥

एषा पम्पा शिवजला हंसकारण्डवायुता ।
ऋष्यमूकस्य शैलस्य सन्निकर्षे तडाकिनी ॥४४॥

उत्तम जल से परिपूर्ण, हंस और कारण्डवों [हंस जाति विशेष] से संयुक्त, ऋष्यमूक पर्वत के पास एक पम्पा नामक छोटा सरोवर है ॥४४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसते तत्र सुग्रीवश्चतुर्भिः सचिवैः सह ।
भ्राता वानरराजस्य बालिनो हेममालिनः ॥४५॥

वहां चार मन्त्रियों के साथ सुग्रीव रहता है। यह सुवर्ण की मालाधारी वानरराज बाली का भाई है ॥४५॥

तेन त्वं सह सङ्गम्य दुःखमूलं निवेदय ।
समानशीलो भवतः साहाय्यं स करिष्यति ॥४६॥

तुम उससे मिलकर अपने दुःख का समाचार सुनाओ। वह भी तुम्हारी ही तरह दुःख में फंस रहा है, वह तुम्हारी सहायता कर देगा ॥४६॥

एतावच्छक्यमस्माभिर्वक्तुं द्रष्टासि जानकीम् ।
ध्रुवं वानरराजस्य विदिता रावणादयः ॥३७॥

हम तो इतना ही कह सकते हैं, कि तुम फिर निश्चय जानकी को प्राप्त करोगे। यह वानरराज सुग्रीव, रावणादि राक्षसों को अच्छी तरह जानता है ॥४७॥

इत्युक्त्वान्तर्हितो दिव्यः पुरुषः स महाप्रभः ।
विस्मयं जग्मतुश्चोभौ प्रवीरौ रामलक्ष्मणौ ॥४८॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि विश्वावसुमोक्षणेअष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७८

इतना कहकर वह दिव्य, महाकान्तिधारी, पुरुष, अलक्षित हो गया। इतना देखकर दोनों वीर राम और लक्ष्मण बड़े ही अचम्भित हुए ॥४८॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में विश्वावसु के शाप से छुड़ाने का दो सौ अठहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सा उनासीवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच—

ततोऽविदूरे नलिनीं प्रभूतकमलोत्पलाम् ।
सीताहरणदुःखार्त्तः पम्पां रामः समासदत् ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे राजन् ! सीता के हरण से दुःखित, राम, थोड़ी ही दूरी पर बहुत से कमल और उत्पलों से सुशोभित, पम्पा नामक पुष्करिणी [सरोवर] पर पहुंचा ॥१॥

मारुतेन सुशीतेन सुखेनामृतगन्धिना ।
सेव्यमानो वने तस्मिन् जगाम मनसा प्रियाम् ॥२॥

यह इस वन में शीतल, अमृत के सदृश सुखकारी, वायु से सेवित होकर चला जा रहा था और मन से अपनी प्रिया सीता का स्मरण कर रहा था ॥२॥

विललाप स राजेन्द्रस्तत्र कान्तामनुस्मरन् ।
कामबाणाभिसन्तप्तं सौमित्रिस्तमथाब्रवीत् ॥३॥

श्रीरामचन्द्रजी, अपनी कान्ता का स्मरण करके व्याकुल होने लगे। लक्ष्मण, सीता की प्राप्ति की कामना के बाण से बिंधे हुए राम से कहने लगे ॥३॥

न त्वामेवंविधो भावः स्प्रष्टुमर्हति मानद ।
आत्मवन्तमिव व्याधिः पुरुषं वृद्धशीलिनम् ॥४॥

हे मान्यवर ! अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाले पुरुष को व्याधि की तरह वृद्धों की सङ्गति करने वाले तुम्हें ऐसा भाव, उत्पन्न नहीं होने देना चाहिए ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवृत्तिरुपलब्धा ते वैदेह्या रावणस्य च ।
तां त्वं पुरुषकारेण बुद्ध्या चैवोपपादय ॥५॥

हे महाभाग ! तुमको सीता और रावण का पता तो लग ही गया । अब तुम अपनी बुद्धि या पुरुषार्थ से सीता को वापिस ला सकते हो ॥५॥

अभिगच्छाव सुग्रीवं शैलस्थं हरिपुङ्गवम् ।
मयि शिष्ये च भृत्ये च सहाये च समाश्वस ॥६॥

हम लोग, पर्वत पर रहने वाले वानरराज सुग्रीव के पास चलते हैं । तुम मुझ शिष्य, सेवक और सहायक में विश्वास करके सन्तोष धारण करो ॥६॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैर्लक्ष्मणेन स राघवः ।
उक्तः प्रकृतिमापेदे कार्य्ये चानन्तरोऽभवत् ॥७॥

लक्ष्मण ने इस तरह अनेक वाक्यों से राम को समझाया । लक्ष्मण के इतना समझाने पर राम, अपने स्वभाव पर आए और आगे के कर्तव्य को पूरा करने का उद्योग करने लगे ॥७॥

निषेव्य वारि पम्पायास्तर्पयित्वा पितॄनपि ।
प्रतस्थतुरुभौ वीरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥८॥

इन्होंने पम्पा सरोवर का जल ग्रहण करके पितरों का तर्पण किया । अब ये दोनों वीर राम और लक्ष्मण आगे चले ॥८॥

तावृष्यमूकमभ्येत्य बहुमूलफलद्रुमम् ।
गिर्य्यग्रे वानरान् पञ्च वीरौ ददृशतुस्तदा ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये बहुत से फल मूलों से लदे हुए, वृक्षों से समन्वित ऋष्यमूक पर्वत पर पहुंचे। यहां इन वीरो ने पर्वत के ऊपर बैठे हुए पांच वानरों को देखा ॥९॥

सुग्रीवः प्रेषयामास सचिवं वानरं तयोः ।
बुद्धिमन्तं हनूमन्तं हिमवन्तमिव स्थितम् ॥१०॥

इन दोनों के पास सुग्रीव ने हिमालय की तरह दृढ़ निश्चय वाले, बुद्धिमान वानर, अपने मन्त्री हनुमान को भेजा ॥१०॥

तेन सम्भाष्य पूर्वन्तौ सुग्रीवमभिजग्मतुः ।
सख्यं वानरराजेन चक्रे रामस्तदा नृप ॥११॥

हे राजन्! इन दोनों वीरों ने प्रथम हनुमान से बातचीत कीं और फिर सुग्रीव के पास गए। वहां पहुंच कर राम ने वानरराज सुग्रीव से अपनी मित्रता कर ली ॥११॥

तद्वासो दर्शयामासुस्तस्य कार्य्ये निवेदिते ।
वानराणान्तु यत् सीता ह्रियमाणा व्यपासृजत् ॥११॥

राम का अपने वहां आने का कार्य बतलाने पर उन्होंने वह वस्त्र दिखाया, जो सीता ने इन वानरों को देख कर डाल दिया था ॥१२॥

तत् प्रत्ययकरं लब्ध्वा सुग्रीवं प्लवगाधिपम् ।
पृथिव्यां वानरैश्वर्य्ये स्वयं रामोऽभ्यषेचयत् ॥१३॥

राम ने वानरेश्वर सुग्रीव को विश्वास योग्य पाकर, उसको वानरों के आधिपत्य पर स्वयं अभिषिक्त कर दिया ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिजज्ञे च काकुत्स्थः समरे बालिनो वधम् ।
सुग्रीवश्चापि वैदेह्याः पुनरानयनं नृप ॥१४॥

हे राजन् ! राम ने युद्ध में बालि को मार देने की प्रतिज्ञा कर ली और सुग्रीव ने भी सीता के लौटाने की प्रतिज्ञा की ॥

इत्युक्त्वा समयं कृत्वा विश्वास्य च परस्परम् ।
अभ्येत्य सर्वे किष्किन्धां तस्थुर्युद्धाभिकाङ्क्षिणः ॥

इस प्रकार ये दोनों आपस में प्रतिज्ञा (शर्त) करके और एक दूसरे को विश्वास दिलाकर युद्ध की इच्छा से किष्किन्धा की ओर लौट पड़े ॥१५॥

सुग्रीवः प्राप्य किस्किन्धां ननादौघनिभस्वनः ।
नास्य तं ममृषे बाली तारा तं प्रत्यषेधयत् ॥१६॥

सुग्रीव किष्किन्धा में पहुंच कर जल के प्रवाह या जनों के वृन्द के कोलाहल की तरह गर्जना करने लगा। बाली से इसकी गर्जना नहीं सही गई। यह इससे युद्ध के लिए दौड़ा। बाली की स्त्री तारा ने इसको रोका।

यथा नदति सुग्रीवो बलवानेष वानरः ।
मन्ये चाश्रयवान् प्राप्तो न त्वं निष्क्रान्तुमर्हसि॥१७॥

हे महाभाग ! आज जिस तरह बलवान् होकर यह सुग्रीव गर्जना कर रहा है, इससे तो यही मालूम होता है, कि इसको कोई आश्रय मिल गया है। अब तुम इसको नहीं निकाल सकोगे ॥१७॥

हेममाली ततो बाली तारां ताराधिपाननाम् ।
प्रोवाच वचनं वाग्मी तां वानरपतिः पतिः ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्ण की मालाधारी, वानरराज, तारा का पति, बाचाल, बाली, चन्द्रमा के सदृश मुख वाली, तारा से यह वचन बोला।

सर्वभूतरुतज्ञा त्वं पश्य बुद्ध्या समन्विता।
केनापाश्रयवान् प्राप्तो ममैष भ्रातृगन्धिकः ॥१९॥

हे तारे! तुम सब प्राणियों के शब्दों को पहचान लेती हो, अब बुद्धि से विचार कर बताओ, कि मेरा यह भाई किसका आश्रय लेकर आया है ॥१९॥

चिन्तयित्वा मुहूर्त्तन्तु तारा ताराधिपप्रभा।
पतिमित्यब्रवीत् प्राज्ञा शृणु सर्वकपीश्वर ॥२०॥

चन्द्रमा के समान कान्तिधारिणी, तारा, कुछ देर सोचकर पति से बोली--- हे कपीश्वर! तुम सुनो ॥२०॥

हृतदारो महासत्वो रामो दशरथात्मजः।
तुल्यारिमित्रतां प्राप्तः सुग्रीवेण धनुर्द्धरः ॥२१॥

हे राजन्! एक महाबली दशरथ पुत्र राम है, जिनकी स्त्री का अपहरण हुआ है। इस धनुषधारी ने सुग्रीव के शत्रुओं को शत्रु और मित्रों को मित्र मानने की प्रतिज्ञा की है और यही प्रतिज्ञा सुग्रीव ने कर ली है ॥२१॥

भ्राता चास्य महाबाहुः सौमित्रिरपराजितः।
लक्ष्मणो नाम मेधावी स्थितः कार्य्यार्थसिद्धये॥२२॥

इन्हीं राम का छोटा भाई बड़ी २ भुजाओं वाला, सुमित्रापुत्र लक्ष्मण है। जो बुद्धिमान् सदा इनके हितकारी कामों की सिद्धि के लिये सदा तत्पर रहता है ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैन्दश्च द्विविदश्चापि हनूमांश्चानिलात्मजः ।
जाम्बवानृक्षराजश्च सुग्रीवसचिवाः स्थिताः ॥२३॥

मैन्द, द्विविद, वायुपुत्र हनूमान् और ऋक्षराज जाम्बवान् ये सुग्रीव के सचिव हैं ॥२३॥

सर्व एते महात्मानो बुद्धिमन्तो महाबलाः ।
अलन्तव विनाशाय रामवीर्य्यबलाश्रयात् ॥२४॥

ये सारे मन्त्री, महाबली, बुद्धिमान् और महात्मा हैं, ये सब राम के पराक्रम और बल का आश्रय लेकर तेरे मारने को पर्याप्त हैं ॥२४॥

तस्यास्तदाक्षिप्य वचो हितमुक्तं कपीश्वरः ।
पर्य्यशङ्कत तामीर्षुः सुग्रीवगतमानसाम् ॥२५॥

कपीश्वर बालो ने हितपूर्ण कहे हुए तारा के वचनों का खण्डन कर दिया। इस ईर्ष्यालु ने तारा पर शंका की और इसको सुग्रीव पर आसक्त समझा ॥२५॥

तारां परुषमुक्त्वा तु निर्जगाम गुहामुखात् ।
स्थितं माल्यवतोऽभ्यासे सुग्रीवं सोऽभ्यभाषत ॥२६॥

यह तारा से कठोर बोलकर गुहा के मुख से निकल पड़ा और माल्यवान् पर्वत के समीप खड़े हुए सुग्रीव से बोला ॥२६॥

असकृत् त्वं मया पूर्वं निर्जितो जीवितप्रियः ।
मुक्तो ज्ञातिरिति ज्ञात्वा का त्वरा मरणे पुनः ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरे! सुग्रीव! जीवन को प्रिय मानने वाले तुझे मैंने कितनी ही बार जीता है। मैंने तो तुझे भाई समझ कर छोड़ रखा था, अब तुझे मरण की शीघ्रता क्यों हो रही है ॥ ७॥

इत्युक्तः प्राह सुग्रीवो भ्रातरं हेतुमद्वचः।
प्राप्तकालममित्रघ्नो रामं सम्बोधयन्निव ॥२८॥

यह सुनकर शत्रुविजयी सुग्रीव राम को सन्बोधित करता हुआ अपने भाई वाली से युक्ति-युक्त समयानुकूल वचन कहने लगा॥

हृतदारस्य मे राजन् हृतराज्यस्य च त्वया।
किं मे जीवितसामर्थ्यमिति विद्धि समागतम् ॥२९॥

हे राजन्! तुमने मेरी भार्या छीन ली और राज्य का अपहरण कर लिया। अब मेरे जीने में ही क्या प्रशंसा है। मैं यही सोचकर तेरे पास आया हूं ॥२९॥

एवमुक्त्वा बहुविधं ततस्तौ सन्निपेततुः।
समरे वालिसुग्रीवौ शालतालशिलायुधौ ॥३०॥

ये इस प्रकार बहुत तरह की बातें करते हुए, शाल, ताल, के वृक्ष और शिलाके आयुध बनाकर परस्पर लड़ने लगे॥३०॥

उभौ जघ्नतुरन्योन्यमुभौ भूमौ निपेततुः।
उभौ ववल्गतुश्चित्रं मुष्टिभिश्च निजघ्नतुः ॥३१॥

ये दोनों एक दूसरे को मारने लगे और भूमि पर गिर गए। ये दोनों अपनी २ अद्भुत प्रशंसा कर रहे थे और अपनी २ मुष्टियों से मार रहे थे॥३१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभौ रुधिरसंसिक्तौ नखदन्तपरिक्षतौ ।
शुशुभाते तदा वीरौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥३२॥

ये दोनों रक्त में भीग गए और इनके नख तथा दांतों के घाव हो गए। ये दोनों वीर इस समय खिले हुए ढाकके पुष्पके सदृश सुन्दर प्रतीत होते थे ॥३२॥

न विशेषस्तयोर्युद्धे यदा कश्चन दृश्यते ।
सुग्रीवस्य तदा मालां हनूमान् कण्ठ आसजत् ॥३३

जब इन दोनों के युद्ध में इनमें कोई फ़र्क दिखाई नहीं दिया, तो हनूमान ने सुग्रीव के गले में माला डाल दीं, जिससे वह पहचाना जा सके ॥३३॥

स मालया तदा वीरः शुशुभे कण्ठसक्तया ।
श्रीमानिव महाशैलो मलयो मेघमालया ॥३४॥

इस समय कण्ठ में पड़ी हुई माला से यह वीर सुग्रीव, बड़ा ही सुशोभित होने लगा--जैसे मेघ मालासे शोभायुक्त,कान्तिधारी, महापर्वत मलय सुशोभित होता है ॥३४॥

कृतचिह्नन्तु सुग्रीवं रामो दृष्ट्वा महाधनुः ।
विचकर्ष धनुः श्रेष्ठं बालिमुद्दिश्य लक्ष्यवत् ॥३५॥

महाधनुषधारी राम ने चिन्हयुक्त सुग्रीव को देखकर बाली को लक्ष्य की तरह निश्चित करके अपने धनुश्रेष्ठ को खैंचा ॥

विस्फारस्तस्य धनुषो यन्त्रस्येव तदा बभौ ।
वितत्रास तदा बाली शरेणाभिहतो हृदि ॥३६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र के शब्द की तरह धनुष की टङ्कार सुशोभित हो रही थी। शर से हृदय में बिंधा हुआ वाली बड़ा तड़फने लगा ॥३६॥

स भिन्नहृदयो वाली वक्त्राच्छोणितमुद्वहन् ।
ददर्शावस्थितं रामं ततः सौमित्रिणा सह ॥३७॥

वाली का हृदय फट गया और मुंह से रक्त की धारा बहाने लगा। अब इसने लक्ष्मण के साथ राम को अपने सम्मुख खड़ा देखा ॥३७॥

गर्हयित्वा स काकुत्स्थं पपात भुवि मूर्च्छितः ।
तारा ददर्श तं भूमौ तारापतिसमौजसम् ॥३८॥

यह राम की निन्दा करके पृथ्वी में मूर्छित होकर गिर गया। तारा ने चन्द्रमा के समान ओजस्वी पति को पृथ्वी में पड़ा हुआ देखा ॥३८॥

हते वालिनि सुग्रीवः किष्किन्धां प्रत्यपद्यत ।
ताश्च तारापतिमुखीं तारां निपतितेश्वराम् ॥३९॥

वाली के मारे जाने पर सुग्रीव ने किष्किन्धा राजधानी और चन्द्रमुखी, विधवा तारा पर अपना अधिकार जमा लिया ॥ ९ ॥

रामस्तु चतुरो मासान् पृष्ठे माल्यवतः शुभे ।
निवासमकरोद्धीमान् सुग्रीवेणाभ्युपस्थितः ॥४०॥

बुद्धिमान् राम ने चार मास तक माल्यवान् पर्वत की चोटी पर सुग्रीव की देख रेख में निवास किया ॥४०॥

रावणोऽपि पुरीं गत्वा लङ्कां कामबलात् कृतः ।
सीतां निवेशयामास भवने नन्दनोपमे ॥४१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोकवनिकाभ्यासे तापसाश्रमसन्निभे ।
भर्तृस्मरणतन्वङ्गी तापसीवेशधारिणी ॥४२॥
उपवासतपःशीला तत्र सा पृथुलेक्षणा।
उवास दुःखवसतिं फलमूलकृताशना ॥४३॥

काम के बल से युक्त, रावण भी, लङ्कापुरी में पहुंचा और वहां उसने नन्दन वन के समान अशोक वाटिका के मध्य में तपस्वियों के आश्रम के तुल्य, भवन में सीता को रख दिया। सीता अपने पति की याद में कृश हो गई। तपस्विनी का वेष धारण किये हुए, मोटी २ आंखों वाली, सीता, उपवास और तप में तत्पर हुई, फल-मूल का भोजन करके वहां बड़े क्लेश से रहने लगी ॥४२-४३॥

दिदेश राक्षसीस्तत्र रक्षणे राक्षसाधिपः ।
प्रासासिशूलपरशुमुद्गरालातधारिणीः ॥४४॥
द्व्यक्षीं त्र्यक्षीं ललाटाक्षीं दीर्घजिह्वामजिह्विकाम् ।
त्रिस्तनीमेकपादाञ्च त्रिजटामेकलोचनाम् ॥४५॥
एताश्चान्याश्च दीप्ताक्ष्यः करभोत्कटमूर्द्ध्वजाः ।
परिवार्य्यासते सीतां दिवारात्रमतन्द्रिताः ॥४६॥

राक्षसाधिप रावण ने उसकी रक्षा में राक्षसियों को नियुक्त कर दिया। जो प्रास, खड्ग, शूल, परशु, मुद्गर और अलात-शस्त्रों को धारण किए हुए थीं। इन राक्षसियों में किसी के दो, किसी के तीन और किसी के ललाट में आंखें थीं। किसी की बड़ी लम्बी जिह्वा और किसी के जिह्वा थी ही नहीं। किसी के तीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तन, किसी के एक पैर, किसी के तीन जटा और किसी के एक आंख थी। ऊंट के बालों के सदृश बालों वाली, जाज्वल्यमान नेत्रों से युक्त, ये राक्षसियां तथा ऐसी अन्य राक्षसी, रात दिन सीता को घेरे रहती थीं ॥४४-४६॥

तास्तु तामायतापाङ्गीं पिशाच्यो दारुणस्वराः ।
तर्जयन्ति सदा रौद्राः परुषव्यञ्जनस्वराः ॥४७॥

कठोर व्यञ्जन और स्वरों का कठोर स्वर (शब्द) से उच्चारण करने वाली ये भयङ्कर राक्षसी, उस विशाल नेत्रोंवाली, सीता को डराती रहती थीं ॥४७॥

खादाम पाटयामैनां तिलशः प्रविभज्यताम् ।
येयं भर्त्तारमस्माकमवमन्येह जीवति ॥४८॥

हम इस सीता को काटेंगी और खावेंगी। इसके तिल २ के बराबर टुकड़े कर डालो, क्योंकि यह हमारे स्वामी रावण का तिरस्कार करके भी जीवित ही रह रही है ॥४८॥

इत्येवं परिभर्त्सन्तीस्त्रास्यमाना पुनः पुनः ।
भर्तृशोकसमाविष्टा निःश्वस्येदमुवाच ताः ॥४९॥

इस प्रकार राक्षसियों द्वारा डरायी और दुःखी की हुई अपने पति के शोक से व्याकुल सीता, ऊंचा श्वांस लेकर कहने लगी ॥४९॥

आर्य्याः खादत मां शीघ्रं न मे लोभोऽस्ति जीविते ।
विना तं पुण्डरीकाक्षं नीलकुञ्चितमूर्द्धजम् ॥५०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे आर्याओ ! तुम मुझे शीघ्र खा जाओ। नीले बांके बालों वाले, कमल-नयन राम के विना मुझे जीवन में लोभ ही नहीं है ॥५०॥

अप्येवाहं निराहारा जीवितप्रियवर्जिता ।
शोषयिष्यामि गात्राणि व्याली तालगता यथा ॥५१॥
न त्वन्यमभिगच्छेयं पुमांसं राघवादृते ।
इति जानीत सत्यं मे क्रियतां यदनन्तरम् ॥५२

मैं अपने प्राणों के प्रिय राम से रहित होकर ताल में पड़ी हुई, व्याली [सर्पिणी] की तरह निराहार रह कर अपने शरीर को स्वयं सुखा डालूंगी, परन्तु राघव के सिवा अन्य किसी भी पुरुष को अपना पति नहीं बनाऊंगी—यह तुम बिल्कुल सत्य समझ लो। अब तुम्हें जो कुछ करना है, वह कर सकती हो ॥५१-५२॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा राक्षस्यस्ताः खरस्वनाः ।
आख्यातुं राक्षसेन्द्राय जग्मुस्तत् सर्वमादितः ॥५३॥

इसके ये वचन सुनकर कर्कश बोलने वाली, राक्षसी, इस वृत्तान्त को आदि से सुनाने के लिए रावण के पास भागी ॥

गतासु तासु सर्वासु त्रिजटा नाम राक्षसी ।
सान्त्वयामास वैदेहीं धर्मज्ञा प्रियवादिनी ॥५४॥

इनके चले जाने पर त्रिजटा नामक धर्म को जानने वाली, मधुर-भाषिणी राक्षसी ने सीता को समझाया ॥५४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीते वक्ष्यामि ते किञ्चिद्विश्वासं कुरु मे सखि।
भयं त्वं त्यज वामोरु शृणु चेदं वचो मम ॥५५॥

हे सीते ! मैं तुम से कुछ बात कहती हूं। हे सखि ! तुम इस पर विश्वास करना। हे सुन्दरी ! तुम अपना भय छोड़ दो और मेरे वचन को ध्यान से सुनो ॥५५॥

अविन्ध्यो नाम मेधावी वृद्धो राक्षसपुङ्गवः।
स रामस्य हितान्वेषी त्वदर्थे हि समावदत् ॥५६॥
सीता मद्वचनाद्वाच्या समाश्वास्य प्रसाद्य च।
भर्त्ता ते कुशली रामो लक्ष्मणानुगतो बली ॥५७॥
सख्यं वानरराजेन शक्रप्रतिमतेजसा।
कृतवान्राघवः श्रीमान् त्वदर्थे च समुद्यतः ॥५८॥
मा च तेऽस्तु भयं भीरु रावणाल्लोकगर्हितात्।
नलकूबरशापेन रक्षिता ह्यसि नन्दिनि ॥५९॥

एक अविन्ध्य नामक बुद्धिमान् वृद्ध, राक्षस-श्रेष्ठ है। वह राम के हित में तत्पर है। उसने तेरे विषय में कहा है, कि सीता को शान्ति और आश्वासन देकर मेरे नाम से कह देना, कि तेरा महाबली पति राम, लक्ष्मण के साथ कुशल से है। इस श्रीमान् राम ने इन्द्र के सदृश तेजस्वी वानरराज सुग्रीव से मित्रता की है। अब वह तेरे ले जाने के लिए प्रयत्न कर रहा है। हे भीरु ! तुम लोकनिन्दित रावण से भय मत करो। हे नन्दिनी ! क्योंकि तुम नलकूबर के शापसे सुरक्षित हो ॥५६-५९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शप्तो ह्येष पुरा पापो वधूं रम्भां परामृशन् ।
न शक्तो त्यवशां नारीमुपैतुमजितेन्द्रियः ॥६०॥

इसने पूर्वकाल में नलकूबर की पुत्र वधू रम्भा पर आक्रमण कर दिया था। जिससे इस पापी को उसने शाप दे दिया हैं, कि यह इन्द्रियलोलुप किसी भी असन्तुष्ट नारी को नहीं छू सकेगा ॥६०॥

क्षिप्रमेष्यति ते भर्त्ता सुग्रीवेणाभिरक्षितः ।
सौमित्रिसहितो धीमांस्त्वाञ्चेतो मोक्षयिष्यति ॥६१॥

सुग्रीव से सुरक्षित तेरा बुद्धिमान् भर्ता, शीघ्र ही लक्ष्मण के साथ आने वाला है। वह तुमको यहां से छुड़ा देगा ॥६१

स्वप्ना हि सुमहाघोरा दृष्ट्वा मेऽनिष्टदर्शनाः ।
विनाशायास्य दुर्बुद्धेः पौलस्त्यकुलघातिनः ॥६२॥

मुझे भी महाघोर अनिष्ट फल करने वाले, इस दुर्बुद्धि पौलस्त्य कुल के नाशक, रावण के विनाश के सूचक, स्वप्न आ रहे हैं ॥६२॥

दारुणो ह्येष दुष्टात्मा क्षुद्रकर्मा निशाचरः ।
स्वभावात् शीलदोषेण सर्वेषां भयवर्द्धनः ॥६३॥

यह दुरात्मा, क्षुद्रकर्मा, राक्षस, बड़ा दारुण है, जो अपने स्वभाव और दुष्ट अभ्यास के दोष से सब के भय का बढ़ाने वाला है ॥६३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पर्द्धते सर्वदेवैर्यः कालोपहतचेतनः ।
मया विनाशलिङ्गानि स्वप्ने दृष्टानि तस्य वै ॥६४॥

काल से नष्ट ज्ञानवाला, यह रावण, सदा देवों की स्पर्धा (होड़) करता रहता है। मैंने इसके विनाश के लक्षण, स्वप्न में स्वयं देखे हैं ॥६४॥

तैलाभिषिक्तो विकचो मज्जन् पङ्के दशाननः ।
असकृत् खरयुक्ते तु रथे नृत्यन्निवः स्थितः ॥६५॥

यह तेल में भीगा हुआ, खुले बालों वाला, दशानन, कीचड़ में लिपटा हुआ था और गधों के रथ में बार २ नांच सा रहा था ॥६५॥

कुम्भकर्णादयश्चेमे नग्नाः पतितमूर्द्धजाः ।
गच्छन्ति दक्षिणामाशां रक्तमाल्यानुलेपनः ॥६६॥

कुम्भकर्णादि अन्य राक्षस भी बाल मुंडे हुए, नंगे लाल माला और चन्दन लगाये हुए, दक्षिण दिशा को जा रहे थे ॥६६॥

श्वेतातपत्रः सोष्णीषः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।
श्वेतपर्वतमारूढ़ एक एव विभीषणः ॥६७॥

केवल एक विभीषण ही श्वेत छत्र, श्वेत पगड़ी, श्वेत माला और चन्दन लगाये हुए, श्वेत पर्वत पर चढ़ता हुआ दिखाई दिया है ॥६७॥

सचिवास्तस्य चत्वारः शुक्लमाल्यानुलेपनाः ।
श्वेतपर्वतमारूढ़ा मोचयन्तेऽस्मान्महाभयात् ॥६८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके चार मन्त्रियों ने भी शुक्ल माला ही धारण कर रखी थी। ये भी विभीषण के साथ ही श्वेत पर्वत पर चढ़ गए। ये लोग ही मुझे तो इस महाभय से छुटकारा पाते हुए दिखाई दे रहे हैं ॥६८॥

रामस्यास्त्रेण पृथिवी परिक्षिप्ता ससागरा।
यशसा पृथिवीं कृत्स्नां पूरयिष्यति ते पतिः ॥६९॥

राम के अस्त्र से समुद्र सहित पृथ्वी, व्याप्त हो रही है। अब तेरा पति रामचन्द्र, अपने यश से सारी पृथ्वी को भर देगा ॥६९॥

अस्थिसञ्चयमारूढो भुञ्जानो मधुपायसम्।
लक्ष्मणश्च मया दृष्टो दिधक्षुः सर्वतो दिशम् ॥७०॥

अस्थियों के ढेर पर खड़ा होकर शहद और खीर खाता अहा, लक्ष्मण स्वप्न में देखा है, जो चारों दिशाओं में आग लगा रहा था ॥७०॥

रुदती रुधिरार्द्राङ्गी व्याघ्रेण परिरक्षिता।
असकृत् त्वं मया दृष्टा गच्छन्ती दिशमुत्तराम् ॥७१

मैंने तुझे भी रोती हुई और रक्त में भीगी हुई, व्याघ्र (नर-श्रेष्ठ) से सुरक्षित होकर बार २ उत्तर दिशा को जाती हुई देखा है ॥७१॥

हर्षमेष्यसि वैदेहि क्षिप्रं भर्त्रा समन्विता।
राघवेण सह भ्रात्रा सीते त्वमचिरादिव ॥७२॥

हे सीते! तुम शीघ्र ही भ्राता लक्ष्मण सहित अपने पति राम के साथ समन्वित होकर आनन्द प्राप्त करोगी ॥७२॥

इत्येतन्मृगशावाक्षी तच्छ्रुत्वा त्रिजटावचः।
बभूवाशावती बाला पुनर्भर्तृसमागमे ॥७३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिरन के बच्चे के सदृश नेत्रोंवाली सुन्दरी, सीता त्रिजटा के वचन सुनकर फिर अपने पति के मिलने की आशा से युक्त हो गई ॥७३॥

यावदभ्यागता रौद्राः पिशाच्यस्ताः सुदारुणाः ।
ददृशुस्तां त्रिजटया सहासीनां यथा पुरा ॥७४॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि सीतासान्त्वने एकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७९

इतने में ही वे दारुण, भयङ्कर राक्षसी भी आ गईं । इन्होंने पूर्ववत् त्रिजटा के साथ बैठी हुई सीता को देखा ॥७४॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में सीता के समझाने का दो सौ उनासीवां अध्याय पूरा हुआ।

****

दो सौ अस्सीवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच—

ततस्तां भर्तृशोकार्त्तां दीनां मलिनवाससम् ।
मणिशेषाभ्यलङ्कारां रुदतीञ्च पतिव्रताम् ॥१॥
राक्षसीभिरुपास्यन्तीं समासीनां शिलातले ।
रावणः कामबाणार्त्तो ददर्शोपससर्प च ॥२॥

मार्कण्डेय बोले---हे राजन् ! इस प्रकार अपने पति के शोक में व्याकुल, दीन, मलिन वस्त्रों वाली केवल एक चूड़ामणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भूषण धारण किये हुए, रोती हुई, पतिव्रता, राक्षसियों से घिरी हुई और शिला पर बैठी हुई, सीता को, काम के बाण से व्याकुल रावण ने देखा और यह उसके पास पहुंचा ॥१-२॥

देवदानवगन्धर्वयक्षकिम्पुरुषैर्युधि ।
अजितोऽशोकवनिकां ययौ कन्दर्पपीडितः ॥३॥

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, गणों से भी नहीं जीता जाने वाला रावण, काम के वेग से पीड़ित होकर अशोक वाटिका में गया ॥३॥

दिव्याम्बरधरः श्रीमान् सुमृष्टमणिकुण्डलः ।
विचित्रमाल्यमुकुटो वसन्त इव मूर्त्तिमान् ॥४॥

इस ऐश्वर्यशाली, रावण ने दिव्य वस्त्र और स्वच्छ मणियों के कुण्डल धारण कर रखे थे। इसके गले में अद्भुत माला और शिर पर विचित्र मुकुट था। यह वसन्त की मूर्ति के समान सुशोभित हो रहा था ॥४॥

स कल्पवृक्षसदृशो यत्नादपि विभूषितः ।
श्मशानचैत्युद्रुमवद्भूषितोऽपि भयङ्करः ॥५॥

यह कल्प-वृक्ष के सदृश सुन्दर था और बड़े यत्न से सजाया गया था, तो भी श्मशान के बगीचे के वृक्ष के सदृश सजाया हुआ भी भयङ्कर ही दिखाई देता था ॥५॥

स तस्यास्तनुमध्यायाः समीपे रजनीचरः ।
ददृशे रोहिणीमेत्य शनैश्चर इव ग्रहः ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कृश कटिवाली, सीता के पास यह राक्षसराज पहुंचा। यह इस समय रोहिणी नक्षत्र के पास शनैश्चर सा दिखाई दे रहा था ॥६॥

स तामामन्त्र्य सुश्रोणीं पुष्पकेतुशराहतः।
इदमित्यब्रवीद्बालां त्रस्तां रौहमिवाबलाम् ॥७॥

कामदेव के बाण से पीड़ित रावण, सुन्दर नितम्बों वाली सीता को सम्बोधित करके डरी हुई अबला हिरनी के सदृश इस बाला (सीता) से बोला ॥७॥

सीते पर्य्याप्तमेतावत् कृतो भर्त्तुरनुग्रहः।
प्रसादं कुरु तन्वङ्गि क्रियतां परिकर्म ते ॥८॥

हे सीते! तुम अपने भर्ता पर अब तक पर्याप्त कृपा कर चुकी हो। हे कृशाङ्गी! अब प्रसन्न हो जाओ और वस्त्र आभूषण आदि धारण कर लो ॥८॥

भजस्व मां वरारोहे महार्हाभरणाम्बरा।
भव मे सर्वनारीणामुत्तमा वरवर्णिनी ॥९॥

हे सुन्दरि! अत्यन्त मूल्य के वस्त्र आभूषण धारण कर मुझे प्राप्त हो जाओ। तुम सुन्दर नारी हो, इससे मेरी सारी नारियों में उत्तम बन जाओगी ॥९॥

सन्ति मे देवकन्याश्च गन्धर्वाणाञ्च योषितः।
सन्ति दानवकन्याश्च दैत्यानाञ्चापि योषितः ॥१०॥
चतुर्दश पिशाचानां कोट्यो मे वचने स्थिताः।
द्विस्तावत् पुरुषादानां रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो मे त्रिगुणा यक्षा ये मद्वनचारिणः।
केचिदेव धनाध्यक्षं भ्रातरं मे समाश्रिताः ॥१२॥

मेरे पास देवों की कन्याएँ, गन्धर्वों की स्त्रियां, दानवों की कन्या एवं दैत्यों की स्त्रियां विद्यमान है। चौदह करोड़, पिशाच, मेरी आज्ञा में रहते हैं। इससे द्विगुण, पुरुषभक्षक, भीम कर्म करने वाले राक्षस हैं। इससे त्रिगुण, यक्ष मेरे वन (देश) में घूमते हैं। कुछ ही यक्ष मेरे भाई कुबेर के पास रहे हैं ॥१०-१२॥

गन्धर्वाप्सरसो भद्रे मामापानगतं सदा।
उपातिष्ठन्ति वामोरु तथैव भ्रातरं मम ॥१३॥

हे भद्रे! वामोरु! गन्धर्व और अप्सराएँ मेरी मधुशाला [सुरापानालय] में सेवक के रूप में खड़े रहते हैं और इसी तरह मेरे भाई के साथ वे व्यवहार करते हैं ॥१३॥

पुत्रोऽहमपि विप्रर्षेः साक्षाद्विश्रवसो मुनेः।
पञ्चमो लोकपालानामिति मे प्रथितं यशः ॥१४॥

मैं भी ब्रह्मर्षि, विश्रवा मुनि का पुत्र हूं। मैं पांचवां लोकपाल माना जाता हूं। मेरा इसी नाम से जगत् में यश विख्यात हो रहा है ॥१४॥

दिव्यानि भक्ष्यभोज्यानि पानानि विविधानि च।
यथैव त्रिदशेशस्य तथैव मम भाविनि ॥१५॥

हे भाविनी! दिव्य भक्ष्य और भोजन तथा अनेक प्रकार के पान जैसे इन्द्र के भवन पर होते हैं, वैसे ही मेरे यहां भी हैं ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षीयतां दुष्कृतं कर्म वनवासकृतं तव ।
भार्य्या मे भव सुश्रोणि यथा मन्दोदरी तथा ॥१६॥

अब वनवास से तुम्हारे दुष्कर्मों का नाश हो चुका है। हे सुश्रोणि ! तुम मेरी भार्या बनो। जो अधिकार मन्दोदरी का है, वही तुम्हारा भी होगा ॥१६॥

इत्युक्ता तेन वैदेही परिवृत्य शुभाननम् ।
तृणमन्तरितं कृत्वा तमुवाच निशाचरम् ॥१७॥

रावण के इतना कहने पर सुन्दर मुखवाली सीता ने अपना मुख फेर लिया। अब यह तृण को बीच में करके राक्षसराज रावण से बोली ॥१७॥

अशिवेनाति वामोरूरजस्त्रं नेत्रवारिणा ।
स्तनावपतितौ बाला संहतावभिवर्षति ॥१८॥
उवाच वाक्यं तं क्षुद्रं वैदेही पतिदेवता ।

इस समय अकल्याणकारी नेत्र के आंसुओं से निरन्तर अपने उन्नत और पुष्ट स्तनों को भिगोती हुई, सुन्दरी बाला, पतिव्रता सीता, उस रावण से कहने लगी ॥१८

असकृद्वदतो वाक्यमीदृशं राक्षसेश्वर ॥१९॥
विषादयुक्तमेतत्ते मया श्रुतमभाग्यया ।

हे राक्षसेश्वर ! तुम इस अनुचित वाक्य को बार २ कह रहे हो। मुझ दुर्भागिनी को यह विषादकारी तेरा वचन सुनना पड़ रहा है ॥१९॥

तद्भद्रमुख भद्रन्ते मानसं विनिवर्त्त्यताम् ॥२०॥
परदारास्म्यलभ्या च सततञ्च पतिव्रता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब तरह के सुख से युक्त रावण! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मुझसे अपने मन को हटा लो। मैं अन्य पुरुष की पतिव्रता स्त्री और तुमको सब तरह से दुलर्भ हूं ॥२०॥

न चैवोपयिकी भार्या मानुषी कृपणा तव ॥२१॥
विवशां धर्षयित्वा च कां त्वं प्रीतिमवाप्स्यसि ।

दीन मनुष्य जाति की स्त्री तेरे काम की भी नहीं हैं। मुझ परवश पर बलात् आक्रमण करने से तुझे सुख भी क्या प्राप्त हो सकता है ॥२१॥

प्रजापतिसमो विप्रो ब्रह्मयोनिः पिता तव ॥२२॥
न च पालयसे धर्मं लोकपालसमः कथम् ।

प्रजापति के समान ब्रह्मर्षि, ब्रह्मा का पुत्र, तेरा पिता है। जब तू धर्म का पालन ही नहीं करता, तो लोकपालों के सदृश कैसे हो सकता है ॥२२॥

भ्रातरं राजराजानं महेश्वरसखं प्रभुम् ॥२३॥
धनेश्वरं व्यपदिशन् कथन्त्विह न लज्जसे ।

महेश्वर के सखा, शक्तिशाली, राज-राज कुबेर को अपना भाई बताता हुआ भी तू क्यों नहीं लज्जित होता है ॥२३॥

इत्युक्त्वा प्रारुदत् सीता कम्पयन्ती पयोधरौ ॥२४॥
शिरोधराञ्च तन्वङ्गी मुखं प्रच्छाद्य वाससा ।

इतना कहकर भय से स्तनों और ग्रीवा को कम्पाती हुई, सुन्दरी सीता, वस्त्र से मुंह ढ़क कर रोने लगी ॥२४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्या रुदत्या भामिन्या दीर्घवेणी सुसंयता ॥२५॥
ददृशे स्वसिता स्निग्धा काली व्यालीव मूर्द्धनि ।

इस रोती हुई सीता की गुंथी हुई लम्बी, काली और चिकनी वेणी मांथे पर काली सांपन सी दिखाई देने लगी ॥२५॥

श्रुत्वा तद्रावणो वाक्यं सीतयाक्तं सुनिष्ठुरम् ॥२६॥
प्रत्याख्यातोऽपि दुर्मेधाः पुनरेवाब्रवीद्वचः ।

सीता ने इसको बुरी तरह फटकार दिया, परन्तु यह दुर्बुद्धि रावण, सीता के निष्ठुर वचन सुनकर भी फिर इस प्रकार कहने लगा ॥२६॥

काममङ्गानि मे सीते दुनोतु मकरध्वजः ॥२७॥
न त्वामकामां सुश्रोणि समेष्ये चारुहासिनीम् ।

हे सीते ! सुश्रोणि ! चाहे, कामदेव मेरे अङ्गों को कितना ही पीड़ित करे, परन्तु जब तक तुम स्वीकार नहीं करोगी, मैं तुम सुन्दर हंसने वाली पर भी बलात् आक्रमण नहीं करूंगा ॥२७॥

किंनु शक्यं मया कर्त्तुं यत्त्वमद्यापि मानुषम् ॥२८॥
आहारभूतमस्माकं राममेवानुरुध्यसे ।

हे सीते ! मैं क्या कर सकता हूं, जो तुम अब भी हमारे आहारभूत मनुष्य राम का ही आग्रह कर रही हो ॥२८॥

इत्युक्त्वा तामनिन्द्याङ्गीं स राक्षसमहेश्वरः ॥२९॥
तत्रैवान्तर्हितो भूत्वा जगामाभिमतां दिशम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वाङ्ग-सुन्दरी सीता से इस प्रकार कहकर राक्षसेश्वर रावण, वहीं अलक्षित हो गया और वहाँ से अपनी अभिमत दिशा को चला गया ॥२९॥

राक्षसीभिः परिवृता वैदेही शोककर्षिता ।
सेव्यमाना त्रिजटया तत्रैव न्यवसत्तदा ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि सीतारावणसंवादे अशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८०॥

राक्षसियों से घेरी हुई, शोकातुर सीता, त्रिजटा से सुसेवित होकर वहीं दिन काटने लगी ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में सीता रावण के सम्वाद का दो सौ अस्सीवां अध्याय समाप्त हुआ

दो सौ इक्यासीवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच---

राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवेणाभिपालितः ।
वसन् माल्यवतः पृष्ठे ददर्श विमलं नभः ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे भरतर्षभ ! रामचन्द्रजी, सुग्रीव से सुसेवित हुए, लक्ष्मण के साथ इस माल्यवान् पर्वत की चोटी पर रह रहे थे। एक दिन इन्होंने निर्मल आकाश की ओर देखा ॥१॥

स दृष्ट्वा विमले व्योम्नि निर्मलं शशलक्ष्मणम् ।
ग्रहनक्षत्रताराभिरनुयातममित्रहा ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शत्रुनाशक राम ने निर्मल आकाश में ग्रह, नक्षत्र और ताराओं से समन्वित विमल चन्द्रमा को देखा ॥२॥

कुमुदोत्पलपद्मानां गन्धमादाय वायुना ।
महीधरस्थः शीतेन सहसा प्रतिबोधितः ॥३॥

कुमुद, उत्पल और कमलों की सुगन्ध को लेकर शीतल चलते हुए वायु ने पर्वत पर स्थित राम को अचानक चौंका दिया।

प्रभाते लक्ष्मणं वीरमभ्यभाषत दुर्मनाः ।
सीतां संस्मृत्य धर्मात्मा रुद्धां राक्षसवेश्मनि ॥३॥

इस समय राम, राक्षस के भवन में रोकी हुई सीता का स्मरण करके बड़े क्लेशित हुए और प्रातःकाल ही लक्ष्मण से बोले ॥४॥

गच्छ लक्ष्मण जानीहि किष्किन्धायां कपीश्वरम् ।
प्रमत्तं ग्राम्यधर्मेषु कृतघ्नं स्वार्थपण्डितम् ॥५॥

हे लक्ष्मण! तुम किष्किन्धामें वानरराज सुग्रीवके पास जाओ और उसका पता लगाओ। यह सम्भोग सुख में बड़ा ही प्रमत्त, कृतघ्न हो गया मालूम होता है। यह तो स्वार्थ में बड़ा ही पण्डित निकला ॥५॥

योऽसौ कुलाधमो मूढो मया राज्येऽभिषेचितः ।
सर्ववानरगोपुच्छा यमृक्षाश्च भजन्ति वै ।६॥

इस अकुलीन मूढ़ को मैंने राज्यसिंहासन पर बैठा दिया। अब सारे वानर, लङ्गूर और रीछ इसकी सेवामें तत्पर रहते हैं ।६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदर्थं निहतो वाली मया रघुकुलोद्वह ।
त्वया सह महाबाहो किष्किन्धोपवने तदा ॥७॥
कृतघ्नं तमहं मन्ये वानरापसदं भुवि ।
यो मामेवं गतं मूढो न जानीतेऽद्य लक्ष्मण ॥८॥

हे रघुकुलोद्वह ! महाबाहो ! लक्ष्मण ! जिसलिए मैंने तेरे साथ किष्किन्धा के उपवन में वाली को मारा था। सुग्रीव उस बात को भूल गया। मैं इस नीच वानरराज को कृतघ्न समझता हूं, जो कि यह मूर्ख, मेरी इस दशा को कुछ भी नहीं देख रहा है ॥७-८॥

असौ मन्ये न जानीते समयप्रतिपालनम् ।
कृतोपकारं मां नूनमवमन्याल्पया धिया ॥९॥
यदि तावदनुद्युक्तः शेते कामसुखात्मकः ।
नेतव्यो वालिमार्गेण सर्वभूतगतिं त्वया ॥१०॥

मेरे खयाल में तो यह समय का निरीक्षण करना नहीं जानता है। यह मुझ उपकारी की अपनी क्षुद्र बुद्धि से अवहेलना करके मेरे कार्य में उद्यत नहीं हुआ है और कामदेव के रस में सुख से सो रहा है। तुमको चाहिए कि वाली के मार्ग से ही सब प्राणियों की गति मृत्यु के घाट इसे भी उतार दो ॥९-१०॥

अथापि घटतेऽस्माकमर्थे वानरपुङ्गवः ।
तमादायैव काकुत्स्थ स्त्वरावान् भव मा चिरम् ॥११

हे लक्ष्मण ! यदि यह वानरराज, अब भी हमारे कार्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए उद्युक्त [तय्यार] हो जावें, तो उसको लेकर तुम शीघ्र सीता की खोज का आरम्भ कर दो ॥११॥

इत्युक्तो लक्ष्मणो भ्रात्रा गुरुवाक्यहिते रतः ।
प्रतस्थे रुचिरं गृह्य समार्गणगुणं धनुः ॥१२॥

रामचन्द्रजी के इतना कहने पर अपने बड़े भाई राम की आज्ञा में चलने वाला लक्ष्मण, बाण और उत्तम डोरी से संयुक्त, रुचिर धनुष को लेकर सुग्रीव से मिलने चल दिया ॥१२॥

किष्किन्धाद्वारमासाद्य प्रविवेशानिवारितः ।
सक्रोध इति तं मत्वा राजा प्रत्युद्ययौ हरिः ॥१३॥

लक्ष्मण, किष्किन्धा के द्वार पर पहुंचा। इसको कोई भी नहीं रोक सका और यह भीतर घुसता चला गया। राजा सुग्रीव, लक्ष्मण को कुपित जान कर उन्हें लेने को आगे बढ़ा ॥१३॥

तं सदारो विनीतात्मा सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
पूजया प्रतिजग्राह प्रीयमाणस्तदर्हया ॥१४॥

वानरराज, विनयी सुग्रीव ने अपनी भार्याओं के साथ लक्ष्मण की पूजा करके बड़ा स्वागत किया, जिससे लक्ष्मण, सन्तुष्ट हो गया ॥१४॥

तमब्रवीद्रामवचः सौमित्रिरकुतोभयः ।
स तत् सर्वमशेषेण श्रुत्वा प्रह्वः कृताञ्जलिः ॥१५॥

लक्ष्मण ने निर्भय होकर श्रीरामचन्द्रजी का सन्देश सुनाया। यह सारे सन्देश को बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ कर सुनता रहा ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभृत्यदारो राजेन्द्रः सुग्रीवो वानराधिपः ।
इदमाह वचः प्रीतो लक्ष्मणं नरकुञ्जरम् ॥१६॥

अब अपनी स्त्री और सेवकों के साथ वानराधिप, राजा सुग्रीव ने प्रसन्नता के साथ नरश्रेष्ठ लक्ष्मण से यह वचन कहा ॥१६॥

नास्मि लक्ष्मण दुर्मेधा नाकृतज्ञो न निर्घृणः ।
श्रूयतां वः प्रयत्नो मे सीतापर्य्येषणे कृतः ॥१७॥

हे लक्ष्मण ! न तो मैं दुर्बुद्धि हूं न उपकार का नहीं जानने वाला हूं और न निर्दयी हूं । मैंने जो सीता की खोज में प्रयत्न किया है, उसको सुनो ॥१७॥

दिशः प्रस्थापिताः सर्वे विनीता हरयो मया ।
सर्वेषाञ्च कृतः कालो मासेनागमनं पुनः ॥१८॥

मैंने सब दिशाओं में शिक्षित वानर भेज दिए हैं और सब को एक मास में लौट आने की आज्ञा दी है ॥१८॥

यैरियं सवना साद्रिः सपुरा सागराम्बरा ।
विचेतव्या मही वीर सग्रामनगराकरा ॥१९॥

हे वीर ! ये वानर, वन, पर्वत, पुर, ग्राम, नगरों के सहित, समुद्र के वस्त्र धारण करने वाली इस सारी पृथिवी को छान डालेंगे ॥१९॥

स मासः पञ्चरात्रेण पूर्णो भवितुमर्हति ।
ततः श्रोष्यसि रामेण सहितः सुमहत् प्रियम् ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह एक मास की अवधि पांच रात के बाद व्यतीत होगी। तब तुम रामचन्द्रजी के साथ बड़ा प्रिय समाचार सुन सकोगे ॥२०

इत्युक्तो लक्ष्मणस्तेन वानरेन्द्रेण धीमता ।
त्यक्त्वा रोषमदीनात्मा सुग्रीवं प्रत्यपूजयत् ॥२१॥

इस प्रकार बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीव के कहने पर लक्ष्मण रोष छोड़कर शान्त हो गया और इस महात्मा ने सुग्रीव की बड़ी प्रशंसा की ॥२१॥

स रामं सहसुग्रीवो माल्यवत्पृष्ठमास्थितम् ।
अभिगम्योदयं तस्य कार्य्यस्य प्रत्यवेदयत् ॥२२॥

सुग्रीव के साथ लक्ष्मण, माल्यवान पर्वत पर स्थित रामचन्द्र-जी के पास पहुंचे और उनको होने वाली कार्य की सिद्धि की सूचना दी ॥२२॥

इत्येवं वानरेन्द्रास्ते समाजग्मुः सहस्रशः ।
दिशस्तिस्रो विचित्याथ न तु ये दक्षिणाङ्गताः ॥२३॥

इस प्रकार अवधि के पूर्ण होने पर तीन दिशाओं को खोज कर सहस्रों वानर लौट आए, परन्तु जो दक्षिण दिशा को गए थे, वह नहीं लौटे ॥२३॥

आचख्युस्तत्र रामाय महीं सागरमेखलाम् ।
विचितां न तु वैदेह्या दर्शनं रावणस्य वै ॥२४॥

इन सब ने रामचन्द्रजी से निवेदन किया कि हमने समुद्र की लगड़ी धारण करने वाली सारी पृथिवी खोज डाली, परन्तु कहीं भी रावण और सीता का पता नहीं लगा ॥२४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतास्तु दक्षिणामाशां ये वै वानरपुङ्गवाः ।
आशावांस्तेषु काकुत्स्थः प्राणानार्त्तोऽभ्यधारयत् ॥

जो वानर, दक्षिण दिशा में गए थे, उनमें राम को सीता के सन्देश लानेकी बड़ी आशा हो रही थी। यह इस प्रकार बड़े क्लेश से अपने प्राणों को धारण किये हुए था ॥२५॥

द्विमासोपरमे काले व्यतीते प्लवगास्ततः ।
सुग्रीवमभिगम्येदं त्वरिता वाक्यमब्रुवन् ॥१६॥

दो मास के व्यतीत होने पर अनेक वानर आए और उन्होंने सुग्रीव के पास पहुंचकर बड़ी शीघ्रता से कहा ॥२६॥

रक्षितं वालिना यत्तु स्फीतं मधुवनं महत् ।
त्वया च प्लवगश्रेष्ठस्तद्भुङ्क्ते पवनात्मजः ॥२७॥

हे वानरराज ! जिस विशाल मधुवन की वाली और तुम रक्षा करते थे, वानरश्रेष्ठ हनूमान ने उसके फल खा डाले ॥२७॥

वालिपुत्रोऽङ्गदश्चैव ये चान्ये प्लवगर्षभाः ।
विचेतुं दक्षिणामाशां राजन् प्रस्थापितास्त्वया ॥

हे राजन् ! वाली पुत्र अङ्गद तथा अन्य वानरश्रेष्ठ, जो तुमने दक्षिण दिशा में सीता की खोज में भेजे थे, वे सब बगीचे को छिन्न भिन्न कर रहे हैं ॥२८॥

तेषां तत् प्रणयं श्रुत्वा मेने स कृतकृत्यताम् ।
कृतार्थानां हि भृत्यानामेतद्भवति चेष्टितम् ॥२९॥

उनकी इस प्रेम पूर्ण चेष्टा को सुनकर सुग्रीव समझ गया, कि वे अपने काम में सफल हो गए हैं। जो भृत्य कृतकार्य हो जाते हैं, वे ऐसी ही चेष्टा करते हैं ॥२९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तद्रामाय मेधावी शशंस प्लगवर्षभः ।
रामश्चाप्यनुमानेन मेने दृष्टान्तु मैथिलीम् ॥३०॥

बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीव ने यह सब समाचार श्रीरामचन्द्र-जी को सुनाए। रामचन्द्रजी ने भी अनुमान से जान लिया, कि सीता का पता लग चुका ॥३०॥

हनूमत्प्रमुखाश्चापि विश्रान्तास्ते प्लवङ्गमाः ।
अभिजग्मुर्हरीन्द्रं तं रामलक्ष्मणसन्निधौ ॥३१॥

हनूमान् आदि वानर भी विश्राम कर चुके। वे भी कपीन्द्र, सुग्रीव और राम लक्ष्मण के पास चले ॥३१॥

गतिञ्च मुखवर्णञ्च दृष्ट्वा रामो हनूमतः ।
अगमत् प्रत्ययं भूयो दृष्ट्वा सीतेति भारत ॥३२॥

हे भारत! रामचन्द्र जी ने हनूमान् की चाल और मुख का वर्ण देखकर फिर यह निश्चय कर लिया, कि सीता का पता लगा लिया है ॥३२॥

हनूमत्प्रमुखास्ते तु वानराः पूर्णमानसाः ।
प्रणेमुर्विधिवद्रामं सुग्रीवं लक्ष्मणन्तथा ॥३३॥

हनूमानादि वानरों ने बड़ी प्रसन्नता से राम सुग्रीव और लक्ष्मण को प्रणाम किया ॥३३॥

तानुवाचागतान्रामः प्रगृह्य सशरं धनुः ।
अपि मां जीवयिष्यध्वमपि वः कृतकृत्यता ॥३४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाण सहित धनुष हाथ में लिए हुए राम ने पूछा—क्या तुम लोग मेरे जीवित रहने का समाचार सुनाओगे ? क्या तुम अपने कार्य में कृतार्थ हो गए ? ॥३४॥

अपि राज्यमयोध्यायां कारयिष्याम्यहं पुनः ।
निहत्य समरे शत्रूनाहृत्य जनकात्मजाम् ॥३५॥

क्या मैं शत्रुओं को मारकर और जनकात्मजा सीता को लेकर फिर अयोध्या का राज कर सकूंगा?॥३५॥

अमोक्षयित्वा वैदेहीमहत्वा च रणे रिपून् ।
हृतदारोऽवधूतश्च नाहं जीवितुमुत्सहे ॥३६॥

मैं सीता के विना छुड़ाए और शत्रुओं को विना मारे, भार्या से हीन होकर अवधूत दशा में जीवित नहीं रह सकूंगा ॥३६॥

इत्युक्तवचनं रामं प्रत्युवाचानिलात्मजः ।
प्रियमाख्यामि ते राम दृष्टा सा जानकी मया ॥३७॥

राम के इतना कहने पर वायुपुत्र हनूमान् बोले—महाभाग ! मैं प्रिय समाचार सुनाता हूं, मैंने सीता का पता लगा लिया है ।

विचित्य दक्षिणामाशां सपर्वतवनाकराम् ।
श्रान्ताः काले व्यतीते स्म दृष्टवन्तो महागुहाम् ॥३८

हमने पर्वत, वन समूह से व्याप्त, सारी पृथिवी, छान डाली जब हम थक गए और एक मास का समय व्यतीत हो गया, तो हमारी दृष्टि एक बड़ी भारी गुफा पर पड़ी ॥३८॥

प्रविशामो वयं तान्तु बहुयोजनमायताम् ॥
सान्धकारां सुविपिनां गहनां कीटसेविताम् ॥३९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह गुफा अनेक योजन लम्बी चौड़ी थी। इसमें बड़ा अन्धेरा और भीतर ही इसके बड़ा वन था। यह कीड़े मकोड़े आदि जन्तुओं से व्याप्त होने से बड़ी दुर्गम थी। हम उसमें घुस गये।

गत्वा सुमहदध्वानमादित्यस्य प्रभान्ततः।
दृष्टवन्तः स्म तत्रैव भवनं दिव्यमन्तरा ॥४०॥

जब हम बहुत दूर निकल गए तो हमको सूर्य का प्रकाश दिखाई दिया। हमने उसी गुहा के मध्य में एक दिव्य भवन देखा ॥४०॥

मयस्य किल दैत्यस्य तदासीद्वेश्म राघव।
तत्र प्रभावती नाम तपोऽतप्यत तापसी ॥४१॥

हे राघव! यह मय दैत्य का भवन था। वहाँ पर प्रभावती नाम की तपस्विनी तप कर रही थी ॥४१॥

तया दत्तानि भोज्यानि पानानि विविधानि च।
भुक्त्वा लब्धबलाः सन्तस्तयोक्तेन पथा ततः ॥४२॥

उसने हमको भोजन पान के अनेक पदार्थ दिए। हमने वहां भोजन किया, जिससे कुछ बल का सञ्चार हुआ, फिर हम उसी तापसी के बताये हुए मार्ग से चल पड़े ॥४६॥

निर्याय तस्मादुर्देशात् पश्यामो लवणाम्भसः।
समीपे सह्यमलयौ दर्दुरञ्च महागिरिम् ॥४३॥

हम उस प्रदेश से निकले और क्षार समुद्र पर पहुंच गए। इसके पास में ही सह्य और मलय तथा महागिरि दर्दुर को देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो मलयमारुह्य पश्यन्तो वरुणालयम् ।
विषण्णो व्यथिताः खिन्ना निराशा जीविते भृशम् ॥

हमने मलय पर्वत पर चढ़कर समुद्र की ओर देखा। इस समय हम बड़े ही दुःखी, क्लेशित और खिन्न हो रहे थे। हमको अपने जीवन में बिल्कुल निराशा हो चुकी थी ॥४४॥

अनेकशतविस्तीर्णं योजनानां महोदधिम् ।
तिमिनक्रझषावासं चिन्तयन्तः सुदुःखिताः ॥४५॥

सैकड़ों योजन लम्बे चौड़े, मगर, मछली आदि जलजन्तुओं से व्याप्त, समुद्रको देखकर हमलोग बड़े दुःखी और चिन्तित हुए

तत्रानशनसङ्कल्पं कृत्वासीना वयं तदा ।
ततः कथान्ते गृध्रस्य जटायोरभवत् कथा ॥४६॥

हम यहां अनशन व्रत करके बैठ गए। इस समय की बातचीत में जटायु की कथा चल पड़ी ॥४६॥

ततः पर्वतशृङ्गाभं घोररूपं भयावहम् ।
पक्षिणं दृष्टवन्तः स्म वैनतेयमिवापरम् ॥४७॥

इसके अनन्तर पर्वत की चोटी के सदृश, महाघोर भयजनक एक पक्षी को देखा, जो द्वितीय गरुड़ के सदृश पराक्रमी दिखाई देता था ॥४७॥

सोऽस्मानतर्कयत् भोक्तुमथाभ्येत्य वचोऽब्रवीत् ।
भोः क एष मम भ्रातुर्जटायोः कुरुते कथाम् ॥४८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसने हमारे भक्षण कर जाने का विचार किया। यह हमारे पास आकर बोला। अरे! तुम कौन लोग हो, जो मेरे भाई जटायु की बातचीत कर रहे हो ॥४८॥

सम्पातिर्नाम तस्याहं ज्येष्ठो भ्राता खगाधिपः।
अन्योऽन्यस्पर्द्धयारूढावावामादित्यसंसदम् ४९
ततो दग्धाविमौ पक्षौ न दग्धौ तु जटायुषः।
तदा मे चिरदृष्टः स भ्राता गृध्रपतिः प्रियः ॥५०॥

मैं जटायुका बड़ा भ्राता, सम्पाति पक्षिराज हूं। हम दोनों भाइयों ने स्पर्धा (होड़) लगाकर सूर्य मण्डल की ओर उड़ना आरम्भ किया। उस समय मेरे तो ये पक्ष जल गए, परन्तु जटायु लौट आया, इससे उसके पक्ष नहीं जले। अभी दीर्घ-काल से मैंने अपने प्रिय भ्राता जटायु को नहीं देखा है ॥५०॥

निर्दग्धपक्षः पतितो ह्यहमस्मिन् महागिरौ।
तस्यैवं वदतोऽस्माभिर्हतो भ्राता निवेदितः ॥५१॥

मेरे जब पक्ष जल गए, तो मैं इस महापर्वत पर आ गिरा। जब उसने इतना कहा, तो हमने उसको समाचार सुना दिया, कि तुम्हारा भाई मारा गया। ५१॥

व्यसनं भवतश्चेदं संक्षेपाद्वै निवेदितम्।
स सम्पातिस्तदा राजन् श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ॥५२॥
विषण्णचेताः पप्रच्छ पुनरस्मानरिन्दम।
कः स रामः कथं सीता जटायुश्च कथं हतः ५३
इच्छामि सर्वमेवैतत् श्रोतुं प्लवगसत्तमाः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! उसी बातचीत में हमने तुम्हारी विपति की भी संक्षेप से कथा सुना दी। हे अरिमर्दन ! सम्पाति इस महा-अप्रिय समाचार को सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ और हमसे फिर पूछने लगा कि राम कौन है, सीता का अपहरण कैसे हुआ और जटायु कैसे मारा गया। हे वानरश्रेष्ठो ! मैं तुमसे यह सारी कथा विस्तार से सुनना चाहता हूं ॥५२-५३॥

तस्याहं सर्वमेवेतद्भवतो व्यसनागमम् ॥५४॥
प्रायोपवेशने चैव हेतुं विस्तरशोऽब्रुवम् ।

हे राजन् ! हमने सम्पाति को तुम्हारी सारी विपत्ति की कथा सुना दी और हमारे मरण पर्यन्त अनशन व्रत का भी कारण कह सुनाया ॥५४॥

सोऽस्मानुत्थापयामास वाक्येनानेन पक्षिराट् ॥५५॥
रावणो विदितो मह्यं लङ्का चास्य महापुरी ।

इस पक्षिराट् सम्पाति ने यह कह कर हमको उठाया, कि मैं रावण और उसकी विशालपुरी लङ्का को जानता हूं ॥५५॥

दृष्टा पारे समुद्रस्य त्रिकूटगिरिकन्दरे ॥५६॥
भवित्री तत्र वैदेही न मेऽस्त्यत्र विचारणा ।

मैं समुद्र के पार त्रिकूट पर्वत की कन्दरा में बसी हुई, लङ्का में, जानकी को देख रहा हूं—इसमें कोई सन्देह न समझो ॥५६॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा वयमुत्थाय सत्वराः ॥५७॥
सागरक्रमणे मन्त्रं मन्त्रयामः परन्तप ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे परन्तप ! हम उसके वचन सुनकर शीघ्र खड़े हो गए और समुद्र पार जाने की सोचने लगे ॥५७॥

नाध्यवास्यद्यदा कश्चित् सागरस्य विलङ्घनम् ॥५८॥

ततः पितरमाविश्य पुप्लुवेऽहं महार्णवम् ।

शतयोजनविस्तीर्णं निहत्य जलराक्षसीम् ॥५९॥

जब अन्य किसी ने समुद्र का उल्लङ्घन करना स्वीकार नहीं किया, तो मैं अपने पिता, वायु में प्रवेश करके जल में रहने वाली राक्षसी को मारकर शत योजन विस्तीर्ण इस महासमुद्र को उलांघ गया ॥५८ ५९॥

तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती ।

उपवासतपः शीला भर्तृदर्शनलालसा ॥६०॥

जटिला मलदिग्धाङ्गी कृशा दीना तपस्विनी ।

वहां मैंने रावण के अन्तःपुर की नियुक्त की हुई स्त्रियों में सीता को देखा। यह अपने भर्ता के दर्शन की बड़ी लालसा से व्रत और तप करके कृश हो रही थी। इसके बालों में लटी पड़ गई और मल से शरीर व्याप्त हो रहा है। यह बड़ी कृश, दीन और आतुर है ॥६०॥

निमित्तैस्तामहं सीतामुपलभ्य पृथग्विधैः ॥६१॥

उपसृत्याब्रुवञ्चार्य्यामभिगम्य रहोगताम्

मैंने अनेक पृथक् २ कारणों से यह जान लिया, कि यही सीता है। मैं एकान्त का मौका देखकर सीता के पास पहुंचा और उस आर्या से इस प्रकार कहा ॥६१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीते रामस्य दूतोऽहं वानरो मारुतात्मजः ॥६२॥
त्वद्दर्शनमभिप्रेप्सुरिह प्राप्तो विहायसा ।

हे सीते ! मैं वायु का पुत्र हनुमान् वानर, राम का दूत होकर, आकाश मार्ग से तेरी खोज के लिए ही यहां आया हूं ॥६२॥

राजपुत्रौ कुशलिनौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥६३॥
सर्वशाखामृगेन्द्रेण सुग्रीवेणाभिपालितौ ।

राजपुत्र, दोनों भाई राम लक्ष्मण कुशल से हैं। सारे वानरों के अधिपति सुग्रीव उनकी सहायता को तत्पर हो रहे हैं ॥६३॥

कुशलं त्वाब्रवीद्रामः सीते सौमित्रिणा सह ॥६४॥
सखिभावाच्च सुग्रीवः कुशलं त्वानुपृच्छति ।

हे सीते ! लक्ष्मण के साथ २ रामचन्द्रजी ने तुम्हारी कुशल पूछी है। राम के मित्र हो जाने के कारण सुग्रीव भी तुम्हारी कुशल पूछ रहा है ॥६४॥

क्षिप्रमेष्यति ते भर्त्ता सर्वशाखामृगैः सह ॥६५॥
प्रत्ययं कुरु मे देवि वानरोऽस्मि न राक्षसः ।

हे देवि ! सारे वानरों को साथ लेकर तुम्हारे भर्ता शीघ्र ही आवेंगे। तुम मुझ पर विश्वास करो। मैं वानर हूं, राक्षस नहीं हूं ॥६५॥

मुहूर्त्तमिव च ध्यात्वा सीता मां प्रत्युवाच ह ॥६६॥
अवैमि त्वां हनूमन्तमविन्ध्यवचनादहम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी देर विचार कर सीता मुझसे कहने लगी- हे वानर ! मैं जान चुकी हूं तुम हनुमान् हो, क्योंकि मुझे अविन्ध्य राक्षस ने यह सब कुछ बता दिया है ॥६६॥

अविन्ध्यो हि महाबाहो राक्षसो वृद्धसम्मतः ॥६७॥
कथितस्तेन सुग्रीवस्त्वद्विधैः सचिवैर्वृतः ।

हे महाबाहो ! अविन्ध्य नामक राक्षस, वृद्धों से बड़ा सम्मानित है । उसने कहा है, कि सुग्रीव, तुम जैसे मन्त्रियों से संयुक्त है ॥६७

गम्यतामिति चोक्त्वा मां सीता प्रादादिमं मणिम् ॥
धारिता येन वैदेही कालमेतमनिन्दिता ।

फिर सीता ने कहा-तुम शीघ्र चले जाओ और उसने यह मणि प्रदान की है । इस मणि ने ही अब तक सुन्दरी सीता के प्राण बचा रखे थे ॥६८॥

प्रत्ययार्थं कथाञ्चेमां कथयामास जानकी ॥६९॥
क्षिप्तामिषीकां काकाय चित्रकूटे महागिरौ ।
भवता पुरुषव्याघ्र प्रत्यभिज्ञानकारणात् ॥७०॥

तुमको विश्वास हो जाने के लिये सीता ने महागिरि चित्रकूट पर काक के लिए तुमसे फैंकी हुई, दूषिका [गाण्डर की सींक के बाण] की कथा सुनाई हे पुरुषव्याघ्र ! इससे तुमको सब कुछ पहचान हो सकेगी ॥६९-७०॥

ग्राहयित्वाहमात्मानं ततो दग्ध्वा च तां पुरीम् ।
सम्प्राप्त इति तं रामः प्रियवादिनमार्चयत् ॥७१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि हनूमत्प्रत्यागमने एकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥

वहां मैं ने अपने को पकड़वा दिया और फिर लङ्कापुरी को दग्ध करके यहां चला आया हूं। इस प्रकार प्रिय समाचार सुनाने वाले हनूमान् का रामचन्द्रजी ने बड़ा सत्कार किया ।॥७१॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में हनूमान् के लौट आने का दौ सौ इक्यासीवां अध्याय पूरा हुआ।

दो सौ बयासीवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच—

ततस्तत्रैव रामस्य समासीनस्य तैः सह ।
समाजग्मुः कपिश्रेष्ठाः सुग्रीववचनात्तदा ॥१॥

मार्कण्डेय बोले— हे राजन् ! उन हनूमान् आदि वानरों के साथ बैठे हुए रामचन्द्रजी के पास सुग्रीव की आज्ञा से अनेक उत्तम २ वानर पहुंचे ॥१॥

ततः कोटिसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ।
श्वशुरो वालिनः श्रीमान् सुषेणो राममभ्ययात् ॥२॥

अब सहस्रों कोटि (टुकड़ी में बटे हुए) वेगशील वानरों को लेकर, वाली का श्वशुर श्रीमान् सुषेण रामचन्द्रजी के पास पहुंचा ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोटीशतवृतो वापि गयो गवय एव च ।
वानरेन्द्रौ महावीर्य्यौ पृथक् पृथगदृश्यताम् ॥३॥

सैंकड़ों कोटि (टुकड़ी) से युक्त गय और गवय नामक महापराक्रमी वानर श्रेष्ठ पृथक् २ आकर खड़े हो गए ॥३॥

षष्टिकोटिसहस्राणि प्रकर्षन् प्रत्यदृश्यत ।
गोलाङ्गूलो महाराज गवाक्षो भीमदर्शनः ॥४॥

हे महाराज ! साठ हज़ार कोटि सेना को लेकर गवाक्ष नामक भयङ्कर लङ्गूर दिखाई दिया ॥४॥

गन्धमादनवासी तु प्रथितो गन्धमादनः ।
कोटीशतसहस्राणि हरीणां समकर्षत ॥५॥

गन्धमादन पर्वत का निवासी, गन्धमादन नामधारी, वानर, एक लाख कोटि वानर सेना खैंच लाया ॥५॥

पनसो नाम मेधावी वानरः समहाबलः ।
कोटीर्दश द्वादश च त्रिंशत्पञ्च प्रकर्षति ॥६॥

पनस नामक महाबुद्धिमान् वानर, दश, बारह, तीस और पांच करोड़ पृथक् २ सेना लाया ॥६॥

श्रीमान् दधिमुखो नाम हरिवृद्धोऽतिवीर्य्यवान् ।
प्रचकर्ष महासैन्यं हरीणां भीमतेजसाम् ॥७॥

अत्यन्त वीर्यशाली, वृद्ध, श्रीमान् दधिमुख नामक वानर, भयङ्कर वानरों की सेना लेकर आया ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णानां मुखपाण्डूनामृक्षाणां भीमकर्मणाम् ।
कोटीशतसहस्रेण जाम्बवान् प्रत्यदृश्यत ॥८॥

काले वर्ण और पीले मुख वाले भयानक रीछों की एक लाख कोटि सेना लेकर जाम्बवान् दिखाई दिया ॥८॥

एते चान्ये च बहवो हरियूथपयूथपाः ।
असंख्येया महाराज समीयूरामकारणात् ॥९॥

हे महाराज ! इस प्रकार बहुत से असंख्येय वानर और वानरों के सेनापति, राम की सेवा के निमित्त आ खड़े हुए ॥९॥

गिरिकूटनिभाङ्गानां सिंहानामिव गर्जताम् ।
श्रूयते तुमुलः शब्दस्तत्र तत्र प्रधावताम् ॥१०॥

इनके पर्वतों के समान शरीर थे और ये सिंहों की तरह गर्जना कर रहे थे। इधर उधर दौड़ते हुए इन वानरों का बड़ा घोर शब्द हो रहा था। ॥१०॥

गिरिकूटनिभाः केचित् केचिन्महिषसन्निभाः ।
शरदभ्रप्रतीकाशाः केचिद्धिङ्गुलकाननाः ॥११॥

कोई वानर तो पर्वत के शिखर के सदृश और कोई भैंसे के समान आकारधारी थे। कोई शरद् के बादलों के समान ऊंचे और हिङ्गुल के समान लाल मुख वाले थे ॥११॥

उत्पतन्तः पतन्तश्च प्लवमानाश्च वानराः ।
उद्धुन्वन्तोऽपरे रेणून् समाजग्मुः समन्ततः ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ वानर, उछलते कूदते और फुदकते थे। कुछ धूल उड़ाते हुए, इधर उधर चक्कर लगा रहे थे ॥१२॥

स वानरमहासैन्यः पूर्णसागरसन्निभः ।
निवेशमकरोत्तत्र सुग्रीवानुमते तदा ॥१३॥

यह वानरों की सेना, जल से पूर्ण समुद्र की तरह उछल रही थी। इन्होंने सुग्रीव की इच्छा के अनुसार अपना २ पड़ाव डाला ॥१३॥

ततस्तेषु हरीन्द्रेषु समावृत्तेषु सर्वशः ।
तिथौ प्रशस्ते नक्षत्रे मुहूर्ते चाभिपूजिते ॥१४॥
तेन व्यूढेन सैन्येन लोकानुद्वर्त्तयन्निव ।
प्रययौ राघवः श्रीमान् सुग्रीवसहितस्तदा ॥१५॥

जब सारे उत्तम २ वानर इधर उधर से आकर इकट्ठे हो गए, तो उत्तम नक्षत्र और तिथि तथा सुन्दर मुहूर्त में इस दृढ़ सेना के साथ लोकों को उलटते से हुए, श्रीमान् राम ने सुग्रीव के सहित रावण पर चढ़ाई कर दी ॥१४-१५॥

मुखमासीत्तु सैन्यस्य हनूमान्मारुतात्मजः ।
जघनं पालयामास सौमित्रिरकुतोभयः ॥१६॥

इस सेना के मुख पर मारुत पुत्र हनूमान् था और पिछले भाग पर निर्भीक सुमित्रापुत्र लक्ष्मण था ॥१६॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ राघवौ तत्र जग्मतुः ।
वृतौ हरिमहामात्त्रैश्चन्द्रसूर्य्यौ ग्रहैरिव ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोधा के चर्म का अङ्गुलित्राण पहने हुए, ग्रहों से घिरे हुए, सूर्य चन्द्रमा की तरह बड़े २ आकारधारी वानरों और सेनापतियों से युक्त होकर राम और लक्ष्मण चल दिए ॥१७॥

प्रबभौ हरिसैन्यन्तत् शालतालशिलायुधम् ।
सुमहच्छालिभवनं यथासूर्य्योदयं प्रति ॥१८॥

शाल, ताल और शिलाओं के शस्त्रधारी वानरों की सेना बड़ी सुशोभित हो रही थी जैसे सूर्योदय के समय विशाल धान्य का पीला खेत सुशोभित होता है ॥१८॥

नलनीलाङ्गदक्राथमैन्दद्विविदपालिता ।
ययौ सुमहती सेना राघवस्यार्थसिद्धये ॥१९॥

नल, नील, अङ्गद, क्राथ, द्विविन्द से सुरक्षित विशाल वानरों की सेना, राम के कार्य की सिद्धि के लिए चल पड़ी ॥१९॥

विविधेषु वनेष्वेव बहुमूलफलेषु च ।
प्रभूतमधुमांसेषु वारिमत्सु शिवेषु च ॥२०॥
निवसन्ती निराबाधा तथैव गिरिसानुषु ।
उपायाद्धरिसेना सा क्षारोदमथ सागरम् ॥२१॥

बहुत से फल मूलों से युक्त, अनेक वन, बहुत से मधु (सुरा) मांस वाले सुखदायी, जल युक्त प्रदेशों और पर्वतों की चोटियों पर विना किसी रुकावट के निवास करती हुई, यह वानरों की सेना खारे जल वाले समुद्र पर पहुंची ॥२०-२१॥

द्वितीयसागरनिभं तद्बलं बहुलध्वजम् ।
वेलावनं समासाद्य निवासमकरोत्तदा ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत सी ध्वजाओं वाली द्वितीय समुद्र के सदृश इस सेना ने समुद्र की वेला (तट) के वन में पहुंच कर पड़ाव डाल दिया ॥२२॥

ततो दाशरथिः श्रीमान् सुग्रीवं प्रत्यभाषत ।
मध्ये वानरमुख्यानां प्राप्तकालमिदं वचः ॥२३॥

अब दशरथ-पुत्र श्रीमान राम ने मुख्य २ वानरों के साथ बैठे हुए, सुग्रीव से समयानुसार यह वचन कहा ॥२३॥

उपायः कोनु भवतां मतः सागरलङ्घने ।
इयं हि महती सेना सागरश्चातिदुस्तरः ॥२४॥

हे महानुभावो ! तुमने इस समुद्र के उल्लंघन का क्या उपाय सोचा है। यह सेना बहुत अधिक है और समुद्र भी बड़ा दुस्तर है ॥२४॥

तत्रान्ये व्याहरन्ति स्म वानरा बहुमानिनः ।
समर्था लङ्घने सिन्धोर्न तु तत्कृत्स्नकारकम् ॥२५॥

उनमें घमण्ड रखने वाले कुछ वानर कहने लगे-कि हम समुद्र के लङ्घन में समर्थ हैं, परन्तु सारे वानर, ऐसा नहीं कर सकते हैं ॥२५॥

केचिन्नौभिर्व्यवस्यन्ति केचिच्च विविधैः प्लवैः ।
नेति रामस्तु तान् सर्वान् सान्त्वयन् प्रत्यभाषत ॥

कोई तो नौका से पार जाने का और कोई अनेक छोटी २ डोंगियों से पार होने का उपाय निश्चित कर रहे हैं। राम ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन सबको शान्ति से समझाकर कहा-कि यह कुछ भी नहीं हो सकता है ॥२६॥

शतयोजनविस्तारं न शक्ताः सर्ववानराः ।
क्रान्तुं तोयनिधिं वीरा नैषा वो नैष्ठिकी मतिः ॥

सौ योजन विस्तृत, इस समुद्र को सारे वानर नहीं उलांघ सकते और न तुम ही निश्चय बुद्धि से यह कह सकते हो, कि इन उपायों से सारे वानर पार हो जावेंगे ॥२७॥

नावो न सन्ति सेनाया बह्व्यस्तारयितुं तथा ।
वणिजामुपघातश्च कथमस्मविधश्चरेत् ॥२८॥

बहुत सी नावें भी इस सेना को पार नहीं उतार सकती हैं। इससे व्यापारियों के काम में रुकावट पड़ेगी। हम जैसे मनुष्य, किसी को हानि नहीं पहुंचाना चाहते हैं ॥२८॥

विस्तीर्णश्चैव नः सैन्यं हन्याच्छिद्रेण वै परः ।
प्लवोडुपप्रतारश्च नैवात्र मम रोचते ॥२९॥

हमारी बड़ी विस्तृत सेना है । यदि कोई छिद्र खड़ा हो गया, तो शत्रु हमको शीघ्र नष्ट कर डालेगा, इससे तुम्बी आदि से बनी प्लव (डोंगी) और छोटी २ नौकाओं से समुद्र का पार करना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता है ॥२९॥

अहं त्विमं जलनिधिं समारप्स्याम्युपायतः ।
प्रतिशेष्याप्युपवसन् दर्शयिष्यति मान्ततः ॥३०॥

मैं इस समुद्र की किसी उपाय से आराधना करूंगा। मैं आज सोकर यहां निवास करता हूं। यह मुझे स्वप्न में अवश्य कोई मार्ग दिखावेगा ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न चेद्दर्शयिता मार्गं धक्ष्याम्येनमहं ततः ।
महास्त्रैरप्रतिहतैरत्यग्निज्वलनोज्वलैः ॥३१॥

यदि यह मार्ग नहीं बतावेगा, तो मैं अग्नि की ज्वालाओं के समान जलते हुए, नहीं रुकने वाले महा अस्त्रों से इसे जला डालूंगा ॥३१॥

इत्युक्त्वा सहसौमित्रिरुपस्पृश्याथ राघवः ।
प्रतिशिश्ये जलनिधिं विधिवत् कुश-संस्तरे ॥३२॥

इतना कह कर सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण के साथ राघव, आचमन करके समुद्र के तट पर कुशा के आसन पर विधि-पूर्वक सो गया ॥३२॥

सागरस्तु ततः स्वप्ने दर्शयामास राघवम् ।
देवो नदनदीभर्त्ता श्रीमान् यादोगणैर्वृतः ॥३३॥

अब नदी और नदों के स्वामी, जल जन्तुओं से व्याप्त, देव रूपी समुद्र ने स्वप्न में राघव को दर्शन दिए ॥३३॥

कौशल्या-मातरित्येवमाभाष्य मधुरं वचः ।
इदमित्याह रत्नानामाकरैः शतशो वृतः ॥३४॥

सैंकड़ों रत्नाकरों से व्याप्त समुद्र ने "कौशल्या के पुत्र" ऐसा मधुर सम्बोधन करके यह कहा ॥३४॥

ब्रूहि किन्ते करोम्यत्र साहाय्यं पुरुषर्षभ ।
ऐक्ष्वाकुर्ह्यस्मि ते ज्ञातिरित रामस्तमब्रवीत् ॥३५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे पुरुषर्षभ ! कहो, मैं तुम्हारी क्या सहायता करूं। मैं भी इक्ष्वाकु वंशी तेरा ही बन्धु हूं। इसके इतना कहने पर राम ने कहा ॥३५॥

मार्गमिच्छामि सैन्यस्त दत्तं नदनदीपते।
येन गत्वा दशग्रीवं हन्यां पौलस्त्यपांसनम् ॥३६॥

हे नदीनदपते ! मैं सेना के निकल जाने का मार्ग चाहता हूं, जिससे जाकर पौलस्त्य-कुल-कलङ्क रावण का वध करूं ॥३६॥

यद्येवं याचतो मार्गं न प्रदास्यति मे भवान्।
शरैस्त्वां शोषयिष्यामि दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥

यदि आप इस याचना को सुनकर भी मुझे मार्ग न देंगे, तो मैं भी दिव्य अस्त्रों से अभिमन्त्रित, बाणों से तुझे सुखा डालूंगा॥

इत्येव ब्रुवतः श्रुत्वा रामस्य वरुणालयः।
उवाच व्यथितो वाक्यमिति बद्ध्वाञ्जलिः स्थितः॥

इस प्रकार कहते हुए राम के वचन सुनकर समुद्र, बड़ा दुःखी हुआ और हाथ जोड़कर यह वचन कहने लगा ॥३८॥

नेच्छामि प्रतिघातन्ते नास्मि विघ्नकरस्तव।
शृणु चेदं वचो राम श्रुत्वा कर्त्तव्यमाचर ॥३९॥

हे राम ! मैं तुम्हारे कार्य का नाश नहीं चाहता हूं और न इसमें मेरी विघ्न करने की कोई इच्छा है। अब तुम मेरा वचन सुनो और उसके अनन्तर अपना कर्तव्य निश्चित कर लो ॥३९॥

यदि दास्यामि ते मार्गं सैन्यस्य व्रजतो ज्ञया।
अन्येऽप्याज्ञापयिष्यन्ति मामेवं धनुषो बलात् ॥४०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि यात्रा करने वाली तुम्हारी सेना को तुम्हारी आज्ञा से मैं मार्ग दे दूं, तो अन्य भी धनुषके बल से मुझे आ दबावेंगे ॥४०॥

अस्ति त्वत्र नलो नाम वानरः शिल्पिसम्मतः ।
त्वष्टुर्देवस्य तनयो बलवान् विश्वकर्मणः ॥४१॥

इस सेना में एक नल नामक वानर है, जो शिल्पियों में सम्मानित है। यह विश्वकर्मा, त्वष्टा (शिल्पी) का बलवान पुत्र है

स यत् काष्ठं तृणं वापि शिलाम्वा क्षेप्स्यते मयि ।
सर्वं तद्धारयिष्यामि स ते सेतुर्भविष्यति ॥४२॥

यह नल वानर, जिस काष्ठ, तृण या शिलाओं को मुझ पर डालेगा, मैं उसको धारण कर लूंगा और वही तुम्हारे लिए सेतु (पुल) बन जावेगा ॥४२॥

इत्युक्त्वान्तर्हिते तस्मिन् रामो नलमुवाच ह ।
कुरु सेतुं समुद्रे त्वं शक्तो ह्यसि मतो मम ॥४३॥

इतना कहकर समुद्र तो चला गया, अब राम ने नल से कहा तुम इस समुद्र का सेतु बनाओ। मेरी सम्मति में तुम इस पुल को बना सकते हो ॥४३॥

तेनोपायेन काकुत्स्थः सेतुबन्धमकारयत् ।
दशयोजनविस्तारमायतं शतयोजनम् ॥४४॥

इस उपाय से रामचन्द्रजी ने सेतु बनवा डाला, जो दश योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा था ॥४४॥

नलसेतुरिति ख्यातो योऽद्यापि प्रथितो भुवि ।
रामस्याज्ञां पुरस्कृत्य निर्यातो गिरिसन्निभः ॥४५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही सेतु, आजकल नल-सेतु कहाता है। राम की आज्ञा को स्वीकार करके पर्वत के समान आकारधारी नल, सेतु रचना के लिए चल पड़ा ॥४५॥

तत्रस्थं स तु धर्मात्मा समागच्छद्विभीषणः।
भ्राता वै राक्षसेन्द्रस्य चतुर्भिः सचिवैः सह ॥४६॥

समुद्र के तट पर टिके हुए रामचन्द्र जी के पास, अपने चार सचिवों के साथ, राक्षसराज रावण का भाई, धर्मात्मा विभीषण आया ॥४६॥

प्रतिजग्राह रामस्तं स्वागतेन महामनाः।
सुग्रीवस्य तु शङ्काभूत् प्रणिधिः स्यादिति स्म ह ॥

महामनस्वी रामने बड़ा स्वागत करके उसको अपने में मिला लिया। इस पर सुग्रीव को शङ्का हुई, कि कहीं यह रावण का गुप्तचर न हो ॥४७॥

राघवः सत्यचेष्टाभिः सम्यक् सुचरितेङ्गितैः।
यदा तत्त्वेन तुष्टोऽभूत् तत एनमपूजयत् ॥४८॥

रामचन्द्रजी ने सत्य २ चेष्टा, ठीक २ आचरण और व्यवहार से इसको अच्छी तरह पहिचान लिया। ये विभीषण के मिलने से बड़े ही सन्तुष्ट हुए। अब इन्होंने इसका सत्कार किया।

सर्वराक्षसराज्ये चाप्यभ्यषिञ्चद्विभीषणम्।
चक्रे च मन्त्रसचिवं सुहृदं लक्ष्मणस्य च ॥४९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्रजी ने सारे राक्षसों के राज्य पर विभीषण को अभिषिक्त कर दिया और इसको आन्तरिक मन्त्र (सलाह) करने का सचिव और लक्ष्मण का सुहृद बना दिया ॥४९॥

विभीषणमते चैव सोऽत्यक्रामन्महार्णवम् ।
ससैन्यः सेतुना तेन मासेनैव नराधिप॥५०॥

हे नराधिप ! विभीषण की सम्मति के अनुसार सेना-सहित रामचन्द्रजी, इस सेतु से एक महीने में इस महा-समुद्र को पार कर सके ॥५०॥

ततो गत्वा समासाद्य लङ्कोद्यानान्यनेकशः ।
भेदयामास कपिभिर्महान्ति च बहूनि च ॥५१॥

ये वहां पहुंच कर लङ्का के अनेक उद्यानों में पहुंचे । इन्होंने बहुत से बड़े२ उद्यानों को कपियों द्वारा नष्ट भ्रष्ट कर डाला॥५१॥

तत्रस्थौ रावणामात्यौ मन्त्रिणौ शुकसारणौ ।
चरौ वानररूपेण तौ जग्राह विभीषणः ॥५२॥

यहां पर मन्त्र करने में कुशल, रावण के सचिव, शुक और सारण, गुप्तचर, वानर का रूप धारण करके घूम रहे थे । उनको पहचान कर विभीषण ने पकड़ लिया ॥५२॥

प्रतिपन्नौ यदा रूपं राक्षसं तौ निशाचरौ ।
दर्शयित्वा ततः सैन्यं रामः पश्चादवासृजम् ॥५३॥

उन दोनों राक्षसों ने जब अपना राक्षसी रूप धारण कर लिया, तो रामचन्द्रजी ने इनको सारी सेना को दिखाकर छोड़ दिया॥५३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवेश्योपवने सैन्यं तत्पुरः प्राज्ञवानरम् ।
प्रेषयामास दौत्येन रावणस्य ततोऽङ्गदम् ॥५४॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि सेतुबन्धने द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२८२॥

उस लङ्कापुरी के उपवनों में सेना को ठहरा कर रामचन्द्रजी ने बुद्धिमान् वानर अङ्गद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा ॥५४॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में सेतुबन्धन का दो सौ बयासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

***
***

दो सौ तिरासीवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच—

प्रभूतान्नोदके तस्मिन् बहुमूलफले बने ।
सेनांय निवेश्य काकुत्स्थो विधिवत् पर्य्यरक्षत ॥१॥

मार्कण्डेय बोले--- हे राजन् ! बहुत से अन्न, जल और मूल, फलों से संयुक्त वन में सेना का पड़ाव डालकर रामचन्द्रजी उसकी बड़े ध्यान से रक्षा करने लगे ॥१॥

रावणः संविधश्चक्रे लङ्कायां शास्त्रनिर्मितम् ।
प्रकृत्यैव दुराधर्षा दृढप्राकारतोरणा ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण ने भी युद्धके शास्त्रानुसार लङ्का में प्रबन्ध कर लिया। यह लङ्का, प्रकृति से दुराधर्ष, दृढ़ प्राकार (नगर की भित्ति) और द्वारों से युक्त थी ॥२॥

अगाधतोयाः परिखा मीननक्रसमाकुलाः।
बभूवुः सप्तदुर्द्धर्षाः खादिरैः शङ्कुभिश्चिताः ॥३॥

इसकी खाई बड़ी अथाह, जल वाली और मछली, मगर आदि जल जन्तुओं से परिपूर्ण थीं। ये सातों खाई बड़ी दुर्धर्ष और खदिर के कीलों से संयुक्त थी ॥३॥

कपाटयन्त्रदुर्द्धर्षाः बभूवुः सहुडोपलाः।
सोशीविषघटा योधाः ससर्जरसपांशवः ॥४॥

मुसलालातनाराचतोमरासिपरश्वधैः।
अन्विताश्च शतघ्नीभिः समधूच्छिष्टमुद्गराः ॥५॥

ये खाई, कपाट, गोले फैंकने के यंत्रों से बड़ी दुर्गम तथा मूत्रोत्सर्ग के स्थान और पत्थर के गोलों से संयुक्त थीं। इस लङ्का में सर्पों के घड़ों तथा सर्जरस (राल) और उसकी पांशु (मिट्टी) से समन्वित योद्धा थे। जो मुसल, अलात,(जलते पलीते) बाण, तोमर, खड्ग, परशु और शतघ्नी (तोप) आदि शस्त्रों से युक्त थे। जिन के मुख, मधु (सुरा)से उच्छिष्ट थे और जो मुद्गर धारी थे ॥४-५॥

पुरद्वारेषु सर्वेषु गुल्माः स्थावरजङ्गमाः।
बभूवुः पत्तिबहुलाः प्रभूतगजवाजिनः ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुर के सारे द्वारों पर छुपकर बैठने के स्थान (बुर्ज) और जङ्गम गुल्म (सेनादि) नियुक्त थे। इन गुल्मों में बहुत से पैदल और हाथी घोड़े होते थे ॥६॥

अङ्गदस्त्वथ लङ्काया द्वारदेशमुपागतः।
विदितो राक्षसेन्द्रस्य प्रविवेश गतव्यथः ॥७॥

इस प्रकार की लङ्का के द्वार पर अङ्गद पहुंचा। राक्षसेन्द्र रावण को इसके आने का पता लग चुका था। यह विना किसी कष्ट के भीतर घुसा चला गया ॥७॥

मध्ये राक्षसकोटीनां बह्वीनां सुमहाबलः।
शुशुभे मेघमालाभिरादित्य इव संवृतः ॥८॥

यह महाबली रावण, अनेक करोड़ राक्षसों में मेघ-माला के मध्य में सूर्य के सदृश देदीप्यमान हो रहा था ॥८॥

स समासाद्य पौलस्त्यममात्यैरभिसम्वृतम्।
रामसन्देशमामन्त्र्य वाग्मी वक्तुं प्रचक्रमे ॥९॥

अङ्गद, मन्त्रियों से घिरे हुए पुलस्त्य-वंशी रावण, के पास पहुंचा। यह वाग्मी उसको सम्बोधित करके राम के सन्देश को सुनाने लगा ॥९॥

आह त्वां राघवो राजन् कोशलेन्द्रो महायशाः।
प्राप्तकालमिदं वाक्यं तदादत्स्व कुरुष्व च ॥१०॥

हे राजन्! कौशलेन्द्र, महायशस्वी, रघुवंशी रामचन्द्र जी ने तुम्हारे पास समयानुसार यह सन्देश कहला कर भेजा है। तुम इसको ग्रहण करो और पूरा करो ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् ।
विनशन्त्यनयाविष्टा देशाश्च नगराणि च ॥११॥

अपने स्वरूप को नहीं जानने वाले, राजनीति से विपरीत-व्यवहार करने वाले, राजा को पाकर अनीति से क्लेशित, राष्ट्र, देश और नगर, नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं ॥११॥

त्वयैकेनापराद्धं मे सीतामाहरता बलात् ।
वधायानपराद्धानामन्येषां तद्भविष्यति ॥१२॥

तुम अकेले ने ही बल-पूर्वक सीता का अपहरण करके मेरा अपराध किया है, परन्तु वही तेरा अपराध, अब अन्य निरपराधियों के वध का भी कारण बन जावेगा ॥१२॥

ये त्वया बलदर्पाभ्यामाविष्टेन वनेचराः ।
ऋषयो हिंसिता पूर्वं देवाश्चाप्यवमानिताः ॥१३॥
राजर्षयश्च निहताः रुदत्यश्च हताः स्त्रियः ।
तदिदं समनुप्राप्तं फलं तस्यानयस्य ते ॥१४॥

जो तू ने पूर्वकाल में बल और गर्व में आकर वनवासी ऋषि मुनि, मार डाले और देवोंका तिरस्कार किया तथा अनेक राजर्षि मार डाले, रोती हुई स्त्रियों का वध कर दिया, उस अनीति का आज तुमको फल मिलने वाला है ॥१३--१४॥

हन्तास्मि त्वां सहामात्यैर्युध्यस्व पुरुषो भव ।
पश्य मे धनुषो वीर्य्यं मानुषस्य निशाचर ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं तुम्हें मन्त्रियों सहित युद्ध में मारकर छोड़ूंगा। अब तू वीर बन कर युद्ध कर। हे निशाचर! मुझ मनुष्य के भी धनुष का बल देखना ॥१५॥

मुच्यतां जानकी सीता न मे मोक्ष्यसि कर्हिचित्।
अराक्षसमिमं लोकं कर्त्तास्मि निशितैः शरैः ॥१६॥

या तो तुम जनक-नन्दिनी सीता को छोड़ दो—नहीं तो तुम मुझसे किसी तरह भी नहीं छुट सकोगे। मैं अपने तीखे बाणों से इस पृथिवी को राक्षसों से हीन कर दूंगा ॥१६॥

इति तस्य ब्रुवाणस्य दूतस्त परुषं वचः।
श्रुत्वा न ममृषे राजा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥१७॥

इस प्रकार कहते हुए, दूत के कठोर वचनों को राजा रावण नहीं सह सका और यह क्रोध से जल उठा ॥१७॥

इङ्गितज्ञास्ततो भर्त्तुश्चत्वारो रजनीचराः।
चतुर्ष्वङ्गेषु जगृहुः शार्दूलमिव पक्षिणः ॥१८॥

अपने स्वामी के सङ्केत को जानने वाले, चार राक्षसों ने सिंह को पक्षियों की तरह अङ्गद को चार अङ्गों से पकड़ लिया ॥१८॥

तांस्तथाङ्गेषु संसक्तानङ्गदो रजनीचरान्।
आदायैव खमुत्पत्य प्रासादतलमाविशत् ॥१९॥

अपने शरीर से लिपटे हुए उन राक्षसों को लेकर अङ्गद, आकाश में उड़ गया और रावणके महल के शिखर पर जा बैठा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

महाभारत चित्र संख्या ५२

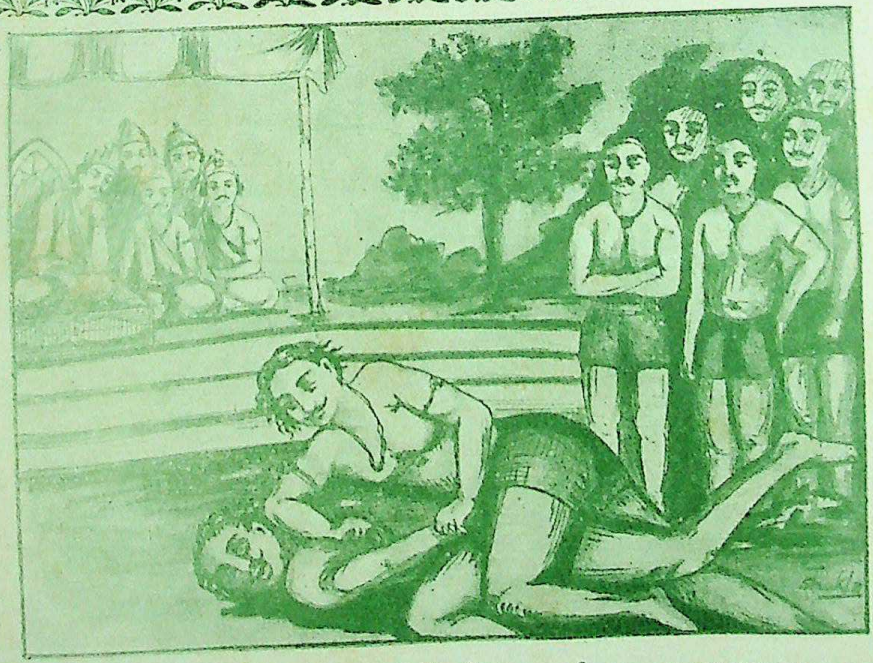

राजा विराट के सामने पशुपति के उत्सव में भीम का जीमूत पहलवान मल्ल युद्ध करना।

महा० विराटपर्व अ० १३।२१ पृष्ठ ७७५

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेगेनोत्पततस्तस्य पेतुस्ते रजनीचराः ।
भुवि सम्भिन्नहृदयाः प्रहारवरपीड़िताः ॥२०॥

अङ्गद के वेग से उड़ जाने पर ये चारों राक्षस, भूमि पर गिर पड़े। जोर के प्रहार से पीड़ित, इन राक्षसों की छाती तक फटने लगी ॥२०॥

संसक्तो हर्म्यशिखरात्तस्मात् पुनरवापतत् ।
लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां सुवेलस्य समीपतः ॥२१॥

अङ्गद उछल कर महल के शिखर पर जा बैठा और फिर वहां से उतरा। यह लङ्कापुरी को उलांघ कर, सुन्दर वेला वाले समुद्र के पास कूदा ॥२१॥

कौशलेन्द्रमथागम्य सर्वमावेद्य वानरः ।
विशश्राम स तेजस्वी राघवेणाभिनन्दितः॥२२॥

इस वानर-श्रेष्ठ अङ्गद ने कोशलेश्वर रामचन्द्र जी के पास आकर सब कुछ निवेदन कर दिया। रामचन्द्र जी ने इसकी बड़ी प्रशंसा की, अब इस तेजस्वी वानर अङ्गद ने कुछ विश्राम किया।

ततः सर्वाभिसारेण हरीणां वातरंहसाम् ।
भेदयायास लङ्कायाः प्राकारं रघुनन्दनः ॥२३॥

वायु के समान वेगशील वानरों के एक दम अभिसार (हमला) से श्रीराम ने लङ्कापुरी के प्राकार (दीवार) को तोड़ डाला ॥२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभीषणर्क्षाधिपती पुरस्कृत्याथ लक्ष्मणः ।
दक्षिणं नगरद्वारमवामृद्नाद् रासदम् ॥२४॥

लक्ष्मण ने विभीषण और ऋक्षराज जाम्बवान को साथ लेकर बड़े दुर्गम दक्षिण के द्वार को जा तोड़ा ॥२४॥

करभारुणगात्राणां हरिणां युद्धशालिनाम् ।
कोटीशतसहस्रेण लङ्कामभ्यपतत्तदा ॥२५॥

ऊंट के बच्चे के सदृश शरीर के रंग वाले, युद्ध कुशल, एक लाख कोटि वानरों से रामचन्द्रजी ने लङ्का पर धावा किया ॥२५॥

प्रलम्बबाहूरुकरजङ्घान्तरविलम्बिनाम् ।
ऋक्षाणां धूम्रवर्णानां तिस्रः कोट्यो व्यवस्थिताः २६

लम्बी २ भुजा और जङ्घा तक लटकते हुए हाथ वाले, धूम के वर्ण के रीछों की तीन करोड़ सेना थी ॥२६॥

उत्पतद्भिः पतद्भिश्च निपतद्भिश्च वानरः ।
नादृश्यत तदा सूर्यो रजसा नाशितप्रभः ॥२७॥

उछलते, कूदते, फांदते वानरों द्वारा उठाई हुई, धूलि से नष्ट प्रकाश वाला सूर्य, उस समय दिखाई ही नहीं देता था ॥२७॥

शालिप्रसूनसदृशैः शिरीषकुसुमप्रभैः ।
तरुणादित्यसदृशैः शणगौरैश्च वानरैः ॥२८॥

कोई वानर, शालि (धान) के फूल के सदृश थे, कोई सिरस के फूल के वर्ण के समान रंग वाले थे। कोई प्रचण्ड सूर्य और कोई शण के सदृश गौर वर्ण के थे ॥२८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकारं ददृशुस्ते तु समन्तात् कपिलोकृतम् ।
राक्षसा विस्मिता राजन् सस्त्रीवृद्धाः समन्ततः ॥२९॥

हे राजन् ! लङ्का निवासी पुरुषों ने देखा, कि प्राकार (शहर-पनाह) के एक रात में ही चारों ओर टुकड़े फैला दिये गए हैं। इसको देखकर स्त्री और वृद्धों के साथ सारे राक्षस, बड़े ही चकित हुए ॥२९॥

विभिदुस्ते मणिस्तम्भान् कर्णाट्टशिखराणि च।
भग्नोन्मथितशृङ्गाणि यन्त्राणि च विचिक्षिपुः ॥३०॥

इस वानर सेना ने मणियों के स्तम्भ (खंभ) तोड़ दिए और अट्टालिका सहित ऊंचे २ विशेष विधि से बने हुए, भवनों के शिखर नष्ट भ्रष्ट कर डाले। इन्होंने यहां रखे हुए, अनेक शस्त्र चलाने के यन्त्र भी फैंक फांक दिए ॥३०॥

परिगृह्य शतघ्नीश्च सचक्राः सगुडोपलाः ।
चिक्षिपुर्भुजवेगेन लङ्कामध्ये महास्वनाः ॥३१॥

इन्होंने छोटी २ गाड़ियों पर चढ़ी हुई तोप, पत्थर के गोले अपनी भुजाओं के बल से इधर उधर फैंक दिए। इस प्रकार लङ्का में बड़ा कोलाहल हो रहा था ॥३१॥

प्राकारस्थाश्च ये केचिन्निशाचरगणास्तथा ।
प्रदुद्रुवुस्ते शतशः कपिभिः समभिद्रुताः ॥३२॥

जो कुछ राक्षसों के गण, सैंकड़ों की संख्या में प्राकार पर स्थित थे। वे भी वानरों से मारे पीटे जाने पर भाग निकले॥३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततस्तु राजवचनाद्राक्षसाः कामरूपिणः ।
निर्ययुर्विकृताकाराः सहस्रशतसङ्घशः ॥३३॥

अब राक्षसराज रावण की आज्ञा से कामना के अनुसार रूप रखने वाले, विकृत-आकार-धारी सैंकड़ों हज़ारों के संघ बनाकर राक्षस निकल पड़े ॥३३॥

शस्त्रवर्षाणि वर्षन्तो द्रावयित्वा वनौकसः ।
प्राकारं शोभयन्तस्ते परं विक्रममास्थिताः ॥३४॥

इन्होंने बाणों की वर्षा से सारे वानर भगा दिए और बड़ा भारी पराक्रम करके नगर की भीत्ति को सुन्दर बना डाला॥३४

स माषराशिसदृशैर्बभूव क्षणदाचरैः ।
कृतो निर्वानरो भूयः प्राकारो भीमदर्शनैः ॥३५॥

भयङ्कर आकारधारी उड़द के सदृश वर्ण वाले, राक्षसों से वह प्राकार घिर गया। इन महाबली राक्षसों ने फिर प्राकार को वानरों से खाली करा लिया॥३५॥

पेतुः शूलविभिन्नाङ्गा बहवो वानरर्षभाः ।
स्तम्भतोरणभग्नाश्च पेतुस्तत्र निशाचराः ॥३६॥

शूलों से क्षत विक्षत अङ्ग वाले होकर वानर, गिरने लगे। स्तम्भ और द्वार तोड़ २ कर वानरों ने भी बहुत से राक्षस मार डाले ॥३६॥

केशाकेश्यभवद्युद्धं रक्षसां वानरैः सह ।
नखैर्दन्तैश्च वीराणां खादतां वै परस्परम् ॥३७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राक्षसों का वानरों के साथ एक दूसरे के बाल पकड़ कर युद्ध होने लगा। वानर इन वीर राक्षसों को अपने नख और दांतों से काट रहे थे। इस प्रकार राक्षस और वानरों का परस्पर युद्ध होने लगा ॥३७॥

निघ्नन्तो ह्युभयतस्तत्र वानरराक्षसाः।
हता निपतिता भूमौ न मुञ्चन्ति परस्परम् ॥३८॥

उस स्थान में वानर और राक्षस परस्पर गर्जना करते थे। जब कोई नष्ट हो जाता, तो वह भूमि पर गिर जाता था, परन्तु एक दूसरे को जीता नहीं छोड़ता था ॥३८॥

रामस्तु शरजालानि ववर्षजलदो यथा।
तानि लङ्का समासाद्य जघ्नुस्तान् रजनीचरान् ॥३९॥

राम ने भी मेघ समूह की भांति बाणों की झड़ी लगा दी। जो लङ्का में जा २ कर राक्षसों का नाश करने लगी ॥३९॥

सौमित्रिरपि नाराचैर्दृढधन्वा जितक्लमः।
आदिश्यादिश्य दुर्गस्थान् पातयामास राक्षसान् ॥

सुमित्रापुत्र लक्ष्मण ने भी बड़ा दृढ़ धनुष ले रखा था और यह बड़ा श्रम करते हुए भी कोई क्लेश नहीं मानता था। इसने दुर्ग पर स्थित राक्षसों को लक्ष्य बना २ कर गिराना आरम्भ किया ॥४०॥

ततः प्रत्यवहारोऽभूत् सैन्यानां राघवाज्ञया।
कृते विमर्दे लङ्कायां लब्धलक्ष्यो जयोत्तरः ॥४१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि लङ्काप्रवेशे त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८३॥

रामचन्द्रजी की आज्ञा से सेना ने अपने शिविर की ओर गमन किया। इस प्रकार लङ्का का विमर्द(नाश) होने पर सफल प्रहार होकर जय के साथ सेना लौटी ॥४१॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में लङ्का प्रवेश का दो सौ तिरासीवां अध्याय पूरा हुआ।

दो सौ चौरासीवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच—

ततो निविशमानांस्तान् सैनिकान्रावणानुगाः।
अभिजग्मुर्गणानेके पिशाचक्षुद्ररक्षसाम् ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे भरतर्षभ! इस प्रकार रामचन्द्रजी के सैनिकों को लङ्का में घुसते देखकर रावणके अनुचर, पिशाच और राक्षसों के अनेक गण, निकल आए ॥१॥

पर्वणः पतनो जम्भः खरः क्रोधवशो हरिः।
प्ररुजश्चारुजश्चैव प्रघसश्चैवमादयः ॥२॥

पर्व, पतन, जम्भ, खर, क्रोधी हरि, प्ररुज, अरुज, प्रघस आदि राक्षस आए ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततोऽभिपततां तेषामदृश्यानां दुरात्मनाम् ।
अन्तर्द्धानवधं तज्ज्ञश्चकार स विभीषणः ॥३॥

अलक्षित रूप से आक्रमण करने वाले, दुरात्मा राक्षसों को देखकर उनके वध की विधि जानने वाले, विभीषण ने छुपी शक्ति से ही इनका नाश कर डाला ॥३॥

ते दृश्यमाना हरिभिर्बलिभिर्दूरपातिभिः ।
निहताः सर्वशो राजन् महीं जग्मुर्गतासवः ॥४॥

हे राजन् ! दूर खड़े हुए, बलवान, वानरों ने प्राणहीन पृथिवी पर पड़े हुए, मरे राक्षसों को सब ओर से देखा ॥४॥

अमृष्यमाणः सबलो रावणो निर्ययावथ ।
राक्षसानां बलैर्घोरैः पिशाचानाञ्च संवृतः ॥५॥

इस नाश को नहीं सहने वाला, रावण, सेना-सहित निकल पड़ा। यह, राक्षस और पिशाचों की घोर सेना से समन्वित होकर आ रहा था ॥५॥

युद्धशास्त्रविधानज्ञ उशना इव चापरः ।
व्यूह्य चौशनसं व्यूहं हरीनभ्यवहारयत् ॥६॥

रावण, शुक्राचार्य की भांति युद्ध-शास्त्र का ज्ञाता था। इसने शुक्राचार्य की विधि से सेना की दुर्ग रचना करके वानरों को घेर लिया ॥६॥

राघवस्तु विनिर्यान्तं व्यूढानीकं दशाननम् ।
बार्हस्पत्यं विधिं कृत्वा प्रत्यव्यूहन्निशाचरम् ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्रजी ने अत्यन्त दृढ़ सेना के साथ रावण को आते देखकर वृहस्पति की विधि के अनुसार अपनी सेना का दुर्ग रचा, जिससे इन्होंने भी राक्षसों को घेर लिया ॥७॥

समेत्य युयुधे तत्र ततो रामेण रावणः ।
युयुधे लक्ष्मणश्चापि तथैवेन्द्रजिता सह ॥८॥
विरूपाक्षेण सुग्रीवस्तारेण च निखर्वटः ।
तुण्डेन च नलस्तत्र पटुशः पनसेन च ॥९॥

अब रावण के साथ राम, मेघनाद के साथ लक्ष्मण, विरूपाक्ष राक्षस के साथ सुग्रीव, तार के साथ निखर्वट वानर, तुण्ड राक्षस से नल और पनस से पटुश का युद्ध होने लगा ॥८-९॥

विसह्य यं हि यो मेने सह तेन समेयिवान् ।
युयुधे युद्धवेलायां स्वबाहुबलमाश्रितः ॥१०॥

इस युद्ध के समय युद्ध में अपनी २ भुजाओं के बल में चूर होकर वानर और राक्षसों ने जिसको महाबली समझा, उसीसे आपस में भिड़ गए ॥१०॥

स संप्रहारो ववृधे भीरूणां भयवर्द्धनः ।
लोमसंहर्षणो घोरः पुरा देवासुरे यथा ॥११॥

यह युद्ध बढ़ने लगा, जो कायरों को बड़ा भयकारी था। यह पूर्वकाल में देवासुर संग्राम की तरह भीषण था ॥११॥

रावणो राममानर्च्छच्छक्तिशूलासिवृष्टिभिः ।
निशितैरायसैस्तीक्ष्णैरावणश्चापि राघवः १२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण ने शक्ति, शूल, खड्ग की वर्षा से राम पर आक्रमण किया। राम ने भी तीक्ष्ण, लोहे के पैने शस्त्रों से रावण को पीड़ित कर डाला ॥१२॥

तथैवेन्द्रजितं यत्तं लक्ष्मणो मर्मभेदिभिः।
इन्द्रजिच्चापि सौमित्रिं विभेद बहुभिः शरैः ॥१३॥

बड़े प्रयत्न करने वाले मेघनाद को मर्मभेदी बाणोंसे लक्ष्मणने और लक्ष्मण को अनेक बाणों से मेघनाद ने बींध डाला ॥१३॥

विभीषणः प्रहस्तश्च प्रहस्तश्च विभीषणम्।
खगपत्रैः शरैस्तीक्ष्णैरभ्यवर्षद्गतव्यथः ॥१४॥

विभीषण ने प्रहस्त को और प्रहस्त ने विभीषण को पक्षियों के पक्षों से युक्त बाणों से छेद डाला। ये दोनों इस दशा में भी किसी प्रकार की व्यथा नहीं मानते थे ॥१४॥

तेषां बलवतामासीन्महास्त्राणां समागमः।
विव्यथुः सकला येन त्रयोलोकाश्चराचराः ॥१५॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रामरावणयुद्धे चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८४॥

इन महा-अस्त्र-धारी, बलवानों का बड़ा घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध से तीनों लोकों के चराचर भयभीत हो गए ॥१५॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में राम रावण के युद्ध का दो सौ चौरासीवां अध्याय पूरा हुआ

******

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ पिचासीवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच—

ततः प्रहस्तः सहसा समभ्येत्य विभीषणम् ।
गदया ताड़यामास विनद्य रणकर्कशः ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे राजन्! अब प्रहस्त राक्षसने बड़े ज़ोर से गर्जना करके और वेग से झपट कर विभीषण पर एक दम गदा से प्रहार किया ॥१॥

स तयाभिहतो धीमान् गदया भीमवेगया ।
नाकम्पत महाबाहुर्हिमवानिव सुस्थिरः ॥२॥

इस भीम वेगशाली गदा से मारा हुआ भी, महाबाहु बुद्धिमान् विभीषण, कुछ भी कम्पित नहीं हुआ और हिमाचल की तरह ज्यों का त्यों खड़ा रहा ॥२॥

ततः प्रगृह्य विपुलां शतघण्टां विभीषणः ।
अनुमन्त्र्य महाशक्तिं चिक्षेपास्य शिरः प्रति ॥३॥

अब विभीषण ने भी सैकड़ों घण्टियों से युक्त, विशाल महाशक्ति उठाई और इसको अभिमन्त्रित करके प्रहस्त के शिर पर फैंका ॥३॥

पतन्त्या स तया वेगाद्राक्षसोऽशनिवेगया ।
हृतोत्तमाङ्गो ददृशे वातरुग्ण इव द्रुमः ॥४॥

वज्र के समान वेगशाली, शिर पर गिरती हुई, उस गदाने राक्षस का शिर चकना चूर कर दिया। यह इस समय वायु से उखाड़े हुए वृक्ष के सदृश गिर गया ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं दृष्ट्वा निहतं संख्ये प्रहस्तं क्षणदाचरम् ।
अभिद्रुद्राव धूम्राक्षो वेगेन महता कपीन् ॥५॥

इस युद्ध में प्रहस्त राक्षस के मारे जाने पर धूम्राक्ष नामक राक्षस बड़े वेग से झपटा ॥५॥

तस्य मेघोपमं सैन्यमापतद्भीमदर्शनम् ।
दृष्ट्वैव सहसा दीर्णा रणे वानरपुङ्गवाः ॥६॥

इसकी मेघों के समान उमड़ती हुई, सेना को देखकर रण में बड़े २ वीर वानर भी भाग निकले ॥६॥

ततस्तान् सहसा दीर्णान् दृष्ट्वा वानरपुङ्गवान् ।
निर्ययौ कपिशार्दूलो हनूमान्मारुतात्मजः ॥७॥

इन वानरों को अचानक भागते हुए देखकर मारुतपुत्र, वानर, श्रेष्ठ, हनूमान् रणाङ्गण में आया ॥७॥

तं दृष्ट्वावस्थितं संख्ये हरयः पवनात्मजम् ।
महत्या त्वरया राजन् संन्यवर्त्तन्त सर्वशः ॥८॥

हे राजन्! वानर, पवनपुत्र, हनूमान् को युद्ध भूमि में डटा हुआ देखकर बड़ी शीघ्रता से वापिस लौटने लगे ॥८॥

ततः शब्दो महानासीत्तुमुलो लोमहर्षणः ।
रामरावणसैन्यानामन्योऽन्यमभिधावताम् ॥९॥

इस समय राम और रावण की सेना में बड़ा भारी लोमहर्षण कोलाहल होने लगा । अब इन दोनों सेना के वीर एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे थे ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे घोरे रुधिरकर्दमे ।
धूम्राक्षः कपिसैन्यन्तत् द्रावयामास पत्रिभिः ॥१०॥

जब महाघोर संग्राम होने लगा, तो रुधिर की कीचड़ हो गई। अब धूम्राक्ष, अपने बाणों से कपियों की सेना को तितर बितर करने लगा ॥१०॥

तं राक्षसमहामात्रमापतन्तं सपत्नजित् ।
प्रतिजग्राह हनुमांस्तरसा पवनात्मजः ॥११॥

उस राक्षस-श्रेष्ठ धूम्राक्ष को झपटता हुआ देख कर, शत्रु-विजयी पवनपुत्र, हनूमान्,बड़े वेग से इसके सम्मुख होकर लोहा लेने लगा ॥११॥

तयोर्युद्धमभूद्घोरं हरिराक्षसवीरयोः ।
जिगीषतोर्युधान्योन्यमिन्द्रप्रह्लादयोरिव ॥१२॥

इस वानर-श्रेष्ठ हनूमान् और राक्षस-श्रेष्ठ धूम्राक्ष में महाघोर युद्ध हुआ। ये इन्द्र और प्रल्हाद की तरह एक दूसरे को युद्ध द्वारा जीतने का प्रयत्न कर रहे थे ॥१२॥

गदाभिः परिघैश्चैव राक्षसो जघ्निवान् कपिम् ।
कपिश्च जघ्निवान् रक्षः सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥१३॥

गदा और परिघों से राक्षस, वानरों का नाश कर रहे थे और वानर भी स्कन्ध सहित वृक्षों से राक्षसों का नाश कररहे थे ॥१३॥

ततस्तमतिकोपेन साश्वं स रथसारथिम् ।
धम्राक्षमवधीत् क्रुद्धो हनूमान् मारुतात्मजः ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अनन्तर मारुतपुत्र हनूमान् ने अत्यन्त क्रोध से अश्व सहित रथ के सारथि और धूम्राक्ष राक्षस को मार डाला। इस समय हनूमान् बड़े कुपित हो रहे थे ॥१४॥

ततस्तं निहतं दृष्ट्वा धूम्राक्षं राक्षसोत्तमम् ।
हरयो जातविश्रम्भा जग्मुरभ्येत्य सैनिकान् ॥१५॥

अब मरे हुए, महावीर धूम्राक्ष राक्षस को देखकर वानरों को कुछ तसल्ली हुई। ये सैनिकों के पास जाकर अपने स्थानों को चल दिए ॥१५॥

ते वध्यमाना हरिभिर्बलिभिर्जितकाशिभिः ।
राक्षसा भग्नसङ्कल्पा लङ्कामभ्यपतन् भयात् ॥१६॥

जीतने की आशा वाले बलवान् वानरों से पीड़ित किये हुए, राक्षस, भग्न सङ्कल्प होकर भय से लङ्का को भाग गए ॥१६॥

तेऽभिपत्य पुरं भग्ना हतशेषा निशाचराः ।
सर्वं राज्ञे यथावृत्तं रावणाय न्यवेदन् ॥१७॥

ये मारने से बचे हुए, राक्षस, भागकर लङ्का में पहुंचे। इन्होंने वहां जाकर राक्षसराज रावण से सारा वृत्तान्त कहा ॥१७॥

श्रुत्वा तु रावणस्तेभ्यः प्रहस्तं निहतं युधि ।
धूम्राक्षञ्च महेष्वासं, ससैन्यं वानरर्षभैः ॥१८॥
सुदीर्घमिव निश्वस्य समुत्पत्य वरासनात् ।
उवाच कुम्भकर्णस्य कर्मकालोऽयमागतः ॥१९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण ने जब यह सुना, कि वानरों ने सेना-सहित प्रहस्त और धूम्राक्ष को युद्ध में मार लिया, तो बड़ी जोर से सांस मारी और अपने सर्वोत्तम सिंहासन से उठकर कहा, कि अब तो कुम्भकर्ण के काम करने का समय आ गया ॥१८-१९॥

इत्येवमुक्त्वा विविधैर्वादित्रैः सुमहास्वनैः ।
शयानमतिनिद्रालुं कुम्भकर्णमबोधयत् ॥२०॥

इस प्रकार कह कर रावण ने बड़े शब्द करने वाले बाजोंको बजाकर अत्यन्त सोने वाले कुम्भकर्ण को नींद से जगाया ॥२०॥

प्रबोध्य महता चैनं यत्नेनागतसाध्वसः ।
स्वस्थमासीनमव्यग्रं विनिद्रं राक्षसाधिपः ॥२१॥
ततोऽब्रवीद्दशग्रीवः कुम्भकर्णं महाबलम् ।

बड़े भारी प्रयत्न से महाबली कुम्भकर्ण को जगा कर राक्षस-राज रावण ने स्वस्थता के साथ बैठे हुए, व्याकुलता से हीन, कुम्भकर्ण से कहा ॥२१॥

धन्योऽसि यस्य ते निद्रा कुम्भकर्णेयमीदृशी ॥२२॥
य इदं दारुणाकारं न जानीषे महाभयम् ।

हे कुम्भकर्ण! तू धन्य है, जो इस समय भी तुझे नींद आ रही है । क्या इस दारुण उपस्थित हुए, महाभय का भी तुझे कुछ पता नहीं है ॥२२॥

एष तीत्वार्णवं रामः सेतुना हरिभिः सह ॥२३॥
अवमन्येह नः सर्वान् करोति कदनं महत् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह राम,सेतु बांधकर वानर सेना के साथ समुद्र उलांघ कर यहां आ पहुंचा है और हम सबों को कुछ न गिनकर बड़ा भारी विध्वंस कर रहा है ॥२३॥

मया त्वपहृता भार्या सीता नामास्य जानकी ॥२४॥
तां नेतुं स इहायातो बध्वा सेतुं महार्णवे ।

मैंने सीता नामक जनक की पुत्री, इसकी भार्या का अपहरण कर लिया था। इसी के लेने को यह यह बड़े भारी समुद्र का सेतु बांध कर यहां आ पहुंचा है ॥२४॥

तेन चैव प्रहस्तादिर्महान्नः स्वजनो हतः ॥२५॥
तस्य नान्यो निहन्तास्ति त्वामृते शत्रुकर्षण ।

इसने प्रहस्त आदि बड़े २ हमारे स्वजन वीर, मार डाले हैं। हे शत्रुकर्षण ! अब तेरे सिवा इसका मारने वाला कोई नहीं है ॥२५॥

संदंशितो विनिर्याय बलेन बलिनाम्वर ॥२६॥
रामादीन् समरे सर्वान् जहि शत्रूनरिन्दम ।

हे बलवानों में श्रेष्ठ ! अरिमर्दन ! तुम तय्यार होकर और अपनी सना के साथ निकल कर युद्ध में राम आदि सारे शत्रुओं का नाश करो ॥२६॥

दूषणावरजौ चैव वज्रवेगप्रमाथिनौ ॥२७॥
तौ त्वां बलेन महता सहितावनुयास्यतः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूषण राक्षस के दोनों छोटे भाई, वज्रवेग और प्रमाथी, बड़ी भारी सेना लेकर तेरे साथ जायेंगे ॥२७॥

इत्युक्त्वा राक्षसपतिः कुम्भकर्णं तरस्विनम् ॥२८॥
सन्दिदेशेतिकर्त्तव्यं वज्रवेगप्रमाथिनौ ।

राक्षसराज, रावण ने वेगशील कुम्भकर्ण से इतना कहकर वज्रवेग और प्रमाथी को उनके कर्तव्य का ज्ञान कराया ॥२८॥

तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ रावणं दूषणानुजौ ।
कुम्भकर्णं पुरस्कृत्य तूर्णं निर्ययतुः पुरात् ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि कुम्भकर्णरणगमने पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः २८५

दूषण राक्षस के छोटे भाई वीर, वज्रवेग और प्रमाथी, रावण की आज्ञा को स्वीकार करके और कुम्भकर्ण को आगे लेकर बड़ी शीघ्रता से लङ्कापुरी से बाहर निकले ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में कुम्भकर्ण के रण गमन का दो सौ पिचासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

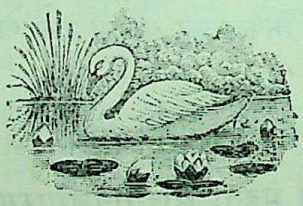

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ छियासीवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच—

ततो निष्पत्य स्वपुरात् कुम्भकर्णः सहानुगः ।
अपश्यत् कपिसैन्यन्तत् जितकाश्यग्रतः स्थितम् ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर कुम्भकर्ण, अपने साथियों के साथ लङ्कापुरी से बाहर निकला । विजय की आशा वाले, इस कुम्भकर्ण ने सामने खड़ी हुई कपि सेना को देखा ॥१॥

स वीक्षमाणस्तत् सैन्यं रामदर्शनकाङ्क्षया ।
अपश्यच्चापि सौमित्रिं धनुष्पाणिं व्यवस्थितम् ॥२॥

यह उस सेना को राम के देखने की इच्छासे पड़तालने लगा । इसने धनुष हाथ में लिये हुए प्रथम लक्ष्मण को देखा॥ २॥

तमभ्येत्याशु हरयः परिवव्रुः समन्ततः ।
अभ्यघ्नंश्च महाकायैर्बहुभिर्जगतीरुहैः ॥३॥

वानरों ने आकर उसको चारों और से घेर लिया और बड़े २ विशाल अनेक वृक्षों से उसको मारने लगे ॥३॥

करजैरतुदंश्चान्ये विहाय भयमुत्तमम् ।
बहुधा युद्धमानास्ते युद्धमार्गैः प्लवङ्गमाः ॥४॥

वानरों ने हर तरह का भय छोड़कर नखों से इस प्रकार प्रहार करना आरम्भ किया । ये वानर, अनेक तरह के युद्ध के मार्गों से अनेक भांति से युद्ध कर रहे थे ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नानाप्रहरणैर्भीमैराक्षसेन्द्रमताडयन् ।
स ताड्यमानः प्रहसन् भक्षयामास वानरान् ॥५॥

वानर-श्रेष्ठ, अनेक भयानक शस्त्रों से राक्षसेन्द्र कुम्भकर्ण को मारने लगे। यह राक्षसराज, उनके प्रहारों को देखकर हँसने और वानरों का भक्षण करने लगा ॥५॥

बलं चण्डबलाख्यञ्च वज्रबाहुञ्च वानरम् ।
तद् दृष्ट्वा व्यथनं कर्म कुम्भकर्णस्य रक्षसाः ॥६॥
उदक्रोशन् परित्रस्तास्तारप्रभृतयस्तदा ।

इस राक्षस ने बल, चण्डबल, वज्रबाहु आदि अनेक वानर खा डाले। कुम्भकर्ण राक्षस के इस प्रकार पीड़ा देने वाले कर्म को देखकर तार आदि वानर, बड़े डरे और चिल्लाने लगे ॥६॥

तानुच्चैः क्रोशतः सैन्यान् श्रुत्वा स हरियूथपान ॥
अभिदुद्राव सुग्रीवः कुम्भकर्णमपेतभीः ।

सुग्रीव अपनी सेना और वानरों के सेनापतियों को इस प्रकार जोर से चिल्लाते हुए सुनकर निर्भयता के साथ कुम्भकर्ण पर झपटा ॥७॥

ततो निपत्य वेगेन कुम्भकर्णं महामनाः ॥८॥
शालेनाजघ्निवान् मूर्द्ध्नि बलेन कपिकुञ्जरः ।

इस महामनस्वी कपि-श्रेष्ठ सुग्रीव ने वेग से कुम्भकर्ण पर आक्रमण करके उसके मस्तक पर शाल वृक्ष से प्रहार किया ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स महात्मा महावेगः कुम्भकर्णस्य मूर्द्धनि ॥९॥
विभेद शालं सुग्रीवो न चैवाव्यथयत् कपिः ।

इस महा-वेग-शील महात्मा सुग्रीव ने कुम्भकर्ण के मस्तक पर मारकर शाल वृक्ष के टुकड़े २ कर डाले। इतना भारी प्रहार करने पर भी सुग्रीव को कोई श्रम नहीं हुआ ॥९॥

ततो विनद्य सहसा शालस्पर्शविबोधितः ॥१०॥
दोर्भ्यामादाय सुग्रीवं कुम्भकर्णोऽहरद्बलात् ।

शाल वृक्ष की चोट से चेतन हुए कुम्भकर्ण ने बड़ी भारी गर्जना करके सुग्रीव को भुजाओं से पकड़ लिया और बल-पूर्वक अपनी ओर खैंच लिया ॥१०॥

ह्रियमाणन्तु सुग्रीवं कुम्भकर्णेन रक्षसा ॥११॥
अवेक्ष्याभ्यद्रवद्वीरः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।

कुम्भकर्ण राक्षस द्वारा सुग्रीव को खैंच ले जाने को देख कर मित्रों को आनन्द देने वाला, वीर लक्ष्मण, कुम्भकर्ण की ओर दौड़ा ॥११॥

सोऽभिपत्य महावेगं रुक्मपुङ्खं महाशरम् ॥१२॥
प्राहिणोत् कुम्भकर्णाय लक्ष्मणः परवीरहा ।

शत्रु-नाशक लक्ष्मण ने वहां पहुंच कर, बड़े वेग वाले, सुवर्ण के मूल से सुशोभित, महाशर को कुम्भकर्ण पर छोड़ा ॥१२॥

स तस्य देहावरणं भित्त्वा देहञ्च सायकः ॥१३॥
जगाम दारयन् भूमिं रुधिरेण समुक्षितः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुम्भकर्ण के कवच और देह को बींध कर लक्ष्मण का बाण रक्त में भीगा हुआ भूमि को चीर कर उसमें घुस गया ॥१३॥

तथा स भिन्नहृदयः ससृज्य कपीश्वरम् ॥१४॥
कुम्भकर्णो महेष्वासः प्रगृहीतशिलायुधः ।

इस बाण से हृदय के बिंध जाने पर महाधनुर्धर, शिलाओं के आयुध-धारी कुम्भकर्ण ने, सुग्रीव को छोड़कर बड़ी भारी शिला लेकर लक्ष्मण पर आक्रमण कर दिया ॥१४॥

अभिदुद्राव सौमित्रिमुद्यम्य महतीं शिलाम् ॥१५॥
तस्याभिपततस्तूर्णं क्षुराभ्यामुच्छ्रितौ करौ ।
चिच्छेद निशिताग्राभ्यां स बभूव चतुर्भुजः ॥१६॥

वेग से झपटते हुए कुम्भकर्ण के ऊपर उठे हुए हाथों को लक्ष्मण ने तीक्ष्ण नुकीले शस्त्रों से चीर डाला, जिससे यह चतुर्भुज-धारी सा दिखाई देने लगा ॥१५-१६॥

तानप्यस्य भुजान् सर्वान् प्रगृहीतशिलायुधान् ।
क्षुरैश्चिच्छेद लघ्वस्त्रं सौमित्रिः प्रतिदर्शयन् ॥१७॥

शिलाओं के शस्त्रों को धारण करने वाली इसकी सारी भुजाओं को लक्ष्मण ने अस्त्र चलाने की फुर्ती को दिखाते हुए, क्षुर शस्त्र से काट डाला ॥१७॥

स बभूवातिकायश्च बहुपादशिरोभुजः ।
तं ब्रह्मास्त्रेण सौमित्रिर्ददाराद्रिचयोपमम् ॥१८॥

इस समय इसने बड़ा विशाल शरीर धारण कर लिया। जिसमें अनेक पाद, शिर और भुजाएँ थीं। पर्वत के समान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकार-धारी, इस कुम्भकर्ण को लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र से चीर डाला ॥१८॥

स पपात महावीर्यो दिव्यास्त्राभिहतो रणे ।
महाशनिविनिर्दग्धः पादपोऽङ्कुरवानिव ॥१९॥

यह महावीर, कुम्भकर्ण, दिव्य अस्त्र से अभिहत (घायल) होकर भूमि पर गिर गया जैसे बड़े भारी वज्र से जलकर अंकुर वाला वृक्ष गिर जाता है ॥१९॥

तं दृष्ट्वा वृत्रसङ्काशं कुम्भकर्णं तरस्विनम् ।
गतासुं पतितं भूमौ राक्षसा प्राद्रवन् भयात् ॥२०॥

वृत्रासुर के सदृश, तरस्वी, कुम्भकर्ण को मृतावस्था में भूमि में पड़ा हुआ देखकर, भय से राक्षस भाग निकले ॥२०॥

तथा तान् द्रवतो योधान् दृष्ट्वा तौ दूषणानुजौ ।
अवस्थाप्याथ सौमित्रिं संक्रुद्धावभ्यधावताम् ॥२१॥

इन सारे राक्षस योधाओं को भागते देखकर दूषण राक्षसके छोटे भाई, वज्रमुख और प्रमाथी, उन वीरों को रोक कर सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण पर झपटे ॥२१॥

तावाद्रवन्तौ संक्रुद्धौ वज्रवेगप्रमाथिनौ ।
अभिजग्राह सौमित्रिर्विनद्योभौ पतत्रिभिः ॥२२॥

संक्रुद्ध होकर झपटते हुए, वज्रवेग और प्रमाथी को बड़े जोर से गर्जना करके लक्ष्मण ने बाणों से रोक दिया ॥२२॥

ततः सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
दूषणानुजयोः पार्थ लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे युधिष्ठिर ! अब बुद्धिमान् लक्ष्मण और दूषण राक्षस के छोटे भाइयों में लोम खड़े कर देने वाला महाघोर युद्ध होने लगा ॥ ३॥

महता शरवर्षेण राक्षसौ सोऽभ्यवर्षत ।
तौ चापि वीरौ संक्रुद्धावुभौ तं समवर्षताम् ॥२४॥

लक्ष्मणने बड़े भारी बाणों की उन दोनों राक्षसों पर वर्षा की और उन दोनों क्रुद्ध वीर, राक्षसों ने भी, लक्ष्मण पर बाणों की झड़ी लगा दी ॥२४॥

मुहूर्त्तमेवमभवत् वज्रवेगप्रमाथिनोः ।
सौमित्रेश्च महाबाहोः संहारः सुदारुणः ॥२५॥

वज्रवेग और प्रमाथी के साथ, महाबाहु लक्ष्मण का, बड़ा दारुण युद्ध थोड़ी देर तक होता रहा ॥२५॥

अथाद्रिशृङ्गमादाय हनूमान्मारुतात्मजः ।
अभिद्रुत्याददे प्राणान् वज्रवेगस्य रक्षसः ॥२६॥

अब पर्वत की एक चोटी उखाड़ कर मारुतात्मज, हनूमान् ने वज्रवेग राक्षस पर फैंकी, जिससे हनूमान ने वज्रवेग के प्राणों का अपहरण कर लिया ॥२६॥

नीलश्च महता ग्राव्णा दूषणावरजं हरिः ।
प्रमाथिनमभिद्रुत्य प्रममाथ महाबलः ॥२७॥

महाबली नील वानर ने दौड़कर बड़े भारी पत्थर से दूषण के छोटे भाई, प्रमाथी को नष्ट कर डाला ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः प्रावर्त्तत पुनः संग्रामकटुकोदयः ।
रामरावणसैन्यानामन्योन्यमभिधावताम् ॥२८॥

अब फिर राम और रावण की सेना में एक दूसरे पर प्रहार करते हुए, वीरों में बड़ी कटुता (तेजी) के साथ युद्ध होने लगा ।२८

शतशो नैर्ऋतान् वन्या जघ्नुर्वन्यांश्च नैर्ऋताः ।
नैर्ऋतास्तत्र वध्यन्ते प्रायेण न तु वानराः ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि कुम्भकर्णादिवध षड्शीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८६॥

सैंकड़ों राक्षसों को वनवासी वानरों ने और सैंकड़ों वानरों को राक्षसों ने मार गिराया, परन्तु इस युद्ध में अधिकतर राक्षस ही मारे जाते थे । वानरों का इतना विनाश नहीं होता था ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में कुम्भकर्ण के वध का दो सौ छियासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।

******

दो सौ सत्तासीवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच :—

ततः श्रुत्वा हतं संख्ये कुम्भकर्णं सहानुगम् ।
प्रहस्तञ्च महेष्वासं धूम्राक्षञ्चातितेजसम् ॥१॥
पुत्रमिन्द्रजितं वीरं रावणः प्रत्यभाषत ।
हि राममामित्रघ्नं सुग्रीवञ्च सलक्ष्मणम् ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्कण्डेय बोले— हे भारत ! युद्ध में सेना के साथ कुम्भकर्ण; महा-धनुर्धर प्रहस्त, अत्यन्त-तेजस्वी धूम्राक्ष को मरे हुए, सुनकर रावण ने महावीर इन्द्र के जीतने वाले अपने पुत्र मेघनाद से कहा— तुम शत्रु-नाशक राम, लक्ष्मण और सुग्रीव का नाश करो ॥१-२॥

त्वया हि मम सत्पुत्र यशोदीप्तमुपार्जितम् ।
जित्वा वज्रधरं संख्ये सहस्राक्षं शचीपतिम् ॥३॥
अन्तर्हितः प्रकाशो वा दिव्यैर्दत्तवरैः शरैः ।
जहि शत्रूनमित्रघ्न मम शस्त्रभृताम्वर ॥४॥

हे सुपुत्र ! तुमने ही युद्ध में शचिपति सहस्र आंख वाले, वज्र धारी, इन्द्र को जीतकर उज्ज्वल यश संसार में इकट्ठा किया है। हे शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ ! शत्रुनाशक, भीतर ही भीतर तेज के धारण करने वाला, तू वर से युक्त दिव्य बाणों से मेरे शत्रुओं का विनाश कर ॥३-४॥

रामलक्ष्मणसुग्रीवाः शरस्पर्शं न तेऽनघ ।
समर्थाः प्रतिसोढुञ्च कुतस्तदनुयायिनः ॥५॥

हे अनघ ! राम, लक्ष्मण और सुग्रीव, तेरे बाणों के आघातों को नहीं सह सकेंगे, फिर उनके साथी अन्य वानरों की तो गिनती ही क्या है ॥५॥

न गता या प्रहस्तेन कुम्भकर्णेन चानघ ।
वैरस्यापचितिः सङ्ख्ये तां गच्छ त्वं महाभुज ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे महाभुज ! प्रहस्त या कुम्भकर्ण जिस वैर का बदला युद्ध में नहीं ले सके, अब तुम उसको प्राप्त करके दिखाओ ॥६॥

त्वमद्य निशितैर्बाणैर्हत्वा शत्रून् ससैनिकान् ।
प्रतिनन्दय मां पुत्र पुरा जित्वेव वासवम् ॥७॥

हे पुत्र ! पूर्वकाल में इन्द्र को जीतकर तुमने मुझे जिस तरह प्रसन्न किया था, आज भी उसी तरह तीक्ष्ण बाणों से सैनिकों के सहित शत्रुओं को मार कर मुझे आनन्दित करो ॥७॥

इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा रथमास्थाय दंशितः ।
प्रययाविन्द्रजिद्राजंस्तूर्णमायोधनं प्रति ।८॥

हे राजन् ! रावण के इतना कहने पर मेघनाद ने कहा-अच्छी बात है । यह इन्द्र-विजयी अस्त्रादि से सुसज्जित होकर बड़ी शीघ्रता से रण भूमि की ओर चल दिया ॥८॥

ततो विश्राव्य विस्पष्टं नाम राक्षसपुङ्गवः ।
आह्वयामास समरे लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥९॥

अब राक्षस-श्रेष्ठ मेघनाद, अपना नाम बड़े जोर से उद्घोषित करके युद्ध में शुभ लक्षण-धारी लक्ष्मण को ललकारने लगा ॥९॥

तं लक्ष्मणोऽभ्यधावच्च प्रगृह्य सशरं धनुः ।
त्रासयंस्तलघोषेण सिंहः क्षुद्रमृगान् यथा ॥१०॥

लक्ष्मण भी, बाण-सहित धनुष को उठाकर इसकी ओर दौड़ा । छोटे २ मृगों को सिंह की भांति लक्ष्मण ने अपने धनुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बजाते हुए, करतल से निकले हुए शब्द से सारे राक्षसों को भयभीत कर दिया ॥१०॥

तयोः समभवद्युद्धं सुमहज्जयगृद्धिनोः ।
दिव्यास्त्रविदुषोस्तीव्रमन्योन्यस्पर्द्धिनीस्तदा ॥११॥

इन दोनों विजयाभिलाषियों का महाघोर युद्ध ठन गया। ये दोनों दिव्य अस्त्रों का प्रयोग जानते थे और एक दूसरे से जीतने की स्पर्धा (इच्छा) कर रहे थे॥११॥

रावणिस्तु यदा नैवं विशेषयति सायकैः ।
ततो गुरुतरं यत्नमातिष्ठद्बलिनाम्बरः ॥१२॥

रावण-पुत्र, मेघनाद ने जब बाणों से कोई विशेषता नहीं देखी, तो इस महाबली ने अब अन्य महान् प्रयत्न किया ॥१२॥

तत एनं महावेगैरर्दयामास तोमरैः ।
तानागतान् स चिच्छेद सौमित्रिर्निशितैः शरैः ॥१३॥
ते निकृत्ताः शरैस्तीक्ष्णैर्न्यपतन् धरणीतले ।

इसने तोमरों शस्त्रों से लक्ष्मण पर बड़े वेग से आक्रमण किया। लक्ष्मण ने भी उन शस्त्रों को अपने तीखे बाणों से काट गिराया। तीक्ष्ण शरों से काटे हुए मेघनाद के तोमर शस्त्र, पृथिवी में गिर पड़े ॥१३॥

तमङ्गदो वालिसुतः श्रीमानुद्यम्य पादपम् ॥१४॥
अभिद्रुत्य महावेगस्ताडयामास मूर्द्धनि ।

वालिपुत्र, श्रीमान् अङ्गद, एक बड़े भारी वृक्ष को उखाड़ कर मेघनाद पर झपटा। इस महा-वेग-शील अङ्गद ने दौड़कर मेघनाद के मस्तक पर इस वृक्ष से प्रहार किया ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्येन्द्रजिदसंभ्रान्तः प्रासेनोरसि वीर्य्यवान् ॥१५॥
प्रहर्त्तुमैच्छत्तञ्चास्य प्रासं चिच्छेद लक्ष्मणः ।

इस वृक्ष के प्रहार से कुछ न घबड़ाकर इन्द्र-विजयी वीर्यवान् मेघनाद ने अङ्गदके हृदयमें प्रास शस्त्रसे प्रहार करना चाहा, परन्तु लक्ष्मण ने उसे बीच में ही काटकर गिरा दिया ॥१५॥

तमभ्यासगतं वीरमङ्गदं रावणात्मजः ॥१६॥
गदयाताडयत् सव्ये पार्श्वे वानरपुङ्गवम् ।

रावणात्मज मेघनाद ने पास में पहुंचे हुए, वीर वानर-श्रेष्ठ, अङ्गद की बांई कुक्षि में गदा से प्रहार किया ॥१६॥

तमचिन्त्यप्रहारं स बलवान् वालिनः सुतः ॥१७॥
ससर्जेन्द्रजितः क्रोधात् शालस्कन्धं तथाङ्गदः ।

वाली सुत अङ्गद ने इस गदा के प्रहार की परवाह न करके, इन्द्रजीत मेघनाद पर बड़े २ स्कन्धों वाले, वृक्ष से बड़े क्रोध के साथ प्रहार किया ॥१७॥

सोऽङ्गदेन रुषोत्सृष्टो वधायेन्द्रजितस्तरुः ॥१८॥
जघानेन्द्रजितः पार्थ रथं साश्वं ससारथिम् ।

हे पार्थ ! रोष में भरकर मेघनाद के वध के लिए फेंके हुए, उस वृक्ष ने मेघनाद के सारथि और अश्वों सहित रथ का चूर्ण कर दिया ॥१८॥

ततो हताश्वात् प्रस्कन्द्य रथात् स हतसारथिः ॥१९॥
तत्रैवान्तर्दधे राजन् मायया रावणात्मजः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! रावणात्मज मेघनाद भी सारथि और अश्वों के मारे जाने से उस रथ से कूद पड़ा और माया करके वहीं अलक्षित हो गया ॥१९॥

अन्तर्हितं विदित्वा तं बहुमायञ्च राक्षसम् ॥२०॥
रामस्तं देशमागम्य तत् सैन्यं पर्य्यरक्षत ।

रामचन्द्रजी, अत्यन्त मायावी, मेघनाद राक्षसको अलक्षित देख कर उस युद्धस्थल पर आए और सेना की रक्षा करने लगे ॥२०॥

स राममुद्दिश्य शरैस्ततो दत्तवरैस्तदा ॥२१॥
विव्याध सर्वगात्रेषु लक्ष्मणञ्च महाबलम् ।

मेघनाद भी वर से अभिमन्त्रित बाणों से महाबली राम और लक्ष्मण को लक्ष्य बनाकर सारे शरीर को बींधने की चेष्टा करने लगा ॥२१॥

तमदृश्यं शरैः शूरौ माययान्तर्हितं तदा ॥२२॥
योधयामासतुरुभौ रावणिं रामलक्ष्मणौ ।

माया से छुपे हुए, अलक्षित मेघनाद से शूरवीर राम और लक्ष्मण दोनों अपने २ बाणों से युद्ध करने लगे ॥२२॥

स रुषा सर्वगात्रेषु तयोः पुरुषसिंहयोः ॥२३॥
असृजत् सायकान् भूयः शतशोऽथ सहस्रशः ।

मेघनाद ने भी क्रोध में भरकर उन पुरुष-सिंह राम और लक्ष्मण पर सैकड़ों हजारों बाण छोड़े ॥२३॥

तमदृश्यं विचिन्वन्तः सृजन्तमनिशं शरान् ॥२४॥
हरयो विविशुर्व्योम प्रगृह्य महतीः शिलाः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगातार बाण बरसाते हुए, अलक्षित मेघनाद को खोजते हुए, वानर, बड़ी २ शिला लेकर आकाश में उड़ गए ॥२४॥

तांश्च तौ चाप्यदृश्यः स शरैर्विव्याध राक्षसः ॥२५॥
स भृशं ताडयन् वीरौ रावणिर्मायया वृतः ।

इस छुपे हुए, राक्षस मेघनाद ने दोनों राम लक्ष्मण और उन वानरों को शरों से बींध डाला। इस प्रकार माया से प्रच्छन्न होकर रावणात्मज मेघनाद ने दोनों वीर, राम और लक्ष्मण को अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥२५॥

तौ शरैरावृतौ वीरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
पेततुर्गगनाद्भूमि सूर्य्याचन्द्रमसाविव ॥२६।

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि इन्द्रजिद्युद्धे सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८७॥

इन बाणों से व्याप्त हुए, दोनों भाई, वीर राम लक्ष्मण, सूर्य चन्द्रमा की तरह आकाश से नीचे गिर गए ॥२६॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में मेघनाद के युद्ध का दो सौ सत्तासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ अट्ठासीवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच--

तावुभौ पतितौ दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
बबन्ध रावणिर्भूयः शरैर्दत्तवरैस्तदा ॥१॥

मार्कण्डेय ने कहा—हे भरतर्षभ ! उन दोनों भाई राम और लक्ष्मण को गिरा हुआ देख कर रावणात्मज मेघनाद ने वरदान से युक्त अपने बाणों से उनको बांध लिया ॥१॥

तौ वीरौ शरबन्धेन बद्धाविन्द्रजिता रणे ।
रेजतुः पुरुषव्याघ्रौ शकुन्ताविव पञ्जरे ॥२॥

बाणों के बन्धन में मेघनाद द्वारा बांधे हुए, ये दोनों पुरुष-सिंह,वीर राम और लक्ष्मण, पींजरेमें दो पक्षियों की तरह रण में दिखाई देने लगे ॥२॥

तौ दृष्ट्वा पतितौ भूमौ शतशः सायकैश्चितौ ।
सुग्रीवः कपिभिः सार्द्धं परिवार्य्य ततः स्थिता ॥३॥

सैकड़ों बाणों से बिंधे हुए, राम लक्ष्मण को पृथिवी में पड़ा हुआ देखकर, अन्य कपियों के साथ सुग्रीव उनको घेर कर खड़ा हो गया ॥३॥

सुषेणमैन्दद्विविदैः कुमुदेनाङ्गदेन च ।
हनुमन्नीलतारैश्च नलेन च कपीश्वरः ॥४॥

इस समय सुषेण, मैन्द, द्विविद, कुमुद, अङ्गद, हनूमान,नील, तार और नल आदि उत्तम २ वानरों के साथ कपीश्वर सुग्रीव, घेरा डाले खड़ा था ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततस्तं देशमागम्य कृतकर्मा विभीषणः ।
बोधयामास तौ वीरौ प्रज्ञास्त्रेण प्रबोधितौ ॥५॥

इस युद्धस्थल पर आकर कार्य कुशल विभीषण ने, उन दोनों वीर, राम लक्ष्मणको जगाया। ये दोनों वीर प्रज्ञा नामक अस्त्र के प्रयोग से सचेत हुए ॥५॥

विशल्यौ चापि सुग्रीवः क्षणेनैतौ चकार ह ।
विशल्यया महौषध्या दिव्यमन्त्रप्रयुक्तया ॥६॥
तौ लब्धसंज्ञौ नृवरौ विशल्यावुदतिष्ठताम् ।
गततन्द्राक्लमौ चापि क्षणेनैतौ महारथौ ॥७॥

सुग्रीव ने क्षण भर में इनके शरीर से बाण निकाल डाले। दिव्य मन्त्रों से प्रयुक्त, शल्य निकाल लेने के अनन्तर प्रयोग करने वाली ओषधि से इन नरश्रेष्ठ को चेतनता आई। ये बाणों के निकाल लेने पर शीघ्र ही खड़े हो गये और थोड़ी देर में ही इन दोनों महारथी वीरों का आलस्य और श्रम नष्ट हो गया॥६-७

ततो विभीषणः पार्थ राममिक्ष्वाकुनन्दनम् ।
उवाच विज्वरं दृष्ट्वा कृताञ्जलिरिदं वचः ॥८॥

हे पार्थ ! विभीषण ने इक्ष्वाकु-वंशोत्पन्न राम को जब पीड़ा से रहित देखा, तो हाथ जोड़कर यह वचन कहा ॥८॥

इदमम्भो गृहीत्वा तु राजराजस्य शासनात् ।
गुह्यकोऽभ्यागतः श्वेतात् त्वत्सकाशमरिन्दम ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अरिन्दम ! कुबेर की आज्ञा से इस जल को लेकर श्वेत पर्वत से आपकी सेवा में एक यक्ष आया है ॥९॥

इदमम्भः कुबेरस्ते महाराजः प्रयच्छति ।
अन्तर्हितानां भूतानां दर्शनार्थं परन्तप ॥१०॥

हे परन्तप ! महाराज ! इस जल को कुबेर ने आपके पास इसलिए भेजा है, कि इससे अलक्षित राक्षस, दिखाई दे जाया करेंगे ॥१०॥

अनेन मृष्टनयनो भूतान्यन्तर्हितान्युत ।
भवान् द्रक्ष्यति यस्मै च प्रदास्यति नरः स तु ॥११॥

इस जल को आंखों के लगा लेने से अलक्षित प्राणियों को आप देख सकेंगे और जिसको आप दे देंगे, वह भी इन छुपे राक्षसों को देख सकेगा ॥११॥

तथेति रामस्तद्वारि प्रतिगृह्याभिसंस्कृतम् ।
चकार नेत्रयोः शौचं लक्ष्मणश्च महामनाः ॥१२॥

मंत्रों से संस्कृत उस जल को लेकर महा-मनस्वी राम और लक्ष्मण ने अपने २ नेत्र धो डाले ॥१२॥

सुग्रीवजाम्बवन्तौ च हनूमानङ्गदस्तथा ।
मैन्दद्विविदनीलाश्च प्रायः प्लवगसत्तमाः ॥१३॥
तथा समभवच्चापि यदुवाच विभीषणः ।
क्षणेनातीन्द्रियाण्येषां चक्षूंष्यासन् युधिष्ठिर ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुग्रीव, जाम्बवान्, हनूमान, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील आदि वानर-श्रेष्ठों ने उस जल से अपनी २ आंखें धो डाली। इसके धोने के अनन्तर ही जैसा विभीषण ने कहा था. वैसा ही हो गया। हे युधिष्ठिर! क्षण भर में इन सब के नेत्र, अतीन्द्रिय (आंखों से छुपी हुई) वस्तु के देखने में समर्थ हो गए ॥१३-१४॥

इन्द्रजित् कृतकर्मा च पित्रे कर्म तदात्मनः।
निवेद्य पुनरागच्छत् त्वरयाजिशिरः प्रति ॥१५॥

उधर मेघनाद अपने काम में सफल होकर अपने पिता के पास पहुंचा और अपनी इस सफलता का समाचार पिता को सुनाया। यह अपने पिता को इस वृत्तान्त को सुनाकर शीघ्र ही फिर युद्ध के नाके पर आ गया ॥१५॥

तमापतन्तं संक्रुद्धं पुनरेव युयुत्सया।
अभिदुद्राव सौमित्रिर्विभीषणमते स्थितः ॥१६॥

क्रोध में भरे हुए युद्ध की इच्छा से लपकते हुए मेघनाद को देखकर लक्ष्मण, विभीषण के कथनानुसार ढंग से उस पर दौड़ा।

अकृताह्निकमेवैनं जिघांसुर्जितकाशिनम्।
शरैर्जघान संक्रुद्धः कृतसंज्ञोऽथ लक्ष्मणः ॥१७॥

सध्या-वन्दन आदि आन्हिक क्रिया से हीन, विजय के अभिलाषी, मेघनाद को विभीषण के संकेत के अनुसार क्रुद्ध हुए, मेघनाद के मारने के इच्छुक लक्ष्मण ने, बाणोंसे बींध डाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तयोः समभवद्युद्धमन्योन्यं विजिगीषतोः ।
अतीव चित्रमाश्चर्य्यं शक्रप्रह्लादयोरिव ॥१८॥

एक दूसरे के जीतने की अभिलाषा वाले लक्ष्मण और मेघनाद का घोर युद्ध होने लगा, जो इन्द्र और प्रल्हाद के युद्ध के सदृश, अद्भुत और अत्यन्त आश्चर्य-जनक था ॥१८॥

अविध्यदिन्द्रजित्तीक्ष्णैः सौमित्रिं मर्मभेदिभिः ।
सौमित्रिश्चानलस्पर्शैरविध्यद्रावणिं शरैः ॥१९॥

इन्द्र के जीतने वाले मेघनाद ने मर्म-भेदी तीक्ष्ण बाणों से लक्ष्मण को बींध डाला । लक्ष्मण ने भी अग्नि के सदृश जलते हुए बाणों से रावणात्मज मेघनाद को बींधा ॥१९॥

सौमित्रिशरसंस्पर्शाद्रावणिः क्रोधमूर्च्छितः।
असृजल्लक्ष्मणायाष्टौ शरानाशीविषोपमान् ॥२०॥

लक्ष्मण के बाणों के लगने से मेघनाद को क्रोध बढ़ आया। इसने सर्प के सदृश विषैले आठ बाण लक्ष्मण पर छोड़े ॥

तस्यासून् पावकस्पर्शैः सौमित्रिः पत्रिभिस्त्रिभिः ।
यथानिरहरद्वीरस्तन्मे निगदतः शृणु ॥२१॥

अग्नि के सदृश तीन बाणों से सुमित्रासुत लक्ष्मण ने उस मेघनाद के जिस तरह प्राणों का अपहरण किया- वह मैं तुमको सुनाता हूं ॥२१॥

एकेनास्य धनुष्मन्तं बाहुं देहादपातयत् ।
द्वितीयेन सनाराचं भुजं भूमौ न्यपातयत् ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बाण से लक्ष्मण ने धनुष के धारण करने वाली, इसकी भुजा को काट गिराया और दूसरे बाण से बाण धारण करने वाली भुजा काटकर भूमि में गिरा दी ॥२२॥

तृतीयेन तु बाणेन पृथुधारेण भास्वता ।
जहार सुनसञ्चापि शिरो भ्राजिष्णुकुण्डलम् ॥२३॥

पुष्ट और चमकती धार वाले,तीसरे बाण से लक्ष्मण ने मेघनादका चमकते कुण्डलों वाले और सुन्दर नासिका से सुन्दर, शिर को काट डाला ॥२३॥

विनिकृत्तभुजस्कन्धं कबन्धं भीमदर्शनम् ।
तं हत्वा सूतमप्यस्त्रैर्जघान बलिनाम्वरः ॥२४॥

भुजा और कंधों से हीन, भयङ्कर कबन्ध को मार कर बलवानों में श्रेष्ठ, लक्ष्मण ने अपने अस्त्रों से सारथि को भी मार गिराया ॥२४॥

लङ्कां प्रवेशयामासुस्तं रथं वाजिनस्तदा ।
ददर्श रावणस्तञ्च रथं पुत्रविनाकृतम् ॥२५॥

घोड़े, उस रथ को लेकर लङ्का में चले गए। रावण ने अपने पुत्र से हीन उस रथ को खाली देखा ॥२५॥

स पुत्रं निहतं दृष्ट्वा त्रासात् संभ्रान्तमानसः ।
रावणः शोकमोहार्त्तो वैदेहीं हन्तुमुद्यतः ॥२६॥

यह रावण, अपने पुत्र का वध जानकर भय से पागल सा हो गया और शोक एवं मोह से व्याकुल होकर सीता को मारने चला ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोकवनिकास्थां तां रामदर्शनलालसाम् ।
खड्गमादाय दुष्टात्मा जवेनाभिपपात ह ॥२७॥

राम के दर्शनों के मनोरथ करने वाली, अशोक-वाटिका में स्थित, सीता को मारने के लिए दुष्टात्मा रावण, खड्ग लेकर दौड़ा ॥२७॥

तं दृष्ट्वा तस्य दुर्बुद्धेरविन्ध्यः पापनिश्चयम् ।
शमयामास संक्रुद्धं श्रूयतां येन हेतुना ॥२८॥

इस क्रुद्ध हुए पापी, दुर्बुद्धि रावण का सीता के मारने का निश्चय जानकर अवन्ध्य राक्षस ने उसको जैसे शान्त किया-वह तुम सुनो ॥२८॥

महाराज्ये स्थितो दीप्ते न स्त्रियं हन्तुमर्हसि ।
हतैवैषा यदा स्त्री च बन्धनस्था च ते वशे ॥२९॥

हे महाराज ! आप बड़े विशाल समृद्ध-शाली राज्य पर बैठे हुए हो । आपको स्त्री का वध नहीं करना चाहिए । यह तो तुम्हारे वश में पड़ी हुई स्वयं ही मरी पड़ी है ॥२९॥

न चैषा देहभेदेन हतास्यादिति मे मतिः ।
जहि भर्त्तारमेवास्या हते तस्मिन् हता भवेत् ॥३०॥

यदि इसके प्राणों का इसकी देह से वियोग कर भी दिया, तो भी यह मारी हुई नहीं मानी जा सकती—मेरा ऐसा खयाल है। तुम तो इसके भर्ता को मार डालो, उसके मार लेने पर यह स्वयं मर जावेगी ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हि ते विक्रमे तुल्यः साक्षादपि शतक्रतुः ।
असकृद्धि त्वया सेन्द्रास्त्रासिता त्रिदशा युधि ॥३१॥

हे महाराज ! आप के पराक्रम की बराबरी साक्षात् इन्द्र भी नहीं कर सकता है । तुम तो युद्ध में इन्द्र के सहित देवताओं को कई बार पराजित कर चुके हो ॥३१॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैरविन्ध्यो रावणं तदा ।
क्रुद्धं स शमयामास जगृहे स च तद्वचः॥३२॥

इस तरह के अनेक वाक्यों को कह कर अविन्ध्य ने कुपित हुए रावण को शान्त कर दिया । रावण ने उसके वचनों को मान लिया ॥३२॥

निर्याणे स मतिं कृत्वा निधायासिं क्षपाचरः ।
आज्ञापयामास तदा रथो वै कल्प्यतामिति ॥३३॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि इन्द्रजिद्वधे अष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८॥

अब इसने स्वयं राम पर चढ़ाई करने का निश्चय कर लिया । राक्षस-राज रावण ने तलवार निकाल कर आज्ञा दी, कि मेरा रथ तय्यार करो ॥३ ॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में मेघनाद के वध का दो सौ अट्ठासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।

—**—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ नवासीवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच—

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः प्रिये पुत्रे निपातिते ।
निर्ययौ रथमास्थाय हेमरत्नविभूषितम् ॥१॥

मार्कण्डेय बोले— हे भारत ! अपने प्रिय-पुत्र के वध से अत्यन्त कुपित हुआ दशग्रीव, सुवर्ण और रत्नों से विभूषित, रथ पर बैठ कर चल दिया ॥१॥

संवृतो राक्षसैर्घोरैर्विविधायुधपाणिभिः ।
अभिदुद्राव रामं स योधयन् हरियूथपान् ॥२॥

अनेक शस्त्रधारी, घोर राक्षसों से युक्त होकर रावण, वानरों के सेनापतियों से युद्ध करता हुआ राम की ओर दौड़ा ॥२॥

तमाद्रवन्तं संक्रुद्धं मैन्दनीलनलाङ्गदाः ।
हनूमान् जाम्बवांश्चैव ससैन्याः पर्य्यवारयन् ॥३॥

क्रोध में भर कर आते हुए रावण को मैन्द, नील, नल, अङ्गद, हनूमान और जाम्बवान ने सेना लेकर घेर लिया ॥३॥

ते दशग्रीवसैन्यं तद्वृक्षवानरपुङ्गवाः ।
द्रुमैर्विध्वंसयाञ्चक्रुर्दशग्रीवस्य पश्यतः ॥४॥

रावण को देखते २ उसकी सेना का बड़े २ रीछों और वानरों ने वृक्षों से मार २ कर ढ़ेर लगा दिया ॥४॥

ततः स सैन्यमालोक्य वध्यमानमरातिभिः ।
मायावी चासृजन्मायां रावणो राक्षसाधिपः ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शत्रु से मारी हुई, सेना को देखकर, मायावी राक्षसराज रावण ने माया रची ॥५॥

तस्य देहाद्विनिष्क्रान्ताः शतशोऽथ सहस्रशः ।
राक्षसाः प्रत्यदृश्यन्त शरशक्त्यृष्टिपाणयः ॥६॥

अब रावण की देह से बाण, शक्ति और ऋष्टि नामक शस्त्र-धारी सैंकड़ों हजारों राक्षस, निकलते हुए दिखाई दिए ॥६॥

तान् रामो जघ्निवान् सर्वान् दिव्येनास्त्रेण राक्षसान्
अथ भूयोऽपि मायां स व्यदधाद्राक्षसाधिपः ॥७॥

रामचन्द्र जी ने उन सारे राक्षसों को अपने दिव्य अस्त्रों से मार गिराया । अब फिर रावण ने अपनी दूसरी माया रची ॥७॥

कृत्वा रामस्य रूपाणि लक्ष्मणस्य च भारत ।
अभिदुद्राव रामश्च लक्ष्मणश्च दशाननः ॥८॥

हे भारत ! रावण ने राम और लक्ष्मण का रूप धारण करके सच्चे राम और लक्ष्मण पर आक्रमण किया ॥८॥

ततस्ते राममर्च्छन्तो लक्ष्मणश्च क्षपाचराः ।
अभिपेतुस्तदा रामं प्रगृहीतशरासनाः ॥९॥

अब राम और लक्ष्मण पर राक्षसों ने बड़े वेग से धावा किया और ये धनुषधारी राक्षस, राम के पास पहुंचे ॥९॥

तां दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य मायामिक्ष्वाकुनन्दनः ।
उवाच रामं सौमित्रिरसंभ्रान्तो बृहद्वचः ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्ष्वाकुवंशी लक्ष्मण ने राक्षसेन्द्र रावण की इस माया को देखकर विना किसी घबराहट के रामचन्द्रजी से यह विस्तृत वचन कहा-॥१०॥

जहीमान् राक्षसान् पापानात्मनः प्रतिरूपकान् ।
जघान रामस्तांश्चान्यानात्मनः प्रतिरूपकान् ॥११॥

हे वीर-श्रेष्ठ ! तुम अपने रूप-धारी इन पापी राक्षसों का वध करो। रामचन्द्रजी ने दिव्यास्त्र से अपने समान रूप धारी राक्षसों को मार गिराया ॥११॥

ततो हर्य्यश्वयुक्तेन रथेनादित्यवर्चसा ।
उपतस्थे रणे रामं मातलिः शक्रसारथिः ॥१२॥

इसके बाद, हरित वर्ण के अश्वों से युक्त, सूर्य के सदृश, चमकते हुए, रथ से इन्द्र का सारथि मातलि, रण में राम के पास आया ॥१२॥

मातलिरुवाच--

अयं हर्य्यश्वयुग् जैत्रो मघोनः स्यन्दनोत्तमः ।
अनेन शक्रः काकुत्स्थ समरे दैत्यदानवान् ॥१३॥
शतशः पुरुषव्याघ्र रथोदारेण जघ्निवान् ।

मातलि ने कहा-- हे राघव ! यह विजय-शील, हरित वर्ण के अश्वों से युक्त, इन्द्र का उत्तम रथ हैं। हे पुरुष-व्याघ्र ! इसी सर्वोत्तम रथ से युद्ध में इन्द्र ने सैंकड़ों हजारों की संख्या में दैत्य और दानवों को मारा है ॥१३॥

तदनेन नरव्याघ्र महा यत्तेन संयुगे ॥१४॥
स्यन्दनेन जहि क्षिप्रं रावणं मा चिरं कृथाः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे नरव्याघ्र ! तुम बड़ी सावधानी से युद्ध में इस रथ के द्वारा शीघ्र रावण को मार डालो, देर न करो ॥१४॥

इत्युक्तो राघवस्तथ्यं वचोऽशङ्कत मातलेः ॥१५॥
मायैषा राक्षसस्येति तमुवाच विभीषणः ।

मातलि के इतना कहने पर रामचन्द्रजी को मातलि के इस वचन के सत्य होने की शङ्का ही बनी रही। इन्होंने समझा कि यह भी कोई राक्षसी माया ही है। अब रामचन्द्रजी से विभीषण ने कहा ॥१५॥

नेयं माया नरव्याघ्र रावणस्य दुरात्मनः ॥१६॥
तदातिष्ठ रथं शीघ्रमिममैन्द्रं महाद्युते ।

हे नरव्याघ्र ! यह दुरात्मा रावण की माया नहीं है। हे महाद्युते ! तुम इस इन्द्र के रथ में शीघ्र चढ़ जाओ ॥१६॥

ततः प्रहृष्टः काकुत्स्थस्तथेत्युक्त्वा विभीषणम् ॥१७॥
रथेनाभिपपाताथ दशग्रीवं रुषान्वितः ।

विभीषण के इस वचन को प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजी ने स्वीकार कर लिया। अब ये क्रोध में भर कर इस रथ से रावण की ओर दौड़े ॥१७॥

हा हा कृतानि भूतानि रावणे समभिद्रुते ॥१८॥
सिंहनादाः सपटहा दिवि दिव्यास्तथानदन् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण के ऊपर किये गए श्रीरामचन्द्रजी के इस आक्रमण को देखकर सारे प्राणियों में हाहाकार मच गया। इस समय स्वर्ग में नगाड़ों की ध्वनि के साथ देवों की दिव्य, हर्ष-ध्वनि होने लगी ॥१८॥

दशकन्धरराजसून्वोस्तथा युद्धमभून्महत्॥१९॥
अलब्धोपममन्यत्र तयोरेव तथाभवत्।

अब राजकुमार राम और रावण में घोर युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध की सारे संसार में कोई उपमा नहीं थी। इनका युद्ध तो इनके युद्ध के समान ही था ॥१९॥

स रामाय महाघोरं विससर्ज निशाचरः ॥२०॥
शूलमिन्द्राशनिप्रख्यं ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम्।

राक्षसराज रावण ने, राम के ऊपर इन्द्र के वज्र के सदृश, उद्यत हुए ब्रह्मदण्ड के तुल्य, महाघोर शूल चलाया ॥२०॥

तच्छूलं सत्वरं रामश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥२१॥
तद्दृष्ट्वा दुष्करं कर्म रावणं भयमाविशत्।

राम ने भी उस तीव्र शूल को अपने तीक्ष्ण बाणों से शीघ्र ही काट दिया। राम के इस दुष्कर कार्य को देखकर रावण, भयभीत हो गया ॥२१॥

ततः क्रुद्धः ससर्जाशु दशग्रीवः शिताञ्छरान् ॥२२॥
सहस्रायुतशो रामे शस्त्राणि विविधानि च।

इस समय रावण, अत्यन्त ही क्रोधित हो रहा था। अब इसने बड़े तीक्ष्ण बाण चलाने आरम्भ किए और सहस्रों की संख्या में अन्य अनेक शस्त्र राम पर छोड़े ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो भूशुण्डीः शूलानि मुसलानि परश्वधान् ॥२३॥
शक्तीश्च विविधाकाराः शतघ्नीश्च शिताञ्छरान् ।

भूशुण्डी (बन्दूक) शतघ्नी, (तोप) तीव्र बाण, मुसल, परशु शक्ति, शूल आदि अनेक शस्त्र रावण ने श्रीराम पर चलाए ।२३।

तां मायां विकृतां दृष्ट्वा दशग्रीवस्य रक्षसः ॥२४॥
भयात् प्रदुद्रुवुः सर्वे वानराः सर्वतो दिशम् ।

राक्षसराज रावण की इस भीषण, माया को देखकर सारे वानर भयभीत होकर चारों दिशाओं को भाग निकले ॥२४॥

ततः सुपत्रं सुमुखं हैमपुङ्खं शरोत्तमम् ॥२५॥
तूणादादाय काकुत्स्थो ब्रह्मास्त्रेण युयोज ह ।

इसके अनन्तर तूणीर (तरकस) से निकाल कर सुन्दर पत्र (पंख) और मुख (नोक) वाले, सुवर्ण-जटित, मूल (जड़) धारी, तीक्ष्ण बाण को रामचन्द्रजी ने ब्रह्मास्त्र पर चढ़ाया ॥२५॥

तं बाणवर्यं रामेण ब्रह्मास्त्रेणानुमन्त्रितम् ॥२६॥
जहृषुर्देवगन्धर्वा दृष्ट्वा शक्रपुरोगमाः ।

राम द्वारा ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित, उस उत्तम बाण को देखकर इन्द्र से लेकर सारे देव और गन्धर्व, बड़े प्रसन्न हुए ।

अल्पावशेषमायुश्च ततोऽमन्यन्त रक्षसः ॥२७॥
ब्रह्मास्त्रोदीरणाच्छत्रोर्देवदानवकिन्नराः ।

अब देव, दानव और किन्नरोंने रामके ब्रह्मास्त्र छोड़ देनेसे अपने शत्रु राक्षसराज रावण की बहुत थोड़ी शेष रही आयु समझी ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः ससर्ज तं रामः शरमप्रतिमौजसम् ॥२८॥
रावणान्तकरं घोरं ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ।

रामचन्द्रजी ने ब्रह्म-दण्ड के समान उद्यत हुए, अद्भुत ओज-धारी, रावण का अन्त करने वाले घोर बाण को छोड़ दिया।

मुक्तमात्रेण रामेण दूराकृष्टेन भारत ॥२९॥
स तेन राक्षसश्रेष्ठः सरथः साश्वसारथिः ।
प्रजज्वाल महाज्वालेनाग्निनाभिपरिप्लुतः ॥३०॥

हे भारत ! राम के धनुष को खैंचकर इस बाण के छोड़ते ही रथ, अश्व और सारथि के साथ, राक्षसराज रावण, बड़ी भारी अग्नि से व्याप्त होकर जलने लगा ॥२९-३०॥

ततः प्रहृष्टास्त्रिदशाः सहगन्धर्वचारणाः ।
निहतं रावणं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥३१॥

अद्भुत कर्म कर दिखाने वाले राम के द्वारा रावण का वध देखकर गन्धर्व और चारणों के साथ सारे देवता, बड़े प्रसन्न हुए ॥३१॥

तत्यजुस्तं महाभागं पञ्चभूतानि रावणम् ।
भ्रंशितः सर्वलोकेषु स हि ब्रह्मास्त्रतेजसा ॥३२॥

पञ्च-तत्वों ने महा-ऐश्वर्य-शाली रावण का साथ छोड़ दिया अर्थात् रावण मृत्यु को प्राप्त हो गया। ब्रह्मास्त्र के तेज से रावण, सब लोकों की राज्यश्री से भ्रष्ट हो गया ॥३२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरधातवो ह्यस्य मांसं रुधिरमेव च ।
नेशुर्ब्रह्मास्त्रनिर्दग्धा न च भस्माप्यदृश्यत ॥३३॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रावणवधे एकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८९॥

रावण के शरीर के धातु मांस और रुधिर, ब्रह्मास्त्र से दग्ध होकर नष्ट हो गए। इनकी कहीं भस्म भी दिखाई नहीं दी ।३३।

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में रावण के वध का दो सौ नवासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।

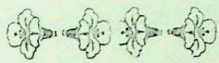

दो सौ नव्वेवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच--

स हत्वा रावणं क्षुद्रं राक्षसेन्द्रं सुरद्विषम् ।
बभूव हृष्टः ससुहृद्रामः सौमित्रिणा सह ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे राजन्! नीच-प्रकृति, देवों के शत्रु, राक्षसेन्द्र, रावण को मारकर अपने मित्र और लक्ष्मण के सहित रामचन्द्र जी बड़े प्रसन्न हुए ॥१॥

ततो हते दशग्रीवे देवाः सर्षिपुरोगमाः ।
आशीर्भिर्जययुक्ताभिरानर्चुस्तं महाभुजम् ॥२॥

दशग्रीव रावण के मारे जाने पर ऋषियों के सहित सारे देवता, जय-युक्त आशीर्वादों से उस महा-भुज-धारी राम की पूजा करने लगे ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामं कमलपत्राक्षं तुष्टुवुः सर्वदेवताः ।
गन्धर्वाः पुष्पवर्षैश्च वाग्भिश्च त्रिदशालयाः ॥३॥

कमल के सदृश नेत्र वाले श्रीराम की सारे देवों ने स्तुति की, गन्धर्वों ने पुष्प बरसाए और देवों ने वेदोच्चारण किया ॥३॥

पूजयित्वा तथा रामं प्रतिजग्मुर्यथागतम् ।
तन्महोत्सवसङ्काशमासीदाकाशमच्युत ॥४॥

हे अच्युत ! ये सारे देव, राम की पूजा करके अपने २ स्थान को गए। इस समय आकाश में बड़ा महोत्सव सा हो रहा था ॥४॥

ततो हत्वा दशग्रीवं लङ्कां रामो महायशाः ।
विभीषणाय प्रददौ प्रभुः परपुरञ्जयः ॥५॥

शत्रुओं के पुरों के विजयी, शक्तिमान्, महा-यशस्वी रामने दशग्रीव को मार कर विभीषण के लिए लङ्का के सिंहासन पर बैठा दिया ॥५॥

ततः सीतां पुरस्कृत्य विभीषणपुरस्कृताम् ।
अविन्ध्यो नाम सुप्रज्ञो वृद्धामात्यो विनिर्ययौ ॥६॥
उवाच च महात्मानं काकुत्स्थं दैन्यमास्थितः ।
प्रतीच्छ देवीं सद्वृत्तां महात्मन् जानकीमिति ॥७॥

विभीषण से आदर पायी हुई, सीता को आगे करके अविन्ध्य नामक वृद्ध बुद्धिमान् रावण का मन्त्री, लङ्का से बाहर निकला और बड़ी दीनता से महात्मा ककुत्स्थ-वंशी राम से कहने लगा। हे महात्मन् ! तुम इस उत्तम आचारण वाली सीता देवी को स्वीकार करो ॥६-७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्मादवतीर्य्य रथोत्तमात् ।
बाष्पेणापिहितां सीतां ददर्शेक्ष्वाकुनन्दनः ॥८॥

अविन्ध्य मन्त्री के ये वचन सुनकर रामचन्द्रजी, अपने उत्तम रथ से उतर पड़े। इक्ष्वाकु कुल-नन्दन राम ने अश्रुओं से भीगी हुई सीता को देखा ॥८॥

तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं यानस्थां शोककर्षिताम् ।
मलोपचितसर्वाङ्गीं जटिलां कृष्णवाससम् ॥९॥
उवाच रामो वैदेहीं परामर्शविशङ्कितः ।
गच्छ वैदेहि मुक्ता त्वं यत्कार्य्यं तन्मया कृतम् ॥१०

सर्वाङ्ग-सुन्दरी, वाहन पर चढ़ी हुई, शोकातुर, बढ़े हुए मल से मलिन-अङ्ग और बालों की लटें सी धारण करने वाली, कृष्ण-वस्त्र धारिणी, सीता को देखकर रावण के परामर्श (दुराक्रमण) से शङ्कित रामने उससे कहा-- हे वैदेहि ! अब तुम जाओ। मैंने तुम को स्वतन्त्र कर दी हैं। मुझे जो कर्तव्य था, वह मैंने कर दिखाया ॥९-१०॥

मामासाद्य पतिं भद्रे न त्वं राक्षसवेश्मनि ।
जरां व्रजेथा इति मे निहतोऽसौ निशाचरः ॥११॥

हे भद्रे ! मुझ पति को पाकर भी तू राक्षस के भवन पर वृद्धावस्था न प्राप्त कर ले, अर्थात सदा बन्धन में ही न पड़ी रहे। मैंने इसीलिए इस राक्षसराज रावण को मारा है ॥११॥

कथं ह्यस्मद्विधो जातु जानन् धर्मविनिश्चयम् ।
परहस्तगतां नारीं मुहूर्त्तमपि धारयेत् ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझ जैसा धर्म के तत्वका जानने वाला मनुष्य, अन्य के हाथ में पड़ी हुई नारी को कुछ काल तक भी कैसे धारण कर सकता है ॥१२॥

सुवृत्तामसुवृत्तां वाप्यहं त्वामद्य मैथिलि ।
नोत्सहे परिभोगाय श्वावलीढं हविर्यथा ॥१३॥

हे मैथिली ! तुम सदाचारिणी हो या दुर्व्यवहारिणी हो, कुछ भी हो, परन्तु अब मैं तुमको कुत्ते से चाटी हुई, हवि के समान फिर ग्रहण नहीं कर सकता हूं ॥१३॥

ततः सा सहसा बाला तच्छ्रुत्वा दारुणं वचः।
पपात देवी व्यथिता निकृत्ता कदली यथा ॥१४॥

नव-युवति सुन्दरी सीता, यह दारुण वचन सुनकर व्याकुल होकर कटे हुए केले के समान भूमि पर गिर पड़ी ॥१४॥

योऽप्यस्या हर्षसम्भूतो मुखरागस्तदाभवत् ।
क्षणेन स पुनर्नष्टो निश्वास इव दर्पणे ॥१५॥

हर्ष होने से सीताके मुख पर जो लालिमाकी झलक आ गई थी, वह अब दर्पण पर श्वास की तरह क्षण भर में जाती रही॥१५॥

ततस्ते हरयः सर्वे तच्छ्रुत्वा रामभाषितम् ।
गतासुकल्पा निश्चेष्टा बभूवुः सहलक्ष्मणाः ॥१६॥

लक्ष्मण के सहित सारे वानर, राम के भाषण को सुनकर मृतक समान निश्चेष्ट हो गए ॥१६॥

ततो देवो विशुद्धात्मा विमानेन चतुर्मुखः ।
पद्मयोनिर्जगत्स्रष्टा दर्शयामास राघवम् ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब विशुद्ध आत्माधारी, कमलोत्पन्न जगत का रचियता, चतुर्मुख ब्रह्मा, विमान द्वारा रामचन्द्र जी के पास पहुंचा ॥१७॥

शक्रश्चाग्निश्च वायुश्च यमो वरुण एव च ।
यक्षाधिपश्च भगवांस्तथा सप्तर्षयोऽमलाः ॥१८॥

दिव्य तेज वाले, इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण, कुबेर और सप्तर्षि आदि देव और ऋषि सब वहीं पर आ खड़े हुए ॥८॥

राजा दशरथश्चैव दिव्यभास्वरमूर्तिमान् ।
विमानेन महार्हेण हंसयुक्तेन भास्वता ॥१९॥

दिव्य, देदीप्यमान मूर्ति धारण किये हुए, राजा दशरथ भी चमकते हुए हंसों से युक्त बहुत मूल्य वाले रथ से वहीं आए ।१९॥

ततोऽन्तरीक्षं तत्सर्वं देवगन्धर्वसङ्कुलम् ।
शुशुभे तारकाचित्रं शरदीव नभस्तलम् ॥२०॥

इस समय सारा अन्तरीक्ष देव, गन्धर्वों से व्याप्त हो गया। अब आकाश, शरद् ऋतु में नक्षत्रों से चित्र विचित्र सा सुशोभित हो रहा था ॥२०॥

तत उत्थाय वैदेही तेषां मध्ये यशस्विनी ।
उवाच वाक्यं कल्याणी रामं पृथुलवक्षसम् ॥२१॥

इन सबके मध्य में यशस्विनी, कल्याणी, जानकी उठकर पुष्ट वक्ष-स्थल-धारी राम से यह वाक्य बोली॥२१॥

राजपुत्र न ते दोषं करोमि विदिता हि ते ।
गतिः स्त्रीणां नराणाञ्च शृणु चेदं वचो मम ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजपुत्र ! तुम जानते हो, कि मैं तुम्हारे किसी दोष का विचार नहीं करती हूं। यही स्त्री और पुरुष के सुख प्राप्त होने का मार्ग है। अब तुम मेरा वचन सुनो ॥२२॥

अन्तश्चरति भूतानां मातरिश्वा सदागतिः।
स मे विमुञ्चतु प्राणान् यदि पापं चराम्यहम् ॥२३॥

यह सदा चलने वाला वायु, प्राणियों के भीतर सदा विद्यमान रहता है। यह इसी समय मेरे प्राणों का अपहरण कर ले, जो मैंने कोई पाप के आचरण किए हों ॥२३॥

अग्निरापस्तथाकाशं पृथिवी वायुरेव च।
विमुञ्चन्तु मम प्राणान् यदि पापं चराम्यहम् ॥२४॥

अग्नि, जल, आकाश, पृथिवी, वायु आदि देवता, मेरे प्राणों को शरीर से वियुक्त कर दें, जो मैंने कोई पाप कर लिया हो ।२४।

यथाहं त्वदृते वीर नान्यं स्वप्नेऽप्यचिन्तयम्।
तथा मे देवनिर्दिष्टस्त्वमेव हि पतिर्भव ॥२५॥

हे वीर ! जो मैंने तेरे सिवा अन्य पति को स्वप्न में भी न विचारा हो, तो ये देव, तुम्हें मेरा ही पति बनावेंगे ॥२५॥

ततोऽन्तरीक्षे वागासीत् सर्वा विश्रावयन् दिशः।
पुण्या संहर्षणी तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥२६॥

इसी समय सारी दिशाओं को शब्दायमान करती हुई, आकाश वाणी हुई, जो सारे महात्मा और वानरों को बड़ी पवित्र और हर्ष-जनक प्रतीत हुई॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायुरुवाच—

भो भो राघव सत्यं वै वायुरस्मि सदागतिः ।
अपापा मैथिली राजन् सङ्गच्छ सह भार्य्यया ॥२७॥

वायु ने कहा—हे राघव ! मैं ही सदा चलने वाला वायु हूं। हे राजन् ! यह मैथिली सीता पाप रहित है। तुम अपनी भार्या को अपने पास रखो ॥२७॥

अग्निरुवाच--

अहमन्तः शरीरस्थो भूतानां रघुनन्दन ।
ते सूक्ष्ममपि काकुत्स्थ मैथिली नापराध्यति ॥२८॥

अग्नि ने कहा--हे ककुत्स्थवंशोत्पन्न ! रघुनन्दन ! मैं भी प्राणियों के अन्दर रहने वाला हूं। मैं जानता हूं, कि इस जानकी ने तेरा सूक्ष्म भी अपराध नहीं किया है ॥२८॥

वरुण उवाच--

रसा वै मत्प्रसूताहि भूतदेहेषु राघव ।
अहं वै त्वां प्रब्रवीमि मैथिली प्रतिगृह्यताम् ॥२९॥

वरुण बोला—हे राघव ! सारा जल का भाग प्राणियों की देह में मुझसे ही उत्पन्न होता है। मैं तुमसे कहता हूं- कि तुम मैथिली सीता को ग्रहण करो ॥२९॥

ब्रह्मोवाच--

पुत्र नैतदिहाश्चर्य्यं त्वयि राजर्षिधर्मिणि ।
साधो सद्वृत्त काकुत्स्थ शृणु चेदं वचो मम ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्माजी कहने लगे—हे ककुत्स्थवंशोत्पन्न ! सदाचारी, सज्जन पुत्र ! तुम राजर्षियों के सच्चे निर्वाह करने वाले हो। तुम में इस प्रकार विचार उत्पन्न होना कोई अचम्भे की बात नहीं है ॥३०॥

शत्रुरेष त्वया वीर देवगन्धर्वभोगिनाम् ।
यक्षाणां दानवानाञ्च महर्षीणाञ्च पातितः ॥३१॥
अवध्यः सर्वभूतानां मत्प्रसादात् पुराभवत् ।
कस्माच्चित् कारणात् पापः कञ्चित् कालमुपेक्षितः ॥

तुमने देव, गन्धर्व, सर्प, (देवयोनि) यक्ष, दानव, महर्षियों के शत्रु इस रावण का युद्ध में वध किया है। यह पूर्वकाल में मेरे वरदान से सबसे अवध्य हो रहा था। मैंने भी किसी कारण से कुछ काल तक इसकी उपेक्षा (लापरवाही) कर दी थी ॥३१-३२॥

वधार्थमात्मनस्तेन हृता सीता दुरात्मना ।
नलकूवरशापेन रक्षा चास्याः कृता मया ॥३३॥

इस मूर्ख दुरात्मा ने अपने वध के लिए सीता का अपहरण किया। मैंने नलकूवरों द्वारा रावण को शाप दिलाकर इसके सतीत्व की स्वयं रक्षा कराई है ॥३३॥

यदि ह्यकामामासेवेत् स्त्रियमन्यामपि ध्रुवम् ।
शतधास्य फलेन्मूर्द्धा इत्युक्तः सोऽभवत् पुरा ॥३४॥

यदि रावण, नहीं चाहने वाली अन्य स्त्री को भी काम-वासना से छूवेगा, तो इसका मस्तक सौ टुकड़े होकर फट जावेगा। इस प्रकार नलकूबर ने इसको पूर्वकाल में शाप दे रखा था ॥३४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नात्र शङ्का त्वया कार्य्या प्रतीच्छेमां महाद्युते ।
कृतं त्वया महत् कार्य्यं देवानाममरप्रभ ॥३५॥

हे महाद्युते ! तुम कोई शंका न करो और इस भार्या को स्वीकार करो। हे देवों के तुल्य पराक्रमी ! तुमने यह बड़ा भारी कार्य कर डाला है ॥३५॥

दशरथ उवाच--

प्रीतोऽस्मि वत्स भद्रन्ते पिता दशरथोऽस्मि ते ।
अनुजानामि राज्यञ्च प्रशाधि पुरुषोत्तम ॥३६॥

दशरथ ने कहा—हे पुरुषोत्तम ! मैं तेरा पिता दशरथ हूं और तुझ पर बड़ा प्रसन्न हूं । मैं तुमको सीता के स्वीकार की आज्ञा देता हूं, तुम इसको ग्रहण करके अयोध्या का राज्य करो ॥३६॥

राम उवाच--

अभिवादये त्वां राजेन्द्र यदि त्वं जनको मम ।
गमिष्यामि पुरीं रम्यामयोध्यां शासनात्तव ॥३७॥

हे राजेन्द्र ! आप मेरे पिता हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। अब मैं तुम्हारी आज्ञा से रमणीक अयोध्या पुरी को जा रहा हूं ॥३७॥

मार्कण्डेय उवाच--

तमुवाच पिता भूयः प्रहृष्टो भरतर्षभ ।
गच्छायोध्यां प्रशाधीति रामं रक्तान्तलोचनम् ॥३८॥
सम्पूर्णानीह वर्षाणि चतुर्दश महाद्युते ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्कण्डेय ने कहा—हे भरतर्षभ ! पिता ने प्रसन्न होकर राक्षसों के अन्त करने वाले राम से फिर कहा—तुम अयोध्या को शीघ्र जाओ और प्रजा का शासन करो। हे महाद्युते ! तुम्हारे आज चौदह वर्ष पूरे हो चुके ॥३८॥

ततो देवान्नमस्कृत्य सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥३९॥
महेन्द्र इव पौलोम्या भार्य्यया स समेयिवान् ।

अब रामचन्द्रजी, देवों को नमस्कार करके अपने मित्रों से अनुमोदित होकर इन्द्राणी से इन्द्र के सदृश अपनी भार्या सीता से मिल गए ॥३९॥

ततो वरं ददौ तस्मै ह्यविन्ध्याय परन्तपः ॥४०॥
त्रिजटाश्चार्थमानाभ्यां योजयामास राक्षसीम् ।

अब शत्रु नाशक रामचन्द्रजी ने अविन्ध्य राक्षस को वरदान दिया और त्रिजटा राक्षसी को धन और मान से सन्तुष्ट किया।

तमुवाच ततो ब्रह्मा देवैः शक्रपुरोगमैः ॥४१॥
कौशल्यामातरिष्टांस्ते वरानद्य ददानि कान् ।

इन्द्रादि देवों के साथ ब्रह्मा ने रामचन्द्रजी से कहा—हे कौशल्या के पुत्र ! बताओ, तुमको मैं क्या वरदान प्रदान करूं।

वव्रे रामः स्थितिं धर्मे शत्रुभिश्चापराजयम् ॥४२॥
राक्षसैर्निहतानाञ्च वानराणां समुद्भवम् ।

राम ने कहा—मेरी सदा धर्म में निष्ठा रहे और मैं कभी शत्रु से पराजित न होऊं तथा राक्षसों से मारे हुए इन वानरों को फिर जीवन प्राप्त हो जाए ॥४२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततस्ते ब्रह्मणा प्रोक्ते तथेतिवचने तदा ॥४३॥
समुत्तस्थुर्महाराज वानरा लब्धचेतसः ।
सीता चापि महाभागा वरं हनुमते ददौ ॥४४॥

हे महाराज ! ब्रह्माजी के स्वीकार करते ही उसी समय सारे वानर सचेत होकर खड़े हो गए। महाभागा सीताजी ने भी हनूमानजी को वरदान दिया ॥४३-४४॥

रामकीर्त्या समं पुत्र जीवितं ते भविष्यति ।
दिव्यास्त्वामुपभोगाश्च मत्प्रसादकृताः सदा ॥४५॥
उपस्थास्यन्ति हनुमन्निति स्म हरिलोचन ।

हे पुत्र ! जब तक पृथिवी पर राम की कीर्ति रहेगी, तब तक तेरा भी जीवन रहेगा। हे हरिलोचन ! हनूमान् ! मेरे अनुग्रह से तुमको सदा दिव्य-भोग प्राप्त होते रहेंगे ॥४५॥

ततस्ते प्रेक्ष्यमाणानां तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ॥४६॥
अन्तर्द्धानं ययुर्देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ।

अब इन सब उत्तम कार्य करने वाले, नर वानरों के देखते २ सारे इन्द्रादि देव, अलक्षित हो गए ॥४६॥

दृष्ट्वा रामन्तु जानक्या सङ्गतं शक्रसारथिः ॥४७॥
उवाच परमप्रीतः सुहृन्मध्य इदं वचः ।

जानकी के सहित, राम को देखकर इन्द्र का सारथि, बड़ी प्रसन्नता से अपने इन सुहृदों के बीच में कहने लगा ॥४७॥

देवगन्धर्वयक्षाणां मानुषासुरभोगिनाम् ॥४८॥
अपनीतं त्वया दुःखमिदं सत्यपराक्रम ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे सत्य ! पराक्रमी, राघव ! तुमने देव, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, सर्पजाति और असुरों का सारा दुःख दूर कर दिया ॥४८॥

सदेवासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥४९॥
कथयिष्यन्ति लोकास्त्वां यावद्भूमिर्धरिष्यति ।

अब देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प जाति के देव, ये सारे ही तुम्हारा गान तब तक करते रहेंगे, जब तक यह पृथिवी रहेगी ॥४९॥

इत्येवमुक्त्वानुज्ञाप्य रामं शस्त्रभृताम्वरम् ॥५०॥
सम्पूज्यापाक्रमत्तेन रथेनादित्यवर्चसा ।

इतना कहकर शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ, राम से आज्ञा लेकर और उनकी पूजा करके मातलि, सूर्य के सदृश उसी रथ से चला गया ॥५०॥

ततः सीतां पुरस्कृत्य रामः सौमित्रिणा सह ॥५१॥
सुग्रीवप्रमुखैश्चैव सहितः सर्ववानरैः ।
विधाय रक्षां लङ्कायां विभीषणपुरस्कृतः ॥५२॥
सन्ततार पुनस्तेन सेतुना मकरालयम् ।
पुष्पकेण विमानेन खेचरेण विराजता ॥५३॥
कामगेन यथामुख्यैरमात्यैः संवृतो वशी ।

इसके अनन्तर लङ्का की रक्षा का प्रबन्ध करके और सीता को आगे करके लक्ष्मण और सुग्रीव आदि वानरों के साथ, विभीषण सहित, राम ने उसी पुल से फिर समुद्र का उल्लङ्घन किया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य २ मन्त्री और लक्ष्मण, सुग्रीव, सीता को साथ लेकर आकाशगामी, दिव्य चमकते हुए कामचारी, पुष्पक विमान से श्रीराम ने समुद्र को पार किया ॥५१-५३॥

ततस्तीरे समुद्रस्य यत्र शिश्ये स पार्थिवः ॥५४॥
तत्रैवोवास धर्मात्मा सहितः सर्ववानरैः ।

पूर्वकाल में जिस स्थान पर रामचन्द्रजी ने उपवास सहित समुद्र पर शयन किया था, आज भी उसी स्थान पर धर्मात्मा राम ने सारे वानरों सहित अपना निवास किया ॥५४॥

अथैनान् राघवः काले समानीयाभिपूज्य च ॥५५॥
विसर्जयामास तदा रत्नैः सन्तोष्य सर्वशः ।

समय आने पर प्रत्येक वानरों के अधिपतियों का आदर सत्कार करके और उनको रत्नादि से सन्तुष्ट करके श्रीराम ने अपने २ स्थान को विदा किया ॥५५॥

गतेषु तेषु सर्वेषु गोपुच्छर्क्षेषु तेषु च ॥५६॥
सुग्रीवसहितो रामः किष्किन्धां पुनराविशत् ।

जब सारे लङ्गूर और रीछ चले गए, तो विभीषण और सुग्रीव के साथ रामचन्द्रजी किष्किन्धा में पहुंचे ॥५६॥

विभीषणेनानुगतः सुग्रीवसहितस्तदा ॥५७॥
पुष्पकेण विमानेन वैदेह्या दर्शयन् वनम् ।
किष्किन्धान्तु समासाद्य रामः प्रहरताम्वरः॥५८॥
अङ्गदं कृतवर्माणं यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभीषण और सुग्रीवके साथ पुष्पक विमान से वैदेही को वन दिखाते हुए, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, राम किष्किन्धा में पहुंचे। यहां पहुंचकर इन्होंने अङ्गद को युवराज पद पर अभिषिक्त किया

ततस्तैरेव सहितो रामः सौमित्रिणा सह ॥५९॥
यथागतेन मार्गेण प्रययौ स्वपुरं प्रति ।

अब इन सुग्रीव आदि प्रधान २ वानरों के और लक्ष्मण के साथ २ रामचन्द्रजी, उसी मार्ग से अपनी अयोध्यापुरी को चल दिए ॥५९॥

अयोध्यां स समासाद्य पुरीं राष्ट्रपतिस्ततः ॥६०॥
भरताय हनूमन्तं दूतं प्रास्थापयत्तदा ।
लक्षयित्वेङ्गितं सर्वं प्रियं तस्मै निवेद्य वै ॥६॥

सारे राष्ट्रके पति रामचन्द्र ने अयोध्यापुरी के पास पहुंचकर भरतजी के पास हनुमान्जी को दूत बनाकर भेजा। हनूमान् ने भरत के आकार विकार देखकर सारा प्रिय समाचार भरत को सुनाया ॥६०-६१॥

वायुपुत्रे पुनः प्राप्ते नन्दिग्राममुपागमत् ।
स तत्र मलदिग्धाङ्गं भरतश्चीरवाससम् ॥६२॥
अग्रतः पादुके कृत्वा ददर्शासीनमासने ।

वायु-पुत्र हनूमान् के लौट आने पर रामचन्द्रजी नन्दि-ग्राम में पहुंचे। रामचन्द्रजी ने यहां मैल से व्याप्त शरीर-धारी, फटे कपड़े पहने हुए, पादुकाओं (खड़ाऊओं)को आगे रख कर आसन पर बैठे हुए भरत को देखा ॥६२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सङ्गतो भरतेनाथ शत्रुघ्नेन च वीर्य्यवान् ॥६३॥
राघवः सह सौमित्रिर्मुमुदे भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! वीर्यवान राम ने भरत और शत्रुघ्न से भेंट की और लक्ष्मण के साथ वे बड़े प्रसन्न हुए ॥६३॥

ततो भरतशत्रुघ्नौ समेतौ गुरुणा तदा ॥६४॥
वैदेह्या दर्शनेनोभौ प्रहर्षं समवापतुः ।

अब भरत और शत्रुघ्न भी अपने पूज्य बड़े भाई से मिले। इन दोनों ने विदेहराज की पुत्री सीता के दर्शन करके बड़ा आनन्द पाया ॥६४॥

तस्मै तद्भरतो राज्यमागतायातिसत्कृतम् ॥६५॥
न्यासं निर्यातयामास युक्तः परमया मुदा ।

भरत ने भी अत्यन्त आनन्द से युक्त होकर धरोहर की तरह अत्यन्त सत्कार (ऐतिहात) से सुरक्षित राज्य को आये हुए राम को सौंप दिया ॥६५॥

ततस्तं वैष्णवे शूरं नक्षत्रेऽभिमतेऽहनि ॥६६॥
वशिष्ठो वामदेवश्च सहितावभ्यषिञ्चताम् ।

अब विष्णु देवता वाले श्रवण नक्षत्र से युक्त, शुभ दिन में वशिष्ठ और वामदेव, इन दोनों ने साथ २ राम का राज्याभिषेक कर दिया ॥६६॥

सोऽभिषिक्तः कपिश्रेष्ठं सुग्रीवं ससुहृज्जनम् ॥६७॥
विभीषणञ्च पौलस्त्यमन्वजानाद्गृहान् प्रति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयोध्या का राज्याभिषेक हो जाने पर अपने २ सहृद्गणों से युक्त पुलस्त्य वंशी विभीषण और कपि-श्रेष्ठ सुग्रीव को अपने २ घर जाने की श्रीराम ने आज्ञा दी ॥६७॥

अभ्यर्च्य विविधैर्भोगैः प्रीतियुक्तौ मुदा युतौ ॥६८॥
समाधायेतिकर्त्तव्यं दुःखेन विससर्ज ह ।

प्रीति से युक्त, प्रमुदित, सुग्रीव और विभीषण का अनेक भोग के पदार्थों से सत्कार करके और अपना २ कर्तव्य निर्वाह करने का उपदेश देकर बड़े दुःख से श्रीरामने इन दोनों मित्रों को विदा किया ॥६८॥

पुष्पकञ्च विमानं तत् पूजयित्वा स राघवः ॥६९॥
प्रादाद्वैश्रवणायैव प्रीत्या स रघुनन्दनः ।

रघु-वंश-श्रेष्ठ राम ने पुष्पक विमान की पूजा करके, इसको प्रीति-पूर्वक कुबेर को ही अर्पण कर दिया ॥६९॥

ततो देवर्षिसहितः सरितं गोमतीमनु ।
दशाश्वमेधानाजह्रे जारुथ्यान् स निरर्गलान् ॥७०॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रामराज्याभिषेके नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२९०॥

देवर्षिओं के साथ राम ने गोमती नदी के तट पर स्तुति के योग्य तिगुनी दक्षिणा वाले, अन्नदान की रुकावट से रहित, दश अश्वमेध महा-यज्ञ किए ॥७०॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यान पर्व में राम-राज्याभिषेक का दो सौ नव्वेवां अध्याय समाप्त हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ इक्यानवेवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच--

एवमेतन्महाबाहो रामेणामितेजसा ।
प्राप्तं व्यसनमत्युग्रं वनवासकृतं पुरा ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे महाबाहो ! युधिष्ठिर ! इस प्रकार अत्यन्त तेजस्वी, राम ने भी यह वनवास-जन्य अत्यन्त उग्र, विपत्ति पाई है ॥१॥

मा शुचः पुरुषव्याघ्र क्षत्रियोऽसि परन्तप ।
बाहुवीर्याश्रिते मार्गे वर्त्तसे दीप्तनिर्णये ॥२॥

हे पुरुष-व्याघ्र ! परन्तप ! तुम सोच न करो, क्योंकि तुम तो क्षत्रिय हो । अपनी भुजाओं के बल के आश्रित, निश्चित, प्रत्यक्ष फल से युक्त चमकीले निर्णय वाले मार्ग में चल रहे हो ॥२॥

न हि ते वृजिनं किञ्चिद्वर्त्तते परमण्वपि ।
अस्मिन्मार्गे निषीदेयुः सेन्द्रा अपि सुरासुराः ॥३॥

हे राजन् ! इस समय तुमको परमाणु के बराबर भी पाप नहीं लगेगा, इसी मार्ग में इन्द्र के साथ सुर असुर बैठ चुके हैं ॥३॥

संहत्य निहतो वृत्रो मरुद्भिर्वज्रपाणिना ।
नमुचिश्चैव दुर्द्धर्षो दीर्घजिह्वा च राक्षसी ॥४॥

वज्रपाणि इन्द्र ने देवों के साथ मिलकर ही वृत्रासुर को मारा था और दुर्धर्ष नमुचि दैत्य तथा दीर्घ-जिह्वा राक्षसी का वध किया है ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायवति सर्वार्थाः सन्तिष्ठन्तीह सर्वशः ।
किन्तु तस्याजितं संख्ये यस्य भ्राता धनञ्जयः ॥५॥

सहायकों से युक्त पुरुष के ही सारे कार्य सिद्ध होते हैं। उस पुरुष को युद्ध में क्या अजेय है, जिसका अर्जुन जैसा भाई विद्यमान है ॥५॥

अयञ्च बलिनां श्रेष्ठो भीमो भीमपराक्रमः ।
युवानौ च महेष्वासौ वीरौ माद्रवतीसुतौ ॥६॥
एभिः सहायैः कस्मात् त्वं विषीदसि परन्तप ।

यह बलवानों में श्रेष्ठ, भयङ्कर पराक्रम करने वाला भीम और अत्यन्त युवा महा-धनुष के धारी वीर माद्री-सुत, (नकुल सहदेव) भी तुम्हारे साथी हैं। हे परन्तप ! इनकी सहायता होने पर भी तुम किससे डर रहे हो ॥६॥

य इमे वज्रिणः सेनां जयेयुः समरुद्गणाम् ॥७॥
त्वमप्येभिर्महेष्वासैः सहायैर्देवरूपिभिः ।
विजेष्यसि रणे सर्वानमित्रान् भरतर्षभ ॥८॥

हे भरतर्षभ ! जो योद्धा देवों सहित इन्द्र की सेना को भी जीत सकते हैं, तू भी इन देवों के समान स्वरूप वाले, महा-धनुर्धर सहायकों के साथ, रण में सारे शत्रुओं को जीत लेगा। ७-८॥

इतश्च त्वमिमां पश्य सैन्धवेन दुरात्मना ।
बलिना वीर्यमत्तेन हृतामेभिर्महात्मभिः ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनीतां द्रौपदीं कृष्णां कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।
जयद्रथश्च राजानं विजितं वशमागतम् ॥१०॥

तू इधर देख-दुरात्मा, बल और पराक्रम से युक्त सिन्धुराज जयद्रथ ने द्रौपदी का अपहरण किया। तुमने भी इन महात्मा भाइयों की सहायता से दुष्कर कर्म करके द्रुपद-पुत्री कृष्णा को लौटा ली और वश में करके राजा जयद्रथ को जीत लिया ॥६-१०॥

असहायेन रामेण वैदेही पुनराहृता।
हत्वा संख्ये दशग्रीवं राक्षसं भीमविक्रमम् ॥११॥

विना सहायता के ही राम ने भी युद्ध में दशग्रीवा भीम पराक्रमी, राक्षसराज रावण को मार कर सीता को वापिस लौटा लिया ॥११॥

यस्य शाखामृगा मित्राण्यृक्षाः कालमुखास्तथा।
जात्यन्तरगता राजन्नेतत् बुद्ध्यानुचिन्तय ॥१२॥

हे राजन ! जिस राम के मनुष्य जाति से पृथक् जाति वाले वानर और काले मुख वाले रीछ ही मित्र हो गए। तुम ज़रा इस बात को तो विचारो ॥१२॥

तस्मात् सर्वं कुरुश्रेष्ठ मा शुचो भरतर्षभ।
त्वद्विधा हि महात्मानो न शोचन्ति परन्तप ॥१३॥

हे भरत और कुरु-वंश-श्रेष्ठ ! परन्तप ! तुम इन सारी बातों की चिन्ता न करो। तुम जैसे महात्मा इन छोटी २ बातों की चिन्ता नहीं करते हैं ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच--

एवमाश्वासितो राजा मार्कण्डेयेन धीमता ।
त्यक्त्वा दुःखमदीनात्मा पुनरप्येनमब्रवीत् ॥१४॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि युधिष्ठिराश्वासे एकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२९१॥

समाप्तश्च रामोपाख्यानपर्व ।

वैशम्पायन बोले--हे राजन्! बुद्धिमान मार्कण्डेय मुनि द्वारा आश्वासन पाकर महा-मनस्वी राजा युधिष्ठिर, सब कुछ दुःख छोड़कर फिर मार्कण्डेय से कहने लगा ॥१४॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में युधिष्ठिर के समझाने का दो सौ इक्यानवेवां अध्याय पूरा हुआ और यहीं पर रामोपाख्यानपर्व भी समाप्त हो गया ।

******

अथ पतिव्रतामाहात्म्यपर्व

दो सौ बानवेवां अध्याय

युधिष्ठिर उवाच--

नात्मानमनुशोचामि नेमान् भ्रातॄन् महामुने ।
हरणञ्चापि राज्यस्य यथेमां द्रुपदात्मजाम् ॥१॥

राजा युधिष्ठिर कहने लगे--हे महामुने! न तो मैं इतनी चिन्ता अपनी करता हूं और न इन भाइयों का इतना अधिक ध्यान है, राज्य के छीन जाने का भी इतना शोक नहीं है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना इस द्रुपदात्मजा कृष्णा को क्लेश में देखकर विकल हो रहा हूं ॥१॥

द्यूते दुरात्मभिः क्लिष्टाः कृष्णया तारिता वयम् ।
जयद्रथेन च पुनर्वनाच्चापि हृता बलात् ॥२॥

इन दुरात्माओं ने जुआ खेलकर हमको तंग किया। उस समय भी द्रौपदी ने हमारा उद्धार किया। दुष्ट जयद्रथ तो वन में भी आकर बल-पूर्वक द्रौपदी को ले भागा ॥२॥

अस्ति सीमन्तिनी काचित् दृष्टपूर्वापि वा श्रुता ।
पतिव्रता महाभागा यथेयं द्रुपदात्मजा ॥३॥

क्या तुमने कोई ऐसी महाभागा पतिव्रता, सुन्दरी कभी देखी या सुनी है, जिसने द्रौपदी के समान क्लेश उठाया हो ? ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच--

शृणु राजन् कुलस्त्रीणां महाभाग्यं युधिष्ठिर ।
सर्वमेतद्यथा प्राप्तं सावित्र्या राजकन्यया ॥४॥

मार्कण्डेय ने कहा— हे राजन् ! युधिष्ठिर ! तुम अब कुल-स्त्रियों के महत्व को सुनो। राजकन्या सावित्री ने जिस भांति इस सारे गौरव को प्राप्त किया है ॥४॥

आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा राजा परमधार्मिकः ।
ब्रह्मण्यश्च महात्मा च सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥५॥
यज्वा दानपतिर्दक्षः पौरजानपदप्रियः ।
पार्थिवोऽश्वपतिर्नाम सर्वभूतहिते रतः ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! मद्र देश में परम-धार्मिक, ब्राह्मण-रक्षक, सत्य-प्रतिज्ञावाला, जितेन्द्रिय, यज्ञकर्ता, दानी, चतुर, नगर और राष्ट्र का प्रिय, सारी प्रजा के हित में तत्पर, धर्मशील, महात्मा, अश्वपति नामक एक राजा था ॥५-६॥

क्षमावाननपत्यश्च सत्यवाग्विजितेन्द्रियः ।
अतिक्रान्तेन वयसा सन्तापमुपजग्मिवान् ॥७॥

इस क्षमा-शील, सत्यवादी, जितेन्द्रिय राजा के कोई सन्तान नहीं थी। जब इसकी आयु उतर चली, तो यह बड़ा सन्तापित हुआ ॥७॥

अपत्योत्पादनार्थञ्च तीव्रं नियममास्थितः ।
काले नियमिताहारो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । ८॥

इसने सन्तान उत्पन्न होने के लिए तीव्र तप करना आरम्भ किया। यह ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय रह कर समय के ऊपर बहुत ही थोड़ा आहार करता रहा ॥८॥

हुत्वा शतसहस्रं स सावित्र्या राजसत्तम ।
षष्ठे षष्ठे तदा काले बभूव मितभोजनः ॥९॥

हे राज-सत्तम ! इसने एक लाख आहुतियों से सावित्री (गायत्री)का कई बार हवन किया,यह छटे पहर में बड़ा ही थोड़ा भोजन करता था ॥९॥

एतेन नियमेनासीद्वर्षाण्यष्टादशैव तु ।
पूर्णे त्वष्टादशे वर्षे सावित्री तुष्टिमभ्यगात् ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस नियम से इसके अट्ठारह वर्ष व्यतीत हुए। जब अट्ठारह वर्ष पूरे हो गए, तो सावित्री (गायत्री) प्रसन्न हो गई ॥१०॥

रूपिणी तु तदा राजन् दर्शयामास तं नृपम्।
अग्निहोत्रात् समुत्थाय हर्षेण महतान्विता।
उवाच चैनं वरदा वचनं पार्थिवं तदा ॥११॥

हे राजन्! अब गायत्री मूर्ति, धारण करके राजाके सम्मुख आई। यह अग्नि की वेदी से उठी और बड़े हर्ष के साथ राजा को वर देने के लिए कहने लगी ॥११॥

सावित्र्युवाच—

ब्रह्मचर्य्येण शुद्धेन दमेन नियमेन च।
सर्वात्मना च भक्त्या च तुष्टास्मि तव पार्थिव ॥१२॥

हे राजन! तू ने शुद्ध ब्रह्मचर्य, मन के विजय, नियम और पूर्ण भक्ति से मुझे प्रसन्न कर लिया है ॥१२॥

वरं वृणीष्वाश्वपते मद्रराज यदीप्सितम्।
न प्रमादश्च धर्मेषु कर्त्तव्यस्ते कथञ्चन ॥१३॥

हे मद्रराज! अश्वपति! जो तुमको अभीष्ट हो, वह वर मांगो। तुम्हें धर्म में कभी कोई प्रमाद नहीं करना चाहिए ॥१३॥

अश्वपतिरुवाच—

अपत्यार्थः समारम्भः कृतो धर्मेप्सया मया।
पुत्रा मे बहवो देवि भवेयुः कुलभाजनाः ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्वपति ने कहा— हे देवि ! मैंने सन्तान के लिए यह सारा तप का प्रयास किया है। मैं चाहता हूं, कि मेरे कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले सैंकड़ों पुत्र हो जावें ॥ ४॥

तुष्टासि यदि मे देवि वरमेतं वृणोम्यहम् ।
सन्तानं परमो धर्म इत्याहुर्मां द्विजातयः ॥१५॥

हे देवि! यदि तुम प्रसन्न हो गई हो, तो मैं यही वर मांगता हूं। सन्तान भी एक धर्म साधन का प्रधान अङ्ग हैं,---ऐसा ब्राह्मणों ने कहा है ॥१५॥

सावित्र्युवाच—

पूर्वमेव मया राजन्नभिप्रायमिमं तव ।
ज्ञात्वा पुत्रार्थमुक्तो वै भगवांस्ते पितामहः ॥१६॥

गायत्री ने कहा—हे राजन् ! मैंने तुम्हारा सन्तान का अभिप्राय पूर्व में ही जान लिया था, इसलिए सन्तान उत्पन्न होने के लिए भगवान् ब्रह्मा से कहा ॥१६॥

प्रसादाच्चैव तस्मात्ते स्वयम्भूर्विहिताद्भुवि ।
कन्या तेजस्विनी सौम्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥१७॥

हे सौम्य ! उन ही पितामह ब्रह्मा के अनुग्रह से तुम्हारे एक तेजस्विनी कन्या होगी ॥१७॥

उत्तरञ्च न ते किञ्चिद्वचाहर्त्तव्यं कथञ्चन ।
पितामहनिसर्गेण तुष्टा ह्येतद् ब्रवीमि ते ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तुम इसमें कुछ भी किसी प्रकार का उत्तर प्रत्युत्तर न करो । मैं प्रसन्न हुई, पितामह ब्रह्मा की आज्ञा से तुमसे यह सब कुछ कह रही हूं ॥१८॥

मार्कण्डेय उवाच :—

स तथेति प्रतिज्ञाय सावित्र्या वचनं नृपः ।
प्रसादयामास पुनः क्षिप्रमेतद्भविष्यति ।
अन्तर्हितायां सावित्र्यां जगाम स्वपुरं नृपः ॥१९॥
स्वराज्ये चावसद्वीरः प्रजा धर्मेण पालयन् ।

मार्कण्डेय ने कहा—हे राजन् ! अश्वपति ने सावित्री (गायत्री) के वचनों को स्वीकार कर लिया और फिर गायत्री देवी से प्रार्थना की, कि मेरे यह सन्तान शीघ्र हो जावे । गायत्री देवी के चले जाने पर राजा भी अपने नगर में चला आया और धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करता हुआ अपनी राजधानी में रहने लगा ॥१९॥

कस्मिंश्चित्तु गते काले स राजा नियतव्रतः॥२०॥
ज्येष्ठायां धर्मचारिण्यां महिष्यां गर्भमादधे ।

कुछ काल के व्यतीत हो जाने पर नियमशील राजा ने धर्म के आचरण करने वाली बड़ी रानी में गर्भाधान संस्कार किया॥२०॥

राजपुत्र्यास्तु गर्भः स मालव्या भरतर्षभ ॥२१॥
व्यवर्द्धत तदा शुक्ले तारापतिरिवाम्बरे ।
प्राप्ते काले तु सुषुवे कन्यां राजीवलोचनाम् ॥२२॥
क्रियाश्च तस्या मुदितश्चक्रे स नृपसत्तमः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भरतर्षभ ! मालव देशोत्पन्न राजपुत्री का यह गर्भ, शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा। समय आने पर रानी ने कमल के समान नेत्रवाली कन्या उत्पन्न की। राजा ने इसके सारे जात-कर्म आदि संस्कार बड़ी प्रसन्नता से किए ॥२१-२२॥

सावित्र्या प्रीतया दत्ता सावित्र्या हुतया ह्यपि॥२३॥
सावित्रीत्येव नामास्याश्चक्रुर्विप्रास्तथा पिता ।

हवन से सन्तुष्ट की हुई, सावित्री ने इस सन्तान को दिया है, इसलिए ब्राह्मण और उसके पिता अश्वपति ने उसका नाम भी सावित्री ही रख दिया ॥२३॥

सा विग्रहवतीव श्रीर्व्यवर्द्धत नपात्मजा ॥२४॥
कालेन चापि सा कन्या यौवनस्था बभूव ह ।

यह राजपुत्री मूर्तिमती लक्ष्मी के सदृश बढ़ने लगी। कुछ काल के अनन्तर वह युवति हो गई ॥२४॥

तां सुमध्यां पृथुश्रोणीं प्रतिमां काञ्चनीमिव ॥२५॥
प्राप्तेयं देवकन्येति दृष्ट्वा संमेनिरे जनाः।

सुन्दर कांट और पुष्ट नितम्ब वाली सुवर्ण की सी प्रतिमा, इस सावित्री कन्या को देखकर लोगों ने इसको साक्षात् देवकन्या समझा ॥२५॥

तान्तु पद्मपलाशाक्षीं ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥२६॥
न कश्चिद्वरयामास तेजसा प्रतिवारितः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमल के पत्र के समान नेत्रवाली, तेज से जाज्वल्यमान, इस सावित्री को किसी ने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि सब इसके तेज की चकाचौंध को नहीं सह सकते थे ॥२६॥

अथोपोष्य शिरः स्नाता देवतामभिगम्य सा ॥२७॥
हुत्वाग्निं विधिवद्विप्रान् वाचयामास पर्वणि ।

सावित्री ने शिर तक स्नान करके व्रत किया और देवता के सन्मुख पहुंच कर विधि-पूर्वक हवन किया तथा ब्राह्मणों से वेद पाठ करवाया ॥२७॥

ततः सुमनसः शेषाः प्रतिगृह्य महात्मनः ॥२८॥
पितुः समीपमगमद्देवी श्रीरिव रूपिणी ।

अब यह सावित्री इष्ट- देवता के शेष माला आदि को लेकर महात्मा पिता के पास मूर्तिमती लक्ष्मी की तरह पहुंची ॥२८॥

साभिवाद्य पितुः पादौ शेषा पूर्वं निवेद्य च ॥२९॥
कृताञ्जलिर्वरारोहा नृपतेः पार्श्वमास्थिता ।

इसने पिताके चरणों में प्रणाम किया और माला प्रसाद आदि को सामने रख दिया। यह सुन्दरी हाथ जोड़कर राजा के पास में बैठ गई ॥२९॥

यौवनस्थान्तु तां दृष्ट्वा स्वां सुतां देवरूपिणीम् ।
अयाच्यमानाञ्च वरैर्नृपतिर्दुःखितोऽभवत् ॥३०॥

राजा अश्वपति, देव-कन्या के सदृश अपनी कन्या को युवति देखकर और अन्य वरों से स्वीकार करती न देखकर बड़ा दुःखी हुआ ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजोवाच--

पुत्रि प्रदानकालस्ते न च कश्चिद्वृणोति माम् ।
स्वयमन्विच्छ भर्त्तारं गुणैः सदृशमात्मनः ॥३१॥

राजा ने कहा—हे पुत्रि ! तुम्हारे प्रदान का काल आ गया, परन्तु कोई भी आकर तुमको नहीं माँगता है। अब तुम अपने गुणों के सदृश अपने पति को आप खोज लो ॥३१॥

प्रार्थितः पुरुषो यश्च स निवेद्यस्त्वया मम ।
विमृश्याहं प्रदास्यामि वरय त्वं यथेप्सितम् ॥३२॥

जब तुमको वरण करने वाला पुरुष मिल जावे, तो मुझे कह देना। मैं विचार करके तुमको उसे दे दूंगा, अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार पति को देखो ॥३२॥

श्रुतं हि धर्मशास्त्रेषु पठ्यमानं द्विजातिभिः ।
तथा त्वमपि कल्याणि गदतो मे वचः शृणु ॥३३॥

मैंने धर्म-शास्त्र, पढ़ते हुए ब्राह्मणों से सुना है। हे कल्याणि ! इसीलिए मैं तुमसे कहता हूं, तुम ध्यान से सुनो॥३३॥

अप्रदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन् पतिः ।
मृते भर्त्तरि पुत्रश्च वाच्यो मातुररक्षिता ॥३४॥

यदि पिता पुत्री का विवाह न करे,तो निन्दाका पात्र बनता है और पति ऋतुकालमें स्त्री के पास गमन न करे, तो दूषित हो जाता है। जब भर्ता मर जावे तो माता की पुत्र और बाल्यावस्था में पुत्री की माता, रक्षा नहीं करें, तो ये दोनों निन्दा को प्राप्त होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं मे वचनं श्रुत्वा भर्त्तुरन्वेषणे वर ।
देवतानां यथा वाच्यो न भवेयं तथा कुरु ॥३५॥

मेरे इस वचन को सुनकर तुम पतिकी खोज में प्रयत्न करो। मैं देवों की निन्दा का पात्र न बन सकूं, तुम ऐसा ही प्रयत्न करना ॥३५॥

मार्कण्डेय उवाच--

एवमुक्त्वा दुहितरं तथा वृद्धांश्च मन्त्रिणः ।
व्यादिदेशानुयात्रश्च गम्यताश्चेत्यचोदयत् ॥३६॥

मार्कण्डेय बोले---हे राजन् ! राजा अश्वपति ने इस प्रकार अपनी पुत्री और वृद्ध मन्त्रियों से कह कर उनके यात्रा की आज्ञा दे दी और कहा--कि अब तुम शीघ्र जाओ ॥३६॥

साभिवाद्य पितुः पादौ व्रीडितेव तपस्विनी ।
पितुर्वचनमाज्ञाय निर्जगामाविचारितम् ॥३७॥

तपस्विनी सावित्री ने लज्जित सी होकर पिता के चरण छुए। यह पिता के वचनों को समझ कर बिना कुछ सोचे ही चल पड़ी।

सा हैमं रथमास्थाय स्थविरैः सचिवैर्वृता ।
तपोवनानि रम्याणि राजर्षीणां जगाम ह ॥३८॥

यह सुवर्ण के रथ में चढ़कर वृद्ध मन्त्रियों के साथ राजर्षियों के मनोहर तपोवन में पहुंची ॥३८॥

मान्यानां तत्र वृद्धानां कृत्वा पादाभिवादनम् ।
वनानि क्रमशस्तात सर्वाण्येवाभ्यगच्छत ॥३९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे तात ! इसने मान्य और वृद्ध राजर्षियों के चरणों की वन्दना की और क्रमश से सारे तपोवन को वर की खोज में छान डाला ॥३९॥

एवं तीर्थेषु सर्वेषु धनोत्सर्गं नृपात्मजा ।
कुर्वती द्विजमुख्यानान्तं तं देशं जगाम ह ॥४०॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि सावित्रीस्वयम्वरे द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२९२॥

इस प्रकार सारे तीर्थों में उत्तम २ ब्राह्मणों को धन दान करती हुई, यह राजपुत्री, भिन्न २ देशों में घूमी ॥४०॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत पतिव्रतामहात्म्यपर्व में सावित्री-स्वयम्वर का दो सौ बानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

*****

दो सौ तिरानवेवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच--

अथ मद्राधिपो राजा नारदेन समागतः ।
उपविष्टः सभामध्ये कथायोगेन भारत ॥१॥

मार्कण्डेय बोले--हे भारत ! बातचीत के प्रसङ्ग में सभा के मध्यमें बैठे हुए मद्र-देशाधिपति अश्वपति के पास नारदजी आए।

ततोऽभिगम्य तीर्थानि सर्वाण्येवाश्रमांस्तथा ।
आजगाम पितुर्वेश्म सावित्री सह मन्त्रिभिः ॥२॥

इसी समय सारे तीर्थ और आश्रमों को खोजकर सावित्री भी वृद्ध मन्त्रियों के साथ पिता के भवन पर ही वापिस लौट आई ।२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारदेन सहासीनं सा दृष्ट्वा पितरं तदा ।
उभयोरेव शिरसा चक्रे पादाभिवादनम् ॥३॥

इसने नारद के साथ बैठे हुए अपने पिता को देखकर दोनों के चरणों में शिर टेककर प्रणाम किया ॥३॥

नारद उवाच--

क्व गताभूत् सुतेयन्ते कुतश्चैवागता नृप ।
किमर्थं युवतिं भर्त्रे न चैनां संप्रयच्छसि ॥४॥

नारद ने कहा—हे नृप ! तुम्हारी यह पुत्री कहां गई थी और अब कहां से आई है । तुम इसके युवति हो जाने पर भी इसको अपने भर्ता को क्यों नहीं प्रदान करते हो ॥४॥

अश्वपतिरुवाच--

कार्य्येण खल्वनेनैव प्रेषिताद्यैव चागता ।
एतस्याः शृणु देवर्षे भर्त्तारं योऽनया वृतः ॥५॥

अश्वपति ने कहा—हे देवर्षे ! यह मेरी कन्या, वर की खोज में ही भेजी गई थी और आज आई है । जो वर इसने खोजा है, उसके विषय में सुनो ॥५॥

मार्कण्डेय उवाच--

सा ब्रूहि विस्तरेणेति पित्रा सञ्चोदिता शुभा ।
दैवतस्येव वचनं प्रतिगृह्य देमब्रवीत् ॥६॥

मार्कण्डेय ने कहा—हे राजन् ! पिता ने सावित्री को प्रेरणा की, कि तुम अपनी यात्रा और उसमें किये हुए कार्य का विस्तार से वर्णन करो । सावित्री अपने पिता के वचन को देवता का वचन समझ कर कहने लगी ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्र्युवाच—

आसीच्छाल्वेषु धर्मात्मा क्षत्रियः पृथिवीपतिः ।
द्युमत्सेन इति ख्यातः पश्चाच्चान्धो बभूव ह ॥७॥

शाल्व देश में एक धर्मात्मा, क्षत्रिय-श्रेष्ठ, द्युमत्सेन नामक राजा है, जो पीछे अन्धा हो गया है ॥७॥

विनष्टचक्षुषस्तस्य बालपुत्रस्य धीमतः ।
सामीप्येन हृतं राज्यं छिद्रेऽस्मिन् पूर्ववैरिणा ॥८॥

एक तो यह अन्धा हुआ और दूसरे इसका पुत्र अभी बच्चा ही था। इस छिद्र को देखकर पूर्वकाल से वैर रखने वाले, किसी पड़ोसी राजा ने इसका राज्य छीन लिया ॥८॥

स बालवत्सया सार्द्धं भार्य्यया प्रस्थितो वनम् ।
महारण्यं गतश्चापि तपस्तेपे महाव्रतः ॥९॥

यह अपने बालक पुत्र और भार्या के साथ वन में चला गया और उस महावन में इस महाव्रती ने बड़ा भारी तप कर डाला ॥९॥

तस्य पुत्रः पुरे जातः संवृद्धश्च तपोवने ।
सत्यवाननुरूपो मे भर्त्तेति मनसा वृतः ॥१०॥

इसका पुत्र, जो प्रथम राजधानी में उत्पन्न हुआ था और पीछे वन में बढ़ा है, मैंने उसी सत्यवान् को अपने अनुरूप भर्ता समझ कर मन में वर लिया है ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारद उवाच—

अहो बत महत्पापं सावित्र्या नृपते कृतम् ।
अजानन्त्या यदनया गुणवान् सत्यवान् वृतः ११ ।

नारद ने कहा—हे नृपते ! इस सावित्री ने तो अज्ञान में यह बड़ा अनर्थ कर डाला, जो गुणी सत्यवान् को अपना पति बना लिया ॥११॥

सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते ।
तथास्य ब्राह्मणाश्चक्रुर्नामैतत् सत्यवानिति ॥१२॥

इसके माता और पिता सदा सत्य का ही भाषण करते हैं, इसी से ब्राह्मणों ने इसका नाम भी सत्यवान् रख दिया है ॥१२॥

बालस्याश्वाः प्रियाश्चास्य करोत्यश्वांश्च मृण्मयान् ।
चित्रेऽपि विलिखत्यश्वांश्चित्राश्व इति चोच्यते ॥१३॥

इस बालक को बचपन में अश्व बड़े प्रिय थे। यह मिट्टी के अश्व बनाया करता था। यदि चित्र भी बनाता, तो अश्वों के ही बनाता था, इसी से यह चित्राश्व भी कहाता है ॥१३॥

राजोवाच-

अपीदानीं स तेजस्वी बुद्धिमान् वा नृपात्मजः ।
क्षमावानपि वा शूरः सत्यवान् पितृवत्सलः ॥१४॥

राजा पूछने लगा—क्या यह राजपुत्र, तेजस्वी, बुद्धिमान, क्षमा शील, शूर, सत्यवादी और पिता का भक्त है ?॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारद उवाच—

विवस्वानिव तेजस्वी बृहस्पति समो मतौ ।
महेन्द्र इव वीरश्च वसुधेव क्षमान्वितः ॥१५॥

नारद ने कहा—यह बालक सूर्य के सदृश तेजस्वी, बृहस्पति के समान बुद्धिमान, इन्द्र के तुल्य वीर और पृथ्वी के सदृश क्षमा-शील है ॥१५॥

अश्वपतिरुवाच—

अपि राजात्मजो दाता ब्रह्मण्यश्चापि सत्यवान् ।
रूपवानप्युदारो वाप्यथवा प्रियदर्शनः ॥१६॥

अश्वपति ने पूछा—क्या यह सत्यवान राजकुमार, दाता, ब्राह्मणों का भक्त, रूपवान, उदार और सुन्दर है ? ॥१६॥

नारद उवाच—

साकृते रन्तिदेवस्य स्वशक्त्या दानतः समः ।
ब्रह्मण्यः सत्यवादी च शिबिरौशीनरो यथा ॥१७॥

नारद ने कहा—यह सत्यवान् संकृति के पुत्र, रन्तिदेव के समान दानी और उशीनर पुत्र शिबि के तुल्य ब्राह्मण भक्त तथा सत्यवादी है ॥१७॥

ययातिरिव चोदारः सोमवत् प्रियदर्शनः ।
रूपेणान्यतमोऽश्विभ्यां द्युमत्सेनसुतो बली ॥१८॥

द्युमत्सेन का पुत्र, सत्यवान, ययाति के समान उदार, चन्द्रमा के सदृश सुन्दर, अश्विनी कुमारों के तुल्य रूपवान और महाबली है ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स दान्तः स मृदुः शूरः स सत्यः संयतेन्द्रियः ।
स मैत्रः सोऽनसूयश्च स ह्रीमान् धृतिमांश्च सः ॥१९॥

यह सत्यवान, बड़ा उदार, कोमल प्रकृति, शूरवीर, सत्यशील जितेन्द्रिय, सबका मित्र, अनन्दिक, लज्जावान और धैर्यधारी है।

नित्यशश्चार्जवं तस्मिन् स्थितिस्तस्यैव च ध्रुवा ।
सञ्जङ्गेपतस्तपोवृद्धैः शीलवृद्धैश्च कथ्यते ॥२०॥

इसमें सरलता ने तो अपना सदा के लिए डेरा ही लगा लिया है। तप और शील में वृद्ध मुनिजन, सदा इसी बात को कहते रहते हैं ॥२०॥

अश्वपतिरुवाच---

गुणैरुपेतं सर्वैस्तं भगवन् प्रब्रवीषि मे ।
दोषानप्यस्य मे ब्रूहि यदि सन्तीह केचन ॥२१॥

अश्वपति बोला—हे भगवन्! आप सारे गुणों से ही युक्त, सत्यवान् को बता रहे हैं। यदि इसमें कोई दोष हो, तो आप उनका भी मुझे निदर्शन करें ॥२१॥

नारद उवाच---

एक एवास्य दोषो हि गुणानाक्रम्य तिष्ठति ।
स च दोषः प्रयत्नेन न शक्यश्चातिवर्त्तितुम् ॥२२॥

नारद ने कहा—इसमें एक ही दोष है, जो सब गुणों से बढ़ कर है। इस दोषको कोई अपने प्रयत्न से हटा भी नहीं सकता है।

एको दोषोऽस्ति नान्योऽस्य सोऽद्यप्रभृति सत्यवान् ।
सम्वत्सरेण क्षीणायुर्देहन्यासं करिष्यति ॥२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! इसमें एक ही दोष है और आज तक दूसरा दोष ही उत्पन्न नहीं हुआ । इस सत्यवान् की एक वर्ष में आयु व्यतीत हो जावेगी । इसके बाद यह इस भौतिक देह को छोड़ देगा ॥२३॥

राजोवाच---

एहि सावित्रि गच्छस्व अन्यं वरय शोभने ।
तस्य दोषोः महानेको गुणानाक्रम्य च स्थितः॥२४॥

राजा बोला—हे गुणवती ! सावित्री ! आवो और तुम अन्य वर को वरने का प्रयत्न करो । सत्यवान् में तो सचमुच यह दोष सारे गुणों का अतिक्रमण करके विद्यमान है ॥२४॥

यथा मे भगवानाह नारदो देवसत्कृतः ।
सम्वत्सरेण सोऽल्पायुर्देहन्यासं करिष्यति ॥२५॥

भगवान्, देवों से पूज्य, नारद ने अभी कहा है, कि सत्यवान् अल्पायु है और एक वर्ष के अनन्तर यह अपनी देह को छोड़ देगा ॥२५॥

सावित्र्युवाच---

सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥२६॥

सावित्री बोली—हे पिता ! बटवारा एक बार होता है । कन्या भी एक बार ही दी जाती है । किसी वस्तु के दान का वचन भी एक बार में ही बिल्कुल पक्का हो जाता है । ये तीनों बातें एक बार ही होती हैं ॥ २६ ॥

दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।
सकृद्वृतो मया भर्त्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

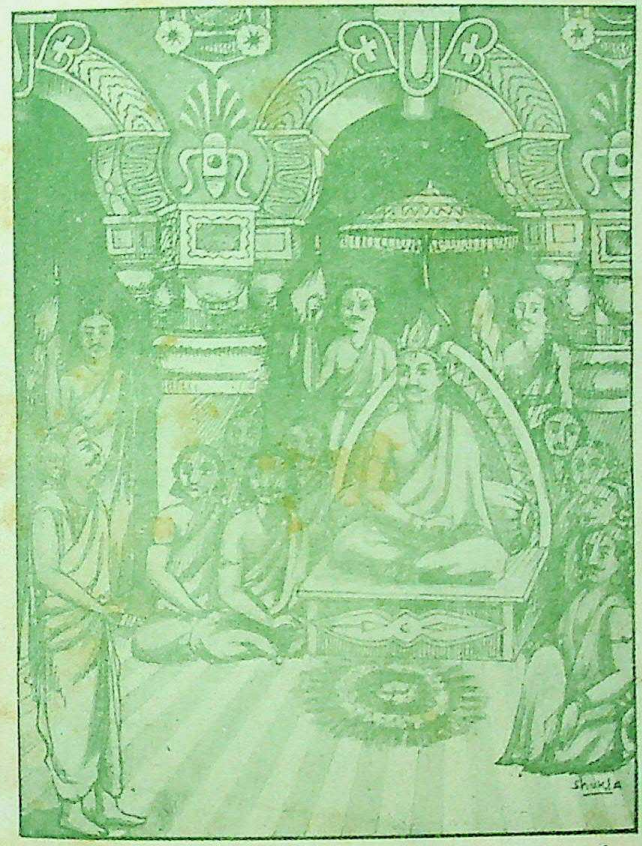

महाराज युधिष्ठिर का पासे लिये हुए महाराज विराट की राजसभा में प्रवेश करना और अपना नाम कङ्कशर्मा बताना।

महा० विराट पर्व अ० ७।११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारद उवाच---

यह सत्यवान दीर्घायु है वा अल्पायु है। निर्गुण है वा सगुण है— मैंने तो जो भर्ता बनाना था, वह एक बार ही बना लिया। अब मैं दूसरे भर्ता का वरण नहीं करूँगी ॥२७॥

मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते।
क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः ॥२८॥

जब मन से निश्चय कर लिया जाता है, तभी वाणी से कहा जाता है। इसके अनन्तर ही कर्म किया जाता है। इस भर्ता के वरण में मेरा मन ही प्रमाण है ॥२८॥

स्थिरा बुद्धिर्नरश्रेष्ठ सावित्र्या दुहितुस्तव।
नैषा वारयितुं शक्या धर्मादस्मात् कथञ्चन ॥२९॥

नारद बोले—हे नर-श्रेष्ठ! तुम्हारी पुत्री सावित्री की बड़ी ही स्थिर बुद्धि है। इसको इस निश्चय से कोई कभी नहीं हटा सकता है ॥२९॥

नान्यस्मिन् पुरुषे सन्ति ये सत्यवति वै गुणाः।
प्रदानमेव तस्मान्मे रोचते दुहितुस्तव ॥३०॥

इस सत्यवान् में जो गुण हैं, वे अन्य राज-पुत्र में तो मिलेंगे नहीं, इसलिए तुम्हारी पुत्री का प्रदान सत्यवान् को ही हो जाना चाहिए, यही मेरी भी सम्मति है ॥३०॥

राजोवाच--

आवचाल्यमेतदुक्तं तथ्यञ्च भवता वचः।
करिष्याम्येतदेवञ्च गुरुर्हि भगवान्मम ॥३१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा ने कहा—इस कन्या ने यह दृढ़ वचन कह दिया और उधर तुम्हारा वचन भी सत्य ही है, परन्तु मैं तो वही करूंगा, जो आप कहते हैं, क्योंकि आप हमारे पूज्य हैं ॥ ३१ ॥

नारद उवाच—

अविघ्नमस्तु सावित्र्याः प्रदाने दुहितुस्तव ।
साधयिष्याम्यहं तावत् सर्वेषां भद्रमस्तु वः ॥

नारदजी बोले—हे राजन्! तुम्हारी पुत्री के प्रदान में कोई विघ्न न हो। अब हम जाते हैं, तुम सबका कल्याण होवे ॥३२॥

मार्कण्डेय उवाच—

एवमुक्त्वा खमुत्पत्य नारदस्त्रिदिवं गतः ।
राजापि दुहितुः सज्जं वैवाहिकमकारयत् ॥३३॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि सावित्र्युद्वाहे नारदानुमतौ त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय बोले—हे भारत! नारदजी, तो इतना कहकर आकाश मार्ग से स्वर्ग को चले गए और राजा ने भी अपनी पुत्री के विवाह की बड़ी धूमधाम से तय्यारी की ॥३३॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत पतिव्रतामाहात्म्यपर्व में सावित्री के विवाह में नारदजी के अनुमोदन का दो सौ तिरानवेवां अध्याय पूरा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ चौरानवेवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच---

अथ कन्याप्रदाने स तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
समानिन्ये च तत्सर्वं भाण्डं वैवाहिकं नृपः ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे राजन् ! अपनी कन्या सावित्री के प्रदान में राजा को नारद की उसी बात का बड़ा ध्यान रहा । अब इसने विवाह में आवश्यक सारे सामान को इकट्ठा कर लिया ॥१॥

ततो वृद्धान् द्विजान् सर्वानृत्विजः सपुरोहितान् ।
समाहूय दिने पुण्ये प्रययौ सह कन्यया ॥२॥

राजा ने वृद्ध २ ब्राह्मण, सारे पुरोहित सहित ऋत्विक् बुला कर पुण्य दिवस में अपनी कन्या के साथ वन को गमन किया ॥२॥

मेध्यारण्यं स गत्वा च द्युमत्सेनाश्रमं नृपः ।
पद्भ्यामेव द्विजैः सार्द्धं राजर्षिन्तमुपागमत् ॥३॥

यह राजा अश्वपति, द्युमत्सेन के पवित्र आश्रम में पहुंचा और पैदल ही सारे ब्राह्मणों के साथ राजर्षि द्युमत्सेन के सम्मुख गया ॥३॥

तत्रापश्यन्महाभागं शालवृक्षमुपाश्रितम् ।
कौश्यां वृष्यां समासीनं चक्षुर्हीनं नृपं तदा ॥४॥

यहां इसने शाल वृक्ष के नीचे आश्रय लिए हुए, महाभाग द्युमत्सेन अन्धे राजा को रेशमी आसन पर बैठा हुआ देखा ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स राजा तस्य राजर्षेः कृत्वा पूजां यथार्हतः ।
वाचा सुनियतो भूत्वा चकारात्मनिवेदनम् ॥५॥

राजा अश्वपति ने इस राजर्षि द्युमत्सेन की विधि-पूर्वक पूजा की और फिर इसने बड़े नियम से युक्त होकर अपनी वाणी से ही अपना परिचय दिया ॥५॥

तस्यार्घ्यमासनञ्चैव गाञ्चावेद्य स धर्मवित् ।
किमागमनमित्येवं राजा राजानमब्रवीत् ॥६॥

इस धर्मात्मा द्युमत्सेन ने राजा अश्वपति को बड़ा उच्च आसन प्रदान करके मधुर वाणी से स्वागत किया। राजा ने राजा अश्वपति से कहा---कहिए ! आपका कैसे आगमन हुआ ॥६॥

तस्य सर्वमभिप्रायमितिकर्त्तव्यताञ्च ताम् ।
सत्यवन्तं समुद्दिश्य सर्वमेव न्यवेदयत् ॥७॥

राजा अश्वपति ने अपना सारा अभिप्राय और जो सत्यवान् का आगे चलकर सम्बन्ध करना था-वह सब कुछ, राजा द्युमत्सेन को कह सुनाया ॥७॥

अश्वपतिरुवाच—

सावित्री नाम राजर्षे कन्येयं मम शोभना ।
तां स्वधर्मेण धर्मज्ञ स्नुषार्थे त्वं गृहाण मे ॥८॥

अश्वपति बोला---हे राजर्षे ! मेरी गुणवती, यह सावित्री नामक कन्या है। हे धर्मात्मन् ! तुम धर्म-पूर्वक अपने पुत्र-वधू के लिए इसे स्वीकार कीजिए ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्युमत्सेन उवाच---

च्युताःस्म राज्याद्वनवासमाश्रिताश्चराम धर्मनियतास्तपस्विनः
कथं त्वनर्हा वनवासमाश्रमे निवत्स्यचते क्लेशमिमं सुता तव॥

द्युमत्सेन ने कहा---हे राजन ! हमारा राज्य नष्ट हो चुका और अब हम वन में निकल आए हैं। हम तो नियम-शील तपस्वी होकर धर्म का आचरण कर रहे हैं। यह तुम्हारी कन्या, वनवास के अयोग्य है, फिर इस आश्रम में इस क्लेश को कैसे सहन कर सकती है ॥९॥

अश्वपतिरुवाच---

सुखञ्च दुःखञ्च भवाभवात्मकं यदा विजानाति सुताहमेव च
न मद्विधे युज्यति वाक्यमीदृशं विनिश्चयेनाभिगतोऽस्मि तेनृप

अश्वपति ने कहा—हे नृप ! सुख दुःख तो कभी हो जाते हैं, कभी चले जाते हैं। यह बात मैं और मेरी पुत्री खूब अच्छी तरह जानते हैं। मुझ जैसे मनुष्य पर इन वाक्यों का कुछ प्रभाव नहीं है। मैं तो सब बातों का निश्चय करके ही तुम्हारे पास आया हूं ॥१०॥

आशां नार्हसि मे हन्तुं सौहृदात् प्रणतस्य च।
अभितश्चागतं प्रेम्णा प्रत्याख्यातुं न मार्हसि ॥११॥

मुझ प्रणाम करने वाले की आशा का तुम विच्छेद न करो। तुम मेरे तुम्हारे प्रेम का कुछ ध्यान करो। मैं तो तुम्हारे प्रेम की आशा से ही आया हूं। तुमको मुझे निषेध नहीं करना चाहिए ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुरूपो हि युक्तश्च त्वं ममाहं तवापि च ।
स्नुषां प्रतीच्छ मे कन्यां भार्य्यां सत्यवतः सतः॥१२॥

हे राजन्! तुम हमारे और हम तुम्हारे अनुरूप और योग्य ही हैं। अब तुम मेरी इस कन्या को महाभाग सत्यवान् की भार्या और अपनी पुत्रवधू बनाओ ॥१२॥

द्युमत्सेन उवाच···

पूर्वमेवाभिलषितः सम्बन्धो मे त्वया सह ।
भ्रष्टराज्यस्त्वहमिति तत एतद्विचारितम् ॥१३॥

द्युमत्सेन ने कहा—हे राजन्! मैंने तो राज्य करने के समय इस सम्बन्ध को विचारा था, परन्तु हम अब राज्यहीन हो गए, इससे इतना कहा है ॥१३॥

अभिप्रायस्त्वयं यो मे पूर्वमेवाभिकाङ्क्षितः ।
स निर्वर्त्ततु मेऽद्यैव काङ्क्षितो ह्यसि मेऽतिथिः॥१४॥

मुझे तो यह मनोरथ पूर्व में ही अभीष्ट था। अब तुम आज ही इसको पूरा करो। मैं तो आप अतिथि को बड़े स्वागत से स्वीकार कर रहा हूं ॥१४॥

ततः सर्वान् समानाय्य द्विजानाश्रमवासिनः ।
यथाविधि समुद्वाहं कारयामासतुर्नृपौ ॥१५॥

अब इन दोनों राजाओं ने सारे आश्रम-वासी ब्राह्मणों को बुलाकर इन दोनों सत्यवान् और सावित्री का विवाह-संस्कार करा दिया ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दत्वा चाश्वपतिः कन्यां यथार्हं च परिच्छदम् ।
ययौ स्वमेव भवनं युक्तः परमया मुदा ॥१६॥

राजा अश्वपति, कन्या और यथा-योग्य कन्या-दान के वस्त्र, आभूषण आदि परिच्छद प्रदान करके, बड़े आनन्द से अपने घर को लौट गया ॥१६॥

सत्यवानपि तां भार्य्यां लब्ध्वा सर्वगुणान्विताम् ।
मुमुदे सा च तं लब्ध्वा भर्त्तारं मनसेप्सितम् ॥१७॥

सत्यवान् भी सर्वगुण सम्पन्न, भार्या को और सावित्री भी अपने अभीष्ट पति को पाकर दोनों बड़े ही प्रसन्न हुए ॥१७॥

गते पितरि सर्वाणि सन्त्यस्याभरणानि सा ।
जगृहे वल्कलान्येव वस्त्रं काषायमेव च ॥१८॥

जब पिता चला गया, तो सावित्री ने सारे आभूषण उतार दिए और वल्कल तथा काषाय वस्त्र धारण कर लिए ॥१८॥

परिचारैर्गुणैश्चैव प्रश्रयेण दमेन च ।
सर्वकामक्रियाभिश्च सर्वेषां तुष्टिमादधे ॥१९॥

सेवा, गुण, विनय, मन के विजय और अन्य भी सारे मन के अनुकूल कार्य करने से सावित्री ने सबको सन्तुष्ट कर दिया ॥१९॥

श्वश्रूं शरीरसत्कारैः सर्वैराच्छादनादिभिः ।
श्वशुरं देवसत्कारैर्वाचः संयमनेन च ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्री ने सास को शरीर की सेवा और वस्त्रादि अर्पण, तथा श्वशुर को देवों के समान पूजा और वाणी के नियम से सन्तुष्ट किया ॥२०॥

तथैव प्रियवादेन नैपुण्येन शमेन च।
रहश्चैवोपचारेण भर्त्तारं पर्य्यतोषयत् ॥२१॥

इसने मधुर भाषण, चतुराई, शान्ति तथा एकान्त सेवा से भर्ता को भी बड़ा सन्तुष्ट कर लिया ॥२१॥

एवं तत्राश्रमे तेषां तदा निवसतां सताम्।
कालस्तपस्यतां कश्चिदपाक्रामत भारत ॥२२॥

हे भारत ! इस प्रकार उस आश्रम में निवास करके तप करते हुए, इस परिवार का कुछ काल सुख से व्यतीत हो गया ॥२२॥

सावित्र्या ग्लायमानायास्तिष्ठन्त्यास्तु दिवानिशम्।
नारदेन यदुक्तं तद्वाक्यं मनसि वर्त्तते ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि सावित्र्युद्वाहे चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२९४॥

सावित्री, दिन रात मुरझाई सी ही बनी रहती थी, क्योंकि उसके मन में नारद का वही वाक्य चक्कर लगा रहा था ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत पतिव्रतामाहात्म्यपर्व में सावित्री के विवाह का दो सौ चौरानवेवां अध्याय पूरा हुआ।

******

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सौ पिच्चानवेवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच :—

ततः काले बहुतिथे व्यतिक्रान्ते कदाचन ।
प्राप्तः स कालो मर्त्तव्यं यत्र सत्यवता नृप ॥१॥

मार्कण्डेय बोले--- हे नृप ! कुछ काल के व्यतीत हो जाने के अनन्तर वही काल आ गया- जिसमें सत्यवान् को मृत्यु के मुख में जाना था ॥ ॥

गणयन्त्याश्च सावित्र्या दिवसे दिवसे गते ।
यद्वाक्यं नारदेनोक्तं वर्त्तते हृदि नित्यशः ॥२॥

सावित्री तो इस एक वर्ष के समय को अङ्गलियों पर गिन २ कर व्यतीत कर रही थी । इसके दिन इसी तरह व्यतीत हुए । जो वाक्य नारद ने कह दिया, वह इसके हृदय में नित्य ही घूमता रहता था ॥२॥

चतुर्थेऽहनि मर्त्तव्यमिति सञ्चिन्त्य भाविनी ।
व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रं स्थिताभवत् ॥३॥

अब इस महाभागा सावित्री ने सोचा, कि मेरा पति चौथे दिन मरेगा, तो यह तीन रात का निराहार व्रत करके दिन रात बैठी ही रही ॥३॥

तं श्रुत्वा नियमं तस्या भृशं दुःखान्वितो नृपः ।
उत्थाय वाक्यं सावित्रीमब्रवीत् परिसान्त्वयन् ॥४॥

राजा द्युमत्सेन, सावित्री के इस प्रकार नियम को देखकर बड़ा क्लेशित हुआ । यह सावित्री को समझाता हुआ यह वचन बोला ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्युमत्सेन उवाच—

अतितीव्रोऽयमारम्भस्त्वयारब्धो नृपात्मजे ।
तिसृणां वसतीनां हि स्थानं परमदुश्चरम् ॥५॥

हे राजकुमारी ! तुमने तो यह बड़ा तीव्र तप करना आरम्भ कर दिया । तीन दिन रात तक बिना भोजन किए इस तरह बैठे रहना, बड़ा दुष्कर कार्य है ॥५॥

सावित्र्युवाच--

न कार्य्यस्तात सन्तापः पारयिष्याम्यहं व्रतम् ।
व्यवसायकृतं हीदं व्यवसायश्च कारणम् ॥६॥

सावित्री ने कहा–हे तात ! तुम चिन्ता न करो । मैं इस व्रत को पूरा कर लूंगी । मैंने तो यह उद्योग किया है, क्योंकि सारे कार्यों की सिद्धि का कारण उद्योग ही है ॥६॥

द्युमत्सेन उवाच—

व्रतं भिन्धीति वक्तुं त्वां नास्मि शक्तः कथञ्चन ।
पारयस्वेति वचनं युक्तमस्मद्विधो वदेत् ॥७॥

हे राजपुत्री ! तुम इस व्रत को खण्डित कर दो- यह तो हम लोग कह नहीं सकते हैं । हमको तो यही कहना उचित है, कि तुम इस व्रत को पूरा कर लो ॥७॥

मार्कण्डेय उवाच--

एवमुक्त्वा द्युमत्सेनो विरराम महामनाः ।
तिष्ठन्ती चैव सावित्री काष्ठभूतेव लक्ष्यते ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्कण्डेय बोले--इतना कह कर महा-मनस्वी, द्युमत्सेन चुप हो गया और सावित्री उसी तरह काष्ठ की तरह बैठी हुई सबको दिखाई देती रही ॥८॥

श्वोभूते भर्तृमरणे सावित्र्या भरतर्षभ ।
दुःखान्वितायास्तिष्ठन्त्याः सा रात्रिर्व्यत्यवर्त्तत ॥९

हे भरतर्षभ ! जब सावित्री को यह ध्यान हुआ, कि कल तेरा भर्ता मर जावेगा, तो इसकी यह रात बड़े ही दुःख से कटी।

अद्य तद्दिवसश्चेति हुत्वा दीप्तं हुताशनम् ।
युगमात्रोदिते सूर्ये कृत्वा पौर्वाह्निकीः क्रियाः ॥१०

आज इसने सारे दिन प्रदीप्त अग्निमें हवन किया। जब चार हाथ सूर्य चढ़ आया, तब तक इसने प्रातःकाल की क्रिया सन्ध्या बन्दनादि समाप्त कर लिए ॥१०॥

ततः सर्वान् द्विजान् वृद्धान् श्वश्रूं श्वशुरमेव च ।
अभिवाद्यानुपूर्व्येण प्राञ्जलिर्नियता स्थिता ॥११॥

इसने अपने पूर्व के नियम के अनुसार सारे वृद्ध, द्विज और सास ससुर को प्रणाम किया और यह नियम-पूर्वक हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई ॥११॥

अवैधव्याशिषस्ते तु सावित्र्यर्थं हिता शुभाः ।
ऊचुस्तपस्विनः सर्वे तपोवननिवासिनः ॥१२॥

अब सारे तपोवन के निवासी तपस्वियों ने सावित्री को सौभाग्यवती होने का हितकारी शुभ आशीर्वाद दिया ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमस्त्विति सावित्री ध्यानयोगपरायणा ।
मनसा ता गिरः सर्वाः प्रत्यगृह्णात्तपस्विनाम् ॥१३॥

सावित्री ने भी ध्यानयोग में लीन होकर, इन सारे तपस्वियों की वाणी को अपने मन में स्वीकार किया ॥१३॥

तं कालं तं मुहूर्त्तञ्च प्रतीक्षन्ती नृपात्मजा ।
यथोक्तं नारदवचश्चिन्तयन्ती सुदुःखिता ॥१४॥

राजपुत्री सावित्री तो नारद के वचन को सोच २ कर बड़ी दुःखित हुई । यह तो उसी समय की चिन्ता के साथ प्रतीक्षा कर रही थी ॥१४॥

ततस्तु श्वश्रूश्वशुरावूचतुस्तां नृपात्मजाम् ।
एकान्तमास्थितां वाक्यं प्रीत्या भरतसत्तम ॥१५॥

हे भरत-सत्तम ! इस समय एकान्त में बैठी हुई, राजकुमारी सावित्री से इसके सास और ससुर प्रेम के साथ ये वचन कहने लगे ॥१५॥

श्वशुरावूचतुः—

व्रतं यथोपदिष्टं तत्तथा तत् पारितं त्वया ।
आहारकालः संप्राप्तः क्रियतां यदनन्तरम् ॥१६॥

हे राजकुमारी ! सावित्री ! तुमने जितने दिन का व्रत बताया था, वह पूरा हो चुका । अब आहार का समय आ गया है । तुम भोजन करके व्रत की उत्तर विधि समाप्त करो ॥१६॥

सावित्र्युवाच—

अस्तं गते मयादित्ये भोक्तव्यं कृतकामया ।
एष मे हृदि सङ्कल्पः समयश्च कृतो मया ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्री बोली–हे महाभाग ! मैं सूर्य के अस्त हो जाने पर भोजन करूंगी, क्योंकि तब मैं कृत-कार्य हो जाऊंगी। मेरा हृदय का यही सकल्प है और मैंने यही समय निश्चित किया है ॥१७॥

मार्कण्डेय उवाच—

एवं सम्भाषमाणायाः सावित्र्या भोजनं प्रति ।
स्कन्धे परशुमादाय सत्यवान् प्रस्थितो वनम् ॥१८॥

मार्कण्डेय ने कहा–हे राजन् ! सास और ससुर ने तो सावित्री से भोजन को कहा और इसी समय कन्धे पर कुल्हाड़ी रखकर सत्यवान् वन में समिधा (लकड़ी) लेने को चल दिया ॥१८॥

सावित्री त्वाह भर्त्तारं नैकस्त्वं गन्तुमर्हसि ।
सह त्वया गमिष्यामि न हि त्वां हातुमुत्सहे ॥१९॥

अब सावित्री ने अपने भर्ता से कहा—कि तुम अकेले न जाओ। मैं तुम्हारे साथ ही चलूंगी। आज मैं तुमको अकेला नहीं छोड़ूंगी ॥१९॥

सत्यवानुवाच---

वनं न गतपूर्वं ते दुःखं पन्थाश्च भाविनि ।
व्रतोपवासक्षामा च कथं पद्भ्यां गमिष्यसि ॥२०॥

सत्यवान् बोला—हे भाविनी ! तुमने कभी वन देखा नहीं है और इस वन का मार्ग बड़ा ही विकट है। तुम व्रत और उपवास से कृश हो रही हो, पैदल कैसे चल सकोगी ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्र्युवाच—

उपवासान्न मे ग्लानिर्नास्ति चापि परिश्रमः ।
गमने च कृतोत्साहां प्रतिषेद्धुं न मार्हसि ॥२१॥

सावित्री ने कहा—हे आर्य-पुत्र ! मुझे उपवास से कोई क्लेश नहीं है और न कोई श्रम मालूम होता है। मैं तुम्हारे साथ चलना चाहती हूं, तुमको मुझे रोकना नहीं चाहिए ॥२१॥

सत्यवानुवाच—

यदि ते गमनोत्साहः करिष्यामि तव प्रियम् ।
मम त्वामन्त्रय गुरू न मां दोषः स्पृशेदयम् ॥२२॥

सत्यवान् बोला---यदि तुम्हारे वन में चलने का बड़ा ही उत्साह है, तो चलो-मैं तुम्हारी इच्छा पूरी किए देता हूं। तुम प्रथम माता पिता से पूछ लो। माता पिता के अतिक्रमण करने का दोष मुझे न लग जावे ॥२२॥

मार्कण्डेय उवाच—

साभिवाद्याब्रवीच्छ्वश्रूं श्वशुरञ्च महाव्रता ।
अयं गच्छति मे भर्त्ता फलाहारो महावनम् ॥२३॥
इच्छेयमभ्यनुज्ञाता आर्य्याया श्वशुरेण ह ।
अनेन सह निर्गन्तुं न मेऽद्य विरहः क्षमः ॥२४॥

मार्कण्डेय बोले—हे राजन् ! इस पतिव्रता सावित्री ने प्रणाम करके अपनी सास और ससुर से कहा। हे महानुभाव ! यह मेरा भर्ता फलाहार करके अब वन को जा रहा है---यदि आप सास और ससुर की आज्ञा हो,तो मैं इसके साथ चली जाऊं, न मालूम क्या बात है? आज मैं पति का विरह नहीं सह सकती हूं। २३-२४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुर्वग्निहोत्रार्थकृते प्रस्थितश्च सुतस्तव ।
न निवार्य्यो निवार्य्यः स्यादन्यथा प्रस्थितो वनम् २५

आपका पुत्र, अपने माता पिता के अग्निहोत्र की समिधा लेने जाता है, इससे इनको रोका भी नहीं जा सकता। यदि किसी अन्य कार्य के लिए वन में जाता तो रोक भी लिया जाता ॥२५॥

युवाभ्यां न निवार्य्याहं सह यास्याम्यहं वनम् ।
सम्वत्सरः किञ्चिदूनो न निष्क्रान्ताहमाश्रमात् ।
वनं कुसुमितं द्रष्टुं पर कौतूहलं हि मे ॥२६॥

मैं भी आज इनके साथ वन में जाना चाहती हूं, तुम मुझे भी न रोको। मुझे सवत्सर के लगभग हो गया, कभी आश्रम से बाहर ही नहीं गई हूं। मुझे इस खिले हुए वन के देखने की बड़ी इच्छा है ॥२६॥

द्युमत्सेन उवाच—

यतः प्रभृति सावित्री पित्रा दत्ता स्नुषा मम ।
नानयाभ्यर्थनायुक्तमुक्तपूर्वं स्मराम्यहम् ॥२७॥
तदेषा लभतां कामं यथाभिलषितं वधूः ।
अप्रमादश्च कर्त्तव्यः पुत्रि सत्यवतः पथि ॥२८॥

द्युमत्सेन ने सोचा—जब से इस सावित्री को इसके पिता ने मेरी पुत्रवधू बनाकर प्रदान की है, तब से इसने कुछ भी प्रार्थना नहीं की और इसने पूर्व में कोई अयोग्य बात ही कभी कही हो-ऐसा मुझे स्मरण नहीं होता है। अब इस वधू की जो इच्छा है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उसी कामना को प्राप्त करे। हे पुत्रि ! तुम जाओ, परन्तु सत्यवान् के साथ मार्ग में सावधानी से जाना ॥२७-२८॥

मार्कण्डेय उवाच--

उभाभ्यामभ्यनुज्ञाता सा जगाम यशस्विनी।
सह भर्त्रा हसन्तीह हृदयेन विदूयता ॥२९॥

मार्कण्डेय ने कहा— हे राजन् ! यह यशस्विनी सावित्री अपने सास ससुर दोनों से आज्ञा लेकर हंसती हुई चल दी, परन्तु इसका हृदय भीतर से घबड़ा रहा था ॥२९॥

सा वनानि विचित्राणि रमणीयानि सर्वशः।
मयूरगणजुष्टानि ददर्श विपुलेक्षणा ॥३०॥

इस विपुल नेत्रवाली ने रमणीक मयूरों के गणों से सुशोभित, विचित्र वन को देखा ॥३०॥

नदीः पुण्यवहाश्चैव पुष्पितांश्च नगोत्तमान्।
सत्यवानाह पश्येति सावित्रीं मधुरं वचः ॥३१॥

पुण्य जल के बहाने वाली नदी और फूलों से भरे हुए पर्वतों की ओर संकेत करके सत्यवान् ने सावित्री से मधुर वचन कहा-- कि देखो कैसा सुन्दर दृश्य है ॥३१॥

निरीक्षमाणा भर्त्तारं सर्वावस्थमनिन्दिता।
मृतमेव हि भर्त्तारं काले मुनिवचः स्मरन् ॥३२॥

यह अनिन्दिता सावित्री तो प्रतिक्षण अपने भर्ता को ही देख रही थी। यह तो नारद मुनि के वचनों को याद करके, अपने पति को इस समय पर मरा हुआ ही समझ रही थी ॥३२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुव्रजन्ती भर्त्तारं जगाम मृदुगामिनी ।
द्विधेव हृदयं कृत्वा तञ्च कालमवेक्षती ॥३३॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि सावित्र्या वनगमने पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥

धीरे २ चलने वाली यह सावित्री, अपने भर्ता के पीछे २ जा रही थी और उस काल की प्रतीक्षा में इसका हृदय फटा जा रहा था ॥३३॥

इति श्री महाभारत वनपर्वान्तर्गत पतिव्रतामाहात्म्यपर्व में सावित्री के वन गमन का दो सौ पिच्चानवेवां अध्याय पूरा हुआ ।

दो सौ छियानवेवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच :—

अथ भार्य्यासहायः स फलान्यादाय वीर्य्यवान् ।
कठिनं पूरयामास ततः काष्ठान्यपातयत् ॥१॥

मार्कण्डेय बोले--- हे पृथिवी-पते ! इस महा-पराक्रमी सत्यवान् ने अपनी भार्या के साथ फल तोड़ कर टोकरी भर ली और फिर काट २ कर काष्ठ की ढ़ेरी लगा दी ॥१॥

तस्य पातयतः काष्ठं स्वेदो वै समजायत ।
व्यायामेन च तेनास्य जज्ञे शिरसि वेदना ।
सोऽभिगम्य प्रियां भार्य्यामुवाच श्रमपीड़ितः ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काष्ठ काटर कर गिरातेर सत्यवान् का पसीना गिराने लगा और परिश्रम से उसके शिर में वेदना खड़ी हो गई। श्रम से पीड़ित सत्यवान् ने अपनी प्रिय भार्या के पास जाकर कहा ॥२॥

सत्यवानुवाच :—

व्यायामेन ममानेन जाता शिरसि वेदना।
अङ्गानि चैव सावित्रि हृदयं दूयतीव च।
अस्वस्थमिव चात्मानं लक्षये मितभाषिणि ॥३॥

हे प्रिये ! इस परिश्रम से मेरे शिर में वेदना खड़ी हो गई है। मेरे अङ्गों में पीड़ा हो रही है और हृदय फटा जा रहा है। हे अल्प-भाषण-करनेवाली ! सावित्री ! मैं तो इस समय अपने को अस्वस्थ (बीमार) देख रहा हूं ॥३॥

शूलैरिव शिरो विद्धमिदं संलक्षयाम्यहम्।
तत् स्वप्तुमिच्छे कल्याणि न स्थातुं शक्तिरस्ति मे ॥४

हे कल्याणि ! मेरा शिर, शूल से बींध दिया गया हो, मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है। अब मैं सोना चाहता हूं - मुझमें खड़े रहने की शक्ति नहीं है ॥४॥

सा समासाद्य सावित्री भर्त्तारमुपगम्य च।
उत्सङ्गेऽस्य शिरः कृत्वा निषसाद महीतले ॥५॥

सावित्री ने अपने पति सत्यवान् के पास पहुंच कर उसको थाम लिया और यह उसके शिर को गोदी में रख कर भूमि में बैठ गई ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः सा नारदवचो विमृशन्ती तपस्विनी ।
तं मुहूर्त्तं क्षणं वेलां दिवसञ्च युयोज ह ॥६॥

सावित्री को इस समय नारद का वचन याद आया। इसने इस समय को नारद के बताए हुए मुहूत, क्षण, घड़ी, दिन से युक्त देखा ॥६॥

मुहूर्त्तादेव चापश्यत् पुरुषं रक्तवाससम् ।
बद्धमौलिं वपुष्मन्तमादित्यसमतेजसम् ॥७॥

थोड़ी ही देर में सावित्री ने लाल वस्त्र पहने हुए, मुकुट-धारी, सूर्य के सदृश तेजस्वी, सुन्दर शरीर धारी, एक पुरुष देखा ॥७॥

श्यामावदातं रक्ताक्षं पाशहस्तं भयावहम् ।
स्थितं सत्यवतः पार्श्वे निरीक्षन्तं तमेव च ॥८॥

यह पुरुष, काला, चमकदार, लाल आंखों वाला, पाश हाथ में लिए हुए, बड़ा भयानक था। यह आकर सत्यवान् के पास खड़ा हो गया और उसको देखने लगा ॥८॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय भर्त्तुर्न्यस्य शनैः शिरः ।
कृताञ्जलिरुवाचार्त्ता हृदयेन प्रवेपती ॥९॥

इस पुरुष को देखकर सावित्री अचानक उठी। इसने अपने पति का शिर धीरे से भूमि पर रख दिया। यह दुःखातुर, सावित्री हाथ जोड़कर उस पुरुष से बोली। इस समय इसका हृदय धक धक कर रहा था ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्र्युवाच :—

दैवतं त्वाभिजानामि वपुरेतद्ध्यमानुषम् ।
कामया ब्रूहि देवेश कस्त्वं किञ्च चिकीर्षसि ॥१०॥

सावित्री ने कहा-- हे पुरुष ! मैंने जान लिया है, कि तुम कोई देवता हो, क्योंकि ऐसा शरीर मनुष्य के नहीं हो सकता है । हे देव ! तुम अपनी कामना को बताओ । तुम कौन हो और क्या करना चाहते हो ? ॥१०॥

यम उवाच:—

पतिव्रतासि सावित्रि तथैव च तपोऽन्विता ।
अतस्त्वामभिभाषामि विद्धि मां त्वं शुभे यमम् ॥११

यमराज बोले-हे सावित्री ! तुम बड़ी पतिव्रता और तपस्विनी हो, इसलिए मैं तुमसे बातें कर लेता हूं । हे शुभानने ! मैं यमराज हूं ॥११॥

अयं ते सत्यवान् भर्त्ता क्षीणायुः पार्थिवात्मजः ।
नेष्यामि तमहं बद्ध्वा विद्ध्येतन्मे चिकीर्षितम् ॥

यह तेरा सत्यवान् पति है, इस राजकुमार की आयु समाप्त हो चुकी । अब मैं इसको बांध कर ले जाता हूं । बस ? यही मैं करना चाहता हूं ॥१२॥

सावित्र्युवाच:—

श्रूयते भगवन् दूतास्तवागच्छन्ति मानवान् ।
नेतुं किल भवान् कस्मादागतोऽसि स्वयं प्रभो ॥१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्री ने कहा--- हे भगवन् ! सुना जाता है कि मनुष्यों को लेने के लिए तो तेरे दूत आते हैं। आज तुम मेरे पति को लेने के लिए स्वयं कैसे पधारे हो ॥१३॥

मार्कण्डेय उवाच:---

इत्युक्तः पितृराजस्तां भगवान् स्वचिकीर्षितम् ।
यथावत् सर्वमाख्यातुं तत्प्रियार्थं प्रचक्रमे ॥१४॥

सावित्री के इतना कहने पर भगवान् यम अपने कर्तव्य को ठीक २ बताने लगा--जो सावित्री को बड़ा ही प्रिय था ॥१४॥

अयञ्च धर्मसंयुक्तो रूपवान् गुणसागरः ।
नार्हो मत्पुरुषैर्नेतुमतोऽस्मि स्वयमागतः ॥१५॥

यह सत्यवान्, बड़ा धर्मात्मा, रूपवान् और गुण का समुद्र था। इसका दूतों द्वारा बुलाना ठीक नहीं था, इससे मैं स्वयं आया हूं ॥१५॥

ततः सत्यवतः कायात् पाशबद्धं वशङ्गतम् ।
अंगुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात् ॥१६॥

अब इस यम ने सत्यवान् के शरीर से पाश में बँधा हुआ, परवश, अंगुष्ठमात्र सूक्ष्म शरीर-धारी जीवात्मा को बल से बाहर खैंच लिया ॥१६॥

ततः समुद्धृतप्राणं गतश्वासं हतप्रभम् ।
निर्विचेष्टं शरीरं तद्बभूवाप्रियदर्शनम् ॥१७॥

अब प्राणहीन, श्वास-रहित, कान्तिहीन, चेष्टा-रहित, सत्यवान् का शरीर अप्रिय दिखाई देने लगा ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमस्तु तं ततो बद्ध्वा प्रयातो दक्षिणामुखः ।
सावित्री चैव दुःखार्त्ता यममेवान्वगच्छत ।
नियमव्रतसंसिद्धा महाभागा पतिव्रता ॥१८॥

यमराज, उस जीवात्मा को बांधकर दक्षिण दिशा को चल दिया। दुःखी सावित्री भी यमराज के पीछे २ ही चल दी। यह महाभागा, पतिव्रता सावित्री भी अपने नियम और व्रतों से सिद्धि वाली थी ॥१८॥

यम उवाचः—

निवर्त्त गच्छ सावित्रि कुरुष्वास्यौद्ध्र्वदेहिकम् ।
कृतं भर्त्तुस्त्वयानृण्यं यावद्गम्यं गतं त्वया ॥१९॥

हे सावित्री ! तू लौट जा और इसकी परलोक में हितकारिणी क्रिया कर। तुम अपने भर्ता से उऋण हो चुकी। जितनी दूर तुमको आना चाहिए था, उतनी दूर तुम आ चुकी ॥१९॥

सावित्र्युवाचः—

यत्र मे नियतं भर्त्ता स्वयं वा यत्र गच्छति ।
मया च तत्र गन्तव्यमेष धर्मः सनातनः ॥२०॥

हे यमराज ! जहां मेरा भर्ता रहे या जहां पर जावे, मुझे वहीं जाना चाहिए। बस ? यही सनातन धर्म है ॥२०॥

तपसा गुरुभक्त्या च भर्त्तुः स्नेहाद्व्रतेन च ।
तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तप, सास श्वशुर की भक्ति, पति के स्नेह और व्रत तथा आपकी कृपा से मेरी गति कहीं भी नहीं रुकती है ॥२१॥

प्राहुः साप्तपदं मैत्रं बुधास्तत्त्वार्थदर्शिनः ।
मित्रताञ्च पुरस्कृत्य किञ्चिद्वक्ष्यामि तच्छृणु ॥२२॥

तत्वदर्शी, विद्वान, सात पद साथ गमन करने वालों की भी मित्रता हो जाती है--ऐसा कहते हैं—इससे मैं इसी मित्रता को आगे करके कुछ कहती हूं—तुम ध्यान से सुनो ॥२२॥

नानात्मवन्तस्तु वने चरन्ति धर्मञ्च वासञ्च प्रतिश्रयञ्च ।
विज्ञानतो धर्ममुदाहरन्ति तस्मात् सन्तो धर्ममाहुः प्रधानम्

आत्मबल से हीन, पुरुष, वन में धर्म, निवास और सभा आदि कुछ भी नहीं करते हैं। ये ही वनवासी मुनि, धर्म को विज्ञान-युक्त कहते हैं, इससे इन महात्माओं ने धर्म को ही प्रधान माना है ॥२३॥

एकस्य धर्मेण सतां मतेन सर्वे स्म तं मार्गमनुप्रपन्नाः । मा वै द्वितीयं मा तृतीयञ्च वाञ्छेत्तस्मात् सन्तो धर्ममाहुः प्रधानम् ॥२४॥

विद्वानों के माने हुए, एक धर्म में ही अन्य सारे अच्छे मार्गों का समावेश हो जाता है। इस धर्म के सिवा दूसरे तीसरे किसी भी मार्ग की इच्छा न करे। यही कारण है, कि विद्वानों ने धर्म को श्रेष्ठ कहा है ॥२४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यम उवाच:—

निवर्त्त तुष्टोऽस्मि तवानया गिरा स्वराक्षरव्यञ्जनहेतुयुक्तया
वरं वृणीष्वेह विनास्य जीवितं ददानि तेसर्वमनिन्दिते वरम्

यम ने कहा---हे सावित्री ! अब तुम लौट जाओ मैं तुम्हारी स्पष्ट स्वर उदात्तादि, स्वर,आकारादि अक्षर, व्यञ्जन और हेतुओं से युक्त वाणी से बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ हूं । हे अनिन्दिते ! अब तू कोई वर मांग सकती है, परन्तु इसके जीवन को नहीं मांग सकती । जो तू मांगेगी, मैं वही तुझे प्रदान करूंगा ॥२५॥

सावित्र्युवाच:—

च्युतःसराज्याद्वनवासमाश्रितोविनष्टचक्षुःश्वशुरोममाश्रमे ।
सलब्धचक्षुर्बलवान्भवेन्नृपस्तवप्रसादाज्ज्वलनार्कसन्निभः॥

सावित्री ने कहा---राज्य से रहित और अन्धा होकर मेरा श्वशुर वन में आश्रम बनाकर निवास करता है, यह राजा आपकी कृपा से आंख वाला, चमकते सूर्य के सदृश, तेजस्वी होकर बलवान् बन जावे ॥२६॥

यम उवाच:—

ददानितेऽहं तमनिन्दितेवरंयथात्वयोक्तंभविताचतत्तथा ।
तवाध्वनाग्लानिमिवोपलक्षयेनिवर्त्तगच्छस्वनतेश्रमोभवेत् ॥

यम ने कहा---हे अनिन्दिते ! मैं तुमको यही वर प्रदान करता हूं, जो तुमने मांगा है, वही होगा। अब मैं तुम्हारे शरीर में मार्ग के चलने से उत्पन्न हुए क्लेश को देख रहा हूं, तुम वापिस लौट जाओ, जिससे तुमको अधिक परिश्रम न हो ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्र्युवाच:—

श्रमःकुतोभर्तृसमीपतोहिमेयतोहिभर्त्तामसागतिर्ध्रुवा ।
यतःपतिर्नेष्यसितत्रमेगतिःसुरेशभूयश्चवचोनिबोधमे ॥२८

सावित्री बोली---हे देव-श्रेष्ठ ! अपने भर्ता के पास रहने में मुझे क्या कोई श्रम हो सकता है ? जिस मार्ग से मेरा यह पति जावेगा, मैं भी निश्चय उधर ही जाऊंगी । तुम जहां मेरे पति को ले जा रहे हो,मेरा भी वही जाने का स्थान है । अब तुम मेरा एक वचन और सुनो ॥२८॥

सतां सकृत् सङ्गतमीप्सितं परं ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते
न चाफलं सत्पुरुषेण सङ्गतं ततः सतां सन्निवसेत् समागमे

सज्जनों का एक बार मिल जाना भी बड़ा ही प्रिय है । उसके आगे तो वे परस्पर मित्र बन जाते हैं । सत्पुरुष के साथ सङ्गति होना निष्फल नहीं जाता, इसीलिए उत्तम पुरुष को सज्जनों के समागम में रहना उचित है ॥२९॥

यम उवाच:—

मनोऽनुकूलं बुधबुद्धिवर्द्धनं त्वया यदुक्तं वचनं हिताश्रयम्
विनापुनःसत्यवतोऽस्यजीवितंवरंद्वितीयंवरयस्वभाविनि ॥

यम ने कहा---हे भाविनी ! तुमने मन के अनुकूल बुद्धिमानों की भी बुद्धि का बढ़ाने वाला, हितकारी वचन कहा है । अब तुम सत्यवान् के जीवन को न मांग कर, दूसरा वर मांग सकती हो ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्र्युवाच:—

हृतंपुरामेश्वशुरस्यधीमतःस्वमेवराज्यंलभतांसपार्थिवः।
जह्यात्स्वधर्मान्नचमेगुरुर्यथाद्वितीयमेतद्वरयामितेवरम् ३१

मेरे बुद्धिमान् श्वशुर का राज्य छीना गया है। यह अपने राज्य को दृढ़ता से प्राप्त कर ले। यह मेरा पूज्य श्वशुर कभी अपने धर्म को न छोड़े। बस ? मैं यही दूसरा वर मांगती हूं ॥३१॥

यम उवाच:—

स्वमेवराज्यंप्रतिपत्स्यतेऽचिरान्नचस्वधर्मात्परिहास्यतेनृपः
कृतेनकामेनमयानृपात्मजेनिवर्त्तगच्छस्वनतेश्रमोभवेत् ३२

यम ने कहा-हे सावित्रि ! तुम्हारा श्वशुर राजा द्युमत्सेन अति शीघ्र अपने राज्य को पा लेगा और यह अपने धर्म से कभी च्युत नहीं होगा। हे राजपुत्रि ! मैंने तुम्हारी कामना पूरी कर दी है। अब तुम लौट जाओ, तुमको अधिक श्रम नहीं करना चाहिए ॥३२॥

सावित्र्युवाच:—

प्रजास्त्वयैतानिममेनसंयतानियम्यचैतानयसेनिकामया।
ततो यमत्वं तव देव विश्रुतं निबोध चेमां गिरमीरितां मया

सावित्री ने कहा—हे यमराज ! आपने इस प्रजा को नियम में बांध रखा है और नियम में रखकर ही अपनी इच्छानुसार चलाते रहते हो। हे देव ! इससे तुम्हारा यम नाम प्रसिद्ध है। तुम मेरी कही हुई, इस वाणी को ध्यान से सुनो ॥३३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानञ्च सतां धर्मः सनातनः ॥३४॥

हे महात्मन ! सब प्राणियों से द्वेष न करना, उन पर दया करना और उनको यथाशक्ति कुछ दान देना ही सज्जनों का सनातन धर्म है ॥३४॥

एवम्प्रायश्च लोकोऽयं मनुष्या भक्तिपेशलाः ।
सन्तस्ते चाप्यमित्रेषु दयां प्राप्तेषु कुर्वते ॥३५॥

यह लोक इसी तरह चलता रहेगा । इस में भक्ति परायण सज्जन, समय प्राप्त होने पर शत्रुओं पर भी दया करेंगे ॥३५॥

यम उवाच—

पिपासितस्येवभवेद्यथापयस्तथात्वयावाक्यमिदंसमीरितम्
विनापुनःसत्यवतोऽस्यजीवितंवरंवृणीष्वेहशुभेयदिच्छसि ॥

यम ने कहा-हे शुभे ! प्यासे मनुष्य को पानी की तरह तू ने यह वाक्य कहा है । अब तुम फिर, सत्यवान के जीवन को छोड़कर--जो चाहो सो वर मांग लो ॥३६॥

सावित्र्युवाच—

ममानपत्यःपृथिवीपतिःपिताभवेत्पितुःपुत्रशतंतथौरसम् ।
कुलस्य सन्तानकरश्च यद्भवेत्तृतीयमेतद्वरयामि ते वरम् ॥

सावित्री बोली---मेरा पिता राजा अश्वपति, सन्तान रहित है । मेरे पिता के एक सौ औरस पुत्र उत्पन्न हो जावे । इसके पुत्र भी कुल और सन्तान की वृद्धि करने वाले हों--यह तीसरा वर चाहती हूं ॥३७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यम उवाच--

कुलस्य सन्तानकरं सुवर्चसं शतं सुतानां पितुरस्तु ते शुभे
कृतेन कामेन नराधिपात्मजे निवर्त्त दूरं हि पथस्त्वमागता

यमराज बोले--हे शुभानने ! तेरे पिता के कुल की वृद्धि करने वाले, अत्यन्त वर्चस्वी सौ पुत्र उत्पन्न हो जावेंगे। हे राजपुत्रि ! अब तेरी कामना पूरी हो चुकी। तू लौट जा, क्योंकि बहुत दूर आ चुकी है ॥३८॥

सावित्र्युवाच —

न दूरमेतन्मम भर्तृसन्निधौ मनो हि मे दूरतरं प्रधावति।
अथ व्रजन्नेव गिरं समुद्यतां मयोच्यमानां शृणु भूय एव च

सावित्री ने कहा-हे धर्मराज ! भर्ता के पास में यह मार्ग कुछ भी दूर नहीं है। मेरा मन तो बड़ी दूर तक दौड़ लगा रहा है। अब तुम चलते २ मेरी कही हुई, एक और सार्थक वाणी को जरा सुनो ॥३९॥

विवस्वतस्त्वं तनयः प्रतापवांस्ततो हि वैवस्वत उच्यसे बुधैः
समेन धर्मेण चरन्ति ताः प्रजास्ततस्तवेहेश्वर धर्मराजता
आत्मन्यपि न विश्वासस्तथा भवति सत्सु यः।
तस्मात् सत्सु विशेषेण सर्वः प्रणयमिच्छति ॥४१॥

तुम विवस्वान् (सूर्य) के प्रतापी पुत्र हो। इसी से विद्वानों ने तुमको वैवस्वत कहा है। हे शक्तिशालिन् ! तुम इस प्रजा पर समान धर्म से (न्यायानुसार) आचरण करते हो इसी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी धर्मराजता सफल है। मनुष्यों को अपने ऊपर इतना भरोसा नहीं होता है, जितना उनका सज्जनों पर विश्वास है। इसी से सज्जनों से सब ही लोग विशेष रीति से प्रेम करते हैं ॥४०-४१॥

सौहृदात् सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते।
तस्मात् सत्सु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः ॥४२॥

जब किसी से किसी का मित्रपन या प्रेम हो जाता है, तो उन सारे प्राणियों को एक दूसरे पर विश्वास हो जाता है। यही कारण है, कि लोग सज्जनों पर अधिक विश्वास करते हैं ॥४२॥

यम उवाच—

उदाहृतं ते वचनं यदङ्गने शुभे न तादृक् त्वदृते श्रुतं मया।
अनेन तुष्टोऽस्मि विनास्य जीवितं वरं चतुर्थं वरयस्व गच्छ च

यम ने कहा---हे अङ्गने ! जो तुम ने वचन कहा है, वह मैंने तो कभी तुम्हारे सिवा कहीं सुना नहीं। मैं इस वाक्य से भी बड़ा सन्तुष्ट हुआ हूं, तुम अपने पति के जीवित होने को छोड़ कर चौथा वर मांग कर जा सकती हो ॥४३॥

सावित्र्युवाच—

ममात्मजं सत्यवतस्तथौरसं भवेदुभाभ्यामिह यत् कुलोद्वहम्
शतं सुतानां बलवीर्य्यशालिनामिदं चतुर्थं वरयामि ते वरम्

सावित्री बोली--- सत्यवान् के वीर्य से मेरे सौ पुत्र उत्पन्न होवें, जो हम दोनों के वंश के प्रवर्तक हों। ये पुत्र, बल, वीर्य-शाली और पराक्रमी हो--मैं यही चौथा वर मांगती हूं ॥४४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यम उवाच—

शतं सुतानां बलवीर्य्यशालिनां भविष्यति प्रीतिकरं तवाबले
परिश्रमस्ते न भवेन्नृपात्मजे निवर्त्त दूरं हि पथस्त्वमागता ॥

यम ने कहा--- हे अबले ! तेरे आनन्द देने वाला, सौ पुत्रों के समान बल-विक्रम-शाली पुत्र हो जावेगा। हे नृपात्मजे ! अब तू अधिक परिश्रम न कर। लौट जा, मार्ग में बहुत दूर निकल आई है ॥४५॥

सावित्र्युवाच—

सतां सदा शाश्वत धर्मवृत्तिः सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति
सतां सद्भिर्नाफलःसङ्गमोऽस्तिसद्भ्योभयंनानुवर्त्तन्तिसन्तः

सावित्री बोली--- सज्जन, सदा धर्म में अपनी मनोवृत्ति को प्रवृत्त किये रहते हैं और वे कभी चिन्ता और शोक से व्याकुल नहीं होते हैं एवं सज्जनों के साथ सज्जनों का सङ्गम भी कभी निष्फल नहीं जाता और सज्जनों को साधु पुरुषों से कभी कोई भय नहीं रहता है ॥४६॥

सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्य्यं सन्तो भूमिं तपसा धारयन्ति
सन्तो गतिर्भूतभव्यस्य राजन् सता मध्येनावसीदन्ति सन्तः

साधु पुरुष ही सत्य के बल से सूर्य को प्रकाशित करते हैं और वही तप से सारी भूमि को धारण करते हैं। हे राजन् ! भूत और भविष्यत् की सज्जन ही गति हैं और सज्जनों के मध्य में सज्जन कभी क्लेश नहीं उठा सकते हैं ॥४७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य्यजुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम् ।
सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ति परस्परम् ॥४८॥

यह सनातन आचरण, आर्य पुरुषों से व्यवहार में लाया गया है। यह जान कर ही सज्जन परोपकार में परायण हो जाते हैं और वे एक दूसरे के मुख की ओर नहीं देखते ॥४८॥

नचप्रसादःसत्पुरुषेषुमोघोनचाप्यर्थोनश्यतिनापिमानः ।
यस्मादेतन्नियतंसत्सुन्नित्यं तस्मात्सन्तोरक्षितारोभवन्ति ॥

सत्पुरुषों पर किया हुआ अनुग्रह निरर्थक नहीं हो सकता है। इसमें न तो किसी के स्वार्थ की हानि है और न कोई मान का भङ्ग हैं। ये सब बातें सज्जनों में निश्चित हैं, इसी से सज्जन सबके रक्षक होते हैं ॥४९॥

यम उवाच—

यथायथाभाषसिधर्मसहितं मनोऽनुकूलंसुपदंमहार्थवत् ।
तथातथामेत्वयिभक्तिरुत्तमावरं वृणीष्वाप्रतिमंपतिव्रते ॥

यम ने कहा---हे पतिव्रते ! तू जैसे २ धर्म सहित, मन के अनुकूल सुन्दर पद और महान् अर्थ वाले वचन को कहती है, वैसे ही मेरी तुझ में बहुत अधिक भक्ति होती जाती है। अब तुम अपनी इच्छानुसार वर मांग सकती हो ॥५०॥

सावित्र्युवाच—

न तेऽपवर्गः सुकृताद्विनाकृतस्तथा यथान्येषु वरेषु मानद
वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं यथा मृता ह्येवमहं पतिं विना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्री बोली---हे मान्यवर ! तेरा वरदान देना विना पुण्यके नहीं हो सकता है। इसी तरह अन्य वरों में पुण्य ही कारण है। अब मैं यही वर मांगती हूं, कि यह सत्यवान् जीवित हो जावे, जिस पति के विना मैं मृतक सी हो रही हूं ॥५१॥

नकामयेभर्तृविनाकृतासुखंनकामयेभर्तृविनाकृतादिवम् ।
नकामयेभर्तृविनाकृताश्रियंनभर्तृहीनाव्यवसामिजीवितम्

मैं भर्ता के विना सुख और स्वर्ग भी नहीं चाहती हूं और न पति के विना मुझे कोई भी ऐश्वर्य अच्छा लगता है। मैं तो भर्ता से हीन होकर जीना भी नहीं चाहती ॥५२॥

वरातिसर्गः शतपुत्रता मम त्वयैव दत्तो ह्रियते च मे पतिः
वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं तवैव सत्यं वचनं भविष्यति ॥

हे यमराज ! तुमने तो मुझे सौ पुत्र देने का वरदान दे दिया है और फिर भी मेरे पतिको छीने ले जा रहे हो। अब यही वर मांगती हूं, कि यह सत्यवान् जीवित हो जावे, जिससे तुम्हारा वचन सत्य होवे ॥५३॥

मार्कण्डेय उवाच—

तथेत्युक्त्वा तु तं पाशं मुक्त्वा वैवस्वतो यमः ।
धर्मराजः प्रहृष्टात्मा सावित्रीमिदमब्रवीत् ॥५४॥

मार्कण्डेय बोले--हे राजन् ! अच्छी बात है, हम सत्यवान् को छोड़े देते हैं, इतना कहकर विवस्वान् के पुत्र यम ने सत्यवान् की फांसी खोलकर बड़ी प्रसन्नता- पूर्वक सावित्री से यह वचन कहा ॥५४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एष भद्रे मया मुक्तो भर्त्ता ते कुलनन्दिनि ।
अरोगस्तव नेयश्च सिद्धार्थः स भविष्यति ॥५५॥

हे कुलनन्दिनि ! मैंने तुम्हारे भर्ता को छोड़ दिया है। हे भद्रे ! यह निरोग है, तुम इसको ले जा सकती हो। अब इसके सारे कार्य सिद्ध होते रहेंगे॥५५॥

चतुर्वर्षशतायुश्च त्वया सार्द्धमवाप्स्यति ।
इष्ट्वा यज्ञैश्च धर्मेण ख्यातिं लोके गमिष्यति ॥५६।

यह सत्यवान्, तेरे साथ चार सौ वर्ष की आयु प्राप्त करेगा और धर्म-पूर्वक यज्ञ करके संसार में प्रशंसा पावेगा ॥५६॥

त्वयि पुत्रशतञ्चैव सत्यवान् जनयिष्यति ।
ते चापि सर्वे राजानः क्षत्रियाः पुत्रपौत्रिणः ॥५७॥
ख्यातास्त्वन्नामधेयाश्च भविष्यन्तीह शाश्वताः ।

हे भद्रे ! तुमसे सत्यवान् द्वारा सौ पुत्र होंगे, जो सारे क्षत्रिय--श्रेष्ठ राजा होंगे और उनके अनेक पुत्र पौत्र उत्पन्न होते रहेंगे। ये सदा सावित्र इस तेरे नाम से ही विख्यात होंगे ॥५७॥

पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि ॥५८॥
मालव्याँ मालवा नाम शाश्वताः पुत्रपौत्रिणः ।
भ्रातरस्ते भविष्यन्ति क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः ॥५९॥

तेरे पिता के भी तेरी माता मालवी से सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, जो मालव कहावेंगे। उनके भी सदा पुत्र पौत्र उत्पन्न होते रहेंगे, ये तेरे भाई क्षत्रिय-श्रेष्ठ और देवों के सदृश होंगे॥५८-५९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं तस्यै वरं दत्त्वा धर्मराजः प्रतापवान् ।
निवर्त्तयित्वा सावित्रीं स्वमेव भवनं ययौ ॥६०॥

इस प्रकार प्रतापी धर्मराज सावित्री को वरदान देकर और उसको आ मको लौटाकर अपने भवन की ओर चल दिया ॥६०॥

सावित्र्यपि यमे याते भर्त्तारं प्रतिलभ्य च ।
जगाम तत्र यत्रास्य भर्त्तुः शावं कलेवरम् ॥६१॥

जब यमराज चले गए तो सावित्री भी अपने भर्ता के जीवात्माको पाकर वहीं पहुंची, जहां अपने भर्ता का प्राणहीन शरीर पड़ा था ॥६१॥

सा भूमौ प्रेक्ष्य भर्त्तारमुपसृत्योपगृह्य च ।
उत्सङ्गे शिर आरोप्य भूमावुपविवेश ह ॥६२॥

इसने अपने पति के शव को देखा । यह बड़ी शीघ्रता से उसके पास पहुंची और उसको उठा लिया । इसने उसका शिर गोदी में रख लिया और स्वयं भूमि में बैठ गई ॥६२॥

संज्ञाञ्च स पुनर्लब्ध्वा सावित्रीमभ्यभाषत ।
प्रोष्यागत इव प्रेम्णा पुनः पुनरुदीक्ष्य वै ॥६२॥

अब सत्यवान सचेत हुआ और विदेश यात्रा से लौट कर आये हुए मनुष्य के समान बार २ इधर उधर देख कर बड़े प्रेम से सावित्री से बोला ॥६३॥

सत्यवानुवाच—

सुचिरं तव सुप्तोऽस्मि किमर्थं नावबोधितः ।
क्व चासौ पुरुषः श्यामो योऽसौ मां सञ्चकर्ष ह ॥६४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं तो बहुत देर सोता रहा---तुमने जगाया भी क्यों नहीं। वह काला कलूटा पुरुष कहाँ गया, जो मेरे प्राण खींचे डाल रहा था ॥६४॥

सावित्र्युवाच:—

सुचिरं त्वं प्रसुप्तोऽसि ममाङ्के पुरुषर्षभ।
गतः स भगवान् देवः प्रजासंयमनो यमः ॥६५॥

सावित्री ने कहा--हे पुरुषर्षभ! तुम मेरी गोदी में बहुत देर सोते रहे और प्रजा को नियम में रखने वाले, वे देवश्रेष्ठ यमराज भी चले गए ॥६५॥

विश्रान्तोऽसि महाभाग विनिद्रश्च नृपात्मज।
यदि शक्यं समुत्तिष्ठ विगाढां पश्य शर्वरीम् ॥६६॥

हे महाभाग! अब तुम विश्राम ले चुके और तुम्हारी नींद भी भर गई होगी। यदि उठना चाहो-तो खड़े हो जाओ-रात बहुत अन्धकार के साथ बढ़ी चली आ रही है। तुम इसको स्वयं देख सकते हो ॥६६॥

मार्कण्डेय उवाच—

उपलभ्य ततः सञ्ज्ञां सुखसुप्त इवोत्थितः।
दिशः सर्वा वनान्ताश्च निरीक्ष्योवाच सत्यवान् ६७

मार्कण्डेय बोले— हे राजर्षे! सत्यवान् संज्ञा पाकर सुख से सोकर उठे हुए पुरुष के समान खड़ा हो गया। इसने सारी दिशा और वन के भागों की ओर देखकर कहा ॥६७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलाहारोऽस्मि निष्क्रान्तस्त्वया सह सुमध्यमे ।
ततः पाटयतः काष्ठं शिरसो मे रुजाभवत् ॥६८॥

हे सुन्दर कटिवाली ! मैं तुम्हारे साथ कुछ फल खाकर ही चला आया था। यहां आकर लकड़ी काटने से मेरे शिर में पीड़ा खड़ी हो गई ॥६८॥

शिरोभितापसन्तप्तः स्थातुं चिरमशक्नुवन् ।
तदोत्सङ्गे प्रसुप्तोऽस्मि इति सर्वं स्मरे शुभे ॥६९॥

हे शुभे ! मैं शिर की वेदना से देर तक खड़ा भी नहीं रह सका। तब मैं तेरी गोद में सो गया, बस ? यहां तक का ही मुझे स्मरण है ॥६९॥

त्वयोपगूढस्य च मे निद्रयोपहृतं मनः ।
ततोऽपश्यन्तमो घोरं पुरुषश्च महौजसम् ॥७०॥

तू मुझ से लिपट सी गई, जिससे नींद ने मेरे चित्त पर प्रभाव जमा लिया। अब मुझे अन्धकार ही अन्धकार और एक कृष्ण-वर्ण धारी ओजस्वी पुरुष दिखाई दिया ॥७०॥

तद्यदि त्वं विजानासि किं तद् ब्रूहि सुमध्यमे ।
स्वप्नेन यदि वा दृष्टो मयि वा सत्यमेव तत् ॥७१॥

हे सुमध्यमे ! यदि तुम जानती हो, तो बताओ--यह पुरुष कौन था। यह पुरुष मैंने स्वप्न में ही देखा या कोई सचमुच पुरुष यहां आया ही था ॥७१॥

तमुवाचाथ सावित्री रजनी व्यवगाहते ।
श्वस्ते सर्वं यथावृत्तमाख्यास्यामि नृपात्मज ॥७२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजकुमार ! अब तो रात बहुत बढ़ी चली आ रही है। कल मैं सारा वृत्तान्त तुमको आदि से अन्त तक सुना दूंगी ॥७२॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते पितरौ पश्य सुव्रत।
विगाढ़ा रजनी चेयं निवृत्तश्च दिवाकरः ॥७३॥

हे व्रत-शील ! तुम जल्दी उठो और अपने माता पिता के पास चलो। अन्धकार से युक्त रात, बहुत चढ़ आई और सूर्य बहुत देर से छिप चुका ॥७३॥

नक्तञ्चराश्चरन्त्येते हृष्टाः क्रूराभिभाषिणः।
श्रूयन्ते पर्णशब्दाश्च मृगाणाञ्चरतां वने ॥७४॥

ये भयङ्कर शब्द करने वाले, निशाचर, बड़े प्रसन्न होकर घूमने लगे और वनैले जन्तुओं के घूमने से पत्तों की आहट सुनी जा रही है ॥७४॥

एतान् घोराञ्छिवा नादान् दिशं दक्षिणपश्चिमाम्।
आस्थाय विरुवन्त्युग्राः कम्पयन्त्यो मनो मम ॥७५॥

हे उग्र गीदड़ ! दक्षिण पश्चिम दिशा की ओर स्थित होकर घोर शब्द कर रहे हैं, जिससे मेरा मन कांप उठता है ॥७५॥

सत्यवानुवाच—

वनं प्रतिभयाकारं घनेन तमसा वृतम्।
न विज्ञास्यसि पन्थानं गन्तुञ्चैव न शक्ष्यसि ॥७६॥

सत्यवान् ने कहा— हे भद्रे ! अत्यन्त अन्धकार से वन घिर गया, जो बड़ा भयानक हो गया है। अब तो मार्ग भी दिखाई नहीं देता और तुम आगे चल नहीं सकती हो ॥७६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्र्युवाच—

अस्मिन्नद्य वने दग्धे शुष्कवृक्षः स्थितो ज्वलन् ।
वायुना धम्यमानोऽत्र दृश्यतेऽग्निः क्वचित् क्वचित् ॥

सावित्री ने कहा— आज इस वन में आग लग गई थी, जिससे कहीं २ सूखे वृक्ष अभी तक जल रहे हैं। वायु से चमकाई हुई आग कहीं २ दृष्टि पड़ जाती है ॥७७॥

ततोऽग्निमानयित्वेह ज्वालयिष्यामि सर्वतः ।
काष्ठानीमानि सन्तीह जहि सन्तापमात्मनः ॥७८॥

मैं इधर उधर से अग्नि लाकर जला लेती हूं। लकड़ी तो अपने पास ही हैं। तुम अपनी पीड़ा को शान्त कर लो ॥७८॥

यदि नोत्सहसे गन्तुं संरुजं त्वां हि लक्षये ।
न च ज्ञास्यसि पन्थानं तमसा संवृते वने ॥७९॥

तुम चल नहीं सकते हो, क्योंकि कुछ पीड़ित हो और अन्धकार से व्याप्त, इस वन में तुम मार्ग का भी पता नहीं लगा सकोगे ॥७९॥

श्वः प्रभाते वने दृश्ये यास्यामोऽनुमते तव ।
वसावेह क्षपामेकां रुचितं यदि तेऽनघ ॥८०॥

हे अनघ ! कल प्रातःकाल जब वन में मार्ग दिखाई देने लगेगा, तब तुम कहोगे, तो चले चलेंगे। यदि तुम कहो तो रात यहीं पर काट दें ॥८०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यवानुवाच—

शिरोरुजा निवृत्ता मे स्वस्थान्यङ्गानि लक्षये ।
मातापितृभ्यामिच्छामि सङ्गमं त्वत्प्रसादजम् ॥८१॥

सत्यवान् बोला— मेरे शिर की पीड़ा तो घट चुकी है और मैं तो अपने शरीर को स्वस्थ सा देख रहा हूं, यदि तुम उत्साह करो, तो मैं तो अभी माता पिताओं के दर्शन करना चाहता हू ॥

न कदाचिद्विकाले हि गतपूर्वो मयाश्रमः ।
अनागतायां सन्ध्यायां माता मे प्ररुणद्धि माम् ॥८२

मैं तो पहले कभी असमय में आश्रम से बाहर नहीं गया। सन्ध्या आने से पूर्व ही मेरी माता मुझे बाहर जाने से रोक देती थी ॥८२॥

दिवापि मयि निष्क्रान्ते सन्तप्येते गुरू मम ।
विचिनोति हि मां तातः सहेवाश्रमवासिभिः ॥८३॥

यदि मैं दिन में भी कहीं चला जाता, तो मेरे माता पिता घबड़ा जाते थे और मेरे पिता आश्रम-वासी जनों को साथ लेकर मुझे खोजने चल पड़ते थे ॥८३॥

मात्रा पित्रा च सुभृशं दुःखिताभ्यामहं पुरा ।
उपालब्धाश्च बहुशश्चिरेणागच्छसीति हि ॥८४॥

दुःखी होकर माता पिता ने मुझे पूर्वकाल में बात २ में बड़ा ही लताड़ रखा है, कि तू आने में बड़ी देर लगा देता है ॥८४॥

का त्ववस्था तयोरद्य मदर्थमिति चिन्तये ।
तयोरदृश्ये मयि च महद् दुःखं भविष्यति ॥८५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज मुझे याद करके उनकी क्या दशा हो रही होगी। मुझे तो यही ध्यान है, कि मेरे नहीं दिखाई देने पर तो उन्हें बड़ा ही क्लेश होगा ॥८५॥

पुरा मामूचतुश्चैव रात्रावस्रायमाणकौ।
भृशं सुदुःखितौ वृद्धौ बहुशः प्रीतिसंयुतौ ॥८६॥
त्वया हीनो न जीवाव मुहूर्त्तमपि पुत्रक।
यावद्धरिष्यसे पुत्र तावन्नौ जीवितं ध्रुवम् ॥८७॥

कल रात को ही रोते २ उन वृद्ध माता पिताओं ने बड़े प्रेम से बार २ कहा था— हे पुत्र! हम तुझ से रहित होकर थोड़ी देर भी नहीं जी सकेंगे। जब तक तेरा जीवन है, हमको भी तभी तक जीवित समझो-यह निश्चय है ॥८६-८७॥

वृद्धयोरन्धयोर्यष्टिस्त्वयि वंशः प्रतिष्ठितः।
त्वयि पिण्डश्च कीर्त्तिश्च सन्तानश्चावयोरिति ॥८८॥

हे बेटे! तुम हम अन्धे वृद्धों की लाठी हो, तुमसे ही हमारे वंश की प्रतिष्ठा है। तुम ही पिण्डदान देने और कीर्ति के बढ़ाने वाले पुत्र हो ॥८८॥

माता च संशयं प्राप्ता मत्कृतेऽनपकारिणी।
अहञ्च संशयं प्राप्तः कृच्छ्रमापदमास्थितः ॥८९॥

बड़े उपकार करने वाली माता तो मेरे ध्यान से बड़ी विपत्ति में होगी। मैं तो इस समय बड़ी उलझन में फंस गया और बड़ी विपत्ति में पड़ गया हूं ॥८९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातापितृभ्यां हि विना नाहं जीवितुमुत्सहे।
व्यक्तमाकुलया बुद्ध्या प्रज्ञाचक्षुः पिता मम ॥९०॥

मैं माता पिता के विना जीवित नहीं रह सकूंगा। मेरे अन्धे पिता तो निश्चय बड़े ही व्याकुल बुद्धि से मेरी प्रतीक्षा करते होंगे ॥९०॥

एकैकमस्यां वेलायां पृच्छत्याश्रमवासिनाम्।
नात्मानमनुशोचामि यथाहं पितरं शुभे ॥९१॥

हे शुभे! इस समय तो वे आश्रम के एक २ मनुष्य को पूछते फिर रहे होंगे। मैं इस वन में अपनी चिन्ता नहीं कर रहा हूं, जितनी मुझे अपने माता पिता की चिन्ता हो रही है ॥९१॥

भर्त्तारञ्चाप्यनुगतां मातरं परिदुर्बलाम्।
मत्कृतेन हि तावद्य सन्तापं परमेष्यतः ॥९२॥

मुझे अपने पति की सेवा तत्पर, दुर्बल, माता की भी बड़ी चिन्ता है। मेरे ध्यान से वे दोनों आज बड़े ही व्याकुल हो रहे होंगे ॥९२॥

जीवन्तावनुजीवामि भर्त्तव्यौ तौ मयेति ह।
तयोः प्रियं मे कर्त्तव्यमिति जानामि चाप्यहम् ॥९३॥

मैं तो उनके जीवित रहने से जीता हूं। मुझे उनका भरण-पोषण करना हीं उचित है। मैं तो केवल यही जानता हूं, कि जो उनको प्रिय हो, मुझे वही करना चाहिए ॥९३॥

मार्कण्डेय उवाच—

एवं मुक्त्वा स धर्मात्मा गुरुभक्तो गुरुप्रियः।
उच्छ्रित्य बाहू दुःखार्त्तः सुस्वरं प्ररुरोद ह ॥९४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्कण्डेय बोले—हे राजेन्द्र! इतना कह कर, अपने माता पिता का भक्त और प्यारा पुत्र, सत्यवान् अपने हाथ ऊंचे उठा कर दुःख के साथ बड़े उच्च स्वर से रोने लगा ॥९४॥

ततोऽब्रवीत्तथा दृष्ट्वा भर्त्तारं शोककर्षितम् ।
प्रमृज्याश्रूणि नेत्राभ्यां सावित्री धर्मचारिणी ॥९५॥

धर्म का आचरण करने वाली सावित्री ने भर्त्ता को इस प्रकार शोकातुर देख कर उसके नेत्रों से आंसू पोंछे और यह वचन कहा॥९५॥

यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं यदि दत्तं हुतं यदि ।
श्वश्रूश्वशुरभर्तॄणां मम पुण्यास्तु शर्वरी ॥९६॥

यदि मैंने कोई तप और यज्ञ किया है या कोई दान दिया है, तो मेरे सास श्वशुर और पति को यह रात्रि, सुखकारिणी हो जावे ॥९६॥

न स्मराम्युक्तपूर्वा वै स्वैरेष्यनृतां गिरम् ।
तेन सत्येन तावद्य ध्रियेतां श्वशुरौ मम ॥९७॥

मुझे तो कोई स्मरण आता नहीं है, कि मैंने कभी हंसी में भी झूठ बोला हो। मेरे उसी सत्य के प्रभाव से मेरे सास, ससुर, प्राण धारण किये रहें ॥९७॥

सत्यवानुवाच—

कामये दर्शनं पित्रोर्याहि सावित्रि मा चिरम् ।
पुरा मातुः पितुर्वापि यदि पश्यामि विप्रियम् ॥९८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न जीविष्ये वरारोहे सत्येनात्मानमालभे ।
यदि धर्मे च ते बुद्धिमाश्वेर्जीवन्तमिच्छसि ।
मम प्रियं वा कर्तव्यं गच्छावाश्रममन्तिकात् ॥९९॥

सत्यवान् बोले—हे सावित्रि ! मैं तो अपने माता पिता का दर्शन अभी करूंगा, तुम शीघ्र चलो। यदि मैंने माता पिता की कुछ भी बुरी दशा देख ली, तो मैं सत्य की शपथ खाता हूं, कि मैं जीवित नहीं रहूंगा। यदि तुम्हारी धर्म में बुद्धि है और मेरा जीवन चाहती हो या मेरा प्रिय करना है, तो चलो- शीघ्र आश्रम के पास पहुंचे ॥९८-९९॥

मार्कण्डेय उवाच—

सावित्री तत उत्थाय केशान् संयम्य भाविनी ।
पतिमुत्थापयामास बाहुभ्यां परिगृह्य वै ॥१००॥

मार्कण्डेय ने कहा—अब सावित्री उठी और उसने अपने बाल संभाले। इसने बाहुओं से पकड़ कर अपने पति को उठाया ॥१००॥

उत्थाय सत्यवांश्चापि विमृज्याङ्गानि पाणिना ।
सर्वा दिशः समालोक्य कठिने दृष्टिमादधे ॥१०१॥

सत्यवान् भी उठ कर और हाथ से अपनी आंख मल कर चारों ओर देख कर अपने फलों के पात्र (पिटारी) की ओर देखने लगा ॥१०१॥

तमुवाचाथ सावित्री श्वः फलानि हरिष्यसि ।
योगक्षेमार्थमेतन्ते नेष्यामि परशुन्त्वहम् ॥१०२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्री ने कहा—तुम इन फलों को कल ले जाना। तुम्हारी रक्षा के लिए मैं इस कुल्हाड़ी को ले चलती हूं ॥१०२॥

कृत्वा कठिनभारं सा वृक्षशाखावलम्बिनम्।
गृहीत्वा परशुं भर्त्तुः सकाशे पुनरागमत् ॥१०३॥

इसने पिटारी को फलों के भार के साथ वृक्ष की शाखा में बांध दिया और कुल्हाड़ी लेकर यह अपने भर्ता के पास आई ॥१०३॥

वामे स्कन्धे तु वामोरुर्भर्त्तुर्बाहुं निवेश्य च।
दक्षिणेन परिष्वज्य जगाम गजगामिनी ॥१०४॥

यह सुन्दरी अपने वाम कन्धे पर भर्ता की भुजा को डालकर और दांई से आलिङ्गन करके हाथी की चाल से चल पड़ी ॥१०४॥

सत्यवानुवाच:—

अभ्यासगमनाद्भीरु पन्थानो विदिता मम।
वृक्षान्तरालोकितया ज्योत्स्नया चापि लक्षये ।१०५

सत्यवान बोला—हे भीरु! अब हम आश्रम के पास आ गए, क्योंकि ये मार्ग मेरे देखे हुए हैं। मैं वृक्षों के बीच से कुछ २ प्रकाश भी देख रहा हूं ॥१०५॥

आगतौ स्वः पथा येन फलान्यवचितानि च।
यथागतं शुभे गच्छ पन्थानं मा विचारय ॥१०६॥

हम उसी मार्ग में आ गए, जहां पर फल तोड़े थे। हे शुभानने! जैसे आये थे, वैसे ही चली चलो, अब तुम मार्ग की चिन्ता न करो ॥१०६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पलाशखण्डे चैतस्मिन् पन्था व्यावर्त्तते द्विधा ।
तस्योत्तरेण यः पन्थास्तेन गच्छ तरस्व च ॥१०७॥

इस पलाश वृक्षों के समूह में दो ओर मार्ग जा रहा है । तुम इस उत्तर के मार्ग से चलो और जल्दी करो ॥१०७॥

स्वस्थोऽस्मि बलवानस्मि दिदृक्षुः पितरावुभौ ।
ब्रुवन्नेव त्वरायुक्तः संप्रायादाश्रमं प्रति ॥१०८॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि सत्यवदाश्रमगमने षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः २९६

मैं स्वस्थ और बलवान् हूं, पिता के दर्शन करना चाहता हूं --इस प्रकार कहता हुआ, सत्यवान् बड़ी शीघ्रता से आश्रम की की ओर चल दिया ॥१०८॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत पतिव्रतामाहात्म्यपर्व में सत्यवान् के आगमन का दो सौ छियानवेवां अध्याय पूरा हुआ ।

****

दो सौ सत्तानवेवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच—

एतस्मिन्नेव काले तु द्युमत्सेनो महाबलः ।
लब्धचक्षुः प्रसन्नायां दृष्ट्यांसर्वं ददर्श ह ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे राजन् ! इस समय महाबली राजा द्युमत्सेन के नेत्रों में ज्योति उमड़ आई । यह नेत्र पाकर अपनी दृष्टि से देखने योग्य सारे पदार्थों को देखने लगा ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स सर्वानाश्रमान् गत्वा शैव्यया सह भार्य्यया ।
पुत्रहेतोः परामार्त्तिं जगाम भरतर्षभ ॥२॥

हे भरतर्षभ ! यह अपनी शैव्या नामक भार्या के साथ सारे आश्रमों में गया और कहीं भी अपने पुत्र को न देखकर बड़े क्लेश को प्राप्त हुआ ॥२॥

तावाश्रमान्नदीश्चैव वनानि च सरांसि च ।
तस्यां निशि विचिन्वन्तौ दम्पती परिजग्मतुः ॥३॥

ये दोनों पति-पत्नी, इस रात में सारे आश्रम, नदी, वन और सरोवर को खोजते हुए घूमने लगे ॥३॥

श्रुत्वा शब्दन्तु यं कञ्चिदुन्मुखौ सुतशङ्कया ।
सावित्र्या सहितोऽभ्येति सत्यवानित्यभाषताम् ॥४॥

ये किसी की आहट सुनते ही पुत्र के ध्यान से उस ओर को देखने लगते और सावित्री के साथ सत्यवान् आ रहा है- ऐसा आपस में कहने लगते थे ॥४॥

भिन्नैश्च परुषैः पादैः सव्रणैः शोणितोक्षितैः ।
कुशकण्टकविद्धाङ्गावुन्मत्ताविव धावतः ॥५॥

इनके चरण यद्यपि कठोर थे, तो भी कांटों से छिद गए। उनमें घाव हो गये और वे रक्त से भीग गए। कुशा और कांटों से छिन्न भिन्न शरीर वाले, ये दोनों पति-पत्नी, पागल की तरह इधर उधर दौड़ रहे थे ॥५॥

ततोऽभिसृत्य तैर्विप्रैः सर्वैराश्रमवासिभिः ।
परिवार्य्य समाश्वास्य तावानीतौ स्वमाश्रमम् ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रमके रहने वाले अन्य विप्रों ने उनके पास जाकर उनको घेर लिया और समझा बुझाकर अपने आश्रम में ले आए ॥६॥

तत्र भार्य्यासहायः स वृतो वृद्धैस्तपोधनैः ।
आश्वासितो विचित्रार्थैः पूर्वराज्ञां कथाश्रयैः ॥७॥

अपनी भार्या के साथ बैठे हुए इस राजा द्युमत्सेन को वृद्ध २ तपस्वियों ने घेर रखा था और वे प्राचीन राजाओं की अद्भुत कथा कह २ कर इनको आश्वासन दे रहे थे ॥७॥

ततस्तौ पुनराश्वस्तौ वृद्धौ पुत्रदिदृक्षया ।
बाल्ये वृत्तानि पुत्रस्य स्मरन्तौ भृशदुःखितौ ॥८॥

यह वृद्ध दम्पती, अपने पुत्र के दर्शनों की इच्छा से सन्तोष किये हुए बैठे हैं। ये बाल्यावस्था के पुत्र के व्यवहारों का स्मरण करके बड़े ही दुःखी हो रहे हैं ॥८॥

पुनरुक्त्वा च करुणां वाचं तौ शोककर्षितौ ।
हा पुत्र हा साध्वि वधु क्वासि क्वासीत्यरोदताम् ।
ब्राह्मणः सत्यवाक् तेषामुवाचेदं तयोर्वचः ॥९॥

ये शोकातुर वृद्ध तपस्वी, बार २ करुणा स्वर से हा पुत्र! "तुम कहां हो, हा साध्वि! वधू! तुम कहां हो" इस प्रकार कह कर रो रहे थे। इन दोनों से एक सत्यवादी सुवर्चा नामक ब्राह्मण यह वचन कहने लगा ॥९॥

सुवर्चा उवाच—

यथास्य भार्य्या सावित्री तपसा च दमेन च ।
आचारेण च संयुक्ता तथा जीवति सत्यवान् ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे पुत्र सत्यवान् की भार्या सावित्री, तप, दम (जितेन्द्रियता) और सदाचार से युक्त है। उसके तपोबल के कारण तुम्हारा पुत्र मर नहीं सकता, वह अवश्य जीता है ॥१०॥

गौतम उवाच—

वेदाः साङ्गा मयाधीतास्तपो मे सञ्चितं महत् ।
कौमारं ब्रह्मचर्य्यञ्च गुरवोऽग्निश्च तोषितः ॥११॥
समाहितेन चीर्णानि सर्वाण्येव व्रतानि मे ।
वायुभक्षोपवासश्च कृतो मे विधिवत् सदा ॥१२॥
अनेन तपसा वेद्मि सर्वं परचिकीर्षितम् ।
सत्यमेतन्निबोधध्वं ध्रियते सत्यवानिति ॥१३॥

गौतम ने कहा—मैंने व्याकरणादि अङ्गों के साथ सारे वेद पढ़े हैं। मैंने बड़े भारी तप का भी सञ्चय किया है। कुमार अवस्था से आज तक ब्रह्मचर्य धारण तथा गुरु और अग्नि को सन्तुष्ट किया है। मैंने बड़ी सावधानी से सारे व्रत समाप्त किए, इसी तरह वायु का भक्षण करके विधि-पूर्वक उपवास किया है। मैं इस तप से दूसरे के करने की इच्छा को जानता रहता हूं। मैं सच कहता हूं, कि सत्यवान् जीवित है ॥११--१३॥

शिष्य उवाच—

उपाध्यायस्य मे वक्त्रात् यथा वाक्यं विनिःसृतम् ।
नैव जातु भवेन्मिथ्या तथा जीवति सत्यवान् ॥१४॥

शिष्य बोला—हे महानुभावो! हमारे आचार्य के मुख से यह वाक्य निकला है, जो कभी मिथ्या नहीं हो सकता है। सत्यवान् अवश्य जीता है ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषय ऊचुः —

यथास्य भार्य्या सावित्री सर्वैरेव सुलक्षणैः ।
अवैधव्यकरैर्युक्ता तथा जीवति सत्यवान् ॥१५॥

ऋषियों ने कहा—सत्यवान् की भार्या सावित्री सारे शुभ लक्षणों से युक्त है। इसमें सौभाग्यवती के सारे लक्षण विद्यमान है, इससे सत्यवान् कहीं अवश्य जीवित है ॥१५॥

भरद्वाज उवाच—

यथास्य भार्य्या सावित्री तपसा च दमेन च ।
आचारेण च संयुक्ता तथा जीवति सत्यवान् ॥१६

तुम्हारे पुत्र सत्यवान् की भार्या सावित्री, तप, दम, (जितेन्द्रिय) और सदाचार से युक्त है। उसके तपोबल के कारण तुम्हारा पुत्र मर नहीं सकता, वह अवश्य जीता है ॥१६॥

दाल्भ्य उवाच—

यथा दृष्टिः प्रवृत्ता ते सावित्र्याश्च यथा व्रतम् ।
गताहारमकृत्वा च तथा जीवति सत्यवान् ॥१७॥

दाल्भ्य ने कहा—तुम्हारे दृष्टि उत्पन्न हो गई और तीन दिन भोजन न करके सावित्री ने व्रत किया है, इन सब घटनाओं से भी सत्यवान् जीवित ही प्रतीत होता है ॥१७॥

आपस्तम्ब उवाच—

यथा वदन्ति शान्तायां दिशि वै मृगपक्षिणः ।
पार्थिवी च प्रवृत्तिस्ते तथा जीवति सत्यवान् ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपस्तम्ब कहने लगे– जैसे शान्त दिशाओं में ये वनवासी जीव जन्तु और पक्षी बोल रहे हैं और तुम्हारी भी उत्तम राजा या पृथ्वी के समान क्षमा-शील प्रवृत्ति है, इससे भी सत्यवान् जीवित है—यही ज्ञात होता है ॥१८॥

धौम्य उवाच—

सर्वैर्गुणैरुपेतस्ते यथा पुत्रो जनप्रियः।
दीर्घायुर्लक्षणोपेतस्तथा जीवति सत्यवान् ॥१९॥

धौम्य ने कहा— हे धर्मात्मन्! तुम्हारा पुत्र सब गुणों से युक्त और सब लोगों का प्रिय है। इनके आशीर्वादों से यह दीर्घायु के लक्षणों से युक्त है, इससे तुम सत्यवान् को अवश्य जीवित समझो ॥१९॥

मार्कण्डेय उवाच—

एवमाश्वासितस्तैस्तु सत्यवाग्भिस्तपस्विभिः।
तांस्तान् निगणयन् सर्वास्ततः स्थिर इवाभवत् ॥

मार्कण्डेय ने कहा– हे राजन्! इस प्रकार सत्य वाणी वाले तपस्वियों के समझाने से इस वृद्ध और वृद्धा को कुछ शान्ति आई। ये इन सारे ऋषि मुनियों की बातों पर विचार करके कुछ धैर्य युक्त सा हो गया ॥२०॥

ततो मुहूर्त्तात् सावित्री भर्त्रा सत्यवता सह।
आजगामाश्रमं रात्रौ प्रहृष्टा प्रविवेश ह ॥२१॥

थोड़ी ही देर में अपने भर्ता सत्यवान् के साथ सावित्री, रात में ही उस आश्रम में आ पहुंची और बड़ी प्रसन्नता से उस आश्रम में घुसी ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणा ऊचुः—

पुत्रेण सङ्गतं त्वान्तु चक्षुष्मन्तं निरीक्ष्य च ।
सर्वे वयं वै पृच्छामो वृद्धि वै पृथिवीपते ॥२२॥

ब्राह्मण बोले– हे पृथ्वीपते ! अब तुमको पुत्र से युक्त और नेत्रों की ज्योति से समन्वित देख कर हम सब पूछ रहे हैं, कि अब तो तुम्हारे कल्याण की वृद्धि हो गई ॥२२॥

समागमेन पुत्रस्य सावित्र्या दर्शनेन च ।
चक्षुषश्चात्मनो लाभात्त्रिभिर्दिष्ट्या विवर्द्धसे ॥२३॥

आज तुम अपने पुत्र के मिलने, सावित्री के दर्शन और अपने चक्षुओं की प्राप्ति, इन तीन लाभों से कल्याण युक्त होकर वृद्धि को प्राप्त हो रहे हो ॥२३॥

सर्वैरस्माभिरुक्तं यत् तथा तन्नात्र संशयः ।
भूयो भूयः समृद्धिस्ते क्षिप्रमेव भविष्यति ॥२४॥

हम सब ने जो कहा था, वैसा ही हुआ--इस में कोई संशय ही नहीं रहा । अब तुम्हारी बहुत शीघ्र वृद्धि पर वृद्धि होती चली जावेगी ॥२४॥

ततोऽग्निं तत्र संज्वाल्य द्विजास्ते सर्व एव हि ।
उपासाञ्चक्रिरे पार्थ द्युमत्सेनं महीपतिम् ॥२५॥

हे पार्थ ! इसके अनन्तर वे सारे ब्राह्मण आरती जला कर राजा द्युमत्सेन की पूजा करने लगे ॥२५॥

शव्या च सत्यवांश्चैव सावित्री चैकतः स्थिता ।
सर्वैस्तैरभ्यनुज्ञाता विशोकाः समुपाविशन् ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ओर शैव्या, सत्यवान् और सावित्री खड़े हो गये। सारे ऋषि मुनियों ने इनको आज्ञा दे दी, जिससे ये सब शोकहीन हुए बैठ गए ॥२६॥

ततो राज्ञा सहासीनाः सर्वे ते वनवासिनः।
जातकौतूहलाः पार्थ पप्रच्छुर्नृपतेः सुतम् ॥२७॥

हे पार्थ! अब राजा द्युमत्सेन के साथ सारे वानप्रस्थी बैठ गए। इस समय सबको सत्यवान् के वृतान्त जानने की उत्कण्ठा हो रही थी, इससे वे राजपुत्र सत्यवान् से पूछने लगे ॥२७॥

ऋषय ऊचुः—

प्रागेव नागतं कस्मात् सभार्य्येण त्वया विभो।
विरात्रे चागतं कस्मात् कोऽनुबन्धस्तवाभवत् ॥२८॥

हे विभो! तुम अपनी भार्या के साथ पूर्व में समय पर कैसे नहीं आ सके। अब तो बहुत रात चली गई, तुम इस समय कैसे आकर पहुंचे हो, क्या? कोई रुकावट खड़ी हो गई। २८॥

सन्तापितः पिता माता वयञ्चैव नृपात्मज।
कस्मादिति न जानीमस्तत् सर्वं वक्तुमर्हसि ॥२९॥

हे राजकुमार! तुमने पिता, माता और हम लोगों को क्यों इतना सन्तापित किया। हम तो यह कुछ भी नहीं जान सके हैं। तुम इस विषय को स्पष्ट करके कहो ॥२९॥

सत्यवानुवाच—

पित्राहमभ्यनुज्ञातः सावित्रीसहितो गतः।
अथ मेऽभूच्छिरोदुःखं वने काष्ठानि भिन्दतः ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यवान् बोला--हे महात्माओ! मैं पिता से आज्ञा लेकर सावित्री के साथ वन में चला गया। वहां वन में काष्ठ काटते हुए, मेरे शिर में वेदना होने लगी ॥३०॥

सुप्तश्चाहं वेदनया चिरमित्युपलक्षये ।
तावत्कालं न च मया सुप्तपूर्वं कदाचन ॥३१॥

इस वेदना से मैं सो गया- मेरा खयाल है, कि मैं बहुत देर सोया। इससे पूर्व कभी इस समय इतनी देर नहीं सोया था ॥३१

सर्वेषामेव भवतां सन्तापो मा भवेदिति ।
अतो विरात्रागमनं नान्यदस्तीह कारणम् ॥३२॥

तुम सब लोगों को मेरे नहीं आने से कोई सन्ताप न हो-मैं यही सोचकर इतनी रात गए भी दौड़कर आया हूं, अन्य इसमें कोई कारण नहीं है ॥३२॥

गौतम उवाच—

अकस्माच्चक्षुषः प्राप्तिर्द्युमत्सेनस्य ते पितुः ।
नास्य त्वं कारणं वेत्सि सावित्रीं वक्तुमर्हति ॥३३॥

गौतम ने कहा--हे सत्यवान्! तुम्हारे पिता द्युमत्सेन को अचानक नेत्रज्योति की प्राप्ति हो गई। तुम इस बात का कारण नहीं जानते हो। इसका कारण तो सावित्री ही बतावेगी ॥३३॥

श्रोतुमिच्छामि सावित्रि त्वं हि वेत्थ परावरम् ।
त्वां हि जानामि सावित्रि सावित्रीमिव तेजसा ॥३४

हे सावित्रि! हम सब इस बात के सुनने के बड़े इच्छुक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू इसका कारण आदि से अन्त तक जानती है। हे सावित्रि! हम तो तुझे सावित्री (गायत्री) के समान तेजस्विनी समझते हैं ॥३४॥

त्वमत्र हेतु जानीषे तस्मात् सत्यं निरुच्यताम्।
रहस्यं यदि ते नास्ति किञ्चिदत्र वदस्व नः ॥३५॥

तू इसका हेतु जानती है, इसलिए सच २ बता दे। यदि इसमें कुछ गुप्त रखने योग्य बात नहीं है, तो तू हम से भी कह दे ॥३५॥

सावित्र्युवाच—

एवमेतद्यथा वेत्थ सङ्कल्पो नान्यथा हि वः।
न हि किञ्चिद्रहस्यं मे श्रूयतां तथ्यमेव तत् ॥३६॥

सावित्री ने कहा--हे महात्माओ! जैसा तुम समझ रहे हो, ऐसा ही है। तुम्हारा विचार मिथ्या नहीं है। इसमें कोई छुपाने योग्य गुप्त रहस्य नहीं है। मैं तुमको सत्य २ बताती हूं ॥३६॥

मृत्युर्मे पत्युराख्यातो नारदेन महात्मना।
स चाद्य दिवसः प्राप्तस्ततो नैनं जहाम्यहम् ॥३७॥

हे ब्राह्मणो! मेरे पति की मृत्यु मुझे महात्मा नारदजी ने बतला दी थी। इनकी मृत्यु का दिन आज प्राप्त हुआ था, इसीसे मैंने इनको नहीं छोड़ा ॥३७॥

सुप्तञ्चैनं यमः साक्षादुपागच्छत्सकिङ्करः।
स एनमनयद्बध्वा दिशं पितृनिषेविताम् ॥३८॥

जब ये शिर की वेदना से सो गए, तो इनके पास दूतों सहित यमराज आया। वह इनको बांधकर पितरों की दिशा (दक्षिण) को ले चला ॥३८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तौषं तमहं देवं सत्येन वचसा विभुम् ।
पञ्च वै येन मे दत्ता वराः शृणुत तान्मम ॥३९॥

मैंने उस तेजस्वी देव की सत्य वचन से स्तुति की। उसने मुझे पांच वरदान दिए, जिनको तुम ध्यान से सुनो ॥३९॥

चक्षुषी च स्वराज्यञ्च द्वौ वरौ श्वशुरस्य मे ।
लब्धं पितुः पुत्रशतं पुत्राणाञ्चात्मनः शतम् ॥४०॥

मेरे श्वशुर को नेत्र ज्योति और अपने राज्य की प्राप्ति हो जावे, ये दो वर तो श्वशुर के हित के लिए मांगे। पिता और अपने लिए सौ २ पुत्र होने का वरदान ले लिया॥४०॥

चतुर्वर्षशतायुर्मे भर्त्ता लब्धश्च सत्यवान् ।
भर्त्तुर्हि जीवितार्थन्तु मया चीर्णन्त्विदं व्रतम् ॥४१॥

चार सौ वर्ष की पूर्ण आयु मेरे भर्ता सत्यवान् ने पाली है। भर्ता के जीवन की आकांक्षा से ही मैंने इस व्रत को स्वीकार किया था॥४१॥

एतत् सर्वं मयाख्यातं कारणं विस्तरेण वः ।
यथावृत्तं सुखोदर्कमिदं दुःखं महन्मम ॥४२॥

हे ऋषियो ! मैंने इस घटना का सारा कारण तुमको विस्तार से सुना दिया है, जिस तरह यह मेरा महान् दुःख भी महा-सुख में परिणत हो गया है ॥४२॥

ऋषय ऊचुः—

निमज्जमानं व्यसनैरभिद्रुतं कुलं नरेन्द्रस्य तमोमये ह्रदे ।
त्वयासुशीलव्रतपुण्ययाकुलंसमुद्धृतंसाध्विपुनःकुलीनया ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषियों ने कहा—हे सावित्री ! विपत्तियोंसे घिरे हुए, अन्धकार (शोक) रूपी तालाबमें डूबते हुए, इस राजा के कुल को शील, व्रत और पुण्यसे युक्त, तुम कुलीन कन्या ने उद्धार कर दिया है।

मार्कण्डेय उवाच—

तथा प्रशस्य ह्यभिपूज्य चैव वरस्त्रियंतामृषयः समागताः।
नरेन्द्रमामन्त्र्यसपुत्रमञ्जसाशिवेनजग्मुर्मुदिताःस्वमालयम् ॥
इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि
सावित्रीकथायां सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२९७

मार्कण्डेय ने कहा—हे राजन् ! आये हुए ऋषियों ने इस उत्तम स्त्री सावित्री की पूजा और प्रशंसा की, अब ये ऋषि लोग सत्यवान् सहित, राजा द्युमत्सेन से आज्ञा लेकर बड़ी प्रसन्नता से अपने २ स्थान को चल दिए ॥४४॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत पतिव्रतामाहात्म्यपर्व में सावित्री के कथा कहने का दोसौ सत्तानवेवां अध्याय समाप्त हुआ

******

दो सौ अट्ठानववें अध्याय

मार्कण्डेय उवाच--

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते सूर्य्यमण्डले।
कृतपूर्वाह्णिकाः सर्वे समयुस्ते तपोधनाः ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—हे भरतर्षभ ! इस रात के व्यतीत हो जाने और सूर्य मण्डल के उदय होने पर सन्ध्या, हवन आदि नित्य कर्म करके सारे तपस्वी वहां आए ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदेव सर्वं सावित्र्या महाभाग्यं महर्षयः।
द्युमत्सेनाय नातृप्यन् कथयन्तः पुनः पुनः ॥२॥

वे महर्षि, सावित्री के इस महत्व को राजा द्युमत्सेन से कहते २ तृप्त नहीं होते थे ॥२॥

ततः प्रकृतयः सर्वाः शाल्वेभ्योऽभ्यागता नृप।
आचख्युर्निहतश्चैव स्वेनामात्येन तं द्विषम् ॥३॥

हे राजन्! इसी समय शाल्व-देश से बहुत सी प्रजा आई, जिसने यह शुभ समाचार सुनाया, कि आपके मन्त्री ने आपके शत्रु को मार दिया है ॥३॥

तं मन्त्रिणा हतं श्रुत्वा ससहायं सबान्धवम्।
न्यवेदयन् तथावृत्तं विद्रुतश्च द्विषद्बलम् ॥४॥

जब राजा द्युमत्सेन ने अपने साथी और बान्धवों के साथ मारे हुए अपने शत्रु राजा का वृतांत सुन लिया, तो फिर प्रजा ने शत्रु-सेना के भाग जाने का समाचार सुनाया ॥४॥

ऐकमत्यश्च सर्वस्य जनस्याथ नृपं प्रति।
स चक्षुर्वाप्यचक्षुर्वा स नो राजा भवत्विति ॥५॥

सारी प्रजा का अब एक मत हो रहा है, कि राजा द्युमत्सेन, नेत्र रहित हो या नेत्रसहित हो--हमारा तो वही राजा होगा।

अनेन निश्चयेनेह वयं प्रस्थापिता नृप।
प्राप्तानीमानि यानानि चतुरङ्गश्च ते बलम् ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे नृप ! इसी निश्चय से हम लोगों को यहां भेजा गया है। अब ये आपके सम्मुख वाहन खड़े हैं और यह आपकी चतुरङ्गिणी सेना है ॥६॥

प्रयाहि राजन् भद्रन्ते घुष्टस्ते नगरे जयः ।
अध्यास्व चिररात्राय पितृपैतामहं पदम् ॥७॥

हे राजन् ! आपका कल्याण हो- अब आप शीघ्र चलें। नगर में आपकी जय का ढिंढोरा पिटवा दिया है। अब तुम अपने पिता पितामहों के सिंहासन पर चिरकाल के लिए बैठ जाओ।

चक्षुष्मन्तश्च तं दृष्ट्वा राजानं वपुषान्वितम् ।
मूर्द्ध्ना निपतिताः सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥८

सब लोग, राजा को नेत्र-ज्योति से समन्वित और सुन्दर शरीर धारी देखकर चरणों में मस्तक रख कर भूमि में गिर गए। उनकी अचम्भे से आंखे फटी की फटी रह गई ॥८॥

ततोऽभिवाद्य तान् वृद्धान् द्विजानाश्रमवासिनः ।
तैश्चाभिपूजितः सर्वैः प्रययौ नगरं प्रति ॥९॥

राजा द्युमत्सेन भी उन आश्रमवासी वृद्ध मुनियों को प्रणाम करके, उनसे सत्कार पाकर अपने नगर को चल दिया ॥९॥

शैव्या च सह सावित्र्या स्वास्तीर्णेन सुवर्चसा ।
नरयुक्तेन यानेन प्रययौ सेनया वृता ॥१०॥

सेना से घिरी हुई रानी शैव्या, सावित्री के साथ सुन्दर २ बिछौने वाले, चमकते हुए नरयान (पिञ्जस) से राजधानी को चल पड़ी ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततोऽभिषिषिचुः प्रीत्या द्युमत्सेनं पुरोहिताः ।
पुत्रश्चास्य महात्मानं यौवराज्येऽभ्यषेचयन् ॥११॥

पुरोहितों ने राजा द्युमत्सेन का बड़े प्रेम से राज्याभिषेक किया और इसके पुत्र सत्यवान को युवराज बनाया ॥११॥

ततः कालेन महता सावित्र्याः कीर्त्तिवर्द्धनम् ।
तद्वै पुत्रशतं जज्ञे शूराणामनिवर्त्तिनाम् ॥१२॥
भ्रातॄणां सोदराणाञ्च तथैवास्याभवत् शतम् ।
मद्राधिपस्याश्वपतेर्मालव्यां सुमहद्बलम् ॥१३॥

फिर कुछ काल के अनन्तर धीरे २ सावित्री की कीर्ति बढ़ाने वाले, सौ पुत्र उत्पन्न हुए। इसी तरह युद्ध में नहीं लौटने वाले सौ सहोदर भाइयों का जत्था मद्र-देश के अधिपति राजा अश्वपति से मालवी महारानी में उत्पन्न हुआ। यह यूथ बड़ा ही बली था १३

एवमात्मा पिता माता श्वश्रूः श्वशुर एव च ।
भर्त्तुः कुलञ्च सावित्र्या सर्वं कृच्छ्रात् समुद्धृतम् १४

इस प्रकार पिता, माता, सास, ससुर, भर्ता, कुल और अपने आपका सावित्री ने विपत्ति से उद्धार किया ॥१४॥

तथैवैषापि कल्याणी द्रौपदी शीलसम्मता ।
तारयिष्यति वः सर्वान् सावित्रीव कुलाङ्गना ॥१५॥

इसी तरह सावित्री के समान पतिव्रता, शील से युक्त-कल्याणी द्रौपदी है। यह कुलाङ्गना द्रौपदी भी सावित्री की तरह ही तुम सबका विपत्ति से उद्धार करेगी ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

एवं स पाण्डवस्तेन अनुनीतो महात्मना ।
विशोको विज्वरो राजन् काम्यके न्यवसत्तदा ॥१६

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार महात्मा मार्कण्डेयने राजा युधिष्ठिर को समझाया । अब यह शोक और चिन्ता से रहित होकर काम्यक वन में निवास करने लगा ॥१६॥

यश्चेदं शृणुयाद्भक्त्या सावित्र्याख्यानमुत्तमम् ।
स सुखी सर्वसिद्धार्थो न दुःखं प्राप्नुयान्नरः ॥१७॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि द्युमत्सेनराज्यलाभे अष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥

समाप्तश्च पतिव्रतामाहात्म्यपर्व ।

जो मनुष्य,सावित्री के इस उपाख्यान को भक्ति के साथ सुनेगा, वह सुखी हो जावेगा । उसके सारे कार्य सिद्ध होंगे और वह कभी दुःखी न होगा ॥१७॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत पतिव्रतामाहात्म्यपर्व में द्युमत्सेन के राज्य प्राप्ति का दो सौ अट्ठानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ और यहीं पर पतिव्रतामाहात्म्यपर्व भी पूरा हो गया ।

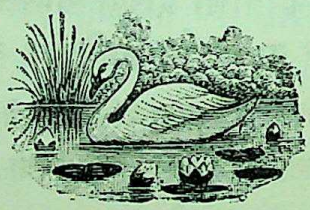

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ कुण्डलाहरणपर्व

दो सौ निन्यानवेवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

यत्तत्तदा महत् ब्रह्मन् लोमशो वाक्यमब्रवीत् ।
इन्द्रस्य वचनादेव पाण्डुपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥१॥
यच्चापि ते भयं तीव्रं न च कीर्त्तयसे क्वचित् ।
तच्चाप्यहरिष्यामि धनञ्जय इतो गते ॥२॥
किन्तु तज्जपतां श्रेष्ठ कर्णं प्रति महद्भयम् ।
आसीन्न च स धर्मात्मा कथयामास कस्यचित् ॥३॥

जनमेजय ने पूछा—हे ब्रह्मन् ! पूर्व में लोमश मुनि ने इन्द्र के वचन से पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर से एक वाक्य कहा था, कि जो तुमको तीव्रभय है, जिसको तुम अभी किसी से न कहते हो, मैं स्वयं अर्जुन के स्वर्ग से लौट जाने पर इस भय का अपहरण कर दूंगा। हे तपस्वियों में श्रेष्ठ ! यह महा-भय कर्ण से सुना गया है, परन्तु उस धर्मात्मा ने इसका कुछ भी वर्णन नहीं किया ॥१-३॥

वैशम्पायन उवाच—

अथ ते राजशार्दूल कथयामि कथामिमाम् ।
पृच्छतो भरतश्रेष्ठ शुश्रूषस्व गिरं मम ॥४॥

वैशम्पायन बोले—हे भरत-वंश-श्रेष्ठ ! राज-शार्दूल ! अब तुमने इस प्रश्न को पूछ लिया। मैं तुमसे इस कथा को कहता हूं, तुम मेरी वाणी को ध्यान से सुनो ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वादशे समतिक्रान्ते वर्षे प्राप्ते त्रयोदशे ।
पाण्डूनां हितकृच्छक्रः कर्णं भिक्षितुमुद्यतः ॥५॥

जब पाण्डवों के वनवास के बारह वर्ष व्यतीत हो गए और तेरहवें वर्ष का आरम्भ हुआ, तो पाण्डवों का हितकारी, इन्द्र, कर्ण के पास भिक्षा के लिए जाने लगा ॥५॥

अभिप्रायमथो ज्ञात्वा महेन्द्रस्य विभावसुः ।
कुण्डलार्थे महाराज सूर्य्यः कर्णमुपागतः ॥६॥

हे महाराज ! कर्ण के पिता सूर्य ने जब अर्जुन के पिता इन्द्र का यह कुण्डल छीनने का दुष्ट अभिप्राय देखा, तो सूर्य कर्ण के पास पहुंचा ॥६॥

महार्हे शयने वीरं स्पद्ध्यास्तरणसंवृते ।
शयानमतिविश्वस्तं ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम् ॥७॥
स्वप्नान्ते निशि राजेन्द्र दर्शयामास रश्मिवान् ।
कृपया परयाविष्टः पुत्रस्नेहाच्च भारत ॥८॥

हे राजेन्द्र ! महा-मूल्यवाले, उत्तम २ बिस्तरों से युक्त, शयन पर सोते हुए, अत्यन्त विश्वासी, ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, वीर कर्ण को सूर्य ने स्वप्न में दर्शन दिए । हे भारत ! सूर्य अपना पुत्र होने के कारण कर्ण पर बड़ा स्नेह और कृपा रखता था ॥७-८॥

ब्राह्मणो वेदविद्भूत्वा सूर्य्यो योगर्द्धिरूपवान् ।
हितार्थमब्रवीत् कर्णं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥९॥

योग की समृद्धि के सम्पन्न, वेदपाठी ब्राह्मण बनकर सूर्य,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्ण को शान्ति के साथ समझाता हुआ, यह हितकारी वचन बोला ॥९॥

कर्ण मद्वचनं तात शृण सत्यभृताम्वर ।
ब्रुवतोऽद्य महाबाहो सौहृदात् परमं हितम् ॥१०॥

हे सत्य-व्रत-धारियोंमें श्रेष्ठ ! महाबाहो! तात! कर्ण ! मैं अपने प्रेम के कारण तुमसे एक अत्यन्त हितकारी वचन कहता हूं, तुम मेरे वचन को ध्यान से सुनना ॥१०॥

उपायास्यति शक्रस्त्वां पाण्डवानां हितेप्सया ।
ब्राह्मणच्छद्मना कर्ण कुण्डलोपजिहीर्षया ॥११॥

हे कर्ण ! पाण्डवों के हित की इच्छा से छल से ब्राह्मण का रूप धारण करके इन्द्र, कुण्डल छीननेके लिए तेरे पास आवेगा।

विदितं तेन शीलन्ते सर्वस्य जगतस्तथा ।
यथा त्वं भिक्षितः सद्भिर्ददास्येव न याचसे ॥१२॥

इन्द्र ही क्या ? सारे जगत् को तुम्हारा शील विदित है, कि तम योग्य व्यक्ति के मांगने पर उससे निषेध नहीं करते हो और किसी से कुछ मांगते नहीं हो ॥१२॥

त्वं हि तात ददास्येव ब्राह्मणेभ्यः प्रयाचितम् ।
वित्तं यच्चान्यदप्याहुर्न प्रत्याख्यासि कस्यचित् ॥१३

हे तात ! तुम ब्राह्मणों को "जो धन या अन्य कुछ वस्तु वे मांगते हैं" देते रहते हो और किसी से निषेध नहीं करते हो १३

त्वान्तु चैवं विधं ज्ञात्वा स्वयं वै पाकशासनः ।
आगन्ता कुण्डलार्थाय कवचञ्चैव भिक्षितुम् ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमको इस ढंग का देखकर स्वयं इन्द्र, कवच कुण्डल मांगने को आवेगा ॥१४॥

तस्मै प्रयाचमानाय न देये कुण्डले त्वया ।
अनुनेयः परं शक्त्या श्रेय एतद्धि ते परम् ॥१५॥

जब इन्द्र, कुण्डल मांगने आवे, तब तुम उसको कुण्डल नहीं देना। जहां तक हो सके, तुम उसकी प्रार्थना कर लेना, इसमें ही तुम्हारा बड़ा कल्याण अन्तर्हित है ॥१५॥

कुण्डलार्थे ब्रुवंस्तात कारणैर्बहुभिस्त्वया ।
अन्यैर्बहुविधैर्वित्तैः स निवार्य्यः पुनः पुनः ॥१६॥

हे तात ! कुण्डलों के मांगने के समय तुम अनेक कारण देकर तथा अन्य अनेक तरह के धन आदि देने का वचन देकर उसको निवृत कर देना ॥१६॥

रत्नैः स्त्रीभिस्तथा गोभिर्धनैर्बहुविधैरपि ।
निदर्शनैश्च बहुभिः कुण्डलेप्सुः पुरन्दरः ॥१७॥

रत्न, स्त्री, गौ, बहुत सा द्रव्य देकर और अनेक उतार चढ़ाव समझा कर इन्द्र, तुम से कुण्डल ले जाना चाहता है ॥१७॥

यदि दास्यसि कर्ण त्वं सहजे कुण्डले शुभे ।
आयुषः प्रक्षयं गत्वा मृत्योर्वशमुपैष्यसि ॥१८॥

हे कर्ण ! यदि तुमने जन्म के साथ उत्पन्न हुए सुन्दर कुण्डलों को इन्द्र के लिए दे दिया, तो तुम्हारी आयु क्षीण हो जावेगी और तुम मृत्यु के वश में पड़ जावोगे ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवचेन समायुक्तः कुण्डलाभ्याञ्च मानद ।
अवध्यस्त्व रणेऽरीणामिति विद्धि वचो मम ॥१९॥

हे मानदेनेवाले ! जो तुम कवच और कुण्डलों से युक्त रहोगे, तो रण में शत्रुओं से नहीं मारे जा सकोगे-यह मेरा वचन अच्छी तरह समझ लो ॥१९॥

अमृतादुत्थितं ह्येतदुभयं रत्नसम्भवम् ।
तस्माद्रक्ष्यं त्वया कर्ण जीवितञ्चेत् प्रियं तव ॥२०॥

हे कर्ण ! ये दोनों रत्नों से बने हुए कुण्डल अमृत से बनाए गए है । जो तुम अपने जीवन को प्रिय समझते हो, तो इनकी अवश्य रक्षा करना ॥२०॥

कर्ण उवाच—

को मामेवं भवान् प्राह दर्शयन् सौहृदं परम् ।
कामया भगवन् ब्रूहि को भवान् द्विजवेषधृक् ॥२१

कर्ण ने कहा—आप कौन हैं, जो बड़ा प्रेम प्रदर्शन करके इतना कह रहे हो । हे भगवन् ! आपकी इच्छा हो, तो बताओ कि ब्राह्मण-वेष-धारी आप कौन हैं ॥२१॥

ब्राह्मण उवाच—

अहं तात सहस्रांशुः सौहृदात् त्वां निदर्शये ।
कुरुष्वैतद्वचो मे त्वमेतच्छ्रेयः परं हि ते ॥२२॥

ब्राह्मण बोला—हे तात ! मैं सहस्र-किरण-धारी सूर्य हूं और अपने प्रेम के कारण तुमसे इतना कह रहा हूं । तुम मेरे इस वचन का अवश्य पालन करना । तुम्हारा इसी में परम कल्याण है ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्ण उवाच—

श्रेय एव ममात्यन्तं यस्य मे गोपतिः प्रभुः ।
प्रवक्ताद्य हितान्वेषी शृणु चेदं वचो मम ॥२३॥

कर्ण ने कहा—आज मुझे अत्यन्त कल्याण प्राप्त हो गया, जो किरणमाली, शक्तिमान् सूर्य, मेरे हित की इच्छा करके मुझे उपदेश दे रहा है। अब तुम मेरा वचन सुनो ॥२३॥

प्रसादये त्वां वरद प्रणयाच्च ब्रवीम्यहम् ।
न निवार्य्यो व्रतादस्मादहं यद्यस्मि ते प्रियः ॥२४

हे वरद ! मैं तुमको सन्तुष्ट रखना चाहता हूं, परन्तु प्रेम के साथ इतना निवेदन करता हूं, कि जो मैं आपको प्रिय हूं, तो आपको मुझे इस व्रत से विचलित नहीं करना चाहिए ॥२४॥

व्रतं वै मम लोकोऽयं वेत्ति कृत्स्नं विभावसो ।
यथाहं द्विजमुख्येभ्यो दद्यां प्राणानपि ध्रुवम् ॥२५

हे विभावसो ! सारा जगत् मेरे इस व्रत को जानता है, कि मैं उत्तम ब्राह्मणों को प्राणों तक का दान कर सकता हूं ॥२५॥

यद्यागच्छति मां शक्रो ब्राह्मणच्छद्मनावृतः ।
हितार्थं पाण्डुपुत्राणां खेचरोत्तम भिक्षितुम् ॥२६॥
दास्यामि विबुधश्रेष्ठ कुण्डले वर्म चोत्तमम् ।
न मे कीर्त्तिः प्रणश्येत त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥२७॥

हे आकाश-चारिन् ! देव-श्रेष्ठ ! यदि छल से ब्राह्मण का रूप धारण करके पांडवों के कल्याण के लिए इन्द्र मेरे पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिक्षा मांगने के लिए आ गए, तो मैं कुण्डल और उत्तम कवच प्रदान कर दूंगा, क्योंकि मैं यह चाहता हूं, कि त्रिलोकी में प्रसिद्ध हुई मेरी कीर्ति नष्ट न हो जावे ॥२६-२७॥

मद्विधस्यायशस्यं हि न युक्तं प्राणरक्षणम् ।
युक्तं हि यशसा युक्तं मरणं लोकसम्मतम् ॥२८॥

मुझ जैसे मनुष्य का निन्दा के साथ प्राणों की रक्षा करना उचित नहीं है। कीर्ति के साथ तो मर जाना भी ठीक है और ऐसा ही संसार मात्र का मत है ॥२८॥

सोऽहमिन्द्राय दास्यामि कुण्डले सह वर्मणा ।
यदि मां बलवृत्रघ्नो भिक्षार्थमुपयास्यति ॥२९॥

यदि बल और वृत्रासुर का मारने वाला इन्द्र, मेरे पास भिक्षा मांगने चला आया, तो मैं उसको कवच के साथ कुण्डल अवश्य प्रदान कर दूंगा ॥२९॥

हितार्थं पाण्डुपुत्राणां कुण्डले मे प्रयाचितुम् ।
तन्मे कीर्त्तिकरं लोके तस्याकीर्त्तिर्भविष्यति ॥३०॥

जो इन्द्र, पाण्डवों के हित के लिए मेरे पास कुण्डल मांगने आया और मैंने दे दिए,तो इससे मेरी तो कीर्ति होगी और इन्द्र का अपयश बढ़ जावेगा ॥३०॥

वृणोमि कीर्त्तिं लोके हि जीवितेनापि भानुमन् ।
कीर्त्तिमानश्नुते स्वर्गं हीनकीर्त्तिस्तु नश्यति ॥३१॥

हे सूर्य ! मैं अपने प्राण दान करके भी संसार में कीर्ति ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता हूं। जो कीर्तिमान होता है, वही स्वर्ग में जाता है और जिसकी कीर्ति नष्ट हो चुकी, वह तो स्वयं ही नष्ट है॥३१॥

कीर्त्तिर्हि पुरुषं लोके सञ्जीवयति मातृवत्।
अकीर्त्तिर्जीवितं हन्ति जीवतोऽपि शरीरिणः ॥३२॥

संसार में कीर्ति, माता की तरह जीवन प्रदान करती है और अपयश जीवित पुरुष के भी जीवन का नाश ही कर देता है ॥३२॥

अयं पुराणः श्लोको हि स्वयं गीतो विभावसो।
धात्रा लोकेश्वर यथा कीर्त्तिरायुर्नरस्य ह ॥३३॥

हे विभावसो! लोकेश्वर! स्वयं ब्रह्मा ने एक प्राचीन श्लोक कहा है, जिससे सिद्ध है, कि मनुष्य की आयु कीर्ति ही है॥३३॥

पुरुषस्य परे लोके कीर्त्तिरेव परायणम्।
इह लोके विशुद्धा च कीर्त्तिरायुर्विवर्द्धिनी ॥३४॥

परलोक में मनुष्य की कीर्ति ही रक्षक होती है और इस लोक में भी विशुद्ध कीर्ति आयु के बढ़ाने वाली है ॥३४॥

सोऽहं शरीरजे दत्वा कीर्त्तिं प्राप्स्यामि शाश्वतीम्।
दत्वा च विधिवद्दानं ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि॥३५॥
हुत्वा शरीरं संग्रामे कृत्वा कर्म सुदुष्करम्
विजित्य च परानाजौ यशः प्राप्स्यामि केवलम् ३६

मैं तो अपने शरीर के साथ उत्पन्न हुए कवच कुण्डलों को भी देकर नित्य कीर्ति की ही आकांक्षा रखता हूं। शास्त्र के कथना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुसार विधि-पूर्वक ब्राह्मणों को दान देकर और युद्ध में दुष्कर पराक्रम दिखाकर अपने शरीर का हवन कर दूंगा। इस प्रकार शत्रुओं को जीत कर मैं नित्य यश को प्राप्त कर सकूं ॥३५-३६॥

भीतानामभयं दत्वा संग्रामे जीवितार्थिनाम् ।
वृद्धान् बालान् द्विजातींश्च मोक्षयित्वा महाभयात् ॥
प्राप्स्यामि परमं लोके यशः स्वर्गमनुत्तमम् ।
जीवितेनापि मे रक्ष्या कीर्त्तिस्तद्विद्धि मे व्रतम् ॥३८

मैं जीवन चाहने वाले युद्ध में भयभीत पुरुषों को अभयदान देकर तथा वृद्ध, बालक और ब्राह्मणों को महा-भय से बचाकर इस लोक में महाकीर्ति और मृत्यु के बाद स्वर्ग प्राप्त करूंगा। मेरा तो यह व्रत ही है, कि मैं अपने प्राण देकर भी दान धर्म से उत्पन्न हुई कीर्ति की रक्षा करूं ॥३७--३८॥

सोऽहं दत्त्वा मघवते भिक्षामेतामनुत्तमाम् ।
ब्राह्मणच्छद्मिने देव लोके गन्ता परां गतिम् ॥३९॥

इतिश्रीमहाभारतआरण्यपर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि सूर्य्यकर्णसंवादे एकोनशताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२९९

हे देव ! छल से ब्राह्मण-रूप-धारी इन्द्र को इस उत्तम भिक्षा को देकर अन्त में परलोक सद्गति को प्राप्त करूंगा ॥३९॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत कुण्डलाहरणपर्व में सूर्य कर्ण के सम्वाद का दो सौ निन्यानवेवां अध्याय पूरा हुआ।

******

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन सौ वां अध्याय

सूर्य्य उवाच—

माहितं कर्ण कार्षीस्त्वमात्मनः सुहृदां तथा ।
पुत्राणामथ भार्य्याणामथो मातुरथो पितुः ॥१॥

सूर्य बोला—हे कर्ण ! तुम अपना, अपने प्रेमियों, पुत्र, भार्या और माता पिता का अहित न करो ॥१॥

शरीरस्याविरोधेन प्राणिभिः प्राणभृद्वर ।
इष्यते यशसः प्राप्तिः कीर्त्तिश्च त्रिदिवे स्थिरा ॥२॥

हे उत्तम-प्राण-धारी ! कर्ण ! मनुष्य, शरीर का नाश न करके इस लोक में यश और स्वर्गलोक में स्थिर कीर्ति की इच्छा करते हैं ॥२॥

यस्त्वं प्राणविरोधेन कीर्त्तिमिच्छसि शाश्वतीम् ।
सा ते प्राणान् समादाय गमिष्यति न संशयः ॥३॥

जो तुम अपने प्राणों का विरोध करके नित्य कीर्ति की अभिलाषा करते हो, यह कीर्ति तेरे प्राणों को लेकर चली जावेगी-इसमें सन्देह नहीं है ॥३॥

जीवतां कुरुते कार्य्यं पिता माता सुतस्तथा ।
ये चान्ये बान्धवाः केचिल्लोकेऽस्मिन् पुरुषर्षभ ॥४॥

हे पुरुषर्षभ ! अपने जीवित सम्बन्धियों से ही माता, पिता और पुत्र तथा अन्य बान्धव, इस लोक में प्रेम या प्रयोजन रखते हैं। मरे से किसी का क्या कार्य रह जाता है ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजानश्च नरव्याघ्र पौरुषेण निबोध तत् ।
कीर्त्तिश्च जीवतः साध्वी पुरुषस्य महाद्युते ॥५॥

हे नरव्याघ्र ! राजा लोग, पुरुषार्थ से ही अपने कार्य को प्राप्त करते हैं, तुम यह अच्छी तरह समझ लो। हे महाद्युते ! कीर्ति तो जीवित पुरुष को ही सुख देने वाली है ॥५॥

मृतस्य कीर्त्या किं कार्य्यं भस्मीभूतस्य देहिनः।
मृतः कीर्त्तिं न जानीते जीवन् कीर्त्तिं समश्नुते ॥६॥

जब देह ही भस्म हो गई, तो अब मरे हुए पुरुष को कीर्ति से क्या लाभ है। जो मर चुका - वह कीर्ति का क्या स्वाद उठा सकता है। जो जीवित है, वही कीर्ति का आनन्द लेता है॥६॥

मृतस्य कीर्त्तिर्मर्त्यस्य यथा माला गतायुषः ।
अहन्तु त्वां ब्रवीम्येतद्भक्तोऽसीति हितेप्सया ॥७॥

गतायु मनुष्य की कीर्ति, मृतक को माला पहनाने के बराबर है। तुम मेरे भक्त हो, इससे हित की इच्छा से ही मैंने तुमको इतना कहा है ॥७॥

भक्तिमन्तो हि मे रक्ष्या इत्येतेनापि हेतुना ।
भक्तोऽयं परया भक्त्या मामित्येव महाभुज ॥८॥

ममापि भक्तिरुत्पन्ना स त्वं कुरु वचो मम ।
अस्ति चात्र परं किञ्चिदध्यात्मं दैवनिर्मितम् ॥९॥

हे महाभुजधारी ! जो मेरी भक्ति रखता है, मैं उसकी रक्षा करता हूं। तू अत्यन्त भक्ति के साथ मेरा भक्त है, इन हेतुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मुझे भी तेरा प्रेम उत्पन्न हो गया, इसलिए तुम मेरे वचन को पूरा करो। इस विषय में दैव द्वारा रचा हुआ, कुछ आत्म-सम्बन्धी गुप्त रहस्य है ॥८-९॥

अतश्च त्वां ब्रवीम्येतत् क्रियतामविशङ्कया।
देवगुह्यं त्वया ज्ञातुं न शक्यं पुरुषर्षभ ॥१०॥

मैंने इन कारणों से ही इतना कहा है। तुम मेरे वचन को निःशङ्क होकर करो। हे पुरुषर्षभ! तुम देवों की गुप्त बातों को नहीं जान सकते हो ॥१०॥

तस्मान्नाख्यामि ते गुह्यं काले वेत्स्यति तद्भवान्।
पुनरुक्तश्च वक्ष्यामि त्वं राधेय निबोध तत् ॥११॥
मास्मै ते कुण्डलेऽदास्त्वं भिक्षिते वज्रपाणिना।
शोभसे कुण्डलाभ्याञ्च रुचिराभ्यां महाद्युते ॥१२॥

अब इसी कारण से देवों के गुप्त रहस्य को तुम पर नहीं खोलता हूं। तुम समय पर इस सब रहस्य को जान सकोगे। हे राधा-पुत्र! अब मैं फिर दुबारा तुम से कहता हूं, तुम अच्छी तरह समझ लो, कि वज्रपाणि इन्द्र के मांगने पर भी तुम इन कुण्डलों को कभी न देना। हे महाद्युते! तुम इन रुचिर कुण्डलों से बड़े ही सुशोभित होते हो ॥११-१२॥

विशाखयोर्मध्यगतः शशीव विमले दिवि।
कीर्त्तिश्च जीवतः साध्वी पुरुषस्येति विद्धि तत् ॥१३

निर्मल आकाश में विशाखा नक्षत्र के दो तारों के मध्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमा की भांति इन कुण्डलों के बीच में तुम्हारा मुख चमकता है। तुम यह अच्छी तरह समझ लो, कि कीर्ति तो जीवित पुरुष को ही सुख देने वाली होती है ॥१३॥

प्रत्याख्येयस्त्वया तात कुण्डलार्थे सुरेश्वरः ।
शक्या बहुविधैर्वाक्यैः कुण्डलेप्सा त्वयानघ ॥१४॥
विहन्तुं देवराजस्य हेतुयुक्तैः पुनः पुनः ।
हेतुमदुपपन्नार्थैर्माधुर्य्यकृतभूषणैः ॥१५॥

हे तात ! कुण्डलों के लिए हुए इन्द्र को तुम निषेध कर देना, हे अनघ ! तुमको अनेक हेतुवादों से युक्त सार्थक तथा माधुर्य से विभूषित, वचन कहकर इन्द्र के कुण्डलों की इच्छा का बारर विघात कर देना ही उचित है ॥१४-१५॥

पुरन्दरस्य कर्ण त्वं बुद्धिमेतामपानुद ।
त्वं हि नित्य नरव्याघ्र स्पर्द्धसे सव्यसाचिना॥१६॥

हे नर-व्याघ्र ! कर्ण ! तुमको इन्द्र की इस बुद्धि का तिरस्कार कर देना चाहिए, क्योंकि तुम तो नित्य अर्जुन से स्पर्धा (विजयी की इच्छा) रखते हो ॥१६॥

सव्यसाची त्वया चेह युधि शूरः समेष्यति।
न तु त्वामर्जुनः शक्तः कुण्डलाभ्यां समन्वितम् ॥
विजेतुं युधि यद्यस्य स्वयमिन्द्रः सखा भवेत् ।

एक दिन युद्ध में तेरा और शूरवीर अर्जुन का आमना सामना (मुकाबला) होना है। तुम कुण्डलों से युक्त अर्जुन को युद्ध में नहीं जीत सकोगे। इस पर अर्जुन का सहायक स्वयं इन्द्र है ।१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मान्न देये शक्राय त्वयैते कुण्डले शुभे।
संग्रामे यदि निर्जेतुं कर्ण कामयसेऽर्जुनम् ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि कुण्डलहरणपर्वणि सूर्य्यकर्णसंवादे त्रिशततमोऽध्यायः ॥३००॥

हे कर्ण ! यदि तुम युद्ध में अर्जुन के जीतने की आकांक्षा रखते हो तो तुमको इन्द्र के लिए कभी भी कवच कुण्डल नहीं देने चाहिए ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत कुण्डलाहरणपर्व में सूर्य और कर्ण के सम्वाद का तीन सौ वां अध्याय समाप्त हुआ।

*****

तीन सौ एकवां अध्याय

कर्ण उवाच—

भगवन्तमहं भक्तो यथा मां वेत्थ गोपते।
तथा परमतिग्मांशो नास्त्यदेयं कथञ्चन ॥१॥

कर्ण ने कहा—हे किरणमाली ! सूर्य ! मैं आपका परम भक्त हूं, जैसा कि आप स्वयं जानते भी हैं, तो भी मुझे ऐसी कोई उत्कृष्ट वस्तु प्रतीत नहीं होती है, जो मुझे ब्राह्मण को कभी अदेय हो सके ॥१॥

न मे दारा न मे पुत्रा न चात्मा सुहृदो न च।
यथेष्टा वै सदा भक्त्या यथा त्वं गोपते मम ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे सहस्रांशो ! मुझे स्त्री,पुत्र, मित्र और अपना शरीर भी इतना प्रिय नहीं है, जितना मैं भक्ति द्वारा आप से प्रेम करता हूं ॥२॥

इष्टानाञ्च महात्मानो भक्तानाञ्च न संशयः ।
कुर्वन्ति भक्तिमिष्टाञ्च जानीषे त्वञ्च भास्कर ॥३॥
इष्टो भक्तश्च मे कर्णो न चान्यद्दैवतं दिवि ।
जानीत इति वै कृत्वा भगवानाह मद्धितम् ॥४॥

हे भास्कर ! अपने प्रेमी भक्तों की प्रीति और रक्षा महात्मा करते ही हैं। यह तुम जानते हो, कि मेरा प्रिय भक्त, कर्ण है, जो स्वर्ग के अन्य देवता की उपासना जानता ही नहीं है। आप यह जानते हैं, इसी से आज मुझे मेरे हित का उपदेश कर रहे हैं ॥३--४॥

भूयश्च शिरसा याचे प्रसाद्य च पुनः पुनः ।
इति ब्रवीमि तिग्मांशो त्वन्तु मे क्षन्तुमर्हसि ॥५॥

हे तीक्ष्ण-किरण-धारी ! मैं आपको प्रसन्न करने के लिए शिर नवा कर प्रणाम करता हूं और कुछ कहना चाहता हूं--आप क्षमा करना ॥५॥

बिभेमि न तथा मृत्योर्यथा बिभ्येऽनृतादहम् ।
विशेषेण द्विजातीनां सर्वेषां सर्वदा सताम् ॥६॥
प्रदाने जीवितस्यापि न मेऽत्रास्ति विचारणा ।

हे भानो ! मैं जितना अनृत व्यवहार से डरता हूं, उतना कभी मृत्यु से भी नहीं डरता और सारे विद्वान् ब्राह्मणों के अपचार से

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मैं बड़ा ही डरता हूं। मैं इनको अपने प्राण का दान करने में कुछ सोच विचार नहीं करता हूं ॥६॥

यच्च मामात्थ देव त्वं पाण्डवं फाल्गुनं प्रति ॥७॥
व्येतु सन्तापजं दुःख तव भास्कर मानसम्।
अर्जुनं प्रति माञ्चैव विजेष्यामि रणेऽर्जुनम् ॥८॥

हे देव! जो तुमने यह कहा--तुमको पाण्डुपुत्र, अर्जुन से युद्ध करना है। हे भास्कर! इसकी तुमको अपने मन से चिन्ता हटा देनी चाहिए, क्योंकि मैं रण में अर्जुन को तो वैसे ही जीत लूंगा ॥७--८॥

तवापि विदितं देव ममाप्यस्त्रबलं महत्।
जामदग्न्यादुपात्तं यत् तथा द्रोणान्महात्मनः ॥९॥

हे देव! तुम स्वयं मेरे अस्त्र-बल को जानते हो, जो बहुत बड़ा है। मैंने यह अस्त्र-बल, जमदग्नि पुत्र, परशुराम और महात्मा द्रोण से प्राप्त किया है ॥९॥

इदं त्वमनुजानीहि सुरश्रेष्ठ व्रतं मम।
भिक्षते वज्रिणे दद्यामपि जीवितमात्मनः ॥१०॥

हे सुर-श्रेष्ठ! तुम तो मुझे इस व्रत की अनुज्ञा (इजाजत) दे दो, कि मांगने के लिए आये हुए इन्द्र को मैं अपना जीवन तक दे सकूं ॥१०॥

सूर्य्य उवाच—

यदि तात ददास्येते वज्रिणे कुण्डले शुभे।
त्वमप्येनमथो ब्रूया विजयार्थे महाबल ॥११॥
नियमेन प्रदद्यां ते कुण्डले ते शतक्रतो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य ने कहा—हे महाबली ! तात ! यदि तुम इन्द्र के लिए इन शुभ कुण्डलों को देना ही चाहते हो, तो तुम उससे अपने विजय के लिए इस प्रकार कहो। हे शतक्रतो ! मैं अपने नियम के अनुसार तुमको कुण्डल दे देता हूं ॥११॥

अवध्यो ह्यसि भूताना कुण्डलाभ्यां समन्वितः॥१२॥
अर्जुनेन विनाशं हि तव दानवसूदनः ।
प्रार्थयानो रणे वत्स कुण्डले ते जिहीर्षति ॥१३॥

हे वत्स ! कर्ण ! तुम इन कुण्डलों से युक्त हुए सारे चराचर प्राणियों में अवध्य हो। यह, दानवों का नाशक, इन्द्र, अर्जुन द्वारा रण में तेरा विनाश कराने के लिए ही उनको कुण्डलों का अपहरण करना चाहता है ॥१२--१३॥

स त्वमप्येनमाराध्य सूनृताभिः पुनः पुनः ।
अभ्यर्थयेथा देवेशममोघार्थं पुरन्दरम् ॥१४॥

तू भी इसकी मधुर और सत्यवाणी से आराधना करके देवराज इन्द्र से निष्फल नहीं जाने वाला शस्त्र माँग लेना ॥१४॥

अमोघां देहि मे शक्तिममित्रविनिवर्हिणीम् ।
दास्यामि ते सहस्राक्ष कुण्डले वर्म चोत्तमम् ॥१५।
इत्येव नियमेन त्वं दद्याः शक्राय कुण्डले ।
तया त्वं कर्ण संग्रामे हनिष्यसि रणे रिपून् ॥१६॥

हे वत्स ! तुम इन्द्र से कहना, कि हे इन्द्र ! मैं तुमको यह कवच और कुण्डल तो देता हूं, परन्तु आप भी मुझे शत्रुनाशिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई अमोघ शक्ति प्रदान करें। बस? तुम इसी नियम से इन्द्र के लिए कुण्डलों को देना! हे कर्ण! तुम इस शक्ति से भीषण संग्राम में शत्रुओं को मार सकोगे ॥१५-१६॥

नाहत्वा हि महाबाहो शत्रूनेति करं पुनः।
सा शक्तिर्देवराजस्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥१७॥

हे महाबाहो! देवराज इन्द्र की यह शक्ति छोड़ी हुई, सैकड़ों हजारों की संख्या में शत्रुओं के बिना मारे नहीं लौट सकती है ॥१७॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा सहस्रांशुः सहसान्तरधीयत।
ततः सूर्य्याय जप्यान्ते कर्णः स्वप्नं न्यवेदयत् ॥१८
यथादृष्टं यथातत्वं यथोक्तमुभयोर्निशि।
तत्सर्वमानुपूर्व्येण शशंसास्मै वृषस्तदा ॥१९॥

वैशम्पायन बोले—हे राजेन्द्र! इतना कहकर सूर्यदेव झटपट अलक्षित हो गए। जप करने के अनन्तर कर्ण ने भगवान् सूर्य को अपना स्वप्न सुनाया। कर्ण ने जो रातमें देखा, वह क्रमबद्ध, सारा स्वप्न सूर्य को सुना दिया ॥१९॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् देवो भानुः स्वर्भानुसूदनः।
उवाच तं तथेत्येव कर्णं सूर्य्यः स्मयन्निव ॥२०॥

यह सुनकर, राहुनाशक, भगवान् प्रकाशमान सूर्यदेव, कर्ण से मुस्कुराता हुआ बोला—यह जो दिखाई दिया है-वह ठीक ही है ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततस्तत्त्वमिति ज्ञात्वा राधेयः परवीरहा ।
शक्तिमेवाभिकाङ्क्षन् वै वासवं प्रत्यपालयन् ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि सूर्यकर्णसंवादे एकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०१॥

शत्रुओं के वीरों के नाशक, राधा-पुत्र, कर्ण ने इन सब बातों का तत्व समझ लिया और इन्द्र से शक्ति-शस्त्र माँगने का निश्चय करके उसकी प्रतीक्षा करने लगा ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत कुण्डलाहरणपर्व में सूर्य और कर्ण के सम्वाद का तीन सौ एकवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

*****

तीन सौ दोवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

किन्तद्गुह्यं न चाख्यातं कर्णायेहोष्णरश्मिना ।
कीदृशे कुण्डले ते च कवचञ्चैव कीदृशम् ॥१॥

जनमेजय बोले--हे ब्रह्मन् ! वह क्या गुप्त बात थी ? जो सूर्य ने कर्ण को नहीं सुनाई । ये कुण्डल कैसे थे और यह कवच कैसा था ? ॥१॥

कुतश्च कवचन्तस्य कुण्डले चैव सत्तम ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥२॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे द्विजश्रेष्ठ ! ये कवच और कुण्डल कर्ण को कहां से मिले। हे तपोधन ! मैं सब कुछ सुनना चाहता हूं-तुम मुझे कहो ॥२॥

वैशम्पायन उवाच—

अथ राजन् ब्रवीम्येतत्तस्य गुह्यं विभावसोः ।
यादृशे कुण्डले ते च कवचञ्चैव यादृशम् ॥३॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! मैं तुम्हें सूर्य के गुप्त रहस्य को सुनाता हूं और जिस तरह ये कुण्डल और कवच प्राप्त हुए-वह भी कहता हूं ॥३॥

कुन्तिभोजं पुरा राजन् ब्राह्मणः पर्य्युपस्थितः ।
तिग्मतेजा महाप्रांशुः श्मश्रुदण्डजटाधरः ॥४॥
दर्शनीयोऽनवद्याङ्गस्तेजसा प्रज्वलन्निव ।
मधुपिङ्गो मधुरवाक् तपःस्वाध्यायभूषणः ॥५॥

हे राजन् ! एक बार राजा कुन्ति-भोज के भवन पर कोई ब्राह्मण आया, जो बड़ा लम्बा चौड़ा, महातेजस्वी, दाढ़ी, मूंछ, दण्ड और जटाधारी था। यह सर्वाङ्गसुन्दर, देखने योग्य, तेज से देदीप्यमान, मधु के छत्ते के सदृश पीत-वर्ण-धारी, मीठी वाणी बोलने वाला, तप और स्वाध्याय से विभूषित था॥४-५॥

स राजानं कुन्तिभोजमब्रवीत् सुमहातपाः ।
भिक्षामिच्छामि वै भोक्तुं तव गेहे विमत्सर ॥६॥

इस महातपस्वी ने राजा कुन्ति-भोज के पास जाकर कहा-हे ईर्ष्या-द्वेष-रहित ! राजन् ! आज मैं आपके घर पर भिक्षा ग्रहण करके भोजन करना चाहता हूं ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत चित्र संख्या ४५

द्रौपदी—सत्यभामा सम्वाद

महा० वनपर्व अ० २३२।४

पृष्ठ २

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न मे व्यलीकं कर्त्तव्यं त्वया वा तव चानुगैः ।
एवं वत्स्यामि ते गेहे यदि ते रोचतेऽनघ ॥७॥

हे धर्मात्मन ! तुझे या तेरे सेवकों को मेरी इस याचना का भङ्ग नहीं करना चाहिए ! यदि तुम्हारी प्रसन्नता हो, तो मैं तुम्हारे घर पर निवास कर सकता हूं ॥७॥

यथाकामश्च गच्छेयमागच्छेयं तथैव च ।
शय्यासने च मे राजन्नापराध्येत कश्चन ॥८॥

हे राजन् ! मैं अपनी इच्छानुसार आऊंगा और इच्छानुसार जाऊंगा । सोने बैठने में कोई भी मनुष्य रुकावट डालकर मेरा अपराध न कर सके ॥८॥

तमब्रवीत् कुन्तिभोजः प्रीतियुक्तमिदं वचः ।
एवमस्तु परञ्चेति पुनश्चैनमथाब्रवीत् ॥९॥
मम कन्या महाप्राज्ञ पृथा नाम यशस्विनी ।
शीलवृत्तान्विता साध्वी नियता चैव भाविनी ॥१०

इस ब्राह्मण से कुन्ति-भोज ने बड़े प्रेम के साथ कहा-अच्छी बात है, परन्तु यह राजा फिर बोला--हे महाप्राज्ञ ! मेरी यशस्विनी कन्या का नाम पृथा है, जो बड़ी शीलवती, साध्वी, जितेन्द्रिय और उदार गुणों वाली स्त्री है ॥९-१०॥

उपस्थास्यति सा त्वां वै पूजयानवमन्य च ।
तस्याश्च शीलवृत्तेन तुष्टिं समुपयास्यसि ॥११॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह ही तुम्हारी सेवा में उपस्थित होगी। उसमें इतनी बुद्धि है, कि वह तुम्हारे आदर सत्कार में कोई अपमान या न्यूनता नहीं आने देगी। तुम इसके शील स्वभाव से बड़े सन्तुष्ट हो जावोगे ॥११॥

एवमुक्त्वा तु तं विप्रमभिपूज्य यथाविधि ।
उवाच कन्यामभ्येत्य पृथां पृथुललोचनाम् ॥१२॥

राजा,इस ब्राह्मण से इतना कहकर और इसकी विधि-पूर्वक पूजा करके, विशाल नेत्रोंवाली अपनी कन्या पृथा के पास पहुंचा और उससे कहने लगा ॥१२॥

अयं वत्से महाभागो ब्राह्मणो वस्तुमिच्छति ।
मम गेहे मया चास्य तथेत्येवं प्रतिश्रुतम् ॥१३॥

हे वत्से ! यह महानुभाव, ब्राह्मण-देव, मेरे घर पर निवास करना चाहते हैं और मैंने इनसे स्वीकार भी कर लिया है ॥१३

त्वयि वत्से पराश्वस्य ब्राह्मणस्याभिराधनम् ।
तन्मे वाक्यमभिथ्या त्वं कर्त्तुमर्हसि कर्हिचित् ॥१४

हे वत्से ! मैंने इस ब्राह्मण को सेवा से सन्तुष्ट कर लेने की योग्यता का तुम में विश्वास किया है। अब तुम मेरे वचनों को जिस तरह हो सके-पूरा कर दो ॥१४॥

अयं तपस्वी भगवान् स्वाध्यायनियतो द्विजः ।
यद्यद्ब्रूयान्महातेजास्तत्तद्देयममत्सरात् ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे पुत्रि ! यह ब्राह्मण वेद के स्वाध्यायमें संलग्न बड़ा तेजस्वी, तपस्वी है। यह जिस २ वस्तु की आकांक्षा करेगा, वही वस्तु इसको निश्छल भाव से देनी होगी ॥१५॥

ब्राह्मणो हि पुरं तेजो ब्राह्मणो हि परन्तपः।
ब्राह्मणानां नमस्कारैः सूर्य्यो दिवि विराजते ॥१६॥

ब्राह्मण स्वयं बड़ा तेज है और ब्राह्मण ही बड़ा भारी तप है। ब्राह्मणों की नमस्कारों से ही यह सूर्य आकाश में चमक रहा है ॥१६॥

अमानयन् हि मानार्हान् वातापिश्च महासुरः।
निहतो ब्रह्मदण्डेन तालजङ्घस्तथैव च ॥१७॥

वातापि महासुर, मान के योग्य, इन ब्राह्मणों का मान्य न करके ही ब्रह्मदण्ड से मारा गया और यही दशा तालजङ्घ असुर की हुई ॥१७॥

सोऽयं वत्से महाभाग आहितस्त्वयि साम्प्रतम्।
त्व सदा नियता कुर्य्या ब्राह्मणस्याभिराधनम् ॥१८

हे वत्से ! आज इस ब्राह्मण की अराधना का भार तुम्हारे ऊपर आ पड़ा है। अब तुम बड़ी नियम में रहकर इस ब्राह्मण की आराधना करो ॥१८॥

जानामि प्रणिधानन्ते बाल्यात् प्रभृति नन्दिनि।
ब्राह्मणेष्विह सर्वेषु गुरुबन्धुषु चैव ह ॥१९॥

हे पुत्रि ! मैं बचपन से तुम्हारी सावधानी को जानता हू, जो तुम ब्राह्मण और अपने पूज्य बन्धुओं में दिखाती रही हो ॥१९

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा प्रेष्येषु सर्वेषु मित्रसम्बन्धिमातृषु ।
मयि चैव यथातत्वं सर्वमादृत्य वर्त्तसे ॥२०॥

इसी तरह तुम, सारे सेवक, मित्र, सम्बन्धी, माता और मुझ पिता की सेवा में सावधानी दिखा रही हो। तुमने हम सबका यथायोग्य आदर करके व्यवहार किया है ॥२०॥

न ह्यतुष्टो जनोऽस्तीह पुरे चान्तःपुरे च ते।
सम्यग्वृत्यानवद्याङ्गि तव भृत्यजनेष्वपि ॥२१॥

हे सर्वाङ्ग-सुन्दरी ! तुमने अपने भृत्यजनों में इस उचित रीति से व्यवहार किया है, जिससे पुर या रनिवास में कोई ऐसा मनुष्य नहीं है, जो तुम से असन्तुष्ट हो ॥२१॥

सन्देष्टव्यान्तु मन्ये त्वां द्विजातिकोपनं प्रति ।
पृथे बालेति कृत्वा वै सुता चासि ममेति च ॥२२॥

मैंने तुमको इसीलिए सचेत किया है, कि तुम ब्राह्मण को कुपित न होने देना। हे पृथे ! अभी तुम बाला हो और मेरी पुत्री होने से मुझे प्रिय हो, इससे यह सूचना दी है ॥२२॥

वृष्णीनाञ्च कुले जाता शूरस्य दयिता सुता ।
दत्ता प्रीतिमता मह्यं पित्रा बाला पुरा स्वयम् ॥२३

तुम वृष्णि-कुल में उत्पन्न हुई, राजा शूरसेन की प्रिय-पुत्री हो। तुम्हारे पिता ने बड़ी प्रीति से जब तुम बालक थी, तभी मुझे गोद दे दिया ॥२३॥

वसुदेवस्य भगिनी सुतानां प्रवरा मम ।
अग्र्यमग्रे प्रतिज्ञाय तेनासि दुहिता मम ॥२४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम वसुदेव की बहन हो और मैं भी तुमको अपने पुत्रों से भी अधिक प्रिय जानता हूं। राजा शूरसेन ने प्रथम सन्तान को मुझे देने का वचन दे दिया था, इससे मेरी ही पुत्री हो गई हो ॥२४॥

तादृशे हि कुले जाता कुले चैव विवर्द्धिता ।
सुखात् सुखमनुप्राप्ता ह्रदात् ह्रदमिवागता ॥२५॥

तुम वृष्णियों के उत्तम कुल में उत्पन्न हुई हो और तुमने मेरे उत्तम कुल में वृद्धि पाई है। तुम एक सरोवर से द्वितीय सरोवर में पहुँचे हुए, जल की तरह वहां के सुख से इस सुख में चली आई हो ॥ २५ ॥

दौष्कुलेया विशेषेण कथञ्चित् प्रग्रहं गताः ।
बालभावाद्विकुर्वन्ति प्रायसः प्रमदाः शुभे ॥२६॥

हे शुभे ! जो दुष्कुल में उत्पन्न होते हैं, वे किसी बात का आग्रह करने पर उलटे विशेष अड़ जाते हैं और प्रायः करके बचपन के कारण स्त्रियां तो बहुत ही अड़ती रहती हैं ॥२६॥

पृथे राजकुले जन्म रूपञ्चापि तवाद्भुतम् ।
तेन तेनासि सम्पन्ना समुपेता च भाविनी ॥२७॥

हे पृथे ! तुम्हारा राजकुल में जन्म है और अद्भुत रूप है। इसी से तुम उन उन उत्तम गुणों से युक्त सर्वोत्तम स्त्री हो ॥२७॥

सा त्वं दर्पं परित्यज्य दम्भं मानञ्च भाविनि ।
आराध्य वरदं विप्रं श्रेयसा योक्ष्यसे पृथे ॥२८॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भाविनी ! पृथे ! तुम गर्व, दम्भ और अभिमान को छोड़कर इस वरदायी ब्राह्मण की सेवा करो, इससे तुमको बड़ा कल्याण प्राप्त होगा ॥२८॥

एवं प्राप्स्यसि कल्याणि कल्याणमनघे ध्रुवम् ।
कोपिते च द्विजश्रेष्ठे कृत्स्नं दह्येत मे कुलम् ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि पृथोपदेशे द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०२॥

हे सब पापों से रहित ! कल्याणि ! पृथे ! तुम इस प्रकार उत्तम स्थायी कल्याण प्राप्त कर सकोगी । जो तुमने ब्राह्मण को कुपित कर दिया, तो यह मेरे कुल को भस्म कर डालेगा ॥९२॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत कुण्डलाहरणपर्व में पृथा को उपदेश करने का तीन सौ दो वां अध्याय पूरा हुआ ।

****

तीन सौ तीन वां अध्याय

कुन्त्युवाच—

ब्राह्मणं यन्त्रिता राजन्नुपस्थास्यामि पूजया ।
यथाप्रतिज्ञं राजेन्द्र न च मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥१॥

कुन्ती ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप द्वारा नियुक्त की हुई, मैं ब्राह्मण की सेवा में तत्पर रहूंगी । मैं जो प्रतिज्ञा कर लूंगी-वैसा ही करूंगी, उसमें फिर मिथ्या नहीं बोलूँगी ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एष चैव स्वभावो मे पूजयेयं द्विजानिति ।
तव चैव प्रियङ्कार्य्यं श्रेयश्च परमं मम ॥२॥

मेरा तो यह स्वभाव ही है, कि मैं ब्राह्मणों की सेवा में सन्तुष्ट रहती हूं । इसमें तुम्हारी इच्छा और मेरा कल्याण अन्तर्हित है--यह तो और भी अच्छा है ॥२॥

यद्य वैष्यति सायाह्ने यदि प्रातरथो निशि ।
यद्यर्द्धरात्रे भगवान्न मे कोपं करिष्यति ॥३॥

यह तेजस्वी ब्राह्मण, प्रातःकाल, सायंकाल, रात, आधी रात कभी क्यों न आवे, मेरा कोप नहीं बढ़ा सकेगा ॥३॥

लाभो ममैष राजेन्द्र यद्वै पूजयती द्विजान् ।
आदेशे तव तिष्ठन्ती हितं कुर्य्यान्नरोत्तम ॥४॥

हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण की सेवा से तो मेरा ही परम कल्याण होगा। हे नरोत्तम ! तेरी आज्ञा का निर्वाह करती हुई, मैं आपका हित साधन अवश्य करूंगी ॥४॥

विश्रब्धो भव राजेन्द्र न व्यलीकं द्विजोत्तमः ।
वसन् प्राप्स्यति ते गेहे सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥५॥

हे राजेन्द्र ! अब तुम निश्चिन्त हो जाओ, यह ब्राह्मण आपके घर में निवास करता हुआ कोई कष्ट नहीं पा सकेगा'- यह मैं सत्य कहती हूं ॥५॥

यत् प्रियञ्च द्विजस्यास्य हितञ्चैव तवानघ ।
यतिष्यामि तथा राजन् व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥६॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! इस ब्राह्मण को जो प्रिय होगा तथा जिसमें तुम्हारा हित होगा-मैं वैसा ही प्रयत्न करूंगी। तुम अपने मन से चिन्ता को निकाल डालो ॥६॥

ब्राह्मणा हि महाभागाः पूजिताः पृथिवीपते ।
तारणाय समर्थाः स्युर्विपरीते वधाय च ॥७॥

हे पृथ्वीपते ! महाभाग ब्राह्मण अच्छी तरह पूजित हो जाने पर सारी विपत्तियों से उद्धार करने में समर्थ होते हैं और इनके असन्तुष्ट रहने पर विनाश होता है ॥७॥

साहमेतद्विजानन्ती तोषयिष्ये द्विजोत्तमम् ।
न मत्कृते व्यथां राजन् प्राप्स्यसि द्विजसत्तमात् ॥८

मैं यह सब कुछ समझती हूं-इससे इस ब्राह्मण को अवश्य सन्तुष्ट कर सकूंगी। हे राजन् ! तुम मेरे कारण से तो ब्राह्मण से कोई कष्ट पा नहीं सकोगे ॥८॥

अपराधेऽपि राजेन्द्र राज्ञामश्रेयसे द्विजाः ।
भवन्ति च्यवनो यद्वत् सुकन्यायाः कृते पुरा ॥९॥

हे राजेन्द्र ! अपराध करने पर ही द्विज, राजाओं का अकल्याण करने में प्रवृत होते हैं जैसे पूर्वकाल में सुकन्या के छेड़ने से च्यवन ऋषि ने राजा को हानि पहुंचाई होती ॥९॥

साह मेतद्विजानन्ती तोषयिष्ये द्विजोत्तमम् ।
यथा त्वया नरेन्द्रेदं भाषितं ब्राह्मणं प्रति ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे नरेन्द्र ! मैं बड़े नियम से ब्राह्मण की सेवा में तत्पर होऊंगी-जैसा कि तुमने ब्राह्मण की सेवा करने की आज्ञा दी है ॥१०॥

एवं ब्रुवन्तो बहुशः परिष्वज्य समर्थ्य च।
इति चेति च कर्त्तव्यं राजा सर्वमथादिशत् ॥११॥

इस प्रकार अनेक भांति से कहती हुई, कुन्ती का आलिङ्गन और उसका अनुमोदन करके राजा ने उसको सेवा करने की सारी विधि का यथा-शक्ति उपदेश दिया ॥११॥

राजोवाच—

एवमेतत् त्वया भद्रे कर्त्तव्यमविशङ्कया।
मद्धितार्थं तथात्मार्थं कुलार्थश्चाप्यनिन्दिते ॥१२॥

राजा बोला-हे भद्रे ! हे अनन्दिते ! तुमको शङ्का छोड कर मेरे अपने और कुल के हित के लिए यह सब कुछ करना चाहिए ॥

एवमुक्त्वातु तां कन्यां कुन्तिभोजो महायशाः।
पृथां परिददौ तस्मै द्विजाय द्विजवत्सलः ॥१३॥

महायशस्वी, ब्राह्मण-भक्त, कुन्ती-भोज ने इतना कहकर उस ब्राह्मण के लिए अपनी पुत्री कुन्ती को समर्पण कर दिया ॥१३॥

इयं ब्रह्मन् मम सुता बाला सुखविवर्द्धिता।
अपराध्येत यत् किञ्चिन्न कार्य्यं हृदि तत् त्वया ॥१४॥

हे ब्रह्मन् ! यह मेरी बाला पुत्री, बड़े लाड़ चाव में पली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे कोई अपराध बन आवे, तुम कोई ऐसे कठिन कार्य में इसे प्रवृत करने की मन में भी न विचारना ॥१४॥

द्विजातयो महाभागा वृद्धबालतपस्विषु ।
भवन्त्यक्रोधनाः प्रायो ह्यपराधेषु नित्यदा ॥१५॥

महाभाग ब्राह्मण तो वृद्ध, बालक और तपस्वियों के अपराध करने पर भी प्रायः उन पर क्रोध नहीं किया करते हैं ॥१५॥

सुमहत्यपराधेऽपि क्षान्तिः कार्य्या द्विजातिभिः ।
यथाशक्ति यथोत्साहं पूजा ग्राह्या द्विजोत्तम ॥१६॥

हे द्विजोत्तम ! बड़ा अपराध हो जाने पर भी सच्चे ब्राह्मणों को क्षमा ही करनी चाहिए और जो यथाशक्ति और उत्साह के साथ जितनी पूजा कर सके-उतनी ही पूजा को प्रेम से स्वीकार कर लेना चाहिए ॥१६॥

तथेति ब्राह्मणेनोक्ते स राजा प्रीतमानसः ।
हंसचन्द्रांशुसङ्काशं गृहमस्मै न्यवेदयत् ॥१७॥

ब्राह्मण ने भी बड़े प्रसन्न चित्त से राजा के कथन की स्वीकृति दे दी । अब राजा ने इस ब्राह्मण को हंस और चन्द्र किरणों के समान उज्ज्वल, भवन, निवास के लिए समर्पण कर दिया ॥ १७ ॥

तत्राग्निशरणे क्लिप्तमासनं तस्य भानुमत् ।
आहारादि च सर्वं तत् तथैव प्रत्यवेदयत् ॥१८॥

इस ऋषि के लिए हवन-मण्डप में दीप्तिमान् आसन बिछाया गया और इसी तरह भोजन आदि का भी बड़े उत्तम ढंग से प्रबन्ध कर दिया गया ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निक्षिप्य राजपुत्री तु तन्द्रीं मानं तथैव च ।
आतस्थे परमं यत्नं ब्राह्मणस्याभिराधने ॥१९॥

राजपुत्री अपने आलस्य और अभिमान को छोड़कर बड़े यत्न से ब्राह्मण की सेवा में तत्पर हुई ॥१९॥

तत्र सा ब्राह्मणं गत्वा पृथा शौचपरा सती ।
विधिवत् परिचारार्हं देववत् पर्य्यतोषयत् ॥२०॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि पृथाद्विजपरिचर्य्यायां त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०३॥

बड़े स्नान आदि से अपनी शुद्धि करके कुन्ती उस ऋषि के पास पहुंची और सेवा के योग्य ऋषि की विधि-पूर्वक देवों के सदृश्य पूजा करने लगी ॥२०॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत कुण्डलाहरणपर्व में कुन्ती का ब्राह्मण की सेवा में तत्पर होने का तीन सौ तीनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तीन स चारवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

सा तु कन्यां महाराज ब्राह्मणं संशितव्रतम् ।
तोषयामास शुद्धेन मनसा संशितव्रता ॥१॥

वैशम्यापन बोले—हे महाराज ! इस व्रतशील कन्या ने प्रशंसित-व्रत-धारी ब्राह्मण को शुद्ध मन से बड़ा सन्तुष्ट किया ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रातरेष्याम्यथेत्युक्त्वा कदाचित् द्विजसत्तमः ।
तत आयाति राजेन्द्र सायं रात्रावथो पुनः ॥२॥

हे राजेन्द्र! यह द्विज-श्रेष्ठ कभी यह कह कर चला जाता, कि प्रातःकाल आऊँगा, परन्तु यह फिर कभी सायङ्काल में आता और कभी रात को आता ॥ २ ॥

तञ्च सर्वासु वेलासु भोज्यभोज्यप्रतिश्रयैः ।
पूजयामास सा कन्या वर्द्धमानैस्तु सर्वदा ॥३॥

इस ब्राह्मण को प्रत्येक समय में भोजन, पान की सामग्री और शयन, आसन आदि समर्पण करके कुन्ती इसकी पूजा करने लगी। यह भोजन आदि नित्य बढ़ाती जाती थी और उस में कोई त्रुटि नहीं आने देती ॥३॥

अन्नादिसमुदाचारः शय्यासनकृतस्तथा ।
दिवसे दिवसे तस्य वर्द्धते न तु हीयते ॥४॥

अन्नादि का समर्पण और शयन आसन का ठीक २ प्रबन्ध करना प्रतिदिन उत्तम ही होता जाता था, उसमें कोई कमी नहीं पड़ती थी ॥४॥

निर्भर्त्सनापवादैश्च तथैवाप्रियया गिरा ।
ब्राह्मणस्य पृथा राजन्न चकाराप्रियन्तदा ॥५॥

हे राजन्! किसी प्रकार की फटकार, निन्दा और अप्रिय वाणी द्वारा कुन्ती ने कभी ब्राह्मण को क्लेशित नहीं किया ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यस्ते काले पुनश्चैति न चैति बहुशो द्विजः ।
सुदुर्लभमपि ह्यन्नं दीयतामिति सोऽब्रवीत् ॥६॥
कृतमेव च तत्सर्वं पृथा तस्मै न्यवेदयत् ।
शिष्यवत् पुत्रवच्चैव स्वसृवच्च सुसंयता ॥७॥

यह ब्राह्मण पृथक् २ समयों पर आता और कभी आता ही नहीं था। यह बड़े दुर्लभ भोजन को मांग बैठता था, परन्तु बड़ी शीघ्रता से कुन्ती सबको उपस्थित कर देती थी। यह कुन्ती, शिष्य, पुत्र और बहन जैसे सेवा करती हैं, उसी तरह सेवा में बड़े नियम से तत्पर रहती थी ॥६--७॥

यथोपजोषं राजेन्द्र द्विजातिप्रवरस्य सा ।
प्रीतिमुत्पादयामास कन्यारत्नमनिन्दिता ॥८॥

हे राजेन्द्र ! उस उत्तम ब्राह्मण की इच्छा के अनुसार सेवा करने से सब तरह प्रशंसनीय कन्या-श्रेष्ठ कुन्ती ने ब्राह्मण को प्रसन्न कर लिया ॥८॥

तस्यास्तु शीलवृत्तेन तुतोष द्विजसत्तमः ।
अवधाने च भूयोऽस्याः परं यत्नमथाकरोत् ॥९॥

यह ऋषि-श्रेष्ठ, कन्या की शान्ति और सेवा से बड़ा सन्तुष्ट हुआ। इसने फिर एकाग्र में इस कुन्ती के कल्याण के लिए बड़ा यत्न किया ॥९॥

तां प्रभाते च सायञ्च पिता पप्रच्छ भारत ।
अपि तुष्यति ते पुत्रि ब्राह्मणः परिचर्यया ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भारत ! इसका पिता प्रातः सायं यह पूछता रहता था, कि पुत्रि ! क्या तेरी सेवा से ब्राह्मण, सन्तुष्ट हो गए ॥१०॥

तं सा परममित्येव प्रत्युवाच यशस्विनी ।
ततः प्रीतिमवापाग्र्यां कुन्तिभोजो महामनाः ॥११।

इस यशस्विनी कुन्ती ने कहा—हां ? ब्राह्मण अत्यन्त सन्तुष्ट हो चुका है । महामना कुन्ती-भोज, यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ ॥११॥

ततः सम्वत्सरे पूर्णे यदासौ जपताम्वरः ।
नापश्यद् दुष्कृतं किञ्चित् पृथायाः सौहृदे रतः ॥१२

जपशील ब्राह्मण, जब एक सम्वत्सर के पूर्ण होने तक कुन्ती का कोई अपराध नहीं देख पाया, तो यह इससे प्रीति करने लगा ॥१२॥

ततः प्रीतमना भूत्वा स एनां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
प्रीतोऽस्मि परमं भद्रे परिचारेण ते शुभे ॥१३॥

एक दिन प्रसन्न होकर ब्राह्मण ने इस कन्या से कहा—हे शुभानने ! भद्रे ! मैं तेरी सेवा से बड़ा ही सन्तुष्ट हो गया हूं १३

वरान् वृणीष्व कल्याणि दुरापां मानुषैरिह ।
यैस्त्वं सीमन्तिनीः सर्वा यशसाभिभविष्यसि ॥१४।

कल्याणि ! अब तुम मनुष्यों को दुर्लभ, वर मांग सकती हो, जिन वरों के कारण से तुम सारी स्त्रियों का अतिक्रमण कर सकोगी ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुन्त्युवाच—

कृतानि मम सर्वाणि यस्या मे वेदवित्तम ।
त्वं प्रसन्नः पिता चैव कृतं विप्र वरैर्मम ॥१५॥

कुन्ती ने कहा—हे वेदपाठियों में श्रेष्ठ ! विप्रवर ! मैंने सब कुछ पा लिया, जो तुम मेरे पिता और मुझ से प्रसन्न हो गए हो।

ब्राह्मण उवाच—

यदि नेच्छसि मत्तस्त्वं वरं भद्रे शुचिस्मिते ।
इमं मन्त्रं गृहाण त्वमाह्वानाय दिवौकसाम् ॥१६॥

ब्राह्मण ने कहा—हे सुन्दर मुस्कुराने वाली ! भद्रे ! यदि तुम मुझ से इस समय कोई वर नहीं मांगती हो, तो लो ? मैं तुमको एक मन्त्र देता हूं, तुम देवों के आह्वानके लिए इस मन्त्रको ग्रहण कर लो ॥१६॥

यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि ।
तेन तेन वशे भद्रे स्थातव्यन्ते भविष्यति ॥१७॥

हे भद्रे ! तुम जिस २ देवता को इस मन्त्र से बुलाओगी-वही देवता तेरे वश में हो जावेगा ॥१७॥

अकामो वा सकामो वा स समेष्यति ते वशम् ।
विबुधो मन्त्रसंशान्तो भवेद्भृत्य इवानतः ॥१८॥

मन्त्र से शान्त हुआ, कोई भी देवता, चाहे वह तेरी अभिलाषा करे या न करे, तेरे वश में अवश्य हो जावेगा और भृत्य की तरह तेरे सामने आकर झुक जावेगा ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

न शशाक द्वितीयं सा प्रत्याख्यातुमनिन्दिता ।
तं वै द्विजातिप्रवरं तदा शापभयान्नृप ॥१९॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! सर्व-गुण-सम्पन्न, कुन्ती, शाप के भय से द्विज-श्रेष्ठ के इस द्वितीय आग्रह का निषेध नहीं कर सकी ॥१९॥

ततस्तामनवद्याङ्गीं ग्राहयामास स द्विजः ।
मन्त्रग्रामं तदा राजन्नथर्वशिरसि श्रुतम् ॥२०॥

हे राजन् ! अब इस ब्राह्मण ने अथर्ववेद के श्रेष्ठ भाग में विद्यमान मन्त्र-समूह को सर्वाङ्ग-सुन्दरी कुन्ती के लिए अर्पण कर दिया ॥२०॥

तं प्रदाय तु राजेन्द्र कुन्तिभोजमुवाच ह ।
उषितोऽस्मि सुखं राजन् कन्यया परितोषितः ॥२१॥

हे राजेन्द्र ! यह ऋषि, कुन्ती को मन्त्रसमूह प्रदान करके, कुन्ति-भोज से बोला-हे राजन् ! मैं यहां बड़े सुख से रहा, इस कन्या ने मुझे बड़ा सन्तुष्ट किया है ॥२१॥

तव गेहेषु विहितः सदा सुप्रतिपूजितः ।
साधयिष्यामहे तावदित्युक्त्वान्तरधीयत ॥२२॥

हे राजन् ! मैं तुम्हारे भवन में बड़ी उत्तम रीति से पूजित होकर बहुत अधिक तृप्त हो गया हूं । अब हम चलते हैं-इतना कह कर वे ऋषि-श्रेष्ठ, अलक्षित हो गए ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तु राजा द्विजं दृष्ट्वा तत्रैवान्तर्हितं तदा ।
बभूव विस्मयाविष्टः पृथाञ्च समपूजयत् ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि पृथामन्त्रप्राप्तौ चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०४॥

राजा उसी स्थान पर इस द्विज को अन्तर्हित होता देखकर बड़ा अचम्भित हुआ और इसने कुन्ती का बड़ा ही आदर किया

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत कुण्डलाहरणपर्व में कुन्ती के मन्त्र प्राप्त करने का तीन सौ चारवां अध्याय समाप्त हुआ।

*****

तीन सौ पांचवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

गते तस्मिन् द्विजश्रेष्ठे कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।
चिन्तयामास सा कन्या मन्त्रग्रामबलाबलम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! इस ब्राह्मण-श्रेष्ठ के चले जाने पर किसी कारण से कुन्ती के चित्त में खयाल आया कि मैं इन मन्त्र-समूह के बल और शक्ति के विषय में अनुभव करूं ॥१॥

अयं वै कीदृशस्तेन मम दत्तो महात्मना ।
मन्त्रग्रामो बलं तस्य ज्ञास्ये नातिचिरादिति ॥२॥

इस महात्मा ने मुझे कैसा मन्त्र-समूह प्रदान किया है, मैं इसका बहुत ही शीघ्र बलाबल जानना चाहती हूं ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं सञ्चिन्तयन्ती सा ददर्शत्तु यदृच्छया ।
व्रीडिता साभवद् बाला कन्याभावे रजस्वला ॥३॥

इस ने इतना विचारा ही था, कि यह अचानक रजस्वला हो गई। कन्यावस्था में ही रजस्वला होने से कुन्ती कुछ लज्जित सी हुई ॥३॥

ततो हर्म्यतलस्था सा महार्हशयनोचिता ।
प्राच्यां दिशि समुद्यन्तं ददर्शादित्यमण्डलम् ॥४॥

अत्यन्त-मूल्य-वाले शयनों पर सोने वाली कुन्ती, एक दिन अपने महल की छत पर खड़ी हुई थी। इसी समय इसने पूर्व दिशा में उदय होते हुए, सूर्य मण्डल को देखा ॥४॥

तत्र बद्धमनोदृष्टिरभवत् सा सुमध्यमा ।
न चातप्यत रूपेण भानोः सन्ध्यागतस्य सा ॥५॥

सूर्य मण्डल के देखते ही इस का मन और दृष्टि, इसकी ओर खिंचते चले गए। इस समय प्रातःकाल की सन्धि में उदय होते हुए सूर्य को देखती हुई कुन्ती तृप्त नहीं होती थी। ॥५॥

तस्या दृष्टिरभूद्दिव्या सापश्यद्दिव्यदर्शनम् ।
आमुक्तकवचं देवं कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ॥६॥

अब कुन्ती की दृष्टि भी दिव्य हो गई और इसने सूर्य मण्डल में बड़े दिव्य दर्शनों वाला, कवच पहनेहुए, कुण्डलों से विभूषित, एक पुरुष देखा ॥६॥

तस्याः कौतूहलं त्वासीन्मन्त्रं प्रति नराधिप ।
आह्वानमकरोत् साथ तस्य देवस्य भाविनी ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! इस समय इसको अपने मन्त्र-ग्राम के अनुभव करने की सूझी। इस सुन्दरी ने इस समय इन सूर्यदेव का आह्वान कर लिया ॥७॥

प्राणानुपस्पृश्य तदा ह्याजुहाव दिवाकरम् ।
आजगाम ततो राजंस्त्वरमाणो दिवाकरः ॥८॥

हे राजन ! कुन्ती ने आचमन और प्राणायाम करके सूर्य का आह्वान किया। इसके आह्वान से सूर्यदेव बड़ी शीघ्रता से वहां आ पहुँचे ॥२॥

मधुपिङ्गो महाबाहुः कम्बुग्रीवो हसन्निव ।
अङ्गदी बद्धमुकुटो दिशः प्रज्वालयन्निव ॥९॥
योगात् कृत्वा द्विधात्मानमाजगाम ततापच ।
आबभाषे ततः कुन्तीं साम्ना परमवल्गुना ॥१०॥

बड़ी २ विशाल भुजाओंका धारी, मधु के छत्ते के सदृश पीत-वर्ण, शंख के समान कण्ठ से सुन्दर, अङ्गद, (बाजूबन्द) भूषण पहने हुए, मुकुटधारी, दिशाओं को जलाता हुआ सा सूर्यदेव, अपनी योगमाया से अपने शरीर के दो भाग करके एक से यहाँ आया और एक से संसार को प्रकाश देता रहा। इसने आकर बड़े मीठे शब्दों में शान्ति के साथ कुन्तीसे कहा ॥९-१०॥

आगतोऽस्मि वशं भद्रे तव मन्त्रबलात्कृतः ।
किङ्करोम्यवशो राज्ञि ब्रूहि कर्त्ता तदस्मि ते ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भद्रे ! मैं तेरे मन्त्रों के बल के परवश होकर यहाँ आ पहुँचा हूँ। हे रानी ! अब मैं तेरे अधीन हूँ; तुम जो आज्ञा करोगी--मैं वही पूरा करूँगा ॥११॥

कुन्त्युवाच-

गम्यतां भगवंस्तत्र यत एवागतो ह्यसि ।
कौतूहलात् समाहूतः प्रसीद भगवन्निति॥१२॥

कुन्ती ने कहा—हे भगवन् ! आप वापिस ही जहां से आए हैं, पधारें। मैंने तो अपने बचपन के कारण खेल की इच्छा से तुमको बुला लिया। अब आप रुष्ट न होकर लौट जावें ॥१२॥

सूर्य्य उवाच—

गमिष्येऽहं यथा मां त्वं ब्रवीषि तनुमध्यमे ।
न तु देवं समाहूय न्याय्यं प्रेषयितुं वृथा ॥१३॥

सूर्य बोले---हे कृश-कटि--वाली ! तुम जो कह रही हो, मैं वही करूंगा, वापिस लौट जाऊंगा, परन्तु तुमको किसी देवता को वृथा बुलाकर वापिस भेजना उचित नहीं है ॥१३॥

तवाभिसन्धिः सुभगे सूर्य्यात् पुत्रो भवेदिति ।
वीर्य्येणाप्रतिमो लोके कवची कुण्डलीति च ॥१४॥

हे सुभगे ! तुम्हारे मन में एक इच्छा है, कि मेरे सूर्य के तुल्य पुत्र, उत्पन्न हो। जो जगत् में बेजोड़ पराक्रम रखने वाला और जन्म से कवच कुण्डल धारी ही उत्पन्न होवे ॥१४॥

सा त्वमात्मप्रदानं वै कुरुष्व गजगामिनि ।
उत्पत्स्यति हि पुत्रस्ते यथासङ्कल्पमङ्गने ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे हाथी के समान गतिवाली ! सुन्दरि ! अब तुम अपने आपको मुझे समर्पण करो। हे कुन्ती ! इस तरह तुम जैसा पुत्र चाहती हो उसके अनुसार पुत्र उत्पन्न हो जावेगा ॥ १५ ॥

अथ गच्छाम्यहं भद्रे त्वया सङ्गम्य सुस्मिते ।
यदि त्वं वचनं नाद्य करिष्यसि मम प्रियम् ॥१६॥
शपिष्ये त्वामहं क्रुद्धो ब्राह्मणं पितरञ्च ते ।
त्वत्कृते तान् प्रधक्ष्यामि सर्वानपि न संशयः ॥१७॥

हे सुन्दर-मुस्कुराने-वाली ! भद्रे ! मैं तुमसे संगम करके लौट जाऊंगा—जो तुम आज मेरे वचन को पूरा नहीं करोगी—तो क्रुद्ध होकर तुमको, तुम्हारे पिता और उस ब्राह्मण को शाप दे डालूंगा। तेरे कारण से ही मैं इन सबको भस्म कर दूंगा--इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६–१७ ॥

पितरञ्चैव ते मूढं यो न वेत्ति तवानयम् ।
तस्य च ब्राह्मणस्याद्य योऽसौ मन्त्रमदात्तव ॥१८॥
शीलवृत्तमविज्ञाय धास्यामि विनयं परम् ।

मैं तुझे ही नहीं तेरे मूर्ख पिता को भी भस्म करूंगा—जो तेरी इस कुटिलता को नहीं जानता है। इसके बाद उस ब्राह्मण का नाश करूंगा--जिसने तेरे शील आचरण को बिना जाने तुमको मन्त्र प्रदान कर दिए। अब मैं तुझमें विनय (नम्रता) रख कर ही छोड़ूंगा ॥ १८ ॥

एते हि विबुधाः सर्वे पुरन्दरमुखा दिवि ॥१९॥
त्वया प्रलब्धं पश्यन्ति स्मयन्त इव भाविनि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भाविनि ! ये सारे इन्द्र आदि देवता, आकाश में खड़े हुए, तुम्हारे द्वारा मुझ बहकाये हुए की हंसी सी कर रहे हैं ॥१९॥

पश्य चैनान् सुरगणान् दिव्यश्चक्षुरिदं हि ते ।
पूर्वमेव मया दत्तं दृष्टवत्यसि येन माम् ॥२०॥

तू भी इन देवों के देख ले—क्योंकि तेरे भी दिव्य आंखें हैं। मैंने तुझे पूर्व में ही दिव्य-दृष्टि दे दी है, जिससे तू मुझे देख सकी है ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच—

ततोऽपश्यत्त्रिदशान्राजपुत्री सर्वानेव स्वेषु धिष्ण्येषु खस्थान्
प्रभासन्तं भानुमन्तं महान्तंयथादित्यं रोचमानांस्तथैव २१।

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! राजपुत्री कुन्ती ने अपने २ अधिकारानुसार स्थानों पर आकाश में स्थित, प्रभावान, किरण-धारी, महान चमकते हुए सूर्य की तरह चमकते हुए, उन सारे देवों को देखा ॥ २१ ॥

सा तान् दृष्ट्वाव्रीडमानेव बाला सूर्य्यं देवी वचनं प्राह भीता
गच्छत्वंवैगोपते स्वंविमानं कन्याभावाद् :खंएषोऽपचारः ॥

कुछ लज्जित सी हुई सुन्दरी कुन्ती देवी, सूर्य और उन देवों को देख कर डर गई और कहने लगी। हे किरणों के स्वामी ! अब तुम अपने विमान पर चढ़ जावो। मुझे बड़ा दुःख है, कि मेरे बचपन के कारण मुझसे तुम्हारा अपराध बन गया ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता माता गुरवश्चैव येऽन्ये देहस्यास्य प्रभवन्ति प्रदाने।
नाहं धर्मं लोपयिष्यामि लोके स्त्रीणां वृत्तं पूज्यते देहरक्षा२३

माता पिता या अन्य पूज्य लोग, इस शरीर के प्रदान करने में समर्थ हैं। मैं अपने धर्म का लोप नहीं करूंगी। संसार में स्त्री के आचार और शरीर को कुकर्मों से बचा लेने की ही पूजा है॥ २३॥

मया मन्त्रबलं ज्ञातुमाहूतस्त्वं विभावसो।
बाल्याद्बालेति तत् कृत्वा क्षन्तुमर्हसि मे विभो॥२४

हे विभावसो! मैंने मन्त्र का बल जानने के लिए ही तुमको बुलाया था, अब जो मुझ मूर्खा ने अज्ञान के कारण अपराध कर लिया—आपको उसे क्षमा कर देना चाहिए॥ २४॥

सूर्य्य उवाच—

बालेति कृत्वानुनयं तवाहं ददानि नान्यानुनयं लभेत।
आत्मप्रदानं कुरु कुन्तिकन्ये शान्तिस्तवैव हि भवेच्च भीरु२५

सूर्य ने कहा—हे कुन्ति! कन्ये! तुम बालक हो—इससे मैं भी तुमसे प्रार्थना करता हूं। मेरी प्रार्थना को अन्य कोई स्त्री नहीं पा सकती है। हे भीरु! तुम अब अपने आपको समर्पण कर दो—जिससे तुम्हें इस झगड़े से शान्ति मिल जावे॥ २५॥

न चापि गन्तुं युक्तं हि मया मिथ्याकृतेन वै।
असमेत्य त्वया भीरु मन्त्राहूतेन भाविनि॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भीरु! भाविनि! मन्त्र से आह्वान किया हुआ मैं अब तुमसे बिना संगम किये नहीं लौट सकता हूं। तुमसे बिना मिले लौटने में तो मेरा आना जाना ही वृथा हो जाता है ॥२६॥

गमिष्याम्यनवद्याङ्गि लोके समवहास्यताम् ।
सर्वेषां विबुधानाञ्च वक्तव्यः स्यां तथा शुभे ॥२७॥

हे सर्वाङ्ग--सुन्दरि! इस तरह तो संसार में मेरी बड़ी हँसी होगी और ये सारे देवता भी मेरी बडी हंसी उड़ावेंगे या निन्दा सी करेंगे ॥ २७ ॥

सा त्वं मया समागच्छ पुत्रं लप्स्यसि मादृशम् ।
विशिष्टा सर्वलोकेषु भविष्यसि न संशयः ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि पृथासूर्याह्वाने पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०५॥

हे कुन्ति! अब तो तुमको मुझ से संगम करना पड़ेगा, इससे तुम्हारे मेरे सदृश पुत्र उत्पन्न होगा। तुम सारे संसार में अन्य स्त्रियों से विशेष हो जाओगी-इसमें सन्देह नहीं है ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत कुण्डलाहरणपर्व में कुन्ती के सूर्य के आह्वान का तीन सौ पांचवां अध्याय पूरा हुआ।

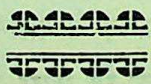

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन सौ छःवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

सा तु कन्या बहुविधं ब्रुवन्ती मधुरं वचः ।
अनुनेतुं सहस्रांशुं न शशाक मनस्विनी ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! यह मनस्विनी कन्या अब भी अनेक मधुर वचन कहकर सहस्र-किरण-धारी सूर्य को इस कर्म से हटाना चाहती थी, परन्तु इसके हटाने में समर्थ नहीं हो सकी।

न शशाक यदा बाला प्रत्याख्यातुं तमोनुदम् ।
भीता शापात्ततो राजन् दध्यौ दीर्घमथान्तरम् ॥२॥
अनागसः पितुः शापो ब्राह्मणस्य तथैव च ।
मन्निमित्तः कथं न स्यात् क्रुद्धादस्माद्विभावसोः ॥३॥

जब सुन्दरी कुन्ती, अन्धकार-नाशक सूर्यको प्रसन्नता के साथ नहीं हटा सकी, तो अब शाप से भयभीत होकर दूर की विचारने लगी, कि अब तो निरपराधी मेरे पिता और ब्राह्मण को व्यर्थ ही मेरे कारण से इस क्रुद्ध सूर्य से शाप भोगना पड़ेगा ॥२-३

बालेनापि सता मोहाद्भृशं पापकृतान्यपि ।
नाभ्यासादयितव्यानि तेजांसि च तपांसि च ॥४॥

बच्चे को भी अज्ञान से पाप के काटने वाले तेजस्वी, सूर्य आदि और तपस्वी, दुर्वासादि से खिलवाड़ नहीं करनी चाहिए ।४

साहमद्य भृशं भीता गृहीता च करे भृशम् ।
कथन्त्वकार्य्यं कुर्य्यां वै प्रदानं ह्यात्मनः स्वयम् ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज मैं अत्यन्त डरी हुई हूं और सूर्य ने मेरा हाथ पकड़ रखा है। इस दशा में भी मैं अपना समर्पण करके कैसे इस अकार्य को कर सकती हूं ॥५॥

वैशम्पायन उवाच—

सा वै शापपरित्रस्ता बहु चिन्तयती हृदा।
मोहेनापि परीताङ्गी स्मयमाना पुनः पुनः ॥६॥

वैशम्पायन बोले—हे राज-सत्तम! कुन्ती शाप से भयभीत हुई, हृदय में अनेक बातें सोच रही थी। इसके सारे शरीर मोह से व्याप्त हो रहा था और कभी मुस्कुरा भी जाती थी ॥६॥

तं देवमब्रवीद्भीता बन्धूनां राजसत्तम।
व्रीड़ाविह्वलया वाचा शापत्रस्ता विशाम्पते ॥७॥

हे विशाम्पते! यह इधर तो शाप से डर रही थी और दूसरी ओर इसको अपने बन्धुओं का भय था। इस दशा में लज्जा से कातर वाणी से कुन्ती, सूर्य से कहने लगी ॥७॥

कुन्त्यवाच—

पिता मे ध्रियते देव माता चान्ये च बान्धवाः।
न तेषु ध्रियमाणेषु विधिलोपो भवेदयम् ॥८॥

हे देव! मेरे पिता, माता, भाई, बन्धु सब जीवित हैं, उनके जीवित रहने पर अपना स्वयं समर्पण रूप धर्म के लोप का यह अकार्य कैसे हो सकता है ॥८॥

त्वया तु सङ्गमो देव यदि स्याद्विधिवर्जितः।
मन्निमित्तं कुलस्यास्य लोके कीर्त्तिर्नशेत्ततः ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे देव ! जो शास्त्र-विधि से रहित तेरे साथ मेरा सङ्गम हो गया, तो मेरे कारण से ही मेरे कुल की कीर्ति नष्ट हो जावेगी।

अथवा धर्ममेतं त्वं मन्यसे तपताम्वर ।
ऋते प्रदानाद्बन्धुभ्यस्तव कामं करोम्यहम् ॥१०॥

हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ ! जो तुम बन्धुओं के प्रदान किए बिना भी मेरे समर्पण को धर्मानुसार मानते हो, तो मैं आपकी इच्छा पूरी कर सकती हूं ॥१०॥

आत्मप्रदानं दुर्द्धर्ष तव कृत्वा सती ह्यहम् ।
त्वयि धर्मो यशश्चैव कीर्त्तिरायुश्च देहिनाम् ॥११॥

हे तेजस्विन् ! मैं सती स्त्री होकर भी तुमको आत्मप्रदान कर सकती हूं, क्योंकि तुम देव हो और तुम में ही प्राणियों के धर्म, कर्म, यश, कीर्ति और आयु की स्थिति है ॥११॥

सूर्य्य उवाच—

न ते पिता न ते भ्राता गुरवो वा शुचिस्मिते ।
प्रभवन्ति वरारोहे भद्रन्ते शृणु मे वचः ॥१२॥

सूर्य ने कहा—हे सुन्दर-हंसने-वाली ! सर्वाङ्ग-सुन्दरि ! तेरे माता, पिता या अन्य पूज्य बन्धुओं का तुझ पर कुछ भी अधिकार नहीं है। तुम एक बार मेरे वचन को ध्यान से सुनो ॥१२॥

सर्वान् कामयते यस्मात् कर्मेर्धातोश्च भाविनि ।
तस्मात् कन्येह सुश्रोणि स्वतन्त्रा वरवर्णिनि ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भाविनी ! पुष्ट-नितम्बो-वाली ! सुन्दरि ! कन्या शब्द तो "कमु-कान्तौ" धातु से बनता है, जिसका अर्थ ही यह है, कि जो अपने वर खोजने के लिए सबकी स्वयं कामना करे- यही कन्या शब्द की व्युत्पत्ति है और इस व्युत्पत्ति के कारण ही कन्या अपना वर आप खोजने में स्वतन्त्र है ॥१३॥

नाधर्मश्चरितः कश्चित् त्वया भवति भाविनि ।
अधर्मं कुत एवाहं चरेयं लोककाम्यया ॥१४॥

हे भामिनी ! इस प्रकार अपना समर्पण करने में तुमको कोई अधर्म नहीं होगा । क्या मैं विषयों में लिप्त होकर अधर्म का आचरण कर सकता हूं ॥१४॥

अनावृताः स्त्रियः सर्वा नराश्च वरवर्णिनि ।
स्वभाव एष लोकानां विकारोऽन्य इति स्मृतः ॥१५॥

हे सर्व-श्रेष्ठ-सुन्दरी ! सारी स्त्री और सारे पुरुष, अपने २ पति पत्नी खोजने में स्वतन्त्र हैं । यह उनका स्वभाव सिद्ध अधिकार है । बाकी तो भाई बन्धुओं द्वारा विवाह आदि के नियम तो कल्पना किया हुआ, पिछला लौकिक व्यवहार है ॥१५॥

सा मया सह सङ्गम्य पुनः कन्या भविष्यसि ।
पुत्रश्च ते महाबाहुर्भविष्यति महायशाः ॥१६॥

हे भद्रे ! तुम मुझ से सङ्गम करके, फिर कन्या ही हो जाओगी—घबराओ नहीं । इसके सिवा तुम्हारे महा-यशस्वी, महाबाहु एक पुत्र उत्पन्न होगा ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुन्त्युवाच—

यदि पुत्रो मम भवेत्त्वत्तः सर्वतमोनुद ।
कुण्डली कवची शूरो महाबाहुर्महाबलः ॥१७॥

कुन्ती बोली—हे सारे अन्धकारों के नाशक! सूर्यदेव! यदि तुम से मेरे पुत्र उत्पन्न होने ही वाला है, तो वह शूरवीर, महाबाहु, महाबली पुत्र, जन्म से ही कवच, कुण्डल धारण किये हुए उत्पन्न होवे ॥१७॥

सूर्य्य उवाच—

भविष्यति महाबाहुः कुण्डली दिव्यवर्मभृत् ।
अभेद्यश्चामृतमयं तस्य भद्रे भविष्यति ॥१८॥

सूर्य ने कहा-हे भद्रे! हां? यह ठीक है-तुम्हारे महाबाहु, जन्म से ही कुण्डल और कवचधारी, पुत्र उत्पन्न हो जावेगा। जिसका कवच, अभेद्य और अमृतमय होगा ॥१८॥

कुन्त्युवाच—

यदेतदमृतादस्ति कुण्डले वर्म चोत्तमम् ।
मम पुत्रस्य यं वै त्वं मत्त उत्पादयिष्यसि ॥१९॥
अस्तु मे सङ्गमो देव यथोक्तं भगवंस्त्वया ।
त्वद्वीर्य्यरूपस त्वौजा धर्मयुक्तो भवेत् स च ॥२०॥

कुन्ती कहने लगी—हे भगवन्! जो पुत्र तुम से उत्पन्न होगा, यदि उसके कुण्डल और उत्तम कवच अमृतमय कर दोगे, तो तुम मुझ से सङ्गम कर सकते हो-जैसा कि आप कह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हो। मेरा यह पुत्र, आपका सा पराक्रम तेज, बल और ओज-धारी तथा धर्मात्मा होना चाहिए ॥१६-२०॥

सूर्य्य उवाच--

अदित्या कुण्डले राज्ञि दत्ते मे मत्तकाशिनि।
तेऽस्य दास्यामि वै भीरु वर्म चैवेदमुत्तमम् ॥२१॥

सूर्य ने कहा—हे गज-गामिनि ! भीरु ! राजपुत्री ! मैंने जो कुण्डल और कवच अदिति को दे रखे हैं, मैं वही कुण्डल और उत्तम कवच, इस होने वाले तेरे पुत्र को दे दूँगा ॥२१॥

कुन्त्युवाच--

परमं भगवन्नेवं सङ्गमिष्ये त्वया सह।
यदि पुत्रो भवेदेवं यथा वदसि गोपते ॥२२॥

कुन्ती ने कहा—हे भगवन् ! किरणपते ! मैं तुम से सङ्गम तो करती हूँ, परन्तु देखो-मेरे ऐसा ही पुत्र उत्पन्न होना चाहिए-जैसा कि तुम कह रहे हो। इसमें कोई व्यक्तिक्रम न हो सके ॥२२॥

वैशम्पायन उवाच—

तथेत्युक्त्वा तु तां कुन्तीमाविवेश विहङ्गमः।
स्वर्भानुशत्रुर्योगात्मा नाभ्यां पस्पर्श चैव ताम् ॥२३

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! कुन्ती के इतना स्वीकर करते ही आकाशचारी राहु-शत्रु, सूर्य, अपने योगबल से उसमें प्रविष्ट हो गया और अब इसने इसके नाभि के पास स्पर्श किया ॥२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः सा विह्वलेवासीत् कन्या सूर्य्यस्य तेजसा।
पपात चाथ सा देवी शयने मूढ़चेतना ॥२४॥

सूर्य के तेज से कुन्ती विह्वल सी हो गई और अचेत होकर शय्या पर लेट गई ॥२४॥

सूर्य्य उवाच—

साधयिष्यामि सुश्रोणि पुत्रं वे जनयिष्यसि ।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं कन्या चैव भविष्यसि ॥२५॥

सूर्य बोले—हे पुष्ट-नितम्बों-वाली ! अब हम जाते हैं । तुम, सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, पुत्र को उत्पन्न करोगी और फिर भी कन्या ही हो जाओगी॥२५॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः सा व्रीडिता बाला तदा सूर्य्यमथाब्रवीत् ।
एवमस्त्विति राजेन्द्र प्रस्थितं भूरिवर्चसम् ॥२६॥

वैशम्पायन बोले--हे राजेन्द्र ! कुछ लज्जित सी हुई, सुन्दरी कुन्ती ने अत्यन्त-तेजस्वी, गमन के लिए तय्यार सूर्य से कहा-अच्छा ? आप पधारो ॥२६॥

इतिस्मोक्ताकुन्तिराजात्मजासाविवस्वन्तंयाचमानासलज्जा
तस्मिन् पुण्ये शयनीये पपात मोहाविष्टा भज्यमाना लतेव

सूर्य से इस प्रकार कही हुई और लज्जा के साथ सूर्य को गमन की अनुमति देती हुई, कुन्तिराज की पुत्री कुन्ती, उस सुन्दर शयन पर अचेत पड़ी हुई, टूटी हुई लता सी दिखाई दे रही थी ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिग्मांशुस्तांतेजसामोहयित्वायोगेनांविश्यात्मसंस्थाञ्चकार न चैवैनां दूषयामास भानुः संज्ञां लेभे भूय एवाथ बाला

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि पृथासूर्य्यसङ्गमे षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०६॥

महा-तेजस्वी सूर्य ने भी अपने तेज से कुन्ती को मोहित और योग से उसके शरीर में प्रवेश करके अपने वश में किया। सूर्य ने कुछ इस कुन्ती को दूषित नहीं किया। सूर्य के चले जाने पर कुन्ती को चेत (होश) हो गया ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत कुण्डलाहरणपर्व में कुन्ती और सूर्य के सङ्गम का तीन सौ छःवां अध्याय समाप्त हुआ।

******

तीन सौ सातवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो गर्भः समभवत् पृथायाः पृथिवीपते ।
शुक्ले दशोत्तरे पक्षे तारापतिरिवाम्बरे ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे पृथिवीपते ! कुन्ती के संवत्सर की एकादशवीं शुक्लपक्ष में यह गर्भाधान संस्कार हुआ। जो आकाश में चन्द्र की तरह उत्पन्न हुआ अर्थात् जैसे दश शुक्लपक्ष के अनन्तर ग्यारहवीं शुक्लपक्ष में प्रतिपदा को चन्द्रोदय होता है वैसे ही (आश्विन या) माघकी प्रतिपदाको यह गर्भ स्थापित हुआ ॥१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा बान्धवभयाद्बाला गर्भं तं विनिगूहती ।
धारयामास सुश्रोणी न चैनां बुबुधे जनः ॥२॥

यह पुष्ट-नितम्बों-वाली कुन्ती, अपने बान्धवों के भय से इस गर्भ को छुपाती हुई धारण कर रही थी। किसी भी मनुष्य को इसके इस गर्भ का पता नहीं था ॥२॥

न हि तां वेद नार्यन्या काचिद्धात्रेयिकामृते ।
कन्यापुरगतां बालां निपुणां परिरक्षणे ॥३॥

कन्यान्तःपुर में रहने वाली, सुन्दरी, रक्षा में निपुण, धाय को छोड़कर अन्य कोई स्त्री भी इस समाचार को नहीं जानती थी ॥३॥

ततः कालेन सा गर्भं सुषुवे वरवर्णिनी ।
कन्यैव तस्य देवस्य प्रसादादमरप्रभम् ॥४॥
तथैवाबद्धकवचं कनकोज्ज्वलकुण्डलम् ।
हर्य्यक्षं वृषभस्कन्धं यथास्य पितरं तथा ॥५॥

कुछ काल के अनन्तर इस सुन्दरी कुन्ती ने इस गर्भ को उत्पन्न किया। देवों के सदृश, कवच पहने हुए, सुवर्ण के उज्ज्वल कुण्डल-धारी, सिंह के समान नेत्र वाले, बैल के समान पुष्ट कंधों से युक्त, अपने पिता सूर्य के समान तेजस्वी, इस पुत्र को उत्पन्न करके भी कुन्ती, सूर्य के अनुग्रह से कन्या ही बनी रही ॥४-५॥

जातमात्रञ्च तं गर्भं धात्र्या सम्मन्त्र्य भाविनी ।
मञ्जूषायां समाधाय स्वास्तीर्णायां समन्ततः ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधूच्छिष्टस्थितायां सा सुखायां रुदती तथा ।
श्लक्ष्णायां सुपिधानायामश्वनद्यामवासृजत् ॥७॥

इस भामिनी ने पुत्र के उत्पन्न होते ही धाय से सम्मति करके एक लम्बी चौड़ी पिटारी में अच्छी तरह बिछौना बिछाकर इस बालक को सुला दिया। इस पिटारी के चारों ओर मोम लपेट दिया, जिससे वह जल प्रवेश न होने से सुखकारी बन गई। कुन्ती ने रोते २ इस पिटारी को वेगशील नदी में छोड़ दिया ६-७

जानती चाप्यकर्त्तव्यं कन्याया गर्भधारणम् ।
पुत्रस्नेहेन राजेन्द्र करुणं पर्य्यवेदयत् ॥८॥

हे राजेन्द्र ! कुन्ती यह जानती थी, कि कन्यावस्था में गर्भ धारण करना ठीक नहीं था, तो भी यह पुत्र के स्नेह से बड़ा करुणा-पूर्ण विलाप करने लगी ॥८॥

समुत्सृजन्ती मञ्जूषामश्वनद्यास्तदा जले ।
उवाच रुदती कुन्ती यानि वाक्यानि तच्छृणु ॥९॥

अश्व-नदी के जल में पिटारी को छोड़ती हुई और रोती हुई कुन्ती ने जो वाक्य कहे-अब तुम उनको सुनो ॥९॥

स्वस्ति ते चान्तरीक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यश्च पुत्रक ।
दिव्येभ्यश्चैव भूतेभ्यस्तथा तोयचराश्च ये ॥१०॥
शिवास्ते सन्तु पन्थानो मा च ते परिपन्थिनः ।
आगताश्च तथा पुत्र भवन्त्वद्रोहचेतसः ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पातु त्वां वरुणो राजा सलिले सलिलेश्वरः ।
अन्तरीक्षेऽन्तरीक्षस्थः पवनः सर्वशस्तथा ॥१२॥
पिता त्वां पातु सर्वत्र तपनस्तपताम्वरः ।
येन दत्तोऽसि मे पुत्र दिव्येन विधिना किल ॥१३॥

हे पुत्र ! अन्तरिक्ष, पृथिवी और आकाशचारी भूतों (प्राणियों) से तुम्हारी रक्षा हो । इसी तरह जल जन्तुओं से तुम्हें कल्याण प्राप्त हो । तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो और कोई विरोधी तुम्हारा नाश न कर सके । हे पुत्र ! जो कोई विरोधी तुम्हारे सम्मुख आ भी जावेगा, तो उसका द्रोह, स्वयं ही नष्ट हो जावेगा । तुम्हारी जल में जलाधीश्वर राजा वरुण, रक्षा करे और अन्तरीक्ष में अन्तरीक्षचारी वायु तुम्हारा सब तरह रक्षक हो । तेजस्वियों में श्रेष्ठ, तुम्हारा पिता सूर्य भी सब स्थानों में तुम्हारी रक्षा करे, जिसने दिव्य विधि द्वारा मुझे तुमको प्रदान किया है ॥ १०--१३ ॥

आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे च देवताः ।
मरुतश्च महेन्द्रेण दिशश्च सदिगीश्वराः ॥१४॥
रक्षन्तु त्वां सुराः सर्वे समेषु विषमेषु च ।
वेत्स्यामि त्वां विदेशेऽपि कवचेनाभिसूचितम् ॥१५॥

आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वे देव, मरुत, महेन्द्र, दिशा, दिशाओं के अधिपति तथा अन्य सारे देवता, अच्छे बुरे स्थानों में तुम्हारी रक्षा करें । मैं तुमको इस कवच और इन कुण्डलों से विदेश में भी कभी न कभी पहचान ही लूंगी ॥१४-१५ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्यस्ते पुत्र जनको देवो भानुर्विभावसुः ।
यस्त्वां द्रक्ष्यति दिव्येन चक्षुषा वाहिनीगतम् ॥१६॥

हे पुत्र ! आज तुम्हारा पिता किरणधारी सूर्य, धन्य हो रहा होगा--जो नदी में बहते हुए अपने पुत्र के मुखको दिव्य नेत्रों से देख रहा है ॥ १६ ॥

धन्या सा प्रमदा या त्वां पुत्रत्वे कल्पयिष्यति ।
यस्यास्त्वं तृषितः पुत्र स्तनं पास्यसि देवज ॥१७॥

हे देवोत्पन्न ! पुत्र ! वह स्त्री भी धन्य हो जावेगी, जो आगे चल कर तुझे पुत्र बनावेगी और जिसके तू बड़ा प्यासा होकर स्तनों का पान करेगा ॥ १७ ॥

को नु स्वप्नस्तया दृष्टो या त्वादित्यवर्चसम् ।
दिव्यवर्मसमायुक्तं दिव्यकुण्डलभूषितम् ॥१८॥
पद्मायतविशालाक्षं पद्मताम्रदलोज्ज्वलम् ।
सुललाटं सुकेशान्तं पुत्रत्वे कल्पयिष्यति ॥१९॥

उस स्त्री को आज क्या अच्छा स्वप्न आया होगा—जो आदित्य के समान तेजस्वी, दिव्य-कवच-धारी, दिव्य कुण्डलों से विभूषित, कमल के समान विशाल नेत्र वाले, कमल के लाल पत्रे के सदृश कोमल, सुन्दर ललाट वाले, सुथरे केशधारी तुमको पुत्र बना कर रखेगी ॥ १८-१९ ॥

धन्या द्रक्ष्यन्ति पुत्र त्वां भूमौ संसर्पमाणकम् ।
अव्यक्तकलवाक्यानि वदन्तं रेणुगुण्ठितम् ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे पुत्र ! मैं तो उस स्त्री को धन्य मानती हूं, जो भूमि में रेंगते हुए, अस्पष्ट मधुर वाक्य बोलते हुए और मिट्टी में सने हुए तुमको देखेगी ॥ २० ॥

धन्या द्रक्ष्यन्ति पुत्र त्वां पुनर्यौवनगोचरम् ।
हिमवद्वनसम्भूतं सिंहं केशरिणं यथा ॥२१॥

हे पुत्र ! वह स्त्री धन्य है, जो फिर यौवन में पहुंचे हुए, हिमालय के वन में उत्पन्न, केशरों वाले सिंह के सदृश तुमको देख सकेगी ॥ २१ ॥

एवं बहुविधं राजन् विलप्य करुणं पृथा ।
अवासृजत मञ्जूषामश्वनद्यास्तदा जले ॥२२॥

हे राजन् ! इस तरह कुन्ती ने अनेक तरह से विलाप करके उस अश्व-नदी के जल में उस पिटारी को छोड़ दिया ॥२२॥

रुदती पुत्रशोकार्त्ता निशीथे कमलेक्षणा ।
धात्र्या सह पृथा राजन् पुत्रदर्शनलालसा ॥२३॥
विसर्जयित्वा मञ्जूषां सम्बोधनभयात् पितुः ।
विवेश राजभवनं पुनः शोकातुरा ततः ॥२४॥

हे राजन् ! कमल के तुल्य नेत्रों वाली, पुत्र शोक से व्याकुल आधी रात में रोती हुई, पुत्र के दर्शनों की इच्छावाली कुन्ती, अपनी धाय के साथ, उस मञ्जूषा (पिटारी) को नदी में छोड़ कर पिता को मालूम हो जाने के भय से शोकातुर ही अपने राज-भवन में चली आई ॥ २३-२४ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मञ्जूषा त्वश्वनद्याः सा ययौ चर्मण्वतीं नदीम् ।
चर्मण्यत्याश्च यमुनां ततो गङ्गां जगाम ह ॥२५॥

यह पिटारी, अश्व-नदी से चर्मण्वती नदी और चर्मण्वती से यमुना और यमुना से गङ्गा में पहुँची ॥ २५ ॥

गङ्गायाः सूतविषयं चम्पामनु ययौ पुरीम् ।
स मञ्जूषागतो गर्भस्तरङ्गैरुह्यमानकः ॥२६॥

गङ्गा तट पर बसी हुई, चम्पा नगरी की ओर यह पिटारी एक सूत के देश को चल पड़ी । इस पिटारी में स्थित गर्भ, तरङ्गों से उछल रहा था ॥ २६ ॥

अमृतादुत्थितं दिव्यं तनुवर्म सकुण्डलम् ।
धारयामास तं गर्भं दैवञ्च विधिनिर्मितम् ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि पृथामञ्जूषाक्षेपणे सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०७

विधाता द्वारा निर्मित, देवों से बनाया हुआ, अमृत से उत्पन्न कुण्डलों सहित, इसके शरीर का कवच, इस गर्भ की रक्षा कर रहा था ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत कुण्डलाहरणपर्व में कुन्ती का पिटारी के नदी में बहाने का तीन सौ सातवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन सौ आठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

एतस्मिन्नेव काले तु धृतराष्ट्रस्य वै सखा ।
सूतोऽधिरथ इत्येव सदारो जाह्नवीं ययौ ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसी समय राजा धृतराष्ट्र का मित्र, अधिरथ सूत, अपनी भार्या के साथ गङ्गा पर आया था ।१

तस्य भार्याभवद्राजन् रूपेणासदृशी भुवि ।
राधा नाम महाभागा न सा पुत्रमविन्दत ॥२॥

हे राजन् ! इसकी भार्या भी पृथ्वी पर अद्वितीय सुन्दर थी । इस महाभागा का नाम राधा था, इसके भी कोई सन्तान न थी॥२

अपत्यार्थे परं यत्नमकरोच्च विशेषतः ।
सा ददर्शाथ मञ्जूषामुह्यमानां यदृच्छया ॥३॥
दत्तरक्षाप्रतिसरामन्वालभनशोभिताम् ।
ऊर्मीतरङ्गैर्जाह्नव्याः समानीतामुपह्वरम् ॥४॥

इसने भी सन्तान के लिये बड़ा प्रयत्न किया था । स्वतन्त्रता से जल में उछलती हुई, रक्षा के निमित्त लगाए हुए, शुभ चिन्ह पूर्ण कङ्कणादि से युक्त, केशर से लिपटे हुए, हाथों के चिन्हों से चिन्हित, गङ्गाजी की तरङ्गों से समीप लाई हुई, इस पिटारी को राधा ने देखा ॥३-४॥

सा तां कौतूहलात् प्राप्तां ग्राहयामास भाविनी ।
ततो निवेदयामास सूतस्याधिरथस्य वै ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस भाविनी ने पास आई हुई, इस मञ्जूषा को खेल (तमाशा) करने की उत्कण्ठा से उठा लिया और इसको उठाकर अधिरथ सूत को सौंप दिया ॥५॥

स तामुद्धृत्य मञ्जूषामुत्सार्य्य जलमन्तिकात् ।
यन्त्रैरुद्घाटयामास सोऽपश्यत्तत्र बालकम् ॥६॥

तरुणादित्यसङ्काशं हेमवर्मधरं तथा ।
मृष्टकुण्डलयुक्तेन वदनेन विराजता ॥७॥

इस अधिरथ ने इस पिटारी को जल से निकाल कर, किसी संडासी आदि यन्त्र से बड़ी कठिनता से खोला। इसने इसमें प्रचण्ड सूर्य के सदृश, सुवर्ण का कवच पहिने हुए, उज्ज्वल कुण्डल युक्त, चमकते हुए मुख से देदीप्यमान, एक बालक को देखा ।६-७

स सूतो भार्य्यया साद्यं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
अङ्कमारोप्य तं बालं भार्य्यां वचनमब्रवीत् ॥८॥

इस अधिरथ सूत और इसकी भार्या राधा के नेत्र, इस बालक को देखकर अचम्भे से खुले के खुले रह गए। यह सूत इस बालक को गोदी में लेकर अपनी भार्या से यह वचन कहने लगा ॥८॥

इदमत्यद्भुतं भीरु यतो जातोऽस्मि भाविनि ।
दृष्टवान् देवगर्भोऽयं मयेन्ऽस्माकमुपागतः ॥९॥

हे भाविनी ! जिस दिन से मैं पैदा हुआ हूं, उस दिन से आज मैंने यह अदभुत कार्य देखा है। यह बालक, किसी देवता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का है, परन्तु ईश्वर ने कृपा करके हमको प्रदान कर दिया है-मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है ॥९॥

अनपत्यस्य पुत्रोऽयं देवैर्दत्तो ध्रुवं मम ।
इत्युक्त्वा तं ददौ पुत्रं राधायै स महीपते ॥१०॥

हे भीरु ! मेरे कोई सन्तान भी नहीं है, यही समझकर देवों ने मुझे ही दिया हुआ ज्ञात होता है । हे महीपते ! इतना कहकर इस पुत्र को अपनी भार्या राधा को सौंप दिया ॥१०॥

प्रतिजग्राह तं राधा विधिवद्दिव्यरूपिणम् ।
पुत्रं कमलगर्भाभं देवगर्भं श्रियावृतम् ॥११

इस दिव्य-रूप-धारी, कमल के कोमल पत्ते के तुल्य कोमल, देवों के गर्भ के समान तेजस्वी, शोभा से युक्त, इस पुत्र को राधा ने भी विधि-पूर्वक (बड़े आदर से) ग्रहण कर लिया ॥११॥

पुपोष चैनं विधिवद्ववृधे स च वीर्य्यवान् ।
ततः प्रभृति चाप्यन्ये प्राभवन्नौरसाः सुताः ॥१२॥

ये दोनों स्त्री-पुरुष इस पुत्र की विधि-पूर्वक पालना करने लगे, यह वीर्यवान बालक भी प्रतिदिन बढ़ने लगा । इसके अनन्तर इनके अन्य औरस पुत्र भी उत्पन्न हुए ॥१२॥

वसुवर्मधरं दृष्ट्वा तं बालं हेमकुण्डलम् ।
नामास्य वसुषेणेति ततश्चक्रुर्द्विजातयः ॥१३॥

वसु (सुवर्ण) के वर्म (कवच) के धारी, सुवर्ण के कुण्डलों से सुशोभित, इस बालक को देखकर ब्राह्मणों ने इसका नाम "वसुषेण" रखा ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं स सूतपुत्रत्वं जगामामितविक्रमः ।
वसुषेण इति ख्यातो वृष इत्येव च प्रभुः ॥१४॥

यह अत्यन्त-पराक्रमी, शक्तिशाली, बालक, इस तरह सूत-पुत्र बन गया और वसुषेण तथा वृष कहलाया ॥१४॥

सूतस्य ववृधेऽङ्गेषु ज्येष्ठः पुत्रः स वीर्य्यवान् ।
चारेण विदितश्चासीत् पृथाया दिव्यवर्मभृत् ॥१५॥

सूत के परिवार में इस बालक ने वृद्धि पाई और यह बड़ा वीर्यवान, अधिरथ सूत का जेष्ठ पुत्र कहलाता था, तो भी गुप्त-चर ने इस दिव्य कवचधारी, बालक का पता लगा लिया, कि यह कुन्ती का पुत्र है ॥१५॥

सूतस्त्वधिरथः पुत्रं विवृद्धं समयेन तम् ।
दृष्ट्वा प्रस्थापयामास पुरं वारणसाह्वयम ॥१६॥

समय पाकर वृद्धि को प्राप्त हुए, इस बालक को देखकर अधिरथ सूत ने इसे हस्तिनापुर में भेज दिया ॥१६॥

तत्रोपसदनश्चक्रे द्रोणस्येष्वस्त्रकर्मणि ।
सख्यं दुर्य्योधनेनैवमगमत् स च वीर्य्यवान् ॥१७॥

यह वसुषेण हस्तिनापुर में बाण और अन्य अस्त्रों की शिक्षा देने वाले, द्रोणाचार्य के गुरुकुल में भरती हो गया। इस वीर्य शाली की इस विद्यालय में दुर्योधन से मित्रता हो गई ॥१७॥

द्रोणात् कृपाच्च रामाच्च सोऽस्त्रग्रामश्चतुर्विधम् ।
लब्ध्वा लोकेऽभवत् ख्यातः परमेष्वासताङ्गतः ॥१८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और परशुराम से चार प्रकार के अस्त्रों की विधि को प्राप्त करके, संसार में बड़ा विख्यात धनुर्धर हो गया ॥१८॥

सन्धाय धार्त्तराष्ट्रेण पार्थानां विप्रिये रतः ।
योद्धुमाशंसते नित्यं फाल्गुनेन महात्मना ॥१९॥

धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन से मित्रता करके यह पाण्डवों के अहित में प्रवृत्त हो गया। यह सदा महावीर अर्जुन से युद्ध करने की ही आकांक्षा करता रहता था ॥१९॥

सदा हि तस्य स्पर्द्धासीदर्जुनेन विशाम्पते ।
अर्जुनस्य च कर्णेन यतो दृष्टो बभूव सः ॥२०॥

हे विशाम्पते ! इस वसुषेण की सदा अर्जुन को जीतने की ही स्पर्धा (इच्छा) लगी रहती थी और अर्जुन भी जिस समय इस वसुषेण को देख लेता, उसी समय इसको नीचा दिखाने की इच्छा करने लगता था।

एतद्गुह्यं महाराज सूर्य्यस्यासीन्न संशयः ।
यः सूर्य्यसम्भवः कर्णः कुन्त्यां सूतकुले तदा ॥२१॥

हे महाराज ! सूर्य से कुन्ती में उत्पन्न होकर यह कर्ण, सूत कुल में पहुँच गया- यह गुप्त रहस्य केवल सूर्य को ही ज्ञात था, अन्य किसी को ज्ञात न था, यह निश्चय है ॥२१॥

तन्तु कुण्डलिनं दृष्ट्वा वर्मणा च समन्वितम् ।
अवध्यं समरे मत्वा पर्य्यतप्यद्युधिष्ठिरः ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसको कुण्डलों से युक्त और जन्म से ही कवचधारी देख कर तथा युद्ध में अवध्य मानकर राजा युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता सी हो रही थी ॥२२॥

यदा च कर्णो राजेन्द्र भानुमन्तं दिवाकरम् ।
स्तौति मध्यन्दिने प्राप्ते प्राञ्जलिः सलिलोत्थितः॥२३
तत्रैनमुपतिष्ठन्ति ब्राह्मणा धनहेतुना ।
नादेयं तस्य तत्काले किञ्चिदस्ति द्विजातिषु ॥२४॥

हे राजेन्द्र ! जब यह कर्ण, जल से निकल कर हाथ जोड़े हुए, मध्यान्ह काल में किरणधारी, सूर्य की उपासना करता, तो इसके पास धन की इच्छा से अनेक ब्राह्मण उपस्थित होते थे। इस समय ब्राह्मणों को यह कुछ भी अदेय नहीं समझता था ।

तमिन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा भिक्षां देहीत्युपस्थितः ।
स्वागतञ्चेति राधेयस्तमथ प्रत्यभाषत ॥२५॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि राधेयकर्णप्राप्तौ अष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०८॥

इस समय इसके पास ब्राह्मण का रूप धारण करके इन्द्र पहुँचा और बोला--भिक्षा दो। राधा-पुत्र, कर्ण ने भी उसका बड़ी मधुर वाणी से स्वागत किया ॥२४॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत कुण्डलाहरणपर्व में इन्द्र का कर्ण के पास आने का तीन सौ आठवां अध्याय पूरा हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन सौ नौवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

देवराजमनुप्राप्तं ब्राह्मणच्छद्मना वृतम् ।
दृष्ट्वा स्वागतमित्याह न बुबोधास्य मानसम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! छल से ब्राह्मण के वेष में उपस्थित हुए, देवराज-इन्द्र को देख कर कर्ण ने बड़ा स्वागत किया, परन्तु इसने इन्द्र के मन का कपट नहीं पहिचाना ॥१॥

हिरण्यकण्ठ्यः प्रमदा ग्रामान् वा बहुगोकुलान् ।
किं ददानीति तं विप्रमुवाचाधिरथिस्ततः ॥२॥

इस समय अधिरथ के पुत्र,कर्ण ने कहा—हे ब्राह्मण! सुवर्ण के भूषणों से विभूषित कण्ठ वाली, सुन्दर स्त्रियाँ भेंट करूं या गौओं से भरे हुए गांव, आपकी भेंट करूं ॥२॥

ब्राह्मण उवाच—

हिरण्यकण्ठ्यः प्रमदा यच्चान्यत् प्रीतिवर्द्धनम् ।
नाहं दत्तमिहेच्छामि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ॥३॥

ब्राह्मण ने कहा-सुवर्ण के आभूषण कण्ठमें पहने हुए, स्त्रियां या अन्य सुख के बढ़ाने वाले, धनों का दान मैं नहीं लेना चाहता हूं। यह तो तुम अन्य अतिथियों को दीजिए ॥३॥

यदेतत् सहजं वर्म कुण्डले च तवानघ ।
एतदुत्कृत्य मे देहि यदि सत्यव्रतो भवान् ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अनघ! मुझे तो तुम्हारे में जन्म के साथ उत्पन्न हुए कवच और कुण्डल चाहिए। यदि तुम सत्य-प्रतिज्ञा-धारी, दानी हो-तो इनको अपने शरीर से उखाड़ कर मुझे दे दो ॥४॥

एतदिच्छाम्यहं क्षिप्रं त्वया दत्तं परन्तप।
एष मे सर्वलाभानां लाभः परमको मतः ॥५॥

हे परन्तप! मैं तो तुमसे यही दान चाहता हूं। सारे लाभों में सबसे अधिक मेरा इसी में लाभ है ॥५॥

कर्ण उवाच—

अवनिं प्रमदा गाश्च निवापं बहुवार्षिकम्।
तत्ते विप्र प्रदास्यामि न तु वर्म सकुण्डलम् ॥६॥

कर्ण ने कहा--हे विप्र! घर के लिए पृथिवी, स्त्री, गौ, जीवन पर्यन्त के लिए क्षेत्र (खेत) आदि सब कुछ दिया जा सकता है, परन्तु मैं इन कवच और कुण्डलों को नहीं दे सकता हूं ॥६॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं बहुविधैर्वाक्यैर्याच्यमानः स तु द्विजः।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ नान्यं वरमयाचत ॥७॥

हे भरत-श्रेष्ठ! इस प्रकार के अनेक नम्र वचनों से कर्ण ने ब्राह्मण की प्रार्थना की, परन्तु उसने अन्य कुछ नहीं मांगा ॥७॥

सान्त्वितश्च यथाशक्ति पूजितश्च यथाविधि।
न चान्यं स द्विजश्रेष्ठः कामयामास वै वरम् ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदा नान्यं प्रवृणुते वरं वै द्विजसत्तमः ।
तदैनमब्रवीद्भूयो राधेयः प्रहसन्निव ॥९॥

कर्ण ने इसको यथाशक्ति समझाया और विधि-पूर्वक इसकी पू[illegible] रन्तु इस ब्राह्मण ने अन्य कुछ वस्तु मांगी ही नहीं। अब राधा-पुत्र कर्ण, इससे हंसकर कहने लगा ॥८-९॥

सहजं वर्म मे विप्र कुण्डले चामृतोद्भवे ।
तेनावध्योऽस्मि लोकेषु ततो नैतज्जहाम्यहम् ॥१०॥

हे विप्र ! यह कवच मेरे जन्म के साथ उत्पन्न हुआ है और ये कुण्डल अमृत के सार से बनाये गए हैं। इनके कारण से ही तो मैं जगत् में अवध्य हूं, इससे मैं तुमको ये कवच कुण्डल, नहीं दूंगा ॥१०॥

विशालं पृथिवीराज्यं क्षेमं निहतकण्टकम् ।
प्रतिगृह्णीष्व मत्तस्त्वं साधु ब्राह्मणपुङ्गव ॥११॥
कुण्डलाभ्यां विमुक्तोऽहं वर्मणा सहजेन च ।
गमनीयो भविष्यामि शत्रूणां द्विजसत्तम ॥१२॥

हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ ! तुम शत्रु रहित, कल्याणकारी, पृथिवी भर के राज्य को मुझ से ग्रहण कर सकते हो, परन्तु मैं इन कुण्डल और जन्म के साथ उत्पन्न इस कवच के बिना शत्रुओं से पराजित हो जाऊंगा-इससे मैं इन कवचकुण्डलों को नहीं छोड़ूंगा।

वैशम्पायन उवाच—

यदान्यं न वरं वव्रे भगवान् पाकशासनः ।
ततः प्रहस्य कर्णस्तं पुनरित्यब्रवीद्वचः ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब ब्राह्मण वेषधारी भगवान् इन्द्र ने अन्य वर मांगा ही नहीं, तो फिर कर्ण ने हँसकर उस ब्राह्मण से कहा ॥ १३ ॥

विदितो देवदेवेश प्रागेवासि मम प्रभो ।
न तु न्याय्यं मया दातुं तव शक्र वृथा वरम् ॥१४॥

हे देवों के देव ! सर्व-शक्ति-शाली ! इन्द्र-देव ! मैं तुमको पहिले से ही पहचान गया हूं । मुझे तुमको वर देने का वृथा ढोंग ही नहीं करना चाहिए ॥ १४ ॥

त्वं हि देवेश्वरः साक्षात् त्वया देयो वरो मम ।
अन्येषाञ्चैव भूतानामीश्वरो ह्यसि भूतकृत् ॥१५॥

तुम तो साक्षात् देवों के स्वामी हो, तुमको ही मुझे वर देना चाहिए । तुम सारे प्राणियों के रचने वाले होने से उन अन्य सब प्राणियों के भी ईश्वर हो ॥ १५ ॥

यदि दास्यामि ते देव कुण्डले कवचन्तथा ।
वध्यतामुपयास्यामि त्वञ्च शक्रावहास्यताम् ॥१६॥

हे इन्द्र ! जो मैंने तुमको कवच कुण्डल दे दिए, तो मैं शत्रुओं से मारा जाऊंगा और तुम्हारी बड़ी हँसी होगी ॥ १६ ॥

तस्माद्विनिमयं कृत्वा कुण्डले वर्म चोत्तमम् ।
हरस्व शक्र कामं मे न दद्यामहमन्यथा ॥१७॥

अब तुम कवच कुण्डलों का आग्रह छोड़ कर किसी अन्य वर में इस याचना को बदल दो । इस तरह तुम मुझसे अपनी कामना पा सकते हो, नहीं तो ? मैं कवच कुण्डलों को तो दे नहीं सकता ॥ १७ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्रउवाच—विदितोऽहं रवेः पूर्वमायानेव तवान्तिकम् ।
तेन ते सर्वमाख्यातमेवमेतन्न संशयः ॥१८॥

इन्द्र ने कहा—जब मैं तुम्हारे पास आ रहा था, तो मुझे सूर्य ने जान लिया था । उसी ने तुमसे यह मेरा सारा वृतान्त कह दिया है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥

काममस्तु यथा तात तव कर्ण यथेच्छसि ।
वर्ज्जयित्वा तु मे वज्रं प्रवृणीष्व यथेच्छसि ॥१९॥

हे तात ! कर्ण ! जो तुम कामना चाहते हो, वह मुझसे मेरे वज्र को छोड़ कर ग्रहण कर सकते हो और जो तुम कवच कुण्डलों के विना हानि मानते हो-उस हानि के न होने का वर भी मुझसे ग्रहण कर सकते हो ॥ १९ ॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः कर्णः प्रहृष्टस्तु उपसङ्गम्य वासवम् ।
अमोघां शक्तिमभ्येत्य वव्रे संपूर्णमानसः ॥२०॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इस बात से कर्ण सन्तुष्ट हो गया और वह इन्द्र के पास आया । उसने बड़े प्रसन्न मन से निष्फल न जाने वाली एक शक्ति (शस्त्र) इन्द्र से मांगी ॥२०॥

कर्ण उवाच—

वर्मणा कुण्डलाभ्याञ्च शक्तिं मे देहि वासव ।
अमोघां शत्रुसङ्घानां घातिनी पृतनामुखे ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्ण ने कहा—हे इन्द्र ! तुम इन कवच और कुण्डलों के बदले में सेना के मुख पर शत्रु समूह ही नाशिनी, निष्फल नहीं जाने वाली, शक्ति मुझे दीजिए ॥ २१ ॥

ततः सञ्चिन्त्य मनसा मुहूर्त्तमिव वासवः ।
शक्त्यर्थं पृथिवीपाल कर्णं वाक्यमथाब्रवीत् ॥२२॥

हे राजन ! इन्द्र ने थोड़ी देर मनमें विचार किया और शक्ति के निमित्त कर्ण से यह वाक्य कहा ॥ २२ ॥

कुण्डले मे प्रयच्छस्व वर्म चैवं शरीरजम् ।
गृहाण कर्ण शक्तिन्त्वमनेन समयेन च ॥२३॥

हे कर्ण ! मुझे कुण्डल और शरीर के साथ उत्पन्न हुए कवच को प्रदान कर और इसके बदले में इस समय (शर्त) से शक्ति को ग्रहण कर सकते हो ॥ २३ ॥

अमोघा हन्ति शतशः शत्रून् मम करच्युता ।
पुनश्च पाणिमभ्येति मम दैत्यान् विनिघ्नतः ॥२४॥

नहीं चूकने वाली, यह शक्ति, मेरे हाथ से छोड़ी हुई, सैकड़ों शत्रुओं का नाश कर देती है और उन दैत्यों का नाश करके फिर मेरे हाथ में ही लौट आती है ॥ २४ ॥

सेयं तव करप्राप्ता हत्वैकं रिपुमूर्ज्जितम् ।
गर्ज्जन्तं प्रतपन्तञ्च मामेवैष्यति सूतज ॥२५॥

हे सूत-पुत्र ! इसी तरह यह एक गर्जते हुए, प्रतापी, महाबली शत्रु को मार कर तेरे हाथ में भी लौट आवेगी और फिर मेरी मेरे पास आ जावेगी ॥ २५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्ण उवाच--एकमेवाहमिच्छामि रिपुं हन्तुं महाहवे।
गर्जन्तं प्रतपन्तञ्च यतो मम भयं भवेत् ॥२६॥

कर्ण बोला—हे इन्द्र ! जिससे मुझे भय खड़ा हो गया हो, मैं तो गर्जते और सन्ताप पहुंचाते हुए, उस एक ही शत्रु को महा भीषण संग्राम में मारना चाहता हूं ॥ २६ ॥

इन्द्र उवाच--एवं हनिष्यसि रिपुं गर्जन्तं बलिनं रणे।
त्वन्तु यं प्रार्थयस्येकं रक्ष्यते स महात्मना ॥२७॥

इन्द्र ने कहा—तुम जिसको मारना चाहोगे, रण में गर्जते हुए महाबली, एक शत्रु को अवश्य मार लोगे। यदि भगवान् श्रीकृष्ण, उसकी रक्षा करेंगे, तो वह सुरक्षित हो सकेगा ॥२७॥

यमाहुर्वेदविद्वांसो वाराहमपराजितम्।
नारायणमचिन्त्यञ्च तेन कृष्णेन रक्ष्यते ॥२८॥

जिसको वेद के विद्वान्, नहीं पराजित होने वाला, अचिन्तनीय, वाराह और नारायण कहते हैं, उन ही श्रीकृष्ण से उसकी रक्षा हो सकती है ॥ २८ ॥

कर्ण उवाच--एवमप्यस्तु भगवन्नेकवीरवधे मम।
अमोघां देहि मे शक्तिं यथा हन्यां प्रतापिनम् ॥२९॥

हे भगवन् ! जो तुम कह रहे हो--वही सही। अब तुम मुझे एक वीर के मार देने वाली अमोघ शक्ति प्रदान कर दो, जिससे मैं अपने प्रतापी शत्रु को मार लूं ॥ २९ ॥

उत्कृत्य तु प्रदास्यामि कुण्डले कवचञ्च ते।
निकृत्तेषु तु गात्रेषु न मे बीभत्सता भवेत् ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अपने शरीर से उखाड़ कर कवच और कुण्डल दे देता हूं, परन्तु इससे छिन्न भिन्न शरीर में कोई भद्दापन न आ सके ।३०।

इन्द्र उवाच--न ते बीभत्सता कर्ण भविष्यति कथञ्चन ।
व्रणश्चैव न गात्रेषु यस्त्वं नानृतमिच्छसि ॥३१॥

इन्द्र ने कहा—हे कर्ण ! तेरे शरीर में कहीं भी भद्दापन नहीं आवेगा और न तेरे शरीर में कहीं घाव होगा, क्योंकि तू मिथ्या व्यवहार को नहीं चाहता है ॥३१॥

यादृशस्ते पितुर्वर्णस्तेजश्च वदताम्वर ।
तादृशेनैव वर्णेन त्वं कर्ण भविता पुनः ॥३२॥

हे वदताम्वर ! जैसा तेरे पिता का वर्ण और तेज है, उसी वर्ण का तू भी हो जावेगा ॥३२॥

विद्यमानेषु शस्त्रेषु यद्यमोघामसंशये ।
प्रमत्तो मोक्ष्यसे चापि त्वय्येवैषा पतिष्यति ॥३३॥

जब तक तेरे पास अन्य शस्त्र हैं और मृत्यु का सन्देह खड़ा नहीं हो गया है, तब तक इस शक्ति को नहीं छोड़ना। यदि किसी भूल में असमय पर शक्ति छोड़ दी, तो उलटी तुझ पर आकर ही गिर जावेगी ॥३३॥

कर्ण उवाच--संशयं परमं प्राप्य विमोक्ष्ये वासवीमिमाम् ।
यथा मामात्थ शक्र त्वं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥३४॥

कर्ण बोला-हे देवराज ! जैसा आपने कहा है--मैं बड़े ही संशय के समय पर आपकी इस वासवी शक्ति को छोड़ूँगा--यह सत्य कहता हूं ॥३४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

ततः शक्तिं प्रज्वलितां प्रतिगृह्य विशाम्पते ।
शस्त्रं गृहीत्वा निशितं सर्वगात्राण्यकृन्तत ॥३५॥

वैशम्पायन बोले—हे विशाम्पते ! इसके अनन्तर कर्ण ने इन्द्र से शक्ति, ग्रहण कर ली और तीक्ष्ण शस्त्र लेकर शरीर को काट डाला ॥३५॥

ततो देवा मानवा दानवाश्च निकृन्तन्तं कर्णमात्मानमेवम्
दृष्ट्वा सर्वे सिंहनादान् प्रणेदुर्न ह्यस्यासीन्मुखजो वै विकारः

हे राजन् ! अपने शरीर को काटते हुए, कर्ण को देख कर देव, दानव, और सारे मानव, हर्ष के साथ सिंह-ध्वनि करने लगे। इस समय कर्ण के मुख पर कुछ भी विकार नहीं दिखाई दिया। ॥३६॥

ततो दिव्या दुन्दुभयः प्रणेदुः पपातौघैः पुष्पवर्षश्च दिव्यम्
दृष्ट्वा कर्णं शस्त्रसंकृत्तगात्रं मुहुश्चापि स्मयमानं नृवीरम्३७

नर-श्रेष्ठ कर्ण को शस्त्र से सारे शरीर को काटते हुए और फिर भी हंसते हुए ही देख कर आकाश में दिव्य नगाड़े बजने लगे और दिव्य पुष्पों की वर्षा होने लगी। ॥३७॥

ततश्छित्वा कवचं दिव्यमङ्गात्तथैवार्द्रं प्रददौ वासवाय।
तथोत्कृत्य प्रददौ कुण्डले ते कर्णात्तस्मात्कर्मणातेन कर्णः३८

कर्ण ने दिव्य कवच को अपने शरीर से काट कर गीला ही इन्द्र को दे दिया। इसी तरह तीक्ष्ण शस्त्र से उसने कानों से कुण्डल काट कर दे दिए। इसी अद्भुत कर्म के करने से इसका कर्ण नाम पड़ा ॥३८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः शक्रः प्रहसन् वञ्चयित्वा कर्णं लोके यशसा योजयित्वा।
कृतं कार्य्यं पाण्डवानां हि मेने ततः पश्चाद्दिवमेवोत्पपात ३९।

इनको लेकर इन्द्र बड़ा प्रसन्न हुआ। देवराजने इस प्रकार कर्ण को धोखा देकर भी उसको बड़े भारी यश से युक्त कर दिया। इन्द्र ने अब समझ लिया, कि मैंने पाण्डवों का काम पूरा कर दिया। इसके बाद यह स्वर्गलोक को उड़ गया ।॥३९॥

श्रुत्वा कर्णं मुषितं धार्त्तराष्ट्रा दीनाः सर्वे भग्नदर्पा इवासन्।
ताश्चावस्थां गमितं सूतपुत्रं श्रुत्वा पार्था जहृषुः काननेषु ४०

कर्ण के इस तरह वंचित होने का समाचार सुनकर धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादि का सारा घमण्ड नष्ट सा हो गया और सूतपुत्र कर्ण को प्राप्त हुई, इस दशा को सुनकर सारे पाण्डव वनमें बड़े ही प्रसन्न हुए ॥४०॥

जनमेजय उवाच—

क्वस्था वीराःपाण्डवास्ते बभूवुः कुतश्चैते श्रुतवन्तःप्रियं तत्
किं वाकार्षुर्द्वादशाब्देव्यतीते तन्मेसर्वं भगवान् व्याकरोतु४१

जनमेजय ने पूछा—हे ब्रह्मन् ! इस समय पाण्डव किस स्थान पर थे और उन्होंने कहां इस प्रिय वृत्तान्त को सुना। अब बारह वर्ष बीत चुके थे, इसके अनन्तर उन्होंने क्या किया ? आप यह सब मुझे खोल २ कर बताओ ॥४१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

लब्ध्वाकृष्णांसैन्धवंद्रावयित्वाविप्रैःसार्द्धं काम्यकादाश्रमात्ते
मार्कण्डेयात् श्रुतवन्तः पुराणं देवर्षीणाञ्चरितं विस्तरेण ४२
प्रत्याजग्मुः सरथा सानुयात्राः सर्वैः सार्द्धं सूतपौरोगवैश्च ।
ततः पुण्यं द्वैतवनं नृवीरा निस्तीर्य्योग्रं वनवास समग्रम् ४३
इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि कर्ण-
स्य कर्मकुण्डलदाने नवाधिकत्रिशततमो ऽध्यायः ॥३०९॥

समाप्तश्च कुण्डलाहरणपर्व ।

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन ! सिन्धुराज जयद्रथ को भगा कर और द्रौपदी को प्राप्त करके ब्राह्मणों के साथ काम्यक वन के आश्रम से रथ, पीछे चलने वाले सैनिक, सारथि और आगे पहुँच कर प्रबन्ध करने वाले सारे साथियों के साथ ये नर-श्रेष्ठ पाण्डव, वनवास के सारे समय को पूरा करके पवित्र द्वैत-वन में पहुँचे । ये मार्कण्डेय ऋषि से प्राचीन इतिहास और देवर्षियों के चरित्रों को सुनते रहते थे ॥ ४२-४३ ॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत कुण्डलाहरणपर्व में कर्ण के कवच कुण्डल दान का तीन सौ नौ वां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर कुण्डलाहरणपर्व भी समाप्त हो गया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ आरणेयपर्व

तीन सौ दशवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

एवं हृतायां कृष्णायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम् ।
प्रतिपद्य ततः कृष्णां किमकुर्वत पाण्डवाः ॥१॥

जनमेजय पूछने लगे—हे ब्रह्मर्षे ! इस प्रकार द्रौपदी के अपहरण होने पर पाण्डवों ने बहुत अधिक कष्ट उठाया, परन्तु उन्होंने द्रौपदी को फिर पा लिया। इसके अनन्तर पाण्डवों ने क्या किया ? अब आप यह बताइये ॥१॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं हृतायां कृष्णायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम् ।
विहाय काम्यकं राजा सह भ्रातृभिरच्युतः ॥२॥
पुनर्द्वैतवनं रम्यमाजगाम युधिष्ठिरः ।
स्वादुमूलफलं रम्यं विचित्रबहुपादपम् ॥३॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! इस प्रकार द्रौपदी के हरण होने पर पाण्डवों को बड़ा कष्ट हुआ। अब धर्म से च्युत नहीं होने वाला, राजा युधिष्ठिर, काम्यक वन को छोड़ कर सुन्दर द्वैतवन में चला आया। यह वन, बड़े स्वादिष्ट फल फूलों से युक्त, मनोहर, विचित्र वृक्षों से सुशोभित था॥२-३॥

अनुभुक्तफलाहाराः सर्व एव मिताशनाः ।
न्यवसन् पाण्डवास्तत्र कृष्णया सह भार्य्यया ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी तो ये निराहार व्रत करते, कभी फलाहार और कभी बहुत ही थोड़ा आहार करते थे। इस प्रकार अपनी भार्या के साथ पाण्डव इस द्वैतवन में निवास कर रहे थे ॥ ४ ॥

वसन् द्वैतवने राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥५॥
ब्राह्मणार्थे पराक्रान्ता धर्मात्मानो यतव्रताः ।
क्लेशमार्च्छन्ति विपुलं सुखोदर्कं परन्तपाः ॥६॥

कुन्ती-पुत्र, राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, माद्री-पुत्र, नकुल, सहदेव, ये सारे ही बड़े धर्मात्मा व्रतशील और ब्राह्मणों के निमित्त पराक्रम करने वाले थे। ये शत्रु के सन्ताप देने वाले, पाण्डव, यहां बड़ा ही क्लेश पा रहे थे, जिस क्लेश के भीतर भविष्य सुख का आभास झलक रहा था ॥ ५-६ ॥

तस्मिन् प्रतिवसन्तस्ते यत् प्रापुः कुरुसत्तमाः ।
वने क्लेशं सुखोदर्कं तत् प्रवक्ष्यामि ते शृणु ॥७॥

हे राजन् ! इस वन में वास करते हुए, कुरु-वंश-श्रेष्ठ, पांडवोंने परिणाम में सुखदायी जिस क्लेश का अनुभव किया-मैं तुमको वह सुनाता हूं-तुम ध्यान से सुनो ॥ ७ ॥

अरणीसहितं मन्थं ब्राह्मणस्य तपस्विनः ।
मृगस्य धर्षमाणस्य विषाणे समसज्जत ॥८॥
तदादाय गतो राजंस्त्वरमाणो महामृगः ।
आश्रमान्तरितः शीघ्रं प्लवमानो महाजवः ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! एक बार किसी तपस्वी के अग्नि निकालने के अरणी-काष्ठ और मध्य में लगे हुए मन्थन-दण्ड को एक मृग बड़ी शीघ्रता से ले भागा, जो सींगों को खुजलाते हुए इस मृग के सींगों में अटक गया था, यह मृग इतने वेगसे भागा, कि शीघ्र ही आश्रम से अलक्षित हो गया ॥ ८-९ ॥

हियमाणन्तु तं दृष्ट्वा स विप्रः कुरुसत्तम ।
त्वरितोऽभ्यागमत्तत्र अग्निहोत्रपरीप्सया ॥१०॥

हे कुरुसत्तम ! वह तपस्वी ब्राह्मण, उस अरणी को लेकर भागते हुए उस हिरण को देख कर अग्निहोत्र के पूरा करने की इच्छा से बड़ा ही शीघ्र, पाण्डवों के पास आया ॥ १० ॥

अजातशत्रुमासीनं भ्रातृभिः सहितं वने ।
आगम्य ब्राह्मणस्तूर्णं सन्तप्तश्चेदमब्रवीत् ॥११॥

इस समय अपने भाइयों के साथ अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर, वन में बैठा हुआ था । इस दुःखी ब्राह्मणने शीघ्रता से वहां आकर कहा ॥ ११ ॥

अरणीसहितं मन्थं समसक्तं वनस्पतौ ।
मृगस्य धर्षमाणस्य विषाणे समसज्जत ॥१२॥
तमादाय गतो राजंस्त्वरमाणो महामृगः ।
आश्रमान्तरितः शीघ्रं प्लवमानो महाजवः ॥१३॥

हे राजन् ! अरणी-काष्ठ के साथ मन्थन दण्ड वृक्ष में लटक रहा था । उस वृक्ष में अपने को रगड़ते हुए, मृग के सींगों में वह अटक गया । वह मृग, उसको लेकर बड़ी शीघ्रता से भाग गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यह महा-वेग-शील मृग, बड़ा शीघ्र ही आश्रम वालों की दृष्टि ओझल हो गया ॥ १२-१३ ॥

तस्य गत्वा पदं राजन्नासाद्य च महामृगम् ।
अग्निहोत्रं न लुप्येत तदानयत पाण्डवाः ॥१४॥

हे पाण्डवो ! तुम उसके पीछे जाओ और उस मृग को पकड़ अग्निहोत्र के समय के लुप्त होने से पूर्व ही उन अरणी-काष्ठों को ले आओ ॥ १४ ॥

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा सन्तप्तोऽथ युधिष्ठिरः ।
धनुरादाय कौन्तेयः प्राद्रवद्भ्रातृभिः सह ॥१५॥

ब्राह्मण के वचन सुन कर राजा युधिष्ठिर, बड़ा ही चिन्तित सा हुआ । यह धनुष उठा कर अपने भाइयों के साथ मृग की ओर दौड़ चला ॥ १५ ॥

सन्नद्धा धन्विनः सर्वे प्राद्रवन्नरपुङ्गवाः ।
ब्राह्मणार्थे यतन्तस्ते शीघ्रमन्वगमन्मृगम् ॥१६॥

यह सारे धनुषधारी नर श्रेष्ठ, पाण्डव, बड़े शीघ्र तय्यार होकर ब्राह्मण के लिए प्रयत्न करते हुए उस मृग के पीछे भाग चले ॥१६॥

कर्णिनालीकनाराचानुत्सृजन्तो महारथाः ।
नाविध्यन् पाण्डवास्तत्रापश्यन्तो मृगमन्तिकात् ॥१७॥

ये महारथी पाण्डव कर्णि,, नालीक, नाराच आदि तीक्ष्ण बाण फैंक रहे थे, परन्तु इनको पास में कहीं भी मृग दिखाई नहीं देता था, जिससे ये उसको बींध ही नहीं सके ॥ १७ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेषां प्रयतमानानां नादृश्यत महामृगः ।
अपश्यन्तो मृगं श्रान्ता दुःखं प्राप्ता मनस्विनः ॥१८

ये बड़ा ही प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु इनको वह महा-मृग दिखाई ही नहीं देता था। जब मृग इनको दिखाई नहीं दिया, तो ये मनस्वी, थक गए और बड़े ही दुःखी हुए ॥ १८ ॥

शीतलच्छायमागम्य न्यग्रोधंगहने वने ।
क्षुत्पिपासापरीताङ्गाः पाण्डवाः समुपाविशन् ॥१९॥

अब भूख प्यास से व्याकुल, पाण्डव, इस गहन वनमें वटवृक्ष की शीतल छाया में आकर बैठ गए ॥ १९ ॥

तेषां समुपविष्टानां नकुलो दुःखितस्तदा ।
अब्रवीत् भ्रातरं श्रेष्ठममर्षात् कुरुनन्दनम् ॥२०॥

इन सबके बैठ जाने पर दुःखी नकुल, कुरु-वंश-श्रेष्ठ, राजा युधिष्ठिर से आवेश में कहने लगा ॥ २० ॥

नास्मिन् कुले जातु ममज्ज धर्मो न चालस्यादर्थलोपो बभूव
अनुत्तराः सर्वभूतेषु भूयः सम्प्राप्ताः स्मः संशयं किन्नु राजन्

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि आरणेयपर्वणि पाण्डवमृगान्वेषणे दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३१०॥

हे राजन्! इस कुल में कभी आलस्य से धर्म और अर्थ (नीति) का लोप नहीं हुआ। हम सारे प्राणियों के सम्मुख निरुत्तर से हो रहे हैं और हमारे लिए बड़ा ही संशय (विपत्ति) खड़ा हो गया है ॥ २१ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत आरणेयपर्व में पाण्डवों के मृग के खोजने का तीन सौ दसवां अध्याय पूरा हुआ।

*****

तीन सौ ग्यारहवां अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

नापदामस्ति मर्य्यादा न निमित्तं न कारणम् ।
धर्मस्तु विभजत्यर्थं मुभयोः पुण्यपापयोः ॥१॥

युधिष्ठिर बोले—आपत्तियों की भी मर्यादा है। आपत्ति के आने में कोई निमित्त या कारण नहीं है—ऐसा भी नहीं है। दोनों पाप और पुण्य का फल दुःख और सुख तथा इसका विभाग पूर्व जन्म के कर्म (प्रारब्ध) ही करते रहते हैं ॥ १ ॥

भीम उवाच - प्रातिकाम्यनयत् कृष्णां सभायां प्रेष्यवत्तदा ।
न मया निहतस्तत्र तेन प्राप्ताः स्म संशयम् ॥२॥

भीम ने कहा—हे राजन ! द्यूत के समय प्रातिकामी सेवक दासी की तरह द्रौपदी को सभा में ले आया था। मैंने उसी समय जो इसको नहीं मारा—इससे ही हमको यह संशय (दुःख) प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥

अर्जुनोवाच - वाचस्तीक्ष्णास्त्वभेदिन्यः सूतपुत्रेणभाषिताः
अतितीव्रा मया क्षान्तास् तेन प्राप्ताः स्म संशयम् ॥

अर्जुन ने कहा—हे नृपते ! उस समय सूत-पुत्र कर्ण ने भी बड़ी तीखी हृदय और अस्थियों तक को छेदने वाली बातें कह डाली थीं। मैं उन अत्यन्त तीक्ष्ण बातों पर भी चुप ही बैठा रहा-जिससे यह विपत्ति प्राप्त हुई है ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहदेव उवाच—शकुनिस्त्वां यदाजैषीदक्षद्यूतेन भारत ।
न मया न हतस्तत्र तेन प्राप्ताः स्म संशयम् ॥४॥

सहदेव बोला—हे भारत ! शकुनि ने जब झूठे पासे फेंक कर तुमको जुआ में जीत लिया, मैंने जो उसी समय उसको नहीं मारा, उसी से हमको यह विपत्ति प्राप्त हुई है ॥४॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो युधिष्ठिरो राजा नकुलं वाक्यमब्रवीत् ।
आरुह्य वृक्षं माद्रेय निरीक्षस्व दिशो दश ॥५॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! अब राजा युधिष्ठिर ने नकुल से कहा—हे माद्रीसुत ! तुम वृक्ष पर चढ़ कर दशों दिशाओं की ओर देखो ॥ ५ ॥

पानीयमन्तिके पश्य वृक्षांश्चाप्युदकाश्रितान् ।
एते हि भ्रातरः श्रान्तास्तव तात पिपासिताः ॥६॥

हे तात ! पास में कहीं पानी हो और पानी के तट पर ही वृक्ष समूह हो-तो तुम देखो, ये तुम्हारे सारे भाई बड़े प्यासे और थके हुए हैं ॥ ६ ॥

नकुलस्तं तथेत्युक्त्वा शीघ्रमारुह्य पादपम् ।
अब्रवीद्भ्रातरं ज्येष्ठमभिवीक्ष्य समन्ततः ॥७॥

नकुल, स्वीकार करके शीघ्र ही वृक्ष पर चढ़ गया और इधर उधर देख कर अपने जेष्ठ भ्राता से कहने लगा ॥ ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्यामि बहुलान् राजन् वृक्षानुदकसंश्रयान् ।
सारसानाञ्च निह्रादमत्रोदकमसंशयम ॥८॥

हे राजन् ! मैं जलके तट पर खड़े हुए बहुत से वृक्ष देख रहा हूं । इधर सारस भी बोल रहे हैं, यहां पर निश्चय जल है ॥८॥

ततोऽब्रवीत् सत्यधृतिः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
गच्छ सौम्य ततः शीघ्रं तूणैः पानीयमानय ॥९॥

सत्यप्रतिज्ञ, कुन्ती-पुत्र, राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे सौम्य ! तुम शीघ्र जाओ और इन तरकसों में पानी भर लाओ॥ ९ ॥

नकुलस्तु तथेत्युक्त्वा भ्रातुर्ज्येष्ठस्य शासनात् ।
प्राद्रवद्यत्र पानीयं शीघ्रञ्चैवान्वपद्यत ॥१०॥

नकुल ने कहा—जो आज्ञा—यह इतना कह कर अपने भाई की आज्ञा से जहां पानी था, दौड़ा चला गया और शीघ्र ही वहाँ पहुँच गया ॥१०॥

स दृष्ट्वा विमलं तोयं सारसैः परिवारितम् ।
पातु कामस्ततो वाचमन्तरीक्षात् स शुश्रुवे ॥११॥

इसने सारस पक्षियों से घेरा हुआ, निर्मल जल देखा। ज्योंही इसने जल पीना चाहा-त्योंही अन्तरीक्ष से एक वाणी सुनी गई ॥११॥

यक्ष उवाच-मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।
प्रश्नानुक्त्वा तु माद्रेय ततः पिब हरस्व च ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष बोला—हे तात ! तुम इस सरोवर में जल पीने का साहस न करो। मेरा यहां एक पूर्व से ही नियम चला आता है। हे माद्री-पुत्र ! तुम भी उसी नियम के अनुसार मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर जल पी सकते हो और ले जा भी सकते हो ॥१२॥

अनादृत्य तु तद्वाक्यं नकुलः सुपिपासितः ।
अपिबत् शीतलं तोयं पीत्वा च निपपात ह ॥१३॥

नकुल बड़ा प्यासा था, उसने उसके वाक्य की कुछ भी परवाह न की। इसने उस शीतल जल को पी लिया, जल के पीते ही यह भूमि पर गिर गया ॥१३॥

चिरायमाणे नकुले कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अब्रवीत् भ्रातरं वीरं सहदेवमरिन्दम ॥१४॥
भ्राता हि चिरयातो नः सहदेव तवाग्रजः ।
तथैवानय सोदर्य्यं पानीयञ्च त्वमानय ॥१५॥

हे अरिमर्दन ! जब नकुल ने बहुत देर कर दी, तो कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने, अपने वीर भ्राता सहदेव से कहा—हे सहदेव ! तुम्हारा बड़ा भाई नकुल बहुत देर से गया है और आया नहीं। तुम उनको बुला लाओ और पानी भी लेते आवो ॥१५॥

सहदेवस्तथेत्युक्त्वा तां दिशं प्रत्यपद्यत ।
ददर्श च हतं भूमौ भ्रातरं नकुलं तदा ॥१६॥

सहदेव उनके वचन स्वीकार करके उसी दिशा को चल दिया जिधर नकुल गया था। इसने यहां अपने भाई को भूमिमें मरा, हुआ पड़ा देखा ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रातृशोकाभिसन्तप्तस्तृषया च प्रपीड़ितः ।
अभिदुद्राव पानीयं तदा वागभ्यभाषत ॥१७॥

यह भाई के शोक से सन्तप्त और प्यास से प्रपीड़ित हो रहा था। यह भी पानी की ओर दौड़ा और इसको भी वहीं अशरीरिणी वाणी सुनाई दी ॥१७॥

मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।
प्रश्नानुक्त्वा यथाकामं पिबस्व च हरस्व च ॥१८॥

हे तात ! तुम साहस न करो—मेरा एक पूर्व से ही नियम है। तुम प्रथम मेरे प्रश्नों का उत्तर दो और फिर जितनी इच्छा हो—उतना जल पी लो और ले जाओ ॥१८॥

अनादृत्य तु तद्वाक्यं सहदेवः पिपासितः ।
अपिबत् शीतलं तोयं पीत्वा च निपपात ह ॥१९॥

इस सहदेव ने भी इसके वाक्यों पर ध्यान नहीं दिया और शीतल जल पी गया। यह भी पीते ही नीचे गिर गया ॥१९॥

अथाब्रवीत् स विजयं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भ्रातरौ ते चिरगतौ बीभत्सो शत्रुकर्षण ॥२०॥
तौ चैवानय भद्रन्ते पानीयञ्च त्वमानय ।
त्वं हि नस्तात सर्वेषां दुःखितानामुपाश्रयः ॥२१॥

अब कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—हे शत्रु कर्षण ! अर्जुन ! तेरे इन दोनों भाइयों को गए बहुत देर हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुकी। तुम जाओ, उन दोनों को लिवा लाओ और पानी भी ले आवो। हे तात ! तुम्हीं हमारे सारे दुःखों में आश्रय हो ॥२०-२१॥

एवमुक्तो गुडाकेशः प्रगृह्य सशरं धनुः।
आमुक्तखड्गो मेधावी तत्सरः प्रत्यपद्यत ॥२२॥

राजा के इतना कहने पर मेधावी, अर्जुन, बाण-सहित धनुष को उठा कर और नंगी तरवार बांध कर उस सरोवर पर पहुंचा ॥२२॥

ततः पुरुषशार्दूलौ पानीयहरणे गतौ।
तौ ददर्श हतौ तत्र भ्रातरौ श्वेतवाहनः ॥२३॥

वे जो दोनों पुरुष-श्रेष्ठ, नकुल और सहदेव, इससे पूर्व पानी लेने गए थे, उनको श्वेत अश्व पर चढ़ने वाले इस अर्जुन ने वहां मरे हुए देखा ॥२३॥

प्रसुप्ताविव तौ दृष्ट्वा नरसिंहः सुदुःखितः।
धनुरुद्यम्य कौन्तेयो व्यलोकयत तद्वनम् ॥२४॥

इन दोनों को भूमि में सोते से देख कर यह वीर-श्रेष्ठ बड़ा दुःखी हुआ। इस कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने अब धनुष को सम्भाल कर वन में चारों ओर देखा ॥२४॥

नापश्यत्तत्र किञ्चित् स भूतमस्मिन्महावने।
सव्यसाची ततः श्रान्तः पानीयं सोऽभ्यधावत ॥२५॥

अर्जुन ने इस महावन में किसी भी प्राणी को नहीं देखा। अर्जुन भी थका हुआ था- इससे यह भी पानी की ओर ही दौड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिधावंस्ततो वाक्यमन्तरीक्षात् स शुश्रुवे।
किमासीदसि पानीयं नैतच्छक्यं बलान्वया ॥२६॥

ज्यों ही यह पानी के लिए दौड़ा, त्यों ही इसने अन्तरीक्ष से वही वाणी सुनी। क्या तुम पानी लेना चाह रहे हो? इस पानी को तुम लोग बलपूर्वक ग्रहण नहीं कर सकते हो ॥२६॥

कौन्तेय यदि प्रश्नांस्तान्मयोक्तान् प्रतिपत्स्यते।
ततः पास्यसि पानीयं हरिष्यसि च भारत ॥२७॥

हे कौन्तेय! हे भारत! जो तुम मेरे कहे हुए प्रश्नों का उत्तर दे दो, तो तुम पानी पी सकते हो और जितना चाहो उतना ले जा सकते हो ॥२७॥

वारितस्त्वब्रवीत् पार्थो दृश्यमानो निवारय।
यावद्बाणैर्विनिर्भिन्नः पुनर्नैवं वदिष्यसि ॥२८॥

इस प्रकार अर्जुन को रोक देने पर अर्जुन बोला—कि यदि तुम मुझे रोक रहे हो, तो सामने दिखाई देकर रोको। यदि दिखाई दे गए, तो बाणों से इतना छेद डालूंगा—कि फिर तो ऐसा कह ही नहीं सकोगे ॥२८॥

एवमुक्त्वा ततः पार्थः शरैरस्त्रानुमन्त्रितैः।
प्रववर्ष दिशः कृत्स्नाः शब्दविद्धश्च दर्शयन् ॥२९॥

इतना कह कर अर्जुन ने अस्त्रों से बाणों को अनुमन्त्रित करके सारी दिशाओं में बरसाना आरम्भ किया। अर्जन इस समय अपना शब्द बेंधीपन दिखा रहा था ॥२९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्णिनालीकनाराचानुत्सृजन् भरतर्षभ ।
स त्वमोघानिषून्मुक्त्वा तृष्णयाभिप्रपीड़ितः ।
अनेकैरिषुसङ्घातैरन्तरीक्षे ववर्ष ह ॥३०॥

हे भरतर्षभ ! कर्णि, नालीक और नाराच संज्ञक अमोघ बाणों को अर्जुन फेंक रहा था। यह प्यास से बड़ा ही पीड़ित हो रहा था, इतने पर भी अनेक भांति के बाणों के समूह से अन्तरीक्ष में वर्षा सी कर रहा था ॥३०॥

यक्ष उवाच-किं विधानेन ते पार्थ प्रश्नानुक्त्वा ततः पिब ।
अनुक्त्वा च पिबन् प्रश्नान् पीत्वैव न भविष्यसि ३१

यक्ष ने कहा—हे पार्थ ! तेरे इस उद्योग में क्या रखा है ? तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर पानी पी लो। जो प्रश्नों का उत्तर दिए विना जल पीवोगे, तो पीते ही तुम भी इस संसार में नहीं रहोगे ॥३१॥

एवमुक्तस्ततः पार्थः सव्यसाची धनञ्जयः ।
अवज्ञायैव तां वाचं पीत्वैव निपपात ह॥३२॥

यक्ष के इतना कहने पर भी सव्यसाची अर्जुन ने उसके वचन पर ध्यान नहीं दिया और जल पीने लगा। यह जल के पीते ही भूमि पर गिर गया ॥३२॥

अथाब्रवीद्भीमसेनं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च बीभत्सुश्च परन्तप ॥३३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिरङ्गतास्तोयहेतोर्न चागच्छन्ति भारत ।
तांश्च वानय भद्रन्ते पानीयञ्च त्वमानय ॥३४॥

अब कुन्ती-पुत्र धर्मराज ने भीमसेन से कहा—हे परन्तप ! नकुल, सहदेव और अर्जुन को जल के लिए गए बड़ी देर हो चुकी। हे भारत ! वे अभी तक नहीं लौटे हैं। तुम उनको और पानी लेकर शीघ्र आओ ॥ ३३ ३४ ॥

भीमसेनस्तथेत्युक्त्वा तं देशं प्रत्यपद्यत ।
यत्र ते पुरुषव्याघ्रा भ्रातरोऽस्य निपातिताः ॥३५॥

भीमसेन, धर्मराज के वचन स्वीकर करके उसी स्थान पर आया, जहाँ वे पुरुष श्रेष्ठ, इसके भाई पड़े थे ॥३५॥

तान् दृष्ट्वा दुःखितो भीमस्तृषया च प्रपीड़ितः ।
अमन्यत महाबाहुः कर्म तद्यक्षरक्षसाम् ॥३६॥

इनको देख कर भीम बड़ा दुःखी हुआ। इधर यह प्यास से भी बड़ा पीड़ित हो रहा था। इस महाबाहु भीम ने समझ लिया, कि यह कर्म किसी यक्ष या राक्षस का है ॥३६॥

स चिन्तयामास तदा योद्धव्यं ध्रुवमद्य वै ।
पास्यामि तावत् पानीयमिति पार्थो वृकोदरः ।
ततोऽभ्यधावत् पानीयं पिपासुर्भरतर्षभः ॥३७॥

इसने सोच लिया, कि अब यहाँ अवश्य युद्ध करना होगा—इस से पहले पानी पीलूँ। इतना सोच कर भरत-वंश-श्रेष्ठ, कुन्ती-पुत्र प्यासा भीमसेन, पानी की ओर दौड़ा ॥३७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष उवाच-मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।
प्रश्नानुक्त्वा तु कौन्तेय ततः पिब हरस्व च ॥३८॥

यक्ष ने कहा—हे तात ! तुम पानी पीने का साहस न कर बैठना। मेरा यह पूर्व का नियम है, कि यहाँ जो मेरे प्रश्नों को उत्तर दे दे, वही पानी पी सकता है। हे कौन्तेय ! तुम भी प्रश्नों का उत्तर दे कर पानी पी लो और जितना चाहिए ले जाओ ॥३८॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तस्तदा भीमो यक्षेणामिततेजसा ।
अनुक्त्वैव तु तान् प्रश्नान् पीत्वैव निपपात ह ॥३९॥

वैशम्यापन बोले—हे राजन् ! अत्यन्त-तेजस्वी यक्ष के इतना कहने पर भी भीम उसके प्रश्नों का उत्तर दिए विना ही जल पीने लगा और यह भी जल पीते ही गिर गया ॥३९॥

ततश्चिरगतान् भ्रातॄनथ ज्ञात्वा युधिष्ठिरः ।
चिरायमाणो बहुशः पुनः पुनरुवाच ह ॥४०॥

राजा युधिष्ठिर ने देखा—सारे भाइयों को गए बहुत देर हो चुकी। यह इसी स्थान पर और कुछ विलम्ब लगा कर बार २ सोचने लगा ॥४०॥

माद्र्यौ किं चिरायेते गाण्डीवी किं चिरायते ।
महाबलधरस्तत्र किं नु भीमश्चिरायते ॥४१॥

माद्री-पुत्र नकुल सहदेव ने कैसे देर कर दी। गाण्डीव धनुष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारी अर्जुन कैसे देर लगा रहा है। महा-बल-धारी भीम भी कैसे देर कर रहा हैं ॥४१॥

गच्छाम्येषां पदं द्रष्टुमिति कृत्वा युधिष्ठिरः।
समुत्तस्थौ महाबाहुर्दह्यमानेन चेतसा ॥४२॥

अब मैं भी इनको खोजने चलता हूँ—इतना विचार कर महाबाहु राजा युधिष्ठिर, सन्तप्त चित्त से खड़ा हो गया ॥४२॥

ततः कुन्तीसुतो राजा प्रचिन्त्य पुरुषर्षभः।
आत्मनात्मानमेतच्च चिन्तयन्निदमब्रवीत् ॥४३॥

पुरुष-श्रेष्ठ, कुन्ती-पुत्र, धर्मराज ने बहुत कुछ विचार किया और यह फिर कुछ सोचता हुआ, अपने आप से ही इस तरह कहने लगा ॥४३॥

किं स्विद्वनमिदं दुष्टं किस्विद् दुष्टो मृगो भवेत्
प्राहसन् वा महाभूतं शप्तास्तेनाथ वापतन् ॥४४॥

या तो यह वन ही बड़ा भयानक है या वह मृग कोई दुष्ट राक्षस था अथवा इन मेरे भाइयों ने किसी यक्षादि महाभूत का उपहास किया है, जिस से ये सारे कहीं गिरे हुए पड़े हैं ॥४४॥

न पश्यन्त्यथ वा वीराः पानीयं यत्र ते गताः।
अन्विच्छद्भिर्वने तोयं कालोऽयमभिपातितः।
किं नु तत् कारणं येन नायान्ति पुरुषर्षभाः ॥४५॥

यह भी हो सकता है, कि इन वीरों को वहाँ पानी न मिला हो, जहां गए थे। शायद इन्होंने जल की खोज करते २ ही इतनः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय व्यतीत कर दिया हो। नहीं तो क्या कारण है? जो अभी तक ये पुरुष-श्रेष्ठ नहीं आ सके हैं ॥४५॥

एवमादीनि वाक्यानि विमृष्य नृपसत्तमः।
व्यपेतजननिर्घोषं प्रविवेश महावनम् ॥४६॥
रुरुभिश्च वराहैश्च पक्षिभिश्च निषेवितम्।
नीलभास्वरवर्णैश्च पादपैरुपशोभितम्।
भ्रमरैरुपगीतश्च पक्षिभिश्च महायशाः ॥४७॥

यह महायशस्वी, नृप-श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर, इस तरह की अनेक बातें सोचता हुआ, मनुष्यों के शब्द से रहित, रुरु मृग, वराह, अनेक भाँति के पक्षियों से समन्वित, काले चमकदार वृक्षों से सुशोभित, भौंरों से तथा अन्य पक्षियों से शब्दायमान, इस महावन में घुस गया। ॥४६-४७॥

स गच्छन् कानने तस्मिन् हेमजालपरिष्कृतम्।
ददर्श तत् सरः श्रीमान् विश्वकर्मकृतं यथा ॥४८॥
उपेतं नलिनीजालैः सिन्धुवारैः सुवेतसैः।
केतकैः करवीरैश्च पिप्पलैश्चैव संवृतम्।
श्रमार्त्तस्तदुपागम्य सरो दृष्ट्वाथ विस्मितः ॥४९॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि आरण्येयपर्वणि युधिष्ठिर-सरोदर्शने एकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३११॥

इस वन में जाते हुए श्रीमान् धर्मराज ने सुवर्ण के समान उज्ज्वल कमलों से सुशोभित, मानो विश्वकर्मा द्वारा रचे हुए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमलिनी के समूह से व्याप्त, सिन्धुवार, बेंत, केतकी, कनेर और पीपलों से घिरे हुए उस सरोवर को देखा। राजा युधिष्ठिर बड़ा ही थक चुका था। यह उस सरोवर पर पहुंचा और उसको देख कर बड़ा ही चकित हुआ ॥४८-४९॥।

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत आरणेयपर्व में राजा युधिष्ठिर के सरोवर देखने का तीन सौ ग्यारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

—०—

तीन सौ बारहवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

सददर्श हतान् भ्रातॄन् लोकपालानिव च्युतान्।
युगान्ते समनुप्राप्ते शक्रप्रतिमगौरवान् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! राजा युधिष्ठिर ने युग का अन्त प्राप्त होने पर लोकपालों के समान गिरे हुए, इन्द्र के समान गौरवशाली अपने भाइयों को मृतावस्था में देखा ॥१॥

विनिकीर्णधनुर्बाणं दृष्ट्वा निहतमर्जुनम्।
भीमसेनं यमौ चैव निर्विचेष्टान् गतायुषः ॥२॥
स दीर्घमुष्णं निश्वस्य शोकबाष्पपरिप्लुतः।
तान् दृष्ट्वा पतितान् भ्रातॄन् सर्वाश्चिन्तासमन्वितः ॥
धर्मपुत्रो महाबाहुर्विललाप सुविस्तरम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ओर धनुष दूर पड़े हुए मृत अर्जुन को और दूसरी ओर भीम तथा नकुल सहदेव को चेष्टाहीन मृत दशा में देख कर राजा युधिष्ठिर ने लम्बी सांस ली और इस शोक से इसके आंसू उमड़ पड़े। धर्मराज, इन सारे भाइयों को यहां पड़े हुए देख कर बड़ा ही चिन्तित हुआ और बड़े ही विस्तार से विलाप करने लगा ॥२-३॥

ननु त्वया महाबाहो प्रतिज्ञातं वृकोदर ॥४॥
सुयोधनस्य भेत्स्यामि गदया सक्थिनी रणे।
व्यर्थं तदद्य मे सर्वं त्वयि वीरे निपातिते ॥५॥
महात्मनि महाबाहौ कुरूणां कीर्त्तिवर्द्धने।
मनुष्यसम्भवा वाचो विधर्मिण्यः प्रतिश्रुताः ॥६॥
भवतो दिव्यवाचस्तु ता भवन्ति कथं मृषा।

हे महाबाहो! वृकोदर! तुमने तो प्रतिज्ञा की थी, कि मैं रण में अपनी गदा से दुर्योधन की जंघा तोड़ूंगा। हे वीर! कुरुवंश की कीर्ति बढ़ाने वाले, महाबाहु, तुझ महात्मा भीम के गिर जाने से वे सब कुछ आज मुझे व्यर्थ हो गया। मनुष्य जिन कथनों को कहने में भी असम्भव समझें, तूने तो उन सब बातों की प्रतिज्ञा की थी। अब वे तुम्हारी दिव्य वाणी, कैसे मिथ्या हो गई ॥४-६॥

देवाश्चापि यदावोचन् सूतके त्वां धनञ्जय ॥ ॥७॥
सहस्राक्षादनवरः कुन्तिपुत्रस्तवेति वै।
उत्तरे पारिपात्रे च जगुर्भूतानि सर्वशः ॥८॥
विप्रनष्टां श्रियञ्चैषामाहर्ता पुनरञ्जसा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे धनञ्जय ! तेरे उत्पत्ति के समय तो देवों ने स्वयं कहा था, हे कुन्ती ! तेरा यह पुत्र, इन्द्र से कम नहीं होगा। इसके यश को उत्तर दिशा के पारिपात्र पर्वत' पर सारे प्राणी गावेंगे और यह नष्ट हुई राज्यलक्ष्मी को भी बड़ी शीघ्रता से वापिस लौटा लेगा ॥७-८॥

नास्य जेता रणे कश्चिदजेता नैष कस्यचित् ॥९॥
सोऽयं मृत्युवशं यातः कथं जिष्णुर्महाबलः

इस अर्जुन को रणमें कोई नहीं जीत सकेगा और यह किसी को विना जीते नहीं छोड़ेगा। वही महाबली, जयशील अर्जुन, आज कैसे मृत्यु के फन्दे में फंस गया ॥९॥

अयं ममाशां संहत्य शेते भूमौ धनञ्जयः १०॥
आश्रित्य यं वयं नाथं दुःखान्येतानि सेहिम ।

यह अर्जुन, तो आज मेरी सारी आशाओं का नाश करके भूमि में सो रहा है। हम तो इस पर सारा भरोसा करके इस सारे दुःख को सह रहे थे ॥१०॥

रणे प्रमत्तौ वीरौ च सदा शत्रुनिबर्हणौ ॥११॥
कथं रिपुवशं यातौ कुन्तीपुत्रौ महाबलौ ।
यौ सर्वास्त्राप्रतिहतौ भीमसेनधनञ्जयौ ॥१२॥

ये दोनों महाबली, वीर, कुन्ती-पुत्र, रण में गर्व के साथ घूमने वाले और शत्रु-विजयी थे। ये भी आज कैसे शत्रु के वश में हो गए। ये तो दोनों भीम और अर्जुन तो सब अस्त्रों में अप्रतिहत गति थे ॥११-१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम दुर्हृदः।
यमौ यदेतौ दृष्ट्वाद्य पतितौ नावदीर्य्यते ॥१३॥

मुझ दुष्ट का हृदय सचमुच पत्थर का बना है, जो इन दोनों नकुल सहदेव को भूमि में पड़े हुए देख कर भी नहीं फटता है।१३

शास्त्रज्ञा देशकालज्ञास्तपोयुक्ताः क्रियान्विताः।
अकृत्वा सदृशं कर्म किं शेध्वं पुरुषर्षभाः ॥१४॥

हे पुरुष-श्रेष्ठो! तुम शास्त्र और देश काल जानने वाले, तप से युक्त और क्रियाशील थे, फिर अपने योग्य कर्म को बिना किये ही आज भूमि में कैसे सो गए हो ॥१४॥

अविक्षतशरीराश्चाप्यप्रमृष्टशरासनाः।
असंज्ञा भुवि सङ्गम्य किं शेध्वमपराजिताः ॥१५॥

किसी से पराजित नहीं होने वाले तुम लोगों के शरीर पर कोई घाव भी नहीं है और न तुम ने धनुष से ही कोई कार्य किया है। फिर भी क्या बात है, कि तुम भूमि पर पड़े हुए सो रहे हो ॥१५॥

सानूनिवाद्रेः संसुप्तान् दृष्ट्वा भ्रातॄन्महामतिः।
सुखं प्रसुप्तान् प्रस्विन्नः खिन्नः कष्टां दशाङ्गतः॥१६॥

पर्वत की सानु (चोटी) के समान ऊँची देह वाले, अपने भाइयों को भूमि में सुख से सोते हुए देख कर महामति धर्मराज, पसीनों में भीग गए और बड़े ही खिन्न हुए। इस समय ये बड़ी ही शोचनीय दशा को प्राप्त हो रहे थे ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमेवेदमित्युक्त्वा धर्मात्मा स नरेश्वरः ।
शोकसागरमध्यस्थो दध्यौकारणमाकुलः ॥१७॥

इस प्रकार अनेक बातें कह कर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर, शोक समुद्र में डूब सा गया और यह बड़ा कातर होकर इसका कारण सोचने लगा ॥१७॥

इति कर्त्तव्यताञ्चेति देशकालविभागवित् ।
नाभिपेदे महाबाहुश्चिन्तयानो महामतिः ॥१८॥
अथ संस्तभ्य धर्मात्मा तदात्मानं तपःसुतः ।

देशकाल के अनुसार कार्य करने में कुशल, धर्मात्मा, महाबुद्धिमान, महाबाहु, धर्मराज ने अपने आपको सम्भाल कर बहुत कुछ सोचा, परन्तु इस समय क्या करना चाहिए—यह कुछ भी समझ में नहीं आया ॥१८॥

एवंविलप्य बहुधा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१९॥
बुद्ध्या विचिन्तयामास वीराः केन निपातिताः ।

इस प्रकार अनेक भाँति से विलाप करके धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने बुद्धि से विचार किया, कि इन वीरों को किस ने गिरा दिया है ॥१९॥

नैषां शस्त्रप्रहारोऽस्ति पदं नेहास्ति कस्यचित् ॥२०॥
भूतं महदिदं मन्ये भ्रातरो येन मे हताः ।

न तो इनके शरीर में कोई शस्त्र की चोट है और न यहाँ किसी के आने के चरण-चिन्ह विद्यमान हैं । जिसने मेरे भाइयों को मारा है—मुझे तो वह कोई महाभूत, ज्ञात होता है ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकाग्रं चिन्तयिष्यामि पीत्वा वेत्स्यामि वा जलम् ॥२१॥
स्यात्तु दुर्य्योधनेनेदमुपांशुविहितं कृतम् ।
गान्धारराजरचितं सततं जिह्मबुद्धिना ॥२२॥
यस्य कार्य्यमकार्य्यं वा सममेव भवत्युत ।
कस्तस्य विश्वसेद्धीरो दुष्कृतेरकृतात्मनः ॥२३॥

अब मैं एकाग्र मन से सोचता हूं या जल पीकर इसका पता लगाऊँगा। सम्भव है, दुर्योधन ने यह कोई निर्जन वन देख कर कपट लीला रची हो या कुटिल बुद्धि, गान्धार-राज शकुनि का यह जाल बनाया हुआ होगा, क्योंकि इस शकुनि को तो कार्य और अकार्य दोनों ही बराबर हैं। इस क्षुद्रात्मा दुर्जन शकुनि का विश्वास ही कैसे किया जा सकता है॥ २१-२३॥

अथ वा पुरुषैर्गूढैः प्रयोगोऽयन्दुरात्मनः ।
भवेदिति महाबुद्धिर्बहुधा तदचिन्तयत् ॥२४॥

यह दुरात्मा दुर्योधन का गुप्तचरों द्वारा कराया हुआ कोई प्रयोग भी हो सकता है। इस प्रकार इस महाबुद्धि धर्मराज ने बार २ विचारा॥ २४॥

तस्यासीन्न विषेणेदमुदकं दूषितं यथा ।
मृतानामपि चैतेषां विकृतं नैव जायते ॥२५॥
मुखवर्णाः प्रसन्ना मे भ्रातॄणामित्यचिन्तयत् ।

उस दुर्जन दुर्योधन या शकुनि द्वारा इस सरोवर का जल भी विष से दूषित किया हुआ, दृष्टि-गोचर नहीं होता है, क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन मरे हुए भाइयों का शरीर, विकृत होकर नीला नहीं पड़ा है। इनके मुख का वर्ण भी अभी तक तो ज्यों का त्यों ही उज्ज्वल है। इस प्रकार राजा ने बहुत से विचार लगाए ॥२५॥

एकैकशश्चौघबलानिमान् पुरुषसत्तमान् ॥२६॥
कोऽन्यः प्रतिसमासीत कालान्तकयमादृते ।

नदी के प्रवाह के समान बली, इन पुरुष-श्रेष्ठ, प्रत्येक भाई से यम और काल को छोड़कर कौन युद्ध कर सकता था ॥२६॥

एतेन व्यवसायेन तत्तोयं व्यवगाढ़वान् ।
गाहमानश्च तत्तोयमन्तरीक्षात् स शुश्रुवे ॥२७॥

धर्मराज, इतना निश्चय करके उस जल का आलोडन करने लगा। ज्योंही यह जल का आलोडन करने लगा-त्यों ही इसने भी उसी तरह अन्तरीक्ष से होने वाली वाणी सुनी ॥२७॥

यक्ष उवाच—

अहं बकः शैवलमत्स्यभक्षो नीता मया प्रेतवशं तवानुजाः ।
त्वं पञ्चमो भविता राजपुत्र नचेत्प्रश्नान् पृच्छते व्याकरोषि ॥

यक्ष कहने लगा--हे राजपुत्र ! मैं शैवाल और मछली खाने वाला एक बक (बगुला) हूं। मैंने ही तेरे इन भाइयों को यमराज के फन्दे में डाला है। अब यदि तुम भी मेरे प्रश्नों का उत्तर न देकर पानी पी लोगे- तो तुम्हारी भी यही दशा होगी और तुम भी इन चार में पांचवे मिल जाओगे ॥२८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।
प्रश्नानुक्त्वा तु कौन्तेय ततः पिब हरस्व च ॥

हे तात ! तुम भी पानी पीने का साहस न कर बैठना। मेरा पूर्व से ही यह आग्रह लगा हुआ है। हे कौन्तेय ! प्रश्नों के उत्तर देने के अनन्तर तुम जितना जल चाहो-पीना और जितना चाहो ले जाना ॥२९॥

युधिष्ठिर उवाच—

रुद्राणां वा वसूनां वा मरुतां वा प्रधानभाक् ।
पृच्छामि को भवान् देवो नैतच्छकुनिना कृतम् ॥३०॥

युधिष्ठिर बोले—मैं प्रथम यह पूछता हूं, कि तुम रुद्र, वसु, मरुत् आदि देवों में कौन से प्रधान देव हो। इस घटना को बक जैसा पक्षी नहीं कर सकता है ॥३०॥

हिमवान् पारिपात्रश्च विन्ध्यो मलय एव च ।
चत्वारः पर्वताः केन पातिता भूरितेजसः ।
अतीव ते महत् कर्म कृतञ्च बलिनाम्वर ॥३१॥

हिमवान्, पारिपात्र, विन्ध्य और मलय पर्वत के तुल्य मेरे इन अत्यन्त तेजस्वी चारों भाइयों को किसने गिरा दिया है। हे बलियों में श्रेष्ठ ! तुमने तो यह बहुत बुरा कर्म कर डाला।

यान्न देवा न गन्धर्वा नासुराश्च न राक्षसाः ।
विषहेरन् महायुद्धे कृतं ते तन्महाद्भुतम् ॥३२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत चित्र संख्या ४७

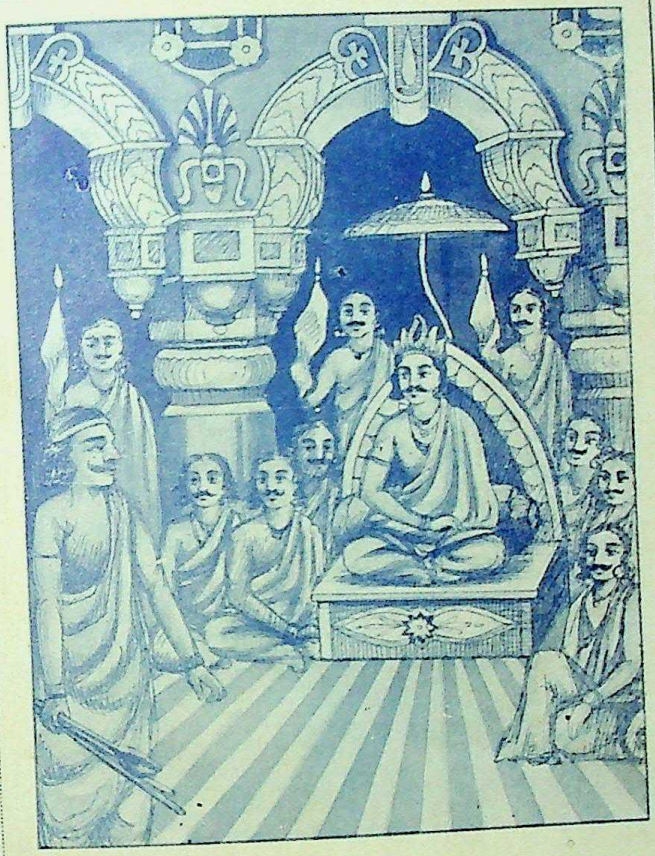

महाबली भीम का रसोईये का रूप धारण करके
विराट की सभा में प्रवेश करना।

महा० विराट पर्व अ० ८।१

पृष्ठ ७४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन महावीरों को महायुद्ध में देव, गन्धर्व, असुर और राक्षस भी नहीं सह सकते थे, उनको गिरा कर तुमने बड़ा ही अद्भुत कार्य कर डाला है ॥३२॥

न ते जानामि यत् कार्य्यं नाभिजानामि काङ्क्षितम् ।
कौतहलं महज्जातं साध्वसञ्चागतं मम ॥३३॥

मुझे तो यह कुछ भी ज्ञात नहीं होता है, कि तुमने यह कार्य क्यों किया है और तुम चाहते क्या हो। मुझे तो इस समय यह जानने की बड़ी इच्छा हो रही है और मैं एक तरह से बड़ा ही घबरा उठा हूँ ॥३३॥

येनास्म्युद्विग्नहृदयः समुत्पन्नशिरोज्वरः ।
पृच्छामि भगवंस्तस्मात् को भवानिह तिष्ठति ॥३४॥

मेरा हृदय बड़ा उद्विग्न हो रहा है और शिर में चक्कर खड़ा हो गया है। हे भगवन्! इससे मैं तो प्रथम यही पूछता हूं-कि आप कौन हैं ॥३४॥

यक्ष उवाच– यक्षोऽहमस्मि भद्रन्ते नास्मि पक्षी जलेचरः ।
मयैते निहताः सर्वे भ्रातरस्ते महौजसः ॥३५॥

हे राजन्! मैं एक यक्ष, जलचर पक्षी नहीं हूं। मैंने ही तेरे महा-ओजस्वी, ये सारे भाई मार डाले हैं ॥३५॥

वैशम्पायन उवाच—

ततस्तामशिवां श्रुत्वा वाचं स परुषाक्षराम् ।
यक्षस्य ब्रुवतो राजन्नुपक्रम्य तदा स्थितः ॥३६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इस प्रकार कठोर अक्षरों वाली, अकल्याणकारी, यक्ष की वाणी सुन कर धर्मराज, ठिठक कर खड़ा हो गया ॥३६॥

विरूपाक्षं महाकायं यक्षं तालसमुच्छ्रयम् ।
ज्वलनार्क प्रतीकाशमधृष्यं पर्वतोपमम् ॥३७॥
वृक्षमाश्रित्य तिष्ठन्तं ददर्श भरतर्षभः ।
मेघगम्भीरनादेन तर्जयन्तं महास्वनम् ॥३८॥

अब भरत-वंश-श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने बांकी तीखी आंखों वाले, विशाल-काय-धारी तालवृक्ष के सदृश ऊंचे, अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी, आक्रमण के अयोग्य पर्वत के समान विशाल और दृढ़, मेघ के तुल्य गम्भीर शब्द से गर्जना करते हुए, वृक्ष में बैठे हुए, यक्ष को देखा ॥ ३७-३८ ॥

यक्ष उवाच—इमे ते भ्रातरो राजन् वार्य्यमाणा मयासकृत् ।
बलात्तोयं जिहीर्षन्तस्ततो वै मृदिता मया ॥३९॥
न पेयमुदकं राजन् प्राणानिह परीप्सता ।

यक्ष कहने लगा—हे राजन् ! बल-पूर्वक जल ग्रहण करते हुए, इन तुम्हारे भाइयों को मैंने बार २ रोका, परन्तु यह नहीं माने, तब मैंने इनको यहीं पीस डाला। हे राजन् ! प्राणों की रक्षा चाहने वाले पुरुष को यहां कभी जलपान नहीं करना चाहिए ॥३९॥

पार्थ मा साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।
प्रश्नानुक्त्वा तु कौन्तेय ततः पिब हरस्व च ॥४०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे पार्थ ! तुमको भी जल ग्रहण करने का साहस नहीं करना चाहिए। मेरा तो पूर्व से ही नियम है। हे कौन्तेय ! प्रश्नों का उत्तर देकर अपनी इच्छानुसार जल पीलो और ले जाओ॥४०॥

युधिष्ठिर उवाच।

न चाहं कामये यक्ष तव पूर्वपरिग्रहम्।
कामं नैतत् प्रशंसन्ति सन्तो हि पुरुषाः सदा ॥४१॥
यदात्मना स्वमात्मानं प्रशंसेत् पुरुषर्षभः।
यथाप्रज्ञन्तु ते प्रश्नान् प्रतिवक्ष्यामि पृच्छ माम् ॥४२

युधिष्ठिर बोले– हे यक्ष ! मैं तुम्हारे पूर्व नियमों को भङ्ग करना नहीं चाहता हूं और न मैं यही अभिमान (दावा) रखता हूं, कि तुम्हारे प्रश्नों का ठीक २ उत्तर ही दे दूंगा। जब कोई पुरुष, अपने आप ही अपनी प्रशंसा करे, तो विद्वान् लोग इस बात की प्रशंसा नहीं करतेहैं। मैं तो अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूंगा-तुम प्रश्न करो ॥४१-४२॥

यक्ष उवाच-किंस्विदादित्यमुन्नयति के च तस्याभितश्चराः।
कश्चैनमस्तं नयति कस्मिंश्च प्रतितिष्ठति ॥४३॥

यक्ष ने पूछा---वह क्या है ? जो सूर्य को उदय करता है और उसी सूर्य के आस पास क्या घूमते हैं ? कौन इस सूर्य को अस्त करता है और किस वस्तु में यह ठहरा हुआ है ॥४३॥

युधिष्ठिर उवाच—

ब्रह्मादित्यमुन्नयति देवास्तस्याभितश्चराः।
धर्मश्चास्तं नयति च सत्ये च प्रतितिष्ठति ॥४४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—हे यक्ष ! ब्रह्मा (ईश्वर) सूर्य को उदय करने वाला है। देव (सात किरणें) इसके चारों ओर चलते हैं। धर्म (नियम) इसको अस्त करता है और यह सत्य (ब्रह्म) में स्थित है ॥४४॥

यक्ष उवाच-केनस्वित् श्रोत्रियोभवति केनस्विद्विन्दते महत्।
केन स्विद्द्वितीयवान् भवति राजन् केन च बुद्धिमान् ॥४५

यक्ष ने कहा—हे राजन् ! किस बात से मनुष्य श्रोत्रिय (वेद का ज्ञाता) बनता है और किस तरह मनुष्य, महत् फल (मोक्ष) को पाता है। किससे मनुष्य, द्वितीयवान् (सहायता वाला) होता हैं और किससे बुद्धिमान् बनता है ॥४५॥

युधिष्ठिर उवाच—

श्रुतेन श्रोत्रियो भवति तपसा विन्दते महत्।
धृत्या द्वितीयवान् भवति बुद्धिमान् वृद्धसेवया ॥४६॥

युधिष्ठिर बोले—श्रुत (शास्त्र और सदाचार) से मनुष्य सच्चा श्रोत्रिय बनता है और तप से महत् (ब्रह्म या मोक्ष) की प्राप्ति होती है। धैर्य से मनुष्य द्वितीय साथी से युक्त है और वृद्धों की सेवा और सहवास से मनुष्य, बुद्धिमान बनता है ? ॥४६॥

यक्ष उवाच-किं ब्राह्मणानां देवत्वं कश्च धर्मः सतामिव।
कश्चैषां मानुषो भावः किमेषामसतामिव ॥४७॥

यक्ष ने कहा—हे धर्मराज ! ब्राह्मणों का देवतापन क्या है ? इनका सज्जनों का सा धर्म क्या है ? मनुष्यपन क्या है और असज्जनों का सा आचार क्या है ॥४७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर उवाच—

स्वाध्याय एषां देवत्वं तप एषां सतामिव।
मरणं मानुषो भावः परीवादोऽसतामिव ॥४८॥

युधिष्ठिर उत्तर देने लगे—ब्राह्मणों का स्वाध्याय करना ही देवतापन है, इनका तप स नों का सा धर्म है। मरण इनका मनुष्य धर्म है और किसी की निन्दा करना इनका असज्जनों का सा आचार है ॥४८॥

यक्ष उवाच-किं क्षत्रियाणां देवत्वं कश्च धर्मः सतामिव।
कश्चैषां मानुषो भावः किमेषामसतामिव ॥४९॥

यक्ष ने फिर पूछा—हे राजन् ! क्षत्रियों का देवत्व क्या है ? इनका सज्जनों का सा व्यवहार क्या है ? इनका मनुष्यों के समान आचार और असज्जनों का सा व्यवहार क्या है ॥४९॥

युधिष्ठिर उवाच—

इष्वस्त्रमेषां देवत्वं यज्ञ एषां सतामिव।
भयं वै मानुषो भावः परित्यागोऽसतामिव ॥५०॥

युधिष्ठिर कहने लगे—हे यक्ष ! बाण अस्त्र आदि का प्रयोग करना ही इनका देवपन है। यज्ञ करना इनका साधुओं का सा उत्तम आचार है। इनका भयभीत हो जाना मानुषीपन और दान का वर्जन कर देना, इनका असज्जनों का सा व्यवहार है ॥५०॥

यक्ष उवाच-किमेकं यज्ञियं साम किमेकं यज्ञियं यजुः।
का चैका वृणुते यज्ञं कां यज्ञो नातिवर्त्तते ॥५१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष बोला—हे राजन ! यज्ञोपयोगी साम क्या है और यज्ञिय यजुः क्या है ? क्या एक यज्ञों को स्वीकार करती है और यज्ञ, किसका अतिक्रमण नहीं करता है ॥५१॥

युधिष्ठिर उवाच—

प्राणो वै यज्ञियं साम मनो वैयं यज्ञियं यजुः ।
ऋगेका वृणते यज्ञं तां यज्ञो नातिवर्त्तते ॥५२॥

युधिष्ठिर ने कहा—यज्ञिय (ज्ञान-यज्ञ में) साम, प्राण माना गया है और मन यजुः है। वेद की ऋचाएं यज्ञ को स्वीकार करती है और यज्ञ भी इन ऋचाओं का अतिक्रमण नहीं करता है

यक्ष उवाच-किं स्विदापततां श्रेष्ठं किं स्विन्निवपतां वरम् ।
किं स्वित् प्रतिष्ठमानानां किं स्वित् प्रसवतां वरम् ५३

यक्ष ने कहा—आय वस्तुओं में क्या श्रेष्ठ है और बोने की वस्तुओं में क्या उत्तम है ? घर में रखने की वस्तुओं में क्या श्रेष्ठ माना गया है ? और उत्पन्न होने वाली चीज़ों में क्या उत्तम है ? ॥५३॥

युधिष्ठिर उवाच—

वर्षमापततां श्रेष्ठं बीजन्निवपतां वरम् ।
गावः प्रतिष्ठमानानां पुत्रः प्रसवतां वरम् ॥५४॥

युधिष्ठिर कहने लगे—आय की वस्तुओं में वर्ष का आना अर्थात् आयु की प्राप्ति श्रेष्ठ है। बोने के पदार्थों में पुण्य का बीज बोना ही श्रेष्ठ है। घरके रखने की चीज़ों में गाय उत्तम है और उत्पन्न होने वालों में पुत्र उत्तम माना है ॥५४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष उवाच-इन्द्रियार्थाननुभवन् बुद्धिमान् लोकपूजितः ।
सम्मतः सर्व भूतानामुच्छ्वसन् को न जीवति ॥५५॥

यक्ष ने फिर पूछा—कोई मनुष्य, इन्द्रियों के भोगों को भोगता है, तथा बुद्धिमान्, लोक में प्रशंसित और सब प्राणियों का मान्य भी है, परन्तु वह भी जीता हुआ मरा ही है—ऐसा कौन माना गया है ॥५५॥

युधिष्ठिर उवाच—

देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः ।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥५६॥

युधिष्ठिर ने कहा—देवता, अतिथि, सेवक, पितर और आत्मा इन पाँच के निमित्त अर्पण किए विना ही जो इन्द्रियों के सुखोंमें निमग्न है, वह जीता हुआ ही मरा माना गया है॥५६

यक्ष उवाच-किं स्विद् गुरुतरं भूमेः किं स्विदुच्चतरञ्च खात्
किं स्विच्छीघ्रतरं वायोः किं स्विद् बहुतरं तृणात् ५७

यक्ष ने फिर पूछा—हे महीपते ! पृथिवी से अधिक भारी क्या है और आकाश से ऊंचा क्या है। वायु से शीघ्रगामी क्या है, और तृण से अधिक आग फैलाने वाली क्या वस्तु है?

युधिष्ठिर उवाच—

माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा ।
मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरा तृणात् ॥५८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर उत्तर देने लगा—भूमि से भारी (पूज्य) माता और आकाश से भी उच्च पिता है। वायु से शीघ्रगामी मन है और शुष्क तृण से भी अधिक शरीर में आग चलाने वाली चिन्ता है ॥५८॥

यक्ष उवाच—

किं स्वित् सुप्तं न निमिषति किं स्विज्जातं न चोपति।
कस्य स्विद्धृदयं नास्ति किं स्विद्वेगेन वर्द्धते ॥५९॥

यक्ष ने कहा—कौन है, जो सोने पर भी आंख नहीं मींचता है ? कौन उत्पन्न होने पर भी चेष्टा नहीं करता। किसके हृदय नहीं और वेग के साथ कौन बढ़ता है ? ॥५९॥

युधिष्ठिर उवाच—

मत्स्यः सुप्तो न निमिषत्यण्डं जातं न चोपति।
अश्मनो हृदयं नास्ति नदी वेगेन वर्द्धते ॥६०॥

युधिष्ठिर बोले—मत्स्य सोने पर भी आंख नहीं मींचता है। अण्डा उत्पन्न होकर भी चेष्टा नहीं करता। पत्थर (अज्ञानी) के हृदय नहीं होता और नदी एक ही झपेटे में बढ़ आती है। यही कामना रूपी नदियों की दशा है ॥६०॥

यक्ष उवाच-किं स्वित् प्रवसतो मित्रं किं स्विन्मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य च किं मित्रं किं स्विन्मित्रं मरिष्यतः ६१

यक्ष ने पूछा—विदेश में क्या मित्र हैं और घर में क्या मित्र हैं ? रोगी को क्या मित्र हैं और मरने वाले का कौन मित्र माना गया है ? ॥६१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर उवाच—

सार्थः प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य भिषङ्मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः॥६२॥

युधिष्ठिर ने कहा—विदेश में तो साथ यात्रा करने वाला ही मित्र है और घर में रहने वाले की भार्या मित्र है। रोगी का मित्र वैद्य और मरने वाले का मित्र दान है॥६२॥

यक्ष उवाच--कोऽतिथिः सर्वभूतानां किं स्विद्धर्म सनातनः।
अमृतं किं स्विद्राजेन्द्र किं स्वित् सर्वमिदं जगत्॥६३

यक्ष ने कहा—सारे प्राणियों का अतिथि कौन है और सनातन धर्म क्या है? हे राजेन्द्र! अमृत क्या है और यह सारा जगत क्या है?॥६३॥

युधिष्ठिर उवाच—

अतिथिः सर्वभूतानामग्निः सोमो गवामृतम्।
सनातनोऽमृतो धर्मो वायुः सर्वमिदं जगत्॥६४॥

युधिष्ठिर ने कहा—सब मनुष्यों का अतिथि अग्नि है और यज्ञ में सोमपान एवं गो क्षीर अमृत है। अविनाशी ब्रह्म की उपासना ही सनातन धर्म है-यह सारा जगत, वायु में ओत-प्रोत है॥६४॥

यक्ष उवाच। किं स्विदेको विचरते जातः को जायते पुनः
किंस्विद्धिमस्य भैषज्यं किं स्विदावपनं महत्॥६५॥

यक्ष ने कहा—हे राजन्! कौन स्वतन्त्रता से अकेला प्रकाश देता है और कौन उत्पन्न होकर बार २ उत्पन्न होता है! हिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की क्या औषधि है और सब से बड़ा बीज बोने का स्थान क्या है ? ॥६५॥

युधिष्ठिर उवाच--

सूर्य्य एको विचरते चन्द्रमा जायते पुनः।
अग्निर्हिमस्य भैषज्यं भूमिरावपनं महत् ॥६६

युधिष्ठिर ने कहा—सूर्य, अकेला स्वतन्त्रता से प्रकाश करता है और चन्द्रमा उत्पन्न होकर भी सूर्य से प्रकाश ले कर भी बार २ फिर उत्पन्न होता रहता है। अग्नि, हिम की भेषज है और यह कर्म-भूमि ही बीज बोने का सबसे बड़ा उत्तम स्थान है ॥६६॥

यक्ष उवाच-किं स्विदेकपदं धर्म्यं किं स्विदेकपदं यशः।
किं स्विदेकपदं स्वर्ग्यं किं स्विदेकपदं सुखम् ॥६७॥

यक्ष ने कहा—क्या वस्तु एक दम धर्मानुसार है और क्या एक दम यश करने वाली है ? स्वर्ग देने वाली एक मात्र क्या वस्तु है और एक मात्र सुख क्या है ? ॥६७॥

युधिष्ठिर उवाच—

दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं दानमेकपदं यशः।
सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं शीलमेकपदं सुखम् ॥६८॥

युधिष्ठिर बोले—विचार कर कुशलता से काम करना ही धर्मानुसार है। दान ही एक दम यश को कर देता है। सत्य स्वर्ग देने वाला और एक मात्र शील ही सुख है ॥६८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष उवाच-किं स्विदात्मा मनुष्यस्य किं स्विद्दैवकृतः सखा
उपजीवनं किं स्विदस्य किंस्विदस्य परायणम् ॥६९॥

यक्ष फिर पूछने लगा—मनुष्य की आत्मा क्या है और दैव द्वारा मनुष्य का सखा कौन है ? मनुष्य का जीवन करने वाला तथा इसका रक्षक कौन है? ॥६९॥

युधिष्ठिर उवाच—

पुत्र आत्मा मनुष्यस्य भार्या दैवकृतः सखा ।
उपजीवनश्च पर्जन्यो दानमस्य परायणम् ॥७०॥

मनुष्य का आत्मा ही पुत्र है। भार्या दैव द्वारा बनाया हुआ मित्र है। मेघ सबका जीवन करने वाला और मनुष्य का रक्षक है ॥७०॥

धान्यानामुत्तमं किं स्विद्धनानां स्यात् किमुत्तमम् ।
लाभानामुत्तमं किं स्यात् सुखानां स्यात् किमुत्तमम् ॥

यक्ष बोला—हे राजन ! धान्यों में (भर कर रखने वाली वस्तुओं) क्या उत्तम है ? धनों में क्या श्रेष्ठ है ? लाभों में उत्तम लाभ क्या है और सुखों में क्या सुख है ? ॥७१॥

युधिष्ठिर उवाच—

धान्यानामुत्तमं दाक्ष्यं धनानामुत्तमं श्रुतम् ।
लाभानां श्रेष्ठमारोग्यं सुखानां तुष्टिरुत्तमा ॥७२॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—धान्यों (ग्रहण करने योग्य) में कुशलता या बुद्धि का संग्रह करना अच्छा है। धनों में उत्तम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन विद्या है। लाभों में श्रेष्ठ लाभ आरोग्य और सुखों में उत्तम सुख सन्तोष है ॥७२॥

यक्ष उवाच--कश्च धर्मः परो लोके कश्च धर्मः सदाफलः
किं नियम्य न शोचन्ति कैश्च सन्धिर्न जीर्य्यते ॥७३॥

यक्ष ने पूछा—इस लोक में परम धर्म क्या है ? सदा फल देने वाला कौन धर्म है। किसके रोकने से सोच नहीं करना पड़ता और किसके स . हुआ मेल नष्ट नहीं होता है ? ॥७३॥

युधिष्ठिर उवाच—

आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रयीधर्मः सदाफलः ।
मनो यम्य न शोचन्ति सन्धिः सद्भिर्न जीर्य्यते ॥७४॥

युधिष्ठिर ने कहा—दयालुता ही परम धर्म है। वेद का धर्म सदा फल देने वाला है। मन को रोकने पर फिर सोच नहीं करना पड़ता और सज्जनों के साथ हुआ मेल कभी नष्ट नहीं होता है ॥७ ॥

यक्ष उवाच—

किन्नु हित्वा प्रियो भवति किन्नु हित्वा न शोचति ।
किन्नु हित्वार्थवान् भवति किन्नु हित्वा सुखी भवेत्७५

यक्ष ने कहा—हे राजन् ! मनुष्य किस बात को छोड़कर सबका प्रिय बनता है और क्या छोड़कर इसको सोच नहीं करना पड़ता ? किस बात के छोड़ने से इसका प्रयोजन सिद्ध होगा और किस बात के छोड़ने से यह सुखी होगा ॥७५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर उवाच—

मानं हित्वा प्रियो भवति क्रोधं हित्वा न शोचति ।
कामं हित्वार्थवान् भवति लोभं हित्वा सुखी भवेत् ७६

धर्मराज ने कहा—हे यक्षराज ! मनुष्य अभिमान के छोड़ने से सबका प्रिय हो जाता है और क्रोध के छोड़ने से इसको पछताना नहीं पड़ता। सारी कामनाओं के त्याग से ही इसका प्रयोजन बनता है और यह लोभ के छोड़ने से ही सुखी होता है॥

यक्ष उवाच-किमर्थं ब्राह्मणे दानं किमर्थं नटनर्त्तके ।
किमर्थं चैव भृत्येषु किमर्थं चैव राजसु ॥७७॥

यक्ष ने पूछा—हे राजन ब्राह्मण को दान क्यों दिया जाता है और नट तथा नर्तक के दान देने से क्या लाभ है ? भृत्यों को दान और राजा को कर क्यों दिया जाता है ॥७७॥

युधिष्ठिर उवाच—

धर्मार्थं ब्राह्मणे दानं यशोऽर्थं नटनर्त्तके ।
भृत्येषु भरणार्थं वै भयार्थश्चैव राजसु ॥७८॥

धर्मराज ने उत्तर दिया—धर्म की वृद्धि के लिए ब्राह्मण को दान दिया जाता है और लोक में बड़ाई होने को लोग नट नर्तकों को दान देते हैं। सेवकों को भरण पोषण के लिए देना अपना कर्तव्य है और चोर आदि के भय की निवृत्ति के लिए राजा को कर दिया जाता है ॥७८॥

यक्ष उवाच-केन स्विदावृतो लोकः केन स्विन्न प्रकाशते ।
केन त्यजति मित्राणि केन स्वर्गं न गच्छ त ॥७९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष कहने लगा--यह जगत् किस वस्तु से ढका हुआ है और मनुष्य के हृदय में प्रकाश क्यों नहीं होता है ? मित्र क्यों छोड़ देते हैं और स्वर्ग किस कार्य से प्राप्त नहीं होता है ॥७९॥

युधिष्ठिर उवाच—

अज्ञानेनावृतो लोकस्तमसा न प्रकाशते ।
लोभात्त्यजन्ति मित्राणि सङ्गात् स्वर्गं न गच्छति ।८०

राजा युधिष्ठिर बोले—यह सारा संसार, अज्ञान से ढ़का पड़ा है और इसी अज्ञानान्धकार से मनुष्य के हृदय में प्रकाश नहीं होता है। मित्र, लोभ करने के कारण छोड़ जाते हैं और पर-स्त्री आदि के सङ्ग से स्वर्ग नष्ट हो जाता है ॥८०॥

यक्ष उवाच—

मृतः कथं स्यात् पुरुषः कथं राष्ट्रं मृतं भवेत् ।
श्राद्धं मृतं कथं वा स्यात् कथं यज्ञो मृतो भवेत् ॥८१

यक्ष ने कहा—हे धर्मराज ! पुरुष, कब जीवित ही मरा समझना चाहिए और राष्ट्र कब मृतक माना गया है। श्राद्ध कब मृत मानना चाहिए और यज्ञ कब मृतक हो जाता? ॥८१॥

युधिष्ठिर उवाच—

मृतो दरिद्रः पुरुषो मृतं राष्ट्रमराजकम् ।
मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ॥८२॥

युधिष्ठिर कहने लगे—दरिद्री पुरुष मृतक ही है। राष्ट्र में अराजकता (चोरादिभय) हो, तो वह मृतक है। बिना वेदज्ञ के श्राद्ध करना मृतक है और विना दक्षिणा का यज्ञ मृत है ॥८२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष उवाच-का दिक् किमुदकं प्रोक्तं किमन्नं किञ्च वै विषम्।
श्राद्धस्य कालमाख्याहि ततः पिब हरस्व च ॥८३॥

यक्ष बोला—हे राजन्! दिशा अर्थात् मार्ग क्या है? जल क्या कहा जाता है? अन्न क्या माना गया है? विष क्या है? श्राद्ध का कौन काल है? इतना बता कर तुम जल पीलो और इच्छानुसार ले जाओ ॥८३॥

युधिष्ठिर उवाच—

सन्तो दिग्जलमाकाशं गौरन्नं प्रार्थना विषम्।
श्राद्धस्य ब्राह्मणः कालः कथं वा यक्ष मन्यसे ॥८४॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—विद्वान ही दिशा अर्थात् मार्ग बताने वाले हैं। आकाश ही जल बरसाने का कारण है। पृथिवी गो दुग्ध आदि ही अन्न हैं। याचना करना ही विष है और जब उत्तम ब्राह्मण प्राप्त हो जावे, तभी श्राद्ध का काल माना गया है। कहिए-यक्षराज! आप कैसे मानते हो ॥८४॥

यक्ष उवाच-तपः किं लक्षणं प्रोक्तं को दमश्च प्रकीर्त्तितः।
क्षमा च का परा प्रोक्ता का चह्रीः परिकीर्त्तिता ॥८५॥

यक्ष ने फिर पूछा—हे राजन्! तप के क्या लक्षण हैं और दम क्या हैं? क्षमा कौन सी श्रेष्ठ मानी गई है और लज्जा कौन सी उत्तम है? ॥८५॥

युधिष्ठिर उवाच—

तपः स्वधर्मवर्त्तित्वं मनसो दमनं दमः।
क्षमा द्वन्द्वसहिष्णुत्वं ह्रीरकार्य्यनिवर्त्तनम् ॥८६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर उत्तर देने लगे—अपने कर्तव्य कर्म को करते रहना ही तप है और मन का दमन करना ही सच्चा दमन है। शीत आतप आदि का सहन करना ही क्षमा और अकार्य से निवृत्त रहना ही उत्तम लज्जा है ॥८६॥

यक्ष उवाच-किं ज्ञानं प्रोच्यते राजन् कः शमश्च प्रकीर्त्तितः
दया च का परा प्रोक्ता किञ्चार्जवमुदाहृतम् ॥८७॥

यक्ष ने कहा—हे राजन्! ज्ञान क्या है और शम क्या है? सर्व श्रेष्ठ दया क्या है और सरलता क्या मानी गई है? ॥८७॥

युधिष्ठिर उवाच—

ज्ञानं तत्त्वार्थसम्बोधः शमश्चित्तप्रशान्तता।
दया सर्वसुखैषित्वमार्ज्जवं समचित्तता ॥८८॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे यक्ष! तत्वार्थ (ब्रह्म) का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। चित्त का शान्त करना ही शम है। सब प्राणियों के सुख की चाह ही दया है और सबको समान समझना ही सरलता है? ॥८८॥

यक्ष उवाच-कः शत्रुर्दुर्जयः पुंसां कश्च व्याधिरनन्तकः।
कीदृशश्च स्मृतः साधुरसाधुः कीदृशः स्मृतः ॥८९॥

यक्ष बोले—हे धर्मराज! पुरुषों का दुर्जय शत्रु क्या है और अन्त नहीं होने वाली व्याधि क्या है। साधु कौन है और असाधु कौन माना गया है? ॥८९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर उवाच—

क्रोधः सुदुर्जयः शत्रुर्लोभो व्याधिरनन्तकः ।
सर्वभूतहितः साधुरसाधुर्निर्दयः स्मृतः ॥९०॥

युधिष्ठिर बोले—क्रोध ही दुर्जय शत्रु है और लोभ ही अन्त नहीं होने वाली व्याधि है। सब प्राणियों का हित करने वाला साधु और निर्दयी असाधु है ॥९०॥

यक्ष उवाच-को मोहः प्रोच्यते राजन् कश्च मानः प्रकीर्त्तितः
किमालस्यञ्च विज्ञेयं कश्च शोकः प्रकीर्त्तितः ॥९१॥

यक्ष ने कहा—हे राजन्! मोह क्या है और मान क्या माना गया है? आलस्य क्या है और शोकका क्या कारण है? ॥९१॥

युधिष्ठिर उवाच—

मोहो हि धर्ममूढ़त्वं मानस्त्वात्माभिमानिता ।
धर्मनिष्क्रियतालस्यं शोकस्त्वज्ञानमुच्यते ॥९२॥

युधिष्ठिर ने कहा—यक्षराज धर्म में प्रमाद करना ही मोह है। अपने आपको सब से बड़ा समझना मान है। धर्म के कार्यों में चुपचाप बैठे रहना आलस्य और अज्ञान ही शोक का कारण है ॥९२॥

यक्ष उवाच-किं स्थैर्य्यं मृषिभिः प्रोक्तं किं च धैर्य्यमुदाहृतम्
स्नानञ्च किं परं प्रोक्तं दानञ्च किमिहोच्यते ॥९३॥

यक्ष ने पूछा—महर्षियों ने स्थिरता क्या मानी है और धैर्य किसको कहा है? स्नान कौन सा श्रेष्ठ है और कौन सा दान उत्तम कहाता है ॥९३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर उवाच—

स्वधर्मे स्थिरता स्थैर्य्यं धैर्य्यमिन्द्रियनिग्रहः ।
स्नानं मनोमलत्यागो दानं वै भूतरक्षणम् ॥९४॥

धर्मराज ने कहा—अपने धर्म दृढ़ रहना ही स्थिरता है और इन्द्रियों का निग्रह करना ही धैर्य है। मन के मल का त्याग सच्चा स्नान है। और प्राणियों को अभय दान देना ही सच्चा दान है ॥९४॥

यक्ष उवाच- कः पण्डितः पुमान् ज्ञेयो नास्तिकः कश्च उच्यते
को मूर्खः कश्च कामः स्यात् को मत्सर इति स्मृतः ॥९५॥

यक्ष ने कहा—हे धर्मराज ! पण्डित मनुष्य किसे समझना चाहिए और नास्तिक कौन कहलाता है ? मूर्ख कौन है ? काम क्या है और मत्सर किसे कहते हैं ॥९५॥

युधिष्ठिर उवाच—

धर्मज्ञः पण्डितो ज्ञेयो नास्तिको मूर्ख उच्यते ।
कामः संसारहेतुश्च हृत्तापो मत्सरः स्मृतः ॥९६॥

युधिष्ठिर ने कहा—धर्म का जानने वाला ही पण्डित है। पुनर्जन्म नहीं मानने वाला नास्तिक है। नास्तिक ही मूर्ख माना गया है। काम ही संसार (जन्म मरण) का हेतु है और दूसरे के वैभव से होने वाले हृदय के सन्ताप को मत्सर कहते हैं ९६

यक्ष उवाच-कोऽहङ्कार इति प्रोक्तः कश्च दम्भः प्रकीर्त्तितः
किन्तद्दैवं परं प्रोक्तं किन्तत् पैशुन्यमुच्यते ॥९७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष बोला—अहंकार क्या है और दम्भ क्या है। उत्कृष्ट दैव क्या है, और पैशुन्य (चुगली) किसे कहते हैं ॥९७॥

युधिष्ठिर उवाच--

महाज्ञानमहङ्कारो दम्भो धर्मध्वजोच्छ्रयः ।
दैवं दानफलं प्रोक्तं पैशुन्य परदूषणम् ॥९८॥

धर्मराज ने कहा—महा अज्ञान का नाम अहङ्कार है। धर्म का आडम्बर दम्भ कहाता है। दान का फल ही उत्कृष्ट दैव है और दूसरे को दूषित करना पैशुन्य (चुगली) है ॥९८॥

यक्ष उवाच-धर्मश्चार्थश्च कामश्च परस्परविरोधिनः ।
एषां नित्यविरुद्धानां कथमेकत्र सङ्गमः ॥९९॥

यक्ष ने कहा—धर्म, अर्थ और काम ये परस्पर विरोधी हैं। इन नित्य विरुद्ध रहने वाले तीनों का कभी एक स्थान पर इकट्ठे होना सम्भव है या नहीं ? ॥९९॥

युधिष्ठिर उवाच—

यदा धर्मश्च भार्य्या च परस्परवशानुगौ ।
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि सङ्गमः ॥१००॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—हे यक्ष-राज ! जब भार्या और धर्म परस्पर वश में होते हैं अर्थात् साध्वी भार्या जब धर्म कार्यों का विरोध नहीं करती है, तो धर्म से अर्थ की प्राप्ति होने लगती है और साध्वी भार्या से काम की प्राप्ति स्वयम् सिद्ध ही है। इस प्रकार धर्म, अर्थ और काम का एक स्थान में मेल होजाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष उवाच-अक्षय्यो नरकः केन प्राप्यते भरतर्षभ ।
एतन्मे पृच्छतः प्रश्नं शीघ्रं वक्तुमिहार्हसि ॥१०१॥

यक्ष ने कहा—हे भरतर्षभ ! ऐसा कौन सा कर्म है, जिससे मनुष्य बहुत काल तक क्षीण नहीं होने वाले नरक के वास को प्राप्त होता है। तुम मेरे इस प्रश्न का भी झटपट उत्तर दे दो ॥१०१॥

युधिष्ठिर उवाच—

ब्राह्मणं स्वयमाहूय याचमानमकिञ्चनम् ।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात् सोऽक्षयनरकं व्रजेत्॥१०२॥

युधिष्ठिर बोले-जो दरिद्री याचक ब्राह्मण को स्वयं बुला कर पीछे कह देता है, कि मैं कुछ नहीं देता—वह अक्षय नरक को जाता है ॥१०२॥

वेदेषु धर्मशास्त्रेषु मिथ्या यो वै द्विजातिषु ।
देवेषु पितृधर्मेषु सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥१०३॥

जो वेद, धर्म-शास्त्र, विद्वान् ब्राह्मण, देव और पितरों के साथ मिथ्या व्यवहार करता है, उसको अक्षय नरक वास अर्थात् बार २ जन्म मरण के चक्र में फंसना पड़ता है ॥१०३॥

विद्यमाने धने लोभाद्दानभोगविवर्जितः ।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात् सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् १०४

जिनके पास धन विद्यमान है और वह यदि उसका उपभोग नहीं कर सकता है तथा धन व्यय के उपयोगी समय के बीतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर झूंठ मूठ कह देता है, कि मेरे पास धन नहीं है, वह भी अक्षय नरक में निवास करता है ॥१०४॥

यक्ष उवाच-राजन् कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा ।
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्येतत् सुनिश्चितम् ॥१०५॥

यक्ष बोला—हे राजन् ! कुल (जन्म) आचार, स्वाध्याय और ज्ञान-इनमें कौन सा ऐसा है, जिससे मनुष्य ब्राह्मण होता है—मुझे इसका उत्तर निश्चय करके बताओ ॥१०५॥

युधिष्ठिर उवाच—

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्याये न च श्रुतम् ।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥१०६॥

धर्मराज ने कहा—हे तात ! यक्ष ! तुम सुनो-ब्राह्मण होने का कारण न तो कुल है और न स्वाध्याय या श्रुत (शास्त्र-ज्ञान) ही है। सच्चा ब्राह्मण बनने के लिए तो सदाचार ही माना गया है—यह निश्चय समझो ॥१०६॥

वृत्तं यत्नेन संरक्ष्य ब्राह्मणेन विशेषतः ।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥१०७॥

ब्राह्मण को विशेष कर अपने आचार की रक्षा करनी चाहिए। जिसका सदाचार बना है, वह क्षीण (दरिद्री) होकर भी अक्षीण (ऐश्वर्य-शाली) ही है। जिसका सदाचार नष्ट हो गया—वह ब्राह्मण तो नष्ट ही समझना चाहिए ॥१०७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः१०८

पढ़ने पढ़ाने वाले तथा अन्य शास्त्रों के चिन्तक कोरे व्यसनी (रट्टू तोते) और मूर्ख हैं, जो क्रियावान् होता है, वही पण्डित या ब्राह्मण है ॥१०८॥

चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः न शूद्रादतिरिच्यते।
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः॥१०९॥

जो चारों वेदों का पढ़ने वाला है, परन्तु दुराचारी है, वह शूद्र से कम नहीं है। जो अग्निहोत्र आदि धार्मिक क्रिया करता है और उदार है, वही ब्राह्मण कहा जाता है ॥१०९॥

यक्ष उवाच—

प्रियवचनवादी किं लभते विमृशितकार्य्यकरः किं लभते।
बहुमित्रकरः किं लभते धर्मे रतः किं लभते कथय।११०॥

यक्ष ने पूछा—मधुर वचन बोलने वाला क्या पाता है? विचार कर कार्य करने वाले को क्या मिल जाता है? बहुत मित्र बनाने वाला क्या पा लेता है और धर्म में संलग्न मनुष्य, क्या पाता है?—तुम यह बताओ ॥११०॥

युधिष्ठिर उवाच—

प्रियवचनवादी प्रियो भवति विमृशितकार्य्यकरोऽधिकं जयति।
बहुमित्रकरः सुखं वसते यश्च धर्मरतः स गतिं लभते ॥१११॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—मधुर वचन बोलने वाला सब का प्रिय हो जाता है। विचार कर काम करने वाला सबसे अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति कर लेता है। बहुत से मित्र रखने वाला सुख से संसार यात्रा चलाता है और धर्मशील परलोक में सद्गति पाता है ॥१११॥

यक्ष उवाच—

को मोदते किमाश्चर्य्य कः पन्थाः का च वार्त्तिका।
वद मे चतुरः प्रश्नान् मृता जीवन्तु बान्धवाः ॥११२॥

यक्ष कहने लगा—कौन मनुष्य आनन्द से युक्त है ? आश्चर्य कारी क्या वस्तु है ? मार्ग क्या है और वार्ता (कहावत) क्या है ? तुम मेरे इन चारों प्रश्नों के उत्तर दो—इसके बाद तुम्हारे भाई जीवित हो जावेंगे ॥११२॥

युधिष्ठिर उवाच—

पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वे गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ॥११३॥

युधिष्ठिर कहने लगा—हे यक्ष ! पांचवें या छठे दिन में भी जिस के घर में शाक बनता है। परन्तु यदि वह गृहस्थी ऋण से युक्त और परदेश में नहीं रहता है, वही आनन्द से युक्त है ॥११३॥

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालये।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्य्यमतः परम् ॥११४॥

दिन प्रति दिन प्राणी, यमलोक को जाते हैं, परन्तु जीवित प्राणी यही समझ रहे हैं, कि हम यहां सदा रहेंगे—इससे अधिक आश्चर्य क्या होगा ॥११४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

युक्तिवाद की धार्मिक सम्प्रदाय में कोई प्रतिष्ठा नहीं है। वेद भी भिन्न २ कर्म काण्ड का उपदेश करते हैं। कोई एक ऋषि नहीं है, जिसका मत प्रामाणिक मान लिया जावे। धर्म का तत्त्व बड़ा सूक्ष्म है। जिस मार्ग से सदाचारी पुरुष चले, बस ? उस को ही मार्ग समझना चाहिए ॥११५॥

अस्मिन्महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिनेन्धनेन।
मासर्त्तुदर्वीपरिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्त्ता॥११६॥

इस महा-मोह-रूपी कड़ाहे में सूर्य-रूपी अग्नि और रात दिन रूपी इन्धन से मास और ऋतु की कलछी चलाकर काल सब को पका रहा है-यह वार्ता है-जिसको सब कहते हैं, तुमको भी इसे समझ लेना चाहिए ॥११६॥

यक्ष उवाच—

व्याख्यातामे त्वया प्रश्ना याथातथ्यं परन्तप।
पुरुषन्त्विदानीं व्याख्याहि यश्च सर्वधनी नरः॥११७

यक्ष ने कहा—हे परन्तप ! तुमने मेरे प्रश्नों का उत्तर तो ठीक दे दिया-अब केवल यह बात और बताओ, कि पुरुष कौन है और सब धन से युक्त कौन होता है ? ॥११७॥

युधिष्ठिर उवाच—

दिवं स्पृशति भूमिञ्च शब्दः पुण्येन कर्मणा।
यावत् स शब्दो भवति तावत् पुरुष उच्यते॥११८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर ने कहा—जिस मनुष्य के पुण्य कर्म का शब्द, भूमि और आकाश में छा जावे और वह जब तक गूंजता रहे, तभी तक पुरुष का पुरुषपन श्रेष्ठ है अर्थात् तभी वह पुरुष कहाता है ॥११८॥

तुल्ये प्रियाप्रिये यस्य सुखदुःखे यथैव च ।
अतीतानागते चोभे स वै सर्वधनी नरः ॥११९॥

जिसको प्रिय, अप्रिय, सुख, दुःख, भूत, भविष्य, ये दोनों समान हैं, वही सब धन से युक्त पुरुष समझना चाहिए ॥११९॥

यक्ष उवाच—

व्याख्यातः पुरुषो राजन् यश्च सर्वधनी नरः ।
तस्मात्त्वमेकं भ्रातॄणां यमिच्छसि स जीवतु ॥१२०॥

यक्ष बोला—हे राजन् ! आपने अब सब प्रकार के धन से युक्त पुरुष के भी लक्षण कह दिए। अब तुम इन भाइयों में से जिसको चाहो-एक को जीवित करा सकते हो ॥१२०॥

युधिष्ठिरउवाच—

श्यामो व एष रक्ताक्षो बृहच्छाल इवोत्थितः ।
व्यूढोरस्को महाबाहुर्नकुलो यक्ष जीवतु ॥१२१॥

युधिष्ठिर कहने लगे—हे यक्ष ! यह श्यामवर्ण, लाल आंख वाला, शाल के समान विशाल, दृढ़ वक्ष-स्थल (छाती) धारी, महाबाहु नकुल जीवित हो जावे ॥१२१॥

यक्ष उवाच—

प्रियस्ते भीमसेनोऽयमर्जुनो वः परायणम् ।
स कस्मान्नकुलो राजन् सापत्नं जीवमिच्छसि ॥१२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष ने कहा—हे राजन् ! तुमको तो भीमसेन बड़ा प्रिय था और अर्जुन तो तुम्हारे हित में बड़ा ही तत्पर रहता है, तुमने फिर अपनी मौसी के भाई को प्रथम जीवित होने की कैसे इच्छा की है ॥१२२॥

यस्य नागसहस्रेण दशसंख्येन वै बलम् ।
तुल्यं तं भीममुत्सृज्य नकुलं जीवमिच्छसि ॥१२३॥

जिसमें दस हजार हाथियों के बराबर बल है, उस भीम को छोड़कर तुम, नकुल को कैसे जीवित करना चाहते हो ॥१२३॥

अथैनं मनुजाः प्राहुर्भीमसेनं प्रियं तव ।
अथ केनानुभावेन सापत्नं जीवमिच्छसि ॥१२४॥

लोग तो कहते हैं, कि तुमको भीम बड़े प्रिय हैं, अब तुम किस अभिप्राय से अपनी मौसी के पुत्र को जीवित करना चाहते हो ॥१२४॥

यस्य बाहुबलं सर्वे पाण्डवाः समुपासते ।
अर्जुनं तमपाहाय नकुलं जीवमिच्छसि ॥१२५॥

जिसके बाहुबल का आश्रय सारे पाण्डव चाह रहे हैं, तुम उस अर्जुन को भी छोड़ कर कैसे इस नकुल को जीवित करना चाहते हो ।

युधिष्ठिर उवाच—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मं न त्यक्ष्यामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥१२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर ने कहा—हे यक्ष ! धर्म का नाश करने पर धर्म ही मनुष्य का नाश कर देता है और धर्म के सुरक्षित रहने पर धर्म, मनुष्य की रक्षा करता है, इसी से मैं धर्म को नहीं छोड़ता हूं, कि छोड़ा हुआ धर्म. कहीं हमें मार न डाले ॥१२६॥

आनृशंस्यं परो धर्मः परमार्थाच्च मे मतम् ।
आनृशंस्यं चिकीर्षामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥१२७॥

उदारता या दयालुता से युक्त धर्म ही मुझे परमार्थ (मोक्ष) से युक्त दिखाई देता है । इसी से मैं क्षुद्रता के त्याग की इच्छा करता हूं । हे यक्ष ! अब नकुल जीवित हो जाना चाहिए ।१२७।

धर्मशीलः सदा राजा इति मां मानवा विदुः ।
स्वधर्मान्न चलिष्यामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥१२८॥

मनुष्य यह जानते हैं, कि राजा युधिष्ठिर धर्म-शील हैं । मैं इस अपनी कीर्ति की रक्षा के लिए ही धर्म का त्याग नहीं करता हूं । हे यक्ष ! अब नकुल जीवित हो जाना चाहिए ॥१२८॥

कुन्ती चैव तु माद्री च द्वे भार्य्ये तु पितुर्मम ।
उभे सपुत्रे स्यातां वै इति मे धीयते मतिः ॥१२९॥

मेरे पिता के कुन्ती और माद्री दो भार्याएँ थी । वे दोनों ही सपुत्र रहें. मेरी यही इच्छा है ॥१२९॥

यथा कुन्ती तथा माद्री विशेषो नास्ति मे तयोः ।
मातृभ्यां समामिच्छामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥१३०॥

हे यक्ष ! मुझको जैसे कुन्ती पूज्य है वैसी ही माद्री भी पूज्य है । मैं इसमें कुछ भी भेद नहीं समझता हूं मैं तो दोनों माताओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को समान रखना चाहता हूं, इससे नकुल शीघ्र जीवित हो जाना चाहिए ॥१३०॥

यक्ष उवाच—

यस्य तेऽर्थाच्च कामाच्च आनृशंस्यं परं मतम्।
तस्मात्ते भ्रातरः सर्वे जीवन्तु भरतर्षभ ॥१३१॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि आरणेयपर्वणि यक्षयुधिष्ठिरप्रश्नोत्तरे द्वादशाधिक त्रिशततमोऽध्यायः

यक्ष ने कहा—हे भरतर्षभ ! तुम अपने अर्थ (प्रयोजन) और काम से अधिक उदारता को धर्म मानते हो—इससे तुम्हारे सारे ही भाई जीवित हो जाने चाहिए ॥१३१॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत आरणेयपर्वमें यक्ष युधिष्ठिर प्रश्नोत्तर का तीन सौ बारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

******

तीन सौ तेरहवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततस्ते यक्षवचनादुदतिष्ठन्त पाण्डवाः।
क्षुत्पिपासा च सर्वेषां क्षणेन व्यपगच्छताम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! यक्ष के इतना कहते ही सारे भीम आदि पाण्डव खड़े हो गए। इन सब की भूख प्यास क्षण भर में नष्ट हो गई ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर उवाच—

सरस्येकेन पादेन तिष्ठन्तमपराजितम् ।
पृच्छामि को भवान् देवो न मे यक्षो मतो भवान् ॥२॥

युधिष्ठिर बोले—तुम किसी से पराजित नहीं होने वाले, एक पाद से इस सरोवर में स्थित हो। मुझे तो तुम यक्ष (भूत) प्रतीत नहीं होते हो। मैं आप से पूछता हूं। तनिक यह बता दीजिए, कि आप कौन हैं ? ॥२॥

वसूनां या भवानेको रुद्राणामथ वा भवान् ।
अथ वा मरुतां श्रेष्ठो वज्री वा त्रिदशेश्वरः ॥३॥

आप वसुओं में कोई वसु हैं, या रुद्रों में कोई रुद्र हो तथा मरुत् देवों में कोई देव हो या स्वर्ग के अधीश्वर वज्रधारी इन्द्र हो ॥३॥

मम हि भ्रातर इमे सहस्रशतयोधिनः ।
तं योधं न प्रपश्यामि येन सर्वे निपातिताः ॥४॥

मेरे ये सारे भाई एक लाख योद्धाओं से लड़ सकते हैं। मुझे तो कोई ऐसा योद्धा दिखाई नहीं पड़ता है, जो इन सबको एक बार ही पृथ्वी में गिरा दे ॥४॥

सुखं प्रतिप्रबुद्धानामिन्द्रियाणुपलक्षये ।
स भवान् सुहृदस्माकमथ वा नः पिता भवान् ॥५॥

मैं तो इन सारे भाइयों की ज्ञानेन्द्रियों को प्रफुल्लित देख रहा हूं। तुम तो हमारे कोई सुहृद हो या हमारे पिता के सदृश हितकारी हो ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष उवाच-अहन्ते जनकस्तात धर्मोऽमृदुपराक्रम ।
त्वां दिदृक्षुरनुप्राप्तो विद्धि मां भरतर्षभ ॥६॥

यक्ष ने कहा—हे तात ! महा-पराक्रमी ! मैं तुम्हारा पिता धर्म हूं । हे भरतर्षभ ! मैं तो तुमसे मिलने के लिये यहां आया था ।

यशः सत्यं दमः शौचमार्जवं ह्रीरचापलम् ।
दानं तपो ब्रह्मचर्य्यमित्येतास्तनवो मम ॥७॥

यश, सत्य, मन का विजय, शौच, सरलता, लज्जा, चपलता का अभाव, दान, तप, ब्रह्मचर्य, ये मेरे शरीर हैं ॥७॥

अहिंसा समता शान्तिस्तपः शौचममत्सरः ।
द्वाराण्येतानि मे विद्धि प्रियो ह्यसि सदा मम ॥८॥

अहिंसा, सब को समान समझना, शान्ति, तप, शौच, ईर्ष्या का अभाव, ये सब मेरी प्राप्ति के द्वार हैं । तुम इनको धारण करने वाले होने से सदा मेरे प्रिय हो ॥८॥

दिष्ट्या पञ्चसु रक्तोऽसि दिष्ट्या ते षट्पदी जिता ।
द्वे पूर्वे मध्यमे द्वे च द्वे चान्ते साम्परायिके ॥९॥

हे राजन् ! आप शान्ति, उदारता, वैराग्य, क्षमा और सावधानी इन पांच बातों में बड़े अनुरक्त हो और आपने भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु के भय को जीत लिया है । इनमें से दो (भूख, प्यास) तो पूर्व की आयु (बाल्यावस्था) से ही साथ लग जाते हैं और दो (शोक, मोह) मध्यमा (युवावस्था) में होते हैं तथा अन्त के दो (जरा और मृत्यु) परलोक ले जाने वाली अन्तिम अवस्था (वार्द्धक्य) में प्राप्त होते हैं ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मोऽहमस्मि भद्रन्ते जिज्ञासुस्त्वामिहागतः ।
आनृशंस्येन तुष्टोऽस्मि वरं दास्यामि तेऽनघ॥१०॥

मैं धर्म हूं और तेरी परीक्षा के लिए ही आया था। हे अनघ ! मैं तेरी उदारता से सन्तुष्ट हो गया हूं, अब तुमको वर देता हूं ॥१०॥

वरं वृणीष्व राजेन्द्र दाता ह्यस्मि तवानघ ।
ये हि मे पुरुषा भक्ता न तेषामस्ति दुर्गतिः ॥११॥

हे राजेन्द्र ! तुम वर मांगो—मैं तुमको सब कुछ प्रदान करूंगा। जो पुरुष मेरे भक्त होते हैं। उनकी कभी दुर्गति नहीं हो सकती हैं ॥११॥

युधिष्ठिर उवाच—

अरणीसहितं यस्य मृगो ह्यादाय गच्छति ।
तस्याग्नयो न लुप्येरन् प्रथमस्तु वरो मम ॥१२॥

युधिष्ठिर ने कहा–हे धर्मदेव ! जिस ब्राह्मण ऋषि के अरणी काष्ठ को लेकर मृग भाग गया, उसकी अग्नि-क्रिया (होम) का लोप न हो सके, प्रथम तो मुझे यह वर दीजिए ॥१२॥

यक्ष उवाच-अरणी सहितं यस्य ब्राह्मणस्य हृतं मया ।
मृगवेशेन कौन्तेय जिज्ञासार्थं तव प्रभो ॥१३॥

यक्ष बोला—हे युधिष्ठिर ! जिस ब्राह्मण के अरणी सहित मध्य काष्ठ को मृग ले गया, वह मैं ही मृग वेश में गया था। हे कौन्तेय ! तुम्हारे मिलने की इच्छा से मैंने ही यह सब कुछ किया है ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

ददानीत्येव भगवानुत्तरं प्रत्यपद्यत ।
अन्यं वरय भद्रन्ते वरं त्वममरोपम ॥१४॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! भगवान् धर्म ने युधिष्ठिर को उत्तर दिया, कि यह वर दिया। हे अमरोपम ! अब तुम अन्य वर मांगो- मैं तुमको देता हूं ॥१४॥

युधिष्ठिर उवाच—

वर्षाणि द्वादशारण्ये त्रयोदशमुपस्थितम् ।
तत्र नो नाभिजानीयुर्वसतो मनुजाः क्वचित् ॥१५॥

युधिष्ठिर कहने लगे—हे धर्मदेव ! हमने वन में वास करते हुए, बारह वर्ष व्यतीत कर दिए। अब तेरहवां वर्ष उपस्थित हो गया है। इस वर्ष में छुपकर निवास करते हुए हमको कोई पहचान न सके ॥१५॥

वैशम्पायन उवाच—

ददानीत्येव भगवानुत्तरं प्रत्यपद्यत ।
भूयश्चाश्वासयामास कौन्तेयं सत्यविक्रमम् ॥१६॥

वैशम्पायन बोले--भगवान् अग्निदेव ने उत्तर दिया—अच्छा ? तुमको कोई नहीं पहचान सकेगा—यह वर दे दिया। इसके अनन्तर फिर अग्नि ने सत्य-पराक्रमी राजा युधिष्ठिर को फिर समझाया ॥१६॥

यद्यपि स्वेन रूपेण चरिष्यथ महीमिमाम् ।
न वो विज्ञास्यते कश्चित् त्रिषु लोकेषु भारत ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षं त्रयोदशमिदं मत्प्रसादात् कुरूद्वहाः ।
विराटनगरे गूढा अविज्ञाताश्चरिष्यथ ॥१८॥

हे भारत ! यदि तुम अपने रूप से भी इस पृथिवी पर घूमोगे, तो भी तुमको त्रिलोकी का कोई पुरुष मेरे अनुग्रह से इस तेरहवें वर्ष में नहीं जान सकेगा। हे कुरूद्वह ! तो भी तुम विराट नगर में छुपकर निवास करो ॥१७-१८॥

यद्वः सङ्कल्पितं रूपं मनसा यस्य यादृशम् ।
तादृशं तादृशं सर्वे छन्दतो धारयिष्यथ ॥१९॥

तुम, सब जिस २ रूप का मन से सङ्कल्प करोगे—वैसा २ रूप ही अपनी २ इच्छा के अनुसार धारण कर लोगे ॥१९॥

अरणीसहितं चेदं ब्राह्मणाय प्रयच्छत ।
जिज्ञासार्थं मया ह्येतदाहृतं मृगरूपिणा ॥२०॥

यह अरणी सहित मध्य काष्ठ-ब्राह्मण को अर्पण कर दो। मैंने ही तुम्हारे मिलने के लिए मृग रूप धारण करके इस काष्ठ का अपहरण किया था ॥२०॥

प्रवृणीष्वापरं सौम्य वरमिष्टं ददानि ते ।
न तृप्यामि नरश्रेष्ठ प्रयच्छन् वै वरांस्तव ॥२१॥
तृतीयं गृह्यतां पुत्र वरमप्रतिमं महत् ।
त्वं हि मत्प्रभवो राजन् विदुरश्च ममांशजः ॥२२॥

हे सौम्य ! नर-श्रेष्ठ ! अब तुम और अपना अभीष्ट वर मांग लो। मैं तुमको वर देता हुआ तृप्त नहीं होता हूं ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे पुत्र ! तुम तृतीय अद्भुत वर को ग्रहण करो। हे राजन् ! तुम मेरे अंश से उत्पन्न हुए हो और विदुर भी मेरे अंश से ही उत्पन्न हैं ॥२२॥

युधिष्ठिर उवाच—

देवदेव मया दृष्टो भवान् साक्षात् सनातनः।
यं ददासि वरं तुष्टस्तं गृहीष्याम्यहं पितः ॥२३॥

युधिष्ठिर बोले—हे देवों के देव ! मैंने आज साक्षात् सनातन देव आपके दर्शन कर लिए। हे पिता ! आप अपनी प्रसन्नता से जो २ वरदान देंगे—मैं वे ही ग्रहण करूंगा ॥२३॥

जयेयं लोभमोहौ च क्रोधश्चाहं सदा विभो।
दाने तपसि सत्ये च मनो मे सततं भवेत् ॥२४॥

हे प्रभो ! मैं लोभ, मोह और क्रोध को सदा जीते रहूं और दान, तप और सत्य में मेरा मन सदा अनुरक्त रहे ॥२४॥

धर्म उवाच-उपपन्नोगुणैरेतैः स्वभावेनासि पाण्डव।
भवान् धर्मः पुनश्चैव यथोक्तं ते भविष्यति ॥२५॥

धर्म ने कहा—हे पाण्डव ! इन गुणों से तो तुम स्वभाव से ही युक्त हो। तुम तो एक प्रकार से धर्म का ही रूप हो। जो तुम अपने मुख से कह दोगे—वही हो जावेगा ॥२५॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्त्वान्तर्दधे धर्मो भगवान् लोकभावनः।
समेताः पाण्डवश्चैव सुखसुप्ता मनस्विनः ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन बोले--लोकरक्षक, भगवान् धर्मदेव, इतना कह कर अलक्षित हो गए। अब सारे मनस्वी पाण्डव, सुखी हो गए।२६।

उपेत्य चाश्रमं वीराः सर्व एव गतक्लमाः।
आरणेयं ददुस्तस्मै ब्राह्मणाय तपस्विने ।।२७।।

सारे वीर पाण्डव, आश्रम में आए। इनको किसी प्रकार का श्रम नहीं था। इन्होंने उस तपस्वी ब्राह्मण को वह अरणी काष्ठ का सम्पुट लाकर दे दिया ।।२७।।

इदं समुत्थानसमागतं महत् पितुश्च पुत्रस्य च कीर्तिवर्द्धनं
पठन्नरःस्याद्विजितेन्द्रियोवशी सपुत्रपौत्राःशतवर्षभाग्भवेत्

जो मनुष्य, कीर्ति के बढ़ाने वाले, गौरवशाली, पाण्डवों के भूमि पर गिर कर उठने तथा पिता धर्म और पुत्र युधिष्ठिर के सम्मेलन को पढ़ाता है, वह मन और इन्द्रियों का विजयी हो जाता है तथा पुत्र पौत्रों सहित सौ वर्ष जीता है ।।२८।।

न चाप्यधर्मेण सुहृद्विभेदने परस्वहारे परदारमर्षणे।
कदर्य्यभावे च रमेन्मनःसदानृणांसदाख्यानमिदंविजानतां

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि आरणेयपर्वणि नकुलादिजीवने त्रयोदशाधिक त्रिशततमोऽध्यायः ।।३१३।।

जो मनुष्य इस उत्तम आख्यान को जानता है, उसका अधर्म के साथ मित्रों के रस में विष घोलने, पर धन के अपहरण करने, पर-स्त्री से मिलने एवं कायरता आदि में मन प्रवृत्त नहीं होगा।

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तगत आरणेयपर्व में नकुल आदि के उपाख्यान का तीन सौ तेरहवां अध्याय पूरा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन सौ चौदहवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

धर्मेण तेऽभ्यनुज्ञाताः पाण्डवाः सत्यविक्रमाः ।
अज्ञातवासं वत्स्यन्तश्छन्ना वर्षं त्रयोदशम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! सत्य-पराक्रमी पाण्डवों को धर्म ने अनुज्ञा दे दी। अब ये तेरहवें वर्ष, प्रच्छन्न रूप से वास करने की इच्छा करने लगे ॥१॥

उपोपविश्य विद्वांसः सहिताः संशितव्रताः ।
ये तद्भक्ता वसन्ति स्म वनवासे तपस्विनः ॥२॥
तानब्रुवन्महात्मानः स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा ।
अभ्यनुज्ञापयिष्यन्तस्तं निवासं धृतव्रताः ॥३॥

एक बार इनके साथ वन में निवास करने वाले, इनके प्रेमी, सारे तपस्वी व्रतशील विद्वान बैठे थे। इनसे ये महात्मा स्वधर्मनिष्ठ, पाण्डव, हाथ जोड़ कर बोले— हे व्रत-नियम-परायण, महानुभावो ! अब आप हमको उसी अज्ञातवास की अनुज्ञा दीजिए ॥

विदितं भवतां सर्वं धार्त्तराष्ट्रैर्यथा वयम् ।
छद्मना हृतराज्याश्चानयाश्च बहुशः कृताः ॥४॥

आप लोग, जानते हैं, कि धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधनादि ने बड़े छल से हमारा राज्य छीना है और हमारे साथ अनेक अन्याय किए हैं ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उषिताश्च वने कृच्छ्रं वर्षं द्वादश वत्सरान् ।
अज्ञातवाससमयं शेषं वर्षं त्रयोदशम् ।
तद्वसामो वयं छन्नास्तदनुज्ञातुमर्हथ ॥५॥

हमने बड़ी कठिनाई से बारह वर्ष तक वनवास कर लिया है। यह हमारे अज्ञात-वास का तेरहवां वर्ष अवशिष्ट (बाकी) है। हम अब प्रच्छन्न रूप से रहना चाहते हैं, आप हमको आज्ञा दीजिए ॥५॥

सुयोधनश्च दुष्टात्मा कर्णश्च सह सौबलः ।
जानन्तो विषमं कुर्य्युरस्मास्वत्यन्तवैरिणः ।
युक्तचाराश्च युक्ताश्च पौरस्य स्वजनस्य च ॥६॥

दुष्टात्मा दुर्योधन, शकुनि के सहित कर्ण, हमारे बड़े ही द्वेषी हैं। यदि वे जान लेंगे, तो हमारे साथ बड़ा ही अनुचित व्यवहार करेंगे। ये बड़े सावधान हैं, इन्होंने गुप्तचर लगा रखे हैं। ये हमारे अनुयायी पुरवासी और स्वजनों के साथ भी अनुचित व्यवहार किये बिना न रहेंगे ॥६॥

अपि नस्तद्भवेद्भूयो यद्वयं ब्राह्मणैः सह ।
समस्ताः स्वेषु राष्ट्रेषु स्वराज्यस्था भवेम हि ॥७॥

हे महाभागो! क्या वह हमारा राज्य हमको फिर मिल सकेगा, जिससे हम सारे पाण्डव, ब्राह्मणों के साथ अपने राष्ट्र के सिंहासन पर फिर बैठ सकेंगे ॥७॥

इत्युक्त्वा दुःखशोकार्त्तः शुचिर्धर्मसुतस्तदा ।
संमूर्च्छितोऽभवद्राजा साश्रुकण्ठो युधिष्ठिरः ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धात्मा धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, इतना कहकर बड़े दुःख और शोक में निमग्न हो गया। इसका आंसुओं से कण्ठ भर गया और यह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥८॥

तमथाश्वासयन् सर्वे ब्राह्मणा भ्रातृभिः सहः ।
अथ धौम्योऽब्रवीद्वाक्यं महार्थं नृपतिं तदा ॥९॥

भीम आदि सारे भाइयों के साथ, सारे ब्राह्मणों ने उनको धैर्य दिया। पुरोहित धौम्य भी बड़े अर्थ से गम्भीर वचन राजा युधिष्ठिर से कहने लगा ॥९॥

राजन् विद्वान् भवान् दान्तः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
नैवंविधाः प्रमुह्यन्ते नराः कस्याञ्चिदापदि ॥१०॥

हे राजन् ! आप बड़े विद्वान, उदार, सत्यवादी और जितेन्द्रिय है। आप जैसे पुरुष तो कभी किसी आपत्ति में घबड़ाया नहीं करते हैं ॥१०॥

देवैरप्यापदः प्राप्ताश्छन्नैश्च बहुशस्तथा ।
तत्र तत्र सपत्नानां निग्रहार्थं महात्मभिः ॥११॥

आपत्ति तो देवों पर भी आई है और इन महात्माओं ने भी छिप छिपाकर शत्रुओं के वध के लिए अनेक रूप धारण किए हैं ।११।

इन्द्रेण निषधं प्राप्य गिरिप्रस्थाश्रमे तदा ।
छन्नेनोष्य कृतं कर्म द्विषताञ्च विनिग्रहे ॥१२॥

इन्द्र ने निषध देश के गिरिप्रस्थ पर्वत के आश्रम में छुप कर निवास करके शत्रुओं के मारने के लिए अनेक उद्योग किए हैं ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णुनाश्वशिरः प्राप्य तथादित्यां निवत्स्यता ।
गर्भे वधार्थं दैत्यानामज्ञातेनोषितं चिरम् ॥१३॥

भगवान् विष्णु ने भी हयग्रीव का रूप धारण करके दैत्यों के वध के लिए अदिति के गर्भ में प्रच्छन्न रूप से बहुत काल तक निवास किया है ॥१३॥

प्राप्य वामनरूपेण प्रच्छन्नं ब्रह्मरूपिणा ।
बलेर्यथा हृतं राज्यं विक्रमैस्तच्च ते श्रुतम् ॥१४॥

विष्णु ने प्रच्छन्नता से वामन रूप धारण करके, बलि दैत्य का जिस विक्रम से राज्य छीना, वह सब कुछ आपने सुना ही है।

हुताशनेन यच्चापः प्रविश्य छन्नमासता ।
विबुधानां कृतं कर्म तच्च सर्वं श्रुतं त्वया ॥१५॥

अग्नि ने जल में प्रवेश करके और वहां बैठकर जो देवों का कार्य कर दिया—यह आपने सब सुन रखा है ॥१५॥

प्रच्छन्नश्चापि धर्मज्ञ हरिणारिविनिग्रहे ।
वज्रं प्रविश्य शक्रस्य यत् कृतं तच्च ते श्रुतम् ॥१६॥

हे धर्मात्मन् ! भगवान् विष्णु ने प्रच्छन्न रूप से शत्रुओं के वध के लिए इन्द्र के वज्र में प्रवेश किया—यह भी आपने सब कुछ सुना है ॥१६॥

और्वेण वसता छन्नमुरौ ब्रह्मर्षिणा तदा ।
यत् कृतं तात देवेषु कर्म तत्तेऽनघ श्रुतम् ॥१७॥

हे तात ! ब्रह्मर्षि और्व ने छुपे २ जंघा में निवास करके देवों के निमित्त जो कर्म कर डाला—वह आपने सब सुना है ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं विवस्वता तात छन्नेनोत्तमतेजसा ।
निर्दग्धाः शात्रवाः सर्वे वसता भुवि सर्वशः ॥१८॥

हे तात ! उत्तम-तेजस्वी विवस्वान् (सूर्य) ने प्रच्छन्न-रूप से पृथिवी पर रह कर सारे शत्रु, दग्ध कर दिए ॥१८॥

विष्णुना वसता चापि गृहे दशरथस्य वै ।
दशग्रीवो हतश्छन्नं संयुगे भीमकर्मणा ॥१९॥

भगवान् विष्णु ने राजा दशरथ के घर पर प्रच्छन्न (राम) रूप से निवास करके भीषण कर्म द्वारा युद्ध में रावण का वध कर दिया ॥१९॥

एवमेव महात्मानः प्रच्छन्नास्तत्र तत्र ह ।
अजयच्छात्रवान् युद्धे तथा त्वमपि जेष्यसि ॥२०॥

इस प्रकार बड़े २ देवता भी विपत्तियों के कारण छुपते फिरे हैं और फिर उन्होंने अपने शत्रुओं को मार गिराया है— इसी तरह तुम भी युद्ध में शत्रुओं को मार लोगे ॥२०॥

तथा धौम्येन धर्मज्ञो वाक्यैः संपरितोषितः ।
शास्त्रबुध्या स्वबुध्या च न चचाल युधिष्ठिरः ॥२१॥

पुरोहित धौम्य ने अपने उत्तम वाक्यों से धर्मराज युधिष्ठिर को शास्त्र और अपनी बुद्धि से समझाया । इससे राजा युधिष्ठिर बड़ा दृढ़ हो गया ॥२१॥

अथाब्रवीन्महाबाहुर्भीमसेनो महाबलः ।
राजानं बलिनां श्रेष्ठो गिरा संपरिहर्षयन् ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब महा-बाहु, महाबली, योद्धाओं में श्रेष्ठ, भीमसेन अपनी वाणी से सब को हर्षित करता हुआ, राजा युधिष्ठिर से कहने लगा ॥२२॥

अवेक्षया महाराज तव गाण्डीवधन्वनः ।
धर्मानुगतया बुद्ध्या न किञ्चित् साहसं कृतम् ॥२३

हे महाराज ! गाण्डीव-धनुष-धारी अर्जुन ने आपकी दृष्टि की ओर देखकर ही अपनी धर्मानुसारिणी बुद्धि के कारण अब तक कुछ भी साहस नहीं किया है ॥ २३ ॥

सहदेवो मया नित्यं नकुलश्च निवारितौ ।
शक्तौ विध्वंसने तेषां शत्रूणां भीमविक्रमौ ॥२४॥

ये नकुल और सहदेव भी शत्रु के विध्वंस करने में बड़े ही समर्थ हैं । मैंने इन महापराक्रमियों को जैसे तैसे रोक रक्खा है ।

न वयं तत् प्रहास्यामो यस्मिन् योक्ष्यति नो भवान्
भवान् विधत्तां तत्सर्वं क्षिप्रं जेष्यामहे रिपून् ॥२५॥

हम लोगों को आप जिस काम में लगा देते हो-हम उसको नहीं छोड़ते हैं । अब आप शीघ्र वही काम करें, जिस से हम शीघ्र शत्रुओं का नाश कर दें ॥२५॥

इत्युक्तं भीमसेनेन ब्राह्मणाः परमाशिषः ।
प्रयुज्यापृच्छ्य भरतान् यथा स्वान् स्वान् ययुर्गृहान्

भीमसेन के इतना कहने के अनन्तर ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया और वे भरत-वंश-श्रेष्ठ, इन पांडवों से पूछकर अपने २ घर को चले गए ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वे वेदविदो मुख्या यतयो मुनयस्तथा ।
आसेदुस्ते यथान्यायं पुनर्दर्शनकाङ्क्षया ॥२७॥
सह धौम्येन विद्वांसस्तथा पञ्च च पाण्डवाः ।
उत्थाय प्रययुर्वीराः कृष्णामादाय धन्विनः ॥२८॥

ये सारे वेद के ज्ञाता, विद्वान्, ऋषि, मुनि, फिर मिलने का वचन देकर अपने २ स्थानों पर धौम्य के साथ चले गए। अब पांचों वीर, धनुर्धर पांडव, द्रौपदी को साथ लेकर उठे और आगे चल पड़े ॥२७-२८॥

क्रोशमात्रमुपागम्य तस्माद्देशान्निमित्ततः ।
श्वोभूते मनुजव्याघ्राश्छन्नवासार्थमुद्यताः ॥२९॥

ये नर-श्रेष्ठ, इस स्थान से प्रच्छन्न निवास के निमित्त से एक कोश आगे चले गए और दूसरे दिन प्रच्छन्न वेष बनाने के लिए वस्त्र बदलने को तय्यार हो गए ॥२९॥

पृथक् शास्त्रविदः सर्वे सर्वे मन्त्रविशारदाः ।
सन्धिविग्रहकालज्ञा मन्त्राय समुपाविशन् ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत आरण्यपर्वणि आरणेयपर्वणि अज्ञातवासोद्योगे चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३१४॥

समाप्तश्च आरणेयपर्व ।

समाप्तश्च वनपर्व ।

ये सारे पृथक् २ शास्त्रों के ज्ञाता थे और सारे सम्मति करने में कुशल थे। सन्धि, युद्ध और देश काल के जानने वाले पाण्डव, अब मन्त्रणा (सलाह) करने के लिए बैठ गए ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत आरण्येयपर्व में अज्ञात वास के उद्योग का तीन सौ चौदहवां अध्याय पूरा हुआ और यहीं पर आरण्येयपर्व तथा वनपर्व भी समाप्त हो गया ।

******

अथारण्यकश्रवणमहिमादानविधि

इदमारण्यकं श्रुत्वा महापापैः प्रमुच्यते ।
अधनो धनमाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥१॥

जो मनुष्य, इस वनपर्व को सुनता है, वह महापापों से छूट जाता है और जो निर्धन है, वह पुत्र पौत्रों से युक्त होकर धनवान हो जाता है ॥१॥

यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।
नारी वा पुरुषो वापि शुचिः प्रयतमानसः ॥२॥

जो नर या नारी, पवित्र और मन को वश में रखने वाला है, वह जिस २ कामना को चाहता है, उसी २ को निःसन्देह पा लेता है ॥२॥

आरण्यके श्रुते धीते ब्राह्मणान्याय सादिभि ।
भोजयेद्वस्त्रगोस्वर्णदानै रत्नैः प्रपूजितान् ॥३॥

वनपर्व के सुनने और पढ़ लेने पर वस्त्र, गौ, सुवर्ण, रत्न आदि के दान से ब्राह्मणों को पूजकर उनको खीर आदि के भोजन से सन्तुष्ट करे ॥३॥

ब्राह्मणेषु च तुष्टेषु संतुष्टाः पाण्डुनन्दनाः ।
ब्रह्माविष्णुस्तदा रुद्रः शक्रो देवगणास्तथा ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे पाण्डव-नन्दनो ! चार ब्राह्मणों के सन्तुष्ट होने पर ब्रह्मा विष्णु, महेश, देवों के गण, भूतगण, मुनि, देवी और पितृगण, सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥४॥

भूतानि मुनयो देव्यस्त्था पितृगणाश्च ये।
वाचकं पूजयेच्छक्त्या वस्त्रान्नैः स्वर्णभूषणैः ।
विशेषतस्तु कपिला देयातु जपपाठके ॥५॥
कांस्यदोहा रौप्यखुरा स्वर्णशृङ्गी सभूषणा ।
पाण्डूनां परितोषार्थं दद्यादन्नं द्विजातये ॥६॥

अपनी शक्ति के अनुसार महाभारत के बांचने वाले विद्वान् को वस्त्र, अन्न और सुवर्ण के भूषणों से पूजन करे। जप ध्यान परायण कथावाचक को यदि कांसी की दोहनी, चांदी की खुरी, सोने की शृङ्गी तथा भूषणों से युक्त कपिला गौ का दान दिया जावे, तो विशेष पुण्य होता है। ब्राह्मणों को अन्न दान करने से पाण्डवों की आत्मा को शान्ति प्राप्त होती है ॥५-६॥

आरण्यकाख्यमाख्यानं श्रृणुयाद्यो नरोत्तमः ।
ससर्वं काममाप्नोति पुनः स्वर्गतिमाप्नुयात् ॥७॥

जो नर-श्रेष्ठ, इस वनपर्व को सुनता है, वह सारी कामनाओं पा लेता है और अन्त में स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥७॥

इति श्रीमहाभारत वनपर्वान्तर्गत वनपर्व के श्रावण की महिमा और दान की विधि समाप्त हो गई !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत

—:o:—

विराट-पर्व-प्रारम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत

विराटपर्व

पाण्डवप्रवेशपर्व

पहिला अध्याय

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय उवाच—

कथं विराटनगरे मम पूर्वपितामहाः ।
अज्ञातवासमुषिता दुर्योधनभयार्दिताः ॥१॥
पतिव्रता महाभागा सततं ब्रह्मवादिनी ।
द्रौपदी च कथं ब्रह्मन्नज्ञाता दुःखितावसत् ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन् ! मेरे पूर्वज प्रपितामह पाण्डवों ने दुर्योधन के भय से पीड़ित होकर विराट-नगर में किस तरह अज्ञात-वास किया और ब्रह्मवादिनी (वेद के जानने वाली) महा भागा, पतिव्रता, द्रौपदी ने छुपकर दुःख से कैसे दिन काटे ॥१-२

वैशम्पायन उवाच—

यथा विराटनगरे तव पूर्वपितामहाः ।
अज्ञातवासमुषितास्तच्छृणुष्व नराधिपाः ॥३॥

वैशम्पायन बोले--हे नराधिप ! जिस तरह तुम्हारे प्रपितामह पाण्डवों ने विराट-नगर में अज्ञातवास किया--वह वृतान्त तुमको सुनाता हूं– तुम ध्यान से सुनो ॥३॥

तथा तु स वरांल्लब्ध्वा धर्माद्धर्मभृतां वरः ।
गत्वाश्रमं ब्राह्मणेभ्य आचख्यौ सर्वमेव तत् ॥४॥

धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, युधिष्ठिर, धर्म से वर पाकर आश्रम में पहुंचे। वहां उन्होंने यह सारा वृत्तान्त ब्राह्मणों को सुनाया ॥४॥

कथयित्वा तु तत्सर्वं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिरः ।
अरणीसहितं तस्मै ब्राह्मणाय न्यवेदयत् ॥५॥

राजा युधिष्ठिर ने सारा वृतान्त ब्राह्मणों को सुनाकर अरणी सहित मध्य-काष्ठ को उस ब्राह्मण के लिए सौंप दिया ॥५॥

ततो युधिष्ठिरो राजा धर्मपुत्रो महामनाः ।
सन्निवर्त्यानुजान् सर्वानिति होवाच भारत ॥६॥

हे भारत ! इसके अनन्तर महामनस्वी, धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने लौट कर अपने सारे भाइयों से इस प्रकार कहा ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वादशेमानि वर्षाणि राज्यविप्रोषिता वयम् ।
त्रयोदशोऽयं सम्प्राप्तः कृच्छ्रात परमदुर्वसः ॥७॥

हमने राज्य से बाहर रहकर बारह वर्ष व्यतीत कर दिए हैं। अब यह तेरहवां वर्ष प्राप्त हुआ है, जिसमें बड़ी कठिनाई से निवास करना है ॥७॥

स साधु कौन्तेय इतो वासमर्जुन रोचय ।
संवत्सरमिमं यत्र वसेमाविदिताः परैः ॥८॥

हे कुन्ती-पुत्र ! अर्जुन ! अब तुम यहां से वहां चलो, जहां पर एक संवत्सर तक शत्रुओं से छुपे रह कर हम निवास कर सकें॥

अर्जुन उवाच—

तस्यैव वरदानेन धर्मस्य मनुजाधिप ।
अज्ञाता विचरिष्यामो नराणां नात्र संशयः ॥९॥

अर्जुन बोले-हे मनुजाधिप ! हमको धर्मदेव का वरदान हो चुका है, जिससे हम लोग, मनुष्यों से अज्ञात रहकर एक वर्ष तक घूम सकेंगे-इसमें सन्देह नहीं है ॥९॥

किन्तु वासाय राष्ट्राणि कीर्तियिष्यामि कानिचित्
रमणीयानि गुप्तानि तेषां किञ्चित् स्म रोचय ॥१०

इस पर भी मैं तुमको रहने के लिए कुछ राष्ट्रों के नाम गिनाता हूं। जो रमणीय और शत्रुओं से सुरक्षित हैं। उनमें से किसी एक को पसन्द कर लेना ॥१०॥

सन्ति रम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरून् ।
पाञ्चालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशार्णा नवराष्ट्राश्च मल्लाः शाल्वा युगन्धराः ।
कुन्तिराष्ट्रश्च विपुलं सुराष्ट्रावन्तयस्तथा ॥१२॥
एतेषां कतमो राजन्निवासस्तव रोचते ।
यत्र वत्स्यामहे राजन् सम्वत्सरमिमं वयम् ॥१३॥

कुरुदेश के आसपास अनेक सुन्दर देश हैं, जो अन्न से भरे रहते हैं। पाञ्चाल, चेदिमत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगन्धर, विशाल कुन्ति-राष्ट्र, सुराष्ट्र और अवन्ति ये इनके नाम हैं। हे राजन् ! इन देशों में से आप किस देश में रहना चाहते हो, जिसमें हम लोग भी एक वर्ष तक निवास करें ॥११-१३॥

युधिष्ठिर उवाच--

श्रुतमेतन्महाबाहो यथा स भगवान् प्रभुः ।
अब्रवीत् सर्वभूतेशस्तत्तथा न तदन्यथा ॥१४॥

युधिष्ठिर कहने लगे—हे महाबाहो ! यह मैंने भी सुना है, जो भगवान्, सब प्राणियों के स्वामी, शक्तिशाली, धर्म ने कहा था। जो धर्म ने कहा है, वैसा ही होगा--इसमें संशय नहीं है १४

अवश्यन्त्वेव वासार्थं रमणीयं शिवं सुखम् ।
सम्मन्त्र्य सहितैः सर्वैर्वस्तव्यमकुतोभयैः ॥१५॥

हम लोगों को निवास के लिए सुखदायी, कल्याणकारी और सुन्दर कोई प्रदेश सम्मति करके अवश्य खोज लेना है, जिसमें हम सब लोग, निर्भय होकर सुख से रह सकें ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत्स्यो विराटो बलवानभिरक्तोऽथ पाण्डवान् ।
धर्मशीलो वदान्यश्च वृद्धश्च सततं प्रियः ॥१६॥

मत्स्य और विराट देश का अधिपति बड़ा बलवान् और पाण्डवों का प्रेमी है, जो धर्मशील, दानी, वृद्ध और प्रियवादी है।

विराटनगरे तात सम्वत्सरमिमं वयम् ।
कुर्वन्तस्तस्य कर्माणि विहरिष्याम भारत ॥१७॥

हे तात ! भारत ! हम सब विराट नगर में एक वर्ष तक राजा विराट की सेवा करते हुए निवास करेंगे ॥१७॥

यानि यानि च कर्माणि तस्य वक्ष्यामहे वयम् ।
आसाद्य मत्स्यं तत् कर्म प्रब्रूत कुरुनन्दनाः ॥१८

हे कुरुनन्दन ! अब हम विराट नरेश के सम्मुख पहुंचकर किस २ काम करने को कहें--तुम लोग प्रथम यह बताओ ॥१८॥

अर्जुन उवाच-नरदेव कथं तस्य राष्ट्रे कर्म करिष्यसि ।
विराटनगरे साधो वत्स्यसे केन कर्मणा ॥१९॥

मृदुर्वदान्यो ह्रीमांश्च धार्मिकः सत्यसङ्गरः ।
राजस्त्वमापदाकृष्टः किङ्करिष्यसि पाण्डव ॥२०॥

अर्जुन ने कहा—हे नरदेव ! साधो ! तुम राजा विराट के नगर में या राष्ट्र में क्या काम करोगे और किस काम को करते हुए निवास करना चाहते हो। हे राजन् ! आप तो बड़े कोमल प्रकृति, उदार, लज्जाशील, धार्मिक, सत्य-प्रतिज्ञ और आपत्तियों से कृश कर दिए गए हो - तुम क्या काम कर सकते हो ।१९-२०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न दुःखं चतं किञ्चिद्राजा वेद यथा जनः।
स इमामापदं प्राप्य कथं घोरान्तरिष्यसि ॥२१॥

राजा, साधारण मनुष्यों की तरह किसी के कुछ भी उचित क्लेश को नहीं जान पाता है। अब तुम, इस घोर आपत्ति को पाकर कैसे पार हो सकोगे—मुझे इसकी ही चिन्ता है ॥२१॥

युधिष्ठिर उवाच—

शृणुध्वं यत् करिष्यामि कर्म वै कुरुनन्दनाः।
विराटमनुसम्प्राप्य राजानं पुरुषर्षभाः ॥२२॥

युधिष्ठिर बोले—हे पुरुष-श्रेष्ठ ! कुरुनन्दनो ! मैं विराट राजा के पास रह कर जो काम करना चाहता हूं - वह सुनो ॥२२॥

सभास्तारो भविष्यामि तस्य राज्ञो महात्मनः।
कङ्को नाम द्विजो भूत्वा मताक्षः प्रियदेवनः ॥२३॥

मैं इस महात्मा राजा विराट की सभा का सभासद हो जाऊँगा और अपना नाम कङ्क शर्मा बताऊँगा। मैं चौसर खेलने का बड़ा प्रेमी और पासों की विद्या का जानने वाला अपने को प्रकट करूँगा। ॥२३॥

वैदूर्यान् काञ्चनान् दान्तान् फलैर्ज्योतीरसैः सह।
कृष्णाक्षांल्लोहिताक्षांश्च निवत्स्यामि मनोरमान् ॥२४॥

वैडूर्य मणि के सदृश नीले, सुनहरी, हाथी दांत के बने हुए, काले तथा लाल मनोहर पासों को अग्नि के सदृश लाल और पारे के सदृश श्वेत फलकों (तख्ते पर बने चौसर के खाने) के अनुकूल फैंक सकता हूं ॥२४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराटराजं रमयन् सामात्यं सहबान्धवम् ।
न च मां वेत्स्यते कश्चित्तोषयिष्ये च तं नृपम् ॥२५॥

मैं मन्त्रियों और बाधवों सहित विराट-राज को प्रसन्न करता हुआ, वहां रहता रहूंगा—इस प्रकार मुझे कोई भी नहीं जान सकेगा और मैं विराट-राज को सन्तुष्ट कर लूँगा ॥२५॥

आसं युधिष्ठिरस्याहं पुरा प्राणसमः सखा ।
इति वक्ष्यामि राजानं यदि मां सोऽनुयोक्ष्यते ॥२६

यदि विराट-राज मुझसे पूछेगा—तो मैं कह दूँगा—कि मैं राजा युधिष्ठिर का प्राणों के समान प्रिय मित्र हूँ और उसी के पास रहता था ॥२६॥

इत्येतद्वो मया ख्यातं विहरिष्याम्यहं यथा ।
वृकोदर विराटे त्वं वत्स्यसे केन हेतुना ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
युधिष्ठिरादिमन्त्रणे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

हे भीमसेन ! मैं जिस तरह विराट राज के रहना चाहता हूं-वह प्रकार तुम को सुना दिया । अब तुम बताओ—तुम विराट नगर में कि तरह रहना चाहते हो ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत पाण्डवप्रवेशपर्व में युधिष्ठिर के मन्त्रणा करने का प्रथम अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा अध्याय

भीमसेन उवाच--

पौरोगवो ब्रुवाणोऽहं वल्लवो नाम भारत ।
उपस्थास्यामि राजानं विराटमिति मे मतिः ॥१॥

भीमसेन कहने लगा—हे भारत ! मैं अपना नाम वल्लव बता कर रसोई का अध्यक्ष बन के राजा विराट के रहूँगा—मैंने यही विचार किया है ॥१॥

सूपानस्य करिष्यामि कुशलोऽस्मि महानसे ।
कृतपूर्वाणि दैरस्य व्यञ्जनानि सुशिक्षितैः ॥२॥
तानप्यभिभविष्यामि प्रीतिं सञ्जनयन्नहम् ।
आहरिष्यामि दारूणां निचयान्महतोऽपि च ॥३॥

मैं राजा के लिए अनेक भांति से दाल शाक बनाऊँगा, क्योंकि मैं रसोई के काम में बड़ा कुशल हूं । इस राजा के यहाँ जितने पाक-विद्या में कुशल पहिले से दाल शाक बना रहे हैं, मैं उन सबको अपने गुण से जीत लूंगा और राजा विराट को बड़ा ही सन्तुष्ट कर लूंगा । इसके सिवा मैं काष्ठका बहुत बड़ा ढेर भी काट काट कर ला सकता हूं ॥२-३॥

यत् प्रेक्ष्य विपुलं कर्म राजा संयोक्ष्यते स माम् ।
अमानुषाणि कुर्वाणस्तानि कर्माणि भारत ॥४॥

राजा विराट, मेरे-मनुष्यों को अतिक्रमण कर जाने वाले कामों को देखकर मुझे उन विशाल और कठिन कामों में लगाता रहेगा ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्ञस्तस्य परिग्रेष्या मंस्यन्ते मां यथा नृपम् ।
भक्ष्यान्नरसपानानां भविष्यामि तथेश्वरः ॥५॥

राजा के पूर्व सेवक, मुझे भी जिस तरह राजा को मानते हैं वैसा ही माने, मैं इसी तरह का भक्ष्य, अन्न, रस और पान वस्तुओं का अध्यक्ष बनूंगा ॥५॥

द्विपा वा बलिनो राजन् वृषभा वा महाबलाः ।
विनिग्राह्या यदि मया निग्रहीष्यामि तानपि ॥६॥

हे राजन् ! यदि बलवान् हाथी या महाबली बैलों को हाथ से ही पकड़ कर रोकने का काम दिखाने का समय आवेगा-तो मैं उनको भी पकड़ कर दिखा दूंगा ॥६॥

ये च केचिन्नियोत्स्यन्ति समाजेषु नियोधकाः ।
तानहं निहनिष्यामि रतिं तस्य विवर्द्धयन् ॥७॥

इसके अतिरिक्त राजा विराट के आनन्द प्रमोद के बढ़ाने के लिए जो नियोधक (पहलवान) मेलों पर मल्ल-युद्ध करेंगे-मैं उनको भी पछाड़ता रहूंगा ॥७॥

न त्वेतान् युध्यमानान् वै हनिष्यामि कथञ्चन ।
अथ तान् पातयिष्यामि यथा यास्यन्ति न क्षयम् ८

मैं इन मल्ल-युद्ध करने वालों के प्राणापहरण नहीं करूंगा, किन्तु केवल पछाड़ता ही रहूंगा-जिससे उनका नाश न हो सके ।

आरालिको गोविकर्त्ता सूपकर्त्ता नियोधकः ।
आसं युधिष्ठिरस्याहमिति वक्ष्यामि पृच्छतः ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं राजा युधिष्ठिर का रसोइया, वृषों का विजेता, दाल शाक बनाने वाला और नियोधक (पहलवान) हूं। यदि राजा विराट ने पूछा—तो इस तरह कह दूंगा ॥९॥

आत्मानमात्मना रक्षंश्चरिष्यामि विशाम्पते।
इत्येतत् प्रतिजानामि विहरिष्याम्यहं यथा ॥१०॥

हे विशाम्पते ! मैं अपने आप को छुपाकर इस तरह रहना चाहता हूं। मैंने जिस तरह का विचार किया है, वह तुमको सूचित कर दिया है ॥१०॥

युधिष्ठिर उवाच—

यमग्निर्ब्राह्मणो भूत्वा समागच्छन्नृणां वरम्।
दिधक्षुः खाण्डवं दावं दाशार्हसहितं पुरा ॥११॥
महाबलं महाबाहुमजितं कुरुनन्दनम्।
सोऽयं किं कर्म कौन्तेय करिष्याति धनञ्जयः॥ १२॥

राजा युधिष्ठिर बोले--हे कौन्तेय ! भीम ! पूर्वकाल में जिस नर-श्रेष्ठ, महाबली, महाबाहु, किसी से पराजित न होने वाले, कुरुनन्दन अर्जुन के सामने दाशार्ह देश सहित खाण्डव वन को जलाने की इच्छा धारी, अग्नि, ब्राह्मण का रूप बनाकर उपस्थित हुआ, वह अर्जुन क्या करेगा ॥११-१२॥

योऽयमासाद्य तं दावं तर्पयामास पावकम्।
विजित्यैकरथेनैव हत्वा पन्नगराक्षसान् ॥१३॥
वासुदेवः सर्परास्य स्वसारं हृतवांश्च यः।
श्रेष्ठो यः प्रतियोधानां सोऽर्जुनः किङ्करिष्यति १४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाण्डव वन में पहुंच कर जिस अर्जुनने अग्नि को तृप्त किया और पन्नग तथा राक्षसों को मारकर एकरथ से (अकेले ने) ही सबको जीत लिया एवं वासुकि नागराज की बहन को ग्रहण किया और जो सारे योद्धाओं में श्रेष्ठ है, वह अर्जुन क्या करना चाहता है ॥१३-१४॥

सूर्य्यः प्रतपतां श्रेष्ठो द्विपदां ब्राह्मणो वरः ।
आशीविषश्च सर्पाणामग्निस्तेजस्विनां वरः ॥१५॥
आयुधानां वरं वज्रं ककुद्मी च गवां वरः ।
ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठः पर्जन्यो वर्षतां वरः ॥१६॥
धृतराष्ट्रश्च नागानां हस्तिष्वैरावणो वरः ।
पुत्रः प्रियाणामधिको भार्य्या च सुहृदां वरा ॥१७॥
यथैतानि विशिष्टानि जात्यां जात्यां वृकोदर ।
एवं युवा गुडाकेशः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥१८॥
सोऽयमिन्द्रादनवरो वासदेवान्महाद्युतिः ।
गाण्डीवधन्वा बीभत्सुः श्वेताश्वः किङ्करिष्यति ॥१९

हे भीम ! चमकने वालों में सूर्य, मनुष्यों में ब्राह्मण, सर्पों में आशिविष, तेजस्वियों में अग्नि, शस्त्रों में वज्र, वृषों में ककुद्मान (पुष्ट स्कंधधारी) वृषभ, जलाशयों में समुद्र, वर्षा करने वालों में पर्जन्य मेघ, नागों में धृतराष्ट्र संज्ञक नाग, हाथियों में ऐरावत, प्रिय वस्तुओं में पुत्र, मित्रों में भार्या, श्रेष्ठ है। जैसे २ ये अपनी जाति में उत्तम माने गए-वैसे यह युवक अर्जुन धनुष-धारियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ है। महा-कान्ति-धारी गाण्डीव-धर्ता, श्वेत-अश्वारोही यह अर्जुन इन्द्र और श्रीकृष्ण से किसी तरह कम नहीं है-इसका क्या काम करने का विचार है ॥१५--१९॥

उषित्वा पञ्च वर्षाणि सहस्राक्षस्य वेश्मनि ।
अस्त्रयोगं समासाद्य स्ववीर्यान्मानुषाद्भुतम् ॥२०॥
दिव्यान्यस्त्राणि चाप्तानि देवरूपेण भास्वता ।
यं मन्ये द्वादशं रुद्रमादित्यानां त्रयोदशम् ।
वसूनां नवमं मन्ये ग्रहाणां दशमं तथा ॥२१॥
यस्य बाहू समौ दीर्घौ ज्याघातकठिनत्वचौ ।
दक्षिणे चैव सव्ये च गवामिव वहः कृतः ॥२२॥
हिमवानिव शैलानां समुद्रः सरितामिव ।
त्रिदशानां यथा शक्रो वसूनामिव हव्यवाट् ॥२३॥
मृगाणामिव शार्दूलो गरुडः पततामिव ।
वरः सन्नह्यमानानां सोऽर्जुनः किङ्करिष्यति ॥२४॥

जिसने इन्द्र के भवन में पांच वर्ष निवास करके अपने पराम से मनुष्यों को चकित कर देने वाला अस्त्र-प्रयोग सीखा है, जिसने देवों के समान चमकते हुए दिव्य रूप से दिव्य अस्त्रों को प्राप्त किया, जिसको एकादश रुद्रों से अधिक बारहवां रुद्र द्वादश आदित्यों में तेरहवां आदित्य आठ वसुओं में नवम वसु, नव ग्रहों में दशवां ग्रह, मानना चाहिए। जिसकी धनुष की डोरी से कर्कशत्वचा वाली, सुडौल और दीर्घ दांई बांई भुजा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वृषभ के सदृश स्कंध हैं, शैलों में हिमालय और नदियों में समुद्र, देवों में इन्द्र, वसुओं में अग्नि, वन के जन्तुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड़ के सदृश, जो धनुषधारियों में श्रेष्ठ है, वह अर्जुन क्या करेगा—अब तुम यह बताओ ॥२०-२४॥

अर्जुन उवाच—

प्रतिज्ञां षण्डकोऽस्मीति करिष्यामि महीपते ।
ज्याघातौ हि महान्तौ मे संवर्त्तुं नृप दुष्करौ ॥२५
वलयैश्छादयिष्यामि बाहू कृतकिणाविमौ ।
कर्णयोः प्रतिमुच्याहं कुण्डले ज्वलनप्रभे ॥२६॥
पिनद्धकम्बुः पाणिभ्यां तृतीयां प्रकृतिं गतः ।
वेणीकृतशिरा राजन्नाम्ना चैव बृहन्नला ॥२७॥

हे महीपते ! मैं राजा विराट से कह सकता हूं—कि मैं षण्डक (नपुंसक) अर्थात् रनिवास में रहने के योग्य हूं। हे नृप ! परन्तु धनुष की डोरी के बड़े २ चिन्ह, छुपा लेना मुझे कठिन दिखाई देता है, परन्तु इन धनुष के चिन्हों से चिन्हित बाहुओं को भी में कङ्कणों से जैसे तैसे ढक लूँगा। अग्नि के सदृश चमकने वाले इन कुण्डलों को खोल डालूँगा। हे राजन् ! मैं हाथों में कड़े पहनूंगा और तृतीया प्रकृति (नपुंसक) का वेष धारण कर के शिर पर इन बालों को वेणी के आकार में गूंथ लूँगा। एवं अपना नाम बृहन्नला सूचित करूंगा ॥२५-२७॥

पठन्नाख्यायिकाश्चैव स्त्रीभावेन पुनः पुनः ।
रमयिष्ये महीपालमन्यांश्चान्तःपुरे जनान् ॥२८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं स्त्रियों के लटके दिखा २ कर षण्डों (हिजड़ों) के सदृश कहानी कहा करूंगा। इस प्रकार मैं राजा विराट तथा उसके अन्तपुर के अन्य स्त्री जनों को प्रसन्न करता रहूंगा ॥२८॥

गीतं नृत्यं विचित्रञ्च वादित्रं विविधं तथा।
शिक्षयिष्याम्यहं राजन् विराटस्य पुरस्त्रियः ॥२९॥
प्रजानां समुदाचारं बहुकर्म कृतं वदन्।
छादयिष्यामि कौन्तेय माययात्मानमात्मना ॥३०॥

हे राजन्! मैं गाना नाचना अनेक भाँति से अद्भुत बाजे बजाना, विराट-राज की अन्तःपुर की स्त्रियों को सिखाता रहूंगा। हे कौन्तेय! सन्तति के लालन पालन के भी अनेक कामों को करने में अपने को कुशल बता कर, मैं माया से अपने आपको छुपाऊंगा ॥२९-३०॥

युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका।
उषितास्मीति वक्ष्यामि पृष्टो राज्ञा च पाण्डव ॥३१
एतेन विधिना छन्नः कृतकेन यथानलः।
विहरिष्यामि राजेन्द्र विराटभवने सुखम् ॥३२॥

यदि राजा विराट ने पूछा--कि तुम कहां रही हो, तो मैं कह दूँगा—कि मैं राजा युधिष्ठिर के रनिवास में द्रौपदी के पास रहने वाली दासी थी। हे राजेन्द्र! मैं इस बनावटी ढंग से नल की तरह अपने को छुपा कर विराट-राज के भवन में सुख से निवास कर सकूंगा ॥३१-३२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

इत्येवमुक्त्वा पुरुषप्रवीरस्तथार्जुनो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
वाक्यं तथासौ विरराम भूयो नृपोऽपरं भ्रातरमाबभाषे ॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
युधिष्ठिरादिमन्त्रणे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

वैशम्पायन कहने लगे—हे राजन् ! पुरुष-श्रेष्ठ, धर्मात्माओं में उत्तम, अर्जुन, इतना वाक्य कह कर चुप हो गया ! अब राजा युधिष्ठिर ने अपने दूसरे भाई नकुल से कहा ॥३३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत पाण्डवप्रवेशपर्व में युधिष्ठिरादि पाण्डवों के मन्त्रणा करने का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

तीसरा अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

किं त्वं नकुल कुर्वाणस्तत्र तात चरिष्यसि ।
कर्म तत् त्वं समाचक्ष्व राज्ये तस्य महीपतेः ।
सुकुमारश्च शूरश्च दर्शनीयः सुखोचितः ॥१॥

युधिष्ठिर बोले—हे तात ! नकुल ! अब तुम भी बताओ—राजा विराट के नगर में तुम क्या करते हुए अपने दिन व्यतीत करोगे, तुम तो बड़े सुकुमार, शूरवीर, सुन्दर और सुख के योग्य हो ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नकुल उवाच—

अश्वबन्धो भविष्यामि विराटनृपतेरहम् ।
सर्वथा ज्ञानसम्पन्नः कुशलः परिरक्षणे ॥२॥

नकुल ने कहा—हे राजन् ! मैं विराट-राज के अश्वों की रक्षा में नियुक्त हो जाऊंगा, क्योंकि मैं अश्वों के ज्ञान से युक्त और उनकी रक्षा में कुशल हूं ॥२॥

ग्रन्थिको नाम नाम्नाहं कर्मैतत् सुप्रियं मम ।
कुशलोऽस्म्यश्वशिक्षायां तथैवाश्वचिकित्सने ॥३॥

मैं अपना नाम ग्रन्थिक रख लूंगा। मुझे अश्वों का काम बड़ा ही प्रिय है। मैं अश्वों को शिक्षा देने में तथा उनकी चिकित्सा में कुशल हूं ॥३॥

प्रियाश्च सततं मेऽश्वाः कुरुराज यथा तव ।
ये मामामन्त्रयिष्यन्ति विराटनगरे जनाः ॥४॥
तेभ्य एवं प्रवक्ष्यामि विहरिष्याम्यहं यथा ।
पाण्डवेन ह्यहं तात अश्वेष्वधिकृतः पुरा ।
विराटनगरे छन्नश्चरिष्यामि महिपते ॥५॥

हे कुरुराज ! जिस तरह तुमको अश्व प्रिय हैं, मुझे भी उनसे प्रेम है। विराट के नगर में जो मनुष्य मुझ से पूछेंगे, उनसे इस तरह कह दूंगा और ऐसा ही आचरण करूंगा, कि मुझे पाण्डु पुत्र, राजा युधिष्ठिर ने अश्वों का अधिकारी बना रखा था। हे महीपते ! मैं इस भांति अपने आपको छुपाकर विराट नगर में निवास करूंगा ॥४-५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर उवाच—

सहदेव कथं तस्य समीपे विहरिष्यसि ।
किंवा त्वं कर्म कुर्वाणः प्रच्छन्नो विहरिष्यसि ॥६॥

युधिष्ठिर बोले—हे सहदेव ! तुम राजा विराट के समीप किस तरह रहना चाहते हो और किस काम को करके प्रच्छन्न रूप से तुम वहां रह सकोगे ॥६॥

सहदेव उवाच—

गोसङ्ख्याता भविष्यामि विराटस्य महीपतेः ।
प्रतिषेद्धा च दोग्धा च सङ्ख्याने कुशलो गवाम् ॥७॥
तन्त्रिपाल इति ख्यातो नाम्नाहं विदितस्त्वथ ।
निपुणश्च चरिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥८॥

सहदेव ने कहा—हे राजन् ! मैं राजा विराट की गौओं की संख्या करने वाला बन जाऊंगा तथा गौओं को घेरने, दुहने और उनका हिसाब रखने में कुशल हूं । मैं अपना नाम तन्त्रिपाल रख छोडूंगा और इसी नाम से सबको अपना परिचय दूंगा । मैं बड़ी चतुराई से अपने आपको छुपाकर विराट नगर में निवास कर सकूंगा, तुम अपनी चिन्ता को मन से निकाल डालो ॥७-८॥

अहं हि सततं गोषु भवता प्रहितः पुरा ।
तत्र मे कौशलं सर्वमवबुद्धं विशाम्पते ॥९॥

हे विशाम्पते ! आपने पूर्वकाल में मुझे अनेक बार गौओं के कार्य में नियुक्त किया है । वहाँ मैंने गायों के सम्बन्ध में सारी कुशलता प्राप्त कर ली है ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्षणञ्चरितं चापि गवा यच्चापि मङ्गलम् ।
तत्सर्वं मे सुविदितमन्यच्चापि महीपते ॥१०॥

हे महीपते ! मैंने गौओं के लक्षण, उनके व्यवहार (आदत) तथा उनके हितकारी आहार विहार एवं अन्य जो कुछ भी गौओं से सम्बन्ध रखता है—सब कुछ जान लिया है ॥१०॥

वृषभानपि जानामि राजन् पूजितलक्षणान् ।
येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि बन्ध्या प्रसूयते ॥११॥

हे राजन ! मैं उत्तम २ लक्षण वाले, वृषभों को भी पहचान लेता हूं—जिनके मूत्र की गन्ध को ही सूंघ कर बन्ध्या गौ भी गर्भिणी हो जाती है ॥११॥

सोऽहमेवं चरिष्यामि प्रीतिरत्र हि मे सदा ।
नं च मां वेत्स्यते कश्चित्तोषयिष्ये च पार्थिवम् ॥१२॥

मैं इसी काम को वहाँ करूँगा, क्योंकि मुझे यह काम बड़ा पसन्द है, मुझे कोई भी नहीं पहचान सकेगा और मैं राजा विराट को सन्तुष्ट कर लूंगा ॥१२॥

युधिष्ठिर उवाच—

इयं हि नः प्रिया भार्य्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
मातेव परिपाल्या च पूज्या ज्येष्ठेव च स्वसा॥१३
केन स्म द्रौपदी कृष्णा कर्मणा विचरिष्यति ।
न हि किञ्चिद्विजानाति कर्म कर्त्तुं यथा स्त्रियः ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर बोले—यह हमारी प्रिय भार्या द्रौपदी प्राणों से भी अधिक प्रिय है। यह माता की तरह पालन करने योग्य और बड़ी बहन की तरह पूज्य हैं। यह कृष्णा द्रौपदी, किस काम को करके वहाँ निर्वाह कर सकेगी। यह तो अन्य स्त्रियों की तरह कुछ काम भी करना नहीं जानती है ॥१३-१४॥

सुकुमारी च बाला च राजपुत्री यशस्विनी।
पतिव्रता महाभागा कथन्तु विचरिष्यति ॥१५॥
माल्यगन्धानलङ्कारान् वस्त्राणि विविधानि च।
एतान्येवाभिजानाति यतो जाता हि भाविनी ॥१६॥

यह राज-पुत्री यशस्विनी द्रौपदी, बड़ी सुकुमारी और सुन्दरी है। यह महाभागा, पतिव्रता अपने दिन कैसे काटेगी। यह भामिनी तो, अनेक तरह की माला, गन्ध, अलङ्कार और वस्त्रों का धारण करना ही जानती है, क्योंकि यह तो उत्पन्न ही ऐसी परिस्थिति में हुइ है ॥१५-१६॥

द्रौपद्युवाच—

सैरिन्ध्र्यो रक्षिता लोके भुजिष्याः सन्ति भारत।
नैवमन्याः स्त्रियो यान्ति इति लोकस्य निश्चयः ॥१७॥
साहं ब्रुवाणा सैरिन्ध्री कुशला केशकर्मणि।
युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका ॥१८॥
उषितास्मीति वक्ष्यामि पृष्टा राज्ञा च भारत।
आत्मगुप्ता चरिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥१९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदी कहने लगी—हे भारत ! केश आदि के शृङ्गार करने वाली दासी रनिवास में सुरक्षित होती हैं। ये अन्य दासियों की तरह नहीं होती। यह सब लोग, निश्चय रूप से जानते हैं। मैं भी अपने को सैरिन्ध्री बता दूँगी। मैं केशों के शृङ्गार में कुशल हूं। हे भारत ! यदि राजा विराट ने पूछा—कि कहां काम किया है, तो मैं कह दूँगी कि मैं राजा युधिष्ठिर के रनिवास में द्रौपदी की दासी थी। अब आप मुझ से पूछ रहे हो। जिस से कह रही हूं, कि मैं अपने आपको छुपा कर रख लूँगी ॥१७-१९॥

सुदेष्णां प्रत्युपस्थास्ये राजभार्य्यां यशस्विनीम् ।
सा रक्षिष्यति मां प्राप्तां माभूत्ते दुःमीदृशम् ॥२०॥

मैं यशस्विनी राज भार्या, सुदेष्णा के पास चली जाऊंगी। वह मेरी सब तरह रक्षा करेगी--तुम को कोई दुःख नहीं रहना चाहिए ॥२०॥

युधिष्ठिर उवाच—

कल्याणं भाषसे कृष्णे कुले जातासि भाविनि ।
न पापमभिजानासि साध्वी साधुव्रते स्थिता ॥२१॥

युधिष्ठिर बोले—हे कृष्णे ! तुम बड़ा उत्तम कह रही हो, क्योंकि उत्तम कुल में उत्पन्न हुई हो। तुम तो अनुचित काम कर ही नहीं सकती हो। तुम बड़ी साध्वी और पतिव्रत धर्म में परायण हो ॥२१॥

यथा न दुर्हृदः पापा भवन्ति सुखिनः पुनः ।
कुर्य्यास्तथा त्वं कल्याणि लक्षयेयुर्न ते यथा ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि युधिष्ठिरादिमन्त्रणे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

हे कल्याणि ! दुष्ट, पापी, दुर्योधनादि, जिस तरह भविष्य में उपहास करके सुखी न हो सके--तुम ऐसा ही करना और तुम को कोई पहचान ही न ले-इसका भी बड़ा ध्यान रखना ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गतपाण्डवप्रवेशपर्व में युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के मन्त्रणा करने का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ

—:o:—

चौथा अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

कर्माण्युक्तानि युष्माभिर्यानि यानि करिष्यथ ।
मम चापि यथा बुद्धिरुचिता विधिनिश्चयात् ॥१॥

युधिष्ठिर बोले—हे महाभागे ! तुम ने जिन २ कर्म को करना उचित समझा—उनका कथन कर दिया है। अब कर्तव्य के निश्चय करने को मेरा बुद्धि में एक बात और उत्पन्न हुई है ॥ ॥

पुरोहितोऽयमस्माकमग्निहोत्राणि रक्षतु ।
सूतपौरोगवैः सार्द्धं द्रुपदस्य निवेशने ॥२॥

ये हमारे पुरोहित धौम्य, हमारे अग्नि-होत्र की रक्षा करें और सारथि तथा रसोइयों के साथ राजा द्रुपद के घर पर चले जावें ।२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रसेनमुखाश्चैमे रथानादाय केवलान् ।
यान्तु द्वारवतीं शीघ्रमिति मे वर्त्तते मतिः ॥३॥

इन्द्रसेन आदि मुख्य २ सारथि केवल रथों को लेकर शीघ्र ही द्वारका चले जावे, मेरा ऐसा ख्याल है ॥३॥

इमाश्च नार्य्यो द्रौपद्याः सर्वाश्च परिचारिकाः ।
पञ्चालानेव गच्छन्तु सूतपौरोगवैः सह ॥४॥

ये द्रौपदी की सेवा करने वाली स्त्रियां भी सूत और रसोइयों के साथ पाञ्चाल देश को ही चली जावें ॥४॥

सर्वैरपि च वक्तव्यं न प्राज्ञायन्त पाण्डवाः ।
गता ह्यस्मानपाकीर्य्य सर्वे द्वैतवनादिति ॥५॥

इन सबको यही कहना चाहिए कि पाण्डव, हम लोगों को छोड़कर न जाने चुपचाप द्वैतवन से कहां चले गए- उनका कुछ भी पता नहीं है ॥५॥

युधिष्ठिर उवाच--

एवं तेऽन्योऽन्यमामन्त्र्य कर्माण्युक्त्वा पृथक् पृथक् ।
धौम्यमामन्त्रयामासुः स च तान्मन्त्रमब्रवीत् ॥६॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इस प्रकार उन पाण्डवों ने परस्पर मन्त्रणा की और अपने भिन्न भिन्न कामों का कथन किया। अब इन्होंने अपने पुरोहित धौम्य से इस विषय में सम्मति ली—तो धौम्य इन से कहने लगे ॥६॥

धौम्य उवाच—

विहितं पाण्डवाः सर्वे ब्राह्मणेषु सुहृत्सु च ।
याने प्रहरणे चैव तथैवाग्निषु भारत ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे पाण्डवो ! तुमने ब्राह्मण और मित्रों के विषय में उचित ही निश्चय किया है। हे भारत ! यान (सवारी) शस्त्र और अग्नि-होत्र की व्यवस्था भी सब कुछ ठीक ही कर दी है ॥७॥

त्वया रक्षा विधातव्या कृष्णायाः फाल्गुनेन च ।
विदितं वो यथान्यायं लोकवृत्तमिदं नृप ॥८॥

अब तो तुम को और अर्जुन को केवल द्रौपदी की रक्षा करनी ही शेष रह गई है। जिसको तुम्हें बड़ी सावधानी से करना चाहिए। हे कृपा-नाथ ! आप तो नीति के अनुसार सारे लोक व्यवहार को जानते हैं ॥८॥

विदिते चापि वक्तव्यं सुहृद्भिरनुरागतः ।
एष धर्मश्च कामश्च अर्थश्चैव सनातनः ॥९॥

अपने मित्र को यद्यपि सब कुछ विदित है, तो भी प्रेमियों को अपने अनुराग के अनुसार उसे सब कुछ सुझाना चाहिए। इसी से सनातन धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि है ॥९॥

अतोहमपि वक्ष्यामि हेतुमत्र निबोधत ।
हन्तेमां राजवसतिं राजपुत्रा ब्रवीम्यहम् ॥१०॥
यथा राजकुलं प्राप्य सर्वान् दोषांस्तरिष्यथ ।
दुर्वसन्त्वेव कोरव्या जानतां राजवेश्मनि ॥११॥

इन सब बातों को ही सोच कर मैं तुम से कह रहा हूं और मेरा सौहार्द (प्रेम) ही इस में हेतु समझो। हे राजपुत्रों ! राज-कुल में कैसे निवास किया जा सकता है—यह मैं तुम से कहता हूं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस से राजकुल में पहुंच कर तुम आने वाली सारी कठिनाईयों को पार कर जाओगे। हे कौरव ! समझदार मनुष्य को राजकुल में निवास करना बड़ा ही कठिन प्रतीत होगा ॥१०-११॥

अमानितैर्मानितैर्वा अज्ञातैः परिवत्सरम् ।
ततश्चतुर्दशे वर्षे चरिष्यथ यथासुखम् ॥१२॥

यदि तुम लोग, मान या अपमान से अज्ञान अवस्था में इस तेरहवें वर्ष को व्यतीत कर दोगे—तो फिर चौदहवां वर्ष आ जाने पर तुम निःशङ्क अपनी इच्छा के अनुसार कहीं भी घूम सकोगे ॥१२॥

पाण्डवाग्निरयं लोके सर्वशस्त्रमयो महान् ।
भर्त्ता गोप्ताथ भूतानां राजा पुरुषविग्रहः ॥१३॥

हे पाण्डव ! लोक में यह शस्त्रों की बड़ी भीषण आग है और प्राणियों का रक्षक और भर्ता राजा, मनुष्य शरीर में देव है ॥१३॥

दिष्टद्वारो लभेत् द्रष्टं रहस्येषु न विश्वसेत् ।
तदेवासनमन्विच्छेद्यत्र नाभिषजेत् परः ॥१४॥

जब द्वारपाल आदि की आज्ञा हो जावे, तब राजा के पास जावे और मैं गुप्त बातों में राजा को मन्त्रणा देने वाला हूं-ऐसा कभी अभिमान न रखे। राजा के पास जाकर ऐसे आसन पर बैठे, जो दूसरे के बैठने का न हो ॥१४॥

यो न यानं न पर्य्यङ्कं न पीठं न गज रथम् ।
आरोहेत सम्मतोऽस्मीति स राजवसतिं वसेत् ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो मनुष्य, यह जानकर कि मैं राजा का सम्मानित व्यक्ति हूं, राजा के यान, (सवारी) पलङ्ग आसन (कुर्सी) हाथी, रथ पर न चढ़े-वह ही राजकुल में वास कर सकता है ॥१५

अथ यत्रैनमासीनं शङ्केरन् दुष्टचारिणः ।
न तत्रोपविशेद्यो वै स राजवसतिं वसेत् ॥१६॥

जिस स्थान पर बैठने से दुष्ट मनुष्य, छेड़ छाड़ न कर सके-ऐसे स्थान पर बैठने वाला आदमी ही राजस्थान में रह सकता है ॥१६॥

न चानुशिष्याद्राजानमपृच्छन्तं कदाचन ।
तूष्णीञ्चैनमुपासीत काले समभिपूजयेत् ॥१७॥

विना पूछे राजा को कभी कोई शिक्षा न दे । इसके पास तो सदा चुपचाप बैठा रहे और समय पर राजा का आदर प्रकट करे ॥१७॥

असूयन्ति हि राजानो जनाननृतवादिनः ।
तथैव चावमन्यन्ते मन्त्रिणं वादिनं मृषा ॥१८॥

झूठ बोलने वाले मनुष्य से राजा लोग, बड़े चिड़ते हैं। जो मन्त्री भी मिथ्या बोल देता है, तो राजा उसका भी अपमान कर बैठता है ॥१८॥

नैषां दारेषु कुर्वीत मैत्रीं प्राज्ञः कदाचन ।
अन्तःपुरचरा ये च द्वेष्टियान हिताश्च ये ॥१९॥

बुद्धिमान मनुष्य, राज-महिलाओं से कभी मैत्री न करे। इसी तरह राजा के रनिवास में जाने वाले मनुष्यों तथा राजा के द्वेषी और अहितकारियों से कभी मेल न करे ॥१९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदिते चास्य कुर्वीत कार्य्याणि सुलघून्यपि ।
एवं विचरतो राज्ञो न क्षतिर्जायते क्वचित् ॥२०॥

जब कोई काम रनिवास में आ भी पड़े तो राजा की जानकारी में झटपट करके चला आवे । इस प्रकार राजा के पास विचार-पूर्वक रहने से मनुष्य को कभी क्षति (जोखम) उठानी नहीं पड़ती है ॥२०॥

गच्छन्नपि परां भूमिमपृष्टो ह्यनियोजितः ।
जात्यन्ध इव मन्येत मर्य्यादामनुचिन्तयन् ॥२१॥

जो मनुष्य, नित्य उच्च आसन भी पाता रहता है, वह भी राजा के बिना पूछे या बिना निर्दिष्ट किए कभी उच्च आसन पर न बैठे । राजा के समीप रहने की इस मर्यादा का विचार करके इन उच्च आसनों को जन्म के अन्धे की तरह देखे ॥२१॥

न हि पुत्रं न नप्तारं न भ्रातरमरिन्दमाः ।
समतिक्रान्तमर्य्यादं पूजयन्ति नराधिपाः ॥२२॥

हे अरिमर्दन ! राजा-लोग, राज नियमों के उल्लङ्घन पर पुत्र, पौत्र, भाई तथा अन्य किसी भी बान्धव को आदर नहीं देते हैं ॥२२॥

यत्नाच्चोपचरेदेनमग्निव ।
अनृतेनोपचीर्णो हि हन्यादेव न संशयः ॥२३॥

ज्ञानी मनुष्य, राजा की अग्नि और देव की तरह सेवा करे । यदि राजा की छल से सेवा की जावेगी, तो राजा मार बैठेगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यद्भर्त्तानुयुञ्जीत तत्तदेवानुवर्त्तयेत् ।
प्रमादमवलेपञ्च कोपञ्च परिवर्जयेत् ॥२४॥

स्वामी जिस २ बात के विषय में पूछे-उस २ का ही उत्तर देवे। राजा के पास प्रमाद, घमण्ड और क्रोध का परित्याग कर दे ॥२४॥

समर्थनासु सर्वासु हितञ्च प्रियमेव च ।
संवर्णयेत्तदेवास्य प्रियादपि हितं वदेत् ॥२५॥

कार्य अकार्य की परीक्षा के समय हितकारी और प्रिय मार्ग का ही कथन करे। यदि कोई समय ऐसा आन पड़े-जिसमें प्रिय और हितकारी इन दोनों गुणों की एकता न हो सके, तो प्रिय को छोड़कर हितकारी मार्ग का ही कथन करना चाहिए ॥२५॥

अनुकूलो भवेच्चास्य सर्वार्थेषु कथासु च ।
अप्रियं चाहितं यत्स्यात्तदस्मै नानुवर्णयेत् ॥२६॥

राजा के सारे कार्यों और बातचीतों में राजा के अनुकूल रहे जो राजा को अप्रिय और अहितकारी हों, उनका उसके आगे कथन न करे ॥२६॥

नाहमस्य प्रियोऽस्मीति मत्वा सेवेत पण्डितः ।
अप्रमत्तश्च सततं हितं कुर्यात् पियञ्च यत् ॥२७॥

पण्डित मनुष्य, यह समझकर राजा का सेवन करे, कि मैं इसका प्रिय नहीं हूँ तथा राजा के हित और प्रिय कार्य करने में सदा सावधान रहे ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नास्यानिष्टानि सेवेत नाहितैः सह संवसेत् ।
स्वस्थानान्न विकम्पेत स राजवसतिं वसेत् ॥२८॥

जो मनुष्य, राजा को अप्रिय हो, उनके पास न रहे और जो राजा के अहितकारी हैं, उनका साथ न करे। राजा ने सेवक को जिस स्थान पर लगा दिया, उससे जो नहीं डिगता है, वही राजा के पास निवास कर सकता है ॥२८॥

दक्षिणं वाथ वामं वा पार्श्वमासीत पण्डितः ।
रक्षिणां ह्यात्तशस्त्राणां स्थानं पश्चाद्विधीयते ॥२९॥

पण्डित मनुष्य, राजा के दायें या बायें किसी ओर चलता रहे और जो शस्त्र लेकर राजा की रक्षा करते हैं, उनका स्थान सदा पीछे २ चलना या खड़े होना है ॥२९॥

नित्यं हि प्रतिषिद्धन्तु पुरस्तादासनं मतम् ।
न च सन्दर्शने किञ्चित् प्रवृत्तमपि संजपेत् ॥३०॥

राजा की दृष्टि के सम्मुख आसन पर कभी न बैठे, इस तरह बैठने का बड़ा निषेध है। राजा वेतन, उपहार आदि दे, तो भी विना बुलाए कभी आगे २ न होवे ॥३०॥

अपि ह्येतद्दरिद्राणां व्यलीकं स्थानमुत्तमम् ।
न मृषाभिहितं राज्ञां मनुष्येषु प्रकाशयेत् ॥३१॥

इस तरह का व्यवहार तो साधारण धनहीन मनुष्यों को भी रुचिकर प्रतीत नहीं हो सकता है। यदि राजा ने कोई अनुचित बात भी कह डाली हो, तो उसको अन्य मनुष्यों के सन्मुख प्रकाशित नहीं करनी चाहिए ॥३१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असूयन्ति हि राजानो नराननृतवादिनः ।
तथैव चावमन्यन्ते नरान् पण्डितमानिनः ॥ ३२॥

राजा लोग अनृतवादी मनुष्य से बड़ा द्वेष करते हैं और इसी तरह अपने आपको पण्डित मानने वाले पुरुष से घृणा करते हैं ॥३२॥

शूरोऽस्मीति न दृप्तः स्याद् बुद्धिमानिति वा पुनः ।
प्रियमेवाचरन् राज्ञः प्रियो भवति भोगवान् ॥ ३३ ॥

मैं शूरवीर या बुद्धिमान् हूं ऐसा समझ कर कभी गर्वीला न हो जावे, जो मनुष्य, राजा का प्रिय करता है, वही राजा का प्रिय और भोगों के प्राप्त करने वाला हो सकता है ॥३३॥

ऐश्वर्यं प्राप्य दुष्प्रापं प्रियं प्राप्य च राजतः ।
अप्रमत्तो भवेद्राज्ञः प्रियेषु च हितेषु च ॥ ३४ ॥

राजा से दुर्लभ और प्रिय ऐश्वर्य को पाकर राजा के प्रिय और हितकारी कार्य करने में कभी असावधानी न करे ॥३४॥

यस्य कोपो महाबाधः प्रसादश्च महाफलः ।
कस्तस्य मनसापीच्छेदनर्थं प्राज्ञसम्मतः ॥ ३५ ॥

जो मनुष्य बुद्धिमान है, वह कब ऐसे मनुष्य की मन से भी बुराई कर सकता है, जिसके क्रोध में तो महा विपत्ति और प्रसन्नता में महा-सुख की प्राप्ति है ॥३५॥

न चोष्ठौ न भुजौ जानू न च वाक्यं समाक्षिपेत् ।
सदा वातश्च वाचश्च ष्ठीवनश्चाचाचरेच्छनैः ॥३६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिमान मनुष्य, राजा के सामने ओष्ठ, भुजा, टांगे ऊंची नीचा न करे और न उच्च स्वर से भाषण करे। अधोवायु त्याग-भाषण और थूकना बड़े धीरे २ करना चाहिए ॥३६॥

हास्य वस्तुषु चाप्यस्य वर्त्तमानेषु केषुचित्।
नातिगाढं प्रहृष्येत न चाप्युन्मत्तवद्वसेत् ॥३७॥

राजा के हंसने की वस्तुओं के देखने पर भी कभी अधिक प्रसन्न न होवे या न हंसे और न कभी राजा के समीप उन्मत्त की तरह रहे ॥३७॥

न चातिधैर्य्येण चरेद् गुरुतां हि व्रजेत्तथा।
स्मितन्तु मृदुपूर्वेण दर्शयेदप्रमादजम ॥३८॥

किसी भी कार्य में अधिक धैर्यशाल (धीरे२ कामकरने वाला) न होवे और सदा गम्भीरता धारण किए रहे। बड़ी सावधानी से मुस्कराहट के साथ बड़े कोमल भाव से अपने भाव को प्रकट कर दे ॥३८॥

लाभे न हर्षयेद्यस्तु न व्यथेद्योऽवमानितः।
असंमूढश्च यो नित्यं स राजवसतिं वसेत् ॥३९

राजा से लाभ प्राप्त होने पर अधिक उत्सव आदि न करे और कभी झिड़की आदि से अपमान होने पर अपने को दुःखी न करे। इस प्रकार जो सेवा में असावधानी नहीं करता है, वही राजा के पास रह सकता है ॥३९॥

राजानां राजपुत्रं वा संवर्णयति यः सदा।
अमात्यः पण्डितो भूत्वा स चिरं तिष्ठते प्रियः ॥४०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो बुद्धिमान, राजा या राजपुत्र आदि की प्रशंसा करता है, वही राजा का प्रिय मन्त्री होकर बहुत काल तक अपने पद पर स्थित रह सकता है ॥४०॥

प्रगृहीतश्च योऽमात्यो निगृहीतश्च कारणैः ।
न निर्वदति राजानां लभते सम्पदं पुनः ॥४१॥

किसी भी कारण से राजा द्वारा दण्डित या निगृहीत (कैदी) होने पर भी जो मन्त्री राजा की निन्दा नहीं करता, वही ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकता है ॥४१॥

प्रत्यक्षश्च परोक्षश्च गुणवादी विचक्षणः ।
उपजीवी भवेद्राज्ञो विषये योऽपि वा भवेत् ॥४२॥

विद्वान् मनुष्य, सामने या पीछे राजा के गुणों का ही वर्णन करे। जो राजा के देश में बसे या जो राजा की वृत्ति खावे, उसको सदा इसी तरह रहना चाहिए ॥४२॥

अमात्यो हि बलाद्भोक्तुं राजनं प्रार्थयेत्तु यः ।
न स तिष्ठे च्चिरं स्थाने गच्छेच्च प्राणसंशयम् ॥४३॥

जो राजसेवक, राजा को बल-पूर्वक भोगने की इच्छा करे अर्थात् अपनी बुद्धि के बल से राज्यैश्वर्य को खींचता रहेगा, वह बहुत देर तक अपने पद पर नहीं रह सकता है और कोई आश्चर्य नहीं है, कि उसके प्राण तक संशय में पड़ जावे ॥४३॥

श्रेयः सदात्मनो दृष्ट्वा परं राज्ञा न संवदेत्।
विशेषयेन्न राजानं योग्यभूमिषु सर्वदा ॥४४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा से सदा अपना कल्याण होता हुआ देखकर भी राजा से अधिक बातचीत न करे और न योग्य मनुष्यों के सम्मुख राजा की अधिक प्रशंसा करे, क्योंकि राजा को उत्तम समझ कर कहीं तुम्हारे पद की प्राप्ति के लिए वे ही प्रयत्न न करने लग जावे ॥४४॥

अम्लानो बलवांञ्छूरश्छायेवानुगतः सदा ।
सत्यवादी मृदुर्दान्तः स राजवसतिं वसेत् ॥४५॥

बलवान और शूरवीर कभी मलिन न रह कर राजा के साथ छाया की तरह रहे। जो मनुष्य, सत्यवादी, कोमल प्रकृति और उदार है, वही राजा के पास रह सकता है ॥४५॥

अन्यस्मिन् प्रेष्यमाणे तु पुरस्ताद्यः समुत्पतेत् ।
अहं किं करवाणीति स राजवसतिं वसेत् ॥४६॥

किसी कठिन-कार्य में अन्य के लगाने पर आप उसमें सबसे प्रथम खड़ा हो जावे और कहे कि मुझे क्या आज्ञा है, मैं इसमें क्या कार्य करूं, वही राजा के पास रह सकता है ॥४६॥

आन्तरे चैव बाह्ये च राज्ञा यश्चैव सर्वदा ।
आदिष्टो नैव कम्पेत स राजवसतिं वसेत्॥४७॥

राजा के आज्ञा देने पर राष्ट्र के बाहिर के या भीतर के जितने कठिन कार्य है, उनमें प्रकम्पित न हो, वही राजा के पास रह सकता है ॥४७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो वै गृहेभ्यः प्रवसन् प्रियाणां नानुसंस्मरेत्।
दुःखेन सुखमन्विच्छेत् स राजवसतिं वसेत् ॥४८॥

जिसको घर से बहुत दूर डाल दिया है, परन्तु वह फिर भी अपने प्रियों का स्मरण नहीं करता है और दुःख को भी सुख मानता है। वही राजा के ऐश्वर्य को पा सकता है ॥४८॥

समवेशं न कुर्वीत नोच्चैः सन्निहितो हसेत्।
न मन्त्रं बहुधा कुर्य्यादेवं राज्ञा प्रियो भवेत् ॥४९॥

जो बुद्धिमान, राजाके बराबरी का वेष न बनावे और न पास में कभी जोरसे हंसे एवं राजा से न अधिक मन्त्रणा (सलाह मशविरा) करे—वही राजा का प्रिय हो सकता है ॥४९॥

न कर्मणि नियुक्तः सन् धनं किञ्चिदुपस्पृशेत्।
प्राप्नोति हि हरन् द्रव्यं बन्धनं यदि वा वधम् ॥५०

किसी काम पर लगाया हुआ—सेवक, राजा के धन को छूवे भी नहीं। जो राजा के द्रव्य का अपहरण करेगा—वह बन्धन या वध का दण्ड पावेगा—यह निश्चय ही है ॥५०॥

यानं वस्त्रमलङ्कारं यच्चान्यत् सम्प्रयच्छति।
तदेव धारयेन्नित्यमेवं प्रियतरो भवेत् ॥५१॥

राजा ने जो यान (वाहन) वस्त्र, अलङ्कार तथा अन्य, उपहार (इनाम) दिया हो—उसको धारण करके जो राजसभा में जाता है, वही राजा का प्रिय होता है ॥५१॥

एवं संयम्य चित्तानि यत्नतः पाण्डुनन्दनाः।
सम्वत्सरमिमं तातास्तथाशीला बुभूषवः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे पाण्डु-नन्दनो ! इस प्रकार बड़े प्रयत्न से अपने मन का दमन करके इस प्रकार से आचरण करते हुए इस तेरहवें वर्षको भविष्योन्नति की इच्छा से व्यतीत कर दो। इसके अनन्तर अपने देश में पहुंच कर जो इच्छा हो—वही करना ॥५२॥

युधिष्ठिर उवाच—

अनुशिष्टाः स्म भद्रन्ते नैतद्वक्तास्ति कश्चन ।
कुन्तीमृते मातरं नो विदुरं वा महामतिम् ॥५३॥

युधिष्ठिर कहने लगे—हे ब्रह्मन् आपने हम को बड़ी उत्तम शिक्षा दी है। इस लोक-नीति का वक्ता हमारी माता कुन्ती और महामति विदुर को छोड़ कर अन्य कोई नहीं हो सकता है ।५३।

यदेवानन्तरं कार्य्यं तद्भवान् कर्त्तुमर्हति ।
तारणायास्य दुःखस्य प्रस्थानाय जयाय च ॥५४॥

इसके अनन्तर जो कुछ हमको इस विपत्ति से पार करने जाने या विजय के लिए आप लोग कर सकते हो-वह करो ॥५४॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तस्ततो राज्ञा धौम्योऽथ द्विजसत्तमः ।
अकराद्विधिवत्सर्वं प्रस्थाने यद्विधीयते ॥५५॥

वैशम्पायन बोले हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर के इतना कहने पर द्विज-श्रेष्ठ धौम्य ने प्रस्थान समय के जो मङ्गल कार्य करने थे, वे सब विधि—पूर्वक कर दिए ॥५५॥

तेषां समिध्य तानग्नीन्मन्त्रवच्च जुहाव सः ।
समृद्धिवृद्धिलाभाय पृथिवीविजयाय च ॥५६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोहित ने इनको ऐश्वर्य लाभ करने और पृथ्वी की विजय के लिए अग्नि-प्रज्वलित कराके उसमें इनसे मन्त्रों द्वारा हवन कराया॥५६॥

अग्नीन् प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाश्च तपोधनान् ।
याज्ञसेनीं पुरस्कृत्य पडेवाथ प्रयत्रजुः ॥५७॥

पांचों पाण्डव, अग्नि और तपोधन ब्राह्मणों की परिक्रमा करके तथा छठी द्रौपदी को साथ लेकर आगे चल दिए ॥५७॥

गतेषु तेषु वीरेषु धौम्योऽथ जपताम्वरः ।
अग्निहोत्राण्युपादाय पाञ्चालानभ्यगच्छत ॥५८॥

इन वीरों के चले जाने पर जपशील, धौम्य, अग्नि-होत्रों के पात्रों को लेकर पाञ्चाल देश को चल दिया ॥५८॥

इन्द्रसेनादयश्चैव यथोक्ताः प्राप्य यादवान् ।
रथानश्वांश्च रक्षन्तः सुखमूषुः सुसंवृताः ॥५९॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि धौम्योपदेशे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

इन्द्रसेन आदि सारथि भी, पूर्वोक्त कथन के अनुसार यादवों के पास पहुँचे और ये रथ तथा अश्वों की रक्षा करते हुए द्वारका में सुख और सावधानी से रहने लगे ॥५९॥

इति श्री महाभारत विराटपर्वान्तर्गत पाण्डव-प्रवेश-पर्व में धौम्य के उपदेश का चौथा अध्याय पूरा हुआ ।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाचवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ते वीरा बद्धनिस्त्रिंशास्ततायुधकलापिनः ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणाः कालिन्दीमभितो ययुः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इन वीर पाण्डवों ने अपनी बग़ल में तलवार बांध ली और शस्त्र-समूह धारण कर लिया इन्होंने गोधा चर्म के अंगुलित्राण धारण किए और यमुना की ओर यात्रा की ॥१॥

ततस्ते दक्षिणं तीरमन्वगच्छन् पदातयः ।
निवृत्ता वनवासाद्वै स्वराष्ट्रं प्रेप्सवस्तदा ॥२॥

ये द्रौपदी सहित सारे पाण्डव, पैदल ही प्रथम यमुना के दायें तीर पर गए। ये वनवास से लौट कर अपने राष्ट्र के प्राप्त करने की इच्छा कर रहे थे ॥२॥

वसन्तो गिरिदुर्गेषु वनदुर्गेषु धन्विनः ।
विध्यन्तो मृगजातानि महेष्वासा महाबलाः ॥३॥

ये महाधनुर्धर, महाबली पाण्डव, दुर्गम पर्वत और वनों में मृगों को मार २ निर्वाह करते हुए चले जा रहे थे। इनमें प्रत्येक के पास धनुष था ॥३॥

उत्तरेण दशार्णांस्ते पाञ्चालान् दक्षिणेन च ।
अन्तरेण यकृल्लोमाञ्छूरसेनांश्च पाण्डवाः ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुब्धा ब्रुवाणा मत्स्यस्य विषयं प्राविशन् वनात् ।
धन्विनो बद्धनिस्त्रिंशा विवर्णाः श्मश्रुधारिणः ॥५॥

ये पाण्डव, वन से दशार्ण देश के उत्तर, पाञ्चाल के दक्षिण और यकृल्लोम तथा शूरसेन देशों के मध्य में स्थित मत्स्य देश में प्रविष्ट हुए। जो कोई इनसे पूछता था, तो उससे कह देते थे, कि हम तो मत्स्यराज के सेवक व्याध (शिकारी) हैं। इन्होंने धनुष धारण कर रखे थे और खड्ग बांध रखे थे। इनके बाल बढ़ रहे थे और रङ्ग फीके पड़ रहे थे ॥५॥

ततो जनपदं प्राप्य कृष्णा राजानमब्रवीत् ।
पश्यैकपद्यो दृश्यन्ते क्षेत्राणि विविधानि च ॥६॥

जब ये मत्स्य-देश में पहुंच गए, तो द्रौपदी राजा से बोली—हे राजन्! देखो? कैसी सुन्दर पगडण्डी है और अनेक तरह के क्षेत्र (खेत) खड़े हैं ॥६॥

व्यक्तं दूरे विराटस्य राजधानी भविष्यति ।
वसामेहापरां रात्रिं बलवान् मे परिश्रमः ॥७॥

अभी विराटराज की राजधानी दूर है—यह स्पष्ट ज्ञात हो रहा है। एक रात तक यहीं निवास करना चाहती हूं, क्योंकि मुझे थकान बहुत हो रही है ॥७॥

युधिष्ठिर उवाच—

धनञ्जय समुद्यम्य पाञ्चालीं वह भारत ।
राजधान्यां निवत्स्यामो विमुक्ताश्च वनादितः ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर ने कहा—हे भारत! धनञ्जय! तुम पाञ्चाली द्रौपदी को कन्धों पर उठाकर ले चलो। हम तो इस वन से निकलकर आज राजधानी में ही निवास करना चाहते हैं ॥८॥

वैशम्पायन उवाच—

तामादायार्जुनस्तूर्णं द्रौपदीं गजराडिव।
संप्राप्य नगराभ्याससमवातारयदर्जुनः ॥९॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! अर्जुन ने हाथी की तरह द्रौपदी को झटपट उठा लिया और नगर के पास पहुंचकर उसको अपने कन्धों से नीचे उतार दिया ॥९॥

स राजधानीं संप्राप्य कौन्तेयोऽर्जुनमब्रवीत्।
क्वायुधानि समासज्य प्रवेक्ष्यामः पुरं वयम् ॥१०॥

जब ये राजधानी में पहुंच गए, तो राजा युधिष्ठिर अर्जुन से कहने लगे, कि अब अस्त्रों को कहां रख कर पुर में प्रवेश करें १०

सायुधाश्च प्रवेक्ष्यामो वयं तात पुरं यदि।
समुद्वेगं जनस्यास्य करिष्याम न संशयः ॥११॥

हे तात! यदि शस्त्र धारण किए हुए ही राजधानी में प्रवेश करेंगे, तो इन सारे मनुष्यों में एक तरह से हलचल सी मच जावेगी ॥११॥

गाण्डीवञ्च महद्गाढं लोके च विदितं नृणाम्।
तच्चेदायुधमादाय गच्छामो नगरं वयम् ॥१२॥
क्षिप्रमस्मान् विजानीयुर्मनुष्या नात्र संशयः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह गाण्डीव धनुष तो बडा दृढ है और लोगों में प्रसिद्ध है - यदि इस शस्त्र को लेकर हमने पुर में प्रवेश किया, तो लोग हमें झट पहिचान लेंगे-इसमें संशय नहीं है ॥ १२ ॥

ततो द्वादश वर्षाणि प्रवेष्टव्यं वने पुनः ।
एकस्मिन्नपि विज्ञाते प्रतिज्ञातं हि नस्तथा ॥१३॥

इस तरह तो हमको फिर बारह वर्ष वन में काटने होंगे। हमने तो यह प्रतिज्ञा कर ली है, कि हमको एक भी पुरुष तेरहवें वर्ष में नहीं जान सकेगा ॥ १३ ॥

अर्जुन उवाच—

इयं कूटे मनुष्येन्द्र गहना महती शमी ।
भीमशाखा दुरारोहा श्मशानस्य समीपतः ॥१४॥

अर्जुन ने कहा- हे राजेन्द्र ! इस ऊंचे स्थान पर यह शमी का महान् गहन वृक्ष है। इसकी शाखा भी भीषण है और श्मशान के समीप होने से इसमें कोई चढ़ भी नहीं सकता है ॥ १४ ॥

न चापि विद्यते कश्चित् मनुष्य इति मे मतिः ।
योऽस्मान्विदधतो द्रष्टा भवेच्छस्त्राणि पाण्डवाः १५

हे पाण्डवो ! इस समय तो यहां कोई मनुष्यभी दिखाई नहीं देता है, जो हमको यहां शस्त्रों को रखता हुआ देख ले ॥१५॥

उत्पथे हि वने जाता मृगाव्यालनिषेविते ।
समीपे च श्मशानस्य गहनस्य विशेषतः ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह शमीवृक्ष वनमें मार्ग छोडकर खडा हुआहै और इसकेपास वनैले जीव जन्तु सर्प आदि रहते हैं इसके सिवा यह श्मशान के समीप हैं, जिस से और भी विशेष गहन होगई है ॥१६॥

समाधायायुधं शम्यां गच्छामो नगरं प्रति ।
एवमेन यथायोगं विहरिष्याम भारत ॥१७॥

अब हम शस्त्रों को इस शमी वृक्ष में रख कर नगर में चले। हे भारत! इस तरह हम अपनी इच्छानुसार इस नगरी में घूम सकेगें ॥१७॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा स राजानं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
प्रचक्रमे निधानाय शस्त्राणां भरतर्षभ ॥१८॥

वैशम्पायन बोले—हेभरतर्षभ! राजा युधिष्ठिर से इतना कह कर उनके संकेत से अर्जुन इस शमी में शस्त्रों को रखने की चेष्टा करने लगा ॥ १८ ॥

येन देवान्मनुष्याश्च सर्वांश्चैकरथोऽजयत् ।
स्फीतान् जनपदांश्चान्यानजयत् कुरुपुङ्गवः ॥१९॥
तदुदारं महाघोषं सपत्नबलसूदनम् ।
अपज्यमकरोत् पार्थो गाण्डीवं सुभयङ्करम् ॥२०॥

जिस गाण्डीव धनुष से सारे देव और मनुष्यों को अकेले कु-वंश-श्रेष्ठ अर्जुन ने जीत लिया तथा अनेक विशाल देशों को जीता, उस महान् शब्दकारी शत्रु की सेना के नाशक भयंकर विशाल गाण्डीव धनुष को अर्जुन ने डोरी से उतार दिया ॥१९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येन वीरः कुरुक्षेत्रमभ्यरक्षत् परन्तपः ।
अमुञ्चद्धनुषस्तस्य ज्यामक्षय्यां युधिष्ठिरः ॥२१॥

जिस धनुष से शत्रुविजयी वीर युधिष्ठिर ने कुरुक्षेत्र की रक्षा की, उसी अपने धनुष की राजा युधिष्ठिर ने अक्षय डोरी को खोल दिया ॥ १॥

पाञ्चालान् येन संग्रामे भीमसेनोऽजयत् प्रभुः ।
प्रत्यषेधद्बहूनेकः सपत्नांश्चैव दिग्जये ॥२२॥
निशम्य यस्य विस्फारं व्यद्रवन्त रणात् परे ।
पर्वतस्येव दीर्णस्य विस्फोटमशनेरिव ॥२३॥
सैन्धवं येन राजानं पर्य्यामृषत चानघः ।
ज्यापाशं धनुषस्तस्य भीमसेनोऽवतारयत् ॥२४॥

भीमसेन ने जिस अपने धनुष से युद्ध में पाञ्चाल देश को जीता तथा दिग्विजय में बहुत से शत्रुओं को मार भगाया। जिस धनुष की टंकार सुन कर रण से शत्रु भाग निकलते थे, फटते हुए पर्वत या कड़कती हुई बिजली की तरह जिस का नाद होता था, महाविजयी भीम ने जिससे जयद्रथ को छिन्न भिन्न किया, उसी अपने धनुष की डोरी को भीम ने नीचे उतार दिया

अजयत्पश्चिमामाशां धनुषा येन पाण्डवः ।
माद्रीपुत्रो महाबाहुस्ताम्रास्यो मितभाषिता ॥२५॥
तस्य मौर्वीमपाकर्षच्छूरः संक्रन्दनो युधि ।
कुले नास्ति समो रूपे यस्येति नकुलः स्मृतः ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाबाहु, माद्रीपुत्र पाण्डव, नकुल ने जिस धनुष से पश्चिम दिशा को जीता, जो रक्त चमकीला मुख धारी और अल्प बोलने वाला है, उस शूरवीर युद्ध-दुर्मद नकुल ने भी अपने उसी धनुष की डोरी को नीचे खैंच लिया। उस नकुल के समान रूप में अन्य कोई नहीं था, इसीसे इसे नकुल कहते थे ॥२५-२६॥

दक्षिणां दक्षिणाचारो दिशं येनाजयत् प्रभुः ।
अपज्यमकरोद्वीरः सहदेवस्तदायुधम् ॥२७॥

उत्तम आचार व्यवहार वाले, वीर सहदेव ने जिस धनुष से दक्षिण दिशा को जीता, उसने भी अपने उस धनुष की डोरी को ढीला कर दिया ॥२७॥

खड्गांश्च दीप्तान् दीर्घांश्च कलापांश्च महाधनान् ।
विपाठान् क्षुरधारांश्च धनुर्भिर्निदधुः सह ॥२८॥

इसके सिवा चमकीले बड़े २ खड्गों तथा बहुत मूल्य से बनने वाले, कलाप संज्ञक शस्त्र, क्षुर की तरह तीक्ष्ण, उत्तम २ बाणों को भी इन धनुषों के साथ पाण्डवों ने रख दिया ॥२८॥

वैशम्पायन उवाच—

अथान्वाशासन्नकुलं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
आरुह्य मां शमीं वीर धनुंष्येतानि निक्षिप ॥२९॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! अब कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने नकुल को आज्ञा दी-हे वीर ! तुम इस शमी वृक्ष पर चढ़ जाओ और इन धनुषों को रख आओ ॥२९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तामुपारुह्य नकुलो धनूंषि निदधे स्वयम् ।
यानि तस्यावकाशानि दिव्यरूपाण्यमन्यत ॥३०॥

यत्र चापश्यत स वै तिरोवर्षाणि वर्षति ।
तत्र तानि दृढैः पाशैः सुगाढं पर्य्यबन्धत ॥३१॥

नकुल, इस शमी वृक्ष पर चढ़ गया और स्वयं धनुषों को रखने लगा। इस प्राचीन शमी में जो उत्तम ढंग से प्रकृति के बनाए कोटर थे, उनमें तथा मेघ के वर्षा के समय वर्षा से बचे रहने वाले स्थानों में दृढ़ रस्सी से नकुल ने धनुषों को बांध दिया।

शरीरञ्च मृतस्यैकं समबध्नन्त पाण्डवाः ।
विवर्जयिष्यन्ति नरा दूरादेव शमीमिमाम् ॥३२॥

आबद्धं शवमन्वेति गन्धमाघ्राय पूतिकम् ।
अशीतिशतवर्षेयं माता न इति वादिनः ॥३३॥

पाण्डवों ने एक मृतक शरीर उठा कर इस शमीवृक्ष पर लटका दिया। जिस से मनुष्य इस बांधे हुए शव की उग्र दुर्गन्ध को सूंघ कर दूरसे ही इस शमी के पास न आवें। इन्हों ने अब कहा-यह हमारी एक सौ अस्सी वर्ष की माता है ॥३२-३३॥

कुलधर्मोऽयमस्माकं पूर्वैराचरितोऽपि वा ।
समासज्याथ वृक्षेऽस्मिन्निति वै व्याहरन्ति ते ॥३४

यह हमारा कुल धर्म है और पूर्वज भी, इसी तरह इस मृतक को वृक्ष से लटकाते आए हैं। इस तरह इस मृतक को वृक्ष से लटका कर वे कह रहे थे ॥३४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगोपालाविपालेभ्य आचक्षाणाः परन्तपाः ।
आजग्मुर्नगराभ्यासं पार्थाः शत्रुनिबर्हणाः॥३५॥

गौ और भेड़ बकरी पालने वाले ग्वालों से लेकर प्रत्येक मनुष्य से ऐसा कह कर ये शत्रु-विजयी पाण्डव, नगर के पास आए ॥३५॥

जयो जयन्तो विजयो जयत्सेना जयद्बलः ।
इति गुह्यानि नामानि चक्रे तेषां युधिष्ठिरः॥३६॥

राजा युधिष्ठिर ने जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल, ये अपने गुप्त नाम रख लिए ॥३६॥

ततो यथाप्रतिज्ञाभिः प्राविशन्नगरं महत् ।
अज्ञातचर्य्यां वत्स्यन्तो राष्ट्रे वर्षं त्रयोदशम्॥३७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
अस्त्रसंस्थापने पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अब इन्हों ने अपनी २ प्रतिज्ञा के अनुसार इस महान् नगर में प्रवेश किया। ये इस राष्ट्र में अज्ञात-वास का तेरहवां वर्ष व्यतीत करना चाहते थे ॥३७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत पाण्डव-प्रवेशपर्व में अस्त्र संस्थापन का पांचवां अध्याय पूरा हुआ।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठा अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

विराटनगरं रम्यं गच्छमानो युधिष्ठिरः ।
अस्तुवन्मनसा देवीं दुर्गां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर मनोहर विराट नगर में प्रवेश करने के समय त्रिभुवनेश्वरी दुर्गा देवी की मन से स्तुति करने लगे ॥१॥

यशोदागर्भसम्भूतां नारायणवरप्रियाम् ।
नन्दगोपकुले जातां मङ्गल्यां कुलवर्द्धनीम् ॥२॥
कंसविद्रावणकरीमसुराणां क्षयङ्करीम् ।
शिलातटविनिक्षिप्तामाकाशं प्रति गामिनीम् ॥३॥
वासुदेवस्य भगिनीं दिव्यमाल्यविभूषिताम् ।
दिव्यांम्बररधरां देवीं खड्गखेटकधारिणीम् ॥४॥
भारावतरणे पुण्ये ये स्मरन्ति सदा शिवाम् ।
तान् वै तारयते पापात् पङ्के गामिव दुर्बलाम् ॥५॥

जो मनुष्य, यशोदा के गर्भ से उत्पन्न नारायण की प्रियतम नन्दगोपकुल में उत्पन्न, मङ्गल-कारिणी, कुल के बढ़ाने वाली, कंस नाशिनी, असुर-विध्वंसनी, शिला तट पर पटकी हुई, आकाश को उड़ जाने वाली, श्रीकृष्ण की भगिनी, दिव्य-माला से विभूषित, दिव्य वस्त्र पहने हुए, खड्ग और खेटक (ढाल) धारण करने वाली, कल्याण-कारिणी देवी का अच्छी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपत्ति के नाश करने के लिए स्मरण करते हैं, उनका वह विपत्ति से इस तरह उद्धार कर देती है, जैसे कोई दुर्बल गाय को कीचड़ से निकाल लेता है ॥२-५॥

स्तोतुं प्रचक्रमे भूयो विविधैः स्तोत्रसम्भवैः ।
आमन्त्र्य दर्शनाकांक्षी राजा देवीं सहानुजः॥६॥

अब अपने छोटे भाइयों के साथ अनेक स्तुतियों से देवी के दर्शनों की आकांक्षा से देवी को सम्बोधित करने राजा युधिष्ठिर स्तुति करने लगे ॥६॥

नमोऽस्तु वरदे कृष्णे कुमारिब्रह्मचारिणि ।
बालार्कसदृशाकारे पूर्णचन्द्रनिभानने ॥७॥
चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रे पीनश्रोणिपयोधरे ।
मयूरपिच्छवलये केयूराङ्गदधारिणि ॥८॥

हे वर देने वाली, कृष्णे, कुमारि, ब्रह्मचारिणी, बालसूर्य के सदृश आकार धारिणी, पूर्ण-चन्द्रमा के सदृश मुखवाली, चतुर्भुजे! चन्द्रमुखी, पुष्ट नितम्ब और स्तन धारिणी, मयूर पांखों के सदृश नीलमणि से युक्त, कङ्कण, (कड़े) केयूर और अङ्गद (बाजू बन्द) धारण करने वाली, तुमको नमस्कार है ॥७-८॥

भासि देवि यथा पद्मा नारायणपरिग्रहः ।
स्वरूपं ब्रह्मचर्य्यञ्च विशदं तव खेचरि ॥९॥

हे देवि ! तुम विष्णुकान्ता लक्ष्मी के सदृश देदीप्यमान हो। हे आकाश-गामिनि ! तुम्हारा स्वरूप और ब्रह्मचर्य बड़ा विशद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णच्छविसमाकृष्णा सङ्कर्षणसमानना ।
बिभ्रती विपुलौ बाहू शक्रध्वजसमुच्छ्रयौ ॥१०॥

तुम्हारी श्रीकृष्ण के समान छवि और बलराम के समान मुख है। इन्द्र की ध्वजा के समान ऊंची विशाल भुजाओं के धारण करने वाली हो ॥१०॥

पात्री च पङ्कजी घण्टी स्त्री विशुद्धा च या भुवि ।
पाशन्धनुर्महाचक्रं विविधान्यायुधानि च ॥११॥
कुण्डलाभ्यां सुपूर्णाभ्यां कर्णाभ्याञ्च विभूषिता ।
चन्द्रविस्पर्द्धिना देवि मुखेन त्वं विराजसे ॥१२॥

तुम्हारी भुजाएं, पानपात्र, कमल, घण्टा, पाश, धनु, महाचक्र तथा अनेक आयुधों से युक्त है। तुम पृथिवी पर सबसे अधिक विशुद्ध स्त्री हो। कुण्डलों से परिपूर्ण कर्णों से विभूषित हो। हे देवि! तुम चन्द्रमा से स्पर्धा रखने वाले मुख से विराजित हो रही हो ॥११-१२॥

मुकुटेन विचित्रेण केशबन्धेन शोभिना ।
भुजङ्गाभोगवासेन श्रोणिसूत्रेण राजता ॥१३॥
विभ्राजसे चाबद्धेन भोगेनेवेह मन्दरः ।
ध्वजेन शिखिपिच्छानामुच्छ्रितेन विराजसे ॥१४॥

हे देवि! तुम विचित्र मुकुट, सुशोभित केशबन्ध, सर्प के शरीर के आकार वाले, चमकते हुए, बंधे हुए नितम्ब के वस्त्र से देदीप्यमान हो रही हो, हे देवि! तुम इस वस्त्र से वासुकि नाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से लिपटे हुए, मन्दर के तुल्य सुशोभित हो और मोर-पंख की बनी हुई ऊंची ध्वजा से देदीप्यमान हो ॥१३-१४॥

कौमारं व्रतमास्थाय त्रिदिवं पावितं त्वया ।
तेन त्वं स्तूयसे देवि त्रिदशैः पूज्यसेऽपि च॥१५॥

हे देवि ! तुमने ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण करके स्वर्ग को भी पवित्र कर दिया है, इसी कारण से देवता तेरी स्तुति और पूजा करते रहे हैं ॥१५॥

त्रैलोक्यरक्षणार्थाय महिषासुरनाशिनि ।
प्रसन्ना मे सुरश्रेष्ठे दयां कुरु शिवा भव ॥१६॥

हे देवों में श्रेष्ठ ! देवि ! तुमने त्रिलोकी की रक्षा के लिए महिषासुर का वध किया है । हे मातेश्वरी ! तुम प्रसन्न होकर मुझ पर दया करो और मेरी कल्याण-कारिणी हो जाओ ॥१६॥

जया त्वं विजया चैव संग्रामे च जयप्रदा ।
ममापि विजयं देहि वरदा त्वञ्च साम्प्रतम् ॥१७॥

हे देवि ! तुम ही जया, विजया और संग्राम में विजय देने वाली हो । तुम वर देनेवाली हो—इससे मुझे भी अब विजय प्रदान करो ॥१७॥

विन्ध्ये चैव नगश्रेष्ठे तव स्थानं हि शाश्वतम् ।
कालि कालि महाकालि सीधुमांसपशुप्रिये ॥१८॥

हे त्रिलोक्येश्वरि ! तुम्हारा विन्ध्याचल श्रेष्ठ पर्वत पर तुम्हारा सनातन स्थान है । हे कालि ! कालि ! महाशक्ति ! तुम सदा मांस और पशु के भक्षण में प्रेम करने वाली हो ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतानुयात्रा भूतैस्त्वं वरदा कामचारिणि ।
भारावतारे ये च त्वां संस्मरिष्यन्ति मानवाः॥१९॥
प्रणमन्ति च ये त्वां हि प्रभाते तु नरा भुवि ।
न तेषां दुर्लभं किञ्चित् पुत्रतो धनतोऽपि वा ॥२०॥
दुर्गात्तारयसे दुर्गे तत् त्वं दुर्गा स्मृता जनैः ।

हे कामचारिणी ! जो प्राणी तेरे स्थानों की यात्रा करते हैं, उनको तू वर देने वाली है । जो मनुष्य अपने भार (विपत्ति) के उतारने के लिए तेरा स्मरण करते हैं और जो मनुष्य, भूमि पर प्रातःकाल प्रणाम करते हैं—उनको पुत्र या धनादि कुछ दुर्लभ नहीं है । हे दुर्गे ! तुम दुर्ग (कठिनाइयों) से पार करती हो, इसी से भक्त लोग, तुमको दुर्गा कहते हैं ॥१९-२०॥

कान्तारेष्ववसन्नानां मग्नानाञ्च महार्णवे ॥२१॥
दस्युभिर्वा निरुद्धानां त्वं गतिः परमा नृणाम् ।

महावन में घिरे हुए, महासमुद्र में डूबे हुए, चोर लुटेरों से रोके हुए, मनुष्यों की तू ही गति या रक्षा करने वाली है ॥२१॥

जलप्रतरणे चैव कान्तारेष्वटवीषु च ॥२२॥
ये स्मरन्ति महादेवि न च सीदन्ति ते नराः ।

हे महा-देवि ! जल के प्रतरण और वन तथा महावन में जो तुम्हारा स्मरण करते हैं, वे मनुष्य, कभी पीड़ा नही पाते हैं ।२२।

त्वं कीर्त्तिः श्रीर्धृतिः सिद्धिर्ह्रीर्विद्या सन्ततिर्मतिः ॥२३॥
सन्ध्या रात्रिः प्रभा निद्रा ज्योत्स्ना कान्तिः क्षमा दया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृणाञ्च बन्धनं मोहं पुत्रनाशं धनक्षयम् ।
व्याधिं मृत्युं भयञ्चैव पूजिता नाशयिष्यसि॥२४॥

हे देवि ! तुम ही कीर्ति, श्री, धृति, सिद्धि, लज्जा, विद्या, सन्तति, मति, सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, निद्रा, ज्योत्स्ना, कान्ति, क्षमा दया हो । जो मनुष्य, तुम्हारी पूजा करता है, तुम उसके बन्धन, मोह, पुत्रनाश, धन का क्षय, व्याधि, मृत्यु, भय आदि का विध्वंस कर देने वाली हो ॥२३-२४॥

सोऽहं राज्यात् परिभ्रष्टः शरणं त्वां प्रपन्नवान् ।
प्रणतश्च यथा मूर्ध्ना तव देवि सुरेश्वरि ॥२५॥

हे सुरेश्वरि ! मैं राज्य से भ्रष्ट हो रहा हूं—इससे तेरी शरण में आया हूं । हे देवि ! मैं मस्तक नवाकर तुझे प्रणाम करता हूं।

त्राहि मां पद्मपत्राक्षि सत्ये सत्या भवस्व नः ।
शरणं भव मे दुर्गे शरण्ये भक्तवत्सले ॥२६॥

हे पद्मपत्र के समान नेत्र वाली ! सत्ये ! तुम मेरे लिए भी सत्य वरदान के देने वाली हो । हे शरण्ये ! तुम मुझ शरणागत की रक्षा करने वाली हो जाओ, क्योंकि तुम तो भक्तों से प्रेम करने वाली हो ॥२६॥

एवं स्तुता हि सा देवी दर्शयामास पाण्डवम् ।
उपगम्य तु राजानमिदं वचनमब्रवीत् ॥२७॥

इस प्रकार राजा युधिष्ठिर के स्तुति करने पर देवि ने दर्शन दिए और यह राजा के पास आकर यह वचन कहने लगी ॥२७॥

देव्युवाच—
शृणु राजन्महाबाहो मदीयं वचनं प्रभो ।
भविष्यत्यचिरादेव संग्रामे विजयस्तव ॥२८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे महाबाहो ! प्रभो ! राजन् ! मेरे वचन सुनो। तेरा बहुत शीघ्र संग्राम में विजय होगा ॥२८॥

मम प्रसादान्निर्जित्य हत्वा कौरववाहिनीम् ।
राज्यं निष्कण्टकं कृत्वा भोक्ष्यसे मेदिनीं पुनः ॥२९॥

हे राजन् ! तुम मेरी कृपा से कौरवों की सेना का नाश करके थोड़े ही दिनों में शत्रुरहित सारी पृथ्वी का राज्य भोगोगे ॥२९॥

भ्रातृभिः सहितो राजन् प्रीतिं प्राप्स्यसि पुष्कलाम् ।
मत्प्रसादाच्च ते सौख्यमारोग्यञ्च भविष्यति ॥३०॥

हे राजन् ! तुम अपने भाइयों के साथ बड़े उत्तम आनन्द को प्राप्त करोगे। मेरे अनुग्रह से तुम्हें सुख और आरोग्य की प्राप्ति होगी ॥३०॥

ये च सङ्कीर्त्तयिष्यन्ति लोके विगतकल्मषाः ।
तेषां तुष्टा प्रदास्यामि राज्यमायुर्वपुः सुतम् ॥३१

जो पापों को परित्याग करके संसार में मेरा कीर्तन करेंगे-उनको मैं प्रसन्न होकर राज्य, आयु, सुन्दर शरीर और पुत्र देती हूं ॥३१॥

प्रवासे नगरे वापि संग्रामे शत्रुसङ्कटे ।
अटव्यां दुर्गकान्तारे सागरे गहने गिरौ ॥३२॥
ये स्मरिष्यन्ति मां राजन् यथाहं भवता स्मृता ।
न तेषा दुर्ल्लभं किञ्चिदस्मिंल्लोके भविष्यति ॥३३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! विदेश, नगर, संग्राम, शत्रु-सङ्कट, वन, महागहन वन, अगाध समुद्र, भीषण पर्वत में भी जो मेरा स्मरण करते हैं, जैसे आज आपने मेरा स्मरण किया है--उन मनुष्यों को जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥३२-३३॥

इदं स्तोत्रवरं भक्त्या शृणुयाद्वा पठेत वा ।
तस्य सर्वाणि कार्य्याणि सिद्धिं यास्यन्ति पाण्डवाः

हे पाण्डवो ! जो मनुष्य, इस श्रेष्ठ स्तोत्र को भक्ति से सुनता या पढ़ता है, उसके सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥३४॥

मत्प्रसादाच्च वः सर्वान् विराटनगरे स्थितान् ।
न प्रज्ञास्यन्ति कुरवो नरा वा तन्निवासिनः ॥३५॥

हे नर-श्रेष्ठो ! मेरे अनुग्रह से विराट नगर में स्थित, तुम सबको कौरव या विराट नगर निवासी जन नहीं पहचान सकेंगे।

इत्युक्त्वा वरदा देवी युधिष्ठिरमरिन्दमम् ।
रक्षां कृत्वा च पाण्डूना तत्रैवान्तरधीयत ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि श्रीदुर्गास्तवे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

वर देने वाली देवी, इस प्रकार राजा युधिष्ठिर से कह कर और उसकी रक्षा करके वहीं अलक्षित हो गई ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत पाण्डवप्रवेशपर्व में श्री दुर्गास्तव का छठा अध्याय समाप्त हुआ ।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो विराटं प्रथमं युधिष्ठिरोराजासभायामुपविष्टमाव्रजत् ।
वैदूर्य्यरूपान्प्रतिमुच्यकाञ्चनानक्षान्सकक्षे परिगृह्य वाससा
नराधिपो राष्ट्रपतिंयशस्विनं महायशाः कौरवंशवर्द्धनः
महानुभावोनरराजसत्कृतोदुरासदस्तीक्ष्णविषो यथोरगः॥
बलेन रूपेण नरर्षभो महानपूर्वरूपेण यथामरस्तथा ।
महाभ्रजालैरिव संवृतोरविर्यथानलोभस्मवृतश्च वीर्य्यवान्॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर हाथ में वैदूर्य मणि से जटित सुनहरी पासे लिए हुए और कक्ष (बगल) में कपड़े दबाए हुए महा-यशस्वी, कौरव वंश का बढ़ाने वाला, महानुभाव, राजाओं में पूज्य, तीक्ष्ण-विष-धारी, सर्प के सदृश दुर्गम, बल और रूप में अद्वितीय, नर-श्रेष्ठ, अद्भुत रूप से देव तुल्य, अनेक मेघ समूह से व्याप्त, सूर्य्य और भस्म से व्याप्त अग्नि के समान वीर्यवान् राजा युधिष्ठिर सबसे प्रथम सभा में बैठे हुए, यशस्वी, मत्स्यदेशाधिपति विराटराज के पास पहुंचा ॥१-३॥

तमापतन्तंप्रसमीक्ष्य पाण्डवंविराटराडिन्दुमिवाभ्रसंवृतम् ।
समागतं पूर्णशशिप्रभाननं महानुभावं न चिरेण दृष्टवान् ॥

विराटराज, मेघ समूह से ढके हुए चन्द्र के तुल्य, पूर्ण चन्द्रमा के सदृश मुख वाले, महानुभाव चलकर समीप आए हुए, राजा युधिष्ठिर को देखकर टकटकी बांध कर बहुत देर तक देखता रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रिद्विजान्सूतमुखान्विशस्तथायेचापि केचित्परितः समासते
पप्रच्छ कोऽयं प्रथमं समीयिवान् नृपोपमोऽयं समवेक्षतेसभाम्

राजा विराट ने मुख्य मन्त्री, मुख्य सारथि तथा जो प्रजा के महाजन उस समय सभा में बैठे थे, उन सबसे पूछा—कि यह सबसे प्रथम सभा में कौन घुसा है, जो राजा के समान सभा पर दृष्टि डाल रहा है ॥५॥

न तु द्विजोऽयं भविता नरोत्तमःपतिःपृथिव्या इतिमेमनोगतम्
न चास्यदासो नरथोन कुञ्जरःसमीपतो भ्राजति चायमिन्द्रवत्

यह कोई ब्राह्मण तो हो नहीं सकता। यह तो कोई महिपति है, मुझे तो ऐसा ही प्रतीत होता है। इसके साथ दास, रथ, हाथी, घोड़े कुछ भी नहीं है, परन्तु फिर भी यह इन्द्र के सदृश चमक रहा है ॥६॥

शरीरलिङ्गैरुपसूचितो ह्ययं मूर्द्धाभिषिक्तास्त्विति मे मनोगतम्
समीपमायाति च मे गतव्यथो यथा गजस्तामरसीं मदोत्कटः

इसके शरीर के चिन्हों से सूचित हो रहा है, कि यह कोई क्षत्रिय-वंशज है। यह निःशङ्क मेरे पास ऐसे चला आ रहा है, जैसे कमलिनी के पास मदोत्कट हाथी जाता है ॥७॥

वितर्कयन्तन्तु नरर्षभस्तथा युधिष्ठिरोऽभ्येत्य विराटमब्रवीत्।
सम्राड् विजानात्विह जीवनार्थिनं विनष्टसर्वस्वमुपागतं द्विजम्

राजा विराट तो इस तरह का तर्क वितर्क कर ही रहा था, कि राजा युधिष्ठिर उसके पास पहुंच कर कहने लगा। हे सम्राट्!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको ज्ञात होना चाहिए, कि मैं एक ब्राह्मण हूं और मेरा सर्वस्व नष्ट हो चुका है। मैं तुम्हारे पास जीविका के ध्यान से आया हूं ॥८॥

इहाहमिच्छामि तवानवान्तिके वस्तुं यथा कामचरस्तथाविभो
तमब्रवीत् स्वागतमित्यनन्तरं राजा प्रहृष्टः प्रविसंगृहाण च ॥

हे अनघ ! विभो ! मैं आपकी इच्छानुसार आपके पास में रहना चाहता हूं। इसके अनन्तर राजा विराट ने प्रसन्न होकर कहा—तुम्हारा स्वागत हो। तुम आसन को ग्रहण करो ॥९॥

तं राजसिंहं प्रतिगृह्य राजा प्रीत्यात्मना चैवमिदं बभाषे ।
कामेन ताताभिवदाम्यहं त्वां कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतम्
गोत्रञ्च नामापि च शंस तत्त्वतः किंवापिशिल्पंतवविद्यते कुतः

राजा विराट, इस राज-श्रेष्ठ, युधिष्ठिर को ग्रहण करके बड़े प्रसन्न मन से यह कहने लगा-हे तात ! मैं तुम से एक बात पूछता हूं, तुम यह बताओ, इस समय तुम किस देश से चले आ रहे हो ॥१०॥

युधिष्ठिर उवाच—

युधिष्ठिरस्यासमहं पुरा सखा वैयाघ्रपद्यः पुनरस्मि विप्रः ।
अक्षान्प्रयोक्तुंकुशलोऽस्मिदेविताकङ्क तिनाम्नास्मिविराटविश्रुत

युधिष्ठिर ने कहा—हे राजन ! मैं राजा युधिष्ठिर का पुराना मित्र, व्याघ्रपाद् गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण हूँ । हे विराट राज ! मैं पासे फैंकने में कुशल खिलारी हूं और मेरा कङ्क यह प्रसिद्ध नाम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराट उवाच—

ददामि ते हन्त वरं यमिच्छसि प्रशाधि मत्स्यान्वशगो ह्यहं तव
प्रियाश्च धूर्त्ता मम देविनः सदा भवांश्च देवोपम राज्यमर्हति

विराट ने कहा—हे द्विज ! मैं तुमको तुम्हारी इच्छा के अनुकूल वर देता हूं। तुम ही अब इस मत्स्य देश का शासन करो। मैं तो तुम्हारे आधीन हूँ। हे देवोपम ! मुझे तो धूर्त खिलारी सदा बड़े पसन्द हैं। अब आप इस गुण के कारण मेरे राज्य के चलाने का भी भार ग्रहण करो ॥१२॥

युधिष्ठिर उवाच—

प्राप्तो विवादः प्रथमंविशाम्पते नविद्यते कश्च न मत्स्य हीनतः
न मे जितः कश्चन धारयेद्धनं वरो ममैषोऽस्तु तव प्रसादजः ॥

युधिष्ठिर बोले—हे विशाम्पते ! मत्स्यराज ! किसी दुर्बल के जीत जाने पर भी कोई खिलारी उपद्रव (झगड़ा) न करे तथा मेरे जीते हुए धन को कोई अन्य न ले सके- यह आप अपने अनुग्रह से मुझे वर दीजिए ॥१३॥

विराट उवाच—

हन्यामवश्यं यदि तेऽप्रियश्चरेत् प्रव्राजयेयं विषयाद्द्विजाँस्तथा
शृण्वन्तु मे जानपदाः समागताः कङ्को यथाहं विषयेप्रभुस्तथा

विराट ने कहा—हे द्विज ! जो तेरा अप्रिय करेगा- मैं उसको मार दूँगा और जो ब्राह्मण होगा, तो देश से निकाल दूँगा। प्रत्येक देश से आयेहुए लोगो ! तुम मेरा वचन सुन लो- यह कङ्क मेरे स्थान पर है, तुम इसको मेरे देश का स्वामी समझो ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समानयानो भवितासि मे सखा प्रभूतवस्त्रो बहुपानभोजनः
पश्येस्त्वमन्तश्च बहिश्च सर्वदा कृतश्च ते द्वारमपावृतं मया ॥

हे द्विज ! तुम मेरे सखा हो, इससे मेरे साथ यान (सवारी) में बैठ सकोगे। तुम्हारे पास बहुतसे वस्त्र अन्न पान पहुँच जाया करेगा। तुम बाहर भीतर के सारे कामों का निरीक्षण कर सकते हो। मैं ने तुम्हारा प्रत्येक समयपर द्वार खुला कर दिया है अर्थात तुम्हारे लिए ड्योढ़ी सदा खुली रहेगी ॥१५॥

ये त्वानुवादेयुरवृत्तिकर्षिता ब्रूयाश्च तेषां वचनेन मां सदा
दास्यामिसर्वं तदहं न संशयो न ते भयं विद्य तिसन्निधौ मम

जो वृत्तिहीन ब्राह्मण तुम्हारे पास आवे. उनसे बातें करके तुम मुझ से कह दिया करो। मैं उनको सब कुछ दूंगा- यह निश्चय है। मेरे पास आने में तुमको कोई भय नहीं मानना चाहिए ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं स लब्ध्वा तु वरं समागमं विराटराजेन नरर्षभस्तदा।
उवास धीरःपरमार्चितः सुखी न चापिकश्चिच्चरितंबुबोधतत्॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
युधिष्ठिरप्रवेशे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इस प्रकार विराट राज से अपनी इच्छानुसार सर्वोत्तम प्रीति को प्राप्त करके नर-श्रेष्ठ धीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा युधिष्ठिर, बड़े आदर और सुख के साथ वहां रहने लगे। इसके उस गुप्त चरित को यहां कोई भी नहीं जान सका ॥१७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत पाण्डवप्रवेशपर्व का सातवां अध्याय पूरा हुआ ।

—:o:—

आठवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अथापरोभीमबलः श्रिया ज्वलन्नुपाययौसिंहविलासविक्रमः।
खजाञ्चदर्वीञ्चकरेण धारयन्नसिञ्च कालाङ्गमकोषमत्रणम्॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर भीषण बलशाली, कान्ति से देदीप्यमान, सिंह के सदृश गतिधारी, मन्थनदण्ड या अङ्गारों को इधर उधर फैंकने का साधन, कलछी, कोष, (म्यान) हीन, तीक्ष्ण कृष्ण लोहे की तीक्ष्ण छुरी हाथ में लिये हुए, भीम, पहुंचा ॥१॥

स सूदरूपःपरमेणवर्चसा रविर्यथालोकमिमं प्रकाशयन्।
सुकृष्णवासागिरिराजसारवांस्तंमत्स्यराजंसमुपेत्यतस्थिवान्

इसने रसोइये का रूप धारण कर रखा था और यह महान् तेज से इस लोक को प्रकाशित करते हुए सूर्य की तरह चमक रहा था। इसने काले वस्त्र पहन रखे थे और इसका पर्वत के समान दृढ़ शरीर था। यह भी मत्स्यराज के पास जाकर खड़ा हो गया॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तंप्रेक्ष्यराजानमिवान्तिकागतंततोऽब्रवीज्जानपदान्समागतान्
सिंहोन्नतांसोऽयमतीव रूपवान् प्रदृश्यते कोनु नरर्षभो युवा

राजा विराट, राजा की तरह सभा में पास आये हुए भीम को देखकर पुरवासियों से बोला—कि यह सिंह के समान ऊंचे स्कन्धों का धारी अत्यन्त, रूपवान, नरोत्तम युवा कौन है ? ॥३॥

अदृष्टपूर्वः पुरुषो रविर्यथा वितर्कयन्नास्य लभामि निश्चयम्।
तथास्य चित्तं ह्यपिसंवितर्कयन्नरर्षभस्यास्य न यामितत्वतः॥

हे महानुभावो ! मैंने तो कभी ऐसा मनुष्य पूर्व में देखा नहीं, जो सूर्यवत् चमक रहा है। विचार करने पर भी इसका स्वरूप नहीं जान पाता हूं। मैं तो इस नर-श्रेष्ठ के चित्त पर भी दृष्टि दौड़ाता हूँ, परन्तु उसका भी कोई तत्व नहीं जान पाता हूं ॥४॥

दृष्ट्वैव चैनं नविचारयाम्यहं गन्धर्वराजो यदिवापुरन्दरः।
जानीतकोऽयंममदर्शनेस्थितो यदिप्सितंतल्लभताञ्चमाचिरम्

इसको देखकर तो मुझे यह भी निश्चय नहीं होता, कि यह गन्धर्वराज है या इन्द्र है। मेरी दृष्टि के सम्मुख जो यह सुन्दर युवा खड़ा है, तुम जानते हो-यह कौन है और वह क्या चाहता है ? इसको जो इच्छा हो शीघ्र पूर्ण करो, देर न लगाओ ॥५॥

विराटवाक्येन च तेनचोदिता नराविराटस्यसुशीघ्रगामिनः।
उपेत्यकौन्तेयमथाब्रुवंस्तदा यथा सराजावददच्युतानुजम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराटराज के इन विराट वाक्यों से प्रेरित होकर शीघ्र-गामी सेवक दौड़े। ये भीम के पास पहुंचे और इन्होंने धर्मराज के अनुज कुन्ती-पुत्र भीम से, जो राजा ने कहा था-वह सब कुछ कह दिया ॥६॥

ततोविराटं समुपेत्यपाण्डवस्त्वदीनरूपं वचनं महामनाः।
उवाचसूदोस्मिनरेन्द्रवल्लवो भजस्व मां व्यञ्जनकारमुत्तमम्

इसके बाद महा-मनस्वी भीमसेन, विराटराज के पास पहुंच कर दीनता से हीन वचन बोला—हे नरेन्द्र! मैं रसोइया हूं। मेरा नाम बल्लव है। आप मुझे अपनी पाकशाला में रख लीजिए। मैं बड़े उत्तम व्यञ्जन बनाता हूं ॥७॥

विराट उवाच—

न सूदतां बल्लव श्रद्दधामि ते सहस्रनेत्रप्रतिमो विराजसे।
श्रिया चरूपेण च विक्रमेण च प्रभाससे त्वंनृवरोनरेष्विव॥

विराट ने कहा—हे बल्लव! मुझे तो विश्वास नहीं होता, कि तुम कोई रसोइया हो। तुम तो सहस्र नेत्रधारी इन्द्र के सदृश सुशोभित हो रहे हो। इन सारे मनुष्यों में अपनी कान्ति, रूप और पराक्रम से स्पष्ट नरोत्तम प्रतीत होते हो ॥८॥

भीम उवाच—

नरेन्द्रसूदःपरिचारकोऽस्मि ते जानामिसूपान्प्रथमंन केवलान्
आस्वादिता ये नृपतेपुराभवन् युधिष्ठिरेणापिनृपेणसर्वशः॥

भीम ने कहा—हे नरेन्द्र! मैं तो रसोई बनाने वाला सेवक ही हूं। मैं कोई दाल शाक बनाने का काम नया सीख कर नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया हूं। हे नृपते ! पूर्वकाल में राजा युधिष्ठिर ने मेरे बनाये हुए दाल शाका का अच्छी तरह आस्वाद लिया है ॥९॥

बलेन तुल्यश्चनविद्यते मया नियुद्धशीलञ्च सदैव पार्थिव।
गजैश्च सिंहैश्च समेयिवानहं सदाकरिष्यामि तवानघ प्रियम्॥

हे राजन् ! मेरे समान कोई बल में भी तुम्हारे यहां नहीं होगा। मैं तो सदा मल्ल-युद्ध (कुश्ती) का ही प्रेमी (शौकीन) हूं। इसके सिवा हाथी और सिंहों से भी भिड़ जाता हूं ! हे अनघ ! मैं तो इन कार्यों से सदा आपका प्रिय (मन बहलाव) करता रहूंगा ॥१०॥

विराट उवाच—

ददानि ते हन्त वरान्महानसे तथाधिकुर्य्याःकुशलंप्रभाषसे।
न चैवमन्ये तव कर्म यत्समं समुद्रनेमिंपृथिवीं त्वमर्हसि ॥
यथा हि कामो भवतस्तथाकृतं महानसे त्वं भवमेपुरस्कृतः
नराश्च ये तत्र समाहिताः पुरा भवांश्चतेषामधिपोमयाकृतः॥

विराट ने कहा-बड़े आनन्द से मैं तुमको रसोई का काम सौंपता हूं। तुम तो बड़ी चतुराई से बोल रहे हो-इससे तुमको रसोई का अधिकारी बना दिया जाता है। मैं तो इस कार्य को तुम्हारे योग्य समझता नहीं हूँ। तुम तो समुद्र की परिधि (सीमा) वाली सारी पृथिवी के शासन करने के योग्य हो, परन्तु मैंने तो जैसी तुम्हारी इच्छा है, उसके अनुसार तुमको बड़े आदर से पाकशाला में नियुक्त कर दिया है। अब से पूर्व जो मनुष्य पाकशाला में नियुक्त हैं-आप उन सबके अधिकारी (अफसर) बनाये गये हो ॥११-१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

तथा स भीमो विहितो महानसेविराटराज्ञोदयितोऽभवद् दृढम्
उवास राजन्न च तं पृथग्जनो बुबोध तत्रानुचराश्चकेचन॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
भीमप्रवेशे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

वैशम्पायन बोले-हे राजन् ! इस प्रकार भीम को रसोई के काम पर लगा दिया गया। यह विराटराज का बड़ा ही प्रिय हो गया। इसने वहां अपना आसन (डेरा) लगाया। भीम को कोई अन्य मनुष्य या जो वहां सेवक थे, वे कोई भी नहीं जान सके १३

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत पाण्डवप्रवेशपर्व में भीम के प्रवेश का आठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

—:o:—

नवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततः केशान् समुत्क्षिप्य वेल्लिताग्राननिन्दितान्।
कृष्णान्सूक्ष्मान्मृदून्दीर्घान्समुद्ग्र्थ्य शुचिस्मिता॥१॥
जुगूहे दक्षिणे पार्श्वे मृदूनसितलोचना।
वासश्च परिधायैकं कृष्णा सुमलिनं महत् ॥२॥
कृत्वा वेशश्च सैरन्ध्र्यास्ततो व्यचरदार्त्तवत्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तां नराः परिधावन्तः स्त्रियश्च समुपाद्रवन् ॥३॥
अपृच्छंश्चैव तां दृष्ट्वा का त्वं किञ्च चिकीर्षसि ।

वैशम्पायन बोले- हे राजेन्द्र! इसके अनन्तर सुन्दर मुस्कुराने वाली, कृष्ण-नेत्र-धारिणी द्रौपदी ने आगे से कुटिल, अत्यन्त सुन्दर, काले सूक्ष्म (बारीक) कोमल लम्बे बालों को वेणी के आकार में गूंथ कर अपनी दांईं कुक्षी (बग़ल) में दबा रखे थे द्रौपदी ने इस समय महा मैला एक वस्त्र पहन रखा था। यह सैरिन्ध्री (दासी) का वेश बनाकर वहां दुःखी सी घूमने लगी। इसको देखकर नर और नारी दौड पड़े और पूछने लगे। हे सुन्दरी तुम कौन हो और क्या करना चाहती हो ॥१-३॥

स तानुवाच राजेन्द्र सैरिन्ध्र्यहमिहागता ॥४॥
कर्म चेच्छामि वै कर्त्तुं तस्य यो मां युयुक्षति ।

हे राजेन्द्र ! द्रौपदी ने उत्तर दिया, मैं सैरिन्ध्री हूं और इस नगर में आई हूं। मैं उसकी सेवा कर सकती हूं, जो मुझे नियमानुसार रखने का वचन देगा ॥४॥

तस्या रूपेण वेशेन श्लक्ष्णया च तथा गिरा ॥५॥
नाश्रद्दधत तां दासीमन्नहेतोरुपस्थिताम् ।

द्रौपदी के रूप, वेश, मधुर और स्पष्ट वाणी से किसी को यह विश्वास नहीं हुआ, कि यह दासी है और अन्न के लिए यहां आई है ॥५॥

विराटस्य तु कैकेयी भार्य्या परमसम्मता ॥६॥
आलोकयन्ती ददृशे प्रासादाद्द्रुपदात्मजाम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा विराट की कैकेय देशोत्पन्न रानी बड़ी प्रिय थी। इसने भी अपने महल की छत पर से द्रौपदी को देखा ॥६॥

सा समीक्ष्य तथारूपामनाथामेकवाससम् ॥७॥
समाहूयाब्रवीद्भद्रे का त्वं किञ्च चिकीर्षसि।

इसने एक वस्त्र पहने हुए, अनाथ इस सुन्दरी को बुलाया और पूछा—हे भद्रे! तुम कौन हो और क्या करना चाहती हो।

सा तामुवाच राजेन्द्र सैरिन्ध्र्यहमुपागता।
कर्म चेच्छाम्यहं कर्त्तुं तस्य यो मां युयुक्षति ॥८॥

हे राजन्! द्रौपदी ने राज-महिषी से कहा—मैं केश आदि के शृङ्गार करने वाली, सैरिन्ध्री हूं। जो मुझे नियमानुसार रखने की इच्छा करेगा, मैं उसकी सेवा में तत्पर हो सकती हूं ॥८॥

सुदेष्णोवाच-नैवंरूपा भवन्त्येव यथा वदसि भाविनि।
प्रेषयन्ती च वै दासीर्दासांश्च विविधान् बहून् ॥९॥

सुदेष्णा बोली—हे भाविनी! ऐसे रूप वाली दासी नहीं हुआ करती हैं, तुम तो स्वयं अनेक दास और दासियों को आज्ञा करने वाली सी प्रतीत होती हो ॥९॥

नोच्चगुल्फा संहतोरुस्त्रिगम्भीरा पडुन्नता।
रक्ता पञ्चसु रक्तेषु हंसगद्गदभाषिणी ॥१०॥

तुम्हारे गुल्फ (टखने) अधिक ऊंचे न होकर बड़े सुन्दर हैं। जांघें बड़ी सुडौल हैं। तुम्हारी शब्द, बुद्धि और नाभि गम्भीर और नासिका, अक्षि, कर्ण, नख, स्तन और ग्रीवा का पिछला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग उन्नत है। तुम्हारे पाद, हाथ, नेत्र-प्रान्त, ओष्ठ, जिह्वा और नख ये रक्त हैं। तुम हंस की तरह मञ्जु-भाषिणी हो ॥१०॥

सुकेशी सुस्तनी श्यामा पीनश्रोणिपयोधरा।
तेन तेनैव सम्पन्ना काश्मीरीव तुरङ्गमी ॥११॥

तुम बड़े सुन्दर केश और स्तन धारण करने वाली सुन्दर स्त्री हो और तुम्हारे नितम्ब तथा स्तन बड़े पुष्ट हैं। तुम तो काश्मीर की घोड़ी की तरह उत्तम २ लक्षणों से सम्पन्न हो ॥११॥

अरालपक्ष्मनयना बिम्बोष्ठी तनुमध्यमा।
कम्बुग्रीवा गूढ़शिरा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥१२॥

हे सुन्दरि! तुम तो बांकी पलकों से युक्त नयन वाली, बिम्ब के फल के समान ओष्ठधारिणी, सूक्ष्म कटि से समन्वित, शख सदृशय ग्रीवा से सुशोभित, गुप्त शिराओं से युक्त, पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली हो ॥१२॥

शारदोत्पलपत्राक्ष्या शारदोत्पलगन्धया।
शारदोत्पलसेविन्या रूपेण सदृशी श्रिया ॥१३॥

तुम तो शरद् ऋतु के कमल के पत्रों के समान नेत्र और गन्ध धारण करने वाली तथा शरद् के कमलों का सेवन करने वाली लक्ष्मी के समान रूपवती हो ॥१३॥

का वै ब्रूहि यथा भद्रे नासि दासी कथञ्चन।
यक्षी वा यदि वा देवी गन्धर्वी यदि वाप्सराः ॥१४॥
देवकन्या भुजङ्गी वा नगरस्याथ देवता।
विद्याधरी किन्नरी वा यदि वा रोहिणी स्वयम् ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीकाथमालिनी।
इन्द्राणी वारुणी वा त्वं त्वष्टुर्धातुः प्रजापतेः।
देव्यो देवेषु विख्यातास्तासां त्वं कतमा शुभे ॥१६॥

हे भद्रे ! प्रथम यह बताओ—तुम कौन हो ? तुम दासी तो हो नहीं सकती हो। तुम तो किसी यक्ष की पत्नी, देवी, गन्धर्व की भार्या, अप्सरा, देव तथा सर्प कन्या या इस नगर की देवी, विद्याधरी, किन्नरी, रोहिणी, अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका मालिनी, इन्द्राणी, वरुण-पत्नी, सृष्टिकर्ता प्रजापति विधाता की ब्राह्मणी या देवों में देवी हो। हे शुभे ! यह बताओ—तुम इन में कौन सी हो ॥ १४-१६ ॥

द्रौपद्युवाच-नास्मि देवी न गन्धर्वी नासुरी न च राक्षसी
सैरिन्ध्री तु भुजिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१७॥

द्रौपदी ने कहा—हे भद्रे ! मैं देवी, गन्धर्वी, असुर-पत्नी या राक्षसी आदि कुछ भी नहीं हूं। मैं तो केश प्रसाधन करने वाली केवल एक दासी हूं-यह सत्य कहती हू ॥१७॥

केशान् जानाम्यहं कर्त्तुं पिंषे साधु विलेपनम्।
मल्लिकोत्पलपद्मानां चम्पकानां तथा शुभे ॥१८॥
ग्रथयिष्ये विचित्राश्च स्रजः परमशोभनाः।
आराधयं सत्यभामां कृष्णस्य महिषीं प्रियाम् ॥१९॥
कृष्णाश्च भार्य्यां पाण्डूनां कुरूणामेकसुन्दरीम्।
तत्र तत्र चराम्येका लभमाना सुभोजनम् ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे शुभे ! मैं केश बनाना बड़ा अच्छा जानती हूँ और मुझे चन्दन आदि से युक्त लेप (उबटन) पीसना भी अच्छा आता है। इसके सिवा मल्लिका, कमल, पद्म और चम्पा के पुष्पों की माला भी अद्भुत २ बना लेती हूं। मैंने श्रीकृष्ण की प्रिय-पत्नी सत्यभामा की सेवा की है। कौरव-वंशोत्पन्न पाण्डवों की पत्नी एक मात्र सुन्दरी द्रौपदी की भी मैंने सेवा की है। मैं तो वहीं चली जाती हू- जहाँ मुझे सुन्दर भोजन मिलने लगता है ॥१८-२०॥

वासांसि यावन्ति लभे तावत्तावद्रमे तथा।
मालिनीत्येव मे नाम स्वयं देवी चकार सा।
साहमद्यागता देवि सुदेष्णे त्वन्निवेशनम् ॥२१॥

जब तक मुझे अच्छी तरह अन्न वस्त्र मिलता है, मैं तभी तक एक स्थान पर ठहरती हूं। द्रौपदी देवी ने ही स्वयं मेरा नाम मालिनी रखा था। हे सुदेष्णे ! देवि ! उसी क्रम से मैं आज तुम्हारे भवन पर चली आई हूं ॥२१॥

सुदेष्णोवाच-मूर्द्ध्नि त्वां वासयेयं वै संशयो मे न विद्यते
न चेदिच्छति राजा त्वां गच्छेत् सर्वेण चेतसा ॥२२॥

सुदेष्णा ने कहा—हे सुन्दरि ! मैं तो तुमको अपने मस्तक पर रखूँगी— इसमें संशय न समझना। यदि राजा अपने सम्पूर्ण मन से तुम पर आसक्त नहीं हुआ, तो यह सब कुछ हो सकेगा ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियो राजकुले याश्च याश्चेमा मम वेश्मनि ।
प्रसक्तास्त्यां निरीक्षन्ते पुमांसं कं न मोहयेः ॥२३॥

राजकुल में या मेरे स्थान पर जितनी स्त्रियां हैं, वे सब टकटकी लगा कर तुमको देख रही हैं, कौन ऐसा पुरुष होगा जो तुमको देख कर मोहित न हो सके ॥२३॥

वृक्षांश्चावस्थितान् पश्य य इमे मम वेश्मनि ।
तेऽपि त्वां सन्नमन्तीव पुमांसं कं न मोहयेः ॥२४॥

इन मेरे भवन के चौक में खड़े हुए वृक्षों को तो देखो—ये भी तुम्हारी ओर झुके जा रहे हैं, फिर कौन ऐसा पुरुष होगा—जिसको तुम मोहित न कर सकोगी ॥२४॥

राजा विराटः सुश्रोणि दृष्ट्वा वपुरमानुषम् ।
विहाय मां वरारोहे गच्छेत् सर्वेण चेतसा ॥२५॥

हे पुष्ट नितम्बों वाली ! वरारोहे ! राजा विराट भी, तुम्हारे मनुष्य जाति की स्त्रियों के अतिक्रमण करने वाले शरीर को देख कर तुम पर आसक्त हो जावेगा और सब तरह से मुझे छोड़ कर तुम्हारे साथ हो लेगा ॥२५॥

यं हि त्वमनवद्याङ्गी तरलायतलोचने ।
प्रसक्तमभिवीक्षेथाः स कामवशगो भवेत् ॥२६॥
यश्च त्वा सततं पश्येत् पुरुषश्चारुहासिनि ।
एवं सर्वानवद्याङ्गि स चानङ्गवशो भवेत् ॥२७॥

सर्वाङ्ग-सुन्दरी तुम, चञ्चल और दीर्घ-नेत्रों से जिस पुरुष की ओर आसक्ति से देख लोगी—वही काम के पञ्जे में फंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जावेगा। हे सर्व-श्रेष्ठ-अङ्गों और सुन्दर हंसने वाली! इसी तरह जिस पुरुष की दृष्टि के सामने से तुम निकलती रहोगी-वह भी काम के फन्दे में फँसे विना नहीं रह सकेगा ॥२६-२७॥

अध्यारोहेद्यथा वृक्षान् वधायैवात्मनो नरः।
राजवेश्मनि ते सुभ्रु रोहितं स्यात्तथा मम ॥२८॥

हे सुभ्रु! जिस तरह अपने वध के लिए मनुष्य, वृक्ष पर चढ़ जाता है इसी तरह इस राजगृह में तुम्हारा आना या मेरा बुलाना मेरे ही वध के लिए होगा ॥२८॥

यथा च कर्कटी गर्भमाधत्ते मृत्युमात्मनः।
तथाविधमहं मन्ये वासं तव शुचिस्मिते ॥२९॥

जिस तरह कर्कटी जन्तु अपनी मौत के लिए गर्भ धारण करती है। हे शुचिस्मिते! उसी तरह मेरा तुझे यहाँ वास कराना होगा ॥२९॥

द्रौपद्युवाच-नास्मि लभ्या विराटेन न चान्येन कदाचन
गन्धर्वाः पतयो मह्यं युवानः पञ्च भाविनि ॥३०॥

द्रौपदी ने कहा—हे भाविनि! मैं न तो विराट को प्राप्त हो सकती हूं और न मुझे अन्य कोई प्राप्त कर सकता है। मेरे तो पांच युवा गन्धर्व रक्षक हैं ॥३०॥

पुत्रा गन्धर्वराजस्य महासत्त्वस्य कस्यचित्।
रक्षन्ति ते च मां नित्यं दुःखाचारा तथा ह्यहम् ॥३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पांचों युवा गन्धर्व, किसी महाबली गन्धर्वराज के पुत्र हैं। ये मेरी सदा रक्षा करते रहते हैं, इससे मैं किसी को प्राप्त होने में सर्वथा दुर्गम हूं ॥३१॥

यो मे न दद्यादुच्छिष्टं न च पादौ प्रधावयेत्।
प्रीयेरंस्तेन वासेन गन्धर्वाः पतयो मम ॥३२॥

जो मुझे भोजन में उच्छिष्ट न दे तथा चरण न धुलवावे, उससे मेरे पांचों पति गन्धर्व, बड़े प्रसन्न होते हैं ॥३२॥

यो हि मां पुरुषो गृध्येद्यथान्याः प्राकृताः स्त्रियः।
तामेव निवसेद्रात्रिं प्रविश्य च परां तनुम् ॥३३॥

जो पुरुष, अन्य साधारण स्त्रियों की तरह मेरे पकड़ने की इच्छा करेगा—वह अपने सुन्दर शरीर में केवल उसी रात निवास कर सकेगा अर्थात् गन्धर्व द्वारा मार डाला जावेगा ।३३।

न चाप्यहं चालयितुं शक्या केनचिदङ्गने।
दुःखशीला हि गन्धर्वास्ते च बलवत्प्रियाः।
प्रच्छन्नाश्चापि रक्षन्ति ते मां नित्यं शुचिस्मिते॥३४॥

हे अङ्गने! मुझे कोई भी अपने व्रत से विचलित नहीं कर सकता है। इस समय वे गन्धर्व भी कुछ विपत्ति में फंस गए हैं। वे बलवान और मेरे प्रिय हैं। हे शुचिस्मिते, वे छुपे २ ही मेरी रक्षा करते रहते हैं ॥३४॥

सुदेष्णोवाच-एवं त्वां वासयिष्यामि यथा त्वं नन्दिनीच्छसि
न च पादौ न चोच्छिष्टं स्प्रक्ष्यसि त्वं कथञ्चन ॥३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदेष्णा बोली—हे नन्दनि ! यदि ऐसा है, तो मैं तुमको अपने पास रख सकती हूं, क्योंकि तुम मेरे पास रहना भी चाह रही हो। तुम कभी भी चरण और झूंठ के हाथ न लगाना ॥३५॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं कृष्णा विराटस्य भार्य्यया परिसान्त्विता।
उवाच नगरे तस्मिन् पतिधर्मवती सती।
न चैनां वेद तत्रान्यस्तत्त्वेन जनमेजय ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
द्रौपदीप्रवेशे नवमोऽध्यायः ॥९॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार विराटराज की भार्या सुदेष्णा द्वारा आश्वासन पाकर पतिव्रता सती द्रौपदी उस विराट नगर में निवास करने लगी। हे जनमेजय ! इस जगह द्रौपदी को अन्य कोई भी नहीं पहिचान सका ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत पाण्डवप्रवेशपर्व में द्रौपदी के प्रवेश का नवां अध्याय पूरा हुआ।

—:o:—

दशवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

सहदेवोऽपि गोपानां कृत्वा वेशमनुत्तमम्।
भाषाश्चैषां समास्थाय विराटं समुपाययौ ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! इसके अनन्तर, सहदेव भी ग्वालों की सा रूप और उनकी सी ही भाषा बना कर विराटराज के पास पहुंचा ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोष्ठमासाद्य तिष्ठन्तं भवनस्य समीपतः ।
राजाथ दृष्ट्वा पुरुषान् प्राहिणोज्जातविस्मयः ॥२॥

राजा विराट, इस समय अपने भवन के समीप की गोशाला में खड़ा था। विराटराज ने इस अद्भुत, गोप, सहदेव को देख कर और बड़े आश्चर्य में आकर अपने सेवक दौड़ाए ॥२॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य भ्राजमानं नरर्षभम् ।
समुपस्थाय वै राजा पप्रच्छ कुरुनन्दनम् ॥३॥

तेज से देदीप्यमान इस नर-श्रेष्ठ को आता हुआ देख कर राजा विराट, उसके पास पहुंचा और उस कुरुनन्दन सहदेव से पूछने लगा ॥३॥

कस्य वा त्वं कुतो वा त्वं किं वा तात चिकीर्षसि ।
न हि मे दृष्टपूर्वस्त्वं तत्त्वं ब्रूहि नरर्षभ ॥४॥

हे तात ! तुम किसके पुत्र और कहां से आ रहे हो तथा क्या करना चाहते हो। हे नरर्षभ ! मैंने तो तुमको कभी पूर्व में देखा नहीं—अब तुम अपना पता ठीक २ बताओ ॥४॥

सम्प्राप्य राजानममित्रतापनं ततोऽब्रवीन्मेघमहौघनिस्वनः ।
वैश्योऽस्मि नाम्नाहमरिष्टनेमिर्गोसङ्ख्य आसं कुरुपुङ्गवानाम्

शत्रुविजयी राजा विराट के पास पहुँच कर मेघ समूह के समान गर्जना करने वाला, सहदेव बोला—मैं वैश्य हूँ और मेरा नाम अरिष्टनेमि है। मैं कुरुपुङ्गव राजा युधिष्ठिर की गोशाला में गौओं की सङ्ख्या रखने वाला सेवक हूं ॥५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुंत्वयीच्छामि विशांवरिष्ठताराजसिंहान्नहि वेद्मि पार्थान्
न शक्यते जीवितुमप्यकर्मणा न च त्वदन्योमम रोचते नृपः

हे सर्व-श्रेष्ठ! राजन! मैं भी तुम्हारी प्रजा में रहना चाहता हूं। मुझे उन राजसिंह पाण्डवों का कुछ पता नहीं चलता है। मैं कुछ बुरा भला काम करके जीविका कर लेना नहीं चाहता हूँ। मुझे तो तुम्हारे सिवा अन्य कोई राजा पसन्द ही नहीं है ॥६॥

विराट उवाच—

त्वं ब्राह्मणो यदि वा क्षत्रियोऽसि समुद्रनेमीश्वररूपवानसि
आचक्ष्वमेतत्वममित्रकर्षण न वैश्यकर्मत्वयि विद्यते क्षमम्

विराट ने कहा—हे महाभाग! तुम या तो ब्राह्मण हो या क्षत्रिय हो। तुम्हारा रूप तो समुद्र की सीमा वाली पृथिवी के शासक राजा का सा है। हे अमित्र-नाशक! तुम अपना ठीक २ वृतान्त सुनाओ। तुम में तो वैश्य कर्म करने के से लक्षण दिखाई नहीं देते हैं ॥७॥

कस्यासिराज्ञोविषयादिहागतः किं वापिशिल्पंतवविद्यतेकृतम्
कथं त्वमस्मासुनिवत्स्यसेसदा वदस्व किञ्चापि तवेहवेतनम्

अब तुम किस राजा के देश से आ रहे हो। तुम कोई शिल्प जानते हो या नहीं। क्या तुम सदा हमारे पास रह सकोगे और यह भी बताओ, कि तुम क्या वेतन लोगे ॥८॥

सहदेव उवाच—

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः।
तस्याष्टशतसाहस्रा गवां वर्गाः शतंशतम् ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरे दशसाहस्रा द्विस्तावन्तस्तथापरे।
तेषां गोसङ्ख्य आसं वै तन्त्रिपालेति मा विदुः॥१०॥

सहदेव ने कहा—पाण्डु के पांचों पुत्रों में सब से बड़ा राजा युधिष्ठिर है, उसके सौ २ गौओं के आठ लाख समूह हैं, दूसरी प्रकार की गौओं के सौ २ के दश लाख और तीसरी की गौओं के बीस लाख हैं। मैं उन गायों का हिसाब रखता था और मेरा नाम तन्त्रिपाल है ॥९-१०॥

भूतं भव्यं भविष्यञ्च यच्च सङ्ख्यागतं गवाम्।
न मेऽस्त्यविदितं किञ्चित् समन्ताद्दशयोजनम् ॥११॥

हे राजन्! दश योजन तक फैली हुई इन गौओं के भूत, वर्तमान और भविष्य में होने वाली वृद्धि की संख्या मुझ से कुछ भी छुपी हुई नहीं थी ॥११॥

गुणाः सुविदिता ह्यासन्मम तस्य महात्मनः।
आसीच्च स मया तुष्टः कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥१२॥

हे महीपाल! मुझे उस राजा युधिष्ठिर के गुण बड़ी अच्छी तरह ज्ञात थे। कुरुराज युधिष्ठिर भी मुझसे बड़ा ही प्रसन्न था।

क्षिप्रञ्च गावो बहुला भवन्ति न तासु रोगो भवतीह कश्चन।
तैस्तैरुपायैर्विदितं ममैतदेतानि शिल्पानि मयि स्थितानि॥

जिस तरह गायों की शीघ्र वृद्धि हो जावे और उनमें किसी रोग का आक्रमण न हो सके, मुझे ये सब उपाय विदित हैं और यही शिल्प मुझे आता है ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषभांश्चापि जानामि राजन् पूजितलक्षणान् ।
येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते ॥१४॥

हे राजन्! मैं शुभ लक्षण वाले बैलों को भी पहचानता हूं, जिसके मूत्र को सूंघ कर ही वन्ध्या गाय अपना बच्चा उत्पन्न कर देती है ॥१४॥

विराट उवाच—

शतं सहस्राणि समाहितानिसवर्णवर्णस्यविमिश्रितानगुणैः
पशून् सपालान् भवते ददाम्यहं त्वदाश्रयामेपशवोभवन्त्विह

विराट ने कहा—हे महाभाग! एक वर्ण के तथा मिले हुए वर्ण वाले, एक लाख गौओं के यूथ हैं। मैं इन सब मिले हुए गुण वाले पशुओं को इनके पालने वालों के साथ तुम्हारे अधीन करता हूं। इसके आगे मेरे पशु तुम्हारी देख रेख में रहेंगे ॥१५

वैशम्पायन उवाच—

तथा स राज्ञोविदितो विशाम्पतेरुवास तत्रैव सुखं नरोत्तमः
न चैनमन्येऽपिविदुः कथञ्चनप्रादाच्च तस्मै भरणंयथेप्सितम्

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
सहदेवप्रवेशे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! राजा विराट को इसकी योग्यता का परिचय मिल गया। यह नर-श्रेष्ठ अब वहीं रहने लगा। इसको भी अन्य कोई नहीं जान सका। राजा ने इसका भी इसकी इच्छानुसार वेतन कर दिया ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत पाण्डवप्रवेशपर्व में सहदेव के प्रवेश का दशवां अध्याय समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्यारहवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अथापरोऽदृश्यतरूपसम्पदा स्त्रीणामलङ्कारधरेबृहत्पुमान् ।
प्राकारवप्रेप्रतिमुच्यकुण्डले दीर्घे च कम्बूपरिहाटके शुभे ॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर रूप सम्पत्ति से सुन्दर, स्त्रियों के अलङ्कार धारी, एक विशाल पुरुष, अपने दुर्ग की भित्ति पर खड़े हुए राजा विराट को दिखाई दिया । इसने दीर्घ कुण्डल और सुवर्ण के सुन्दर कड़े पहन रखे थे ॥१॥

बाहूंश्च दीर्घान्प्रविकीर्य्यमूर्द्धजान्महाभुजोवारणतुल्यविक्रमः
गतेनभूमिंप्रतिकम्पयंस्तदा विराटमासाद्यसभासमीपतः ।२।

बड़ी २ विशाल भुजाओं के धारी. हाथी के सदृश गमन करने वाले, अर्जुन ने दीर्घ बाहु और बाल फैला रखे थे । इसके चलने से भूमि कांप सी जाती थी । यह भी सभा के पास में आए हुए राजा विराट के पास पहुंचा ॥२॥

तंप्रेक्ष्यराजोपगतं सभातले व्याजात्प्रतिछन्नमरिप्रमाथिनम् ।
विराजमानंपरमेणवर्च्चसा सुतं महेन्द्रस्यगजेन्द्रविक्रमम्॥३
सर्वानपृच्छच्चसभानुचारिणः कुतोऽयमायातिपुरानमेश्रुतः।
नचैनमूचुर्विदितंतदानराः सविस्मयंवाक्यमिदंनृपोऽब्रवीत्॥

विराटराज के छल से अपने को छुपाए हुए, शत्रुनाशक, सभातल के समीप आए हुए, बड़े भारी तेज से विराजमान, हाथी के समान पराक्रमी, इन्द्र के पुत्र अर्जुन को देख कर सारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभाजनों से पूछा—यह मनुष्य कहां से आ रहा है ? मैंने तो इस ढंग का कोई मनुष्य आज तक सुना भी नहीं है। उस समय किसी मनुष्य ने यह नहीं कहा—कि हम इसको जानते हैं। तब आश्चर्य के साथ राजा ने उससे कहा ॥३-४॥

सत्वोपपन्नःपुरुषोऽमरोपमः श्यामोयुवावारणयूथपोपमः ।
आमुच्यकम्बूपरिहाटकेशुभे विमुच्यवेणीमपिनह्यकुण्डले ॥

हे महाभाग ! तुम महा ओजसे युक्त, देवोंके तुल्य, श्यामवर्ण धारी, हाथियों के यूथ पति के समान महाबली युवा पुरुष हो। तुमने सोने के सुन्दर कड़े पहन रखे हैं, बालों की वेणी खोल रखी है और कुण्डल लटका रखे हैं ॥५॥

स्रग्वीसुकेशःपरिधायचान्यथा शुशोभधन्वीकवचीशरीयथा
आरुह्ययानंपरिधावतांभवान् सुतैःसमोमेभववामयासमः ॥

तुम्हारे गले में माला पड़ी है और बड़े सुन्दर बाल हैं। तुम ने तो उलटा वेश बना रखा है। मुझे तो तुम धनुष, कवच और बाणधारी से दिखाई देते हो। तुम वाहनों पर बैठ कर यात्रा करो, तुमको मैं अपने पुत्र या अपने समान ही बनाऊंगा ॥६॥

वृद्धोह्यहंवैपरिहातुकामः सर्वान्मत्स्यांस्तरसापालयस्व ।
नैवंविधाः क्लीवरूपाभवन्ति कथञ्चनेति प्रतिभातिमेमनः ॥

मैं तो वृद्ध हो चुका, अब मैं सारे मत्स्य देश को छोड़ कर भजन करना चाहता हूं। तुम इसका अच्छी तरह पालन करो। मेरे मनको तो निश्चय है कि इस तरह के मनुष्य कभी क्लीव (हिजड़े) नहीं हुआ करते ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन उवाच—

गायामिनृत्याम्यथवादयामिभद्रोऽस्मिनृत्येकुशलोऽस्मिगीते
त्वमुत्तरायैप्रदिशस्वमांस्वयं भवामिदेव्यानरदेवनर्त्तकः ॥८॥

अर्जुन ने कहा—हे राजन ! मैं गाना, नाचना और बाजे बजाता हूं। मैं नाचने में उत्तम और गाने में कुशल हूं। हे नरदेव ! तुम मुझे उत्तरा के आगे उपस्थित कर दो—मैं उनका नर्तक बन जाऊंगा ॥८॥

इदन्तु रूपंममयेनकिन्तव प्रकीर्त्तयित्वा भृशशोकवर्द्धनम् ।
बृहन्नलांमांनरदेवविद्धि सुतंसुतांवापितृमातृवर्जिताम् ॥९॥

यह मेरा ऐसा रूप कैसे बन गया—इसके कहने सुनने से क्या है। इसे सुन कर तो तुमको भी शोक ही होगा। हे नरदेव ! मेरा नाम बृहन्नला है। तुम मुझे पुत्र या पुत्री कुछ भी कहो—परन्तु अब मेरे माता पिता जीवित नहीं हैं ॥९॥

विराट उवाच—

ददामि ते हन्त वरं बृहन्नले सुताश्च मे नर्त्तययाश्चतादृशीः।
इदन्तु ते कर्म समं न मे मतं समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि ॥

विराट ने कहा-बृहन्नले ! मैं तुमको भी वर देता हूं कि तुम जो चाहती हो- वह ग्रहण करो। तुम मेरी पुत्री उत्तरा और उसकी समान आयु की लड़कियों को नाचना सिखाती रहो। मुझे तो तुम्हारा यह कर्म तुम्हारे योग्य जचा नहीं। तुम तो समुद्र की सीमावाली इस भूमि का शासन करने योग्य हो ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

बृहन्नलांतामभिवीक्ष्यमत्स्यराट् कलासुनृत्येषुतथैववादिते।
सम्मन्त्र्यराजाविविधैःस्वमन्त्रिभि परीक्ष्यचैनंप्रमदाभिराशुवै
अपुंस्त्वमत्यस्यनिशम्यचस्थिरंततःकुमारीपुरमुत्ससर्जताम्

वैशम्पायन ने कहा-मत्स्य राज ने गाने, नाचने और बजाने की कला में बृहन्नला को कुशल देख कर तथा अनेक मन्त्रियों से सम्मति करके और इस की स्त्रियों द्वारा परीक्षा करा के एवं इसका नपुंसकपन स्थिर समझ कर अर्जुन को कन्यान्तःपुर में भेज दिया ॥११॥

स शिक्षयामास च गीतवादितं सुतांविराटस्यधनञ्जयःप्रभुः
सखीश्चतस्याःपरिचारिकास्तथा प्रियश्चतासांसवभूवपाण्डवः

गुणवान अर्जुन ने विराटराज की पुत्री उत्तरा को गाना, नाचना और बाजे बजाना सिखा दिया। इसी तरह उत्तरा की सखी और सेविकाओं को भी सब कुछ नृत्य आदि की शिक्षा दे दी। पाण्डु-पुत्र, अर्जुन, उनको बड़ा ही प्रिय मालूम होता था ॥१२॥

तथाससत्रेणधनञ्जयोवसन् प्रियाणिकुर्वन्सहताभिरात्मवान्
तथाचतंतत्रनजज्ञिरेजना बहिश्चरावाप्यथवान्तरेचराः॥१३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
अर्जुनप्रवेशे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितेन्द्रिय अर्जुन यहां इनका प्रिय आचरण करता हुआ इतने छल से रह रहा था कि उसको भीतर के या बाहर के रहने वाले मनुष्यों में कोई भी नहीं जान पाता था ॥१३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत पाण्डवप्रवेशपर्व में अर्जुन प्रवेश का ग्यारहवां अध्याय पूरा हुआ।

—:०:—

बारहवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अथापरोऽदृश्यतपाण्डवः प्रभुर्विराटराजंतरसासमेयिवान्।
तमापतन्तंददृशेपृथग्जनो विमुक्तमभ्रादिवसूर्य्यमण्डलम् ॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! इसके अनन्तर बलवान् पाण्डु पुत्र नकुल दिखाई दिया, जो बड़े वेग से सीधा विराट-राज के पास पहुंचा। लोगों ने आकाश मण्डल से गिरते हुए सूर्य के सदृश इसको आते हुए देखा ॥१॥

स वै हयानैक्षततांस्ततस्ततः समीक्षमाणंसददर्शमत्स्यराट्
ततोऽब्रवीत् ताननुगान्नरेश्वरः कुतोऽयमायातिनरोऽमरप्रभः

यह इधर उधर अश्वों को देख रहा था। अश्वों को निरीक्षण करते हुए नकुल को मत्स्य-राज ने देख लिया। राजा विराट ने अपने सेवकों को आज्ञा दी, कि यह देवोपम मनुष्य, कहां से चला आ रहा है ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयंहयानीक्षतिमामकान्दृढं ध्रुवंहयज्ञोभविताविचक्षणः ।
प्रवेश्यतामेषसमीपमाशुमे विभातिवीरोहियथामरस्तथा॥३॥

यह तो बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से अश्वों को देख रहा है। यह निश्चय कोई अश्वों की विद्या में कुशल पुरुष दिखाई देता है। इसको मेरेपास शीघ्र लाओ। यह वीर तो देवोंके सदृश सुशोभित हो रहा है ॥३॥

अभ्येत्यराजनममित्रहात्रवीज्जयोऽस्तु ते पार्थिवभद्रमस्तुवः।
हयेषुयुक्तोनृपसम्मतःसदा तवाश्वसूतोनिपुणोभवाम्यहम् ॥

यह शत्रु-विजयी नकुल, राजा के पास पहुंच कर बोला—हे राजन् ! आपका जय और कल्याण हो। मैं अश्वों की विद्या को अच्छी तरह जानता हूं। मुझे राजा लोग बहुत मानते हैं। मैं तुम्हारे अश्वों का सारथि बनना चाहता हूं और मैं इस कार्य में अच्छी तरह निपुण भी हूं ॥४॥

विराट उवाच—

ददामि यानानि धनं निवेशनं ममाश्वसूतोभवितुं त्वमर्हसि।
कुतोऽसिकस्यासिकथंत्वमागतः प्रब्रूहिशिल्पंतवविद्यतेचयत्॥

विराट ने कहा—मैं तुम को यान, धन और भवन का प्रबन्ध कर दूंगा—तुम मेरे अश्वों के पालक बन जाओ। तुम कौन किस के पुत्र और कहाँ से आ रहे हो तथा तुम्हें इस विषय में जो शिल्प (कारीगरी) आता हो—वह बताओ ॥ ५ ॥

नकुल उवाच—

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः ।
तेनाहमश्वेषु पुरा नियुक्तः शत्रुकर्षण ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नकुल ने कहा-हे शत्रु कर्षण ! पाँच पाण्डवों में बड़ा राजा युधिष्ठिर था। उसने मुझे अश्वों के काम पर नियुक्त किया था ६

अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयञ्चापि सर्वशः ।
दुष्टानां प्रतिपत्तिञ्च कृत्स्नञ्चैव चिकित्सितम् ॥७॥

मैं अश्वों के स्वभावों तथा उनके सिखाने की परिपाटी को भी जानता हूं। दुष्ट अश्वों की दुष्टता का उपाय और उन की सारी चिकित्सा का भी मुझे ज्ञान है ॥७॥

न कातरं स्यान्ममजातु वाहनं नमेऽस्तिदुष्टवाड़वाःकुतोहयाः
जनस्तुमामाहसचापिपाण्डवो युधिष्ठिरोग्रन्थिकमेवनामतः॥

मेरा सिखाया हुआ अश्व कभी युद्ध में नहीं घबड़ाता। मेरे सामने घोड़ी भी दुष्टता नहीं कर सकती, घोड़ों की चलाई ही क्या है। वह राजा युधिष्ठिर और वहां के लोग मुझे ग्रन्थिक नाम से पुकारा करते थे ॥ ॥

विराट उवाच—

यदस्तिकिञ्चिन्ममवाजिवाहनं तदस्तुसर्वंत्वदधीनमद्य वै।
येचापिकेचिन्ममवाजियोजकास्त्वदाश्रयाःसारथयश्चसन्तुमे

विराट ने कहा--हे महात्मन ! मेरे अश्वों के जितने वाहन हैं वे आज से तेरे आधीन होंगे। इसके सिवा जो मेरे अश्वों के जोडने वाले सेवक और सारथि हैं, वे सब तेरे आधीन होंगे। तुमको उनका अधिकारी (अफसर) बना दिया गया है ॥६॥

इदं तवेष्टं यदि वै सुरोपम ब्रवीहि यत्ते प्रसमीक्षितं वसु।
न तेऽनुरूपं हयकर्म विद्यते प्रभासि राजेव हि सम्मतोमम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे देवोपम ! तुमको यही कार्य रुचिकर प्रतीत होता है, तो यही करो। अब तुमको जितने धन की अभिलाषा हो, वह भी सुनाओ। तुम्हारे योग्य यह अश्वों का काम नहीं है। तुम तो राजा के समान मुझे प्रतीत होते हो ॥१०॥

युधिष्ठिरस्येवहिदर्शनेनमे समन्तवेदंप्रियमत्रदर्शनम् ।
कथन्तु भृत्यैः सविनाकृतो वने वसत्यनिन्द्योरमतेचपाण्डवः

आज मुझे राजा युधिष्ठिर के मिलने के समान तुम्हारे मिलने से आनन्द हुआ है। आज कल अपने इन सेवकों से हीन सर्व-गुण-सम्पन्न राजा युधिष्ठिर, वन में कैसे दिन काट रहा होगा ॥११॥

वैशम्पायन उवाच—

तथा स गन्धर्ववरोपमोयुवा विराटराज्ञामुदितेन पूजितः ।
न चैनमन्येऽपि विदुःकथञ्चन प्रियाभिरामं विचरन्तमन्तरा॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! अब राजा विराट ने गन्धर्व के समान सुन्दर युवा नकुल का बड़ा आदर किया। राजधानी के भीतर घूमते हुए इस सुन्दर प्रिय, नकुल को कोई भी मनुष्य नहीं जान सका ॥१२॥

एवंहिमत्स्येन्यवसन्तपाण्डवा यथाप्रतिज्ञाभिरमोघदर्शनाः
अज्ञातचर्य्याव्यचरन्समाहिताः समुद्रनेमीपतयोतिदुःखिताः
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि नकुल-प्रवेशे द्वादशोऽध्यायः समाप्तश्च पाण्डवप्रवेशपर्व ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार उत्तम दर्शन वाले अपनी २ प्रतिज्ञा के अनुसार मत्स्य देश में रहते हुए, समुद्र की परिध तक की भूमि के स्वामी पाण्डव, बड़े, दुःख और सावधानी से विराटनगर में अज्ञातवास करने लगे ॥१३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत पाण्डवप्रवेशपर्व में नकुल के प्रवेश का बारहवां अध्याय पूरा हुआ और यहीं पर पाण्डवप्रवेशपर्व भी पूरा हो गया।

******

अथ समयपालनपर्व

तेरहवां अध्याय

जनमेजय उवाच—

एवं ते मत्स्यनगरे प्रच्छन्नाः कुरुनन्दनाः ।
अत ऊर्द्ध्वं महावीर्य्याः किमकुर्वत वै द्विज ॥१॥

जनमेजय कहने लगे—हे द्विजराज ! इस तरह विराट-नगर में पहुंच कर छुपे हुए, कुरुवंशवर्द्धन महापराक्रमी पाण्डवों ने इसके पीछे क्या किया ॥१॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं मत्स्यस्य नगरे प्रच्छन्नाः कुरुनन्दनाः ।
आराधयन्तो राजानं यदकुर्वत तच्छृणु ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन बोले-हे राजन् ! इस भांति विराट-नगरमें प्रच्छन्न रूप से रहते हुए और विराटराज की सेवा करते हुए, पाण्डवोंने जो कुछ किया, वह कहता हूं-तुम ध्यान से सुनो ॥२॥

तृणबिन्दुप्रसादाच्च धर्मस्य च महात्मनः ।
अज्ञातवासमेवन्तु विराटनगरेऽवसन् ॥३॥

महर्षि तृणबिन्दु और महात्मा धर्म के अनुग्रह से विराट नगर में राजा युधिष्ठिर, अज्ञातवास का समय काट रहे थे ॥३॥

युधिष्ठिरः सभास्तारो मत्स्यानामभवत्प्रियः ।
तथैव च विराटस्य सपुत्रस्य विशाम्पते ॥४॥

हे विशाम्पते ! राजसभासद बना हुआ युधिष्ठिर, राजा विराट उसके पुत्र और सारी मत्स्य-देश की प्रजा को बड़ा ही प्रिय हो गया ॥४॥

स चाक्षहृदयज्ञस्तं क्रीडयामास पाण्डवः ।
अक्षवत्यां यथाकामं सूत्रबद्धानिव द्विजान् ॥५॥

पासे फेंकने के तत्व को जानने वाले, राजा युधिष्ठिर, डोरी में बंधे हुए, पक्षियों की तरह राजा विराट को जुआ में नचाते रहते थे ॥५॥

अज्ञातश्च विराटस्य विजित्य वसु धर्मराट् ।
भ्रातृभ्यः पुरुषव्याघ्रो यथार्हं सम्प्रयच्छति ॥६॥

नर-श्रेष्ठ धर्मराज, विराट राज के धन को जीत कर छुपे २ आवश्यकता होने पर भाइयों को दे देता था ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीमसेनोऽपि मांसानि भक्ष्याणि विविधानि च।
अतिसृष्टानि मत्स्येन विक्रीणीते युधिष्ठिरे ॥७॥

भीमसेन भी विराटराज के दिए हुए मांस और अनेक भांति के भोजनों को राजा युधिष्ठिर को अपण कर जाता था ॥७॥

वासांसि परिजीर्णानि लब्धान्यन्तः पुरेऽर्जुनः।
विक्रीणानश्च सर्वेभ्यः पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥८॥

अर्जुन को जो जीर्ण (उतरे) हुए वस्त्र रनिवास में मिलते थे, उनको बेचकर उस धन को सारे पाण्डवों को देदिया करता था।

सहदेवोऽपि गोपानां वेशमास्थाय पाण्डवः।
दधि क्षीरं घृतञ्चैव पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥९॥

गोप-वेष-धारी, पाण्डव सहदेव भी दही, दूध और घृत, पांडवों को देता रहता था ॥९॥

नकुलोऽपि धनं लब्ध्वा कृते कर्माणि वाजिनाम्।
तुष्टे तस्मिन्नरपतौ पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥१०॥

नकुल भी अश्वों के उत्तम २ कार्य कर देने पर विराट-राज की सन्तुष्टि से प्राप्त हुए धन को पाण्डवों को दे देता था ॥१०॥

कृष्णा तु सर्वान् भ्रातॄंस्तान्निरीक्षन्ती तपस्विनी।
यथा पुनरविज्ञाता तथा चरति भाविनी ॥११॥

दुःखातुर सुन्दरी द्रौपदी भी इन सारे भाइयों की चेष्टाओं को [illegible] हुई, जिस तरह पहचानी न जा सके- उसी तरह रह रही थी ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं सम्पादयन्तस्ते तदान्योऽन्यं महारथाः ।
विराटनगरे चेरुः पुनर्गर्भधृता इव ॥१२॥

ये महारथी, इस भांति एक दूसरे की आराधना करते हुए, विराट-नगर में बार २ गर्भ धारिणी की तरह परिश्रम आदि से दुःखी हो रहे थे ॥१२॥

सशङ्का धार्त्तराष्ट्रस्य भयात् पाण्डुसुतास्तदा ।
प्रेक्षमाणास्तदा कृष्णामूषुश्छन्ना नराधिपाः ॥१३॥

ये राजपुत्र पाण्डव, धृतराष्ट्र पुत्र, दुर्योधन के भय से द्रौपदी की जैसे तैसे देख रेख करते हुए छुप कर बड़ी शंका से दिन काट रहे थे ॥१३॥

अथ मासे चतुर्थे तु ब्रह्मणः सुमहोत्सवः ।
आसीत् समृद्धो मत्स्येषु पुरुषाणां सुसम्मतः ॥१४॥

इसके अनन्तर चौथे महीने में मत्स्य देश की प्रजा का अभिमत, समृद्धि-युक्त, ब्रह्म सम्बन्धी कोई महोत्सव मत्स्य देश में आगया ॥१४॥

तत्र मल्लाः समापेतुर्दिग्भ्यो राजन् सहस्रशः ।
समाजे ब्रह्मणो राजन् यथा पशुपतेरिव ॥१५॥

हे राजन् ! इस ब्रह्मोत्सव में अनेक दिशाओं से सहस्रों की संख्या में मल्ल (पहलवान) आने लगे, जैसे कैलाश पर पशुपति के उत्सव में देव दानव पहुंच रहे हों ॥१५॥

महाकाया महावीर्याः कालखञ्जा इवासुराः ।
वीर्योन्मत्ता बलोदग्रा राज्ञा समभिपूजिताः ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये मल्ल, बड़े शरीरधारी, महा-पराक्रमी, कालखञ्ज असुरों के समान प्रतीत होते थे। राजा विराट ने बलवीर्य से उन्मत्त इन मल्लों का बड़ा आदर किया ॥१६॥

सिंहस्कन्धकटिग्रीवाः स्ववदाता मनस्विनः।
असकृल्लब्धलक्ष्यास्ते रङ्गे पार्थिवसन्निधौ ॥१७॥

इन मल्लों के स्कन्ध, कटि ग्रीवा सिंह जैसी थी। ये बड़े उज्ज्वल और मनस्वी थे। राजा विराट के सामने ही ये बार २ एक दूसरे को पछाड़ कर विजय प्राप्त कर रहे थे ॥१७॥

तेषामेको महानासीत् सर्वमल्लानथाह्वयत्।
आवल्गमानं तं रङ्गे नोपतिष्ठति कश्चन ॥१८॥

इन सारे मल्लों (पहलवानों) में एक मल्ल ऐसा आ गया, जिसने सारे ही मल्लों को चेतावनी देकर अपने से लड़ने को आह्वान किया। रङ्गशाला (अखाड़े) में उछलते हुए इस मल्ल के सम्मुख कोई नहीं आता था ॥१८॥

यदा सर्वे विमनसस्ते मल्ला हतचेतसः।
अथ सूदेन तं मल्लं योधयामास मत्स्यराट् ॥१९॥

जब सारे ही मल्ल, उस मल्ल, से लड़ने में हतोत्साह और उदास हो गए, तो राजा विराट ने उस मल्ल को अपने रसोइये भीम से भिड़ा दिया ॥१९॥

चोद्यमानस्तदा भीमो दुःखेनैवाकरोन्मतिम्।
न हि शक्नोति विवृते प्रत्याख्यातुं नराधिपम् ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब विराटराज ने भीम को प्रेरित किया, तो भीम ने अपने प्रकाशित होने के डर से बड़े क्लेश से इस बात को स्वीकार किया, क्योंकि यह राजा से स्पष्ट निषेध (साफ २ इन्कार) नहीं कर सकता था ॥२०॥

ततः स पुरुषव्याघ्रः शार्दूलशिथिलश्चरन् ।
प्रविवेश महारङ्गं विराटमभिपूजयन् ॥२१॥

अब राजा विराट का आदर प्रकट करता हुआ, पुरुष-व्याघ्र, भीम, अलसाये हुए सिंह की तरह धीरे २ चलता हुआ रङ्गशाला में पहुंचा ॥२१॥

बबन्ध कक्षां कौन्तेयस्ततः सहर्षयन् जनम् ।
ततस्तु वृत्रासङ्काशं भीमो मल्लं समाह्वयत् ॥२२॥
जीमूतं नाम तं तत्र मल्लं प्रख्यातविक्रमम् ।

कुन्तीपुत्र भीमने कक्षा (जांघिया या रुमाली) कसली, जिससे दर्शकों ने बड़ी ही हर्ष-ध्वनि प्रकट की, अब इन्द्र के सदृश भीमने वृत्र सदृश जीमूत नामक प्रसिद्ध पराक्रमी, उस मल्ल को ललकारा ॥२२॥

तावुभौ सुमहोत्साहावुभौ भीमपराक्रमौ ॥२३॥
मत्ताविव महाकायौ वारणौ षष्टिहायनौ ।
ततस्तौ नरशार्दूलौ बाहुयुद्धं समीयतुः ॥२४॥

इन दोनों महापराक्रमियों को बड़ा ही उत्साह हो रहा था। ये महा-विशालकाय, मदोन्मत्त, षष्टि (साठ) वर्ष के दो हाथियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह आपस में जुट गए। अब ये दोनों नरसिंह-बाहु-युद्ध (कुश्ती) करने लगे ॥२३-२४॥

वीरौ परमसंहृष्टावन्योऽन्यजयकांक्षिणौ ।
आसीत् सुभीमः सम्पातो वज्रपर्वतयोरिव ॥२५॥

ये दोनों वीर, बड़े प्रसन्न हो रहे थे और एक दूसरे को जीतना चाहते थे। इनकी चपेटे पर्वत पर वज्र गिरने के सदृश भीषण शब्द कर रही थी ॥२५॥

उभौ परमसंहृष्टौ बलेनाति बलावुभौ ।
अन्योऽन्यस्यान्तरं प्रेप्सू परस्परजयैषिणौ ॥२६॥

ये दोनों बड़े हर्षित और बल में चूर हो रहे थे। ये दोनों परस्पर विजय के इच्छुक एक दूसरे पर प्रहार करने के मौके की खोज में लग रहे थे। ये दोनों ही वीर, मदोन्मत्त हाथियों की तरह मद में भरे हुए बड़े उत्साहित हो रहे थे ॥२६॥

उभौ परमसंहृष्टौ मत्ताविव महागजौ ।
कृतप्रतिकृतैश्चित्रैर्बाहुभिश्च सुसङ्कटैः ॥ २७ ॥
सन्निपातवधूतैश्च प्रमाथोन्मथनैस्तथा ।
क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव वराहोद्धूतनिस्वनैः ॥२८॥

ये दोनों कहीं से किसी को दबा देते और दूसरा उस पेच से निकल जाता था। कभी २ बाहु के अद्भुत आघात से वे सुकड़ जाते थे। कभी कोई किसी को नीचे गिराता और दूसरा झट खड़ा हो जाता था। कोई सा किसी को भूमि में रगड़ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता था। कभी २ एक दूसरे को अपने बल से पीछे सरकाता चला जाता था और कभी एक दूसरे को छाती में दोनों हाथों की मुष्टिका मार देता था। कभी २ एक दूसरे को कन्धों पर उठा लेता और शब्द के साथ भूमि पर डाल देता था ॥२७-२८॥

तलैर्वज्रनिपातैश्च प्रसृष्टाभिस्तथैव च ।
शलाकानखपातैश्च पादोद्धूतैश्च दारुणैः ॥२९॥
जानुभिश्चाश्मनिर्घोषैः शिरोभिश्चावघट्टनैः ।
तद्युद्धमभवद्घोरमशस्त्रं बाहुतेजसा ॥३०॥

वज्र के सदृश थपेड़े, चांटे, क्रोधपूर्वक मारी हुई थप्पड़ों की चोटों, नखों के आघात, दारुण पाद-प्रहार (लात) बिजली की चोट के तुल्य जानु (गोडी) और शिरों की टक्करों से शस्त्र रहित, बाहु के बल से युक्त, यह महा-भीषण, युद्ध हो रहा था ।३०

बलप्राणेन शूराणां समाजोत्सवसन्निधौ ।
अरज्यत जनः सर्वः सोत्क्रुष्टनिनदोत्थितः ॥३१॥

इस ब्रह्मोत्सव में इन शूरवीरों के बल और शक्ति को देखकर सारे मनुष्य, बड़े सन्तुष्ट हो रहे थे और समाज में कलकलाहट मच रहा था ॥३१॥

बलिनो संयुगे राजन् वृत्रवासवयोरिव ।
प्रकर्षणाकर्षणयोरभ्याकर्षविकर्षणैः ॥३२॥

हे राजन् ! इन बलवानों का यह युद्ध, खैंचा-खैंची और पटका पछाड़ी से इन्द्र और वृत्रासुर के समान हो रहा था। ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दूसरे को खैंच रहे थे और कभी २ गोड़े की चोट मार देते थे ॥३२॥

आकर्षतुरथान्योऽन्यं जानुभिश्चापि जघ्नतुः ।
ततः शब्देन महता भर्त्सयन्तौ परस्परम् ॥३३॥
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥३४॥

इसके बाद ये परस्पर एक दूसरे को अपनी २ गर्जना से फटकार रहे थे। दृढ़ वक्ष-स्थल-धारी, दीर्घ भुजावाले, मल्ल युद्ध में कुशल, ये दोनों भीम और जीमूत मल्ल, लोहे की बड़ी अर्गला के समान बाहुओं से भिड़ रहे थे ॥३३-३४॥

चकर्ष दोर्भ्यामुत्पाट्य भीमो मल्लममित्रहा ।
निनदन्तमभिक्रोशन् शार्दूल इव वारणम् ॥३५॥
समुद्यम्य महाबाहुर्भ्रामयामास वीर्य्यवान् ।
ततो मल्लाश्च मत्स्याश्च विस्मयं चक्रिरे परम् ॥३६॥

अब शत्रु-विजयी, महाबाहु, वीर्यशाली, भीम ने हाथों के सदृश गर्जना करते हुए, जीमूत को सिंह के तुल्य पराक्रम करके भुजाओं से ऊपर उठा लिया और उठा कर बड़े वेग से फिराया। इसको देख कर सारे मल्ल और मत्स्य-देश निवासी लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ॥३५-३६॥

भ्रामयित्वा शतगुणं गतसत्वमचेतनम् ।
प्रत्यपिंषन्महाबाहुर्मल्लं भुवि वृकोदरः ॥३७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन् ! अचेत से हुए, बलहीन जीमूत मल्ल को महाबाहु भीम ने सैकड़ों बार घुमा कर भूमि में डाल कर रगड़ना आरम्भ किया ॥३७॥

तस्मिन् विनिहते वीरे जीमूते लोकविश्रुते ।
विराटः परमं हर्षमगच्छद्भ्रान्धवैः सह ॥३८॥

जब लोक-प्रसिद्ध मल्ल जीमूत को भीम ने मार लिया, तो विराट को अपने बन्धुओं के सहित बड़ा ही हर्ष हुआ ॥३८॥

प्रहर्षात् प्रददौ वित्तं बहु राजा महामनाः ।
बल्लवाय महारङ्गे यथा वैश्रवणस्तथा ॥३९॥

महामनस्वी कुबेर के सदृश, राजा विराट ने हर्षित हो कर बल्लव व भीम को बहुत सा धन उसी रङ्गशाला में उपहार (इनाम) में दिया ॥३९॥

एवं स सुबहून् मल्लान् पुरुषांश्च महाबलान् ।
विनिघ्नन् मत्स्यराजस्य प्रीतिमाहरदुत्तमाम् ॥४०॥

इस तरह भीम ने महाबली बहुत से मल्ल-पुरुषों को पछाड़ कर विराट-राज को बड़ा ही हर्षित किया ॥४०॥

यदास्य तुल्यः पुरुषा न कश्चित्तत्र विद्यते ।
ततो व्याघ्रैश्च सिंहैश्च द्विरदैश्चाप्ययोधयत् ॥४१॥

जब इसके बराबर का कोई पुरुष (पहलवान) रहा ही नहीं, तो अब भीम को व्याघ्र, सिंह और हाथियों से भिड़ा दिया ॥४१॥

पुनरन्तः पुरगतः स्त्रीणां मध्ये वृकोदरः ।
योध्यते स विराटेन सिंहैर्मत्तैर्महाबलः ॥४२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा विराट ने फिर रनिवास में जा कर अपनी स्त्रियों के सामने भीम को मदोन्मत्त, महाबली सिंह और हाथियों से लड़ाया ॥४२॥

बीभत्सुरपि गीतेन स्वनृत्येन च पाण्डवः ।
विराटं तोषयामास सर्वाश्चान्तः पुरस्त्रियः ॥४३॥

इसी तरह इस समय पाण्डु-पुत्र, अर्जुन ने गाने नाचने से राजा विराट और अन्तःपुर की सारी स्त्रियों को प्रसन्न करदिया।

अश्वैर्विनीतै जवनैस्तत्र तत्र समागतैः ।
तोषयामास राजानं नकुलो नृपसत्तमम् ॥४४॥

अच्छी तरह सिखाये हुए, वेगशील, देश २ के एकत्रित किये हुए, अश्वों से नकुल ने राजा विराट को सन्तुष्ट किया। राजा ने प्रसन्न होकर नकुल को देने योग्य धन उपहार में दिया ॥३४॥

तस्मै प्रदेयं प्रायच्छत् प्रीतो राजा धनं बहु ।
विनीतान् वृषभान् दृष्ट्वा सहदेवस्य चाभितः ॥४५॥

सहदेव के सिखाये गये वृषभों को प्रत्यक्ष देख कर प्रसन्न राजा विराट ने उसको भी बहुत सा धन दिया ॥४५॥

धनं ददौ बहुविधं विराटः पुरुषर्षभः ।
द्रौपदी प्रेक्ष्य तान् सर्वान् क्लिश्यमानान्महारथान् ४६
नातिप्रीतमना राजन्निश्वासपरमाभवत्

हे राजन्! द्रौपदी इन सारे महारथी पाण्डवों को इन क्लेशों में फँसा हुआ देख कर इस समय अधिक प्रसन्न नहीं हुई। यह तो इस समय भी श्वासें ही ले रही थी ॥४६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं ते न्यवसंस्तत्र प्रच्छन्नाः पुरुषर्षभाः ।
कर्माणि तस्य कुर्वाणा विराटनृपतेस्तदा ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि समयपालनपर्वणि जीमूत-वधे त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तश्च समयपालनपर्व ॥१३॥

इस प्रकार ये पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डव, विराट नगर में राजा विराट की सेवा करते हुए छुप कर निवास कर रहे थे ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत समयपालनपर्व में जीमूत वध का तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर समयपालनपर्व भी समाप्त हो गया ।

—:※:—

अथ कीचकवधपर्व

चौदहवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

वसमानेषु पार्थेषु मत्स्यस्य नगरे तदा ।
महारथेषु छन्नेषु मासा दश समाययुः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! इस तरह मत्स्यराज के नगर में छिपे २ रहते हुए महारथी पाण्डवों के दश महीने व्यतीत हो गए ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याज्ञसेनी सुदेष्णान्तु शुश्रुषन्ती विशाम्पते ।
अवसत् परिचारार्हा सुदुःखं जनमेजय ॥२॥

हे विशाम्पते ! जनमेजय ! स्वयं सेवा के योग्य, यज्ञसेन की पुत्री द्रौपदी, सुदेष्णा की सेवा करती हुई, बड़े क्लेश से दिन काट रही थी ॥ २ ॥

तथा चरन्ती पाञ्चाली सुदेष्णाया निवेशने ।
तां देवीं तोषयामास तथा चान्तः पुरे स्त्रियः ॥३॥

सुदेष्णा के महलों में इस प्रकार सेवा करती हुई, द्रौपदी ने रानी सुदेष्णा और रनिवास की अन्य स्त्रियों को अच्छी तरह सन्तुष्ट कर लिया ॥ ३ ॥

तस्मिन् वर्षे गतप्राये कीचकस्तु महाबलः ।
सेनापतिर्विराटस्य ददर्श द्रुपदात्मजाम् ॥४॥

जब इनका यह तेरहवां वर्ष समाप्त होने का ही था, कि इसी समय राजा विराट के महाबली सेनापति कीचक की द्रौपदी पर दृष्टि पड़ गई ॥ ४ ॥

तां दृष्ट्वा देवगर्भाभां चरन्तीं देवतामिव ।
कीचकः कामयामास कामबाणप्रपीडितः ॥५॥

देवकन्या के गर्भ से उत्पन्न साक्षात् देवी की तरह आचरण करती हुई, द्रौपदी को देख कर कीचक काम के बाणों से पीड़ित होकर द्रौपदी को चाहने लगा ॥ ५ ॥

स तु कामाग्निसंतप्तः सुदेष्णामभिगम्य वै ।
प्रहसन्निव सेनानीरिदं वचनमब्रवीत् ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम की अग्नि से संतप्त हुआ, सेनापति कीचक अपनी बहिन सुदेष्णा के पास पहुँचा और हँसता यह वचन कहने लगा।

नेयं मया जातु पुरेह दृष्टा राज्ञो विराटस्य निवेशने शुभा।
रूपेणचोन्मादयतीव मां भृशं गन्धेन जाता मदिरेव भाविनी

हे देवी! मैंने तो आज से पूर्व कभी विराट-राज के भवन में इस सुन्दरी को नहीं देखा है। यह भामिनी अपने रूप से इस तरह मुझे उन्मादित करती है, जैसे गन्ध से तीव्र मदिरा मोहित करती है ॥ ७ ॥

कादेवरूपाहृदयङ्गमाशुभा ह्याचक्ष्व मेकस्यकुतोऽत्र शोभने।
चित्तंहिनिर्मथ्यकरोति मां वशे नचान्यदत्रौषधमस्तिमेमतम्॥

हे शोभने! यह देवकन्या के समान रूपवाली, हृदय ग्रामिणी किसकी पुत्री और कहां से आई है। यह तो मेरे चित्त का मथन करके मुझे परवश कर रही है? मुझे तो मेरे मन की व्यथा की अन्य औषध ही प्रतीत नहीं होती है ॥ ८ ॥

अहोतवेयंपरिचारिकाशुभा प्रत्यग्ररूपाप्रतिभातिमामियम्।
अयुक्तरूपंहिकरोतिकर्मते प्रशास्तुमांयच्चममास्तिकिञ्चन॥९॥

यह तेरी सुन्दरी परिचारिका (दासी) मुझे तो बड़ी ही दिव्य रूपधारिणी प्रतीत हो रही है। यह तो तेरे पास बड़ा ही अयोग्य सेवा कर्म कर रही है। तुम उसके बदले में मेरा सर्वस्व ग्रहण करने की आज्ञा दे सकती हो ॥ ९ ॥

प्रभूतनागाश्व रथं सभाजनं समृद्धियुक्तं बहुपानभोजनम्।
मनोहरंकाञ्चनचित्रभूषणम् गृहंमहच्छोभयतामियंमम॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम बहुत से हाथी, रथ, सेवक, समृद्धिशाली बहुतसे अन्नपान, सुवर्ण के अद्भुत मनोहर भूषण, ग्रहण कर सकती हो, परन्तु इसके परिवर्तन में इस सुन्दरी से मेरे विशाल भवन को अलंकृत करा दो ॥१०॥

ततःसुदेष्णामनुमन्त्र्यकीचकस्ततःसमभ्येत्यनराधिपात्मजाम्।
उवाच कृष्णामभिसान्त्वयंस्तदामृगेन्द्रकन्यामिवजम्बुकोवने।

यह कीचक, इस प्रकार रानी सुदेष्णा से बातें बना कर नरेन्द्र-पुत्री, द्रौपदी के पास पहुंचा। यह मृगेन्द्र-कन्या को गीदड़ की तरह द्रौपदी को समझाने लगा ॥ ११ ॥

कीचक उवाच—

का त्वं कस्यासि कल्याणि कुतो वा त्वं वरानने।
प्राप्ता विराटनगरं तन्त्वेनाचक्ष्व शोभने ॥१२॥

कीचक ने कहा-हे कल्याणि ! तुम कौन हो ? हे वरानने ! तुम किसकी पुत्री या पत्नी हो ? हे शोभने ! तुम इस विराट-नगर में कहां से आई हो ? ॥१२॥

रूपमग्र्यं तथा कान्तिः सौकुमार्य्यमनुत्तमम्।
कान्त्या विभाति वक्त्रं ते शशाङ्क इव निर्मलम् ॥१३

तेरा रूप बड़ा उत्तम है और कान्ति और सुकुमारता भी अद्वितीय है। इस कान्ति से तेरा मुख निर्मल चन्द्रमा की तरह देदीप्यमान हो रहा है ॥ १३ ॥

नेत्रे सुविपुले सुभ्रु पद्मपत्रनिभे शुभे।
वाक्यन्ते चारुसर्वाङ्गि परपुष्टरुतोपमम् ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे सुभ्रु ! कमल के पत्र के समान तेरी विशाल आंखें हैं। हे सर्वाङ्ग-सुन्दरी ! तेरा शब्द भी कोयल के शब्द की तरह मधुर है ॥ १४ ॥

एवंरूपा मया नारी काचि दन्या महीतले।
न दृष्टपूर्वा सुश्रोणि यादृशी त्वमनिन्दिते ॥१५॥

हे पुष्ट-नितम्बों-वाली ! महा-सुन्दरी ! मैंने तो ऐसी सुन्दरी पृथ्वी पर अन्य कोई स्त्री देखी नहीं है, जैसी तुम हो ॥ १५ ॥

लक्ष्मीः पद्मालया का त्वमथ भूतिः सुमध्यमे ।
ह्रीः श्रीः कीर्त्तिरथो कान्तिरासां का त्वं वरानने १६

हे सुन्दर-कटि-धारिणी ! वरा-ने ! तुम कमल में निवास करने वाली लक्ष्मी हो या भूति (ऐश्वर्य) ह्री, श्री, कीर्ति तथा कान्ति हो। तुम इनमें कौन हो—मुझे बताओ ॥ १६ ॥

अतीव रूपिणी किन्त्वमनङ्गाङ्गविहारिणी।
अतीव भ्राजसे सुभ्रु प्रभेवेन्दोरनुत्तमा ॥१७॥

तुम कामदेव के अङ्गों के साथ क्रीड़ा करने वाली रति तो नहीं हो। हे सुन्दर भौंहोवाली ! तुम तो सर्वोत्तम चांद की चांदनी सी चमक रही हो ॥१७॥

अपि चेक्षणपक्ष्माङ्कं स्मितज्योत्स्नोपमं शुभम्।
दिव्यांशुरश्मिभिर्वृत्तं दिव्यकान्तिमनोरमम् ॥१८॥

हे सुन्दरी ! तुम्हारे नेत्र की शुक्लता, मुस्कुराहट और सुन्दर चांदनी सी दिखाई देती है, जो दिव्य किरणों से व्याप्त और दिव्य कान्ति से मनोरम है ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरीक्ष्य चन्द्रवक्त्रन्ते लक्ष्म्यानुपमया युतम् ।
कृत्स्ने जगति को नेह कामस्य वशगो भवेत् ॥१९॥

हे भद्रे ! चन्द्र के सदृश मनको आल्हादकारी, अनुपम शोभा से युक्त, तेरे चन्द्रमा के सदृश मुख को देख कर इस सारे जगत में कौन ऐसा पुरुष है, जो कामदेव के वश में नहीं हो जावेगा।

हारालङ्कारयोग्यौ ते स्तनौ चोभौ सुशोमनौ ।
सुजातौ सहितौ लक्ष्म्या पीनौ वृत्तौ निरन्तरौ ॥२०॥
कुड्मलाम्बुरुहाकारौ तव सुभ्रु पयोधरौ ।
कामप्रतोदाविव मां तुदतश्चारुहासिनि ॥२१॥

हे चारु-हासिनी ! ये तेरे सुन्दर, उन्नत, एक दूसरे से सटे हुए, पुष्ट, गोल, कान्ति-युक्त स्तन, हार और अलङ्कारों के योग्य हैं। हे सुभ्रु ! कमलके कोशके आकारधारी, ये स्तन, मुझे कामदेव के चाबुक की तरह पीड़ित कर रहे हैं ॥२०-२१॥

वलीविभङ्गचतुरं स्तनभारविनामितम् ।
कराग्रसम्मितं मध्यं तवेदं तनुमध्यमे ॥२२॥

हे सूक्ष्म-कटिवाली ! त्रिवली के सौन्दर्य से सुशोभित, स्तन के भार से झुके हुए, कर के अग्रभाग (बिलस्त) परिमित, तेरा मध्य भाग है ॥२२॥

दृष्ट्वैव चारुजघनं सरित्पुलिनसन्निभम् ।
कामव्याधिरसाध्यो मामप्याक्रामति भाविनि ॥२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भाविनि ! नदी के तट के सदृश, तेरे इस श्रेष्ठ नितम्ब-भाग को देखकर कामदेव की असाध्य व्याधि ने मुझको धर दबाया है ॥२३॥

जज्वाल चाग्निमदनो दावाग्निरिव निर्दयः ।
त्वत्सङ्गमातिसङ्कल्पविवृद्धो मां दहत्ययम् ॥२४॥

वन की आग की तरह यह निर्दयी कामाग्नि, तेरे मिलने के सङ्कल्पों की वृद्धि पाकर मुझे जलाए डालता है ॥२४॥

आत्मप्रदानवर्षेण सङ्गमाम्भोधरेण च ।
शमयस्व वरारोहे ज्वलन्तं मन्मथानलम् ॥२५॥

हे वरारोहे ! तुम अपने समर्पण रूप वर्षा से और सङ्गम रूपी मेघों से मेरी इस प्रज्वलित कामाग्नि को आज शान्त करो ।

मच्चित्तोन्मांदनकरा मन्मथस्य शरोत्कराः ।
त्वत्सङ्गमाशानिशितास्तीव्राः शशिनिभानने ॥२६॥

हे चन्द्रमुखी ! मेरे चित को व्याकुल कर देने वाला, कामदेव का शर समूह, तेरे सङ्गम की आशा की शिला पर पैना २ कर कामदेव ने तीक्ष्ण कर लिया है ॥२६॥

मह्यं विदार्य्य हृदयमिदं निर्दयवेगिताः ।
प्रविष्टा ह्यसितापाङ्गि प्रचण्डाश्चण्डदारुणाः ॥२७॥

हे कृष्ण—नेत्र—प्रान्त—धारिणी ! ये प्रचण्ड महा दारुण, निर्दयता और वेग के साथ मेरे हृदय को चीर कर उसमें प्रवेश कर गए हैं ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्युन्मादसमारम्भाः प्रीत्युन्मादकरा मम ।
आत्मप्रदानसम्भोगैर्मामुद्धर्त्तुमिहार्हसि ॥२८॥

प्रीति और उन्माद के करने वाले, ये बाण, मृत्युकालीन दशा के लाने का उद्योग कर रहे हैं। तुम अपने प्रदान और सम्भोग से मेरा उद्धार करो ॥२८॥

चित्रमाल्याम्बरधरा सर्वाभरणभूषिता ।
कामं प्रकामं सेवे त्वं मया सह विलासिनि ॥२९॥

हे विलासिनी ! अद्भुत २ माला और वस्त्र पहने हुए तथा सब भूषणों से भूषित होकर अपनी इच्छा के अनुसार मेरे साथ काम का सेवन करो ॥२९॥

नार्हसीहासुखं वस्तुं सुखार्हा सुखवर्जिता ।
प्राप्तुं स्वनुत्तमं सौख्यं मत्तस्त्वं मत्तगामिनी ॥३०॥

हे सुन्दरि ! तुम सुखके योग्य होकर भी सुख रहित, क्लेश के साथ इस स्थान में रहने के योग्य नहीं हो। हे गज—गामिनी ! तुम तो अब मुझ से सर्वोत्तम सुख प्राप्त करने के योग्य हो ।३०।

स्वाद्न्यमृतकल्पानि पेयानि विविधानि च ।
पिबमाना मनोज्ञानि रममाणा यथासुखम् ॥३१॥

हे सुन्दरि ! अमृत के समान स्वादु भोजन तथा अनेक भांति के मनोहर सुरादि पान पदार्थों को पीती हुई, मेरे साथ सुख से रमण करो ॥३१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोगापचारान् विविधान् सौभाग्यं चाप्यनुत्तमम् ।
पानं पिब महाभागे भोगैश्चानुत्तमैः शुभैः ।३२।।

हे महाभागे ! अनेक भांति के भोग, सर्वोत्तम सौभाग्य तथा उत्तम २ सुन्दर भोजनों के साथ पान (सुरा) का पान करो ।।३२।।

इदं हि रूपं प्रथमं नवं वया निरर्थकं केवलमद्य भाविनि
अधार्य्यमाणं स्रगिवात्तमाशुभानशोभसेसुन्दरिशोभनासती
त्यजामिदारान्ममयपुरातनाभवन्तुदास्यस्तवचारुहासिनि ।
अहञ्चतेसुन्दरिदासवत्स्थितःसदाभविष्येवशगो वरानने ।

हे भाविनी ! तुम्हारा यह सुन्दर रूप और यह नई आयु, सब आज निरर्थक हो रहे हैं । हे सुन्दरि, तुम अत्यन्त सुन्दर होकर भी दूर पड़ी हुई शरीर पर नहीं धारण की हुई, सुन्दर माला की तरह शोभा नहीं दे रही हो । हे चारुहासिनी ! मैं अपनी पुरानी स्त्रियों को छोड़ दूंगा या उनको तेरी दासी बना दूंगा । हे वरानने ! मैं तो तेरे दास की तरह खड़ा रह कर सदा वश में रहूंगा ।।३४।।

द्रौपद्युवाच-अप्रार्थनीयामिह मां सूतपुत्राभिमन्यसे ।
निहीनवर्णां सैरिन्ध्रीं बीभत्सां केशकारिणीम् ।।३५।।

द्रौपदी बोली—हे सूतपुत्र ! जिसके काम की प्रार्थना नहीं करनी चाहिए—तू उसकी कामना कर रहा है । मैं तो नीचवर्ण, केश बनाने वाली, भद्दी सैरन्ध्री (दासी) हूं ।।३५।।

परदारास्मि भद्रन्ते न युक्तं तव साम्प्रतम् ।
दयिताः प्राणिनां दारा धर्मं समनुचिन्तयः ।।३६।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब मैं अन्य की स्त्री हूं, तो तुम्हारा यह कहना बिलकुल ही अनुचित है। प्रत्येक छोटे बड़े को अपनी २ भार्या प्रिय होती है। तू कुछ धर्म का तो खयाल कर ॥३६॥

परदारे न ते बुद्धिर्जातु कार्य्या कथञ्चन।
विवर्जनं ह्यकार्य्याणामेतत् सत्पुरुषव्रतम् ॥३७॥

तुझे पराई स्त्री के ग्रहण करने की कभी इच्छा नहीं करनी चाहिए। सत्पुरुषों का तो व्रत ही यह होता है, कि वे अनुचित कार्यों का परित्याग कर देते हैं ॥३७॥

मिथ्याभिगृध्नो हि नरः पापात्मा मोहमास्थितः।
अयशः प्राप्नुयाद्घोरं महद्वा प्राप्नुयाद्भयम् ॥३८॥

अनुचित कार्य के करने को दुराग्रही पापी मनुष्य, मोह में लिपट जाता है, जिससे उसका घोर अपयश और उसे महान भय प्राप्त हो जाता है ॥३८॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तस्तु सैरिन्ध्र्या कीचकः काममोहितः।
जानन्नपि सुदुर्बुद्धिः परदाराभिमर्षणे ॥३९॥
दोषान् बहून् प्राणहरान् सर्वलोकविगर्हितान्।
प्रोवाचेदं सुदुर्बुद्धिर्द्रौपदीमजितेन्द्रियः ॥४०॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! सैरिन्ध्री (द्रौपदी) के इतना कहने पर भी काम-मोहित दुर्बुद्धि कीचक, परदाराभिमर्षण के सब लोकों में निन्दित, प्राणापहारी, बहुत से दोषों को जान कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इन्द्रियों के वश में हुआ, द्रौपदी से इस प्रकार कहने लगा ॥३६-४०॥

नार्हस्येवं वरारोहे प्रत्याख्यातुं वरानने।
मां मन्मथसमाविष्टं त्वत्कृते चारुहासिनि ॥४१॥

हे वरारोहे ! वरानने ! तुमको इस तरह मुझे निषेध नहीं कर देना चाहिए था। हे चारुहासिनि ! तुम देखती नहीं, मैं तो तुम्हारे कारण से कितना काम के वश में हो रहा हूं ॥४१॥

त्याख्याय च मा भीरु वशगं प्रियवादिनम्।
नूनं त्वमसितापाङ्गि पश्चात्तापं करिष्यसि ॥४२॥

हे भीरु ! असित नेत्र-प्रान्त-धारिणी ! तुम वश में प्राप्त हुए प्रियवादी, मुझे निषेध (इन्कार) करके अन्त में पछताओगी ।४२।

अहं हि सुभ्रु राजस्य कृत्स्नस्यास्य सुमध्यमे।
प्रभुर्वासयिता चैव वीर्य्ये चाप्रतिमः क्षितौ ॥४३॥

हे सुभ्रु ! सुमध्यमे ! मैं इस सारे राज्य का एक तरह से स्वामी हूँ। मेरी ही इच्छा से इस राज्य में कोई निवास कर सकता है। मैं पृथ्वी पर पराक्रम में भी अद्वितीय हूं ॥४३॥

पृथिव्यां मत्समो नास्ति कश्चिदन्यः पुमानिह।
रूपयौवनसौभाग्यैर्भोगैश्चानुत्तमैः शुभैः ॥४४॥

इस पृथिवी पर रूप, यौवन, वैभव और उत्तम २ भोगों से युक्त, मेरे समान कोई अन्य मनुष्य है ही नहीं ॥४४॥

सर्वकामसमृद्धेषु भोगेष्वनुपमेष्विह।
भोक्तव्येषु च कल्याणि कस्माद्दास्ये रता ह्यसि ॥४५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे कल्याणि ! सब कामनाओं से वृद्धि को प्राप्त हुए, अनुपम भोगने योग्य भोगों को छोड़कर तू क्यों यह दासीपन कर रही है।

मया दत्तमिदं राज्यं स्वामिन्यस्मिन् शुभानने ।
भजस्व मां वरारोहे भुङ्क्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥४६

हे शुभानने ! इस राजा को तो यह राज्य ही मैंने जीत कर देरखा है ! हे वरारोहे ! तू मुझ से सम्भोग कर और उत्तम २ भोगों को भोग ॥४६॥

एवमुक्त्वा तु सा साध्वी कीचकेनाशुभं वचः ।
कीचकं प्रत्युवाचेदं गर्हयन्त्यस्य तद्वचः ॥४७

कीचक के इतना अनुचित वचन कहने पर यह साध्वी सैरिन्ध्री (द्रौपदी) कीचक के वचनों की निन्दा करती हुई उससे बोली ॥४७॥

सैरिन्ध्र्युवाच—

मा सूतपुत्र मुह्यस्व माद्यात्याहीः स्वजीवितम् ।
जानीहि पञ्चभिर्घोरैर्नित्यं मामभिरक्षिताम् ॥४८॥

हे सूत-पुत्र ! तू मूर्खता न कर और मत अपने प्राणों के नाश करने की तय्यारी कर । तू क्या यह नहीं जानता है, कि मैं पांच महाबली घोर गन्धर्वों से सुरक्षित हूं ॥ ८ ।

न चाप्यहं त्वया लभ्या गन्धर्वाः पतयो मम ।
ते त्वां निहन्युः कुपिताः साध्वलं मा व्यनीनशः॥४९

तू मुझे पाही नहीं सकेगा—क्योंकि मेरे पांच गन्धर्व रक्षक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। वे कुपित होकर तुझे मार डालेंगे। मैं तुझे समझा रही हूं, कि तू अपना नाश न कर ॥४९॥

अशक्यरूपं पुरुषैरध्वान गन्तुमिच्छसि ।
यथा निश्चेतनो बालः कूलस्थः कूलमुत्तरम् ।
तर्त्तुमिच्छति मन्दात्मा तथा त्वं कर्त्तुमिच्छसि ॥५०॥

लोग, अशक्य मार्ग पर चलने का दुराग्रह, नदी के एक तट से दूसरे तट पर कूद जाने की चेष्टा करने वाले मूढ़ बालक की तरह कर बैठते हैं। आज तू भी वैसा ही कर रहा है ॥५०॥

अन्तर्महीं वायदिवोर्ध्वमुत्पतेः समुद्रपारं यदि वा प्रधावसि
तथापितेभ्यानविमोक्षमर्हसि प्रमाथिनो देवसुता हिखेचराः

अरे मूर्ख! जो तू पृथ्वी के भीतर घुस-जावेगा या आकाश में उड़ जावेगा—समुद्र के पार दौड़ जावेगा—तो भी तेरा छुटकारा नहीं हो सकेगा—क्योंकि आकाशचारी देव तेरा विध्वंस करने वाले हैं ॥ १॥

त्वंकालरात्रीमिवकश्चिदातुरः किंमांदृढं प्रार्थयसेऽद्यकीचक ।
किंमातुरङ्के शयितोयथाशिशुश्चन्द्रं जिघृक्षुरिवमन्यसेहिमाम्

हे कीचक! किसी रोगी के काल-रात्रि के आगमन की प्रार्थना के सदृश आज तू मुझ से काम की प्रार्थना कर रहा है। क्या तू माता की गोद में सोने वाले बालक के चन्द्र-ग्रहण करने की इच्छा के तुल्य मेरी इच्छा नहीं कर रहा है ॥५२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेषांप्रियांप्राथयतानतेभुवि गत्वादिवंवाशरणं भविष्यति।
न वर्त्तते कीचक ते दृशा शुभ या तेन संजीवनमर्थयेत् ॥५३॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
कीचककृष्णासंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

उन गन्धर्वों की प्रिया की प्रार्थना करने वाले, तेरा रक्षक पृथ्वी या आकाश में कोई भी नहीं होगा। हे कीचक! तेरे ऐसी दृष्टि ही नहीं है, जिस से अपने शुभ जीवन की इच्छा पूरी हो सके ॥५३॥

इति श्रीमहाभारत विराट पर्वान्तर्गत कीचक-वध-पर्व में कीचक और द्रौपदी के सम्वाद का चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

*****

पन्द्रहवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

प्रत्याख्यातो राजपुत्र्या सुदेष्णां कीचकोऽब्रवीत्।
अमर्य्यादेन कामेन घोरेणाभिपरिप्लुतः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! जब राजपुत्री द्रौपदी ने कीचक को फटकार दिया—तो मर्यादा से बाहर हुए घोर काम के वशीभूत कीचक, रानी सुदेष्णी से कहने लगा ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीचक उवाच—

यथा कैकेयि सैरिन्ध्री समेयात्तद्विधीयताम् ।
येनोपायेनसैरिन्ध्री भजेन्मां गजगामिनी ।
तां सुदेष्णे परिप्सस्व मोहात् प्राणान् प्रहासिषम्॥२॥

हे कैकय देशोत्पन्न ! यह सैरिन्ध्री जैसे मुझे मिल सके—तुम वैसा ही उपाय कर दो। हे सुदेष्णे, यह हाथी की तरह गति वाली सुन्दरी जिस उपाय से मुझे प्राप्त हो सके-तम उसी उपाय को करो नहीं तो मैं इसके मोह में अपने प्राणों का परित्याग कर दूंगा ॥२॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्य सा बहुशः श्रुत्वा वाचं विलपतस्तदा ।
विराटमहिषी देवी कृपाञ्चक्रे मनस्विनी ॥३॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! विराट-राज की महिषी, मनस्विनी, रानी सुदेष्णा, कामातुर होकर बकते हुए उस कीचक वाणी को सुन कर पिघल गई ॥३॥

सुदेष्णोवाच—

स्वमन्त्रमभिसन्धाय तस्यार्थमनुचिन्य च ।
उद्योगञ्चैव कृष्णायाः सुदेष्णा सूतमब्रवीत् ॥४॥

इसने अपने मन में निश्चय करके कीचक के कार्य की सिद्धि के लिए सोचा। रानी सुदेष्णा द्रौपदी की प्राप्ति के लिए कीचक को उद्योग बतलाने लगी ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वणि त्वं समुद्दिश्य सुरामन्नञ्च कारय ।
तत्रैनां प्रेषयिष्यामि सुराहारीं तवान्तिकम् ॥५॥

सुदेष्णा बोली—हे कीचक ! तू किसी उत्सव पर सुरा और और उत्तम २ भोजनों की तय्यारी करा । मैं सुरा लेने को तेरे पास इस सुन्दरी को भेजूंगी ॥५॥

तत्रसम्प्रेषितामेनां विजने निरवग्रहे ।
सान्त्वयेथा यथाकाम सान्त्वमाना रमेद्यदि ॥६॥

सब प्रकार की विघ्न-बाधाओं से रहित एकान्त स्थान में भेजी हुई, उस सुन्दरी को तू अपनी इच्छानुसार समझा लेना । सम्भव है, एकान्त में समझाने से तुझ से प्रसन्न होजावे ॥६॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्तः स विनिष्क्रम्य भगिन्या वचनात्तदा ।
सुरामाहारयामास राजार्हां सुपरिष्कृताम् ॥७॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इस प्रकार अपनी बहन सुदेष्णा के कहने पर उसके वचनों को मान कर कीचक बाहर चला आया और राजाओं के योग्य, स्वच्छ सुरा खिचवाने लगा ।

भक्षांश्च विविधाकारान् बहूंश्चोच्चावचांस्तदा ।
कारयामास कुशलैरन्नपानं च शोभनम् ॥८॥

इसी तरह अनेक भांति के उत्तम २ बहुतसे भोजन और उत्तम २ अन्नपान कुशल रसोइयों से तय्यार करावाये ॥८॥

तस्मिन् कृते तदा देवी कीचकेनोपमन्त्रिता ।
सुदेष्णा प्रेषयामास सैरिन्ध्रीं कीचकालयम् ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब यह सामान तय्यार हो गया, तो कीचक ने सुदेष्णा देवी को निमन्त्रित किया। सुदेष्णा ने कीचक के भवन पर जाने को सैरिन्ध्री को आज्ञा दी ॥९॥

सुदेष्णोवाच—

उत्तिष्ठ गच्छ सैरिन्ध्री कीचकस्य निवेशनम् ।
पानमानय कल्याणि पिपासा मां प्रबाधते ॥१०॥

सुदेष्णा बोली—हे सैरिन्ध्री ! तुम उठो और जरा कीचक के भवन पर चली जाओ। हे कल्याणि ! तुम थोड़ी सी सुरा ले आओ, मुझे प्यास बहुत लग रही है ॥१०॥

सैरिन्ध्र्युवाच—

न गच्छेयमहं तस्य राजपुत्रि निवेशनम् ।
त्वमेव राज्ञि जानासि यथा स निरपत्रपः ॥११॥

सैरिन्ध्री बोली—हे राजपुत्रि ! मैं इस नीच कीचक के घर पर नहीं जाऊंगी। हे रानी ! जैसा वह निर्लज्ज है, यह तुम स्वयं जानती हो ॥११॥

न चाहमनवद्याङ्गि तव वेश्मनि भाविनि ।
कामवृत्ता भविष्यामि पतीनां व्यभिचारिणी॥१२॥

हे सर्वाङ्ग-सुन्दरि ! भामिनी ! मैं तेरे भवन पर स्वेच्छाचारिणी और व्यभिचारिणी होकर पतियों के साथ विश्वासघात नहीं करूंगी ॥१२॥

त्वं चैव देवि जानासि यथा स समयः कृतः ।
प्रविशन्त्या मया पूर्वं तव वेश्मनि भाविनि ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे मनस्विनि ! देवि ! तुमको मेरे समय (शर्त) का स्मरण होगा, जो मैंने तेरे भवन में प्रवेश करने के समय किया था ।१३।

कीचकस्तु सुकेशान्ते मूढ़ो मदनदर्पितः ।
सोऽवमंस्यति मां द्रष्ट्वा न यास्ये तत्रशोभने॥१४॥

हे सुन्दर-केशों-वाली ! शोभने ! मूढ़, कामान्ध, कीचक, मुझे देखते ही मुझ पर हाथ डाल देगा—इससे मैं उसके यहां नहीं जाऊंगी ॥१४॥

सन्ति बह्व्यस्तव प्रेष्या राजपुत्रि वशानुगाः ।
अन्यां प्रेषय भद्रन्ते स हि मामवमंस्यते ॥१५॥

हे राजपुत्रि ! तुम्हारी आज्ञा में रहने वाली अनेक दासी हैं । हे कल्याणि ! तुम कृपा करके किसी दूसरी को भेज दो, वह नीच मुझ पर आक्रमण किए विना नहीं रहेगा ॥१५॥

सुदेष्णोवाच—

नैवं त्वां जातु हिंसात्स इतः संप्रेषिता मया ।
इत्युक्त्वा प्रददौ पात्रं सपिधानं हिरण्मयम् ॥१६॥

सुदेष्णा बोली—हे सैरिन्ध्री ! मुझ से भेजी हुई तुझ पर वह कभी हाथापाई नहीं करेगा । इतना कह कर सुदेष्णा ने ढक्कनदार एक सुवर्ण का पात्र उसको दे दिया ॥१६॥

सा शङ्कमाना रुदती दैवं शरणमीयुषी ।
प्रातिष्ठत सुराहारी कीचकस्य निवेशनम् ॥१७॥

इसको बड़ी ही शङ्का हो रही थी और यह परमात्मा की शरण चाह रही थी । इस प्रकार द्रौपदी, सुरा लेने को कीचक के घर पर पहुंची ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैरन्ध्र्युवाच—

यथाहमन्यं भर्तृभ्यो नाभिजानामि कञ्चन ।
तेन सत्येन मां प्राप्तां मा कुर्य्यात् कीचको वशे॥१८॥

सैरन्ध्री मन में कहती जा रही है, कि जो मैंने अपने पतियों से भिन्न किसी का मन से भी चिन्तन नहीं किया हो, तो इस सत्य के बल से कीचक के भवन पर कीचक मुझे वश में न कर सके ॥१८॥

वैशम्पायन उवाच—

उपातिष्ठत सा सूर्य्यं मुहूर्त्तमबला ततः ।
स तस्यास्तनुमध्यायाः सर्वं सूर्य्योऽबुद्धवान् ॥१९॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! अबला द्रौपदी ने थोड़ी देर सूर्य की उपासना की । सूर्य ने भी इस सूक्ष्म-कटि-धारण-करने वाली द्रौपदी की सारी घटना जान ली ॥१९॥

अन्तर्हितं ततस्तस्या रक्षो रक्षार्थमादिशत् ।
तच्चैनां नाजहात्तत्र सर्वावस्थास्वनिन्दिताम् ॥२०॥

सूर्य ने द्रौपदी की रक्षा के लिए, एक राक्षस को नियुक्त कर दिया । यह राक्षस, सारी अवस्थाओं में इस प्रशंसनीय वनिता का साथ नहीं छोड़ने वाला था ॥२०॥

तां मृगीमिव संत्रस्तां दृष्ट्वा कृष्णां समीपगाम् ।
उदतिष्ठन्मुदा सूतो नावं लब्ध्वेव पारगः ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीसुराहरणेप त्रयोदशोऽध्यायः ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिणी की तरह भय-भीत, समीप पहुँची हुई, द्रौपदी को देखकर सूत-पुत्र, कीचक, बड़े आनन्द से उठा—जैसे पार जाने वाले को नौका मिल गई हो ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत कीचकवधपर्व में द्रौपदी के सुरा लेने को भेजने का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ

—:o:—

सोलहवां अध्याय

कीचक उवाच—

स्वागतं ते सुकेशान्ते सुव्युष्टा रजनी मम।
स्वामिनी त्वमनुप्राप्ता प्रकुरुष्व मम प्रियम् ॥१॥

कीचक कहने लगा—हे सुन्दर-केश-प्रान्त-वाली! तुम्हारा स्वागत हो। तुम्हारी प्रीतिक्षा में मेरी सारी रात व्यतीत हो गई। तुम तो मेरी स्वामिनी हो—अब जो मेरा प्रिय है, उसे करो॥१॥

सुवर्णमालाः कम्बूंश्च कुण्डले परिहाटके।
नाना पत्तनजे शुभ्रे मणिरत्नञ्च शोभनम् ॥२॥
आहरन्तु च वस्त्राणि कौशिकान्यजिनानि च।
अस्ति मे शयनं दिव्यं त्वदर्थमुपकल्पितम्।
एहि तत्र मया सार्द्धं पिबस्व मधुमाधवीम् ॥३॥

हे शुभे! अनेक देशों के बने हुए सुवर्ण के हार, सुवर्ण के कड़े और कुण्डल, सुन्दर मणि और रत्न, रेशमी-वस्त्र, उत्तम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगादि जन्तुओं के चर्म ग्रहण करो। मैंने यह शय्या तुम्हारे मनोरथ से ही सजा रखी है। अब तुम आओ और मेरे साथ मधु (महुवे) के पुष्पों की मदिरा का पान करो ॥२-३॥

द्रौपद्युवाच—

अप्रैषीद्राजपुत्री मां सुराहारीं तवान्तिकम् ।
पानमाहर मे क्षिप्रं पिपासा मयि चाब्रवीत् ॥४॥

द्रौपदी बोली—मुझे राजमहिषी ने तुम्हारे पास सुरा लेने भेजा है। तुम मुझे जल्दी से जल्दी सुरा दे दो, क्योंकि उन्हें प्यास बहुत लग रही है ॥४॥

कीचक उवाच—

अन्या भद्रे नयिष्यन्ति राजपुत्र्याः प्रतिश्रुतम् ।
इत्येनां दक्षिणे पाणौ सूतपुत्रः परामृषत् ॥५॥

कीचक बोला—हे भद्रे! राजपुत्री की मंगाई हुई मदिरा को तो कोई और दासी ले जावेगी। इतना कह कर इस सूत-पुत्र ने द्रौपदी के दायें हाथ को कलाई पकड़ ली ॥५॥

द्रौपद्युवाच—

यथैवाहं नाभिचरे कदाचित् पतीन्मदाद्वै मनसापि जातु।
तेनैव सत्येन वशीकृतं त्वां द्रष्टास्मि पाप परिकृष्यमाणम् ॥

द्रौपदी बोली—हे पापी! जो मैंने भूल कर मन से कभी भी अपने पतियों के विरुद्ध आचरण नहीं किया हो, तो उसी सत्य से परवश हुए तुझे (गन्धर्वों से) इधर उधर खैंचा जाता हुआ देखूं ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

स तामभिप्रेक्ष्य विशालनेत्रां जिघृक्षमाणःपरिभर्त्सयन्तीम्।
जग्राह तामुत्तरवस्त्रदेशे स कीचकस्तां सहसाक्षिपन्तीम् ॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! सैरिन्ध्री के पकड़ने की चेष्टा करने वाले कीचक ने, फटकार लगाती हुई, झटका देकर अपने को बचा लेने वाली, विशाल-नेत्र-धारिणी सैरिन्ध्री(द्रौपदी) के उत्तर-वस्त्र का पल्ला पकड़ लिया ।।७।।

प्रगृह्यमाणा तु महाजवेन मुहुर्विनिश्वस्य च राजपुत्री ।
चिक्षेप तं गाढममृष्यमाणा प्रवेपमानातिरुषा शुभाङ्गी ।
तया समाक्षिप्ततनुः स पापः पपात शाखीव निकृत्तमूलः॥

कीचक ने बड़े वेग से लपक कर उसे पकड़ लिया । राजपुत्री, द्रौपदी, बार २ श्वास लेती हुई, कांपने लगी । इस सुन्दरी ने उसके बल-पूर्वक किए आक्रमण को न सहकर क्रोध से ऐसा झटका दिया, कि वह नीच कीचक, जड़ से कटे हुए वृक्ष की तरह द्रौपदी के धक्के से नीचे गिर पड़ा ॥८॥

सा गृहीता विधुन्वाना भूमावाक्षिप्य कीचकम्।
सभां शरणमागच्छद्यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥९॥

कीचक से पकड़ी हुई और कांपती २ द्रौपदी कीचक को भूमि में गिरा कर जहां राजा युधिष्ठिर था, उस सभा में रक्षा के लिए पहुंची ॥९॥

तां कीचकः प्रधावन्तीं केशपाशे परामृशत् ।
अथैनां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदावधीत् ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग निकली हुई सैरिन्ध्री (द्रौपदी) के दौड़कर नीच कीचक ने बाल पकड़ लिए और राजा विराट के देखते २ भूमि में गिरा कर एक लात लगाई ॥१०॥

तस्या योऽसौ तदार्केण राक्षसः सन्नियोजितः ।
स कीचकमपोवाह वातवेगेन भारत ॥११॥

हे भारत ! पूर्वकाल में सूर्य ने द्रौपदी के प्राणों की रक्षा लिए जो एक राक्षस नियुक्त किया था, वह वायु के वेग से कीचक को उड़ा ले गया ॥११॥

स पपात तदा भूमौ रक्षोबलसमाहतः ।
विघूर्णमानो निश्चेटश्छन्नमूल इव द्रुमः ॥१२॥

इसी राक्षस के बल से टकरा कर जड़ से कटे हुए वृक्ष की तरह घूमता हुआ चेष्टाहीन, कीचक भूमि में गिर पड़ा ॥१२॥

ताश्चासीनौ ददृशतुर्भीमसेनयुधिष्ठिरौ ।
अमृष्यमाणौ कृष्णायाः कीचकेन पराभवम् ॥१३॥

उस सभा में बैठे हुए, भीमसेन और युधिष्ठिर ने भी इस घटना को देखा। इनसे कीचक द्वारा किया हुआ, द्रौपदी का यह अपमान नहीं सहा गया ॥१३॥

तस्य भीमो वधप्रेप्सुः कीचकस्य दुरात्मनः ।
दन्तैर्दन्तांस्तदा रोषान्निष्पिपेष महामनाः ॥१४॥

इस दुरात्मा कीचक का भीमसेन ने वध करना चाहा। यह महाबली, उस समय अपने दांतों को पीसने लगा ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूमच्छायामभजतां नेत्रे चोच्छ्रितपक्ष्मणी ।
सस्वेदा भ्रुकुटी चोग्रा ललाटे समवर्त्तत ॥१५॥

भीमसेन की आँखों की पलक क्रोध से चढ़ गई और इसकी आंखों के आगे काली पीली चकाचौंध आ गई। इसके ललाट में पसीने आ गए और भ्रुकुटी तन गई ॥१५॥

हस्तेन ममृदे चैव ललाटं परवीरहा ।
भूयश्च त्वरितः क्रुद्धः सहसोत्थातुमैच्छत ॥१६॥

इस शत्रु-नाशक भीम ने अपने ललाट को हाथ से पोंछ लिया और यह क्रुद्ध होकर उठने की इच्छा करने लगा ॥१६॥

अथावमृद्नादङ्गुष्ठमङ्गुष्ठेन युधिष्ठिरः ।
प्रबोधनभयाद्राजा भीमं तं प्रत्यषेधयत् ॥१७॥

राजा युधिष्ठिर ने अपने हाथ के अंगूठे से पैर का अंगूठा दबाया और अवधि के व्यतीत होने से पूर्व ही प्रकट हो जाने के भय से भीम को रोक दिया ॥१७॥

तं मत्तमिवमातङ्गं वीक्ष्यमाणवनस्पतिम् ।
स तमावारयामास भीमसेनं युधिष्ठिरः ॥१८॥

भीमसेन, प्रहार करने को मदोन्मत्त हाथी की तरह वनस्पति (वृक्ष) की ओर देखने लगा। परन्तु राजा युधिष्ठिर ने सङ्केत से उसको रोक ही दिया ॥१७॥

आलोकयसि किं वृक्षं सूद दारुकृतेन वै ।
यदि ते दारुभिः कृत्यं बहिर्वृक्षान्निगृह्यताम् ॥१९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे सूद ! क्या ? लकड़ियों की इच्छा से इस वृक्ष की अ
देख रहे हो। यदि तुम को लकड़ियों की आवश्यकता है, तो
बाहर के वृक्षों से काट लो ॥१९॥

सा सभाद्वारमासाद्य रुदती मत्स्यमब्रवात् ।
अवेक्ष्यमाणा सुश्रोणी पतींस्तान्दीनचेतसः ॥२०॥

यह सैरिन्ध्री, सभा के द्वार पर पहुंच कर मत्स्यराज से,
कहने लगी। यह पुष्ट-नितम्बों वाली, अपने दीन और आतुर
पतियों की ओर भी देखती जा रही थी ॥२०॥

आकारमभिरक्षन्ती प्रतिज्ञां धर्मसंहिताम् ।
दह्यमानेव रौद्रेण चक्षुषा द्रुपदात्मजा ॥२१॥

द्रौपदी, धर्म सहित की हुई अपनी प्रतिज्ञा के कारण, अपने
स्वरूप को छुपा रही थी और यह इस समय अपने रौद्र चक्षु से
जलती हुई आग सी प्रतीत हो रही थी ॥२१॥

द्रौपद्युवाच—

येषां वैरी न स्वपिति षष्ठेऽपि विषये वसन् ।
तेषां मां मानिनीं भार्य्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥२२॥
ये दद्युर्न च याचेयुर्ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ।
तेषां मां मानिनीं भार्य्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥२३॥
येषां दुन्दुभिनिर्घोषो ज्याघोषः श्रूयतेऽनिशम् ।
तेषां मां मानिनीं भार्य्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥२४॥
ये च तेजस्विनो दान्ता बलवन्तोऽतिमानिनः ।
तेषां मां मानिनीं भार्य्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वलोकमिमं हन्युर्धर्मपाशासितास्तु ये ।
तेषां मां मानिनीं भार्य्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥२६॥

द्रौपदी कहने लगी—जिनके वैरी पांच देशों को छोड़ कर छटे देश में पहुँच जाने पर भी सुख से नहीं सो सकते थे, जो ब्राह्मण-रक्षक, सत्यवादी, सदा दान देते थे और किसी से कुछ लेते नहीं थे, जिनके दुन्दुभि (नगाड़े) और धनुष की प्रत्यञ्चा का शब्द सदा गूँजता रहता था, जो तेजस्वी, उदार, बलवान् और अभिमानी हैं, जो धर्मपाश से बन्धे न हों, तो अब भी सारे लोकों को नष्ट कर सकते हैं, उनकी ही मनस्विनी भार्या के इस नीच सूत-पुत्र कीचक ने अपने पैर की ठोकर लगाई है ॥२३-२६॥

शरणं ये प्रपन्नानां भवन्ति शरणार्थिनाम् ।
चरन्ति लोके प्रच्छन्नाः क्व नु तेऽद्य महारथाः ॥२७॥

क्लेशातुर और शरण के अभिलाषियों को जो शरण देते थे, वे महारथी, लोक में छुपे हुए फिर रहे हैं—न मालूम आज कहां हैं ॥२७॥

कथन्ते सूतपुत्रेण बध्यमानां प्रियाम् सतीम् ।
मर्षयन्ति यथा क्लीबा बलवन्तोऽमितौजसः ॥२८॥

अत्यन्त ओजस्वी, महाबली, आज यहां होते, तो क्लीब ज ड़े) की तरह सूत-पुत्र कीचक द्वारा किये हुए अपनी प्रिय । सती भार्या का अपमान कैसे सह सकते थे ॥२२॥

क्व नु तेषाममर्षश्च वीर्य्यन्तेजश्च वर्त्तते ।
न परीप्सन्ति ये भार्य्यां बध्यमानां दुरात्मना ॥२९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका क्रोध, वीर्य और तेज, कहाँ चला गया—जो दुरात्मा कीचक के मार देने पर भी अपनी भार्या के अपमान मार्जन की चेष्टा नहीं करते हैं ॥२९॥

मया तु शक्यं किङ्कर्त्तुं विराटे धर्मदूषके ।
यः पश्यन्मां मर्षयति वध्यमानामनागसम् ॥३०॥

अब मैं कर ही क्या सकती हूं, जो विराट-राज ही धर्म-हीन हो गया है। जिसने मुझे निरपराध, मारी हुई, देखकर भी सब कुछ सहन कर लिया और कुछ नहीं कहा ॥३०॥

न राजा राजवत्किञ्चित् समाचरति कीचके ।
दस्यूनामिव धर्मस्ते न हि संसदि शोभते ॥३१॥

यह राजा विराट, कीचक के लिए कोई राजा के योग्य व्यवस्था नहीं दे रहा है। हे विराट ! तुम्हारा धर्म तो चोर लुटेरों का सा हो रहा है—तुम सभा में बैठे सुशोभित नहीं होते हो ॥३१

नाहमेतेन युक्ता वै हन्तुं मत्स्य तवान्तिके ।
सभासदश्च पश्यन्तु कीचकस्य व्यतिक्रमम् ॥३२॥

हे मत्स्यराज ! तुम्हारे सामने ही कीचक का मुझे मारन किसी भी तरह योग नहीं हो सकता है। हे सभासदों ! आज तुम कीचक के इस व्यक्तिक्रम (उलटे व्यवहार) को स्वयं देख लो :

कीचको न च धर्मज्ञो न च मत्स्यः कथञ्चन ।
सभासदोऽप्यधर्मज्ञा य एनं पर्युपासते ॥३३॥

कीचक तो धर्महीन है ही, परन्तु यह मत्स्यराज भी धर्म-शून्य हो गया है। मैं तो इन सभासदों को भी धर्महीन ही समझती हूँ, जो सभा में बैठे हुए इसका आदर कर रहे हैं ।३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

एवंविधैर्वचोभिः सा तदा कृष्णाश्रुलोचना ।
उपालभत राजानं मत्स्यानां वरवर्णिनी ॥३४॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! अश्रुओं से व्याप्त लोचनों वाली, सुन्दरी द्रौपदी ने इस प्रकार के अनेक वचनों से मत्स्य देश के राजा को फटकार लगाई ॥३४॥

विराट उवाच—

परोक्षं नाभिजानामि विग्रहं युवयोरहम् ।
अर्थतत्त्वमविज्ञाय किन्नु स्यात् कौशलं मम ॥३५॥

राजा विराट बोला—मुझे तुम्हारे पहिले झगड़े का कुछ भी पता नहीं है। झगड़े के पूर्व तत्व के विना जाने निर्णय करना कुशलता नहीं है ॥३५॥

वैशम्पायन उवाच—

ततस्तु सभ्या विज्ञाय कृष्णां भूयोऽभ्यपूजयत् ।
साधु साध्विति चाप्याहुः कीचकं च व्यगर्हयन् ॥३६॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! सभासदों ने द्रौपदी को एक सदाचारिणी सैरिन्ध्री (दासी) जानकर इसकी बड़ी प्रशंसा की और धन्य २ शब्द का उच्चारण करके तथा दुरात्मा कीचक की बड़ी निन्दा की ॥३६॥

सभ्या ऊचुः—

यस्येयं चारुसर्वाङ्गी भार्य्या स्यादायतेक्षणा ।
परो लाभस्तु तस्य स्यान्न च शोचेत् कथञ्चन ॥३७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभासद बोले—यह विशाल-नेत्रों-वाली, सर्वाङ्ग-सुन्दरी जिसकी भार्या है, उसको सबसे बड़ा लाभ हो चुका। अबउसको तो कोई किसी बात की चिन्ता ही नहीं करनी चाहिए ॥३७॥

न हीदृशी मनुष्येषु सुलभा वरवर्णिनी।
नारी सर्वानवद्याङ्गी देवीं मन्यामहे वयम् ॥३८॥

मनुष्यों में ऐसी सर्वाङ्ग-सुन्दरी उत्तम स्त्री मिलना कठिन ही है। हम तो इसको देवी समझते हैं ॥३८॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं संपूजयन्तस्ते कृष्णां प्रेक्ष्य सभासदः।
युधिष्ठिरस्य कोपात् ललाटे स्वेद आगमत् ॥३९॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन! इस प्रकार सभासदों ने प्रशंसा करके द्रौपदी की ओर देखा और फिर युधिष्ठिर की ओर दृष्टि उठाई, तो देखा कि युधिष्ठिर के मस्तक में कोप से पसीना आ गया है ॥३९॥

अथाब्रवीद्राजपुत्रीं कौरव्यो महिषीं प्रियाम्।
गच्छ सैरिन्ध्रि मात्रस्थाः सुदेष्णाया निवेशनम् ॥४०॥

अब कुरु-वंश-श्रेष्ठ, राजा युधिष्ठिर, अपनी प्रिया राज-महिषी द्रौपदी से बोला—हे सैरिन्ध्री! तुम यहां न खड़ी रहो, रानी सुदेष्णा के महलों में चली जाओ ॥४०॥

भर्त्तारमनुरुध्यन्तः क्लिश्यन्ते वीरपत्नयः।
शुश्रूषया क्लिश्यमानाः पतिलोकं जयन्त्युत ॥४१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो वीर-पत्नी अपने भर्ता का प्रिय करना चाहती है। उन पर ऐसे ही क्लेश आया करते हैं। जो अपने पति की इस तरह क्लेश से सेवा करती है, वे ही पति-लोकों को जीत लेती हैं ॥४१॥

मन्ये न कालं क्रोधस्य पश्यन्ति पतयस्तव।
तेन त्वां नाभिधावन्ति गन्धर्वा सूर्यवर्चसः ॥४२॥

जब तेरे (गन्धर्व) पति देख रहे हैं और क्रोध नहीं करते हैं, तो यही समझो, कि अभी क्रोध करने का समय नहीं आया है। यही कारण है कि सूर्य के समान तेजस्वी, गन्धर्व, अभी दौड़कर नहीं आ रहे हैं ॥४२॥

अकालज्ञासि सैरिन्ध्रि शैलूषीव विरोदिषि।
विघ्नं करोषि मत्स्यानां दिव्यतां राजसंसदि ॥४३॥

हे सैरिन्ध्री! तू देश काल को नहीं जानती और नाटक करने वाली की तरह हो रही है। तू राजसभा में खेलते हुए मत्स्यों का बड़ा ही विघ्न कर रही है ॥४३॥

गच्छ सैरिन्ध्री गन्धर्वाः करिष्यन्ति तव प्रियम्।
व्यपनेष्यन्ति ते दुःखं येन ते विप्रियं कृतम् ॥४४॥

हे सैरिन्ध्री! अब तू जा, गन्धर्व तेरी स्वयं सहायता कर देंगे। जिसने तेरा अपमान किया है, उस नीच को मारकर वे ही तेरे दुःख का मार्जन करेंगे ॥४४॥

सैरिन्ध्र्युवाच—

अतीव तेषां घृणिनामर्थेहं धर्मचारिणी।
तस्य तस्यैव ते वध्या येषां ज्येष्ठोऽक्षदेविता ॥४५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैरिन्ध्री बोली—हे द्विजराज ! मैं जिनकी धर्मचारिणी पत्नी हूं, वे बड़े ही दयालु हैं, उनमें प्रत्येक, गन्धर्व इन कीचकों को मार सकता है, जो बड़ा गन्धर्व, पांसों के खेल में अनुरक्त नहीं होता ॥४५॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्त्वा प्राद्रवत् कृष्णा सुदेष्णाया निवेशनम् ।
केशान्मुक्त्वा च सुश्रोणी संरम्भाल्लोहितेक्षणा॥४६॥

वैशम्पायन बोला—हे राजन् ! इतना कह कर अपने खुले बालों को पकड़ कर, क्रोध से लाल आंखें की हुई, पुष्ट-नितम्बों वाली द्रौपदी रानी सुदेष्णा के महल में चली गई ॥४६॥

शुशुभे वदनं तस्या रुदन्त्याः सुचिरं तदा।
मेघलेखाविनिर्मुक्तं दिवीव शशिमण्डलम् ॥४७॥

इस रोती हुई द्रौपदी का भी ख, दिन में मेघों से युक्त, आकाश में चन्द्रलेखा के तुल्य सुशोभित दिखाई देता था ॥४७॥

सुदेष्णोवाच—

कस्त्वावधीद्वरारोहे कस्माद्रोदिषि शोभने ।
कस्याद्य न सुखं भद्रे केन ते विप्रियं कृतम् ॥४८॥

सुदेष्णा बोली—हे वरारोहे ! शोभने ! तुमको किसने मार दिया है, तुम क्यों रो रही हो । किसका आज सुख नष्ट होने वाला है, जिसने तुम्हारा यह अपमान कर डाला है ॥४८॥

द्रौपद्युवाच—

कीचको मावधीत्तत्र सुराहारीं गतान्तव ।
सभायां पश्यतो राज्ञो यथैव विजने वने ॥४९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदी बोली—मैं तुम्हारे लिए सुरा लेने गई थी, निर्जन वन में (चोर डाकुओं की तरह) मुझे राजा के सम्मुख ही कीचक ने पैर की ठोकर से मारा है ॥४९॥

सुदेष्णोवाच—

घातयामि सुकेशान्ते कीचकं यदि मन्यसे ।
योऽसौ त्वां कामसम्मत्तो दुर्लभामवमन्यते ॥५०॥

सुदेष्णा ने कहा—हे सुन्दर केशों वाली ! जो काम से मोहित होकर तुझ दुर्लभ कामिनी का पीछा करके अपमान करता है। मैं उस कीचक को मरवा डालूंगी ॥५०॥

सैरिन्ध्र्युवाच—

अन्ये चैव वधिष्यन्ति येषामागः करोति सः।
मन्ये चैवाद्य सुव्यक्तं यमलोकं गमिष्यति ॥५१॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीपरिभवे षोड़शोऽध्यायः ॥१६॥

सैरिन्ध्री ने कहा—हे रानी ! तुम क्या मरवा दोगी, यह जिनका अपराध कर रहा है, वे ही इसको मार देंगे। मेरे खयाल में तो वह आज ही निश्चय यमलोक को चला जावेगा ।५१

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत कीचकवधपर्व में द्रौपदी के अपमान का सोलहवां अध्याय पूरा हुआ ।

******

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्रहवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

सा हता सूतपुत्रेण राजपत्नी यशस्विनी ।
वधं कृष्णा परीप्सन्ती सेनावाहस्य भामिनी ॥१॥

वैशम्पायन बोले--हे राजन् ! राजपत्नी यशस्विनी द्रौपदी को जब से सूत-पुत्र कीचक ने मारी, तभी से यह भामिनी, इस सेनापति कीचक का वध चाह रही थी ॥१॥

जगामावासमेवाथ तदा सा द्रुपदात्मजा ।
कृत्वा शौचं यथान्यायं कृष्णा सा तनुमध्यमा॥२॥

सूक्ष्म-कटि-वाली, द्रुपद-पुत्री कृष्णा, यथा-योग्य शौच करके अपने निवास स्थान को चली गई ॥२॥

गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा ।
चिन्तयामास रुदती तस्य दुःखस्य निर्णयम् ॥३॥

इसने अपने शरीर और वस्त्रों को जल से धो डाला । यह रोती जारही थी और इस दुःख का बदला लेने का विचार कर रही थी ।

किङ्करोमि क्व गच्छामि कथं कार्य्यं भवेन्मम ।
इत्येवं चिन्तयित्वा सा भीमं वै मनसागमत् ॥४ ॥
नान्यः कर्त्ता ऋते भीमान्ममाद्य मनसः प्रियम् ।

अब मैं क्या करूं और किसके पास जाऊं—किस तरह मेरा कार्य बन सकेगा--इस प्रकार मन से सोचती हुई, द्रौपदी ने भीम के पास जाना निश्चित किया। इसने सोचा कि मेरे मनोरथ को भीम के सिवा आज अन्य कोई पूरा नहीं कर सकता था ॥४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत उत्थाय रात्रौ सा विहाय शयनं स्वकम् ॥५॥
प्राद्रन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती ।

इसके अनन्तर यह रात को उठी और इसने अपनी शय्या छोड़ दी। यद्यपि कृष्णा, सनाथ थी, तो भी अनाथ की तरह नाथ (रक्षक) की इच्छा से चल पड़ी ॥५॥

भवनं भीमसेनस्य क्षिप्रमायतलोचना ।
दुःखेन महता युक्ता मानसेन मनस्विनी ॥६॥

यह विशाल-नेत्रों-वाली, मनस्विनी कृष्णा, बड़े भारी दुःखी मन से युक्त हुई, शीघ्र ही भीमसेन के भवन पर पहुंच गई ॥६॥

सैरिन्ध्र्युवाच—

तस्मिन् जीवति पापिष्ठे सेनावाहे मम द्विषि।
तत्कर्म कृतवत्यद्य कथं निद्रान्निषेवसे ॥७॥

सैरिन्ध्री मनमें सोचती जा रही थी, कि मैं भीम से कहूंगी हे भीम! तुम इस पापी सेनापति, मेरे द्वेषी और मेरे अपमान करने वाले, कीचक के जीवित रहने पर भी कैसे आनन्द की नींद में सो रहे हो ॥७॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वाथ तां शालां प्रविवेश मनस्विनी ।
यस्यां भीमस्तथा शेते मृगराज इव श्वसन् ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन बोले-हे राजन् ! यह मनस्विनी द्रौपदी, इतना मन में कहती हुई उसी शाला में घुसी, जिसमें भीम, मृगेन्द्र की तरह श्वास लेता हुआ, सो रहा था ॥८॥

तस्या रूपेण सा शाला भीमस्य च महात्मनः
सम्मूर्च्छितेव कौरव्य प्रजज्वाल च तेजसा ॥९॥

हे कुरु-वंश-श्रेष्ठ, द्रौपदी की कान्ति और महात्मा भीमके तेज से शोभा पाकर वह शाला चमक उठी ॥९॥

सा वै महानसं प्राप्य भीमसेनं शुचिस्मिता ।
सर्वश्वेतेव माहेयी वने जाता त्रिहायनी ।
उपातिष्ठत पाञ्चाली वासितेव नरर्षभम् ॥१०॥

वन में उत्पन्न, तीन वर्ष की कामातुर समस्त श्वेत गौ, जैसे गर्भ धारण के लिए बलीवर्द के पास लपकी जाती है, द्रौपदी भी उसी तेजी से नरर्षभ भीम के पास चली जा रही थी ॥१०॥

सा लतेव महाशालं फुल्लं गोमतितीरजम् ।
परिष्वजति पाञ्चाली मध्यमं पाण्डुनन्दनम् ॥११॥

गोमती के तीर पर खिले हुए महाशाल के वृक्ष से जैसे लता लिपट जाती है, उसी तरह मध्यम पाण्डु-नन्दन भीम का द्रौपदी ने आलिङ्गन किया ॥११॥

बाहुभ्यां परिरभ्यैनं प्राबोधयदनिन्दिता ।
सिंहं सुप्तं वने दुर्गे मृगराजवधूरिव ॥१२॥
भीमसेनमुपाश्लिष्यद्धस्तिनीव महागजम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्व-गुणसुन्दरी, द्रौपदी ने दुर्गम वन में सोते हुए सिंह को सिंहनी के समान भुजाओं से आलिङ्गन करके जगाया। हथिनी जैसे हाथी का आलिङ्गन करती है, द्रौपदी ने भीम का उस तरह आलिङ्गन किया ॥१२॥

वीणेव मधुरालापा गान्धारं साधु मूर्छति ।
अभ्यभाषत पाञ्चाली भीमसेनमनिन्दिता ॥१३॥

सब तरह प्रशंसा के योग्य, पाञ्चाली द्रौपदी, गान्धार स्वर को बढ़ाती हुई, मधुर-स्वर-वाली वीणा की तरह मधुर स्वर से भीमसेन से कहने लगी ॥१३॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे भीमसेन यथा मृतः ।
नामृतस्य हि पापीयान् भार्य्यामालभ्य जीवति॥१४॥

हे भीमसेन ! उठ ? उठ ? मृतक की तरह कैसे सो रहा है। मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए वीर, पुरुष की भार्या को छेड़ लेने पर भी अभी तक पापी जीवित ही है ॥१४॥

स सम्प्रहाय शयनं राजपुत्रीप्रबोधितः ।
उपातिष्ठत मेघाभः पर्य्यङ्कं सोपसंग्रहे ॥१५॥

राजपुत्री द्रौपदी से जगाया हुआ, मेघ के सदृश आकारधारी भीम, गद्दे तकियों से युक्त शयन को छोड़कर नीचे खड़ा होगया।

अथाब्रवीद्राजपुत्रीं कौन्तेयो महिषीं प्रियाम् ।
केनास्यर्थेन सम्प्राप्ता त्वरितेव ममान्तिकम् ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब अपनी प्रिय राज-महिषी, राजपुत्री द्रौपदी से कुन्ती-पुत्र, भीम कहने लगा-हे द्रौपदी ! तुम बड़ी शीघ्रता से मेरे पास किस प्रयोजन से आई हो ॥१६॥

न ते प्रकृतिमान् वर्णः कृशा पाण्डुश्च लक्ष्यसे ।
आचक्ष्व परिशेषेण सर्वं विद्यामहं यथा ॥१७॥

तुम्हारा स्वाभाविक वर्ण नहीं रहा है, तुम तो दुर्बल और पीली पड़ गई । अब सारी कथा आरम्भ से सुनाओ-जिससे मुझे कुछ पता लगे ॥१७॥

सुखं वा यदि वा दुःखं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् ।
यथावत् सर्वमाचक्ष्व श्रुत्वा ज्ञास्यामि यत् क्षमम् ॥१८

यह वृत्तान्त सुखकारी हो या दुःखकारी, अप्रिय हो या प्रिय, तुम तो सब कुछ ठीक २ सुना दो, जिसको सुनकर ही मुझे ज्ञात होगा, कि मैं उसे कर सकता हूं या नहीं ॥१८॥

अहमेव हि ते कृष्णे विश्वास्यः सर्वकर्मसु ।
अहमापत्सु चापि त्वां मोक्षयामि पुनः पुनः ॥१९॥

हे कृष्णे ! तुम तो मेरे सब कामों का भरोसा रखती हो । मैं भी तुमको बार २ क्लेशों से मुक्त करने की चेष्टा करता ही रहता हूं ॥१९॥

शीघ्रमुक्त्वा यथाकामं यत्ते कार्य्यं विविक्षितम् ।
गच्छ वै शयनायैव पुरा नान्येन बुध्यते ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीभीमसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

तू शीघ्र से शीघ्र जिस कार्यको कहना चाहती है, उसे कहदे। इसके अनन्तर तू यहां से शीघ्र चली जा, कहीं कोई अन्य पुरुष पहिचान न ले ॥२०॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत कीचकवधपर्व में द्रौपदी भीम सम्वाद का सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

—:o:—

अट्ठारहवां अध्याय

द्रौपद्युवाच—

अशोच्यत्वं कुतस्तस्या यस्या भर्त्ता युधिष्ठिरः।
जानन् सर्वाणि दुःखानि किं मां त्वं परिपृच्छसि॥१॥

द्रौपदी बोली—हे भीम! जिसका पति राजा युधिष्ठिर हो, उस स्त्री को चिन्ता का अभाव कैसे प्राप्त हो सकता है अर्थात् वह शोक रहित कैसे हो सकती है। तू सब दुःखों को जानता है, परन्तु फिर भी अजान की तरह पूछ रहा है ॥१॥

यन्मां दासीप्रवादेन प्रातिकामी तदानयत्।
सभापरिषदो मध्ये तन्मां दहति भारत ॥२॥
पार्थिवस्य सुतानाम का नु जीवति मादृशी।
अनुभूयेदृशं दुःखमन्यत्र द्रौपदीं प्रभो ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भारत ! जब मुझे प्रातिकामी राजसेवक दासी कहकर राज सभा में सभासदों के सामने लाया, वह दुःख मुझे जलाता रहता है। हे प्रभो ! कौन मुझ जैसी राजपुत्री होगी, जो मुझ द्रौपदी को छोड़कर ऐसे दुःखों को भोग कर भी जीवित रह सके ॥३॥

वनवासगतायाश्च सैन्धवेन दुरात्मना ।
परामर्षो द्वितीयो वै सोढुमुत्सहते तु का ॥४॥

वनवास के दिन काटती हुई पर दुरात्मा जयद्रथ ने दूसरा आक्रमण किया। इस अपमान को अन्य कौन सह सकती थी ॥४

मत्स्यराज्ञः समक्षन्तु तस्य धूर्त्तस्य पश्यतः ।
कीचकेन पदामृष्टा का नु जीवति मादृशी ॥५॥

धूत मत्स्यराज के सामने ही देखते २ नीच कीचक ने अपने पैर की ठोकर से मुझे मारा है। इस दशा में मेरे सिवा अन्य कौन स्त्री जीवित रह सकती है ॥५॥

एवं बहुविधैः क्लेशैः क्लिश्यमानाश्च भारत।
न मां जानासि कौन्तेय किं फलं जीवितेन मे ॥६॥

हे भारत ! इस तरह अनेक क्लेशों से क्लेशित हुई मेरे क्लेशों को तुम लोग जब जानते ही नहीं हो, तो फिर मेरे जीने से ही क्या लाभ है ॥६॥

योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम भारत ।
सेनानीः पुरुषव्याघ्र श्यालः परमदुर्मतिः ॥७॥
स मां सैरिन्ध्रवेशेन वसन्तीं राजवेश्मनि ।
नित्यमेवाह दुष्टात्मा भार्य्या मम भवेति वै ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भारत ! पुरुष व्याघ्र ! राजा विराट का साला कीचक सेनापति, बड़ा दुष्ट है । यह दुष्टात्मा सैरिन्ध्री वेश में राजमहलों में रहती हुई, मुझे देखकर नित्य कहता रहता है, कि तू मेरी भार्या बन जा ॥७-८॥

तेनोपमन्त्र्यमाणाया वधार्हेण सपत्नहन् ।
कालेनेव फलं पक्वं हृदयं मे विदीर्य्यते ॥९॥

हे शत्रुघ्न ! वध के योग्य कीचक के इस आमन्त्रण को सुन कर समय पर पके हुए फल की तरह मेरा हृदय फट गया है ॥९॥

भ्रातरञ्च विगर्हस्व ज्येष्ठं दुर्द्यूतदेविनम् ।
यस्यास्मि कर्मणा प्राप्ता दुःखमेतदनन्तकम् ॥१०॥

नित्य द्यूत के खेलने में आसक्त अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर की तो समालोचना करो, जिसके कर्मोंसे मैं इन असंख्य क्लेशों को पा रही हूं ॥१०॥

को हि राज्यं परित्यज्य सर्वस्वं चात्मना सह ।
प्रव्रज्यायै व दीव्येत विना दुर्द्यूतदेविनम् ॥११॥

विना जुआरी के कौन ऐसा होगा, जो अपने राज्य को दाव पर लगा कर वनवास के लिए भी जुआ खेलने लगे ॥११॥

यदि निष्कसहस्रेण यच्चान्यत्सारवद्धनम् ।
सायं प्रातरदेविष्यदपि सम्वत्सरान् बहून् ॥१२॥
रुक्मं हिरण्यं वासांसि यानं युग्यमजाविकम् ।
अश्वाश्वतरसङ्घाश्च न जातुक्षयमावहेत् ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो यह सहस्र तोले सोने और बहुत से उत्तम २ धन से रात दिन भी बहुत से वर्षों तक जुआ खेलता रहता, तो भी इसका सोना, चांदी, वस्त्र, यान, रथ, अजा, भेड़, अश्व, अश्वतर (खच्चर) आदि के संघ कभी क्षीण नहीं हो सकते थे ॥१२-१३॥

सोऽयं द्यूतप्रवादेन श्रिया प्रत्यवरोपितः ।
तूष्णीमास्ते यथा मूढः स्वानि कर्माणि चिन्तयन् ॥१४

यह राजा युधिष्ठिर, द्यूत (जुआ) के प्रवाह (शौक) से ही राज्य-लक्ष्मी से च्युत हुआ है। यह अपने कर्मों को याद करके मूर्ख की तरह चुप बैठा रहता है ॥१४॥

दशनागसहस्राणि हयानां हेममालिनाम् ।
यं यान्तमनुयान्तीह सोऽयं द्यूतेन जीवति ॥१५॥

दश हजार हाथी और सोने की माला पहिने हुए, इतने ही घोड़े, इसकी यात्रा के समय इसके पीछे २ चलते थे, वही राजा युधिष्ठिर, आज विराटराज को जुआ खिलाकर अपना उदर भरता है ॥१५॥

रथाः शतसहस्राणि नृपाणाममितौजसाम् ।
उपासन्त महाराजमिन्द्रप्रस्थे युधिष्ठिरम् ॥१६॥

अत्यन्त-ओजस्वी राजाओं के एक लाख रथ, इन्द्रप्रस्थ में राजा युधिष्ठिर की सेवा में खड़े रहते थे ॥१६॥

शतं दासीसहस्राणां यस्य नित्यं महानसे ।
पात्रीहस्तं दिवरात्रमतिथीन् भोजयत्युत ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तरह एक लाख दासी, सोने के पात्र हाथ में लेकर राजा युधिष्ठिर की पाकशाला में दिन रात अतिथियों को भोजन कराती रहती थीं ॥१७॥

एष निष्कसहस्राणि प्रदाय ददतांवरः।
द्यूतजेन ह्यनर्थेन महता समुपाश्रितः ॥१८॥

यह दानी राजा युधिष्ठिर भी सहस्रों सुवर्ण की मुद्रा दान देकर भोजन करता था। इस द्यूत से खड़े हुए महान अनर्थ ने ही इसका नाश कर दिया है ॥१८॥

एनं हि स्वरसम्पन्ना बहवः सूतमागधाः।
सायम्प्रातरुपातिष्ठन् सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥१९॥

स्वच्छ, चमकते हुए मणियों सहित कुण्डल पहिने हुए, बहुत से स्वर सम्पन्न, सूत और मागध, प्रातः और सायङ्काल इसके गुणों का गान करते रहते थे ॥१९॥

सहस्रमृषयो यस्य नित्यमासन् सभासदः।
तपःश्रुतोपसम्पन्नाः सर्वकामैरुपस्थिताः ॥२०॥

इसकी सभा के सैकड़ों ऋषि सभासद् थे, जो तप और वेद से सम्पन्न और सब कामनाओं से परिपूर्ण थे ॥२०॥

अष्टाशीसहस्राणि स्नातका गृहमेधिनः।
त्रिंशद्दासीक एकैको यान् बिभर्त्ति युधिष्ठिरः ॥२१॥

अस्सी हज़ार गृहस्थी स्नातक और तीस हज़ार दास और दासी ऐसे थे, जिनका भरण पोषण, अकेला राजा युधिष्ठिर करता था ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रतिग्राहिणाञ्चैव यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
दश चापि सहस्राणि सोऽयमास्ते नरेश्वरः ॥२२॥

किसी से दान नहीं लेने वाले, दश सहस्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी, संन्यासी थे, जिनका पालन राजा युधिष्ठिर ही करते रहते थे ।२२।

आनृशंस्यमनुक्रोशः संविभागस्तथैव च ।
यस्मिन्नेतानि सर्वाणि सोऽयमास्ते नरेश्वरः ॥२३॥

कोमलता, दया, प्रत्येक का ठीक २ भाग प्रदानकर देना । ये सारे गुण जिस राजा में थे, वह केवल राजा युधिष्ठिर ही था ॥

अन्धान् वृद्धांस्तथानाथान् बालान् राष्ट्रेषु दुर्गतान्
बिभर्त्ति विविधान्राजा धृतिमान् सत्यविक्रमः ॥२४॥

यही धैर्यशाली, सत्य-पराक्रमी, राजा युधिष्ठिर, अन्धे, वृद्ध, राष्ट्र में दुर्गति भोगने वाले, अनाथ बालकों का भरण पोषण भी करता था ॥२४॥

सम्विभागमना नित्यमानृशंस्याद्युधिष्ठिरः ।
स एष निरयं प्राप्तो मत्स्यस्य परिचारकः ॥२५॥
सभायां देविता राज्ञः कङ्को ब्रूते युधिष्ठिरः ।

जो अपनी कोमल प्रकृति के कारण ही सबका भाग धर्म-पूर्वक प्रदान करता था, वही राजा युधिष्ठिर मत्स्यराज का सेवक बनकर आज नरक की सी यातना उठा रहा है और मत्स्यराज की सभा में द्यूत खिलाने वाला कङ्क-द्विज कहलाता है ॥२५॥

इन्द्रप्रस्थे निवसतः समये यस्य पार्थिवाः ।२६॥
आसन् बलिभृतः सर्वे सोऽद्यान्यैर्भृतिमिच्छति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब यह धर्मराज इन्द्रप्रस्थ में रहता था, तब सारे राजा इनका कर लेकर समय पर पहुंच जाते थे। वही युधिष्ठिर आज अन्य से अपना भरण पोषण चाहता है ॥२६॥

पार्थिवाः पृथिवीपाला यस्यासन्वशवर्त्तिनः ॥२७॥
स्ववशे विवशो राजा परेषामद्य वर्त्तते ।

पृथिवी के पालन करने वाले, अनेक राजा, जिसकी आज्ञा को मानते थे, वही स्वतन्त्र राजा आज परतन्त्र हो रहा है ॥२७॥

प्रताप्य पृथिवीं सर्वां रश्मिवानिव तेजसा ॥२८॥
सोऽयं राज्ञो विराटस्य सभास्तारो युधिष्ठिरः ।

किरणधारी सूर्य की तरह अपने तेज से जिसने सारी पृथिवी को तपा डाला, वही युधिष्ठिर, आज राजा विराट की सभा का सभासद् बना हुआ है ॥२८॥

यमुपासन्त राजानः सभायामृषिभिः सह ॥२९॥
तमुपासीनमन्यान्यं पश्य पाण्डव पाण्डवम् ।

हे पाण्डु-पुत्र ! भीम ! ऋषियों के साथ सभा में बैठे हुए, जिस युधिष्ठिर की राजा लोग, आज्ञा मानते रहते थे, वही आज अन्य की सेवा कर रहा है—तुम जरा इस खेल को तो देखो ॥२९॥

सदस्यं समुपासीनं परस्य प्रियवादिनम् ॥३०॥
दृष्ट्वा युधिष्ठिरं कोपो वर्द्धते मामसंशयम् ।

हे भीम ! सभासद् बनकर सभा में बैठे हुए और राजा से प्रिय-भाषण (चापलूसी की बातें) करते हुए राजा युधिष्ठिर को देख कर तो निःसन्देह मेरा क्रोध उबल पड़ता है ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतदर्हं महाप्राज्ञं जीवितार्थेऽभिसंस्थितम् ॥३१
दृष्ट्वा कस्य न दुःखं स्याद्धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।

महा-बुद्धिमान, इस तरह के चापलूसी भरे हुए वचनों के कहने के अयोग्य, जीवन की इच्छा से छुपे हुए, धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर को देख कर किस को दुःख नहीं होगा ॥१३॥

उपास्ते स्म सभायां य कृत्स्ना वीर वसुन्धरा ॥३०॥
तमुपासीनमप्यन्यं पश्य भारत भारतम् ।

हे वीर ! भीमसेन ! जिसकी सभा में सारी पृथिवी के वीर आराधना करते थे—हे भारत ! तुम उसी भरत-वंशोत्पन्न राजा युधिष्ठिर की जरा दुर्दशा तो देखो ॥३२॥

एवं बहुविधैर्दुःखैः पीड्यमानामनाथवत् ।
शोकसागरमध्यस्थां किं मां भीम न पश्यसि ॥३३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीभीमसंवादे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८

हे भीम ! इस तरह के अनेक भांति के क्लेशों से अनाथ की तरह क्लेशित, शोक सागर में निमग्न, मेरी ओर क्या तुम आंख उठा कर भी नहीं देखोगे ॥३३॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत कीचकवधपर्व में द्रौपदी भीम के सम्वाद का अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

****

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नीसवां अध्याय

द्रौपद्युवाच—

इदन्तु मे महद्दुःखं यत्प्रवक्ष्यामि भारत ।
न मेऽभ्यसूया कर्त्तव्या दुःखादेतद् ब्रवीम्यहम् ॥१॥

द्रौपदी बोली—हे भारत ! मुझेतो यह सबसे अधिक दुःख है। जिसको अब कहने लगी हूँ। तुम मेरी निन्दा न करना। मैं यह सब कुछ दुःख से कह रही हूं ॥१॥

सूदकर्मणि हीने त्वमसमे भरतर्षभ ।
ब्रुवन् बल्लवजातीयः कस्य शोकं न वर्द्धयेः ॥२॥

हे भरतर्षभ ! नीच अयोग्य सूद (रसोई) कर्म में तुम फंस रहे हो। लोग तुम को बल्लव जाति का कहते हैं। यह घटना तुम्हारे किस प्रेमी का शोक नहीं बढ़ावेगी ॥२॥

सूपकारं विराटस्य बल्लवं त्वां विदुर्जनाः ।
प्रैष्यत्वं समनुप्राप्तं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३॥

लोग तुम को विराटराज बल्लव नामक रसोइया जानते हैं। तुमको दासता प्राप्त हो गई-अब इससे अधिक क्या दुःख हो सकता है ॥३॥

यदा महानसे सिद्धे विराटमुपतिष्ठसे ।
ब्रुवाणो बल्लवः सूदस्तदा सीदति मे मनः ॥४॥

जब रसोई तैयार हो जाती है, तब तुम सूचनार्थ विराट-राजके पास पहुँचते हो-उस समय राजा तुम्हें बल्लव सूद कहकर पुकारते हैं- यह सुन कर मेरा मन बड़ा ही पीड़ित होता है ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदा प्रहृष्टः सम्राट् त्वां संयोधयति कुञ्जरैः ।
हसन्त्यन्तः पुरे नार्य्यो मम तूद्विजते मनः ॥५॥

जब प्रसन्न होकर विराटराज, तुमको हाथियों से लड़ाते हैं और युद्ध को देख कर जब रनिवास की स्त्रियां हँसती हैं, तब मेरा मन बड़ा ही उद्विग्न हो जाता है ॥५॥

शार्दूलैर्महिषैः सिंहैरागारे योध्यसे यदा ।
कैकेय्याः प्रेक्ष्यमाणायास्तदा मे कश्मलो भवेत् ॥६॥

शार्दूल, भैंसे और सिंहों के साथ अन्तःपुर में कैकेय-देशोत्पन्न रानी सुदेष्णा, जब तेरा युद्ध देखती है, तब मुझे बड़ा ही क्लेश होता है ॥६॥

तत उत्थाय कैकेयी सर्वास्ताः प्रत्यभाषत ।
प्रेष्याः समुत्थिताश्चापि कैकेयीन्ताः स्त्रियोऽब्रुवन् ॥७॥

वहां से कैकयी सुदेष्णा, उठ कर सारी स्त्रियों से कहती है और सारी दासियां और स्त्रियां भी उठकर कैकेयी से कहती हैं ।

प्रेक्ष्य मामनवद्याङ्गीं कश्मलोपहतामिव ।
स्नेहात् संवासजाद्धर्मात् सूदमेषा शुचिस्मिता ॥८॥
योध्यमानं महावीर्य्यैरिमं समनुशोचति ।
कल्याणरूपा सैरिन्ध्री बल्लवश्चापि सुन्दरः ॥९॥

मुझ सर्वाङ्ग-सुन्दरी को शोक से विच्छाय देख कर कहती हैं कि यह सुन्दर मुस्कुराने वाली, सैरिन्ध्री, साथ २ रहने के स्नेह से महा-शक्ति-शाली सिंहादि के साथ युद्ध करते हुए इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्लव रसोइये की बड़ी चिन्ता करती है। यह सैरिन्ध्री बड़ी उत्तम रूपवाली है और यह बल्लव भी बड़ा सुन्दर है ॥८-९॥

स्त्रीणां चित्तं च दुर्ज्ञेयं युक्तरूपौ च मे मतौ।
सैरिन्ध्री प्रियसंवासान्नित्यं करुणवादिनी ॥१०॥

स्त्रियों के चित्त का किसी को पता नहीं लग सकता है। इन दोनों का रूप भी समान ही है। मेरे मत में तो अपने प्रिय के वियोग से उत्कण्ठित हुई, सैरिन्ध्री, बल्लव से प्रेम के कारण ही ऐसा करुणा-पूर्ण वचन कहती है ॥१०॥

अस्मिन् राजकुले चोभौ तुल्यकालनिवासिनौ।
इति ब्रुवाणा वाक्यानि सा मां नित्यमतर्जयत् ॥११॥

इस राजकुल में भी इनको रहते हुए, बहुत काल बीत गया है। ये सारी स्त्रियां इस प्रकार के वाक्य नित्य कह कर मुझे चिढ़ाती सी रहती हैं ॥११॥

क्रुध्यन्तीं माञ्च सम्प्रेक्ष्य समशङ्कत मां त्वयि।
तस्यां तथा ब्रुवन्त्यान्तु दुःखं मां महदाविशत् ॥१२॥

जब वे किसी महाबली जन्तु से तुम्हें लड़ाते हैं और मैं क्रोध करती हूं, तो तुम पर मेरे अनुचित प्रेम होनेकी शंका करने लगती हैं। उनके इस प्रकार चिढ़ाने से भी मुझे बड़ा ही दुःख होता है ॥१२॥

त्वय्येवं निरयम्प्राप्ते भीमे भीमपराक्रमे।
शोके यौधिष्ठिरे मग्ना नाहं जीवितुमुत्सहे ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीम-पराक्रमी तुझ भीम के इस तरह दुःख में फँस जाने से मैं भी राजा युधिष्ठिर के उत्पन्न किए हुए शोक में डूबने लगती हूं। मैं इस दशा में कैसे जीवित रह सकती हूं ॥१३॥

यः सदेवान्मनुष्यांश्च सर्वांश्चैकरथोऽजयत् ।
सोऽयं राज्ञो विराटस्य कन्यानां नर्त्तको युवा॥१४॥
योऽतर्पयदमेयात्मा खाण्डवे जातवेदसम् ।
सोऽन्तःपुरगतः पार्थः कूपेऽग्निरिव संवृतः ॥१५॥

जिस अकेले ने सारे देव और मनुष्यों को जीत लिया वही आज राजा विराट की कन्याओं का नर्तक बन रहा है, जिस महा-ओजस्वी ने खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया—वही अर्जुन अन्तःपुर (रनिवास) में कूप में अग्नि की तरह ढका हुआ पड़ा है ॥१५॥

यस्माद्भयममित्राणां सदैव पुरुषर्षभात् ।
स लोकपरिभूतेन वेशेनान्ते धनञ्जयः ॥१६॥

जिस पुरुष-सिंह से सदा शत्रुओं को भय लगा रहता था, वही धनञ्जय लोक-निन्दित वेश से अन्तःपुर में नाचता है ॥१६॥

यस्य ज्याक्षेपकठिनौ बाहूपरिघसन्निभौ ।
सशङ्खपरिपूर्णाभ्यां शोचन्नास्ते धनञ्जयः ॥१७॥

जिसकी विशाल अर्गला के समान भुजाएं धनुष की डोरी खैंचते २ बड़ी कठिन हो गई हैं, शङ्ख के भूषणों से भरी हुई, उन्हीं भुजाओं को देख कर धनञ्जय बड़ी चिन्ता में दिन काट रहा है ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्य ज्यातलनिर्घोषात् समकम्पन्त शत्रवः ।
स्त्रियो गीतस्वनन्तस्य मुदिताः पर्य्युपासते ॥१८॥

जिस की प्रत्यञ्चा (डोरी) के नाद से सारे शत्रु काँप उठते थे, उसके गीत गान को स्त्रियां बड़े आनन्द से सुनती हैं।१२।

किरीटं सूर्य्यसङ्काशं यस्य मूर्द्ध्न्यशोभत ।
वेणीविकृतकेशान्तः सोऽयमद्य धनञ्जयः ॥१९॥

जिसके मस्तक पर सूर्य के सदृश मुकुट चमकता था, वही अर्जुन, वेणी रूप में अपने बालों को उलट-पलट करके जीवन यापन कर रहा है ॥१९॥

तं वेणीकृतकेशान्तं भीमधन्वानमर्जुनम् ।
कन्यापरिवृतं दृष्ट्वा भीम सीदति मे मनः ॥२०॥

हे भीम ! भीषण-धनुष-धारी वेणी रूप में गूँथे हुए बालों सहित, कन्याओं से घिरे हुए अर्जुन को देख कर मेरा हृदय फटा जाता है ॥२०॥

यस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि समस्तानि महात्मनि ।
आधारः सर्वविद्यानां स धारयति कुण्डले ॥२१॥

जिस महाबली में सारे दिव्य अस्त्र, प्रतिभासित हो रहे हैं, जो सारी विद्याओं का आधार है, वही अर्जुन आज स्त्रियों के से कुण्डल पहने रहता है ॥२१॥

यस्य राजसहस्राणि तेजसाप्रतिमानि वै ।
समरे नाभ्यवर्त्तन्त वेलामिव महार्णवः ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोऽयं राज्ञो विराटस्य कन्यानां नर्त्तको युवा ।
आस्ते वेशप्रतिच्छन्नः कन्यानां परिचारकः॥२३॥

अद्वितीय बल रखने वाले भी सहस्रों राजा, जिसके सम्मुख सङ्ग्राम में मर्यादा छोड़ कर समुद्र की तरह नहीं आ सकते थे, महाबली, युवा वही अर्जुन, राजा विराट की कन्याओं के सम्मुख नाचने वाला हो रहा है और क्लीव-वेश में अपने को छुपा कर कन्याओं का सेवक बना है ॥२३॥

यस्य स्म रथघोषेण समकम्पत मेदिनी ।
सपर्वतवना भीमा सहस्थावरजङ्गमा ॥२४॥
यस्मिन् जाते महाभागे कुन्त्याः शोको व्यनश्यत ।
स शोचयति मामद्य भीमसेन तवानुजः ॥२५॥

हे भीमसेन ! जिसके रथ के घोष से पर्वत, वन, स्थावर, जङ्गम वस्तुओं सहित सारी भीषण भूमि, कांपने लग जाती थी, जिस महाभाग के उत्पन्न होने पर कुन्ती का कभी शोक नष्ट हुआ होगा—वही तेरा अनुज अर्जुन, आज मुझे शोकातुर करता है ॥२४-२५॥

भूषितं तमलङ्कारैः कुण्डलैः परिहाटकैः ।
कम्बुबाणिनमायान्तं दृष्ट्वा सीदति मे मनः॥२६॥

स्त्रियों के योग्य अलङ्कारों से अलंकृत, सोने के कुण्डल और कड़े हाथ में पहने हुए, अर्जुन को आता हुआ देख कर मेरा मन विदीर्ण होने लगता है ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्य नास्ति समो वीर्य्ये कश्चिदुर्व्यां धनुर्द्धरः।
सोऽद्य कन्यापरिवृतो गायन्नास्ते धनञ्जयः ॥२७॥

जिसके समान पराक्रमी और धनुर्धर पृथिवी में कोई नहीं है। वही धनञ्जय, कन्याओं से घिरा हुआ गाता रहता है ॥२७॥

धर्मे शौर्य्ये च सत्ये च जीवलोकस्य सम्मतम्।
स्त्रीवेशविकृतं पार्थं दृष्ट्वा सीदति मे मनः ॥२८॥

जो धर्म, पराक्रम और सत्य में संसार भर का सम्मानित हो गया था, उसी अर्जुन को स्त्री के विकृत वेष में देख कर मेरा मन पीड़ित होता रहता है ॥२८॥

यदा ह्येनं परिवृतं कन्याभिर्देवरूपिणम्।
प्रभिन्नमिव मातङ्गं परिकीर्णं करेणुभिः ॥२९॥

मत्स्यमर्थपतिं पार्थं विराटं समुपस्थितम्।
पश्यामि तूर्य्यमध्यस्थं दिशो नश्यन्ति मे तदा ॥३०॥

हथिनियों से घिरे हुए, मदोन्मत्त हाथी की तरह कन्याओं से परिव्याप्त, देवोपम, मत्स्य-देशाधीश्वर, ऐश्वयशाली विराट-राज की सेवा में उपस्थित, बाजों के मध्य में बैठे हुए, अर्जुन को देख कर मेरी दृष्टि के सामने अन्धेरी छा जाती है ॥२९-३०॥

नूनमार्य्या न जानाति कृच्छ्रं प्राप्तं धनञ्जयम्।
अजातशत्रुं कौरव्यं मग्नं दुर्द्यूतदेविनम् ॥३१॥

आर्या (श्वश्रू) कुन्ती को तो यह पता भी नहीं होगा—कि अर्जुन किस विपत्ति में उलझ गया है। न उसको अनुचित जुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेलने वाले, कुरु-वंश-श्रेष्ठ, ज्येष्ठ-पुत्र, अजात-शत्रु (युधिष्ठिर) का वृत्तान्त विदित है ॥३१॥

तथा दृष्ट्वा यवीयासं सहदेवं गवाम्पतिम् ।
गोषु गोवेशमायान्तं पाण्डुभूतास्मि भारत ॥३२॥

हे भारत ! इसी तरह गोशाला के अधीश्वर सबसे छोटे सहदेव को गोपालक के रूप में गौओं के साथ आते हुए देखकर मैं तो चिन्ता से पीली पड़ गई हूं ॥३२॥

सहदेवस्य वृत्तानि चिन्तयन्ती पुनः पुनः ।
न निद्रामभिगच्छामि भीमसेन कुतो रतिम् ॥३३॥

हे भीमसेन ! सहदेव की दशा का बार २ स्मरण करके तो मुझे रात को नींद भी नहीं आती—कभी चैन पड़ जावे, यह तो हो ही कैसे सकता है ॥३३॥

न विन्दामि महाबाहो सहदेवस्य दुष्कृतम् ।
यस्मिन्नेवं विधं दुःखं प्राप्नुयात् सत्यविक्रमः॥३४॥

हे महाबाहो ! सहदेव ने पूर्वजन्म में क्या दुष्कर्म किए हैं, मैं तो उनको समझ भी नहीं पाती हूं, जिनसे यह सत्य-पराक्रमी, इस तरह का क्लेश भोग रहा है ॥३४॥

दूयामि भरतश्रेष्ठ दृष्ट्वा ते भ्रातरप्रियम् ।
गोषु गोवृषसङ्काशं मत्स्येनाभिनिवेशितम् ॥३५॥

हे भरत-श्रेष्ठ ! मत्स्यराज से नियुक्त किए हुए, तेरे भाई सहदेव को गौओं में बैल की तरह पशुभूत दशा में विचरता हुआ देखकर मैं तो बड़ी ही दुःखी होती हूं ॥३५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संरब्धं रक्तनेपथ्यं गोपालानां पुरोगमम् ।
विराटमभिनन्दन्तमथ मे भवति ज्वरः ॥३६॥

गैरिक आदि धातुओं के लाल नेपथ्य (शृङ्गार) को धारण किये हुए, गोपालों के अग्रगामी, अच्छी तरह सन्नद्ध (तय्यार) हुए, विराट के आनन्द को बढ़ाने वाले, सहदेव को देखकर मुझे बड़ी ही चिन्ता होती है ॥३६॥

सहदेवं हि मे वीरं नित्यमार्य्या प्रशंसति ।
महाभिजनसम्पन्नः शीलवान् वृत्तवानिति ॥३७॥

ह्रीनिषेवी मधुरवाक् धार्मिकश्च प्रियश्च मे ।
स तेऽरण्येषु वोढव्यो याज्ञसेनि क्षपास्वपि ॥३८॥

सुकुमारश्च शूरश्च राजानं चाप्यनुव्रतः ।
ज्येष्ठोपचायिनं वीरं स्वयं पाञ्चालि भोजयेः ॥३९॥

इत्युवाच हि मां कुन्ती रुदती पुत्रगृद्धिनी ।
प्रव्रजन्तं महारण्यं तं परिष्वज्य तिष्ठती ॥४०॥

आर्या कुन्ती, वीर सहदेव की नित्य ही प्रशंसा करती रहती थी, कि यह कुल क्रमागत गुणों से युक्त, शीलवान, सदाचारी, लज्जाशील, मधुरभाषी और धार्मिक है। यह मुझे बड़ा ही प्रिय है। हे द्रौपदी ! वन में रात हो जाने पर तुम इसको अपनी गोद में ले लेना। हे पाञ्चालि ! यह बड़ा सुकुमार, शूरवीर, राजा युधिष्ठिर का अनुगामी है। तुम ज्येष्ठ भाई का आदर करने वाले, इस वीर सहदेव को स्वयं भोजन कराती रहना। इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र-प्रेम के परवश हुई, रोती २ कुन्ती ने महावन में आने के समय कहा था और यह सहदेव को अपने अङ्गों से लिपटा कर खड़ी हो गई थी ॥३७-४०॥

तं दृष्ट्वा व्यापृतङ्गोषु वत्सचर्मक्षपाशयम् ।
सहदेवं युधां श्रेष्ठं किन्नु जीवामि पाण्डव ॥४१॥

हे पाण्डव ! उसी सहदेव महाबली को गायों के काम में लिपटा हुआ और रात को बछड़ों की खालों पर सोता हुआ, देखकर भी क्या मुझे जीवित रहना चाहिए ॥४१॥

यस्त्रिभिर्नित्यसम्पन्नो रूपेणास्त्रेण मेधया ।
सो ऽश्वबन्धो विराटस्य पश्य कालस्य पर्य्ययम् ४२

जो रूप, अस्त्र-बल और बुद्धि, इन तीनों से सम्पन्न है, वही आज राजा विराट के अश्वों को बांधता फिरता है—यह विपरीत काल की महिमा देखने योग्य है ॥४२॥

अभ्यकीर्य्यन्त वृन्दानि दामग्रन्थिमुदीक्ष्य तम् ।
विनयन्तञ्जवेनाश्वान् महाराजस्य पश्यतः ॥४३॥

जो शत्रुओं के वृन्दों को क्षण भर में बखेर देता है, इस दाम ग्रन्थिक को वेग के साथ महाराज के देखते २ अश्वों को शिक्षा देता हुआ देखकर मेरा मन बड़ा ही पीड़ित होता है ॥४३॥

अपश्यमेनं श्रीमन्तं मत्स्यं भ्राजिष्णुमुत्तमम् ।
विराटमुपतिष्ठन्तं दर्शयन्तश्च वाजिनः ॥४४॥
किन्नु मां मन्यसे पार्थ सुखिनीति परन्तप ।
एवं दुःखशताविष्टा युधिष्ठिरनिमित्ततः ॥४५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमान् तेज से देदीप्यमान, सर्वोत्तम राजा विराट की सेवा में उपस्थित, अश्वों की शिक्षा दिखाते हुए, नकुल को मैंने स्वयं देखा है। हे परन्तप! क्या इस दशा में भी तुम मुझे सुखी समझते हो। हे कौन्तेय! इस तरह राजा युधिष्ठिर के कारण, मुझे सैंकड़ों दुःख उठाने पड़ रहे हैं ॥४४-४५॥

अतः प्रतिविशिष्टानि दुःखान्यन्यानि भारत।
वर्तन्ते मयि कौन्तेय वक्ष्यामि शृणु तान्यपि ॥४६॥

हे भारत! इन दुःखों से भी अधिक अन्य दुःखों ने मुझे घेर रखा है। तुम जरा इनको भी सुनो ॥४६॥

युष्मासु ध्रियमाणेषु दुःखानि विविधान्युत।
शोषयन्ति शरीरं मे किं नु दुःखमतः परम् ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीभीमसंवादे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

तुम लोगों के जीवित रहने पर भी अनेक दुःख मेरे शरीर को सुखाते रहते हैं, इससे अधिक क्या दुःख होगा ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत कीचकवधपर्व में द्रौपदी-भीम-सम्वाद का उन्नीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीसवां अध्याय

द्रौपद्युवाच—

अहं सैरिन्ध्रिवेशेन चरन्ति राजवेश्मनि ।
शौचदास्मि सुदेष्णाया अक्षधूर्त्तस्य कारणात् ॥१॥

द्रौपदी बोली-हे भारत ! मैं सैरिन्ध्री(केश-शृङ्गार-कारिणी) का वेश बनाकर राजमहलों में फिरती हूं। द्यूत के खिलारी युधिष्ठिर के कारण से ही मैं रानी सुदेष्णा के शौच के साधन मृत्तिका जल आदि के देने वाली दासी बनी हुई हूं ॥१॥

विक्रियां पश्य मे तीव्रां राजपुत्र्यां परन्तप ।
आत्मकालमुदीक्षन्ती सर्वं दुःखं किलान्तवत् ॥२॥

हे परन्तप ! मुझ राजपुत्री की ज़रा इस तीव्र विपरीत दशा को तो देखो। इस पर भी मैं अपने अच्छे दिन लौट आने की प्रतीक्षा कर रही हूं, क्योंकि सारे दुःखों का कभी न कभी अन्त होता ही है ॥२॥

अनित्या किल भर्त्यानामर्थसिद्धिर्जयाजयौ ।
इति कृत्वा प्रतीक्षामि भर्तॄणामुदयं पुनः ॥३॥

मनुष्यों का लाभालाभ, जय पराजय नित्य नहीं होते हैं। मैं यही समझ कर अपने भर्ताओं के फिर उदय की प्रतीक्षा कर रही हूं ॥३॥

चक्रवत् परिवर्तन्ते ह्यर्थाश्च व्यसनानि च ।
इति कृत्वा प्रतीक्षामि भर्तॄणामुदयं पुनः ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार में सुख और दुःख चक्र की तरह घूमते हैं। यही सोचकर मैं फिर से अपने भर्ताओं के उदय की बाट जोह रही हूं ॥४॥

य एव हेतुर्भवति पुरुषस्य जयावहः ।
पराजये च हेतुश्च स इति प्रतिपालये ॥५॥

पुरुषों के सिद्धि प्राप्त करने में काल ही हेतु माना गया है। यही काल, पराजय का भी तु होता हैं। मैं यही सोच कर काल की प्रतीक्षा कर रही हूं ॥५॥

किं मां न प्रतिजानीषे भीमसेन मृतामिव।
दत्त्वा याचन्ति पुरुषा हत्वा बध्यन्ति चापरे ॥६॥
पातयित्वा च पात्यन्ते परैरिति च मे श्रुतम् ।

हे भीमसेन ! क्या तुमको यह ज्ञात नहीं है, कि मैं मृतक सी हो रही हूं। जो पुरुष दाता होते हैं, वे भी काल के वश से याचना करने लगते हैं और जो शत्रु का वध करने में समर्थ हैं, वे स्वयं मार खाते रहते हैं एवं जो शत्रु का पतन करने में समर्थ हैं, वे स्वयं शत्रुओं से पतित किए जाते हैं—यह मैंने खूब देखा है ॥६॥

न दैवस्यातिभारोऽस्ति न चैवास्यातिवर्तनम् ७
इति चाप्यागमं भूयो दैवस्य प्रतिपालये ।

इस संसार में दैव को कुछ भी दुष्कर नहीं है और न कोई दैव का अतिक्रमण कर सकता है- यही शास्त्र का सिद्धान्त है। यही कारण है, कि मैं दैव की प्रतीक्षा कर रही हूं ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थितं पूर्वं जलं यत्र पुनस्तत्रैव गच्छति ॥८॥
इति पर्य्यायमिच्छन्ती प्रतीक्षे उदयं पुनः।

जल जिस स्थान में प्रथम जाकर ठहरता है, वह फिर भी वहीं जाता है। इस क्रम को देखकर ही मैं अपने पतियों के फिर उदय की प्रतीक्षा कर रही हूं ॥८॥

दैवेन किल यस्यार्थः सुनीतोऽपि विपद्यते ॥९॥
दैवस्य चागमे यत्नस्तेन कार्य्यो विजानता।

जिस मनुष्य के कार्य को सिद्ध होते २ दैव नष्ट कर देता है, उस ज्ञानी को दैव के अनुकूल होने का ही प्रयत्न (प्रतीक्षा) करना चाहिए ॥९॥

यत्तु मे वचनस्यास्य कथितस्य प्रयोजनम् ॥१०॥
पृच्छ मां दुःखितां तत् त्वं पृष्टा चात्र ब्रवीमि ते।

हे भीम! मैंने यह जितना रोना रोया है, यदि तेरी समझमें कुछ भी आया हो, तो तू मुझ दुःखिनी की कहानी पूछ। यदि तू आगे पूछेगा- तो मैं तुझे अवश्य सुनाऊंगी ॥१०॥

महिषी पाण्डुपुत्राणां दुहिता द्रुपदस्य च ॥११॥
इवामवस्थां सम्प्राप्ता मदन्या का जिजीविषेत्।

मैं पाण्डु-पुत्रों की राज-महिषी और द्रुपद की पुत्री होकर भी इस दशा को पहुंच गई हूं। मुझे छोड़कर कौन ऐसी होगी, जो अपने जीने की इच्छा करेगी ॥११॥

कुरून् परिभवेत् सर्वान् पाञ्चालानपि भारत ॥१२॥
पाण्डवेयांश्च सम्प्राप्तो मम क्लेशो ह्यरिन्दम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अरि-मर्दन ! भारत ! यह मुझ पर पड़ा हुआ शोक, कौरव सारे पाञ्चाल और पाण्डवों का नाश करके ही छोड़ेगा ॥१२॥

भ्रातृभिः श्वशुरैः पुत्रैर्बहुभिः परिवारिता ॥१३॥
एवं समुदिता नारी का त्वन्या दुःखिता भवेत् ।

भाई, श्वसुर, अनेक पुत्रों से युक्त भी सहायता सम्पन्न कौन ऐसी स्त्री होगी, जो मेरे समान फिर भी दुःख पाती रहे ॥१३॥

नूनं हि बालया धातुर्मया वै विप्रियं कृतम् ॥१४॥
यस्य प्रसादाद् नीतं प्राप्तास्मि भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! न मालूम मैंने बचपन में विधाता का क्या अपराध किया है, जिसके कोप से मैं इस दुरवस्था को प्राप्त हो गई हूं ॥१४॥

वर्णावकाशमपि मे पश्य पाण्डव तादृशम् ॥१५॥
यादृशो मे न तत्रासीत् दुःखे परमके तदा ।

हे पाण्डव ! क्या तुम आजकल मेरी कान्ति की क्षीणता नहीं देख रहे हो । ऐसी फीकी रङ्गत तो मेरे वनवास के परम दुःख भोगने के समय में भी नहीं थी ॥१५॥

त्वमेव भीम जानीषे यन्मे पार्थ सुखं पुरा ॥१६॥
साहन्दासीत्वमापन्ना न शान्तिमवशा लभे ।

हे भीम ! जो सुख मुझे वनवास में था, यह तुम स्वयं जानते हो । अब तो मैं एक परतन्त्र दासी हो गई हूं- फिर कैसे शान्ति पा सकती हूं ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नादैविकमहं मन्ये यत्र पार्थो धनञ्जयः ॥१७॥
भीमधन्वा महाबाहुरास्ते छन्न इवानलः ।

दैव के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है, यह मुझे निश्चय हो गया है, इसी से भीम-धनुष-धारी कुन्ती-पुत्र अर्जुन भी भस्म में छुपे अग्नि की तरह छुपा पड़ा है ॥१७॥

अशक्या वेदितुं पार्थ प्राणिनां वै गतिर्नरैः ॥१८॥
विनिपातमिमं मन्ये युष्माकं ह्यविचिन्तितम् ।

हे पार्थ ! प्राणियों की गति को कोई मनुष्य नहीं जान सकता है। मैं तो तुम्हारे इस पराभव को भी दैव-जन्य ही मानती हूं ॥१८॥

यस्या मम सुखप्रेक्ष्या यूयमिन्द्रसमाः सदा ॥१९॥
सा प्रेक्ष्ये सुखमन्यासामवराणां वरा सती ।

इन्द्र के समान महाबली तुम लोग, मेरे सुख के साधन खड़े करने वाले थे, मैं ऐसी उच्च होकर भी मुझ से क्षुद्रों के सुखों की ओर देख रही हूं ॥१९॥

पश्य पाण्डव मेऽवस्थां यथा नार्हामि वै तथा ॥२०
युष्मासु ध्रियमाणेषु पश्य कालस्य पर्य्ययम् ।

हे पाण्डु-पुत्र ! भीम ! तुम लोगों के जीवित रहने पर भी मैं जिस अवस्था के योग्य नहीं हूँ—उसी को प्राप्त हो रही हूं। यह काल की महिमा है ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्याः सागरपर्य्यन्ता पृथिवी वशवर्त्तिनी ॥२१॥
आसीत्साद्य सुदेष्णाया भीताहं वशवर्त्तिनी।

समुद्र पर्यन्त विशाल भूमि जिस के अधीन थी, वही राजपुत्री, आज रानी सुदेष्णा से भयभीत हुई, परवश दासी हो रही है ॥२१॥

यस्याः पुरः सरा आसन् पृष्ठतश्चानुगामिनः ॥२२॥
साहमद्य सुदेष्णायाः पुरः पश्चाच्च गामिनी।

जिसके आगे पीछे राजसेवक चला करते थे, वही मैं आज रानी सुदेष्णा के आगे पीछे चलती रहती हूं ॥२२॥

इदन्तु दुःखं कौन्तेय ममासह्यं निबोध तत् ॥२३॥
या न जातु स्वयं पिंषे गात्रोद्वर्त्तनमात्मनः।
अन्यत्र कुन्त्या भद्रन्ते सा पिनष्म्यद्य चन्दनम् ॥२४

हे कौन्तेय! यह दुःख मुझे बड़ा असह्य है—तुम स्वयं अच्छी तरह समझ लो, कि कुन्ती के उबटन को छोड़ कर जो अपने शरीर का भी उबटन कभी नहीं पीसती थी—वही मैं आज रानी सुदेष्णा का चन्दन पीसती हूं ॥२३-२४॥

पश्य कौन्तेय पाणी मे नैवाभूतां हि यौ पुरा।
इत्यस्य दर्शयामास किणवन्तौ करावुभौ ॥२५॥

हे कौन्तेय! तुम जरा मेरे हाथों को तो देखो। ये कभी पहिले ऐसे नहीं हुए थे। इतना कह कर द्रौपदी ने छाले के चिन्हों से युक्त अपने हाथ दिखाए ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिभेमि कुन्त्या या नाहं युष्माकं वा कदाचन ।
साद्याग्रतो विराटस्य भीता तिष्ठामि किङ्करी ॥२६

मैं केवल कुन्ती देवी से ही डरती थी, तुम लोगों से भी कभी नहीं डरी। वही मैं आज विराट से भयभीत होकर दासी की तरह खड़ी रहती हूं ॥२६॥

किं नु वक्ष्यति सम्राण्मां वर्णकः सुकृतो न वा ।
नान्यपिष्टं हि मत्स्यस्य चन्दनं किल रोचते ॥१७॥

मैं तो यही देखती रहती हूं, राजा विराट क्या कहेगा कि यह विलेपन (उबटन) ठीक ही पिसा है या नहीं। अन्य द्वारा पिसा हुआ, चन्दन का उबटन तो विराट को अच्छा ही नहीं लगता है ॥२७॥

वैशम्पायन उवाच—

सा कीर्त्तयन्ती दुःखानि भीमसेनस्य भामिनी ।
रुरोद शनकैः कृष्णा भीमसेनमुदीक्षती ॥२८॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! इस प्रकार भीमसेन के सम्मुख अपने दुःखों का वर्णन करके सुन्दरी द्रौपदी, भीमसेन की ओर देखती हुई धीरे २ रोने लगी ॥२८॥

सा वाष्पकलया वाचा निःश्वसन्ती पुनः पुनः ।
हृदयं भीमसेनस्य घटयन्तीदमब्रवीत् ॥२९॥

आंसुओं से गद्गद् वाणी के साथ वार २ श्वास लेती हुई और भीमसेन के हृदय को कँपाती हुई द्रौपदी, फिर इस प्रकार कहने लगी ॥२९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपद्युवाच—

नाल्पं कृतं मया भीम देवानां किल्विषं पुरा।
अभाग्या यत्र जीवामि मर्त्तव्ये सति पाण्डव ॥३०॥

हे पाण्डव! भीम! मैंने देवों का कोई अपराध थोड़ा नहीं किया है। जो मर जाने के समय भी कम्बख्ती से अभी तक जीवित रह रही हूं ॥३०॥

वैशम्पायन उवाच—

ततस्तस्याः करौ सूक्ष्मौ किणवन्तौ वृकोदरः।
मुखमानीय वै पत्न्या रुरोद परवीरहा ॥३१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! छालों के चिन्हों से युक्त, राज-पत्नी द्रौपदी के कोमल हाथों को अपने मुख पर रख कर शत्रु-विजयी भीम रोने लगा ॥३१॥

तौ गृहीत्वा च कौन्तेयो बाष्पमुत्सृज्य वीर्य्यवान्।
ततः परमदुःखार्त्त इदं वचनमब्रवीत् ॥३२॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीभीमसंवादे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

कुन्ती-पुत्र, महाबली-भीम, उन हाथों को पकड़ कर और आंसुओं को पूंछ कर बड़े दुःख से आतुर होकर यह वचन कहने लगा ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत कीचकवधपर्वणि द्रौपदी भीम सम्वाद का बीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्कीसवां अध्याय

भीमसेन उवाच—

धिगस्तु मे बाहुबलं गाण्डीवं फाल्गुनस्य च !
यत्ते रक्तौ पुरा भूत्वा पाणी कृतकिणाविमौ ॥१॥

भीमसेन कहने लगा—मेरे बाहुबल और अर्जुन के गाण्डीव को धिक्कार है, जो तेरे कमल से रक्त हाथ छालों के चिन्हों से अङ्कित हो गए हैं ॥१॥

सभायान्तु विराटस्य करोमि कदनं महत् ।
तत्र मे कारणं भाति कौन्तेयो यत् प्रतीक्षते ॥२॥

मैं राजा विराट की सभा में ही बड़ी भारी मार काट मचा देता, परन्तु जो राजा युधिष्ठिर चुप है, इसमें कोई कारण दिखाई देता है ॥२॥

अथ वा कीचकस्याहं पोथयामि पदा शिरः ।
ऐश्वर्य्यमदमत्तस्य क्रीड़न्निव महाद्विपः ॥३॥

अच्छी बात है—मैं कीचक के ही शिर को पैर से पीसूंगा। यही दुरात्मा, ऐश्वर्य के मद में भर कर मदोन्मत्त हाथी का सा आचरण कर रहा है ॥३॥

अपश्यन्त्वां यदा कृष्णे कीचकेन पदाहताम् ।
तदैवाहं चिकीर्षामि मत्स्यानां कदनं महत् ॥४॥
तत्र मां धर्मराजस्तु कटाक्षेण न्यवारयत् ।
तदहन्तस्य विज्ञाय स्थित एवास्मि भामिनि ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे कृष्णे ! जब मैंने कीचक को तुम्हारे लात मारते देखा—मैं उसी समय सारे मत्स्यों का नाश कर देना चाहता था, परन्तु उस समय मुझे धर्मराज ने आंख के संकेत से रोक दिया। हे भामिनी ! म उनके संकेत को देख कर ही चुप बैठा रहा ॥४५॥

यच्च राष्ट्रात् प्रच्यवनं कुरूणामवधश्च यः ।
सुयोधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ॥६॥
दुःशासनस्य पापस्य यन्मया न हृतं शिरः ।
तन्मे दहति गात्राणि हृदि शल्यमिवार्पितम् ॥७॥

अपने राज्य को छोड़ कर चले आना और कौरवों का नाश न करना तथा दुर्योधन, कर्ण, सुबल-पुत्र-शकुनि, पापी दुःशासन का जो मैंने शिर न काटा—यह बात मेरे हृदय में गड़े हुए बाण की तरह खटक रही है ॥६-७॥

मा धर्मं जहि सुश्रोणि क्रोधं जहि महामते ।
इदन्तु समुपालम्भं त्वत्तो राजा युधिष्ठिरः ॥८॥
श्रुणयाद्वापि कल्याणि कृत्स्नं जह्यात् स जीवितम् ।

हे महामते ! सुश्रोणि ! तुम धर्म को अपने हाथ से न जाने दो और इस क्रोध को छोड़ दो। हे कल्याणि ! राजा युधिष्ठिर, यदि तुम से इस उलाहने को सुन लेगा, तो वह अपने जीवन को ही छोड़ बैठेगा ॥८॥

धनञ्जयो या सुश्रोणि यमौ वा तनुमध्यमे ॥९॥
लोकान्तरगतेष्वेषु नाहं शक्ष्यामि जीवितुम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे तनुमध्यमे ! जब राजा युधिष्ठिर ही परलोक को चले जावेंगे—तो धनञ्जय, नकुल, सहदेव और मैं कोई भी नहीं जी सकेगा ॥९॥

पुरा सुकन्या भार्य्या च भार्गवं च्यवनं वने ॥१०॥
वल्मीकभूतं शाम्यन्तमन्वपद्यत भामिनी

पूर्वकाल में भृगुवंशी च्यवन मुनि की पतिव्रता भार्या, सुन्दरी सुकन्या, तप करते हुए वल्मीकभूत च्यवन मुनि की सेवा करती रही है ॥१०॥

नारायणी चन्द्रसेना रूपेण यदि ते श्रुता ॥११॥
पतिमन्वचरद्वृद्धं पुरा वर्षसहस्रिणम् ।

तुमने नारायणी और इन्द्रसेना को सुना होगा—जो रूप में बड़ी विलक्षण थी। इन्होंने भी अपने अकिञ्चन वृद्ध पति की एक एक सहस्र वर्ष पर्यन्त सेवा की है ॥११॥

दुहिता जनकस्यापि वैदेही यदि ते श्रुता ॥१२॥
पतिमन्वचरत्सीता महारण्यनिवासिनम् ।

राजा जनक की पुत्री विदेह राज-कन्या सीता को भी तुमने सुना ही है, जो वनवासी अपने पति की वनमें सेवा करती रही है।

रक्षसां निग्रहं प्राप्य रामस्य महिषी प्रिया ॥१३॥
क्लिश्यमानापि सुश्रोणी राममेवान्वपद्यत ।

रामचन्द्रजी की प्रियपत्नी, सुन्दरी सीता, राक्षसराज रावण के फन्दे में पड़ कर बड़े क्लेश उठाती रही—परन्तु उसने राम का ध्यान नहीं छोड़ा और अन्त में राम को प्राप्त हुई ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोपामुद्रा तथा भीरु वयोरूपसमन्विता ॥१४॥
अगस्त्यमन्वयाद्धित्वा कामान् सर्वानमानुषान् ।

हे भीरु ! वय और रूप से समन्वित लोपामुद्रा भी, देवों के सदृश सारे भोगों को छोड़ कर अपने पति अगस्त्य की ही सेवा करती रही है ॥१४॥

द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनिन्दिता ॥१५॥
सावित्र्यनुचचारैका यमलोकं मनस्विनी ।

सर्व-गुण-सुन्दरी मनस्विनी सावित्री भी, राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान के पीछे २ अकेली ही यमलोक तक चली गई ।१५।

यथैताः कीर्त्तिता नार्य्यो रूपवत्यः पतिव्रताः ॥१६
तथा त्वमपि कल्याणि सर्वैः समुदिता गुणैः ।

मैंने जिन नारियों का वृतान्त तुमको सुनाया है, ये सब रूपवती और पतिव्रता थीं । हे कल्याणि ! इनकी तरह ही तुम भी इन सारे गुणों से युक्त हो ॥१६॥

सा दीर्घं क्षम कालन्त्वं मासमर्द्धञ्च सम्मितम् ।
पूर्णे त्रयोदशे वर्षे राज्ञां राज्ञी भविष्यसि ॥१७॥

अब तुम इस थोड़े से समय की और प्रतीक्षा करो । केवल आधा मास शेष रह गया है । तेरहवां वर्ष पूरा होते ही तुम महारानी हो जाओगी ॥१७॥

द्रौपद्युवाच—

आर्त्तयैतन्मया भीम कृतं वाष्पप्रमोचनम् ।
अपारयन्त्या दुःखानि न राजानमुपालभे ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदी बोली—हे भीम ! मैं इस दुःख का पार ही नहीं पा सकी, इससे आतुर होकर मैंने ये आंसू निकाले हैं। मैं कोई राजा की निन्दा नहीं कर रही हूँ ॥१८॥

किमुक्तेन व्यतीतेन भीमसेन महाबल ।
प्रत्युपस्थितकालस्य कार्य्यस्यानन्तरो भव ॥१९॥

हे महाबली ! भीमसेन ! अब गई हुई बातों की चर्चा से क्या लाभ है ! अब तो उपस्थित काल के अनुकूल कार्य की चिन्ता करो ॥१९॥

ममेह भीम कैकेयी रूपाभिभवशङ्कया ।
नित्यमुद्विजते राजा कथं नेयादिमामिति ॥२०॥

हे भीम ! कैकेय-राज-पुत्री सुदेष्णा, मेरे रूप के वैभव की आशङ्का से नित्य राजा पर सन्देह करती रहती है, कि वह इस दासी से उलझ न जावे ॥२०॥

तस्या विदित्वा तं भावं स्वयं चानृतदर्शनः ।
कीचकोऽयं तु दुष्टात्मा सदा प्रार्थयते हि माम् ॥२१

सुदेष्णा के इस भाव को जान कर और स्वयभी पापाचारी, दुरात्मा कीचक, मेरी प्रार्थना करता रहता है। कीचक से फंस जाने पर राजा इसको नहीं चाहेगा—सुदेष्णा यही खयाल करती है ॥२१॥

तमहं कुपिता भीम पुनः कोपं नियम्य च ।
अब्रुवं कामसंमूढमात्मानं रक्ष कीचक ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भीम ! मैं कीचक पर बड़ी कुपित हुई और कोप को रोक कर मैंने उससे कहा— कीचक ! तू काम से विमोहित अपने आपकी रक्षा कर ॥२२॥

गन्धर्वाणामहं भार्य्या पञ्चानां महिषी प्रिया ।
ते त्वां निहन्युः कुपिताः शूराः साहसकारिणः ॥२३

मैं पांच गन्धर्वों की प्रिय भार्या हूं । ये यदि कुपित हो गए, तो तुझे मार डालेंगे, क्योंकि वे बड़े शूरवीर और साहसी हैं ।२३।

एवमुक्तः स दुष्टात्मा कीचकः प्रत्युवाच ह ।
नाहं बिभेमि सैरिन्ध्रि गन्धर्वाणां शुचिस्मिते ॥२४॥

मेरे इतना कहने पर दुष्टात्मा कीचक बोला—हे शुचिस्मिते ! सैरिन्ध्रि ! मैं गन्धर्वों से नहीं डरता हूं ॥२४॥

शतं शतसहस्राणि गन्धर्वाणामहं रणे ।
समागतं हनिष्यामि त्वम्भीरु कुरु मे क्षणम् ॥२५॥

हे भीरु ! मैं एक करोड़ गन्धर्वों को भी रण में सम्मुख आ जाने पर मार डालूंगा । तू इसकी चिन्ता न कर, परन्तु इससमय मेरा मनोरथ पूरा कर दे ॥२५॥

इत्युक्ते चाब्रुवं मत्तं कामातुरमहं पुनः ।
न त्वम्प्रतिबलश्चैषां गन्धर्वाणां यशस्विनाम् ॥२६॥

इतना कहने पर मैं उस कामातुर उन्मत्त से फिर बोली— देख ? तू उन यशस्वी गन्धर्वों की जोट का नहीं है ॥२६॥

धर्मे स्थितास्मि सततं कुलशीलसमन्विता ।
नेच्छामि कश्चिद्वध्यन्तं तेन जीवसि कीचक ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे कीचक ! मैं भी कुलशील से युक्त, धर्मचारिणी एक कुलीन नारी हूं । मैं किसी को मरवाना नहीं चाहती हूं, इसी से तू भी अभी तक जीवित है ॥२७॥

एवमुक्तः स दुष्टात्मा प्राहसत् स्वनवत्तदा ।
अथ मां तत्र कैकेयी प्रैषयत् प्रणयेन तु ॥२८॥
तेनैव देशिता पूर्वं भ्रातृप्रियचिकीर्षया ।
सुरामानय कल्याणि कीचकस्य निवेशनात् ॥२९॥

मेरा इतना कहना था, कि यह दुरात्मा बड़े जोर से ठट्ठा मार कर हंसने लगा । इसके अनन्तर अपने भाई के प्रेम और उसका प्रिय करने की इच्छा से सुदेष्णा ने मुझे उसके पास भेजा । कीचक ने ही उसको यह बात पहिले ही समझा दी थी । वह मुझसे बोली—हे कल्याणि, तुम जरा थोड़ी सी सुरा, कीचक के भवन से ले आओ ॥२८-२९॥

सूतपुत्रस्तु मां दृष्ट्वा महत् सान्त्वमवर्त्तयत् ।
सान्त्वे प्रतिहते क्रुद्धः परामर्शमनाभवत् ॥३०॥

सूत-पुत्र, कीचक, मुझे देख कर बड़े ढंग से समझाने लगा । जब मैंने उसके समझाने पर ध्यान नहीं दिया, तो यह क्रुद्ध होकर हाथा-पाई पर उतर आया ॥३०॥

विदित्वा तस्य सङ्कल्पं कीचकस्य दुरात्मनः ।
तथाहं राजशरणं जवेनैव प्रधाविता ॥३१॥
सन्दर्शने तु मां राज्ञः सूतपुत्रः परामृषत् ।
पातयित्वा तु दुष्टात्मा पदाहन्तेन ताड़िता ॥३२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं उस दुरात्मा कीचक का यह भाव जानकर बड़े वेग से राजा की शरण में पहुंची। राजा के देखते २ सूत-पुत्र, कीचक ने मुझ पर आक्रमण किया और दुष्ट ने मुझे भूमि में गिराकर लात मारी ॥३१--३२॥

प्रेक्षते स्म विराटस्तु कङ्कस्तु बहवो जनाः।
रथिनः पीठमर्दाश्च हस्त्यारोहाश्च नैगमाः ॥३३॥

उस समय राजा विराट, कङ्क-द्विज, (युधिष्ठिर) बहुत से मनुष्य, महारथी, राजा के पीठमर्द, (सहायक) हाथी के सवार और नगर-निवासी देख रहे थे ॥३३॥

उपालब्धो मया राजा कङ्कश्चापि पुनः पुनः।
ततो न वारितो राज्ञा न तस्य विनयः कृतः ॥३४॥

मैंने राजा को बहुत कुछ कहा और कङ्क ब्राह्मण को भी सुनाया, परन्तु राजा ने न तो उसको रोका और न उसको कुछ समझाया ॥३४॥

योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम सारथिः।
त्यक्तधर्मो नृशंसश्च नरस्त्रीसम्मतः प्रियः ॥३५॥

यह कीचक राजा विराट का सारथि और सेनापति है। इस नीच ने सारे धर्म छोड़ दिए हैं, परन्तु तो भी यह सारे नर और नारियों का सम्मानित बना हुआ है ॥३५॥

शूरोऽभिमानी पापात्मा सर्वार्थेषु च मुग्धवान्।
दारामर्षी महाभाग लभतेऽर्थान् बहूनपि ॥३६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे महाभाग! यह शूरवीर अभिमानी, पापी कीचक, सब कामों में प्रमाद करता रहता है। अन्य की स्त्रियों पर भी हाथ डाल देता है, परन्तु तो भी इसके सारे प्रयोजन सिद्ध होते रहते हैं ॥३६॥

आहरेदपि वित्तानि परेषां क्रोशतामपि ।
न तिष्ठति स्म सन्मार्गे न च धर्मे बुभूषति ॥३७॥

यह रोते चिलाते मनुष्यों के भी धन को छीन लाता है और सन्मार्ग में कभी नहीं चलता तथा न धर्म का आचरण करना चाहता है ॥३७॥

पापात्मा पापभावश्च कामबाणवशानुगः ।
अविनीतश्च दुष्टात्मा प्रत्याख्यातः पुनः पुनः॥३८॥

यह पापात्मा, नित्य पाप की भावना बनाता और काम बाण से बिंधा रहता है। मैंने इस उद्दण्ड दुष्ट को बार २ मना किया।

दर्शने दर्शने हन्याद्यदि जह्याञ्च जीवितम् ।
तद्धर्मे यतमानानां महान् धर्मो नशिष्यति ॥३९॥

यह जब२ मुझे देखेगा-तो इसी तरह मार लगावेगा। मैं इसके अपमान के डर से यदि जीवन को छोड़ दूं, तो धर्म के आचरण में प्रयत्न करने वाले तुम लोगों का सारा धर्मार्जन का प्रयास निष्फल चला जावेगा ॥३९॥

समयं रक्षमाणानां भार्य्या वो न भविष्यति ।
भार्य्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ॥४०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः ।
आत्मा हि जायते तस्य तेन जायां विदुर्बुधाः॥४१॥

तुम लोग तेरह वर्ष की मर्यादा के समय (शर्त) को पूरा कर रहे हो, परन्तु अन्त में तुम्हारी भार्या ही न होगी। भार्या की रक्षा से ही प्रजा की रक्षा होती है। जब प्रजा की रक्षा हो जाती है, तब अपनी रक्षा हुई समझनी चाहिए। यह सब से अधिक आत्मा अपनी भार्या में पुत्र रूप से उत्पन्न होता है। इस से भार्या को जाया कहा गया है ॥४०-४१॥

भर्त्ता तु भार्य्यया रक्ष्यः कथञ्जायान्ममोदरे ।
वदतां वर्णधर्माश्च ब्राह्मणानामिति श्रुतम् ॥४२॥

भार्या को भर्ता की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि उसे जानना चाहिए, कि बिना भर्ता के मेरे उदर में यह कैसे आविर्भूत हो सकेगा। मैं ने ब्राह्मणों से धर्म की व्याख्या करने के समय यह सब कुछ सुना है ॥४२॥

क्षत्रियस्य सदा धर्मो नान्यः शत्रुनिबर्हणात् ।
पश्यतो धर्मराजस्य कीचको माम्पदावधीत्॥४३॥

क्षत्रिय का तो शत्रु वध के अतिरिक्त अन्य धर्म ही नहीं है। इतने पर भी धर्मराज युधिष्ठिर के देखते २ मुझे कीचक ने पैर से मार दिया है ॥४३॥

तव चैव समक्षं वै भीमसेन महाबल ।
त्वया ह्यहं परित्राता तस्माद्घोराज्जटासुरात् ॥४४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भीमसेन ! तुम ही कहां चले गए थे। कीचक ने जब मुझे मारा तब तुम भी तो वहीं थे। तुमने तो पूर्व में भी घोर जटासुर से मेरी रक्षा की है ॥४४॥

जयद्रथन्तथैव त्वमजैषी भ्रातृभिः सह।
जहीममपि पापिष्ठं योऽयं मामवमन्यते ॥४५॥

तू ने ही अपने भाइयों के साथ जयद्रथ को जीता था। हे महाभाग ! अब तुम इस पापी को और मार दो, जिसने मेरी बुरी तरह से अवहेलना की है ॥४५॥

कीचको राजवाल्लभ्याच्छोककृन्मम भारत।
तमेवं काममंमत्तं भिन्धि कुम्भमिवाश्मनि ॥४६॥

हे भारत ! राजा का कृपापात्र होने से ही कीचक मेरे शोक का कारण बना है। तुम इसका मदोन्मत्त को पत्थर से घड़े की तरह फोड़ डालो ॥४६॥

यो निमित्तमनर्थानां बहूनां मम भारत।
तञ्चेज्जीवन्तमादित्यः प्रातरभ्युदयिष्यति ॥४७॥
विषमालोड्य पास्यामि मा कीचकवशङ्गमम्।
श्रेयो हि मरणं मह्यम्भीमसेन तवाग्रतः ॥४८॥

हे भारत ! जो मेरे अनेक अनर्थों का कारण बन रहा है, यदि उसके जीवित रहते २ कल प्रातः सूर्य का उदय हो गया, तो मैं विष घोल कर भी पी जाऊँगी, कीचक के वश में पड़ना नहीं चाहती हूं। हे भीमसेन ! मुझे तो अभी तेरे सामने मर जाना ही अच्छा प्रतीत होता है ॥४१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्त्वा प्रारुदत् कृष्णा भीमस्योरःसमाश्रिता ।
भीमश्च ताम्परिष्वज्य महत् सान्त्वं प्रयुज्य च ॥४९॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इतना कह कर भीम के वक्षस्थल पर अपना शिर धर के द्रौपदी रोने लगी। भीम ने उसको गले से लगा कर बहुत कुछ समझाया ॥४९॥

आश्वासयित्वा बहुशो भृशमार्तां सुमध्यमाम् ।
हेतुतत्त्वार्थसंयुक्तैर्वचोभिद्रुपदात्मजम् ॥५०॥

भीम ने क्लेश युक्त सुन्दरकान्ति वाली द्रौपदी को बहुत ही आश्वासन देकर हेतुवादों से युक्त वचनों से उसे बार२ समझाया ॥५०॥

प्रमृज्य वदनं तस्याः पाणिनाश्रुसमाकुलम् ।
कीचकं मनसागच्छत् सृक्कणी परिसंलिहन् ।
उवाच चैनां दुःखार्तां भीमः क्रोधसमन्वितः॥५१॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि ।
द्रौपदीसान्त्वने एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

भीम ने अपने हाथों से अश्रुओं से व्याप्त द्रौपदी के मुख को पोंछा। इसने ओठ काटते हुए कीचक का मन में विचार किया। अब क्रोध में भर कर भीम ने द्रोपदी से कहा ॥५१॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत कीचकवधपर्व में द्रौपदी के सान्त्वन का इक्कीसवां अध्याय पूरा हुआ।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाईसवां अध्याय

भीमसेन उवाच—

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वम्भीरु भाषसे ।
अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सहबान्धवम् ॥१॥

भीमसेन बोला—हे भद्रे ! जैसे तुम कह रही हो, मैं वैसा ही करूंगा और आज ही बान्धवों के साथ कीचक को मार डालूंगा ॥१॥

अस्याः प्रदोषे शर्वर्याः कुरुष्वानेन सम्मतम् ।
दुःखं शोकञ्च निर्द्धूय याज्ञसेनि शुचिस्मिते ॥२॥

हे याज्ञसेनि ! शुचिस्मिते ! आज रात को प्रदोष के समय तू कीचक से बातचीत करना और इस समय अपने दुःख और शोक को प्रकाशित मत होने देना ॥२॥

यैषा नर्त्तनशालेह मत्स्यराजेन कारिता ।
दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम् ॥३॥

जो नर्तनशाला मत्स्यराज ने बनवा रखी है, इसमें दिन में तो कन्या नाचती हैं और रात को अपने २ भवन में चली जाती हैं ॥३॥

तत्रास्ति शयनं दिव्यं दृढाङ्गं सुप्रतिष्ठितम् ।
तत्रास्य दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान् पितामहान् ॥४॥

उस स्थान में एक दिव्य, दृढ़-शयन (तख्त) पड़ा हुआ है। मैं उसी स्थान में इसको पूर्व में मरे हुए पितामहों के दर्शन कराऊंगा ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा च त्वां न पश्येयुः कुर्वाणां तेन संविदम् ।
कुर्य्यास्तथा त्वं कल्याणि यथा सन्निहितो भवेत् ॥५॥

हे कल्याणि ! कीचक के साथ बात करती हुई, तुझे कोई न देख सके– इस ढंग से बात करना। तुम वही उपाय करो- जिससे वह मुझसे टकरा जावे ॥५॥

वैशम्पायन उवाच—

तथा तौ कथयित्वा तु बाष्पमुत्सृज्य दुःखितौ ।
रात्रिशेषं तमत्युग्रं धारयामासतुर्हृदि ॥६॥

वैशम्पायन बोले-- हे राजन् ! वे दोनों इस तरह बातचीत करके बड़े दुःख से रोने लगे। और इस शेष रात्रि के व्यतीत होने की हृदय में चिन्ता करने लगे ॥६॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय कीचकः ।
गत्वा राजकुलायैव द्रौपदीमिदमब्रवीत् ॥७॥

इस रात के व्यतीत हो जाने पर प्रातःकाल कीचक उठा और राजमहल में जाकर द्रौपदी से कहने लगा ॥७॥

सभायां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदाहनम् ।
न चैवालभसे त्राणमभिपन्ना बलीयसा ॥८॥

हे द्रौपदी ! राजा विराट के देखते २ सभा में गिराकर तुझे मैंने लात मार दी है। उस समय तेरी कोई रक्षा नहीं कर सका। क्योंकि तू बलवान् द्वारा दबाई गई थी ॥८॥

प्रवादेनेह मत्स्यानां राजा नाम्नायमुच्यते ।
अहमेव हि मत्स्यानां राजा वै वाहिनीपतिः ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मत्स्यराज तो मत्स्य-देश का नाम मात्र का राजा है। मैं इनकी सेना का संचालन करने वाला ही वास्तव में मत्स्य देश का राजा हूं ॥९॥

मां सुखं प्रतिपद्यस्व दासो भीरु भवामि ते।
अह्नाय तव सुश्रोणि शतं निष्कं ददाम्यहम् ॥१०॥

हे भीरु! तुम मेरे साथ सुख प्राप्त करो- मैं तुम्हारा दास रहूंगा। हे सुश्रोणि! यदि तुम इसके लिए प्रसन्न हो जाओगी, तो तुमको सौ सुवर्ण की मुद्रा प्रदान करूंगा ॥१०॥

दासीशतञ्च ते दद्यां दासानामपि चापरम्।
रथं चाश्वतरीयुक्तमस्तु नौ भीरु सङ्गमः ॥११॥

हे भीरु! जो तेरा मेरा संगम हो गया- तो एक सौ दासी और इतने ही दास, युवति घोड़ियों से युक्त रथ तुम्हें समर्पण करूंगा ॥११॥

द्रौपद्युवाच—

एवं मे समयं त्वद्य प्रतिपद्यस्य कीचक।
न त्वां सखा वा भ्राता वा जानीयात्सङ्गतं मया ॥१२॥

द्रौपदी बोली- हे कीचक! यदि ऐसा ही है तो इस काम के लिए एक शर्त (समय) है, कि मेरे तेरे सङ्गम को तेरा कोई सखा या बन्धु न जान सके ॥१२॥

अनुप्रवादाद्भीतास्मि गन्धर्वाणां यशस्विनाम्।
एवं मे प्रतिजानीहि ततोऽहं वशगा तव ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं यशस्वी गन्धर्वों की निन्दा या उन तक सूचना पहुंच जाने से डरती हूं। यदि तुम मुझसे यह प्रतिज्ञा कर लोगे- तो मैं तुम्हारे वश में हो जाऊंगी ॥१३॥

कीचक उवाच—

एवमेतत् करिष्यामि यथा सुश्रोणि भाषसे।
एको भद्रे गमिष्यामि शून्यामावस्थं तव ॥१४॥
समागमार्थं रम्भोरु त्वया मदनमोहितः।
यथा त्वां नैव पश्येयुर्गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ॥१५॥

कीचक बोला- हे सुश्रोणि ! यह जो तुम कह रही हो- मैं यह कर सकता हूं। हे भद्रे ! मैं तेरे शून्य भवन में अकेला आ जाऊंगा। हे रम्भोरु! काम से मोहित हुआ मैं तुमसे समागम करने के लिए इतना छुप कर आऊंगा-कि सूर्य के समान तेजस्वी भी गन्धर्व, मेरे साथ तुमको नहीं देख सकेंगे ॥१४-१५॥

द्रौपद्युवाच—

तदेतन्नर्त्तनागारं मत्स्यराजेन कारितम्।
दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम्॥१६
तमिस्रे तत्र गच्छेथा गन्धर्वास्तन्न जानते।
तत्र दोषः परिहृतो भविष्यति न संशयः ॥१७॥

द्रौपदी बोली- यह जो नृत्यशाला मत्स्यराज ने बनवा रखी है, जिसमें दिन में तो कन्या नाचती हैं और रात में अपने २ भवन को चली जाती हैं, वहां तुम अन्धेरे में पहुंच जाना, जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से गन्धर्व इसका भेद न जान सकेंगे। उस स्थान में प्रकट होने का दोष नष्ट हो जावेगा- इसमें सन्देह नहीं है ॥१६-१७॥

वैशम्पायन उवाच—

तमर्थमभिजल्पन्त्याः कृष्णायाः कीचकेन ह।
दिवसार्द्धं समभवन्मासेनैव समं नृप ॥१८॥

वैशम्पायन बोले- हे नृप! कृष्णा (द्रौपदी) के इस बात के कह देने पर कीचक को दिवस का अवशेष अर्द्धभाग एक मास की तरह पूरा हुआ ॥१८॥

ततः सा भीमसेनस्य तमर्थं प्रत्यवेदयत्।
कीचकोऽथ गृहं गत्वा भृशं हर्षपरिप्लुतः ॥१९॥

द्रौपदी ने भी यही सारी बातें भीम को जाकर बता दीं। कीचक भी अपने भवन पर चला गया, इस समय यह अत्यन्त त हो रहा था ॥१९॥

सैरिन्ध्रीरूपिणं मूढो मृत्युं तन्नावबुद्धवान्।
गन्धाभरणमाल्येषु व्यासक्तः स विशेषतः ॥२०॥

इस मूर्ख को यह ज्ञान ही नहीं हुआ, कि सैरिन्ध्री के रूप में यह मेरी मृत्यु घूस रही है। यह गन्ध, माला और आभूषणों के धारण करने में ही विशेष ढङ्ग से लगा हुआ था ॥२०॥

अलञ्चक्रे तदात्मानं सत्वरं काममोहितः।
तस्य तत् कुर्वतः कर्म्म कालो दीर्घ इवाभवत् ॥२१॥

इस कामातुर कीचक ने बड़ी शीघ्रता से अपने को सजा लिया। इसी तरह अपने को सजाते हुए इसको यह काल बड़ी ही देर में व्यतीत होता हुआ प्रतीत हुआ ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुचिन्तयतश्चापि तामेवायतलोचनाम् ।
आसीदभ्यधिका चापि श्रीः श्रियं प्रमुमुक्षतः ॥२२॥

यह उसी विशाल-नेत्र-धारिणी द्रौपदी के ध्यान में मग्न था। यद्यपि इसकी श्री (ऐश्वर्य) नष्ट होने वाली थी, तो भी यह आभरणादि से अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥२२॥

निर्वाणकाले दीपस्य वर्त्तीमिव दिधक्षतः ।
कृतसम्प्रत्ययस्तस्याः कीचकः काममोहितः॥२३॥

नाजानादिवसं यान्तं चिन्तयानः समागमम् ।
ततस्तु द्रौपदी गत्वा तदा भीमं महानसे ॥२४॥

उपातिष्ठत कल्याणी कौरव्यं पतिमन्तिकम् ।

दीपक के बुझने के समय जैसे दीपक की बत्ती अधिक जल उठती है, उसी तरह इस समय यह लक्ष्मी से ददीप्यमान था। काममोहित कीचक ने देव के वश में होकर द्रौपदी का विश्वास कर लिया। यह तो द्रौपदी के समागम की चिन्ता में था। इसको तो यही प्रतीत हो रहा था, कि क्या यह दिन ही व्यतीत नहीं होगा।

तमुवाच सुकेशान्ता कीचकस्य मया कृतः ॥२५॥

सङ्गमो नर्त्तनागारे यथावोचः परन्तप ।

यह सुन्दर केशव-धारिणी, कल्याणी द्रौपदी, कुरु-वंश-श्रेष्ठ अपने पति भीम के पास पहुंची और बोली-हे परन्तप! जैसे तुमनेकहा था—मैंने इसी तरह कीचक से नृत्यशाला में सङ्गम करने का इक़रार कर लिया है ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शून्यं स नर्त्तनागारमागमिष्यति कीचकः ॥२६॥
एको निशि महाबाहो कीचकं तं निसूदय ।

हे महाबाहो ! अब अकेला कीचक, उसी शून्य नर्तनागार में रात में आवेगा। तुम उस दुरात्मा कीचक को वहीं मार डालना!

तं सूतपुत्रं कौन्तेय कीचकं मददर्पितम् ॥२७॥
गत्वा त्वं नर्त्तनागारं निर्जीवं कुरु पाण्डव ।

हे कुन्ती-पुत्र, पाण्डव ! तुम मदोन्मत्त, सूत-पुत्र, कीचक को राजकन्याओं की नृत्यशाला में पहुंच कर प्रथम उसको प्राण-हीन कर दो ॥२७॥

दर्पाच्च सूतपुत्रोऽसौ गन्धर्वानवमन्यते ॥२८॥
तं त्वं प्रहरतां श्रेष्ठ ह्रदान्नागमिवोद्धर ।

अपने घमण्ड में चूर हुआ, कीचक, गन्धर्वों से भी नहीं डरता है। हे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ ! भीम ! तुम प्रथम सरोवर में से सांप की तरह इसको निकाल कर फैंक दो ॥२८॥

अश्रु दुःखाभिभूताया मम मार्जस्व भारत ।
आत्मनश्चैव भद्रन्ते कुरु मानं कुलस्य च ॥२९॥

हे भारत ! दुःख से व्याकुल मुझ द्रौपदी के आसुओं को पोंछो। इसी में तुम्हारा कल्याण और तुम्हारे कुलकी प्रतिष्ठा है।

भीमसेन उवाच—

एवं करोम्यहं भद्रे यथा त्वं भीरु भाषसे ।
स्वागतं ते वरारोहे यन्मां वेदयसे प्रियम् ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीमसेन कहने लगा—हे भद्रे ! तुम जो कह रही हो, मैं वही करूंगा। हे भीरु ! वरारोहे ! जो तुम मुझे अपने प्रिय कर्तव्य का निर्देश कर रही हो, इससे मैं तुम्हारा अपने चित्त में बड़ा मान करता हूं ॥३०॥

न ह्यन्यं कश्चिदिच्छामि सहायं वरवर्णिनि।
या मे प्रीतिस्त्वयाख्याता कीचकस्य समागमे ॥३१॥

हे वरवर्णिनि ! तुमने कीचक के साथ भिड़ जाने के उद्योग के सफल हो जाने की जो प्रीति-कारिणी सूचना दी है। इसके पूरा करने के लिए मुझे किसी अन्य सहायक की आवश्यकता नहीं है ॥३१॥

हत्वा हिडिम्बं सा प्रीतिर्ममासीद्वरवर्णिनि।
सत्यं भ्रातॄंश्च धर्मञ्च पुरस्कृत्य ब्रवीमि ते ॥३२॥
कीचकं निहनिष्यामि वृत्रं देवपतिर्यथा।
तं गह्वरे प्रकाशे वा पोथयिष्यामि कीचकम् ॥३३॥
अथ चेदपि योत्स्यन्ति हिंस्ये मत्स्यानपि ध्रुवम्।

हे सुन्दरि ! पूर्व में हिडिम्ब के मारने के लिए जो मुझे उत्साह हुआ था, वही आज उत्साह हो रहा है। हे द्रौपदी ! मैं सत्य, भाई और धर्म की शपथ खाकर कहता हूं कि वृत्रासुर को इन्द्र की भांति मैं आज कीचक को मार डालूंगा। अब यह अन्धेरे में आवे या उजाले में - मैं इसको मारे बिना नहीं छोड़ूंगा। इसकी सहायता में यदि मत्स्यराज के योद्धा भी मुझ से युद्ध करेंगे—तो मैं उनको भी निश्चय मार गिराऊंगा ॥३२-३३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो दुर्य्योधनं हत्वा प्रतिपत्स्येय वसुन्धराम् ।
कामं मत्स्यमुपास्तां हि कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिर ॥३४॥

इसके अनन्तर दुर्योधन को मार कर सारी पृथिवी को प्राप्त कर लूंगा। कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर को मत्स्यराज की सेवा करने दो ॥३४॥

द्रौपद्युवाच--

यथा न संत्यजेथास्त्वं सत्यं वै मत्कृते विभो ।
निगूढस्त्वं तथा पार्थ कीचकं तं निसूदय ॥३५॥

हे शक्तिशाली ! कुन्ती-पुत्र ! भीमसेन ! मेरे कारण से तुमको जिस तरह अपने सत्य से न डिगना पड़े—उसी तरह छुपे ढंग से इस नीच कीचक को मार डालो ॥३५॥

भीमसेन उवाच—

एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे ।
अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सह बान्धवैः ॥३६॥

भीमसेन ने कहा--हे भीरु ! तुम डरो नहीं, तुम कह रही हो, मैं वही करूंगा और आज ही छुपे २ उसके बान्धवों के साथ कीचक को मार डालूंगा ॥३६॥

अदृश्यमानस्तस्याद्य तमस्विन्यामनिन्दिते ।
नागो बिल्वमिवाक्रम्य पोथयिष्याम्यह शिरः ।
अलभ्यामिच्छतस्तस्य कीचकस्य दुरात्मनः ॥३७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अनिन्दिते ! इस अन्धेरी रात में कीचक को दिखाई भी न देकर बिल्व के फल को हाथी की तरह आक्रमण करके दुर्लभ पतिव्रता द्रौपदी के अभिलाषी, दुर्जन कीचक के शिर को कुचल डालूँगा ॥३७॥

वैशम्पायन उवाच—

भीमोऽथ प्रथमं गत्वा रात्रौ छन्न उपाविशत् ।
मृगं हरिरिवादृश्यः प्रत्याकाङ्क्षत कीचकम् ॥३८॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! रात होते ही भीम पहिले से ही जाकर संकेत स्थान में छुप गया । छुपे हुए सिंह की तरह अलक्षित बैठा हुआ भीम मृग रूपी कीचक की प्रतीक्षा करने लगा॥३८

कीचकश्चाप्यलङ्कृत्य यथाकाममुपागमत् ।
तां वेलां नर्त्तनागारं पाञ्चलीसङ्गमाशया ॥३९॥

कीचक भी इच्छानुसार अपने को सजाकर पाञ्चाली (द्रौपदी) के सङ्गम की आशा से ठीक समय पर उसी नृत्य-शाला में आया।

मन्यमानः स सङ्केतमागारं प्राविशत्ततः ।
प्रविश्य च स तद्वेश्म तमसा संवृतं महत् ॥४०॥

यह तो इस स्थान को द्रौपदी का सङ्केत स्थान समझ रहा था, इससे निःशङ्क भीतर घुसा चला गया । इसने इसमें घुस कर देखा, तो यह भवन बड़े ही अन्धकार से व्याप्त दिखाई दिया ॥४०॥

पूर्वागतं गतस्तत्र भीममप्रतिमौजसम् ।
एकान्तावस्थितं चैनमाससाद सुदुर्मतिः ॥४१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शयानं शयने तत्र सूतपुत्रः परामृषत् ।
जाज्वल्यमानं कोपेन कृष्णाधर्षणजेन ह ॥४२॥

यह महा-मूर्ख सूत पुत्र कीचक, पूर्व से आये हुए और छुप कर एकान्त में स्थित काष्ठ के शयन (तख्त) पर लेटे हुए, अत्यन्त-ओजस्वी भीम से चिपट गया और उस पर हाथ फेरने लगा। इस समय द्रौपदी के ऊपर किये हुए आक्रमण के कारण भीम कोप से जल रहा था ॥४१-४२॥

उपसङ्गम्य चैवैनं कीचकः काममोहितः ।
हर्षोन्मथितचित्तात्मा स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥४३॥

काम-मोहित कीचक, इससे लिपट कर हर्ष से विकसित चित्त होकर हंसता २ कहने लगा ॥४३॥

प्रापितन्ते मया वित्तं बहुरूपमनन्तकम् ।
त्वत्कृते धनरत्नाढ्यं दासीशतपरिच्छदम् ॥४४॥
रूपलावण्ययुक्ताभिर्युवतीभिरलञ्चृतम् ।
गृहं चान्तःपुरं सुभ्रु क्रीडारतिविराजितम् ॥४५॥
तत्सर्वं त्वां समुद्दिश्य सहसाहमुपागतः ।

हे सुभ्रु ! मैने रत्न सुवर्णादि के रूप में बहुत सा धन तेरे लिए निश्चित कर दिया है। सैकड़ों दासियों से प्राप्त, रूप और लावण्य से युक्त सुन्दरियों से सुशोभित, क्रीड़ा के साधनों से समन्वित, अन्तःपुर को तेरे अधीन करने का विचार करके ही मैं बड़ी शीघ्रता से यह तेरे पास आया हूं ॥४४-४५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकस्मात् मां प्रशंसन्ति सदा गृहगताः स्त्रियः।
सुवासा दर्शनीयश्च नान्योऽस्ति त्वादृशः पुमान् ॥४६

मेरे अन्तःपुर की सारी स्त्रियाँ, बार २ मेरी प्रशंसा करती रहती हैं, कि तुम उत्तम-वस्त्र-धारी, बड़े सुन्दर युवा हो। तुम्हारे तुल्य अन्य कोई पुरुष नहीं होगा ॥४६॥

भीमसेन उवाच—

दिष्ट्या त्वं दर्शनीयोऽथ दिष्ट्यात्मानं प्रशंससि।
ईदृशस्तु त्वया स्पर्शः स्पृष्टपूर्वो न कर्हिचित् ॥४७॥

भीमसेन बोला—बड़ी अच्छी बात है, जो तू इतना सुन्दर है। इससे भी बड़ा हर्ष है, कि तुम अपनी डींग आप ही मार रहे हो। आज जो तुमको स्पर्शानन्द (कामानन्द) प्राप्त होगा—ऐसा स्पर्शानन्द कभी पूर्व में देखा भी नहीं होगा ॥४७॥

स्पर्शं वेत्सि विदग्धस्त्वं कामधर्मविचक्षणः।
स्त्रीणां प्रीतिकरो नान्यस्त्वत्समः पुरुषस्त्विह ॥४८॥

तू तो प्रत्येक अच्छे स्पर्श के पहिचानने में बड़ा निपुण है। तेरे समान तो स्त्रियों को प्रीतिकारी कोई अन्य पुरुष है ही नहीं, क्योंकि तू काम-कला में बड़ा विलक्षण (पण्डित) है ॥४८॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः।
सहसोत्पत्य कौन्तेयः प्रहस्येदमुवाच ह ॥४९॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन! इतना कह कर भीम-पराक्रमी, महाबाहु, कुन्ती-पुत्र, भीम, एक दम उछला और हंस कर उस से कहने लगा ॥४९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्य त्वां भगिनी पापं कृष्यमाणं मया भुवि ।
द्रक्ष्यतेऽद्रिप्रतीकाशं सिंहेनेव महागजम् ॥५०॥

अरे दुष्ट ! आज तेरी बहन, मुझ से भूमि में खैंचे जाते हुए तुझ पापी को पर्वत के सदृश महागज को खैंचते हुए सिंह के सदृश मुझे देखेगी ॥५०॥

निराबाधा त्वयि हते सैरिन्ध्री विचरिष्यति ।
सुखमेव चरिष्यन्ति सैरिध्र्याः पतयः सदा ॥५१॥

हे दुरात्मन ! तेरे मार देने पर सैरिन्ध्री, राजमहलों में निःसङ्कोच घूम सकेगी एवं सैरिन्ध्री के पति (गन्धर्व) भी सुख-पूर्वक विचरते रहेंगे ॥५१॥

ततो जग्राह केशेषु माल्यवत्सु महाबलः ।
स केशेषु परामृष्टो बलेन बलिनाम्वरः ॥५२॥
आक्षिप्य केशान्वेगेन बाह्वोर्जग्राह पाण्डवम् ।

इसके अनन्तर महाबली भीम ने माला वाले बालों को पकड़ लिया। भीम के बाल पकड़ने पर बलवानों में श्रेष्ठ कीचक ने बल के साथ वेग से अपने बालों को झटका दिया और पाण्डु-पुत्र, भीम को अपनी भुजाओं में भर लिया ॥५२॥

बाहुयुद्धं तयोरासीत् क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥५३॥
वसन्ते वासिताहेतोर्बलवद्गजयोरिव ।
कीचकानान्तु मुख्यस्य नराणामुत्तमस्य च ॥५४॥
बालिसुग्रीवयोर्भ्रात्रोः पुरेव कपिसिंहयोः ।
अन्योऽन्यमभिसंरब्धौ परस्परजयैषिणौ ॥५५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसंत में हथिनी के कारण दो बलवान हाथी तथा पूर्वकाल में एक दूसरे पर भड़के हुए, परस्पर विजयेच्छुक, पि-श्रेष्ठ, वालि और सुग्रीव, दोनों भाइयों के समान कुपित हुए कीचक-वंश-श्रेष्ठ और नर-श्रेष्ठ भीम इन दोनों वीरों में बाहु-युद्ध होने लगा ॥५३-५५॥

ततः समुद्यम्य भुजौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ।
नखदंष्ट्राभिरन्योऽन्यं घ्नतः क्रोधविषोद्धतौ ॥५६॥

इन्होंने अपनी भुजाएँ उठा ली। जो पंच शिर के सर्प के समान दिखाई देती थी। ये क्रोध के विष में भरे हुए, नख और दंष्ट्राओं से एक दूसरे को काटने लगे ॥५६॥

वेगेनाभिहतो भीमः कीचकेन बलीयसा ।
स्थिरप्रतिज्ञः स रणे पदान्न चलितः पदम् ॥५७॥

महाबली कीचक ने अपने वेग से भीम को दबा सा लिया, परन्तु फिर भी दृढ़ प्रतिज्ञा के कारण भीम एक पद भी पीछे नहीं हटा ॥५७॥

तावन्योऽन्यं समाश्लिष्य प्रकर्षन्तौ परस्परम् ।
उभावपि प्रकाशेते प्रवृद्धौ वृषभाविव ॥५८॥

ये दोनों एक दूसरे के लिपट गए और अपनी २ ओर खींचने लगे। ये दोनों पुष्ट वृषभों के समान बड़ी उत्तमता से प्रकाशित हो रहे थे ॥५८॥

तयोर्ह्यासीत् सुतुमलः सम्प्रहारः सुदारुणः ।
नखदन्तायुधवतोर्व्याघ्रयोरिव दृप्तयोः ॥५९॥

अब इन दोनों का महाघोर युद्ध होने लगा जैसे नख और दांतों के शस्त्र-धारी मदोत्कट दो सिंह लड़ रहे हों ॥५८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिपत्याथ बाहुभ्यां प्रत्यगृह्णादमर्षितः ।
मातङ्ग इव मातङ्गं प्रभिन्नकरटामुखम् ॥६०॥

इन दोनों ने उछल कर अपनी २ भुजाओं से कपोलों से मद टपकाने वाले हाथी को हाथी की तरह एक दूसरे को पकड़ रहे थे ॥६०॥

स चाप्येनं तदा भीमः प्रतिजग्राह वीर्य्यवान् ।
तमाक्षिपत् कीचकोऽथ बलेन बलिनां वरः ॥६१॥

वीर्यशाली भीम ने मौका पाकर कीचक को पकड़ लिया। महाबली कीचक भी बड़े बल से इसको झटका देकर इसको पकड़ से निकल गया ॥६१॥

तयोर्भुजविनिष्पेषादुभयोर्बलिनोस्तदा ।
शब्दः समभवद् घोरो वेणुस्फोटसमो युधि ॥६२॥

इन दोनों बलवानों की बाहुओं की रगड़ से युद्ध में बांस फटने के समान घोर शब्द होने लगा ॥६२॥

अथैनमाक्षिप्य बलाद् गृहमध्ये वृकोदरः ।
धूनयामास वेगेन वायुश्चण्ड इव द्रुमम् ॥६३॥

वृकोदर भीम, बल-पूर्वक इसको उठाकर वृक्ष को प्रचण्ड वायु के समान बड़े वेग से घुमाने लगा ॥६३॥

भीमेन च परामृष्टो दुर्बलो बलिना रणे ।
व्यस्पन्दत यथाप्राणं त्रिचकर्ष च पाण्डवम् ॥६४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलवान भीमसेन द्वारा तोड़े-मरोड़े हुए, दुर्बल कीचक ने यथा-शक्ति फिर बल लगाया और भीमसेन को अपनी ओर खैंच लिया ॥६४॥

ईषदाकलितं चापि क्रोधात् द्रुतपदं स्थितम् ।
कीचको बलवान् भीमं जानुभ्यामाक्षिपद्भुवि ॥६५॥

बलवान कीचक ने क्रोध में भर कर भीम पर कुछ आक्रमण किया। भीम कुछ पीछे हटकर खड़ा हो गया। अब इसने गोडियों का बल लगा कर भीम को जैसे तैसे भूमि पर डाल दिया॥६५॥

पातितो भुवि भीमस्तु कीचकेन बलीयसा ।
उत्पपाताथ वेगेन दण्डपाणिरिवान्तकः ॥६६॥

महाबली कीचक द्वारा भूमि पर गिराया हुआ भीम, दण्ड-पाणि यमराज की तरह फिर बड़े वेग से उठ खड़ा हुआ ॥६६॥

स्पर्द्धया च बलोन्मत्तौ तावुभौ सूतपाण्डवौ ।
निशीथे पर्य्यकर्षेतां बलिनौ निर्जने स्थले ॥६७॥

आधी रात में निर्जन स्थान पर वे बलोन्मत्त दोनों कीचक और भीम, एक दूसरे के जीतने की स्पर्धा (इच्छा) से एक दूसरे को खींच रहे थे ॥६७॥

ततस्तद्भवनश्रेष्ठं प्राकम्पत मुहुर्मुहुः ।
बलवच्चापि संक्रुद्धावन्योऽयं प्रतिगर्जतः ॥६८॥

इस समय यह उत्तम भवन बार २ कांप जाता था। ये दोनों एक दूसरे के प्रति गर्जना करके बड़े ही कुपित हो रहे थे ॥६८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलाभ्यां स तु भीमेन वक्षस्यभिहतो बली ।
कीचको रोषसन्तप्तः पदान्न चलितः पदम् ॥६९॥

अब भीमसेन ने महाबली कीचक के वक्षस्थल में अपने दोनों हाथों की थपेड़ बड़े जोर से लगाई, परन्तु रोष में भरा हुआ कीचक, उससे एक पद (कदम) भी पीछे नहीं हटा ॥६९॥

मुहूर्तं तु स तं वेगं सहित्वा भुवि दुःसहम् ।
बलादहीयत तदा सूतो भीमबलार्दितः ॥७०॥

भीमके इस दुःसह वेग को उस जगह थोड़ी देर तक कीचक सह सका, परन्तु फिर भीम के बल से पीड़ित होकर सूत-पुत्र कीचक, बलहीन हो ही गया ॥७०॥

तं हीयमानं विज्ञाय भीमसेनो महाबलः ।
वक्षस्यानीय वेगेन समर्दैनं विचेतसम् ॥७१॥

जब महाबली भीम ने देखा, कि कीचक का सांस भर आया, तो इसने बड़े वेग से इस थके हुए कीचक को अपनी छाती से रगड़ डाला ॥७१॥

क्रोधाविष्टो विनिःश्वस्य पुनश्चैनं वृकोदरः ।
जग्राह जयतां श्रेष्ठः केशेष्वेव तदा भृशम् ॥७२॥

महा-विजयी भीम ने क्रोध में भर कर हुंकार मारी और फिर बड़े वेग से इसने इसके बाल पकड़ लिए ॥७२॥

गृहीत्वा कीचकं भीमो विरुराव महाबलः ।
शार्दूलः पिशिताकांक्षी गृहीत्वेव महामृगम् ॥७३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाबली, भीमसेन कीचक को पकड़ कर महामृग को पकड़ने वाले मांसेच्छुक सिंह की तरह गुर्राने लगा ॥७३॥

तत एनं परिश्रान्तमुपलस्य वृकोदरः ।
योजयामास बाहुभ्यां पशुं रशनया यथा ॥७४॥

जब भीम को निश्चय हो गया, कि कीचक थक गया, तो इसने जैसे पशु को रस्सी से जकड़ लेते हैं, वैसे कीचक को अपनी भुजाओं से जकड़ लिया ॥७४॥

नदन्तश्च महानादं भिन्नभेरीसमस्वनम् ।
भ्रामयामास सुचिरं विस्फुरन्तमचेतसम् ॥७५॥

फटे नगाड़े के शब्द के समान घोर शब्द करते हुए, फटी सी आंखों वाले, अचेत कीचक को भीम ने बहुत देर तक फिराया ॥७५॥

प्रगृह्य तरसा दोर्भ्यां कण्ठं तस्य वृकोदरः ।
अपीड़यत कृष्णायास्तदा कोपोपशान्तये ॥७६॥

वृकोदर भीम ने बड़े बल-पूर्वक कीचक का गला द्रौपदी के कोप की शान्ति के लिए अपनी भुजाओं से भींच डाला ॥७६॥

अथ तम्भग्नसर्वाङ्गं व्यविद्धनयनाम्बरम् ।
आक्रम्य च कटीदेशे जानुना कीचकाधमम् ॥७७॥
अपीडयत बाहुभ्यां पशुमारममारयत् ।

जिसके अङ्ग प्रत्यङ्ग टूट गए और जिसकी आंखें बाहर निकल आई, ऐसे नीच कीचक की कमर में भीम ने अपनी गोडी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गडा दी। इसने अपनी भुजाओं से इसको पीड़ित करके पशु के वध करने की तरह इसका वध कर डाला ॥७७॥

तं विषादन्तमाज्ञाय कीचकं पाण्डुनन्दनः॥७८॥
भूतले भ्रामयामास वाक्यं चेदमुवाच ह।

पाण्डु-नन्दन भीम ने कीचक को अत्यन्त पीड़ित जान कर पृथिवी पर दे मारा और यह वाक्य कहा ॥७८॥

अद्याहमनृणो भूत्वा भ्रातुर्भार्य्यापहारिणम्।
शान्तिं लब्धास्मि परमां हत्वा सैरिन्ध्रिकण्टकम् ॥७९॥

आज मैं अपने भाई की भार्या के अपहरण करने वाले कीचक को मार कर ऊऋण हो गया हूं। मुझे आज सैरिन्ध्री (द्रौपदी) के कण्टक (शत्रु) को मार कर बड़ी ही शान्ति प्राप्त हुई है ॥७९॥

इत्येवमुक्त्वा पुरुषप्रवीरस्तं कीचकं क्रोधसरागनेत्रः।
आस्रस्तवस्त्राभरणंस्फुरन्तमुद्भ्रान्तनेत्रंव्यसुमुत्ससर्ज ॥

क्रोध से लाल-नेत्र-धारी वीर-श्रेष्ठ भीम ने इतना कह कर छिन्न-भिन्न-वस्त्राभूषण-धारी, फटी आंखों वाले, तड़फते हुए उस मृतक कीचक को भूमि पर फैंक दिया ॥८०॥

निष्पिष्य पाणिना पाणिं सन्दष्टौष्ठपुटं बली।
समाक्रम्य च संक्रुद्धो बलेन बलिनां वरः ॥८१॥

बलवानों में श्रेष्ठ, महाबली भीम, ओष्ठ चाबते हुए, क्रुद्ध होकर अपने हाथ से कीचक के हाथ को मरोड़ कर उसकी छाती पर जा बैठा ॥८१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्यादौ च पाणी च शिरो ग्रीवाश्च सर्वशः ।
काये प्रवेशयामास पशोरिव पिनाकधृक् ॥८१॥

इस कीचक के पैर, हाथ, शिर और ग्रीवा को अच्छी तरह उसकी ही देह में प्रविष्ट कर दिए—जैसे पिनाकधारी रुद्र, अपने भक्ष्य पशु की दशा करता है ॥८२॥

तं संमथितसर्वाङ्गं मांसपिण्डोपमं कृशम् ।
कृष्णाया दर्शयामास भीमसेनो महाबलः ॥८३॥

कीचक के अङ्गों को मथ कर महाबली भीम ने कीचक को मांस का छोटा सा पिण्ड बना दिया और इधर उधर छुपी हुई द्रौपदी को बुला कर दिखाया ॥८३॥

उवाच च महातेजा द्रौपदीं योषितां वराम् ।
पश्यैनमेहि पाञ्चालि कामुकोऽयं यथाकृतः॥८४॥

महा-तेजस्वी भीमसेन, स्त्रियों में श्रेष्ठ, द्रौपदी से बोला—हे पाञ्चालि ! यह देख ले—तेरे कामुक (अभिलाषी) की क्या दशा कर दी है ॥८४॥

एवमुक्त्वा महाराज भीमो भीमपराक्रमः ।
पादेन पीडयामास तस्यकायं दुरात्मनः ॥८५॥

हे महाराज ! इतना कह कर भीम-पराक्रमी-भीम ने उस दुरात्मा के शरीर में पैर की ठोकर मारा ॥८५॥

ततोऽग्निं तत्र प्रज्वाल्य दर्शयित्वा तु कीचकम् ।
पाञ्चालीं स तदा वीर इदं वचनमब्रवीत् ॥८६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस स्थान में अग्नि जलाकर और कीचक की दशा दिखाकर वीर भीमसेन, द्रौपदी से यह वचन बोला ॥८६॥

प्रार्थयन्ति सुकेशान्ते ये त्वां शीलगुणान्वित !
एवन्ते भीरु वध्यन्ते कीचकः शोभते यथा ॥८७॥

हे सुन्दर केशों के धारण करने वाली, भीरु ! सदाचारादि गुणों से समन्वित, तेरी जो कामना करने लगते हैं, उनकी यही दशा होती है—जैसी इस कीचक की हो रही है ॥८७॥

तत् कृत्वा दुष्करं कर्म कृष्णायाः प्रियमुत्तमम् ।
तथा स कीचकं हत्वा गत्वा रोषस्य वै शमम् ॥८८॥
आमन्त्र्य द्रौपदीं कृष्णां क्षिप्रमायान्महानसम् ।

भीमसेन ने द्रौपदी के अत्यन्त प्रिय, इस दुष्कर्म को करके और कीचक को मार कर अपने क्रोध को शान्त किया तथा द्रुपद-पुत्री कृष्णा से पूछ कर बड़ी शीघ्रता से रसोई की ओर प्रस्थान किया ॥८८॥

कीचकं घातयित्वा तु द्रौपदी योषितां वरा ॥८९॥
प्रहृष्टा गतसन्तापा सभापालानुवाच ह ।

स्त्रियों में श्रेष्ठ, द्रौपदी कीचक को मरवा कर बड़ी प्रसन्न हुई। इसका सारा सन्ताप, निकल गया। अब यह सभापालकों से बोली ॥८९॥

कीचकोऽयं हतः शेते गन्धर्वैः पतिभिर्मम ॥९०॥
परस्त्रीकामसंमत्तस्तत्रागच्छत पश्यत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे सभापालों! पर-स्त्री की कामना से मस्त हुए कीचक को मेरे पति (रक्षक) गन्धर्वों ने मार दिया है और अब यह भूमि में पड़ा सोता है, तुम लोग आओ और इसको देखो।६०।

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या नर्त्तनागाररक्षिणः ॥६१॥
सहसैव समाजग्मुरादायोल्काः सहस्रशः।

इस नृत्यशाला की रक्षा करने वाले सभापाल, (सिपाही) अनेक मसाल लेकर बड़ी शीघ्रता से वहां आए ॥ ६१ ॥

ततो गत्वाथ तद्देशम कीचकं विनिपातितम्॥६२॥
गतासुं ददृशुर्भूमौ रुधिरेण समुक्षितम्।

ये लोग, इस भवन में पहुंचे और इन्होंने रक्त में लथ-पथ भरे हुए, कीचक का भूमि में पड़ा हुआ देखा ॥६२॥

पाणिपादविहीनन्तु दृष्ट्वा च व्यथिताभवन् ॥६३॥
निरीक्षन्ति ततः सर्वे परं विस्मयमागताः।
अमानुषकृतं कर्म तं दृष्ट्वा विनिपातितम् ॥६४॥

ये हाथ पैर रहित कीचक को माँस पिण्ड के आकार में देख कर बड़े ही व्यथित हुए और इसको ध्यान से देखने लगे। इन्होंने मनुष्यों का अतिक्रमण कर जाने वाले इस कर्म को देख कर बड़ा ही आश्चर्य किया ॥ ६३-६४ ॥

क्वास्य ग्रीवा क्व चरणौ क्व पाणी क्व शिरस्तथा।
इति स्म तं परीक्षन्ते गन्धर्वेण हतं तदा ॥६५॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि कीचकवधे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय ये गन्धर्व द्वारा मारे हुए कीचक के अङ्गों की परीक्षा करने लगे, कि इसको ग्रीवा, चरण, हाथ और शिर कहां चले गए ॥६५॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत कीचकवधपर्व में कीचक के वध का बाईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

****

तेईसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तस्मिन् काले समागम्य सर्वे तत्रास्य बान्धवाः।
रुरुदुः कीचकं दृष्ट्वा परिवार्य्य समन्ततः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत! इस समाचार को सुन कर कीचक के सारे बान्धव उसी समय वहां चले आए और इसको देख कर तथा चारों ओर से घेर कर रोने लगे ॥१॥

सर्वे संहृष्टरोमाणः सन्त्रस्ताः प्रेक्ष्य कीचकम्।
तथा सम्भिन्नसर्वाङ्गं कूर्मं स्थल इवोद्धृतम् ॥२॥

पृथ्वी पर ऊंचो पीठ वाले, कछुवे की तरह पड़े हुए, समस्त खण्ड-बण्ड अङ्गों के धारी, कीचक को देखकर इसके सारे बान्धव बड़े घबराए और इनके रोमांच खड़े हो गए ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोथितं भीमसेनेन तमिन्द्रेणेव दानवम् ।
संस्कारयितुमिच्छन्तो बहिर्नेतुं प्रचक्रमुः ॥३॥

इन्द्र द्वारा, दानव की तरह भीमसेन से मारे हुए कीचक के दाह संस्कार करने के लिए वे अग्नि लाने को दौड़े ॥३॥

ददृशुस्ते ततः कृष्णां सूतपुत्राः समागताः ।
अदूराच्चानवद्याङ्गीं स्तम्भमालिङ्ग्य तिष्ठतीम् ॥४॥

इन आये हुए सूत-पुत्रों ने खम्भे के चिपट कर तमाशा देखती हुई, पास में ही सर्वाङ्ग-सुन्दरी द्रौपदी को देखा ॥४॥

समवेतेषु सर्वेषु तामूचुरुपकीचकाः ।
हन्यतां शीघ्रमसतीं यत्कृते कीचको हतः ॥५॥

जब ये सारे कीचक बान्धव इकट्ठे हो लिए तो बोले—अरे कीचको ! प्रथम इस दुष्टिनी द्रौपदी को मारो, जिसके कारण यह कीचक मारा गया है ॥५॥

अथ वा नैव हन्तव्या दह्यतां कामिना सह ।
मृतस्यापि प्रियं कार्य्यं सूतपुत्रस्य सर्वथा ॥६॥

कोई बोला—इसको मारो नहीं, इस कामी कीचक के साथ इसको भी जला दो। हम लोगों को सूत-पुत्र मृतक कीचक का प्रिय कार्य करना ही है ॥६॥

ततो विराटमूचुस्ते कीचकोऽस्याः कृते हतः ।
सहानयोद्य दह्येम तदनुज्ञातुमर्हसि ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सब राजा विराट से बोले—हे राजन्! यह कीचक सेनापति, इस द्रौपदी के कारण मारा गया है, इससे हम लोग इस द्रौपदी को भी इसके साथ ही जलावेंगे। आप हमको इस बात की अनुज्ञा (इजाज़त) दे दें ॥७॥

पराक्रमन्तु सूतानां मत्वा राजान्वमोदत ।
सैरिन्ध्र्याः सूतपुत्रेण सह दाहं विशाम्पतिः ॥८॥

राजा विराट इन कीचकों के पराक्रम से डरता था, इससे इनको इसने स्वीकृति दे दी, कि हां तुम इस सैरिन्ध्री को कीचक के साथ जला सकते हो ॥८॥

तां समासाद्य वित्रस्तां कृष्णां कमललोचनाम् ।
मोमुह्यमानां ते तत्र जगृहुः कीचका भृशम् ॥९॥

कमल के समान लोचनों वाली द्रौपदी को इन नीच कीचकोंने बड़ी गाढ़ी तरह पकड़ लिया। इससे यह बड़ी व्याकुल और अचेत सी हो गई ॥९॥

ततस्तु तां समारोप्य निबध्य च सुमध्यमाम् ।
जग्मुरुद्यम्य ते सर्वे श्मशानाभिमुखास्तदा ॥१०॥

अब इन्होंने किसी खट्वा के ऊपर इस सुन्दरी को डालकर बांध दिया और उठाकर सारे कीचक, श्मशान की ओर चल दिए ॥१०॥

ह्रियमाणा तु सा राजन् सूतपुत्रैरनिन्दिता ।
प्राक्रोशन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन ! सूत-पुत्र, कीचकों से इस प्रकार पकड़कर ले जाई हुई,सब तरह प्रशसनीय द्रौपदी, अनाथ की तरह किसी नाथ(रक्षक) की इच्छा से चिल्लाने लगी, यद्यपि यह नाथ वाली थी ॥११॥

द्रौपद्युवाच—

जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः
ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम् ॥१२॥

द्रौपदी बोली—जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन, जयद्बल (गन्धर्व) मेरी वाणी को सुनले, कि मुझे ये सूत-पुत्र कीचक भस्म करने ले जा रहे हैं ॥१२॥

येषां ज्यातलनिर्घोषो विस्फूर्जितमिवाशनेः।
व्यश्रूयत महायुद्धे भीमघोषस्तरस्विनाम् ॥१३॥
रथघोषश्च बलवान् गन्धर्वाणां तरस्विनाम् ।
ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम् ॥१४॥

जिनकी धनुष की डोरी का प्रचण्ड शब्द, वज्र की तरह कड़कता है और महायुद्ध में जिन वेगशालियों की गर्जना ही सब ओर सुनी जाती है तथा जिन बलवान् गन्धर्वों के रथों का बलवान घोष ही युद्ध में कानों में पड़ता है, वे मेरी वाणी सुन ले, कि मुझे सूत्र-पुत्र कीचक पकड़ कर ले जा रहे हैं ॥१३-१४॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्यास्ताः कृपणा वाचः कृष्णायाः परिदेविताः ।
श्रुत्वैवाभ्यापतद्भीमः शयनादविचारयन् ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! द्रौपदी की इस तरह रान चिल्लाने की दीन वाणी सुनते ही भीमसेन अपने शयन से बिना कुछ सोचे विचारे चट से कूद पड़ा ॥१५॥

भीमसेन उवाच—

अहं शृणोमि ते वाचं त्वया सैरिन्ध्रि भाषिताम्
तस्मात्ते सूतपुत्रेभ्यो भयं भीरु न विद्यते ॥१६॥

भीमसेन बोला-हे भीरु ! सैरिन्ध्री ! मैंने तेरी वाणी(आवाज़) सुन ली है, इसलिए अब इन सूत-पुत्रों से तुम को कुछ भी भय नहीं है ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्त्वा स महाबाहुर्विजजृम्भे जिघांसया ।
ततः स व्यायतं कृत्वा वेशं विपरिवर्त्य च ॥१७॥
अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य निर्जगाम बहिस्तदा ।
स भीमसेनः प्राकारमारुह्य तरसा द्रुतम् ॥१८॥
श्मशानाभिमुखः प्रायाद्यत्र ते कीचका गताः ।

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय ! इतना कह कर यह महाबाहु भीम, उन कीचकों के मारने की इच्छा से उत्साह में भर गया। अब इसने झटपट प्रयत्न करके गन्धर्वों का सा वेष बना लिया और यह अपने भवन के द्वार को छोड़ कर छत से ही कूद कर बाहर निकल आया। भीमसेन, बड़े वेग के साथ शीघ्रता से नगर के प्राकार (शहर पनाह) पर चढ़ गया और वहां से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूद कर जिधर वे कीचक गए थे, उधर ही श्मशान की ओर चल पड़ा ॥१७-१८॥

स लङ्घयित्वा प्राकारं निःसृत्य च पुरोत्तमात् ॥१९॥
जवेन पतितो भीमः सूतानामग्रतस्तदा ।

भीमसेन, प्राकार (नगर कोट) को उल्लांघ कर और नगर से बाहर निकल कर बड़े वेग से कीचकों के सम्मुख आकर खड़ा हो गया ॥१९॥

चितासमीपे गत्वा स तत्रापश्यद्वनस्पतिम् ॥२०॥
तालमात्रं महास्कन्धमूर्ध्वशुष्कं विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! इसने चिता के पास जाकर ताल-वृक्ष के सदृश लम्बे चौड़े, बड़े २ स्कन्धों वाले, ऊपर के भाग से सूखे हुए, एक वृक्ष को देखा ॥२०॥

तं नागवदुपक्रम्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥२१॥
स्कन्धमारोपयामास दशव्यामं परन्तप ।

हे परन्तप ! हाथी की भांति उसकी ओर झपट कर भीम ने उस वृक्ष को बाहुओं में भर लिया। दश व्याम (बीस गज के लगभग) चौड़े स्कन्ध (पेड़ी) वाले वृक्ष को भीम ने कन्धों पर रख लिया ॥२१॥

स तं वृक्षं दशव्यामं सस्कन्धविटपं बली ॥२२॥
प्रगृह्याभ्यद्रवत् सूतान् दण्डपाणिरिवान्तकः ।

दश-व्याम चौड़े, स्कन्ध और टहनियों से युक्त, उस वृक्ष को लेकर महाबली भीम, दण्डपाणि यमराज की तरह उन कीचकों पर दौड़ा ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उरुवेगेन तस्याथ न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकाः ॥२३॥
भूमौ निपातिता वृक्षाः सङ्घशस्तत्र शेरते ।

भीमसेन के बड़े भारी वेग से बड़, पीपल, ढाक आदि के सैकड़ों वृक्ष, टूट कर भूमि में गिर गए ॥२३॥

तं सिंहोमव संक्रुद्धं दृष्ट्वा गन्धर्वमागतम्॥२४॥
वित्रेसुः सर्वशः सूता विषादभयकम्पिताः ।

क्रुद्ध सिंह की तरह झपट कर आते हुए गन्धर्व (भीम) को देखकर सारे सूत, भय और विषाद से कांपने लगे तथा बड़े घबड़ाए ॥२४॥

तमन्तकमिवायान्तं गन्धर्वं प्रेक्ष्य ते तदा ॥२५॥
दिधक्षन्तस्तदा ज्येष्ठं भ्रातरं ह्युपकीचकाः ।
परस्परमथोचुस्ते विषाहेभयकम्पिता ॥२६॥

यमराज की तरह झपट कर आते हुए गन्धर्व (भीम) को देख कर भय-विषाद-समन्वित सारे छोटे मोटे कीचक, अपने भाई को चिता में रख कर जलाने की चेष्टा करते हुए ही परस्पर ने लगे ॥२५-२६॥

गन्धर्वो बलवानेति क्रुद्ध उद्यम्य पादपम् ।
सैरिन्ध्री शीघ्रं यो नो भयमागयम् ॥२७॥

यह गन्धर्व, बड़ा बलवान् मालूम होता है, जो वृक्ष उखाड़ कर दौड़ा चला आता है। अब तुम इस सैरन्ध्री को शीघ्र छोड़ दो, नहीं तो बड़ा भय उपस्थित हो गया है ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते तु दृष्ट्वा तदा विद्धं भीमसेनेन पादपम् ।
विमुच्य द्रौपदीं तत्र प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥२८॥

जब इन्होंने भीमसेन को वृक्ष उखाड़ कर लाते हुये देखा, तो ये द्रौपदी को खोल कर बड़ी शीघ्रता से नगर की ओर दौड़े।

द्रवतस्तांस्तु सम्प्रेक्ष्य स वज्री दानवानिव ।
शतं पञ्चाधिकं भीमः प्राहिणोद्यमसादनम् ॥२९॥
वृक्षेण तेन राजेन्द्र प्रभञ्जनसुतो बली ।

हे राजेन्द्र ! कीचकों को नगर की ओर भागते हुए देखकर दानवों को इन्द्र के तुल्य वायु-पुत्र महाबली, भीम ने एक सौ पांच कीचकों को उस वृक्ष से मार कर यमलोक भेज दिया ॥२९॥

तत्र आश्वासयत् कृष्णां स विमुच्य विशाम्पते॥३०॥
उवाच च महाबाहुः पाञ्चालीं तत्र द्रौपदीम् ।
अश्रुपूर्णमुखीन्दीनां दुर्द्धर्षः स वृकोदरः॥३१॥

हे विशाम्पते ! महाबाहु, दुर्धर्ष, भीमसेन, अच्छी तरह द्रौपदी को बन्धन से खोल कर शान्ति देने लगा और पाञ्चाल-कन्या अश्रुओं से भरे हुए मुखवाली, कातर द्रौपदी से बोला ॥३०-३१॥

एवन्ते भीरु बध्यन्ते ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसम्
प्रैहि त्वं नगरं कृष्णे न भयं विद्यते तव ।
अन्येनाहं गमिष्यामि विराटस्य महानसम् ॥३२॥

हे भीरु ! जो तुझ निरपराध को क्लेशित करते हैं, वे इस तरह मारे जाते हैं। हे कृष्णे ! अब तुम शीघ्र नगर को चली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाओ, अब तुमको कुछ डर नहीं रहा है, मैं अन्य मार्ग से राजा विराट की रसोई में पहुंचता हूँ ॥३२॥

वैशम्पायन उवाच--

पञ्चाधिकं शतं तच्च निहतं तत्र भारत।
महावनमिव छिन्नं शिश्ये विगलितद्रुमम् ॥३३॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! उस स्थान में भीम ने एक सौ पांच कीचक मार डाले। यह स्थान, वृक्ष काटे हुए, छिन्न भिन्न सुन्न-सान महावन सा प्रतीत होता था ॥३३॥

एवन्ते निहता राजन् शतं पञ्च च कीचकाः।
स च सेनापतिः पूर्वमित्येतत् सूतपट् शतम् ॥३४॥

हे राजन ! इस तरह भीम ने एक सो पांच छोटे कीचक और एक पूर्व में वही प्रधान सेनापति कीचक मारा। इस तरह इसने एक सौ छः कीचक मार डाले ॥३४॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं नरा नार्य्यश्च सङ्गताः।
विस्मयं परमं गत्वा नोचुः किञ्चन भारत ॥३५॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
उपकीचकवधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

हे भारत ! इस महान् आश्चर्य को देखकर नर नारी इकट्ठे हो गए और वे इस समय बड़े ही चकित होकर कुछ नहीं बोल रहे थे ॥३५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत कीचकवधपर्व में उप-कीचकों के वध का तेईसवां अध्याय पूरा हुआ।

—०:*:०—

चौबीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ते दृष्ट्वा निहतान् सूतान्राज्ञे गत्वा न्यवेदयत्।
गन्धर्वैर्निहता राजन् सूतपुत्रा महाबलाः ॥१॥

वैशम्पायन बोले--हे राजन ! लोगों ने मारे हुए सूतों (कीचकों) को देख कर राजा विराट से जाकर निवेदन किया, हे राजन् ! महाबली सूतपुत्र, गन्धर्वों ने मार डाले हैं ॥१॥

यथा वज्रेण वै दीर्णं पर्वतस्य महच्छिरः।
व्यतिकीर्णाः प्रदृश्यन्ते तथा सूता महीतले ॥२॥

हे राजन् ! जैसे वज्र से पर्वत का विशाल शिखर छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाता है, वैसे ही नष्ट भ्रष्ट कीचक, भूमि पर पड़े हैं ॥२॥

सैरिन्ध्री च विमुक्तासौ पुनरायाति ते गृहम्।
सर्वं संशयितं राजन् नगरन्ते भविष्यति ॥३॥

हे राजन् ! वहां से छुटकारा पाकर वह सैरिन्ध्री फिर आपके महलों में आवेगी। इस तरह तो सम्पूर्ण नगर ही मृत्यु के सन्देह में पड़ जावेगा ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथारूपा च सैरिन्ध्री गन्धर्वाश्च महाबलाः ।
पुंसामिष्टश्च विषयो मैथुनाय न संशयः ॥४॥
यथा सैरिन्ध्रीदोषेण न ते राजन्निदं पुरम् ।
विनाशमेति वै क्षिप्रं तथा नीतिर्विधीयताम् ॥५॥

यह सैरिन्ध्री बड़ी रूपवती है और गन्धर्व बड़े बलवान् हैं। प्रत्येक मनुष्य सम्भोग के आनन्द का अभिलाषी है—यह निश्चित बात है। हे राजन्! इस तरह इस सैरिन्ध्री के दोष से यह तेरा सारा नगर नष्ट-भ्रष्ट न हो सके—तुम कोई ऐसी नीति (ढंग) निकालो ॥५॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विराटो वाहिनीपतिः ।
अब्रवीत् क्रियतामेषां सूतानां परमा क्रिया ॥६॥

इन लोगों के ये वचन सुन कर सेना का स्वामी, राजा विराट बोला—प्रथम तुम लोग, इन कीचकों का दाह संस्कार तो करो ॥६॥

एकस्मिन्नेव ते सर्वे सुसमिद्धे हुताशने ।
दह्यन्तां कीचकाः शीघ्रं रत्नैर्गन्धैश्च सर्वशः॥७॥

एक बहुत बड़ी चिता में, इन्धन डाल कर अग्नि प्रज्वलित करो और उस में पञ्च रत्न और सुगन्ध द्रव्यों के साथ में इन सब कीचकों को भस्म कर डालो ॥७॥

सुदेष्णामब्रवीद्राजा महिषीं जातसाध्वसः ।
सैरिन्ध्रीमागतां ब्रूया ममैव वचनादिदम् ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गच्छ सैरिन्ध्रि भद्रन्ते यथाकामं वरानने ।
बिभेति राजा सुश्रोणि गन्धर्वेभ्यः पराभवात् ॥९॥

अब राजा विराट, घबड़ा कर रानी सुदेष्णा से बोला—हे राजमहिषी ! तुम मेरी आज्ञा से जब सैरिन्ध्री यहां आवे, तो तब उससे कह देना, कि हे सैरिन्ध्री ! वरानने ! तुम अपनी इच्छानुसार कहीं पर ही चली जाओ । हे सुश्रोणि ! गन्धर्वों के पराभव से राजा विराट तुम से डरता है ॥९॥

न हि त्वामुत्सहे वक्तुं स्वयं गन्धर्वरक्षिताम् ।
स्त्रियास्त्वदोषस्त्वां वक्तुमतस्त्वां प्रब्रवीम्यहम् ॥१०॥

तुम गन्धर्वों से सुरक्षित हो—इससे मैं तो तुम से कुछ कह नहीं सकती हूं ! राजा की आज्ञा से मुझे कहना पड़ा है—इस से मैं तो तुम्हारे निकालने में निर्दोष हूं, क्योंकि मैं तो दब कर तुम से इतना कह रही हूँ ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच—

अथ मुक्ता भयात् कृष्णा सूतपुत्रान्निरस्य च
मोचिता भीमसेनेन जगाम नगरं प्रति ॥११॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! अब द्रौपदी भय से मुक्त होकर और सूत-पुत्रों को वहीं पड़े छोड़ कर, भीमसेन से छुड़ाई हुई नगर की ओर चल दी ॥११॥

त्रासितेव मृगी बाला शार्दूलेन मनस्विनी ।
गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंह से क्लेशित की हुई, मृगी की तरह सुन्दरी द्रौपदी भी चकित हो रही थी। इसने अपने कपड़े धोकर स्नान किया ॥१२॥

तां दृष्ट्वा पुरुषा राजन् प्राद्रवन्ते दिशो दश।
गन्धर्वाणां भयत्रस्ताः केचित् दृष्ट्वा न्यमीलयन् १३

हे राजन्! द्रौपदी को देख कर लोग भयभीत होकर दशों दिशाओं (चारों ओर) को भागने लगे और कुछ तो इसको देख कर गन्धर्वों के भय से कातर हुए वहीं आंख मींच कर खड़े हो गए ॥१३॥

ततो महानसद्वारि भीमसेनमवस्थितम्।
ददर्श राजन् पाञ्चाली यथा मत्तं महाद्विपम्॥१४॥

हे राजन्! इसके अनन्तर पाञ्चाली द्रौपदी ने रसोई के द्वार पर मदोन्मत्त हाथी के सदृश खड़े हुए भीम को देखा ॥१४॥

तं विस्मयन्ती शनकैः संज्ञाभिरिदमब्रवीत्।
गन्धर्वराजाय नमो येनास्मि परिमोचिता ॥१५॥

द्रौपदी भीम को चकित सी करती हुई, सङ्केत के साथ यह वचन बोली—आज उस गन्धर्व को अनेक प्रणाम या धन्यवाद है, जिसने मुझे इस विपत्ति से छुड़ा दिया है ॥१५॥

भीम उवाच—

ये पुरा विचरन्तीह पुरुषा वशवर्त्तिनः।
तस्यास्ते वचनं श्रुत्वा त्वनृणा विहरन्त्युतः॥१६॥

भीम ने कहा—जो पुरुष (गन्धर्व) पूर्वकाल से इस नगर में परतन्त्र होकर विचर रहे थे, वे आज तेरे वचनों को सुन कर उऋण होकर घूमेंगे ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

ततः सा नर्त्तनागारे धनञ्जयमपश्यत ।
राज्ञः कन्या विराटस्य नर्त्तयानं महाभुजम् ॥१७॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर द्रौपदी ने नृत्यशाला में राजा विराट की कन्याओं को नचाते हुए, महा-भुज-धारी अर्जुन को देखा ॥१७॥

ततस्ता नर्त्तनागाराद्विनिष्क्रम्य सहार्जुनाः ।
कन्या ददृशुरायान्तीं क्लिष्टां कृष्णामनागसम् ।
दृष्ट्वा तामेत्य सर्वास्ता इदमूचुः सहर्षिताः॥१८॥

ये सब कन्याएँ, नर्तनागार से अर्जुन के साथ २ बाहर निकली और इन्होंने निरपराध, क्लेश से आती हुई द्रौपदी को देखा। ये सारी द्रौपदी को देख कर हर्ष के साथ यह वचन बोली ॥१८॥

कन्या ऊचुः—

दिष्ट्या सैरिन्ध्रि मुक्तासि दिष्ट्यासि पुनरागता ।
दिष्ट्या विनिहताः सूता ये त्वां क्लिश्यन्तनागसम्१९

हे सैरिन्ध्रि ! तुम कीचकों की विपत्ति से छुटकारा पा गई और फिर लौट आई - यह बड़े ही आनन्द की बात है और यह भी बड़ा ही अच्छा हुआ—जो कीचक निरपराध तुमको क्लेशित कर रहे थे, वे दुर्जन मारे गए ॥१९॥

बृहन्नलोवाच—

कथं सैरिन्ध्रि मुक्तासि कथं पापाश्च ते हताः ।
इच्छामि वै तव श्रोतुं सर्वमेव यथातथम् ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहन्नला बोली—हे सैरिन्ध्री ! तुमने कैसे छुटकारा पाया और कैसे वे पापी कीचक मारे गए—मैं तुमसे यह सब कुछ ठीक २ सुनना चाहता हूं ॥२०॥

सैरिन्ध्र्युवाच—

बृहन्नले किन्नु तव सैरिन्ध्र्या कार्य्यमद्य वै ।
या त्वं वससि कल्याणि सदा कन्यापुरे सुखम् ॥२१

सैरिन्ध्री बोली—हे बृहन्नले ! तुम्हारा सैरिन्ध्री के कष्टों के पूछने से क्या काम अटक रहा है । तुम तो कन्यान्तःपुर में पड़े, चैन की वंशी बजा रहे हो ॥२१॥

न हि दुःखमवाप्नोषि सैरिन्ध्री यदुपाश्नुते ।
तेन मां दुःखितामेवं पृच्छसे प्रहसन्निव ॥२२॥

तुम पर ये दुःख नहीं पड़े हैं, जिनको मैं सैरिन्ध्री झेल रही हूं । यही कारण है, जो हँसी के साथ मुझ दुःखी अभागिनी को यह पूछ कर छेड़ रहे हो ॥२२॥

बृहन्नलोवाच—

बृहन्नलापि कल्याणि दुःखमाप्नोत्यनुत्तमम् ।
तिर्य्यग्योनिगता बाले न चैनमवबुध्यसे ॥२३॥

बृहन्नला बोली—हे कल्याणि ! बृहन्नला भी जो दुःख भोग रही है, वह थोड़े नहीं हैं । हे बाले ! तू नहीं जानती, कि इस तीसरी प्रकृति (नपुंसकता की दशा) में क्या २ क्लेश उठाने पड़ रहे हैं ॥२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वया सहोषिता चास्मि त्वं च सर्वैः सहोषिता ।
क्लिश्यन्त्यां त्वयि सुश्रोणि को नु दुःखं न चिन्तयेत् ॥

हे सुश्रोणि ! मैं तेरे साथ रह रही हूं और तू भी हम सब (पाण्डवों) के साथ रह रही है । जब तू दुःखी होती है, तो क्या यह समझती है, कि हम चैन से सोते होंगे ॥२४॥

न तु केनचिदत्यन्तं कस्यचिद्धृदयं क्वचित् ।
वेदितुं शक्यते नूनं तेन मा नावबुध्यसे ॥२५॥

कोई दूसरा दूसरे के हृदय को चीर कर अच्छी तरह देख नहीं सकता है, इसी से तू मेरे दुःख को नहीं जानती है ॥२५॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः सहैव कन्याभिर्द्रौपदी राजवेश्म तत् ।
प्रविवेश सुदेष्णायाः समीपमुपगामिनी ॥२६॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर उन्हीं कन्याओं के साथ द्रौपदी रनिवास में घुसी और रानी सुदेष्णा के पास पहुँची ॥२६॥

तामब्रवीद्राजपत्नी विराटवचनादिदम् ।
सैरिन्ध्रि गम्यतां शीघ्रं यत्र कामयसे गतिम् ॥२७॥

राज-महिषी सुदेष्णा, राजा विराट की आज्ञा से सैरिन्ध्री से कहने लगी—हे सैरिन्ध्री ! अब तुम जल्दी से जल्दी जहां जाना चाहो—चली जाओ ॥२७॥

राजा बिभेति ते भद्रे गन्धर्वेभ्यः पराभवात् ।
त्वञ्चापि तरुणी सुभ्रु रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
पुंसामिष्टश्च विषयो गन्धर्वाश्चातिकोपनाः ॥२८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भद्रे ! तेरे गन्धर्वों को मार से राजा डरता है। हे सुभ्रु ! तुम पृथ्वी पर रूप में अद्वितीय युवति हो। पुरुष, प्रायः सम्भोग के लालची होते हैं और गन्धर्व बड़े कोप करने वाले हैं। कोई मनुष्य तुझे फिर छेड़ देगा, तो हमारा विध्वंस उड़ जावेगा। सैरिन्ध्रयुवाच—

त्रयोदशाहमात्रं मे राजा क्षाम्यतु भामिनि।
कृतकृत्या भविष्यन्ति गन्धर्वास्ते न संशयः ॥२९॥
ततो मामुपनेष्यन्ति करिष्यन्ति च ते प्रियम्।
ध्रुवञ्च श्रेयसा राजा योक्ष्यते सह बान्धवैः ३०॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि कीचकदाहे चतुर्विंशोऽध्यायः समाप्तश्च कीचकवधपर्व ॥२४॥

सैरिन्ध्री बोली—हे भामिनी ! तेरह दिन तक राजा मुझे क्षमा कर दे, इसके अनन्तर वे गन्धर्व अपनी विपत्ति से निश्चय सुलझ जावेंगे। इसके पीछे वे स्वयं मुझे ले जावेंगे और तुम्हारा वे बड़ा प्रिय कार्य सम्पादन करेंगे। इसके सिवा राजा विराट को भी अपने बान्धवों के साथ बड़ा कल्याण प्राप्त होगा ॥२९-३०॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत कीचकवधपर्व में कीचकदाह का चौबीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ और यहीं पर कीचक वध भी समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ गोहरण पर्व

पच्चीसवां अध्याय

कीचकस्य तु घातेन सानुजस्य विशाम्पते ।
अत्याहितं चिन्तयित्वा व्यस्मयन्त पृथग्जनाः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे विशाम्पते ! अपने छोटे पारिवारिक भाइयों के साथ कीचक का वध देख कर पृथक् २ मनुष्य, महाभय का विचार करके चौकन्ने हो रहे थे ॥१॥

तस्मिन् पुरे जनपदे सञ्जल्पोऽभूच्च सर्वशः ।
शौर्याद्धि वल्लभो राज्ञो महसत्त्वश्च कीचकः ॥२॥

उस पुर और देश में सब ओर यही बातें उड़ रही थी, कि महाबली कीचक, अपने पराक्रम के कारण ही राजा विराट का प्रिय था ॥२॥

आसीत् प्रहर्त्ता सैन्यानां दारामर्षी च दुर्मतिः
स हतः खलु पापात्मा गन्धर्वैर्दुष्टपूरुषः ॥३॥

यह शत्रुओं की सेनाओं में प्रहार करने वाला तो था, परन्तु मूर्ख, अन्य की स्त्रियों पर हाथ डाल देता था। इस पापी दुष्ट पुरुष को इसी से गन्धर्वों ने मार डाला है ॥३॥

इत्यजल्पन्महाराज परानीकविनाशनम् ।
देशे देशे मनुष्याश्च कीचकं दुष्प्रधर्षणम् ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे महाराज ! शत्रु-सेना के नाशक, आक्रमण के अयोग्य, कीचक के विषय में देश देश के मनुष्य, इसी तरह की चर्चा कर रहे थे ॥४॥

अथ वै धार्त्तराष्ट्रेण प्रयुक्ता ये बहिश्चराः ।
मृगयित्वा बहून् ग्रामान् राष्ट्राणि नगराणि च ॥५॥
संविधाय यथादृष्टं यथादेशप्रदर्शनम् ।
कृतकृत्या न्यवर्त्तन्त ते चरा नगरं प्रति ॥६॥

हे जनमेजय ! धृतराष्ट्र के पुत्र, दुर्योधन द्वारा नियुक्त किये हुए, बाहर घूमने वाले गुप्तचरों ने बहुत से नगर और राष्ट्र छान डाले । ये अपनी दृष्टि के अनुसार देश देशों को देखकर हस्तिनापुर की ओर कृतकृत्य होकर लौटे ॥५-६॥

तत्र दृष्ट्वा तु राजानं कौरव्यं धृतराष्ट्रजम् ।
द्रोणकर्णकृपैः सार्द्धं भीष्मेण च महात्मना ॥७॥
सङ्गतं भ्रातृभिश्चापि त्रिगर्त्तैश्च महारथैः ।
दुर्योधनं सभामध्ये आसीनमिदमब्रुवन् ॥८॥

इन्हों ने कुरुवंशोत्पन्न, धृतराष्ट्र पुत्र, राजा दुर्योधन को द्रोण, कर्ण, कृप, महात्मा भीष्म, दुःशासन आदि अपने भाई और महारथी त्रिगर्तों के साथ राजसभा में बैठे हुए देखा । वे इनको देख कर यह वचन बोले ॥७-८॥

चरा ऊचुः—

कृतोऽस्माभिः परो यत्नस्तेषामन्वेषणे सदा ।
पाण्डवानां मनुष्येन्द्र तस्मिन्महति कानने ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्जने मृगसङ्कीर्णे नानाद्रुमलताकुले ।
लताप्रतानबहुले नानागुल्मसमावृते ॥१०॥
न च विद्मो गता येन पार्थाः सुदृढविक्रमाः ।

हे मनुष्येन्द्र ! हम ने मृगों से व्याप्त, नाना वृक्ष और लताओं से परिपूर्ण, लताओं के जाल से घिरे हुए, अनेक झाड़ियों से आकीर्ण, महावन में उन पाण्डवों के खोजने में बड़ा प्रयत्न किया है, परन्तु वे दृढ़-पराक्रमी, पाण्डव, किस मार्ग से निकल गए—यह कुछ भी पता नहीं चलता है ॥९-१०॥

मार्गमाणाः पदन्यासं तेषु तेषु तथा तथा ॥११॥
गिरिकूटेषु दुर्गेषु नानाजनपदेषु च ।
जनाकीर्णेषु देशेषु कटकेषु परेषु च ॥१२॥
नरेन्द्र बहुशोऽन्विष्टा नैव विद्मश्च पाण्डवान् ।
अत्यन्तं वा विनष्टास्ते भद्रन्तुभ्यं नरर्षभ ॥१३॥

हे महाराज ! हमने अनेक पर्वतों के दुर्गम शिखर, अनेक राष्ट्र, मनुष्यों से व्याप्त बहुत से देश और शत्रुओं की सेना, देख डाली तथा इन स्थानों में जहाँ तहाँ उनके पद-चिन्ह भी देखे, परन्तु पाण्डवों का कहीं पता नहीं चला। हे नरर्षभ ! वे तो बिलकुल मर चुके मालूम होते हैं, जिससे सारे झगड़े नष्ट होकर आपको सुख प्राप्त होगा ॥ ११-१३ ॥

वर्त्मन्यन्वेष्यमाणा वै रथिनां रथिसत्तम ।
न हि विद्मो गतिं तेषां वासं हि नरसत्तम ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे महारथियों में श्रेष्ठ, नरोत्तम ! हमने उन महारथी पाण्डवों को प्रत्येक मार्ग में देखा, परन्तु उनका कुछ भी पता नहीं है और न हम उनके निवास स्थान को जान सकते हैं ॥१४॥

कञ्चित् कालं मनुष्येन्द्र सूतानामनुगा वयम् ।
मृगयित्वा यथान्यायं विदितार्थाः स्म तत्त्वतः॥१५॥

हे मनुष्येन्द्र! कुछ काल तक हम, उनके सारथि इन्द्रसेन आदि की खोज में लगे रहे, हमने उनको खोज कर उनका तो सारा ठीक २ पता लगा लिया है ॥१५॥

प्राप्ता द्वारवतीं सूता विना पार्थैः परन्तप ।
न तत्र कृष्णा राजेन्द्र पाण्डवाश्च महाव्रताः ॥१६॥

हे परन्तप ! ये सारथि तो द्वारका पहुँच गए, परन्तु उनके साथ पाण्डव नहीं हैं। द्वारका में हमने खूब देखा है, परन्तु वहाँ न तो पाण्डव हैं और न द्रौपदी है ॥ १६ ॥

सर्वथा विप्रनष्टास्ते नमस्ते भरतर्षभ ।
न विद्मो गतिं तेषां वासं वापि महात्मनाम् ॥१७॥

हे भरतर्षभ ! वे तो सचमुच कहीं नष्ट हो गए हैं। हमारा काम पूरा हो गया - यह आपको नमस्कार है, क्योंकि उन वीर पाण्डवों का न तो कोई सूराख चलता है और न उनके रहने का कुछ पता है ॥१७॥

पाण्डवानां प्रवृत्तिश्च विद्मः कर्मापि वा कृतम् ।
स नः शाधि मनुष्येन्द्र अत ऊर्ध्वं विशाम्पते ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वेषणे पाण्डवानां भूयः किं करवामहे ।
इमाश्च नः प्रियां वीर वाचं भद्रवतीं शृणु ॥१९॥

हे विशाम्पते ! मनुष्येन्द्र ! पाँडवों के समाचार जिस तरह जान सके वा उनकी खोज के लिए कर्म करने में जो हमसे त्रुटि रह गई हो, वह अब हम को बताओ-जिससे हम पाण्डवों के अन्वेषण का फिर प्रयत्न करें । हे वीर ! एक हमारी कल्याण-कारिणी प्रिय-वाणी और सुन लीजिए ॥ १८-१९ ॥

येन त्रिगर्त्ता निहता बलेन महता नृप ।
सूतेन राज्ञो मत्स्यस्य कीचकेन पुनः पुनः ॥२०॥
सुहतः पतितः शेते गन्धर्वैर्निशि भारत ।
अदृश्यमानैर्दुष्टात्मा भ्रातृभिः सह सोदरैः ॥२१॥

हे राजन् ! जिस बलवान् कीचक ने अपने महान् बल से मत्स्यराज के लिए त्रिगर्तों को जीता—हे भारत ! उस दुष्ट को रात में छुपे हुए गन्धर्वों ने उसके बान्धवों के साथ मार दिया, जो प्रातः भूमि में पड़ा मिला है ॥२०-२१॥

प्रियमेतदुपश्रुत्य शत्रूणाञ्च पराभवम् ।
कृतकृत्यश्च कौरव्य विधत्स्व यदनन्तरम् ॥२२॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
चारप्रत्यागमने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

हे कौरव्य ! अपने शत्रु विराट के पराभव रूप इस प्रिय वृतान्त को सुनकर तुम अपने को कृतकृत्य समझो और इसके बाद जो करना हो—वह करो ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत विराटपर्व में गोहरणपर्व में गुप्तचरों के लौट आने का पच्चीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

******

छब्बीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो दुर्य्योधनो राजा ज्ञात्वा तेषां वचस्तदा।
चिरमन्तर्मना भूत्वा प्रत्युवाच सभासदः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इसके अनन्तर उन गुप्तचरों के वचनों का अभिप्राय समझ कर बहुत देर तक सोचता रहा और सभासदों से बोला ॥१॥

सुदुःखा खलु कार्य्याणां गतिर्विज्ञातुमन्ततः।
तस्मात् सर्वे निरीक्षध्वं क्व नु ते पाण्डवा गताः ॥२॥

अनेक कार्य ऐसे होते हैं, जिनके अन्तिम कर्तव्य का ज्ञान लेना बड़ा ही कठिन होता है। अब तुम प्रथम यह पता लगाओ, कि पाण्डव किधर को निकल गए ॥२॥

अल्पावशिष्टं कालस्य गतभूयिष्ठमन्ततः।
तेषामज्ञातचर्य्याणामस्मिन्वर्षे त्रयोदशे ॥३॥
अस्य वर्षस्य शेषञ्चेत् व्यतीयुरिह पाण्डवाः।
निवृत्तसमयास्ते हि सत्यव्रतपरायणाः ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पाण्डवों के अज्ञातवास के तेरहवें वर्ष का बहुत बड़ा भाग व्यतीत हो गया और अब बहुत थोड़ा समय शेष रहा है। इस तेहरवें वर्ष के इस शेष भाग को भी यदि उन्होंने इसी तरह छुपकर पूरा कर दिया, तो उन सत्य-व्रत-शील पाण्डवों का समय (शर्त) पूरा हो जावेगा ॥४॥

चरन्त इव नागेन्द्राः सर्वे ह्याशीविषोपमाः।
दुःखा भवेयुः संरब्धाः कौरवान् प्रति ते ध्रुवम् ॥५

इसके अनन्तर मदोत्कट हाथी की तरह मद टपकाते हुए, आशी-विष सर्प की तरह उठे हुए और बड़े क्रोध में भरे हुए, पाण्डव, कौरवों को निश्चय बड़े दुःखदायी हो जावेंगे ॥५॥

सर्वे कालस्य वेत्तारः कृच्छ्ररूपधराः स्थिताः।
प्रविशेयुर्जितक्रोधास्तावदेव पुनर्वनम् ॥६॥
तस्मात् क्षिप्रं बुभूत्सध्वं प्रतिकर्त्तव्यमस्य यत्।
राज्यं निर्द्वन्द्वमव्यग्रं निःसपत्नं चिरम्भवेत् ॥७

वे सब अपने काल की अवधि को जानते हैं इससे गुप्त रूप धारण करके कहीं रह रहे हैं। अब तुम लोग, वही उपाय करने को तय्यार हो जाओ, जिससे क्रोध-विजयी पाण्डव फिर वन को चले जावें और हमारा यह राज्य, दुःख, क्लेश और शत्रुओं से रहित फिर हो जावे ॥६-७॥

अथाब्रवीत्ततः कर्णः क्षिप्रं गच्छन्तु भारत।
अन्ये धूर्त्ता नरा दक्षा निभृताः साधुकारिणः ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्ण ने कहा—हे भारत ! इस समय अन्य धूर्त, चतुर, अच्छी तरह काम करने वाले, गुप्तचर, चुपचाप बड़ी शीघ्रता से चले जावें ॥८॥

चरन्तु देशान् संवीताः स्फीतान् जनपदाकुलान् ।
तत्र गोष्ठीषु रम्यासु सिद्धप्रव्रजितेषु च ॥९॥
परिचारेषु तीर्थेषु विविधेष्वाकरेषु च ।
विज्ञातव्या मनुष्येस्तैस्तर्कया सुविनीतया ॥१०॥

गुप्तचर, छुपे २ मनुष्यों से व्याप्त, समृद्धिशाली देशों में घूमें तथा विद्वानों की सभा, ऋषि मुनियों के आश्रम, राजधानी अनेक तीर्थ, अनेक पर्वतों की खोहें तक छान डाले। वे उन २ स्थानों में रहने वाले मनुष्यों से बड़ी तर्क-पूर्ण, मँजी हुई बुद्धि से उनकी खोज लगावें ॥९-१०॥

विविधैस्तत्परैः सम्यक् तज्ज्ञैर्निपुणसंवृतैः ।
अन्वेष्टव्याः सुनिपुणैः पाण्डवाश्छन्नवासिनः ॥११॥
नदी कुञ्जेषु तीर्थेषु ग्रामेषु नगरेषुच ।
आश्रमेषु च रम्येषु पर्वतेषु गुहासु च ॥१२॥

अपने काम में आलस्य छोड़ कर तत्पर, निपुण, विद्वान और निपुण साथियों वाले गुप्तचरों द्वारा, नदियोंके कुञ्ज, तीर्थ, ग्राम नगर, सुन्दर आश्रम, पर्वत और गुहाओं में छुपकर रहने वाले पाण्डवों का पता लगवाओ ॥११-१२॥

अथाग्रजानन्तरजः पापभावानुरागवान् ।
ज्येष्ठं दुःशासनस्तत्र भ्राता भ्रातरमब्रवीत् ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे जेष्ठ भाई दुर्योधन के अनन्तर उत्पन्न होने वाला, पाप कर्मों का प्रेमी, भ्राता दुःशासन, अपने ज्येष्ठ भाई, दुर्योधन से कहने लगा ॥१३॥

येषु नः प्रत्ययो राजंश्चारेषु मनुजाधिप ।
ते यान्तु दत्तदेया वै भूयस्तान् परिमार्गितुम् ॥१४॥
एतच्च कर्णो यत् प्राह सर्वमीहामहे तथा ।
यथोद्दिष्टं चराः सर्वे मृगयन्तु ततस्ततः ॥१५॥

हे राजन् ! हे मनुष्येश्वर ! जिन दूतों पर हमारा विश्वास हो, उनको उनका वेतन देकर फिर पाण्डवों की खोज में शीघ्र भेजो। जो कुछ महात्मा कर्ण ने कहा है- हमको भी वैसी ही चेष्टा करनी चाहिए। ये सारे गुप्तचर, इसी विधि के अनुसार जहां तहां अच्छी तरह अन्वेषण करे ॥१४-१५॥

एते चान्ये च भूयांसो देशाद्देशं यथाविधि ।
ननु तेषां गतिर्वासः प्रवृत्तिश्चोपलभ्यते ॥१६॥

ये सारे चर तथा अन्य बहुत से गुप्तचर, नियमानुसार एक देश से दूसरे देश में भ्रमण लगावें। इस तरह उनके पते और ठिकाने का पता लग जावेगा ॥१६॥

अत्यन्तं वा निगूढास्ते पारं वोर्मिमतो गताः ।
व्यालैश्चापि महारण्ये भक्षिताः शूरमानिनः ॥१७॥

वे बिलकुल छुपे रहना चाहते हैं, इससे सम्भव है, वे समुद्र के पार निकल गए हों अथवा किसी महावन में उन शूर-वीरता के अभिमानियों को किसी वनैले जीव जन्तु ने खा डाला होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ वा विषमं प्राप्य विनष्टाः शाश्वतीः समाः ।
तस्मान्मानसमव्यग्रं कृत्वा त्वं कुरुनन्दन ।
कुरु कार्य्यं महोत्साहं मन्यसे यन्नराधिप ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
कर्णदुःशासनवाक्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

हे नराधिप ! यह भी हो सकता है, कि वे किसी घोर विपत्ति में फंस गए हों और सदा के लिए नष्ट हो चुके हों । हे कुरुनन्दन ! अब तुम अपने मन को शान्त करके अपना काम करो या जो महोत्सव मनाना चाहते हो- वह मना लो ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में कर्ण दुःशासन के कथन का छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

—:o:—

सत्ताईसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अथाब्रवीन्महावीर्य्यो द्रोणस्तत्त्वार्थदर्शिवान् ।
न तादृशा विनश्यन्ति न प्रयान्ति पराभवम् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! अब महा-पराक्रमी, तत्वार्थ-दर्शी, द्रोणाचार्य, कहने लगे, कि पाण्डवों के समान पुरुष, न तो नष्ट हो सकते हैं और न कहीं पराभव (हार) पा सकते हैं ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूराश्च कृतविद्याश्च बुद्धिमन्तो जितेन्द्रियाः
धर्मज्ञाश्च कृतज्ञाश्च धर्मराजमनुव्रताः ॥२॥

वे सारे भाई, शूर, वीर, विद्वान्, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ कृतज्ञ और धर्मराज की आज्ञा में चलने वाले हैं ॥२॥

नीतिधर्मार्थतत्त्वज्ञं पितृवच्च समाहिताः ।
धर्मे स्थितं सत्यधृतिं ज्येष्ठं ज्येष्ठानुयायिनः॥३॥

ये पाण्डव, नीति, धर्म और अर्थ के तत्व के जानने वाले, धर्म में स्थित, सत्य और धैर्यशाली, अपने ज्येष्ठ भाई युधिष्ठिर को पिता की तरह पूज्य मानते हैं ॥३॥

अनुव्रता महात्मानं भ्रातरो भ्रातरं नृप ।
अजातशत्रुं श्रीमन्तं सर्वभ्रातृननुव्रतम् ॥४॥

हे नृप ! सारे भाइयों की इच्छा के अनुसार कार्य करने वाले श्रीमान्, अपने भाई अजात-शत्रु, राजा युधिष्ठिर की आज्ञा में सारे छोटे भाई चलते हैं ॥४॥

तेषां तथाविधेयानां निभृतानां महात्मनाम् ।
किमर्थं नीतिमान् पार्थः श्रेयो नैषां करिष्यति ॥५॥

जब छोटे भाई, इतने नम्र सावधान और चुपचाप रहने वाले सेवक हैं, तो फिर उन महात्मा भाइयों के सुखकारी कार्य को नीतिमान् युधिष्ठिर क्यों नहीं सम्पादन करेगा ॥५॥

तस्माद्यत्नात् प्रतीक्षन्ते कालस्योदयमागतम् ।
न हि ते नाशमृच्छेयुरिति पश्याम्यहं धिया ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे बड़े प्रयत्न से अपने उदय करने वाले, काल की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं तो अपनी बुद्धि से यही देख रहा हूं, कि वे नष्ट नहीं होंगे ॥६॥

साम्प्रतं चैव यत्कार्य्यं तच्च क्षिप्रमकालिकम् ।
क्रियतां साधु सञ्चिन्त्य वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम्॥७॥
यथावत् पाण्डुपुत्राणां सर्वार्थेषु धृतात्मनाम् ।
दुर्ज्ञेयाः खलु शूरास्ते दुरापास्तपसावृताः ॥८॥

जो तुम कार्य करना चाहते हो, वह बड़ी देर में हो सकेगा-जल्दी नहीं होगा। तुम अच्छी तरह सोच विचार कर काम करो और सब कार्यों में ठीक २ धैर्य रखने वाले पाण्डवों के रहने के स्थान का पता सोचो। मेरी समझ में तो वे शूर, वीर, पाण्डव, तप से समन्वित है, वे कठिनता से कहीं मिल सकेंगे ॥७-८॥

शुद्धात्मा गुणवान् पार्थः सत्यवान्नीतिमान् शुचिः ।
तेजोराशिरसंख्येयो गृह्णीयादपि चक्षुषा ॥९॥

इस समय शुद्ध आत्मा वाला, गुणवान्, सत्यशील, नीतिमान-शुचि, महा-तेजस्वी युद्ध में अप्रतिभट राजा युधिष्ठिर का आंख से देख लेना बहुत ही असम्भव है ॥८॥

विज्ञाय क्रियतां तस्माद्भ्रयश्च मृगयामहे ।
ब्राह्मणैश्चारकैः सिद्धैर्ये चान्ये तद्विदो जनाः ॥१०॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि चारप्रत्याचारे द्रोणवाक्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सब बातों को सोचकर काम करो, हमको फिर खोज करने की विधि को जानने वाले ब्राह्मण गुप्तचर, सिद्धों, से फिर पाण्डवों की खोज करवानी चाहिए ॥१०॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में गुप्तचरों के फिर भेजने और द्रोण के कथन का सत्ताईसवां अध्याय सम्पूर्ण हो गया।

अट्ठाईसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततः शान्तनवो भीष्मो भरतानां पितामहः ।
श्रुतवान् देशकालज्ञस्तत्त्वज्ञः सर्वधर्मवित् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! इन सब बातों को भरतवंश की सन्तान के पितामह, सब धर्मों के जानने वाले, देश काल के ज्ञाता, तत्त्वदर्शी, शान्तनु-पुत्र भीष्म, सुन रहे थे ॥१॥

आचार्य्यवाक्योपरमे तद्वाक्यमभिसन्दधत् ।
हितार्थं समुवाचेमां भारतीं भरतान् प्रति ॥२॥

जब द्रोणाचार्य की बात समाप्त हो चुकी, तो उसी वाक्य को पुष्टि करता हुआ, भीष्म, भरत-वंश के हित की कामना से दुर्योधनादि भरत-वंशोत्पन्नों से यह वाणी बोला ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिरे समासक्तां धर्मज्ञे धर्मसंवृताम् ।
असत्सु दुर्लभां नित्यं सतां चाभिमतां सदा ॥३॥

यह धर्म-युक्त, वाणी, धर्मात्मा युधिष्ठिर के पक्ष की पुष्टि करने वाली थी, जो असज्जनों को दुर्लभ और सज्जनों को सदा सुलभ और प्रिय है ॥३॥

भीष्मः समवदत्तत्र गिरं साधुभिरर्चिताम् ।
यश्चैष ब्राह्मणः प्राह द्रोणः सर्वार्थतत्ववित् ।
तद्वाक्यमभिनन्दामि न मे तत्र विचारणा ॥४॥

भीष्म, उत्तम पुरुषों से पूजित वाणी बोला—कि सब नीति तत्वों का जानने वाला, द्रोण ब्राह्मण, जो कुछ कह रहा है, मैं तो उसी वाक्य का अनुमोदन करता हूं। मुझे तो इसमें कुछ भी सोचना विचारना नहीं है ॥४॥

सर्वलक्षणसम्पन्नाः साधुव्रतसमन्विताः ।
श्रुतव्रतोपपन्नाश्च नानाश्रुतिसमन्विताः ॥४॥
वृद्धानुशासने युक्ताः सत्यव्रतपरायणाः ।
समयं समयज्ञास्ते पालयन्तः शुचिव्रताः ॥६॥

सब लक्षणों से सम्पन्न, उत्तम व्रत से समन्वित, शस्त्र-ज्ञान और व्रतशील आख्यायिका या वेदों के ज्ञाता, वृद्धों की आज्ञा मानने वाले, सत्य-व्रत-परायण, समय (शर्त) के पालन करने के पक्षपाती, पवित्र-व्रत-धारी, पाण्डव, समय के पूरे होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥५-६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रधर्मरता नित्यं केशवानुगताः सदा।
प्रवीरपुरुषास्ते वै महात्मानो महाबलाः ॥७॥
नावसीदितुमर्हन्ति उद्वहन्तः सता धुरम्।

ये क्षत्र-धर्म में अनुरक्त, श्रीकृष्ण के प्रेमी, महात्मा, महाबली वीर पुरुष है। ये सज्जनों के मार्ग के अनुसार चलने वाले हैं और बहुत काल तक कभी कष्ट नहीं पा सकते हैं ॥७॥

धर्मतश्चैव गुप्तास्ते सुवीर्य्येण च पाण्डवाः ॥८॥
न नाशमधिगच्छेयुरिति मे धीयते मतिः।

ये पाण्डव, धर्म और पराक्रम से सुरक्षित हैं। इनका नाश नहीं हो सकता है, यह मेरी निश्चित मति है ॥८॥

तत्र बुद्धिं प्रवक्ष्यामि पाण्डवान् प्रति भारत ॥९॥
न तु नीतिः सुनीतस्य शक्यतेऽन्वेहितुं परैः।

हे भारत! पाण्डवों के प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिए, यह बुद्धि तुमको बताता हूं, परन्तु अनीति से चलने वाले, पुरुष नीतिमानों की उत्तम नीति को नहीं जान सकते हैं ॥९॥

यन्तु शक्यमिहास्माभिस्तान्वै सञ्चिन्त्य पाण्डवान् ॥
बुद्ध्या प्रयुक्तं न द्रोहात् प्रवक्ष्यामि निबोध तत्।

जो हम उत्तम से उत्तम नीति समझते हैं, वही पाण्डवों के विषय में सोचकर कहते हैं। हमें तो जो बुद्धि के अनुकूल जचता है, वही कहेंगे, कुछ द्रोह से नहीं कहते हैं- तुम जरा ध्यान से सुनो ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न त्वियं मादृशैर्नीतिस्तस्य वाच्या कदाचन ॥११॥
सा त्वियं साधु वक्तव्या न त्वनीतिः कथञ्चन।

मुझ जैसा मनुष्य, युधिष्ठिर के हित की नीति का पक्षपात से कथन नहीं कर सकता है और न दुर्जनों की नीति का कथन कर सकता है। मुझे तो उत्तम नीति का ही कथन करना चाहिए- अनीति का कथन करना उचित नहीं है ॥११॥

वृद्धानुशासने तात तिष्ठता सत्यशीलिना ॥१२॥
अवश्यं त्विह धीरेण सभामध्ये विवक्षता।
यथार्थमिह वक्तव्यं सर्वथा धर्मलिप्सया ॥१३॥
तत्र नाहं तथा मन्ये यथायमितरो जनः।
निवासं धर्मराजस्य वर्षेऽस्मिन् वै त्रयोदशे ॥१४॥

हे तात! सत्यशील और वृद्धों की आज्ञा में रहने वाले तथा सभा के मध्य में बोलना चाहने वाले, विचारशील को धर्मवृद्धि के ध्यान से अवश्य यथार्थ-नीति का ही कथन करना योग्य है। मैं इस दशा में इन अविचारशील मनुष्यों की तरह धर्मराज को इस तेरहवें वर्ष में साधारण रीति से रहना नहीं मानता हूं १३-१४

तत्र तात नतेषां हि राज्ञां भाव्यमसाम्प्रतम्।
पुरे जनपदे चापि यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥१५॥

हे राजन्! जिस पुर या राष्ट्र में राजा युधिष्ठिर होगा- वहां उनका अकल्याण नहीं होसकता है ॥१५॥

दर्शनशीलो वदान्यश्च निभृतो ह्रीनिषेवकः।
जनैर्जनपदे भाव्यो यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहां राजा युधिष्ठिर होगा- उस देश में प्रायः मनुष्य दानी, उदार, जितेन्द्रिय और लज्जाशील अवश्य हो जावेंगे ॥१६॥

प्रियवादी सदा दान्तो भाव्यः सत्यपरो जनः।
हृष्टः पुष्टः शुचिर्दक्षो यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥१७॥

राजा युधिष्ठिर के रहने के प्रदेश में मनुष्य निश्चय प्रियवादी, उदार, सत्यशील, हृष्ट, पुष्ट, शुचि और दक्ष हो जावेंगे ॥१७॥

नासूयको न चापीर्षु र्नाभिमानी न मत्सरी।
भविष्यति जनस्तत्र स्वयं धर्ममनुव्रतः ॥१८॥

जहां धर्म के अनुसार व्यवहार करने वाला, धर्मराज निवास करता होगा- वहां कोई भी निन्दक, ईर्ष्या करने वाला, अभिमानी तथा पर सम्पत्ति से द्रोह करने वाला नहीं हो सकता है ॥१८॥

ब्रह्मघोषाश्च भूयांसः पूर्णाहुत्यस्तथैव च ।
क्रतवश्च भविष्यन्ति भूयांसो भूरिदक्षिणाः ॥१९॥

उनके स्थान पर तो सदा वेद की ध्वनि, पूर्णाहुति और बड़ी दक्षिणा वाले, बहुत से यज्ञ हो रहे होंगे ॥१९॥

सदा च तत्र पर्जन्यः सम्यग्वर्षी न संशयः ।
सम्पन्नशस्या च मही निरातङ्का भविष्यति ॥२०॥

उस स्थान में सदा समय पर मेघ बरसता रहेगा और पृथिवी हरे भरे शस्य से सम्पन्न होकर दुःख-युक्त न होगी ॥२०॥

फलवन्ति च धान्यानि रसवन्ति फलानि च।
गन्धवन्ति च माल्यानि शुभशब्दा च भारती ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां धान्य के पौदों में अन्न की बहुत अधिक उत्पत्ति होने लगेगी, और फल बड़े स्वादिष्ट हो जावेंगे। पुष्पों की माला बहुत सुगन्ध फैलावेंगी और वेदवाणी बड़े उत्तम स्वर से गाई जावेगी।

वायुश्च सुखसंस्पर्शो निष्प्रतीपश्च दर्शनम्।
भयं नाभ्याविशत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥२२॥

जहां राजा युधिष्ठिर, निवास करता होगा, वहां सुखकारी वायु चलेगा, पाखण्ड रहित धर्म मार्ग का प्रदर्शन किया जाता होगा और किसी भी मनुष्य को भय शेष नहीं रह जावेगा

गावश्च बहुलास्तत्र न कृशा न च दुर्बलाः।
पयांसि दधि सर्पींषि रसवन्ति हितानि च ॥२३॥

राजा युधिष्ठिर के निवास स्थान में गायें दुर्बल और कृश नहीं हो सकती हैं और दूध, दही, तथा घृत बड़े रसीले और हितकारी होंगे ॥२४॥

गुणवन्ति च पेयानि भोज्यानि रसवन्ति च।
तत्र देशे भविष्यन्ति यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥२४॥

जिस देश में राजा युधिष्ठिर होगा, उस देश में गुणकारी, पीने के पदार्थ और रस वाले भोजन होंगे ॥२४॥

रसाः स्पर्शाश्च गन्धाश्च शब्दाश्चापि गुणान्विताः।
दृश्यानि च प्रसन्नानि यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥२५॥

राजा युधिष्ठिर के स्थान में शब्द, स्पर्श, रस और गन्ध आदि विषय, बड़े सुखकारी होते हैं तथा वहां दृश्य भी बड़े उत्तम दृष्टि-गोचर होंगे ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्माश्च तत्र सर्वैस्तु सेविताश्च द्विजातिभिः ।
स्वैः स्वैर्गुणैश्च संयुक्ता अस्मिन्वर्षे त्रयोदशे॥२६॥

जिस देश में इस तेरहवें वर्ष में राजा युधिष्ठिर रहता होगा वहां सारे धर्मों का द्विजाति आचरण करते होंगे तथा प्रत्येक वर्ण भी अपने २ गुणों से संयुक्त धर्म का आचरण करेंगे ॥२६॥

देशे तस्मिन् भविष्यन्ति तात पाण्डवसंयुते ।
सम्प्रीतिमान् जनस्तत्र सन्तुष्टः शुचिरव्ययः ॥२७॥

हे तात ! पाण्डवों से संयुक्त देश में प्रीति से युक्त, सन्तुष्ट, सर्व समृद्धिशाली और पवित्र लोग रह रहे होंगे ॥२७॥

देवतातिथिपूजासु एवंभावानुरागवान् ।
इष्टदानो महोत्साहः शश्वद्धर्मपरायणः ॥२८॥

वहां देवता अतिथियों की पूजा में सब तरह से प्रीति-युक्त और उनके अभीष्ट पदार्थों के दान के देने वाले, महोत्साही और सदा धर्म में परायण लोग, रहते होंगे ॥२८॥

अशुभद्विट् शुभप्रेप्सुर्नित्ययज्ञः शुभव्रतः ।
भविष्यति जनस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥२९॥

जहां राजा युधिष्ठिर होगा. वहां अशुभ कर्म के द्वेषी, शुभ कर्म करने वाले, यज्ञशील, शुभ-व्रत-धारी, मनुष्य होंगे ॥२९॥

त्यक्तवाक्यानृतस्तात शुभकल्याणमङ्गलः
शुभार्थेप्सुः शुभमतिर्यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥३०॥

हे तात ! राजा युधिष्ठिर के निवास प्रदेश में मिथ्या-भाषण के परित्यागी, शुभ कल्याण और मङ्गल वचन बोलने वाले, शुभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मों से प्राप्त धन के अभिलाषी और सात्विकी बुद्धि वाले मनुष्य होंगे ॥३०॥

भविष्यति जनस्तत्र नित्यञ्चेष्टप्रियव्रतः ।
धर्मात्मा शक्यते ज्ञातुं नापि तात द्विजातिभिः॥३१॥

हे तात ! यज्ञ और परोपकार के व्रत में परायण, मनुष्य धर्मराज के देश में होंगे। ऐसा युधिष्ठिर धर्मात्मा इन गुप्तचर ब्राह्मणों से कैसे खोज निकाला जा सकता है, क्योंकि उनके छुपाने में धर्म सहायता कर रहा है ॥३१॥

किं पुनः प्राकृतैस्तात पार्थो विज्ञायते क्वचित् ।
यस्मिन् सत्यं धृतिर्दानं परा शान्तिर्ध्रुवा क्षमा॥३२॥
ह्रीः श्री कीर्त्तिःपरन्तेज आनृशंस्यमथार्जवम् ।
तस्मात्तत्र निवासन्तु छन्नं यत्नेन धीमतः ॥३३॥
गतिश्च परमां तस्य नोत्सहे वक्तुमन्यथा ।

हे तात ! जिस राजा युधिष्ठिर में सत्य, धैर्य, दान, अत्युत्तम शान्ति, दृढ़ क्षमा, लज्जा, लक्ष्मी, कीर्ति, तेज, ओज, दयालुता, सरलता है, उसको साधारण गुप्तचर तो जान ही कैसे सकते हैं। यही कारण है, कि ऐसे पुण्य-प्रदेश में ही बड़े प्रयत्न से बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर का निवास होगा। हम लोग उसके निवास का ठीक पता विचार ही नहीं सकते हैं ॥३२-३३॥

एवमेतत्तु सञ्चिन्त्य यत् कृतं मन्यसे हितम् ॥३४॥
तत् क्षिप्रं कुरु कौरव्य यद्येवं श्रद्दधासि मे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
चारप्रत्याचारे भीष्मवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

हे कौरव्य ! यदि मेरे वचन में श्रद्धा है, तो इस मेरी कही हुई बात पर विचार करके फिर जो हित समझो उसके अनुसार उन पाण्डवों के अन्वेषण का शीघ्रता से प्रयास करना ॥३४॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में चार भेजने और भीष्म के कथन का अट्ठाईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

उनतीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततः शारद्वतो वाक्यमित्युवाच कृपस्तदा ।
युक्तं प्राप्तञ्च वृद्धेन पाण्डवान् प्रतिभाषितम् ॥१॥
धर्मार्थसहितं श्लक्ष्णं तत्त्वतश्च सहेतुकम् ।
तत्रानुरूपं भीष्मेण ममाप्यत्र गिरं शृणु ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! अब शरद्वान पुत्र, कृपाचार्य, कहने लग —इस वृद्ध ने भी युक्ति-युक्त, समयानुसारी, पाण्डवों के हित का परिपोषक, धर्म अ से संयुक्त, स्पष्ट, तत्व-प्रतिपादक हेतु-सहित, वचन कहा । इसने कहा, कि तुम लोग, भीष्म के वचन का अनुमोदन करने वाली मेरी भी वाणी सुनो ॥१-२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेषाञ्चैव गतिस्तीर्थैर्वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम् ।
नीतिर्विधीयतां चापि साम्प्रतं या हिता भवेत् ॥३॥

तुम, उनकी गति तथा निवास स्थान का पता तो गुप्तचरों से अवश्य लगाओ, परन्तु इस समय ऐसी नीति का प्रयोग करो, जो हित कारिणी हो ॥३॥

नावज्ञेयो रिपुस्तात प्राकृतोऽपि बुभूषता ।
किं पुनः पाण्डवास्तात सर्वास्त्रकुशला रणे ॥४॥

हे तात ! अभ्युदय चाहने वाले पुरुष को साधारण शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, फिर रण में समस्त अस्त्रों में कुशल पाण्डवों की उपेक्षा तो करनी ही नहीं चाहिए ॥४॥

तस्मात् सत्रं प्रविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
गूढभावेषु छन्नेषु काले चोदयमागते ॥५॥

इन सब बातों को ध्यान में रख कर कपट-वेष-धारी, गुप्त रूप से छुपे हुए महात्मा पाण्डवों को इस थोड़े से शेष काल में अवश्य खोज निकालना चाहिए ॥५॥

स्वराष्ट्रे परराष्ट्रे च ज्ञातव्यं बलमात्मनः ।
उदयः पाण्डवानाञ्च प्राप्ते काले न संशयः ॥६॥

अब तुम अपने और पर राष्ट्र में अपनी शक्ति का पता लगाओ । यदि यह समय पूरा हो गया, तो उनका उन्नत हो जाना निश्चित सा है ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवृत्तसमयाः पार्था महात्मानो महाबलाः।
महोत्साहा भविष्यन्ति पाण्डवा ह्यमितौजसः ॥७॥

महावीर, महाबली, कुन्ती-पुत्र, अत्यन्त-ओजस्वी, पाण्डव, समय के पूरा हो जाने पर बड़े ही उत्साहित हो जावेंगे ॥७॥

तस्माद्बलञ्च कोषञ्च नीतिञ्चापि विधीयताम् ।
यथाकालोदये प्राप्ते सम्यक्तैः सन्दधीमहे ॥८॥

इस समय सेना, कोष और उत्तम राज-नीतिकी वृद्धि करो। जिससे समय आने पर हम उनके साथ सन्धि या युद्ध कर सकें ॥८॥

तात बुध्यापि तत्सर्वं बुध्यस्व बलमात्मनः ।
नियतं सर्वमित्रेषु बलवत्सु बलेषु च ॥९॥
उच्चावचं बलं ज्ञात्वा मध्यस्थञ्चापि भारत ।
प्रहृष्टमप्रहृष्टञ्च सन्दधामस्तथापरैः ॥१०॥

हे तात ! तुम अपनी प्रखर बुद्धि से अपनी सेना की नियम-पूर्वक पड़ताल करो तथा सारे बलवान् मित्र और सारी सेना के उत्तम या मध्यम बल का पता लगा लो। सारे मित्र या सारी सेना तुम से प्रसन्न है या अप्रसन्न-यह भी जान लो। इसके अनुसार हम प्रतिपक्षी से युद्ध करने में समर्थ हो सकेंगे ॥९-१०॥

साम्ना भेदेन दानेन दण्डेन बलिकर्मणा ।
न्यायेनाक्रम्य च परान् बलाच्चानम्य दुर्बलान् ॥११॥
सान्त्वयित्वा तु मित्राणि बलञ्चाभाष्यतां सुखम् ।
सकोषबलसंवृद्धः सम्यक् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे भारत ! साम, दाम, दण्ड, भेद, भेट पूजा आदि से संधि विग्रह होते हैं। तुम न्यायानुसार शत्रु पर आक्रमण करके अपने बल से दुर्बल शत्रु को नीचा झुकाकर तथा सेना और मित्रों को समझा कर सुख प्राप्त कराने वाली बात चीत करो और उनको उनका वेतन या देय द्रव्य प्रदान कर दो। इस प्रकार आप कोष (खजाना) सेना से युक्त होकर अच्छी तरह विजय प्राप्त कर सकोगे ॥११-१२॥

योत्स्यसे चापि बलिभिररिभिः प्रत्युपस्थितैः ।
अन्यैस्त्वं पाण्डवैर्वापि हीनैश्च बलवाहनैः॥१३॥

इस दशा में तुम सामने आये हुए बलवान अन्य शत्रु, पांडव या दुर्बल सेना तथा वाहन वाले शत्रु से लड़ सकोगे ॥१३॥

एवं सर्वं विनिश्चित्य व्यवसायं स्वधर्मतः ।
यथाकालं मनुष्येन्द्र चिरंसुखमवाप्स्यसि ॥१४॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
चारप्रत्याचारे कृपवाक्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

हे राजन् ! इस प्रकार सारे समयानुसार अपने उद्योग का निश्चय करके कार्य करोगे, तो बहुत काल तक सुख प्राप्त करते रहोगे ॥१४॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में चार के भेजने और कृप के वाक्य का उनतीसवां अध्याय पूरा हुआ।

—o:*:o—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अथ राजा त्रिगर्त्तानां सुशर्मा रथयूथपः ।
प्राप्तकालमिदं वाक्यमुवाच त्वरितो बली ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे मनुजेश्वर ! अब रथ सेना का अधिपति, त्रिगर्तों का राजा, महाबली, सुशर्मा, समयानुसार यह वचन बोला ॥१॥

असकृन्निकृताः पूर्वं मत्स्यशाल्वेयकैः प्रभो ।
सूतेनैव च मत्स्यस्य कीचकेन पुनः पुनः ॥२॥
बाधितो बन्धुभि सार्द्धं बलाद्बलवतां विभौ ।
स कर्णमभ्युदीक्ष्याथ दुर्योधनमभाषत ॥३॥

हे प्रभो ! मत्स्यराज के सेनापति सूत-पुत्र कीचक ने मत्स्य और शाल्वों की सेना लेकर बार २ त्रिगर्तों को जीत लिया और बन्धु-बाधवों के साथ उनके स्वामी ने मुझे भी बार २ अपने बल से पीड़ित किया है। इस प्रकार बलवान कौरवों में बली भीष्म के सम्मुख ही कर्ण की ओर देख कर सुशर्मा ने दुर्योधन से कहा ॥२-३॥

असकृन्मत्स्यराज्ञा मे राष्ट्रं बाधितमोजसा ।
प्रणेता कीचकस्तस्य बलवानभवत् पुरा ॥४॥

मत्स्यराज ने अपने ओज से मेरे राष्ट्र को कई बार क्षति पहुंचाई है। इस सब झगड़े का खड़ा करने वाला वहां बलवान कीचक था ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रूरोऽमर्षी स दुष्टात्मा भुवि प्रख्यातविक्रमः ।
निहतः स तु गन्धर्वैः पापकर्मा नृशंसवान् ॥५॥

यह बड़ा क्रूर, क्रोधी, दुष्टात्मा और जगत् भर में प्रसिद्ध पराक्रमी था। इस पाप कर्म करने वाले, निर्दयी को गन्धर्वों ने मार डाला है ॥५॥

तस्मिन् विनिहते राजा हतदर्पो निराश्रयः ।
भविष्यति निरुत्साहो विराट इति मे मतिः ॥६॥

इसके मारे जाने पर राजा विराट, दर्पहीन, निराश्रय और निरुत्साह हो गया होगा- मेरा ऐसा ख्याल है ॥६॥

तत्र यात्रा मम मता यदि ते रोचतेऽनघ ।
कौरवाणाञ्च सर्वेषां कर्णस्य च महात्मनः ॥७॥
एतत् प्राप्तमहं मन्ये कार्य्यमात्ययिकं हि नः ।

हे अनघ ! यदि आपको उचित प्रतीत हो-तो इस समय उस पर चढ़ाई कर देनी चाहिए ! मैं सारे कौरव, महाबली कर्ण का सब से अधिक आवश्यक यही कार्य समझता हूं ॥७॥

राष्ट्रन्तस्यभियास्यामो बहुधान्यसमाकुलम् ॥८॥
आददामोऽस्य रत्नानि विविधानि वसूनि च ।
ग्रामान्राष्ट्राणि वा तस्य हरिष्यामो विभागशः ॥९॥

हम लोग बहुत प्रकार के अन्न आदि से परिपूर्ण उसके रा पर चढ़ चले और उसके अनेक रत्न, नाना प्रकार के वस्त्र, ग्राम या देश का देश छीन लें, फिर अपने २ विभाग के अनुसार बांट लेंगे ॥८-९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ वा गोसहस्राणि शुभानि च बहूनि च ।
त्रिविधानि हरिष्यामः प्रतिपीड्य च पुरं बलात् ॥१०

इसके यहां कई सहस्र अनेक भांति की गोंऐं हैं। हम लोग, इसकी राजधानी में मार काट मचा कर उनको छीन लावें ॥१०॥

कौरवैः सह सङ्गत्य त्रिगर्त्तैश्च विशाम्पते ।
गास्तस्यापहरामोऽद्य सह सर्वैः सुसंहताः ॥११॥

हे विशाम्पते! इस समय कौरव और त्रिगर्त, मिलकर सारे दृढ़ हो जावें और आज ही उनकी गाऐं छीन लावें ॥११॥

संविभागेन कृत्वा तु निबध्नीमोऽस्य पौरुषम् ।
हत्वा चास्य चमूं कृत्स्नां वशमेवानयामहे ॥१२॥

हम लोग, अपनी सेना की टुकड़ियां का ठीक २ प्रयोग करके राजा विराट के बल को रोक देंगे और इसकी सारी सेना को मार कर उसको अपने अधीन बना लेंगे ॥१२॥

तं वशे न्यायतः कृत्वा सुखं वत्स्यामहे वयम् ।
भवतो बलवृद्धिश्च भविष्यति न संशयः ॥१३॥

उसको इस रीति से वश में करके हम, सुख से रह सकेंगे और आपके भी बल की वृद्धि होगी- इसमें संशय नहीं है ॥१३॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कर्णो राजनमब्रवीत् ।
सूक्तं सुशर्मणा वाक्यं प्राप्तकालं हितं च नः ॥१४

यह वचन सुनकर कर्ण ने कहा—त्रिगर्तराज सुशर्मा ने बहुत ही अच्छा कहा है। यह वाक्य, इस समय के अनुसार और हमारा हितकारी है ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मात् वनिर्यामो योजयित्वा वरूथिनीम् ।
विभज्य चाप्यनीकानि यथा वा मन्यसेऽनघ ॥१५॥

हे अनघ ! अब हम लोग अपनी २ सेना को इकट्ठी करके बहुत शीघ्र चढ़ चलना चाहते हैं अथवा सेना का ढग से विभाग करके चढ़ चलेंगे, कहिए- आपकी क्या सम्मति है ॥१५॥

प्राज्ञो वा कुरुवृद्धाऽयं सर्वेषां नः पितामहः ।
आचार्य्यश्च यथा द्रोणः कृपः शारद्वतस्तथा ॥१६
मन्यन्ते ते यथा सर्वे तथा यात्रा विधीयताम् ।

हे कुरुवृद्ध ! भीष्म सबके पितामह और सेना के योजन में कुशल हैं। इसी तरह आचार्य द्रोण, शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य भी रण विशारद हैं, ये लोग, जिस तरह कहें, चढ़ाई कर दो ॥१६॥

सम्मन्त्र्य चाशु निर्यामः साधनार्थं महीपते ॥१७॥
किञ्च नः पाण्डवैः कार्य्यं हीनार्थबलपौरुषैः ।
अत्यन्तं वा प्रनष्टास्ते प्राप्ता वापि यमक्षयम् ॥१८

हे महीपते ! अब हम लोग, चटपट मन्त्रणा करके कार्य-सिद्धि के लिए चल पड़े। हमका धन, बल और पौरुष से हीन पाण्डवों की चर्चा से क्या लेना है। वे या तो कहीं बहुत दूर निकल गए या सचमुच ? यमलोक को पहुंच गए हैं ॥१७-१८॥

क्षमो राजन्निरुद्विग्ना विराटनगरं वयम् ।
आदास्यामो हि गास्तस्य विविधानि बहूनि च॥१९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन्! हमको विराट नगर पर चढ़ाई करते हुए कुछ भी उद्वेग (चिन्ता) नहीं है। हम, अभी उसकी गाएँ और बहुत सा धन छीन कर लाए देते हैं ॥१९॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो दुर्य्योधनो राजा वाक्यमादाय तस्य तत्।
वैकर्त्तनस्य कर्णस्य क्षिप्रमाज्ञापयत्स्वयम् ॥२०॥
शासने नित्यसंयुक्तं दुःशासनमनन्तरम्।
सह वृद्धैस्तु सम्मन्त्र्य क्षिप्रं योजय वाहिनीम् ॥२१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! राजा दुर्योधन ने विकर्तन (सूर्य) पुत्र कर्ण का वचन मान कर शासन के अधिकार पर नियुक्त, अपने छोटे भाई दुःशासन को बड़ी शीघ्रता से आज्ञा दी, कि तुम, वृद्ध सेनापतियों से मन्त्रणा करके शीघ्र सेना को सजा लो ॥२०-२१॥

यथोद्देशे च गच्छामः सहितास्तत्र कौरवैः।
सुशर्मा च यथोद्दिष्टं देशं यातु महारथः ॥२२॥
त्रिगर्त्तैः सहितो राजा समग्रबलवाहनः।
प्रागेव हि सुसंवीतो मत्स्यस्य विषयं प्रति ॥२३॥

हम लोग, सारे कौरवों को साथ लेकर निश्चित स्थान पर पहुँच जावेंगे और महारथी सुशर्मा भी सारी सेना और वाहन लेकर त्रिगर्तों के साथ निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जावें। राजा सुशर्मा तो मत्स्य देश पर पहिले से ही कुपित है ॥२२-२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जघन्यतो वयं तत्र यास्यामो दिवमान्तरे।
विषयं मत्स्यराजस्य सुसमृद्धं सुसंहताः ॥२४॥

एक दिन पीछे ही मारकाट मचाते हुए, बड़ी दृढ़ता से हम लोग भी मत्स्यराज के समृद्धशाली देश में पहुंच जावेंगे ॥२४॥

ते यान्तु सहितास्तत्र विराटनगरं प्रति।
क्षिप्रं गोपान् समासाद्य गृह्णन्तु विपुलं धनम् ॥२५॥
गवां शतसहस्राणि श्रीमन्ति गुणवन्ति च।
वयमप्यनुगृह्णीमो द्विधा कृत्वा वरूथिनीम् ॥२६॥

त्रिगर्त लोग, इकट्ठे होकर विराट नगर की ओर चले और गोपों को घेर कर उनका गोधन छीन लें। ये गायें बड़ी उत्तम और गुण वाली लाखों की संख्या में होगी। हम भी अपनी सेना को दो भागों में बांटकर बहुत शीघ्र उनको घेर लेंगे ॥२५-२६॥

वैशम्पायन उवाच—

ते स्म गत्वा यथोद्दिष्टां दिशं वह्नेर्महीपते।
सन्नद्धा रथिनः सर्वे सपदाता बलोत्कटाः ॥२७॥
प्रतिवैरं चिकीर्षन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः।
आदातुं गाः सुशर्माथ कृष्णपक्षस्य सप्तमीम् ॥२८॥

वैशम्पायन बोले-हे महीपते! ये त्रिगर्त निश्चित की हुई अग्नि की दिशा (अग्नेय कोण) से विराट-राज की गाएं छीनने को चल पड़े। इनके साथ राजा सुशर्मा भी था। ये सारे महारथी, बड़े बलोत्कट, सावधान, पदाति सेना से संयुक्त, गायों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ग्रहण करने के लोभी, अपना पूर्व वैर निकालना चाहते थे। ये लोग (मार्गशीर्ष) की कृष्ण-पक्ष की सप्तमी को चल दिए॥ २७-२८॥

अपरे दिवसे सर्वे राजन् सम्भूय कौरवाः।
अष्टम्यान्ते न्यगृह्णन्त गोकुलानि सहस्रशः ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि सुशर्मादिमत्स्यदेशयाने त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

हे राजन! दूसरे दिन सारे कौरव तय्यार हो गए। इन सब ने जाकर एक ही दिन में विराट नगर में पहुँचकर राजा विराट की सहस्रों गायों को जा घेरा ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में सुशर्मादि का मत्स्य देश पर चढ़ाई करने का तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

******

इकतीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततस्तेषां महाराज तत्रैवामिततेजसाम्।
छद्मलिङ्गप्रविष्टानां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥१॥
व्यतीतः समयः सम्यक् वसतां वै पुरोत्तमे।
कुर्वतां तस्य कर्माणि विराटस्य महीपतेः ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशम्पायन बोला—हे महाराज! अब छद्मवेषधारी, अत्यन्त-ओजस्वी, राजा विराट की सेवा करते हुए, विराट नगर-निवासी महात्मा पाण्डवों का तेरहवां वर्ष व्यतीत हो गया ॥१-२॥

कीचके तु हते राजा विराटः परवीरहा ।
परां सम्भावनाञ्चक्रे कुन्तीपुत्रेषु वीर्य्यवान् ॥३॥

शत्रु-विजयी राजा विराट, कीचक के मारे जाने पर कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर पर बड़ा भरोसा करने लगा ॥३॥

ततस्त्रयोदशस्यान्ते तस्य वर्षस्य भारत ।
सुशर्मणा गृहीतन्तद्गोधनं तरसा बहु ॥४॥

हे भारत! पाण्डवों के अज्ञातवास के तेरहवें वर्ष के व्यतीत होने पर त्रिगर्ताधीश्वर सुशर्मा ने बड़े वेग से राजा विराट के गोधन को जा घेरा ॥४॥

ततो जवेन महता गोपः पुरमथाव्रजत् ।
स दृष्ट्वा मत्स्यराजश्च रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली॥५
शूरैः परिवृतं योधैः कुण्डलाङ्गदधारिभि ।
संवृतं मन्त्रिभिः सार्द्धं पाण्डवैश्च महात्मभिः ॥६॥

इसके अनन्तर अरिष्टनेमि गोप (सहदेव) बड़े वेग से नगर की ओर दौड़ा। इसने रथ से उतर कर कुण्डल-अङ्गदधारी, शूरवीर-योधाओं से घिरे हुए, मन्त्री और महाबली पाण्डवों से युक्त, राष्ट की उन्नति करने वाले, सभा में बैठे हुए, मत्स्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशाधीश्वर राजा को देखकर और उसके पास पहुँच कर प्रणाम-पूर्वक कहा ॥५-६॥

तं सभायां महाराजमासीनं राष्ट्रवर्द्धनम् ।
सोऽब्रवीदुपसङ्गम्य विराटं प्रणतस्तदा ॥७॥

अस्मान् युधि विनिर्जित्य परिभूय सबान्धवान् ।
गवां शतसहस्राणि त्रिगर्त्ताः कालयन्ति ते ॥८॥

हम सबको अपने बान्धवों (साथियों) के साथ युद्ध में जीत तथा अपमानित करके तुम्हारी सहस्रों गायों को त्रिगर्त वीर, हाँक कर ले जा रहे हैं ॥७-८॥

तान् परीप्सस्व राजेन्द्र मानेशुः पशवस्तव ।
तच्छ्रुत्वा नृपतिः सेनां मत्स्यानां समयोजयत्॥९॥
रथनागाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम् ।

हे राजेन्द्र ! तुम उन पर आक्रमण करो, तुम्हारे पशु नष्ट भ्रष्ट न हो जावें । यह सुन कर विराट-राज ने अपने मत्स्यवीरों की सेना को तय्यार किया, जो रथ, हाथी और अश्वों से गहन तथा पैदल वीर और ध्वजाओं से व्याप्त थी ॥९॥

राजानो राजपुत्राश्च तनुत्राण्यथ भेजिरे ॥१०॥
भानुमन्ति विचित्राणि शूरसेव्यानि भागशः ।

इस समय राजा या राजपुत्र, सब ने कवच धारण कर लिए, जो बड़े चमकीले, विचित्र और शूरवीरों के धारण करने के योग्य थे॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवज्रायसगर्भन्तु कवचं तत्र काञ्चनम् ॥११॥
विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीकोऽभ्यहारयत् ।

वज्रवत् अभेद्य लोह को भीतर देकर बनाए हुए सुवर्ण के कवच को विराटराज के प्रिय भ्राता शतानीक ने धारण किया ॥

सर्वपारसवं वर्म कल्याणपटलं दृढम् ॥१२॥
शतानीकादवरजो मदिराक्षोऽभ्यहारयत् ।

सारे शस्त्रों के आघात सह लेने वाले सुवर्ण के पत्र से ढके हुए, दृढ़ कवच को शतानीक के छोटे भाई मदिराक्षने पहना १२

शतसूर्यं शतावर्त्तं शतविन्दुशताक्षिमत् ॥१३॥
अभेद्यकल्पं मत्स्यस्य राजा कवचमाहरत् ।

जो सैकड़ों सूर्य, चन्द के समान चमकीला, सैकड़ों सूक्ष्म चक्र और नेत्र के आकार के चक्रों से सुशोभित, प्रायः अभेद्य कवच को मत्स्यराज ने धारण किया ॥२३॥

उत्सेधे यस्य पद्मानि शतं सौगन्धिकानि च ॥१४॥
सुवर्णपृष्ठं सूर्य्याभं सूर्य्यदत्तोऽभ्यहारत् ।

जिसके फैलाव में सैंकड़ों सौगन्धिक कमल लगे हुए थे और ऊपर सुवर्ण जड़ा गया था। उस सूर्य के सदृश कवच को सूर्यदत्त ने पहना ॥१४॥

दृढ़मायसगर्भञ्च श्वेतं वर्म शताक्षिमत् ॥१५॥
विराटस्य सुतो ज्येष्ठो वीरः शङ्खोऽभ्यहारयत् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोह (फौलाद) के समान चांदी के बने हुए, सैकड़ों नेत्रों के चिन्हों से युक्त, श्वेत-कवच को विराट के ज्येष्ठ-पुत्र, वीर-श्रेष्ठ, शङ्ख ने धारण किया ॥१५॥

शतशश्च तनुत्राणि यथास्वन्ते महारथाः ॥१६॥
योत्स्यमाना अनह्यन्त देवरूपाः प्रहारिणः ।

इन महारथियों ने सैकड़ों कवच, अपनी २ योग्यता के अनुसार पहन लिए। जिनको बांध कर ये आगे चल कर युद्ध करने वाले थे। ये सारे योद्धा, देवों के समान प्रहार करने में समर्थ थे ॥१६॥

सूपस्करेषु शुभ्रेषु महत्सु च महारथाः ॥१७॥
पृथक् काञ्चनसन्नाहान् रथेष्वश्वानयोजयन् ।

उत्तम २ चक्रों वाले, शुभ्र बड़े २ रथों में इन महारथियों ने सुवर्ण के कवचधारी पृथक् २ अश्व जोड़ लिए ॥१७॥

सूर्य्यचन्द्रप्रतिकाशे रथे दिव्ये हिरण्मये ॥१८॥
महानुभावो मत्स्यस्य ध्वज उच्छ्रिश्रिये तदा ।

सूर्य और चन्द्र के तुल्य, सुनहरी दिव्य रथ में मत्स्य-राज की विशाल ध्वजा फहराने लगी ॥१८॥

अथान्यान् विविधाकारान् ध्वजान् हेमपरिष्कृतान्१९
यथास्वं क्षत्रियाः शूराः रथेषु समयोजयन् ।

अन्य शूरवीरों ने भी अपने २ रथ में अपने योग्य अन्य अनेक आकार की शुद्ध सुवर्ण से बनी हुई ध्वजाओं को लगा लिया ॥१९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथमत्स्योऽब्रवीद्राजा शतानीकं जघन्यजम्॥२०॥
कङ्कबल्लवगोपाला दामग्रन्थिश्च वीर्य्यवान्।
युध्येयुरिति मे बुद्धिर्वर्त्तते नात्र संशयः ॥२१॥

अपने से छोटे भाई शतानीक से मत्स्यराज बोला—कङ्क, बल्लव, अरिष्टनेमि, गोपाल तथा दामग्रन्थि भी बड़े वीर्यवान् हैं, ये निःसंदेह बड़ा अच्छा युद्ध करेंगे-मेरा ऐसा खयाल है॥२०-२१

एतेषामपि दीयन्तां रथा ध्वजपताकिनः।
कवचानि विचित्राणि दृढानि च मृदूनि च ॥२२॥
प्रतिमुञ्चन्तु गात्रेषु दीयन्तामायुधानि च।
वीराङ्गरूपाः पुरुषा नागराजकरोपमाः ॥२३॥
नेमे जातु न युध्ययुरिति मे धीयते मतिः।

तुम लोग इनको भी युद्धोपयोगी रथ और ध्वजा अर्पण कर दो तथा दृढ़, लचकीले, विचित्र कवच भी इनको प्रदान करो, जिनको ये धारण करलें तथा इनको शस्त्र भी दे दो। ये तो वीरों के समान शरीर धारी पुरुष हैं और इनकी नागराज के तुल्य भुजाएं हैं। ये युद्ध करना नहीं जानते हैं, ऐसा नहीं हो सकता हैं, यह मेरी निश्चित मति है ॥२२-२३॥

एवं श्रुत्वा तु नृपतेर्वाक्यं त्वरितमानसः ॥२४॥
शतानीकस्तु पार्थेभ्यो रथान् राजन् समादिशत्।
सहदेवाय राज्ञे च भीमाय नकुलाय च ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे राजन्! विराटराज के ये वचन सुनते ही शतानीक ने बड़ी शीघ्रता से पाण्डु-पुत्र सहदेव, राजा युधिष्ठिर, भीम और नकुल को भी रथ सौंप दिए।।२४-२५।।

ते प्रहृष्टास्ततः सूता राजभक्तिपुरस्कृताः ।
निर्दिष्टा नरदेवेन रथान् शीघ्रमयोजयन् ॥२६॥

राजभक्ति से परिपूर्ण, प्रसन्न-चित्त सारथियों ने राजा की आज्ञा पाकर शीघ्र ही रथों को जोड़ दिया ॥२६॥

कवचानि विचित्राणि मृदूनि च दृढानि च ।
विराटः प्रादिशद्यानि तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ॥२७॥
तान्यामुच्य शरीरेषु दंशितास्ते परन्तपाः ।

उन अद्भुत कर्म करने वाले पाण्डवों को राजा विराट ने जो विचित्र, दृढ़, लचकीले कवच, सौंपे, उनको शरीर में धारण करके शत्रु-विजयी पाण्डव, तैयार हो गये ॥२७॥

रथान् हयैः सुसम्पन्नानास्थाय च नरोत्तमाः ॥२८॥
निर्ययुर्मुदिताः पार्थाः शत्रु सङ्घावमर्दिनः ।

उत्तम २ अश्वों से युक्त, रथों में बैठकर नरश्रेष्ठ, शत्रु-सङ्घ-नाशक, पाण्डव, भी बड़ी प्रसन्नता से चल पड़े ॥२८॥

तरस्विनश्छन्नरूपाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥२९॥
रथान् हेमपरिश्छन्नानास्थाय च महारथाः
विराटमन्वयुः पार्थाः सहिताः कुरुपुङ्गवाः ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पाण्डव, बड़े वेगवान् और युद्ध-विशारद थे। इन्होंनेब्राह्मणादि के कपट मय वेष बना रखे थे। ये कुरुवंश-श्रेष्ठ पाण्डव, साथ २ विराट के पीछे २ चल दिये ॥३०॥

चत्वारो भ्रातरः शूराः पाण्डवाः सत्यविक्रमाः।
भीमाश्च मत्तमातङ्गाः प्रभिन्नकरटामुखाः ॥३१॥

ये चारों भाई पाण्डव, बड़े शूरवीर और सत्य-पराक्रमी थे। ये अपने कपोलों से मद टपकाने वाले, भीषण हाथियों के समान सारे महाबली थे ॥३१॥

क्षरन्तश्चैव नागेन्द्रा सुदन्ताः षष्टिहायनाः।
आरूढा युद्धकुशलैः शिक्षिता हस्तिसादिभिः ॥३२॥
राजानमन्वयुः पश्चाच्चलन्त इव पर्वताः।

साठ वर्ष की आयु वाले, उत्तम दन्तधारी, मद टपकाने वाले, चढ़ने में उत्तम, युद्ध कुशल, हथवानों से सिखाये हुए, हाथी के सदृश बली थे। मानो पर्वत चले जा रहे हों, इस तरह ये पाण्डव भी विराटराज के पीछे २ चल दिए ॥३१-३२॥

विशारदानां मुख्यानां हृष्टानामनुयायिनाम् ॥३३॥
अष्टौ रथसहस्राणि दशनागशतानि च।
षष्टिश्चाश्वसहस्राणि मत्स्यानामभिनिर्ययुः ॥३४॥
तदनीकं विराटस्य शुशुभे भरतर्षभ।

हे भरतर्षभ! रण-विशारद, सर्व-श्रेष्ठ, प्रसन्न-चित्त, उत्तम जीवन वाले, मत्स्यों के आठ हजार रथ, एक हजार हाथी, साठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हजार घोड़े, चल दिये। राजा विराट की यह सेना, बड़ी ही सुशोभित हो रही थी ॥३३-३४॥

सम्प्रयान्तं तदा राजन्निरीक्षन्तं गवां पदम् ॥३५॥
तद् बलाग्र्यं विराटस्य सम्प्रस्थितमशोभत।
दृढायुधजनाकीर्णं गजाश्वरथसङ्कुलम् ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि मत्स्यराजरणोद्योगे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

हे राजन्! गौओं के चिन्हों को देखती हुई, यह सेना, चली जा रही थी, जो बड़ी ही सुशोभित हो रही थी। यह सेना दृढ़ आयुध और जनों (सिपाहियों) से आकीर्ण तथा गज, अश्व और रथों से व्याप्त थी ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में मत्स्य-राज के रण के उद्योग का इकतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बत्तीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

निर्याय नगराच्छूरा व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
त्रिगर्त्तानस्पृशन्मत्स्याः सूर्ये परिणते सति ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! दृढ़ सेना वाले, प्रहार करने में कुशल, शूरवीर मत्स्य देश के योद्धा, सूर्य के डूबने के समय त्रिगर्तों से जाकर भिड़ गए ॥१॥

ते त्रिगर्त्ताश्च मत्स्याश्च संरब्धा युद्धदुर्मदाः ।
अन्योऽन्यमभिगर्जन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः ॥२॥

ये त्रिगर्त और मत्स्य देश के महाबली वीर, बड़े वेगशील और युद्ध म दुर्मद थे। गायों के ले जाने या वापिस छीन लेने की इच्छा से एक दूसरे पर गर्जा२ कर प्रहार कर रहे थे ॥२॥

भीमाश्च मत्तमातङ्गस्तोमराङ्गङ्कुशचोदिताः ।
ग्रामणीयैः समारूढाः कुशलैर्हस्तिसादिभिः ॥३॥

मस्त, भीषण, तोमर और अंकुश से चलाए हुए हाथियों पर कुशल हस्त्यारोही राज्याधिकारी चढ़ रहे थे ॥३॥

तेषां समागमो घोरस्तुमुलो लोमहर्षणः ।
घ्नतां परस्परं राजन् यमराष्ट्रविवर्द्धनः ॥४॥

हे राजन्! परस्पर प्रहार करने वाले इन वीरों का भयंकर संग्राम लोमों को खड़ा कर देने वाला था। जिससे यम के राष्ट्र की वृद्धि हो रही थी ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवासुरसमो राजन्नासीत् सूर्य्येऽवलम्बति ।
पदातिरथनागेन्द्रहयारोहबलौघवान् ॥५॥

सूर्य के छुपते २ पैदल, रथ, हाथी, घोड़ों के सवारों की सेना से युक्त, यह संग्राम, देवासुर संग्राम की तरह बढ़ गया ॥५॥

अन्योऽन्यमभ्यपततां निघ्नतां चेतरेतरम् ।
उदतिष्ठद्रजो भौमं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥६॥

योद्धाओं के एक दूसरे पर आक्रमण तथा एक दूसरे पर प्रहार करने पर भूमि से इतनी धूलि उठी, कि जिसमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था ॥६।

पक्षिणश्चापतन् भूमौ सैन्येन रजसावृताः ।
इषुभिर्व्यतिसर्पद्भिरादित्योऽन्तरधीयत ॥७॥

इस प्रकार सेना द्वारा उठाई हुई धूलि से व्याप्त होकर बहुत पक्षी गिरने लगे और सन-सन चलते हुए बाणों के छा जाने से सूर्य छुप सा गया ॥७॥

खद्योतैरिव संयुक्तमन्तरीक्षं व्यराजत ।
रुक्मपृष्ठानि चापानि व्यतिषिक्तानि धन्विनाम् ॥८॥
पततां लोकवीराणां सव्यदक्षिणमस्यताम् ।

इस समय आकाश खद्योतों से व्याप्त सा दिखाई दे रहा था। सुवर्ण की पृष्ठ धारी, लोक में प्रसिद्ध वीरों के इधर उधर उछलते हुए और दाएं बाएं बाण फैंकते हुए धनुर्धरों के धनुष, एक हाथ से दूसरे हाथ में संयुक्त करके बड़े वेग से चलाए जा रहे हैं ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथा रथैः समाजघ्नुः पदातैश्च पदातयः ॥९॥
सादिनः सादिभिश्चैव गजैश्चापि महागजाः ।

अब महारथी महारथियों को, पैदल पैदलों को, अश्वारोही अश्वारोहियों को, हाथी हाथियों को मार रहे थे ॥९॥

असिभिः पट्टिशैः प्रासैः शक्तिभिस्तोमरैरपि ॥१०॥
संरब्धाः समरे राजन्निजघ्नुरितरेतरम् ।

हे राजन् ! खड्ग पट्टिश, तोमर (शावली) भाले, शक्ति, आदि शस्त्रों से कुपित हुए वीर, एक दूसरे को मार रहे थे ॥१०॥

निघ्नन्तः समरेऽन्योऽन्यं शूराः परिघबाहवः ॥११॥
न शेकुरभिसंरब्धाः शूरान् कर्त्तुं पराङ्मुखान् ।

विशाल अर्गला के समान भुजा-धारी, शूर-वीर, बड़े वेग और क्रोध में भरकर युद्ध में एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे, परन्तु वे किसी भी योद्धा को युद्ध से पराङ्मुख करने में समर्थ नहीं होते थे ॥११॥

कृतोत्तरोष्ठं सुनसं कृतकेशमलङ्कृतम् ॥१२॥
अदृश्यत शिरश्छिन्नं रजोध्वस्तं सकुण्डलम् ।

सुन्दर नासिका वाले और बाल बने हुए, विभूषित, कुण्डल-धारी, ऊपर के होठ कटे हुए, मस्तक, कटकर भूमि में पड़े रज में लिपट रहे, हैं ॥१२॥

अदृश्यन्त च गात्राणि शरैश्छिन्नानि भागशः ॥१३॥
शालस्कन्धनिकाशानि क्षत्रियाणां महामृधे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाल वृक्ष के स्कन्ध के सदृश, खण्ड२ में बाणों से काटे हुए, क्षत्रियों के शरीर, (लोथ) इस महा-युद्ध में जहां देखो, वहां दिखाई पड़ रहे हैं ॥१३।

नागभोगनिकाशैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ॥१४॥
आस्तीर्णा वसुधा भाति शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।

चन्दन से चर्चित, सर्प देह के समान आकारधारी, भुजाएँ तथा कुण्डलों से सुशोभित ,मस्तकों से युद्ध भूमि भर गई ॥१४॥

रथिनां रथिभिश्चात्र सम्प्रहारोऽभ्यवर्त्तत ॥१५॥
सादिभिः सादिनाश्चापि पदातिनां पदातिभिः ।

रथ वाले से रथ वाले, अश्वारोही से अश्वारोही और पैदल से पैदल युद्ध का होने लगा ॥१५॥

उपाशाम्यद्रजो भौमं रुधिरेण प्रसर्प्यता ॥१६॥
कश्मलश्चाविशद्घोरं निर्मर्य्यादमवर्त्तत ।

फैलते हुए रुधिर से पृथिवी की सारी धूलि की कीचड़, बन गई। इस समय योद्धाओं को बड़ा आवेश आ रहा था और युद्ध मर्यादा को उलांघ गया था ॥ १६ ॥

उपाविशन् गरुत्मन्तः शरैर्गाढं प्रवेजिताः ॥१७॥
अन्तरीक्षे गतिर्येषा दर्शनञ्चान्यरुध्यत ।

बाणों से अत्यन्त बिन्धे हुए, गरुड़ आदि पक्षी, चुपचाप बैठ गए। जिनकी आकाश में अच्छी तरह गति है, वे पक्षी भी, अब कहीं आकाश में दिखाई नहीं दे रहे थे ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते घ्नन्तः समरेऽन्योऽन्यं शूराः परिघबाहवः ॥१८॥
न शेकुरतिसंरब्धाः शूरान् कर्त्तुं पराङ्मुखान् ।

परिघ (अर्गला) समान बाहु वाले, शूरवीर, युद्ध में एक दूसरे को मार रहे हैं, परन्तु वे बड़े आवेश में भर कर भी शूरवीरों को युद्ध से लोटा नहीं सकते हैं ॥ १८ ॥

शतानीकः शतं हत्वा विशालाक्षश्चतुः शतम् ॥१९॥
प्रविष्टौ महतीं सेनां त्रिगर्त्तानां महारथौ ।
तौ प्रविष्टौ महासेनां बलवन्तौ मस्विनौ ॥२०॥
आर्च्छेतां बाहुसंरम्भात् केशाकेशि रथारथि ।
लक्षयित्वा त्रिगर्त्तानां तौ प्रविष्टौ रथव्रजम् ॥२१॥
अग्रतः सूर्य्यदत्तश्च मदिराक्षश्च पृष्ठतः ।

शतानीक ने सहस्रों सैनिक मार डाले और विशालाक्ष ने चार सौ को रणभूमि में लिटा दिया। इस समय त्रिगर्तों की विशाल सेना में दो महारथी घुस गए। उस महासेना में घुस कर इन मनस्वी बलवानों ने अपने बाहुबल से सारी सेना को मोहित कर दिया। अब केशों को रथों को पकड़ कर युद्ध होने लगा। ये दोनों महावीर शतानीक और मदिराक्ष त्रिगर्तों के रथ-समूह को देखकर उस में घुस गए। इनमें आगे शतानीक और पीछे २ मदिराक्ष जा रहा था ॥१९-२१॥

विराटस्तत्र संग्रामे हत्वा पञ्च शतान् रथान् ॥२२॥
हयानाञ्च शतान्यष्टौ हत्वा पञ्च महारथान् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराट ने इस युद्ध में पाँच सौ सैनिक, आठ सौ अश्व, पाँच महारथी मार डाले ॥२२॥

चरन् स विविधान्मार्गान्रथेन रथसत्तमः ॥२३॥
त्रिगर्त्तानां सुशर्माणमार्च्छद्रुक्मरथं रणे ।

उत्तम रथ वाले राजा विराट ने अनेक मार्ग (पैंतरें) बदल कर रण में सुवर्ण के रथ में बैठे हुए, त्रिगर्ताधिपति राजा सुशर्मा को जा घेरा ॥२३॥

तौ व्यवाहरतां तत्र महात्मानौ महाबलौ ॥२४॥
अन्योऽन्यमभिगर्जन्तौ गोष्ठेषु वृषभाविव ।

ये दोनों महाबली महात्मा सुशर्मा और विराट, गोष्ठ में सांडों की तरह गर्जना करके एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥२४॥

ततो राजा त्रिगर्त्तानां सुशर्मा युद्धदुर्मदः ॥२५॥
मत्स्यं समीयाद्राजानं द्वैरथेन नरर्षभः ।

अब त्रिगर्तों का राजा, युद्ध-दुर्मद, वीर-श्रेष्ठ, सुशर्मा मत्स्य-राज के ऊपर दो रथों से झपट पड़ा ॥२५॥

ततो रथाभ्यां रथिनौ व्यतीयतुरमर्षणौ ॥२६॥
शरान् व्यसृजतां शीघ्रं तोयधारा घनाविव ।

क्रोध में भरे हुए दोनों महारथी, अपने २ रथों से एक दूसरे पर झपट पड़े और मेघों से जलधारा के सदृश शीघ्र २ बाण चलाने लगे ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्योन्यं चापि संरब्धौ विचेरतुरमर्षणौ ॥२७॥
कृतास्त्रौ निशितैर्बाणैरसिशक्तिगदाभृतौ ।

सुशर्मा और विराटराज एक दूसरे पर क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण बाणों से आक्रमण कर रहे थे । ये दोनों ही अस्त्र-विद्या में बड़े कुशल, तलवार, शक्ति और गदाधारी थे ॥२७॥

ततो राजासुशर्माणं विव्याध दशभिः शरैः ॥२८॥
पञ्चभिः पञ्चभिश्चास्य विव्याध चतुरो हयान् ।

राजा विराट ने सुशर्मा को दश बाणों से बेध दिया और पांच २ बाणों से इसने सुशर्मा के चारों घोड़ों को वेंध डाला ॥२८॥

तथैव मत्स्यराजानं सुशर्मा युद्धदुर्मदः ॥२९॥
पञ्चाशद्भिः शितैर्बाणैर्विव्याध परमास्त्रवित् ।

इसी तरह अस्त्र विद्या में कुशल, युद्ध--शील, सुशर्मा ने पांच सौ बाणों से मत्स्यराज को बींधा ॥२९॥

ततः सैन्यं महाराज मत्स्यराजसुशर्मणोः ।
नाभ्यजानत्तदान्योऽन्यं सैन्येन रजसा वृतम् ॥३०॥
इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
सुशर्मविराटयुद्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

हे महाराज ! मत्स्यराज और सुशर्मा की सेना, सेना से उठी हुई रज से इतनी व्याप्त हो गई, कि वह अपने पराए को भी नहीं पहिचान सकती थी ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्व में गोहरणपर्व में सुशर्मा विराट के युद्ध का बत्तीसवां अध्याय पूरा हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेतालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

तमसाभिप्लुते लोके रजसा चैव भारत।
अतिष्ठन्वै मुहूर्त्तन्तु व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत! दृढ़ सेना वाले उत्तम प्रहार-कर्त्ता सेनापति, लोक के अन्धकार से व्याप्त हो जाने तथा मिट्टी से भर जाने पर क्षण भर के लिये ठहर गए ॥१॥

ततोऽन्धकारं प्रणुदन्नुदतिष्ठत चन्द्रमाः।
कुर्वाणो विमलां रात्रिं नन्दयन् क्षत्रियान् युधि ॥२

अब अन्धकार को नाश करता हुआ चन्द्रमा, निकला। इसने रात को प्रकाशमान् और विमल बना दिया। जिससे क्षत्रियों को बड़ा आनन्द हुआ ॥२॥

ततः प्रकाशमासाद्य पुनर्युद्धमवर्त्तत।
घोररूपं ततस्तस्मिन् नावैक्षन्त परस्परम् ॥३॥

जब प्रकाश छा गया, तो फिर युद्ध का प्रारम्भ हो गया। इस महायुद्ध में परस्पर कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥३॥

ततः सुशर्मा त्रैगर्त्तः सह भ्रात्रा यवीयसा।
अभ्यद्रवन्मत्स्यराजं रथव्रातेन सर्वशः ॥४॥

अब अपने छोटे भाईको साथ लेकर सुशर्मा ने रथ समूह से मत्स्यराज पर सब ओर से आक्रमण कर दिया ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो रथाभ्यां प्रस्कन्द्य भ्रातरौ क्षत्रियर्षभौ ।
गदापाणी सुसंरब्धौ समभ्यद्रवतां रथान् ॥५॥

ये दोनों क्षत्रिय वीर, भ्राता, अपने २ रथों से उतर पड़े और गदा हाथ में लेकर बड़े क्रोध में भरे हुए, मत्स्यराज के रथों पर कूद पड़े ॥५॥

तथैव तेषान्तु बलानि तानि क्रुद्धान्यथान्योऽन्यमभिद्रवन्ति
गदासिखड्गैश्च परश्वधैश्च पाशैश्च तीक्ष्णाग्रसुपीतधारैः ॥

इसी तरह इन दोनों भाई तथा विराटराज की क्रुद्ध हुई सेनाएं, एक दूसरे पर शीघ्र शत्रु के शरीर में प्रवेश हो जाने वाली धारा वाले, गदा, छुरी, तलवार, फरसी, पाश आदि शस्त्रों को लेकर झपटने लगीं ॥६॥

बलन्तु मत्स्यस्य बलेन राजा सर्वं त्रिगर्त्ताधिपतिः सुशर्मा
प्रमथ्य जित्वा च प्रसह्य मत्स्यं विराटमोजस्विनमभ्यधावत्

त्रिगर्ताधीश्वर राजा सुशर्मा ने मत्स्यराज की सारी सेना को अपने बल से छिन्न भिन्न करके तथा बल-पूर्वक जीत कर ओजस्वी, मत्स्यराज पर आक्रमण कर दिया ॥७॥

तौ निहत्य पृथग्धूर्य्यावुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ।
विरथं मत्स्यराजानं जीवग्राहमगृहणताम् ॥८॥

इन दोनों सुशर्मा और इसके भाई ने अलग २ एक २ रथ वाहक अश्व को तथा सारथि के पृष्ठ रक्षकों को मार कर रथ रहित मत्स्यराज को जीता ही पकड़ लिया ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमुन्मथ्य सुशर्माथ युवतीमिव कामुकः ।
स्यन्दनं स्वं समारोप्य प्रययौ शीघ्रवाहनः ॥९॥

सुशर्मा ने, युवति स्त्री के कामी की तरह राजा के लिपट कर उसको रथ में डाल लिया और शीघ्र-वाहन से शीघ्र चल दिया।

तस्मिन् गृहीते विरथे विराटे बलवत्तरे ।
प्राद्रवन्त भयात् मत्स्यास्त्रिगर्त्तैरर्दिता भृशम् ॥१०

रथहीन, बलवान् विराट के पकड़ लेने पर भय से मत्स्यराज के वीर भाग निकले। त्रिगर्तों ने इनको बड़ा ही पीड़ित किया।

तेषु सन्त्रास्यमानेषु कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
प्रत्यभाषन्महाबाहुं भीमसेनमरिन्दमम् ॥११॥

मत्स्यराजः परामृष्टस्त्रिगर्त्तेन सुशर्मणा ।
तं मोचय महाबाहो न गच्छेद्विषतां वशम् ॥१२॥

इन सैनिकों के भय-भीत होने पर कुन्ती-पुत्र, राजा युधिष्ठिर, अरिमर्दन, महाबाहु भीमसेन से बोला—हे महाबाहो! त्रिगर्ताधीश्वर, सुशर्मा ने मत्स्यराज को पकड़ लिया है। तुम इसको छुड़ा दो, कहीं शत्रु के वश में न पड़ जावे ॥११-१२॥

उषिताः स्म सुखं सर्वे सर्वकामैः सुपूजिताः ।
भीमसेन त्वया कार्य्या तस्य वासस्य निष्कृतिः॥१३

हम यहां बड़े सुख से रहे हैं और इसने भी हमारी कामना पूरी की हैं। हे भीमसेन! तुम उस निवास का प्रत्युपकार कर दो ॥१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीमसेन उवाच--

अहमेनं परित्रास्ये शासनात्तव पार्थिव।
पश्य मे सुमहत्कर्म युध्यतः सह शत्रुभिः ॥१४॥

भीमसेन ने कहा—हे राजन्! आपकी आज्ञा से मैं अभी मत्स्यराज का उद्धार कर देता हूं। आप शत्रुओं के साथ युद्ध करते हुए मेरा कौशल देखना ॥१४॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य तिष्ठ त्वं भ्रातृभिः सह।
एकान्तमाश्रितो राजन् पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥१५॥

हे राजन! आप अपने इन भाइयों को साथ लेकर अपने बाहुओं के बल पर एकान्त में खड़े रहो और मेरा पराक्रम देखो

सुस्कन्धोऽयं महावृक्षो गदारूप इव स्थितः।
एनमेव समारुज्य द्रावयिष्यामि शात्रवान् ॥१६॥

यह बड़ा भारी, स्कन्धों से सुसम्पन्न, गदा के आकार का सामने ही वृक्ष खड़ा है। मैं इसको उखाड़ कर शत्रुओं को छिन्न भिन्न कर डालूंगा ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच—

तं मत्तमिव मातङ्गं वीक्ष्यमाणं वनस्पतिम्।
अब्रवीद् भ्रातरं वीरं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥१७॥

वैशम्पायन बोले—मदोन्मत्त हाथी की तरह वृक्ष को देखते हुए अपने वीर भ्राता भीमसेन से धर्मराज युधिष्ठिर कहने लगा ॥१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा भीम साहसं कार्षीस्तिष्ठत्वेष वनस्पतिः ।
मा त्वां वृक्षेण कर्माणि कुर्वाणमतिमानुषम् ॥१८॥
जनाः समवबुध्येरन् भीमोऽयमिति भारत ।
अन्यदेवायुधं किञ्चित् प्रतिपद्यस्व मानुषम् ॥१९॥

हे भीम ! इतना साहस न करो इस वृक्ष को खड़ा रहने दो। कहीं वृक्ष से मनुष्यों की शक्ति से बाहर कर्म कर दिखाने से मनुष्य यह न जान ले, कि यह भीम है ! तुम तो इस समय कोई मनष्योचित्त शस्त्र उठाओ ॥१८-१९॥

चापं वा यदि वा शक्तिं निस्त्रिंशं वा परश्वधम् ।
यदेव मानुषं भीम भवेदन्यैरलक्षितम् ॥२०॥

हे भीम ! धनुष, शक्ति, तलवार, परशु आदि में से मनुष्योचित्त जो शस्त्र तुमको प्रतीत हो, वही उठा लो, जिसके कारण अन्य मनुष्य तुम्हें भीम होने का अनुमान न कर लें ॥२०

तदेवायुधमादाय मोक्षयाशु महीपतिम् ।
यमौ च चक्ररक्षौ ते भवितारौ महाबलौ ।
सहिताः समरे तत्र मत्स्यराजं परीप्सत ॥२१॥

तुम ऐसे शस्त्र को लेकर राजा को शीघ्र छुड़ाओ। महाबली नकुल, सहदेव, तुम्हारे चक्र रक्षक बन जावेंगे। तुम इनको साथ लेकर मत्स्यराज की सहायता करो ॥२१॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तस्तु वेगेन भीमसेनो महाबलः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहीत्वा तु धनुःश्रेष्ठं जवेन सुमहाजवः ॥२२॥
व्यमुञ्चच्छरवर्षाणि सतोय इव तोयदः ।

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! राजा युधिष्ठिर के इतना कहने पर महाबली भीमसेन ने धनुःश्रेष्ठ उठाया। अब इस महा-वेग-शील ने बड़े वेग से जल से भरे हुए मेघ की तरह बाण बरसाना आरम्भ किया ॥२२॥

तं भीमो भीमकर्माणं सुशर्माणमथाद्रवत् ॥२३॥
विराटं समवीक्ष्यैनं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवत् ।

भीमसेन, भीम कर्म करने वाले राजा सुशर्मा पर झपटा। यह इसके पास बन्धीभूत राजा विराट को देखकर ठहरो ? ठहरो ? इस तरह शब्द (आवाज़) लगाने लगा ॥२३॥

सुशर्मा चिन्तयामास कालान्तकयमोपमम् ॥२४॥
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तं पृष्ठतो रथपुङ्गवः ।

महारथियों में श्रेष्ठ, सुशर्मा ने अपने पीछे आता हुआ और ठहरो ? ठहरो ? की आवाज लगाता हुआ काल, अन्तक और यम-राज के समान किसी वीरपुङ्गव (भीम) को आता देखा ॥२४॥

पश्यतां सुमहत् कर्म महद्युद्धमुपस्थितम् ॥२५॥
परावृतो धनुर्गृह्य सुशर्मा भ्रातृभिः सह ।

इन दोनों भाइयों ने देखा, कि कोई वीर बड़ा भारी युद्ध कौशल दिखाता हुआ चला आ रहा है। इन्होंने समझा कि अब बड़ा भारी युद्ध होगा। राजा सुशर्मा अपने भाइयों के साथ वापिस लौट पड़ा ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमेषान्तरमात्रेण भीमसेनेन ते रथाः ॥२६॥
रथानाञ्च गजानाञ्च वाजिनाञ्च ससादिनाम् ।
सहस्रशतसङ्घाताः शूराणामुग्रधन्विनाम् ।
पातिता भीमसेनेन विराटस्य समीपतः ॥२७॥

हे राजन ! भीमसेन ने क्षण भर में अनेक महारथी, रथ, हाथी, सवारों सहित घोड़े तथा महा धनुर्धर, शूरवीरों का सैकड़ों हजारों की संख्या में मार २ कर ढेर लगा दिया। यह सब कुछ भीमसेन ने राजा विराट के देखते २ किया ॥२६-२७॥

पत्तयो निहतास्तेषां गदां गृह्य महात्मना ।
तद्दृष्ट्वा तादृशं युद्धं सुशर्मा युद्धदुर्मदः ॥२ ॥
चिन्तयामास मनसा किं शेषं हि बलस्य मे ।
अपरो दृश्यते सैन्ये पुरा मग्नो महाबले ॥२९॥

महात्मा भीम ने उनकी ही गदा छीन कर बहुत से सैनिक मार डाले। इस प्रकार का भीषण युद्ध देख कर युद्ध-दुर्मद राजा सुशर्मा मन में विचारने लगा कि मेरी नहीं के बराबर सेना रह गई है। महाबल युक्त सेना मे मेरा भाई डूबा हुआ सा दृष्टि-गोचर होता है ॥२८ २९॥

आकर्णपूर्णेन तदा धनुषा प्रत्यदृश्यत।
सुशर्मा सायकांस्तीक्ष्णान् क्षिपते च पुनः पुनः ॥३०॥

अब सुशर्मा कान तक धनुष खैंच कर रण क्षेत्र में दिखाई दिया और बार २ बड़े तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगा ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः समस्तास्ते सर्वे तुरगानभ्यचोदयन् ।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणास्त्रिगर्तान् प्रत्यमर्षणाः ॥३१॥

अब सारे मत्स्य देश के वीरों ने भी क्रोध में भर कर त्रिगर्तों के प्रति दिव्य अस्त्र ले कर अश्वों को मोड़ा ॥३१॥

तान्निवृत्तरथान् दृष्ट्वा पाण्डवान् सा महाचमूः ।
वैराटिः परमक्रुद्धो युयुधे परमाद्भुतम् ॥३२॥

राजा विराट की महासेना भी, पाण्डवों को रथ लौटा कर आते हुए देख कर बड़ी कुपित हुई और त्रिगर्तों के साथ बड़ा विचित्र युद्ध करने लगा ॥३२॥

सहस्रमवधीत्तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भीमः सप्त सहस्राणि यमलोकमदर्शयत् ॥३३॥

कुन्तीपुत्र, राजा युधिष्ठिर ने एक सहस्र सैनिक मार डाले और भीम ने सात हज़ार सैनिकों को यमलोक के दर्शन कराए ॥३३॥

नकुलश्चापि सप्तैव शतानि प्राहिणोच्छरैः ।
शतानि त्रीणि शूराणां सहदेव प्रतापवान् ॥३४॥

नकुल ने अपने बाणों से सात सौ ही सैनिक मारे और प्रतापी सहदेव ने तीन सौ सैनिक यम-धाम पहुँचाए ॥३४॥

युधिष्ठिरसमादिष्टो निजघ्ने पुरुषर्षभः ।
ततोऽभ्यपतदत्युग्रः सुशर्माणमुदायुधः ।
हत्वा तां महतीं सेनां त्रिगर्त्तानां महारथः ॥३५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर वीर-श्रेष्ठ भीम ने बहुत कुछ मार काट मचा दी। अब अत्यन्त तेजस्वी, शस्त्रधारी महारथी भीम, त्रिगर्तों की बड़ी भारी सेना को छिन्न-भिन्न करके राजा सुशर्मा पर झपटा ॥३५॥

ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः ।
अभिपत्य सुशर्माणं शरैरभ्याहनद्भृशम् ॥३६॥

इसी समय महारथी राजा युधिष्ठिर, बड़ी शीघ्रता से राजा सुशर्मा के पास पहुंचा और इनको बाणों से बींधने लगा ॥३६॥

सुशर्मापि सुसंरब्धस्त्वरमाणो युधिष्ठिरम् ।
अविध्यन्नवभिर्बाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥३७॥

अब सुशर्मा भी क्रोध में भर गया, इसने भी बड़ी शीघ्रता से नो बाणों से राजा युधिष्ठिर को और चार बाणों से इसके चारों अश्वों को घायल कर दिया ॥३७॥

ततो राजन्नाशुकारी कुन्ती-पुत्रो वृकोदरः ।
समासाद्य सुशर्माणमश्वानस्य व्यपोथयत् ॥३८॥

हे राजन्! कुन्ती-पुत्र वृकोदर भीम ने बड़ी शीघ्रता (फुर्ती) से राजा सुशर्मा के पास पहुँच कर उसके अश्वों को मार डाला ॥३८॥

पृष्ठगोपांश्च तस्याथ हत्वा परमसायकैः ।
अथास्य सारथिं क्रुद्धो रथोपस्थादपातयत् ॥३९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीमसेन ने इसके पीछे चलने वाले, सहायकों को भी अपने तीक्ष्ण बाणों से काट गिराया और इसके सारथि को भी रथ के आसन से नीचे गिरा लिया ॥३९॥

चक्ररक्षश्च शूरो वै मदिराक्षोऽतिविश्रुतः ॥४०॥
समायाद्रिरथं दृष्ट्वा त्रिगर्तं प्राहरत्तदा ।

इस समय चक्र-रक्षक बना हुआ अत्यन्त प्रसिद्ध शूर, मदिराक्ष, त्रिगर्ताधीश का रथ हीन देख कर उसके समीप पहुंचा और उस पर बड़ा तीक्ष्ण प्रहार किया ॥४०॥

ततो विराटः प्रस्कन्द्य रथादथ सुशर्मणः ॥४१॥
गदां तस्य परामृश्य तमेवाभ्यद्रवद् बली ।
स चचार गदापाणिर्वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥४२॥

अब बलवान् विराटराज भी सुशर्मा के रथ से कूदा और उसी की गदा ले कर उसी पर टूट पड़ा। यह वृद्ध भी राजा विराट, गदा हाथ में ले कर युवा पुरुष की तरह रण-भूमि में विचरने लगा ॥ ४१-४२ ॥

पलायमानं त्रैगर्त्तं दृष्ट्वा भीमोऽभ्यभाषत ।
राजपुत्र निवर्त्तस्व न ते युक्तं पलायनम् ॥४३॥

इस समय त्रिगर्ताधिप को भागते हुए देखकर भीम बोला- हे राजपुत्र ! तुम लौट कर आओ। तुमको भागना उचित नहीं है।

अनेन वीर्य्येण कथं गास्त्वं प्रार्थयसे बलात् ।
कथं चानुचरांस्त्यक्त्वा शत्रुमध्ये विषीदसि ॥४४॥

इसी पराक्रम से क्या तुम गायों को बल-पूर्वक छीन कर ले जाना चाहते हो। तुम अपने सेवकों को छोड़ कर शत्रु के मध्य में कैसे पीड़ित हो रहे हो ॥४४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्युक्तः स तु पार्थेन सुशर्मा रथयूथपः ।
तिष्ठ तिष्ठेति भीमं स सहसाभ्यद्रवद् बली ॥४५॥

भीमसेन के इतना कहने पर रथों के समूह का अधिपति, राजा सुशर्मा, ठहर ? ठहर ? इस प्रकार कहता हुआ भीम पर टूट पड़ा ॥४५॥

भीमस्तु भीमसङ्काशो रथात् प्रस्कन्द्य पाण्डवः ।
प्राद्रवत्तूर्णमव्यग्रो जीवितेप्सुः सुशर्मणः ॥४६॥

भीम के समान ही (अद्वितीय) पाण्डु-पुत्र भीमसेन रथ से, उतर कर बिना किसी घबराहट के राजा सुशर्मा को जीता ही पकड़ने के लिये दौड़ा ॥४६॥

तं भीमसेनो धावन्तमभ्यधावत वीर्य्यवान् ।
त्रिगर्त्तराजमादातुं सिंहं क्षुद्रमृगं यथा ॥४७॥

वीर्यवान भीमसेन भाग कर जाते हुए त्रिगर्ताधीश्वर के पीछे छोटे से मृग के पीछे सिंह के सदृश दौड़ने लगा ॥४७॥

अभिद्रुत्य सुशर्माणं केशपक्षे परामृशत् ।
समुद्यम्य तु रोषात्तं निष्पिपेष महीतले ॥४८॥

इसने राजा सुशर्मा को घेर लिया और जा कर उसके बाल पकड़ लिए तथा क्रोध पूर्वक उसको उठा कर पृथिवी पर दे मारा ॥४८॥

पदा मूर्द्ध्नि महाबाहुः प्राहरद्विलपिष्यतः ।
तस्य जानु ददौ भीमो जघ्ने चैनमरत्निना ॥४९॥

हाय २ करते हुए राजा सुशर्मा के मस्तक पर महाबाहु, भीमसेन ने लात लगाई और गोड़ी मार कर कुहनी गड़ादी। भीषण प्रहार से पीड़ित हो कर राजा सुशर्मा मूर्च्छित हो गया ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स मोह मगमद्राजा प्रहारवरपीड़ितः ।
तस्मिन् गृहीते विरथे त्रिगर्त्तानां महारथे ॥५०॥

त्रिगर्तों के महारथी, रथहीन सुशर्माके पकड़ लेनेपर त्रिगर्तों की सारी सेना भयभीत होकर भाग निकली ॥५०॥

अभज्यत बलं सर्वं त्रैगर्त्तं तद्भयातुरम् ।
निवर्त्य गास्ततः सर्वाः पाण्डुपुत्रा महारथाः॥५१॥

महारथी पाण्डु-पुत्रों ने राजा सुशर्मा को जीत कर और उसका सारा धन लेकर अपनी सारी गाएं लौटा ली ॥५१॥

अवजित्य सुशर्माणं धनं चादाय सर्वशः ।
स्वबाहुबलसम्पन्ना ह्रीनिषेवा यतव्रताः ॥५२॥

विराटस्य महात्मानः परिक्लेशविनाशनाः ।
स्थिताः समक्षं ते सर्वे त्वथ भीमोऽभ्यभाषत ॥५३॥

अपने बाहुबल से सम्पन्न, लज्जा-शील, लम्बे व्रत-धारी कष्ट निवारण करने वाले, महात्मा सारे पाण्डव, राजा विराट के सम्मुख स्थित हुए, इनमें से भीम बोला ॥५२-५३॥

नायं पापसमाचारो मत्तो जीवितुमर्हति ।
किन्नु शक्यं मया कर्त्तुं यद्राजा सततं घृणी ॥५४॥

हे राजन् ! मुझ से यह पापी सुशर्मा कभी नहीं बच सकता था, किन्तु मैं ऐसा कैसे कर सकता था, क्योंकि मैं जानता था, कि आप बड़े ही दयालु हैं ॥५४॥

गले गृहीत्वा राजानमानीय विवशं वशम् ।
तत एनं विचेष्टन्तं बध्वा पार्थो वृकोदरः ॥५५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथमारोपयामास विसंज्ञं पांशुगुण्ठितम्।
अभ्येत्य रणमध्यस्थमभ्यगच्छद्युधिष्ठिरम् ॥५६॥

भीमसेन ने राजा सुशर्मा का गला पकड़ कर और उसको बल-पूर्वक अपने वश में करके झटपटाते हुए को ही बांधकर रथ में डाल लिया। यह इस समय अचेत और मिट्टी में सना हुआ था ॥५५-५६॥

दर्शयामास भीमस्तु सुशर्माणं नराधिपम्।
प्रोवाच पुरुषव्याघ्रो भीममाहवशोभिनम् ॥ ५७ ॥

भीमसेन, रण के मध्य में घुसकर राजा युधिष्ठिर के पास पहुंचा और उसने धर्मराज के लिए राजा सुशर्मा को दिखाया।

तं राजा प्राहसत् दृष्ट्वा मुच्यतां वै नराधमः।
एवमुक्तोऽब्रवीद्भीमः सुशर्माणं महाबलम् ॥ ५८ ॥

राजा युधिष्ठर, सुशर्मा को देख कर हंसने लगा और युद्ध में शोभा पाने वाले भीम से बोला—इस नराधम को छोड़ दो। इतना कहने पर भीमसेन राजा सुशर्मा से बोला ॥५८॥

भीम उवाच —

जीवितुं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु।
दासोऽस्मीति त्वया वाच्यं संसत्सु च सभासु च ॥५९॥
एवन्ते जीवितं दद्यामेष युद्धजितो विधिः
तमुवाच ततो ज्येष्ठो भ्राता सप्रणयं वचः ॥६०॥

हे मूढ़! यदि तू जीवन चाहता है, तो तुझे मैं जीवन का हेतु सुनाता हूं, तुम ध्यान से सुनो। तुमको राजसभा या साधा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रण सभा में यह कहना होगा कि मैं तुम्हारा दास हूं। मैं तभी तुमको जीवन प्रदान कर सकता हूं और यही युद्ध में जीत लेने पर शत्रु के साथ व्यवहार करने की रीति है। इस समय भीम से ज्येष्ठ भ्राता राजा युधिष्ठिर प्रेम के साथ कहने लगा ॥५९-६०॥

युधिष्ठिर उवाच —

मुञ्च मुञ्चाधमाचारं प्रमाणं यदि ते वयम्।
दासभावं गतो ह्येष विराटस्य महीपतेः।
प्रदासो गच्छ मुक्तोऽसि मैवं कार्षीः कदाचन ॥६१॥

इति श्रीमहाभारतविराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
सुशर्मनिग्रहे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

हे भीम! यदि तुम, हमारी आज्ञा को मानते हो, तो अनुचित व्यवहार करने वाले भी सुशर्मा को छोड़ दो। यह तो राजा विराट का दास हो ही गया। जाओ? हे सुशर्मा! तुमको स्वतन्त्र कर दिया गया, आगे कीसी की गायें न छीनना ॥६०॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में गौओं के छुड़ाने का तेतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

******

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौतीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्ते तु सव्रीडः सुशर्मासीदधोमुखः ।
स मुक्तोऽभ्येत्य राजानमभिवाद्य प्रतस्थिवान् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! भीम के इतना कहने पर राजा सुशर्मा ने लज्जा से युक्त होकर नीचा मुख कर लिया। भीमसेन ने इसको छोड़ दिया। यह राजा युधिष्ठिर के पास गया और प्रणाम करके चलता बना ॥१॥

विसृज्य तु सुशर्माणं पाण्डवास्ते हतद्विषः ।
स्वबाहुबलसम्पन्ना ह्रीनिषेवा यतव्रताः ॥ २ ॥
संग्रामशिरसो मध्ये तां रात्रिं सुखिनोऽवसन् ।

शत्रुओं के नाश कर देने वाले, अपने बाहुबल से सम्पन्न लज्जाशील, व्रत परायण, पाण्डवों ने राजा सुशर्मा को छोड़ दिया और वह रात्रि, इन्होंने युद्ध के शिरोभाग में ही सुख से समाप्त की

ततो विराटः कौन्तेयानतिमानुषविक्रमान् ।
अर्च्चयामास वित्तेन मानेन च महारथान् ॥ ३ ॥

अब राजा विराट ने भी, मनुष्यातिशायी कर्म करने वाले, महारथी पाण्डवों का धन और मान से बड़ा सत्कार किया ॥३॥

विराट उवाच—

यथैव मम रत्नानि युष्माकं तानि वै तथा ।
कार्य्यं कुरुत वै सर्वे यथाकामं यथासुखम् ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराट बोला—हे महानुभावो ! जितने मेरे रत्न (उत्तम २ पदार्थ) हैं, वे सब तुम्हारे ही हैं। तुम भी अपनी इच्छानुसार अपने सुख के लिए उनका उपयोग कर सकते हो ॥४॥

ददाम्यलङ्कृताः कन्या वसूनि विविधानि च ।
मनसश्चाप्यभिप्रेतं युद्धे शत्रुनिबर्हणाः ॥५॥

मैं तुमको अनेक अलंकृत कन्या, अनेक भांति का धन और मन की अभीष्ट वस्तु प्रदान करना चाहता हूं, क्योंकि तुम शत्रु के विजयी हो ॥५॥

युष्माकं विक्रमादद्य मुक्तोऽहं स्वस्तिमानिह ।
तस्माद्भवन्तो मत्स्यानामीश्वराः सर्व एव हि ॥६॥

आज मैं तुम्हारे ही पराक्रम के कारण शत्रु के पंजे से सकुशल छूट आया हूं, इससे तुम सारे ही मत्स्य देश के स्वामी हो।

वैशम्पायन उवाच—

तथेतिवादिनं मत्स्य कौरवेयाः पृथक् पृथक् ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ७ ॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार कहते हुए राजा विराट से कुरुवंशोत्पन्न, राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव, अलग २ हाथ जोड़कर यह वचन बोले ॥७॥

प्रतिनन्दाम ते वाक्यं सर्वश्चैव विशाम्पते ।
एतेनैव प्रतीताः स्म यत् त्वं मुक्तोऽद्य शत्रुभिः ॥८॥

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे विशाम्पते ! हम सब आपके वचन सुनकर बड़े प्रसन्न हुए हैं। हमने तो इतने में ही सब कुछ पा लिया, कि आप शत्रु के बन्धन से निकल आए ॥८॥

ततोऽब्रवीत् प्रीतमना मत्स्यराजो युधिष्ठिरम् ।
पुनरेव महाबाहुर्विराटो राजसत्तमः ॥ ९ ॥

अब राज-श्रेष्ठ, महाबाहु, मत्स्यदेशाधीश्वर, विराट, युधिष्ठिर से बड़े प्रेम के साथ कहने लगा ॥९॥

एहि त्वामभिषेक्ष्यामि मत्स्यराजस्तु नो भवान् ।
मनसश्चाप्यभिप्रेतं यथेष्टं भुवि दुर्ल्लभम् ॥ १० ॥
तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि सर्वमर्हति नो भवान् ।
रत्नानि गाः सुवर्णञ्च मणिमुक्तमथापि च॥ ११ ॥

हे महाभाग ! आओ ! मैं तुम्हारा राज्याभिषेक कर दूं। अब से आगे तुम हमारे राजा रहे। जो पदार्थ, मन को अभी और पृथिवी पर दुर्लभ हों, मैं वह सब कुछ तुम लोगों को प्रदान कर सकता हूं, क्योंकि तुम सबके योग्य हो। रत्न, गायें सुवर्ण, मणि और मुक्ता ये सब आपके अर्पण करने के योग्य हैं ॥१०-११

वैयाघ्रपद्य विप्रेन्द्र सर्वथैव नमोऽस्तु ते ।
त्वत्कृते ह्यद्य पश्यामि राज्यं सन्तानमेव च ॥ १२ ॥

हे व्याघ्रपाद् गोत्रोत्पन्न, विप्रेन्द्र ! आपको सब तरह से नमस्कार हैं। हे ब्रह्मन् ! मैं तो आज सारा राज्य और सन्तान भी आपके अधीन करना चाहता हूं ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यतश्च जातसंरम्भा न च शत्रुवशङ्गतः
ततो युधिष्ठिरो मत्स्यं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १३ ॥

मुझसे तो आज वेग और क्रोध में भरा हुआ शत्रु, पराजित नहीं होसका अब राजा युधिष्ठिर, फिर मत्स्यराज से कहने लगा।

प्रतिनन्दामि ते वाक्यं मनोज्ञं मत्स्य भाषसे ।
आनृशंस्यपरो नित्यं सुसुखी सततं भव ॥ १४ ॥

हे मत्स्यराज ! मैं आपके वचन का बड़ा स्वागत करता हूं। आप बड़ा ही सुन्दर वचन कह रहे हैं। आप बड़े दया-परायण हैं, इससे सदा सुखी रहोगे।

गच्छन्तु दूतास्त्वरितं नगरं तव पार्थिव ।
सुहृदां प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम् ॥१५॥

हे राजन ! अब दूत, शीघ्रता से नगर की ओर अपने सुहृद् परिवार से प्रिय समाचार सुनाने को जावे और नगर में आपकी विजय की घोषणा कर दें ॥१५॥

ततस्तद्वचनान्मत्स्यो दूतान् राजा समादिशत् ।
आचक्षध्वं पुरं गत्वा संग्रामे विजयं मम ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर राजा विराट ने दूतों को आज्ञा दी, कि तुम शीघ्र नगर में जाओ और पुर में मेरी विजय की घोषणा करो।

कुमार्य्यः समलङ्कृत्य पर्य्यागच्छन्तु मे पुरात् ।
वादित्राणि च सर्वाणि गणिकाश्च स्वलंकृताः ॥१७॥

बहुत सी कन्याएँ अलङ्कार पहन कर पुर से बाहर आवें और अनेक बाजे लेकर अलङ्कारों से युक्त, गणिका भी चली आवें।२७।

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एताश्चाज्ञां ततः श्रुत्या राज्ञा मत्स्येन चोदिताः ।
तामाज्ञां शिरसा कृत्वा प्रस्थिता हृष्टमानसाः ॥१८॥

राजा विराट की इस आज्ञा को सुनकर राजा मत्स्य द्वारा प्रेरित दूत, विराटराज की आज्ञा को स्वीकार करके बड़ी प्रसन्नता से चल पड़े ॥१८॥

ते गत्वा तत्र तां रात्रिमथ सूर्य्योदयं प्रति ।
विराटस्य पुराभ्यासे दूता जयमघोषयन् ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि विराटजयघोषे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

ये दूत, उसी रात्रि को चल दिए और प्रातः काल नगर में पहुंचकर इन्होंने राजा विराट की जय घोषणा की ॥१९॥

इति श्रीमहाभारत विराटपर्वान्तर्गत गोहरणपर्व में विराट के जय घोष करने का चौंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

छठा भाग समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri